।। ॐ नमः शिवाय ।।

शिव पुराण का सरल भाषा में हिंदी रूपांतर

शिव पुराण

शिव पुराण माहात्म्य

पहला अध्याय

सूत जी द्वारा शिव पुराण की महिमा का वर्णन

श्री शौनक जी ने पूछा—महाज्ञानी सूत जी, आप संपूर्ण सिद्धांतों के ज्ञाता हैं। कृपया मुझसे पुराणों के सार का वर्णन करें। ज्ञान और वैराग्य सहित भक्ति से प्राप्त विवेक की वृद्धि कैसे होती है? तथा साधुपुरुष कैसे अपने काम, क्रोध आदि विकारों का निवारण करते हैं? इस कलियुग में सभी जीव आसुरी स्वभाव के हो गए हैं। अतः कृपा करके मुझे ऐसा साधन बताइए, जो कल्याणकारी एवं मंगलकारी हो तथा पवित्रता लिए हो। प्रभु, वह ऐसा साधन हो, जिससे मनुष्य की शुद्धि हो जाए और उस निर्मल हृदय वाले पुरुष को सदैव के लिए 'शिव' की प्राप्ति हो जाए।

श्री सूत जी ने उत्तर दिया—शौनक जी आप धन्य हैं, क्योंकि आपके मन में पुराण-कथा को सुनने के लिए अपार प्रेम व लालसा है। इसलिए मैं तुम्हें परम उत्तम शास्त्र की कथा सुनाता हूं। वत्स! संपूर्ण सिद्धांत से संपन्न भक्ति को बढ़ाने वाला तथा शिवजी को संतुष्ट करने वाला अमृत के समान दिव्य शास्त्र है—'शिव पुराण'। इसका पूर्व काल में शिवजी ने ही प्रवचन किया था। गुरुदेव व्यास ने सनत्कुमार मुनि का उपदेश पाकर आदरपूर्वक इस पुराण की रचना की है। यह पुराण कलियुग में मनुष्यों के हित का परम साधन है।

'शिव पुराण' परम उत्तम शास्त्र है। इस पृथ्वीलोक में सभी मनुष्यों को भगवान शिव के विशाल स्वरूप को समझना चाहिए। इसे पढ़ना एवं सुनना सर्वसाधन है। यह मनोवांछित फलों को देने वाला है। इससे मनुष्य निष्पाप हो जाता है तथा इस लोक में सभी सुखों का उपभोग करके अंत में शिवलोक को प्राप्त करता है।

'शिव पुराण' में चौबीस हजार श्लोक हैं, जिसमें सात संहिताएं हैं। शिव पुराण परब्रह्म परमात्मा के समान गति प्रदान करने वाला है। मनुष्य को पूरी भक्ति एवं संयमपूर्वक इसे सुनना चाहिए। जो मनुष्य प्रेमपूर्वक नित्य इसको बांचता है या इसका पाठ करता है, वह निःसंदेह पुण्यात्मा है।

भगवान शिव उस विद्वान पुरुष पर प्रसन्न होकर उसे अपना धाम प्रदान करते हैं। प्रतिदिन आदरपूर्वक शिव पुराण का पूजन करने वाले मनुष्य संसार में संपूर्ण भोगों को भोगकर भगवान शिव के पद को प्राप्त करते हैं। वे सदा सुखी रहते हैं।

शिव पुराण में भगवान शिव का सर्वस्व है। इस लोक और परलोक में सुख की प्राप्ति के लिए आदरपूर्वक इसका सेवन करना चाहिए। यह निर्मल शिव पुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों को देने वाला है। अतः सदा प्रेमपूर्वक इसे सुनना एवं पढ़ना चाहिए।

दूसरा अध्याय

देवराज को शिवलोक की प्राप्ति
चंचुला का संसार से वैराग्य

श्री शौनक जी ने कहा—आप धन्य हैं। सूत जी! आप परमार्थ तत्व के ज्ञाता हैं। आपने हम पर कृपा करके हमें यह अद्भुत और दिव्य कथा सुनाई है। भूतल पर इस कथा के समान कल्याण का और कोई साधन नहीं है। आपकी कृपा से यह बात हमने समझ ली है।

सूत जी! इस कथा के द्वारा कौन से पापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताकर इस जगत को कृतार्थ कीजिए।

सूत जी बोले—मुने, जो मनुष्य पाप, दुराचार तथा काम-क्रोध, मद, लोभ में निरंतर डूबे रहते हैं, वे भी शिव पुराण पढ़ने अथवा सुनने से शुद्ध हो जाते हैं तथा उनके पापों का पूर्णतया नाश हो जाता है। इस विषय में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं।

देवराज ब्राह्मण की कथा

बहुत पहले की बात है—किरातों के नगर में देवराज नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह ज्ञान में दुर्बल, गरीब, रस बेचने वाला तथा वैदिक धर्म से विमुख था। वह स्नान-संध्या नहीं करता था तथा उसमें वैश्य-वृत्ति बढ़ती ही जा रही थी। वह भक्तों को ठगता था। उसने अनेक मनुष्यों को मारकर उन सबका धन हड़प लिया था। उस पापी ने थोड़ा-सा भी धन धर्म के काम में नहीं लगाया था। वह वेश्यागामी तथा आचार-भ्रष्ट था।

एक दिन वह घूमता हुआ दैवयोग से प्रतिष्ठानपुर (झूसी-प्रयाग) जा पहुंचा। वहां उसने एक शिवालय देखा, जहां बहुत से साधु-महात्मा एकत्र हुए थे। देवराज वहीं ठहर गया। वहां रात में उसे ज्वर आ गया और उसे बड़ी पीड़ा होने लगी। वहीं पर एक ब्राह्मण देवता शिव पुराण की कथा सुना रहे थे। ज्वर में पड़ा देवराज भी ब्राह्मण के मुख से शिवकथा को निरंतर सुनता रहता था। एक मास बाद देवराज ज्वर से पीड़ित अवस्था में चल बसा। यमराज के दूत उसे बांधकर यमपुरी ले गए। तभी वहां शिवलोक से भगवान शिव के पार्षदगण आ गए। वे कर्पूर के समान उज्ज्वल थे। उनके हाथ में त्रिशूल, संपूर्ण शरीर पर भस्म और गले में रुद्राक्ष की माला उनके शरीर की शोभा बढ़ा रही थी। उन्होंने यमराज के दूतों को मार-पीटकर देवराज को यमदूतों के चंगुल से छुड़ा लिया और वे उसे अपने अद्भुत विमान में बिठाकर जब कैलाश पर्वत पर ले जाने लगे तो यमपुरी में कोलाहल मच गया, जिसे सुनकर यमराज अपने भवन से बाहर आए। साक्षात रुद्रों के समान प्रतीत होने वाले इन दूतों का धर्मराज ने विधिपूर्वक पूजन कर ज्ञान दृष्टि से सारा मामला जान लिया। उन्होंने भय के कारण भगवान शिव के दूतों से कोई बात नहीं पूछी। तत्पश्चात शिवदूत देवराज को लेकर कैलाश चले गए

और वहां पहुंचकर उन्होंने ब्राह्मण को करुणावतार भगवान शिव के हाथों में सौंप दिया।

शौनक जी ने कहा—महाभाग सूत जी! आप सर्वज्ञ हैं। आपके कृपाप्रसाद से मैं कृतार्थ हुआ। इस इतिहास को सुनकर मेरा मन आनंदित हो गया है। अतः भगवान शिव में प्रेम बढ़ाने वाली दूसरी कथा भी कहिए।

तीसरा अध्याय

बिंदुग ब्राह्मण की कथा

श्री सूत जी बोले—शौनक! सुनो, मैं तुम्हारे सामने एक अन्य गोपनीय कथा का वर्णन करूंगा, क्योंकि तुम शिव भक्तों में अग्रगण्य व वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो। समुद्र के निकटवर्ती प्रदेश में वाष्कल नामक गांव है, जहां वैदिक धर्म से विमुख महापापी मनुष्य रहते हैं। वे सभी दुष्ट हैं एवं उनका मन दूषित विषय भोगों में ही लगा रहता है। वे देवताओं एवं भाग्य पर विश्वास नहीं करते। वे सभी कुटिल वृत्ति वाले हैं। किसानी करते हैं और विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। वे व्यभिचारी हैं। वे इस बात से पूर्णतः अनजान हैं कि ज्ञान, वैराग्य तथा सद्धर्म ही मनुष्य के लिए परम पुरुषार्थ हैं। वे सभी पशुबुद्धि हैं। अन्य समुदाय के लोग भी उन्हीं की तरह बुरे विचार रखने वाले, धर्म से विमुख हैं। वे नित्य कुकर्म में लगे रहते हैं एवं सदा विषयभोगों में डूबे रहते हैं। वहां की स्त्रियां भी बुरे स्वभाव की, स्वेच्छाचारिणी, पाप में डूबी, कुटिल सोच वाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सभी सद्व्यवहार तथा सदाचार से सर्वथा शून्य हैं। वहां सिर्फ दुष्टों का निवास है।

वाष्कल नामक गांव में बिंदुग नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह अधर्मी, दुरात्मा एवं महापापी था। उसकी स्त्री बहुत सुंदर थी। उसका नाम चंचुला था। वह सदा उत्तम धर्म का पालन करती थी परंतु बिंदुग वेश्यागामी था। इस तरह कुकर्म करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। उसकी स्त्री काम से पीड़ित होने पर भी स्वधर्मनाश के भय से क्लेश सहकर भी काफी समय तक धर्म भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु आगे चलकर वह भी अपने दुराचारी पति के आचरण से प्रभावित होकर, दुराचारिणी और अपने धर्म से विमुख हो गई।

इस तरह दुराचार में डूबे हुए उन पति-पत्नी का बहुत सा समय व्यर्थ बीत गया। वेश्यागामी, दूषित बुद्धि वाला वह दुष्ट ब्राह्मण बिंदुग समयानुसार मृत्यु को प्राप्त हो, नरक में चला गया। बहुत दिनों तक नरक के दुखों को भोगकर वह मूढ़ बुद्धि पापी विंध्यपर्वत पर भयंकर पिशाच हुआ। इधर, उस दुराचारी बिंदुग के मर जाने पर वह चंचुला नामक स्त्री बहुत समय तक पुत्रों के साथ अपने घर में रहती रही। पति की मृत्यु के बाद वह भी अपने धर्म से गिरकर पर पुरुषों का संग करने लगी थी। सतियां विपत्ति में भी अपने धर्म का पालन करना नहीं छोड़तीं। यही तो तप है। तप कठिन तो होता है, लेकिन इसका फल मीठा होता है। विषयी इस सत्य को नहीं जानता इसीलिए वह विषयों के विषफल का स्वाद लेते हुए भोग करता है।

एक दिन दैवयोग से किसी पुण्य पर्व के आने पर वह अपने भाई-बंधुओं के साथ गोकर्ण क्षेत्र में गई। उसने तीर्थ के जल में स्नान किया एवं बंधुजनों के साथ यत्र-तत्र घूमने लगी। घूमते-घूमते वह एक देव मंदिर में गई। वहां उसने एक ब्राह्मण के मुख से भगवान शिव की परम पवित्र एवं मंगलकारी कथा सुनी। कथावाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि 'जो स्त्रियां

व्यभिचार करती हैं, वे मरने के बाद जब यमलोक जाती हैं, तब यमराज के दूत उन्हें तरह-तरह से यंत्रणा देते हैं। वे उसके कामांगों को तप्त लौह दण्डों से दागते हैं। तप्त लौह के पुरुष से उसका संसर्ग कराते हैं। ये सारे दण्ड इतनी वेदना देने वाले होते हैं कि जीव पुकार-पुकार कर कहता है कि अब वह ऐसा नहीं करेगा। लेकिन यमदूत उसे छोड़ते नहीं। कर्मों का फल तो सभी को भोगना पड़ता है। देव, ऋषि, मनुष्य सभी इससे बंधे हुए हैं।' ब्राह्मण के मुख से यह वैराग्य बढ़ाने वाली कथा सुनकर चंचुला भय से व्याकुल हो गई। कथा समाप्त होने पर सभी लोग वहां से चले गए, तब कथा बांचने वाले ब्राह्मण देवता से चंचुला ने कहा—हे ब्राह्मण! धर्म को न जानने के कारण मेरे द्वारा बहुत बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामी! मेरे ऊपर कृपा कर मेरा उद्धार कीजिए। आपके प्रवचन को सुनकर मुझे इस संसार से वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनी को धिक्कार है। मैं निंदा के योग्य हूं। मैं बुरे विषयों में फंसकर अपने धर्म से विमुख हो गई थी। कौन मुझ जैसी कुमार्ग में मन लगाने वाली पापिनी का साथ देगा? जब यमदूत मेरे गले में फंदा डालकर मुझे बांधकर ले जाएंगे और नरक में मेरे शरीर के टुकड़े करेंगे, तब मैं कैसे उन महायातनाओं को सहन कर पाऊंगी? मैं सब प्रकार से नष्ट हो गई हूं, क्योंकि अभी तक मैं हर तरह से पाप में डूबी रही हूं। हे ब्राह्मण! आप मेरे गुरु हैं, आप ही मेरे माता-पिता हैं। मैं आपकी शरण में आई हूं। मुझ अबला का अब आप ही उद्धार कीजिए।

सूत जी कहते हैं—शौनक, इस प्रकार विलाप करती हुई चंचुला ब्राह्मण देवता के चरणों में गिर पड़ी। तब ब्राह्मण ने उसे कृपापूर्वक उठाया।

चौथा अध्याय

चंचुला की शिव कथा सुनने में रुचि और शिवलोक गमन

ब्राह्मण बोले—नारी तुम सौभाग्यशाली हो, जो भगवान शंकर की कृपा से तुमने वैराग्यपूर्ण शिव पुराण की कथा सुनकर समय से अपनी गलती का एहसास कर लिया है। तुम डरो मत और भगवान शिव की शरण में जाओ। उनकी परम कृपा से तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो जाएंगे। मैं तुम्हें भगवान शिव की कथा सहित वह मार्ग बताऊंगा जिसके द्वारा तुम्हें सुख देने वाली उत्तम गति प्राप्त होगी। शिव कथा सुनने से तुम्हारी बुद्धि शुद्ध हो गई है और तुम्हें पश्चाताप हुआ है तथा मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ है। पश्चाताप ही पाप करने वाले पापियों के लिए सबसे बड़ा प्रायश्चित है। पश्चाताप ही पापों का शोधक है। इससे ही पापों की शुद्धि होती है। सत्पुरुषों के अनुसार, पापों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित, पश्चाताप से ही संपन्न होता है। जो मनुष्य अपने कुकर्म के लिए पश्चाताप नहीं करता वह उत्तम गति प्राप्त नहीं करता परंतु जिसे अपने कुकृत्य पर हार्दिक पश्चाताप होता है, वह अवश्य उत्तम गति का भागीदार होता है। इसमें कोई शक नहीं है।

शिव पुराण की कथा सुनने से चित्त की शुद्धि एवं मन निर्मल हो जाता है। शुद्ध चित्त में ही भगवान शिव व पार्वती का वास होता है। वह शुद्धात्मा पुरुष सदाशिव के पद को प्राप्त होता है। इस कथा का श्रवण सभी मनुष्यों के लिए कल्याणकारी है। अतः इसकी आराधना व सेवा करनी चाहिए। यह कथा भवबंधनरूपी रोग का नाश करने वाली है। भगवान शिव की कथा सुनकर हृदय में उसका मनन करना चाहिए। इससे चित्त की शुद्धि होती है। चित्तशुद्धि होने से ज्ञान और वैराग्य के साथ महेश्वर की भक्ति निश्चय ही प्रकट होती है तथा उनके अनुग्रह से दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है। जो मनुष्य माया के प्रति आसक्त है, वह इस संसार बंधन से मुक्त नहीं हो पाता।

हे ब्राह्मण पत्नी। तुम अन्य विषयों से अपने मन को हटाकर भगवान शंकर की इस परम पावन कथा को सुनो—इससे तुम्हारे चित्त की शुद्धि होगी और तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। जो मनुष्य निर्मल हृदय से भगवान शिव के चरणों का चिंतन करता है, उसकी एक ही जन्म में मुक्ति हो जाती है।

सूत जी कहते हैं—शौनक। यह कहकर वे ब्राह्मण चुप हो गए। उनका हृदय करुणा से भर गया। वे ध्यान में मग्न हो गए। ब्राह्मण का उक्त उपदेश सुनकर चंचुला के नेत्रों में आनंद के आंसू छलक आए। वह हर्ष भरे हृदय से ब्राह्मण देवता के चरणों में गिर गई और हाथ जोड़कर बोली—मैं कृतार्थ हो गई। हे ब्राह्मण! शिवभक्तों में श्रेष्ठ स्वामिन आप धन्य हैं। आप परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकार में लगे रहते हैं। साधो! मैं नरक के समुद्र में गिर रही हूं। कृपा कर मेरा उद्धार कीजिए। जिस पौराणिक व अमृत के समान सुंदर शिव पुराण कथा की बात आपने की है उसे सुनकर ही मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ है। उस अमृतमयी शिव

पुराण कथा को सुनने के लिए मेरे मन में बड़ी श्रद्धा हो रही है। कृपया आप मुझे उसे सुनाइए।

सूत जी कहते हैं—शिव पुराण की कथा सुनने की इच्छा मन में लिए हुए चंचुला उन ब्राह्मण देवता की सेवा में वहीं रहने लगी। उस गोकर्ण नामक महाक्षेत्र में उन ब्राह्मण देवता के मुख से चंचुला शिव पुराण की भक्ति, ज्ञान और वैराग्य बढ़ाने वाली और मुक्ति देने वाली परम उत्तम कथा सुनकर कृतार्थ हुई। उसका चित्त शुद्ध हो गया। वह अपने हृदय में शिव के सगुण रूप का चिंतन करने लगी। वह सदैव शिव के सच्चिदानंदमय स्वरूप का स्मरण करती थी। तत्पश्चात, अपना समय पूर्ण होने पर चंचुला ने बिना किसी कष्ट के अपना शरीर त्याग दिया। उसे लेने के लिए एक दिव्य विमान वहां पहुंचा। यह विमान शोभा-साधनों से सजा था एवं शिव गणों से सुशोभित था।

चंचुला विमान से शिवपुरी पहुंची। उसके सारे पाप धुल गए। वह दिव्यांगना हो गई। वह गौरांगीदेवी मस्तक पर अर्धचंद्र का मुकुट व अन्य दिव्य आभूषण पहने शिवपुरी पहुंची। वहां उसने सनातन देवता त्रिनेत्रधारी महादेव शिव को देखा। सभी देवता उनकी सेवा में भक्तिभाव से उपस्थित थे। उनकी अंग कांति करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित हो रही थी। पांच मुख और हर मुख में तीन-तीन नेत्र थे, मस्तक पर अर्द्धचंद्राकार मुकुट शोभायमान हो रहा था। कंठ में नील चिन्ह था। उनके साथ में देवी गौरी विराजमान थीं, जो विद्युत पुंज के समान प्रकाशित हो रही थीं। महादेव जी की कांति कपूर के समान गौर थी। उनके शरीर पर श्वेत वस्त्र थे तथा शरीर श्वेत भस्म से युक्त था।

इस प्रकार भगवान शिव के परम उज्ज्वल रूप के दर्शन कर चंचुला बहुत प्रसन्न हुई। उसने भगवान को बारंबार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रेम, आनंद और संतोष से युक्त हो विनीतभाव से खड़ी हो गई। उसके नेत्रों से आनंदाश्रुओं की धारा बहने लगी। भगवान शंकर व भगवती गौरी उमा ने करुणा के साथ सौम्य दृष्टि से देखकर चंचुला को अपने पास बुलाया। गौरी उमा ने उसे प्रेमपूर्वक अपनी सखी बना लिया। चंचुला सुखपूर्वक भगवान शिव के धाम में, उमा देवी की सखी के रूप में निवास करने लगी।

पांचवां अध्याय

बिंदुग का पिशाच योनि से उद्धार

सूत जी बोले—शौनक! एक दिन चंचुला आनंद में मग्न उमा देवी के पास गई और दोनों हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगी।

चंचुला बोली—हे गिरिराजनंदिनी! स्कंदमाता, उमा, आप सभी मनुष्यों एवं देवताओं द्वारा पूज्य तथा समस्त सुखों को देने वाली हैं। आप शंभुप्रिया हैं। आप ही सगुणा और निर्गुणा हैं। हे सच्चिदानंदस्वरूपिणी! आप ही प्रकृति की पोषक हैं। हे माता! आप ही संसार की सृष्टि, पालन और संहार करने वाली हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्तम प्रतिष्ठा देने वाली परम शक्ति हैं।

सूत जी कहते हैं—शौनक! सद्गति प्राप्त चंचुला इस प्रकार देवी की स्तुति कर शांत हो गई। उसकी आंखों में प्रेम के आंसू उमड़ आए। तब शंकरप्रिया भक्तवत्सला उमा देवी ने बड़े प्रेम से चंचुला को चुप कराते हुए कहा—सखी चंचुला! मैं तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हूं। बोलो, क्या वर मांगती हो?

चंचुला बोली—हे गिरिराज कुमारी। मेरे पति बिंदुग इस समय कहां हैं? उनकी कैसी गति हुई है? मुझे बताइए और कुछ ऐसा उपाय कीजिए, ताकि हम फिर से मिल सकें। हे महादेवी! मेरे पति एक शूद्र जाति वेश्या के प्रति आसक्त थे और पाप में ही डूबे रहते थे।

गिरिजा बोलीं—बेटी! तुम्हारा पति बिंदुग बड़ा पापी था। उसका अंत बड़ा भयानक हुआ। वेश्या का उपभोग करने के कारण वह मूर्ख नरक में अनेक वर्षों तक अनेक प्रकार के दुख भोगकर अब शेष पाप को भोगने के लिए विंध्यपर्वत पर पिशाच की योनि में रह रहा है। वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता है और सब प्रकार के कष्ट सहता है।

सूत जी कहते हैं—शौनक! गौरी देवी की यह बात सुनकर चंचुला अत्यंत दुखी हो गई। फिर मन को किसी तरह स्थिर करती हुई दुखी हृदय से मां गौरी से उसने एक बार फिर पूछा।

हे महादेवी! मुझ पर कृपा कीजिए और मेरे पापी पति का अब उद्धार कर दीजिए। कृपा करके मुझे वह उपाय बताइए जिससे मेरे पति को उत्तम गति प्राप्त हो सके।

गौरी देवी ने कहा—यदि तुम्हारा पति बिंदुग शिव पुराण की पुण्यमयी उत्तम कथा सुने तो वह इस दुर्गति को पार करके उत्तम गति का भागी हो सकता है।

अमृत के समान मधुर गौरी देवी का यह वचन सुनकर चंचुला ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया तथा प्रार्थना की कि मेरे पति को शिव पुराण सुनाने की व्यवस्था कीजिए।

ब्राह्मण पत्नी चंचुला के बार-बार प्रार्थना करने पर शिवप्रिया गौरी देवी ने भगवान शिव की महिमा का गान करने वाले गंधर्वराज तुम्बुरो को बुलाकर कहा—तुम्बुरो! तुम्हारी भगवान शिव में प्रीति है। तुम मेरे मन की सभी बातें जानकर मेरे कार्यों को सिद्ध करते हो। तुम मेरी

इस सखी के साथ विंध्य पर जाओ। वहां एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है। पूर्व जन्म में वह पिशाच बिंदुग नामक ब्राह्मण मेरी इस सखी चंचुला का पति था। वह वेश्यागामी हो गया। उसने स्नान-संध्या आदि नित्यकर्म छोड़ दिए। क्रोध के कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। दुर्जनों से उसकी मित्रता तथा सज्जनों से द्वेष बढ़ गया था। वह अस्त्र-शस्त्र से हिंसा करता, लोगों को सताता और उनके घरों में आग लगा देता था। चाण्डालों से दोस्ती करता व रोज वेश्या के पास जाता था। पत्नी को त्यागकर दुष्ट लोगों से दोस्ती कर उन्हीं के संपर्क में रहता था। वह मृत्यु तक दुराचार में फंसा रहा। मृत्यु के बाद उसे पापियों के भोग स्थान यमपुर ले जाया गया। वहां घोर नरकों को सहकर इस समय वह विंध्य पर्वत पर पिशाच बनकर रह रहा है और पापों का फल भोग रहा है। तुम उसके सामने परम पुण्यमयी पापों का नाश करने वाली शिव पुराण की दिव्य कथा का प्रवचन करो। इस कथा को सुनने से उसका हृदय सभी पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाएगा और वह प्रेत योनि से मुक्त हो जाएगा। दुर्गति से मुक्त होने पर उस बिंदुग नामक पिशाच को विमान पर बिठाकर तुम भगवान शिव के पास ले आना।

सूत जी कहते हैं—शौनक! मां उमा का आदेश पाकर गंधर्वराज तुम्बुरो प्रसन्नतापूर्वक अपने भाग्य की सराहना करते हुए चंचुला को साथ लेकर विमान से पिशाच के निवास स्थान विंध्यपर्वत गया। वहां पहुंचकर उसने उस विकराल आकृति वाले पिशाच को देखा। उसका शरीर विशाल था। उसकी ठोढ़ी बड़ी थी। वह कभी हंसता, कभी रोता और कभी उछलता था। महाबली तुम्बुरो ने बिंदुग नामक पिशाच को पाशों से बांध लिया। उसके पश्चात तुम्बुरो ने शिव पुराण की कथा बांचने के लिए स्थान तलाश कर मंडप की रचना की।

शीघ्र ही इस बात का पता लोगों को चल गया कि एक पिशाच के उद्धार हेतु देवी पार्वती की आज्ञा से तुम्बुरो शिव पुराण की अमृत कथा सुनाने विंध्यपर्वत पर आया है।

उस कथा को सुनने के लोभ से बहुत से देवर्षि वहां पहुंच गए। सभी को आदरपूर्वक स्थान दिया गया। पिशाच बिंदुग को पाशों में बांधकर आसन पर बिठाया गया और तब तुम्बुरो ने परम उत्तम शिव पुराण की अमृत कथा का गान शुरू किया। उसने पहली विद्येश्वर संहिता से लेकर सातवीं वायुसंहिता तक शिव पुराण की कथा का स्पष्ट वर्णन किया।

सातों संहिताओं सहित शिव पुराण को सुनकर सभी श्रोता कृतार्थ हो गए। परम पुण्यमय शिव पुराण को सुनकर पिशाच सभी पापों से मुक्त हो गया और उसने पिशाच शरीर का त्याग कर दिया। शीघ्र ही उसका रूप दिव्य हो गया। उसका शरीर गौर वर्ण का हो गया। शरीर पर श्वेत वस्त्र एवं पुरुषों के आभूषण आ गए।

इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर बिंदुग अपनी पत्नी चंचुला के साथ स्वयं भी भगवान शिव का गुणगान करने लगा। उसे इस दिव्य रूप में देखकर सभी को बहुत आश्चर्य हुआ। उसका मन परम आनंद से परिपूर्ण हो गया।

सभी भगवान महेश्वर के अद्भुत चरित्र को सुनकर कृतार्थ हो, उनका यशोगान करते हुए अपने-अपने धाम को चले गए। बिंदुग अपनी पत्नी चंचुला के साथ विमान में बैठकर शिवपुरी की ओर चल दिया।

महेश्वर के गुणों का गान करता हुआ बिंदुग अपनी पत्नी चंचुला व तुम्बुरो के साथ शीघ्र ही शिवधाम पहुंच गया। भगवान शिव व देवी पार्वती ने उसे अपना पार्षद बना लिया। दोनों पति-पत्नी सुखपूर्वक भगवान महेश्वर एवं देवी गौरी के श्रीचरणों में अविचल निवास पाकर धन्य हो गए।

छठा अध्याय

शिव पुराण के श्रवण की विधि

शौनक जी कहते हैं—महाप्राज्ञ सूत जी! आप धन्य एवं शिवभक्तों में श्रेष्ठ हैं। हम पर कृपा कर हमें कल्याणमय शिव पुराण के श्रवण की विधि बताइए, जिससे सभी श्रोताओं को संपूर्ण उत्तम फल की प्राप्ति हो।

सूत जी ने कहा—मुने शौनक! तुम्हें संपूर्ण फल की प्राप्ति के लिए मैं शिव पुराण की विधि सविस्तार बताता हूं। सर्वप्रथम, किसी ज्योतिषी को बुलाकर दान से संतुष्ट कर उससे कथा का शुभ मुहूर्त निकलवाना चाहिए और उसकी सूचना का संदेश सभी लोगों तक पहुंचाना चाहिए कि हमारे यहां शिव पुराण की कथा होने वाली है। अपने कल्याण की इच्छा रखने वालों को इसे सुनने अवश्य पधारना चाहिए। देश-देश में जो भी भगवान शिव के भक्त हों तथा शिव कथा के कीर्तन और श्रवण के उत्सुक हों, उन सभी को आदरपूर्वक बुलाना चाहिए और उनका आदर-सत्कार करना चाहिए। शिव पुराण सुनने के लिए मंदिर, तीर्थ, वनप्रांत अथवा घर में ही उत्तम स्थान का निर्माण करना चाहिए। केले के खंभों से सुशोभित कथामण्डप तैयार कराएं। उसे सब ओर फल-पुष्प, सुंदर चंदोवे से अलंकृत करना चाहिए। चारों कोनों पर ध्वज लगाकर उसे विभिन्न सामग्री से सुशोभित करें। भगवान शंकर के लिए भक्तिपूर्वक दिव्य आसन का निर्माण करना चाहिए तथा कथा वाचक के लिए भी दिव्य आसन का निर्माण करना चाहिए। नियमपूर्वक कथा सुनने वालों के लिए भी सुयोग्य आसन की व्यवस्था करें तथा अन्य लोगों के बैठने की भी व्यवस्था करें। कथा बांचने वाले विद्वान के प्रति कभी बुरी भावना न रखें।

संसार में जन्म तथा गुणों के कारण बहुत से गुरु होते हैं परंतु उन सबमें पुराणों का ज्ञाता ही परम गुरु माना जाता है। पुराणवेत्ता पवित्र, शांत, साधु, ईर्ष्या पर विजय प्राप्त करने वाला और दयालु होना चाहिए। ऐसे गुणी मनुष्य को इस पुण्यमयी कथा को बांचना चाहिए। सूर्योदय से साढ़े तीन पहर तक इसे बांचने का उपयुक्त समय है। मध्याह्नकाल में दो घड़ी तक कथा बंद रखनी चाहिए ताकि लोग मल-मूत्र का त्याग कर सकें।

जिस दिन से कथा शुरू हो रही है उससे एक दिन पहले व्रत ग्रहण करें। कथा के दिनों में प्रातःकाल का नित्यकर्म संक्षेप में कर लेना चाहिए। वक्ता के पास उसकी सहायता हेतु एक विद्वान व्यक्ति को बैठाना चाहिए जो कि सब प्रकार के संशयों को दूर कर लोगों को समझाने में कुशल हो। कथा में आने वाले विघ्नों को दूर करने के लिए सर्वप्रथम गणेश जी का पूजन करना चाहिए। भगवान शिव व शिव पुराण की भक्तिभाव से पूजा करें। तत्पश्चात श्रोता तन-मन से शुद्ध होकर आदरपूर्वक शिव पुराण की कथा सुनें। जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकार के कर्मों से भटक रहे हों, काम आदि छः विकारों से युक्त हों, वे पुण्य के भागी नहीं हो सकते। जो मनुष्य अपनी सभी चिंताओं को भूलकर कथा में मन लगाते हैं, उन शुद्ध बुद्धि

मनुष्यों को उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

सातवां अध्याय

श्रोताओं द्वारा पालन किए जाने वाले नियम

सूत जी बोले—शौनक! शिव पुराण सुनने का व्रत लेने वाले पुरुषों के लिए जो नियम हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक सुनो।

शिव पुराण की पुण्यमयी कथा नियमपूर्वक सुनने से बिना किसी विघ्न-बाधा के उत्तम फल की प्राप्ति होती है। दीक्षा रहित मनुष्य को कथा सुनने का अधिकार नहीं है। अतः पहले वक्ता से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। नियमपूर्वक कथा सुनने वाले मनुष्य को ब्रह्मचर्य का अच्छी तरह से पालन करना चाहिए। उसे भूमि पर सोना चाहिए, पत्तल में खाना चाहिए तथा कथा समाप्त होने पर ही अन्न ग्रहण करना चाहिए। समर्थ मनुष्य को शुद्धभाव से शिव पुराण की कथा की समाप्ति तक उपवास रखना चाहिए और एक ही बार भोजन करना चाहिए। गरिष्ठ अन्न, दाल, जला अन्न, सेम, मसूर तथा बासी अन्न नहीं खाना चाहिए। जिसने कथा का व्रत ले रखा हो, उसे प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जाने वाली वस्तुओं को त्याग देना चाहिए। ऐसा मनुष्य प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा हार्दिक उदारता आदि सद्गुणों को अपनाए तथा साधु-संतों की निंदा का त्याग कर नियमपूर्वक कथा सुने। सकाम मनुष्य इस कथा के प्रभाव से अपनी अभीष्ट कामना प्राप्त करता है और निष्काम मोक्ष प्राप्त करता है। सभी स्त्री-पुरुषों को विधिविधान से शिव पुराण की उत्तम कथा को सुनना चाहिए।

महर्षे! शिव पुराण की समाप्ति पर श्रोताओं को भक्तिपूर्वक भगवान शिव की पूजा की तरह पुराण-पुस्तक की पूजा भी करनी चाहिए तथा इसके पश्चात विधिपूर्वक वक्ता का भी पूजन करना चाहिए। पुस्तक को रखने के लिए नया और सुंदर बस्ता बनाएं। पुस्तक व वक्ता की पूजा के उपरांत वक्ता की सहायता हेतु बुलाए गए पंडित का भी सत्कार करना चाहिए।

कथा में पधारे अन्य ब्राह्मणों को भी अन्न-धन का दान दें। गीत, वाद्य और नृत्य से उत्सव को महान बनाएं। विरक्त मनुष्य को कथा समाप्ति पर गीता का पाठ करना चाहिए तथा गृहस्थ को श्रवण कर्म की शांति हेतु होम करना चाहिए। होम रुद्रसंहिता के श्लोकों द्वारा अथवा गायत्री मंत्र के द्वारा करें। यदि हवन करने में असमर्थ हों तो भक्तिपूर्वक शिव सहस्रनाम का पाठ करें।

कथाश्रवण संबंधी व्रत की पूर्णता के लिए शहद से बनी खीर का भोजन ग्यारह ब्राह्मणों को कराकर उन्हें दक्षिणा दें। समृद्ध मनुष्य तीन तोले सोने का एक सुंदर सिंहासन बनाए और उसके ऊपर लिखी अथवा लिखाई हुई शिव पुराण की लिखी पोथी विधिपूर्वक स्थापित करें तथा पूजा करके दक्षिणा चढ़ाएं। फिर आचार्य का वस्त्र, आभूषण एवं गंध से पूजन करके दक्षिणा सहित वह पुस्तक उन्हें भेंट कर दें। शौनक, इस पुराण के दान के प्रभाव से भगवान शिव का अनुग्रह पाकर मनुष्य भवबंधन से मुक्त हो जाता है। शिव पुराण को विधिपूर्वक

संपन्न करने पर यह संपूर्ण फल देता है तथा भोग और मोक्ष प्रदान करता है।

मुने! शिव पुराण का सारा माहात्म्य, जो संपूर्ण फल देने वाला है, मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब आप और क्या सुनना चाहते हो? श्रीमान शिव पुराण सभी पुराणों के माथे का तिलक है। जो मनुष्य सदा भगवान शिव का ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिव के गुणों की स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, उनका जीवन सफल हो जाता है, वे संसार सागर से पार हो जाते हैं। ऐसे लोग इहलोक और परलोक में सदा सुखी रहते हैं। भगवान शिव के सच्चिदानंदमय स्वरूप का स्पर्श पाकर ही समस्त प्रकार के कष्टों का निवारण हो जाता है। उनकी महिमा जगत के बाहर और भीतर दोनों जगह विद्यमान है। उन अनंत आनंदरूप परम शिव की मैं शरण लेता हूं।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

शिव पुराण

विद्येश्वर संहिता

पहला अध्याय

पापनाशक साधनों के विषय में प्रश्न

जो आदि से लेकर अंत में हैं, नित्य मंगलमय हैं, जो आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले हैं, जिनके पांच मुख हैं और जो खेल-खेल में जगत की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पांच प्रबल कर्म करते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर उमापति भगवान शंकर का मैं मन ही मन चिंतन करता हूं।

व्यास जी कहते हैं—धर्म का महान क्षेत्र, जहां गंगा-यमुना का संगम है, उस पुण्यमय प्रयाग, जो ब्रह्मलोक का मार्ग है, वहां एक बार महातेजस्वी, महाभाग, महात्मा मुनियों ने विशाल यज्ञ का आयोजन किया। उस ज्ञान यज्ञ का समाचार सुनकर पौराणिक-शिरोमणि व्यास जी के शिष्य सूत जी वहां मुनियों के दर्शन के लिए आए। सूत जी का सभी मुनियों ने विधिवत स्वागत व सत्कार किया तथा उनकी स्तुति करते हुए हाथ जोड़कर उनसे कहा—हे सर्वज्ञ विद्वान रोमहर्षण जी। आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपने स्वयं व्यास जी के मुख से पुराण विद्या प्राप्त की है। आप आश्चर्यस्वरूप कथाओं का भंडार हैं। आप भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता हैं। हमारा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए। आपका यहां आना निरर्थक नहीं हो सकता। आप कल्याणकारी हैं।

उत्तम बुद्धि वाले सूत जी! यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होने पर भी आप शुभाशुभ तत्व का वर्णन करें, जिससे हमारी तृप्ति नहीं होती और उसे सुनने की हमारी इच्छा ऐसे ही रहती है। कृपा कर उस विषय का वर्णन करें। घोर कलियुग आने पर मनुष्य पुण्यकर्म से दूर होकर दुराचार में फंस जाएंगे। दूसरों की बुराई करेंगे, पराई स्त्रियों के प्रति आसक्त होंगे। हिंसा करेंगे, मूर्ख, नास्तिक और पशुबुद्धि हो जाएंगे।

सूत जी! कलियुग में वेद प्रतिपादित वर्ण-आश्रम व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। प्रत्येक वर्ण और आश्रम में रहने वाले अपने-अपने धर्मों के आचरण का परित्याग कर विपरीत आचरण करने में सुख प्राप्त करेंगे! इस सामाजिक वर्ण संकरता से लोगों का पतन होगा। परिवार टूट जाएंगे, समाज बिखर जाएगा। प्राकृतिक आपदाओं से जगह-जगह लोगों की मृत्यु होगी। धन का क्षय होगा। स्वार्थ और लोभ की प्रवृत्ति बढ़ जाएगी। ब्राह्मण लोभी हो जाएंगे और वेद बेचकर धन प्राप्त करेंगे। मद से मोहित होकर दूसरों को ठगेंगे, पूजा-पाठ नहीं करेंगे और ब्रह्मज्ञान से शून्य होंगे। क्षत्रिय अपने धर्म को त्यागकर कुसंगी, पापी और व्यभिचारी हो जाएंगे। शौर्य से रहित हो वे शूद्रों जैसा व्यवहार करेंगे और काम के अधीन हो जाएंगे। वैश्य धर्म से विमुख हो संस्कारभ्रष्ट होकर कुमार्गी, धनोपार्जन-परायण होकर नाप-तौल में ध्यान लगाएंगे। शूद्र अपना धर्म-कर्म छोड़कर अच्छी वेशभूषा से सुशोभित हो व्यर्थ घूमेंगे। वे कुटिल और ईर्ष्यालु होकर अपने धर्म के प्रतिकूल हो जाएंगे, कुकर्मी और वाद-विवाद करने

वाले होंगे। वे स्वयं को कुलीन मानकर सभी धर्मों और वर्णों में विवाह करेंगे।

स्त्रियां सदाचार से विमुख हो जाएंगी। वे अपने पति का अपमान करेंगी और सास-ससुर से लड़ेंगी। मलिन भोजन करेंगी। उनका शील स्वभाव बहुत बुरा होगा।

सूत जी! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है और जिन्होंने अपने धर्म का त्याग कर दिया है, ऐसे लोग लोक-परलोक में उत्तम गति कैसे प्राप्त करेंगे? इस चिंता से हम सभी व्याकुल हैं। परोपकार के समान कोई धर्म नहीं है। इस धर्म का पालन करने वाला दूसरों को सुखी करता हुआ, स्वयं भी प्रसन्नता अनुभव करता है। यह भावना यदि निष्काम हो, तो कर्ता का हृदय शुद्ध करते हुए उसे परमगति प्रदान करती है। हे महामुने! आप समस्त सिद्धांतों के ज्ञाता हैं। कृपा कर कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे इन सबके पापों का तत्काल नाश हो जाए।

व्यास जी कहते हैं—उन श्रेष्ठ मुनियों की यह बात सुनकर सूत जी मन ही मन परम श्रेष्ठ भगवान शंकर का स्मरण करके उनसे इस प्रकार बोले—

दूसरा अध्याय

शिव पुराण का परिचय और महिमा

सूत जी कहते हैं—साधु महात्माओ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। यह प्रश्न तीनों लोकों का हित करने वाला है। आप लोगों के स्नेहपूर्ण आग्रह पर, गुरुदेव व्यास का स्मरण कर मैं समस्त पापराशियों से उद्धार करने वाले शिव पुराण की अमृत कथा का वर्णन कर रहा हूं। ये वेदांत का सारसर्वस्व है। यही परलोक में परमार्थ को देने वाला है तथा दुष्टों का विनाश करने वाला है। इसमें भगवान शिव के उत्तम यश का वर्णन है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि पुरुषार्थों को देने वाला पुराण अपने प्रभाव की दृष्टि से वृद्धि तथा विस्तार को प्राप्त हो रहा है। शिव पुराण के अध्ययन से कलियुग के सभी पापों में लिप्त जीव उत्तम गति को प्राप्त होंगे। इसके उदय से ही कलियुग का उत्पात शांत हो जाएगा। शिव पुराण को वेद तुल्य माना जाएगा। इसका प्रवचन सर्वप्रथम भगवान शिव ने ही किया था। इस पुराण के बारह खण्ड या भेद हैं। ये बारह संहिताएं हैं—(1) विद्येश्वर संहिता, (2) रुद्र संहिता, (3) विनायक संहिता, (4) उमा संहिता, (5) सहस्रकोटिरुद्र संहिता, (6) एकादशरुद्र संहिता, (7) कैलास संहिता, (8) शतरुद्र संहिता, (9) कोटिरुद्र संहिता, (10) मातृ संहिता, (11) वायवीय संहिता तथा (12) धर्म संहिता।

विद्येश्वर संहिता में दस हजार श्लोक हैं। रुद्र संहिता, विनायक संहिता, उमा संहिता और मातृ संहिता प्रत्येक में आठ-आठ हजार श्लोक हैं। एकादश रुद्र संहिता में तेरह हजार, कैलाश संहिता में छः हजार, शतरुद्र संहिता में तीन हजार, कोटिरुद्र संहिता में नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्र संहिता में ग्यारह हजार, वायवीय संहिता में चार हजार तथा धर्म संहिता में बारह हजार श्लोक हैं।

मूल शिव पुराण में कुल एक लाख श्लोक हैं परंतु व्यास जी ने इसे चौबीस हजार श्लोकों में संक्षिप्त कर दिया है। पुराणों की क्रम संख्या में शिव पुराण का चौथा स्थान है, जिसमें सात संहिताएं हैं।

पूर्वकाल में भगवान शिव ने सौ करोड़ श्लोकों का पुराणग्रंथ ग्रंथित किया था। सृष्टि के आरंभ में निर्मित यह पुराण साहित्य अधिक विस्तृत था। द्वापर युग में द्वैपायन आदि महर्षियों ने पुराण को अठारह भागों में विभाजित कर चार लाख श्लोकों में इसको संक्षिप्त कर दिया। इसके उपरांत व्यास जी ने चौबीस हजार श्लोकों में इसका प्रतिपादन किया।

यह वेदतुल्य पुराण विद्येश्वररुद्र संहिता, शतरुद्र संहिता, कोटिरुद्र संहिता, उमा संहिता, कैलाश संहिता और वायवीय संहिता नामक सात संहिताओं में विभाजित है। यह सात संहिताओं वाला शिव पुराण वेद के समान प्रामाणिक तथा उत्तम गति प्रदान करने वाला है।

इस निर्मल शिव पुराण की रचना भगवान शिव द्वारा की गई है तथा इसको संक्षेप में संकलित करने का श्रेय व्यास जी को जाता है। शिव पुराण सभी जीवों का कल्याण करने

वाला, सभी पापों का नाश करने वाला है। यही सत्पुरुषों को कल्याण प्रदान करने वाला है। यह तुलना रहित है तथा इसमें वेद प्रतिपादित अद्वैत ज्ञान तथा निष्कपट धर्म का प्रतिपादन है। शिव पुराण श्रेष्ठ मंत्र-समूहों का संकलन है तथा यही सभी के लिए शिवधाम की प्राप्ति का साधन है। समस्त पुराणों में सर्वश्रेष्ठ शिव पुराण ईर्ष्या रहित अंतःकरण वाले विद्वानों के लिए जानने की वस्तु है। इसमें परमात्मा का गान किया गया है। इस अमृतमयी शिव पुराण को आदर से पढ़ने और सुनने वाला मनुष्य भगवान शिव का प्रिय होकर परम गति को प्राप्त कर लेता है।

तीसरा अध्याय

श्रवण, कीर्तन और मनन साधनों की श्रेष्ठता

व्यास जी कहते हैं—सूत जी के वचनों को सुनकर सभी महर्षि बोले—भगवन् आप वेदतुल्य, अद्भुत एवं पुण्यमयी शिव पुराण की कथा सुनाइए।

सूत जी ने कहा—हे महर्षिगण! आप कल्याणमय भगवान शिव का स्मरण करके, वेद के सार से प्रकट शिव पुराण की अमृत कथा सुनिए। शिव पुराण में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का गान किया गया है। जब सृष्टि आरंभ हुई, तो छः कुलों के महर्षि आपस में वाद-विवाद करने लगे कि अमुक वस्तु उत्कृष्ट है, अमुक नहीं। जब इस विवाद ने बड़ा रूप धारण कर लिया तो सभी अपनी शंका के समाधान के लिए सृष्टि की रचना करने वाले अविनाशी ब्रह्माजी के पास जाकर हाथ जोड़कर कहने लगे—हे प्रभु! आप संपूर्ण जगत को धारण कर उनका पोषण करने वाले हैं। प्रभु! हम जानना चाहते हैं कि संपूर्ण तत्वों से परे परात्पर पुराण पुरुष कौन हैं?

ब्रह्माजी ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इंद्र आदि से युक्त संपूर्ण जगत समस्त भूतों एवं इंद्रियों के साथ पहले प्रकट हुआ है। वे देव-महादेव ही सर्वज्ञ और संपूर्ण हैं। भक्ति से ही इनका साक्षात्कार होता है। दूसरे किसी उपाय से इनका दर्शन नहीं होता। भगवान शिव में अटूट भक्ति मनुष्य को संसार-बंधन से मुक्ति दिलाती है। भक्ति से उन्हें देवता का कृपाप्रसाद प्राप्त होता है। जैसे अंकुर से बीज और बीज से अंकुर पैदा होता है। भगवान शंकर का कृपाप्रसाद प्राप्त करने के लिए आप सब ब्रह्मर्षि धरती पर सहस्रों वर्षों तक चलने वाले विशाल यज्ञ करो। यज्ञपति भगवान शिव की कृपा से ही विद्या के सारतत्व साध्य-साधन का ज्ञान प्राप्त होता है।

शिवपद की प्राप्ति साध्य और उनकी सेवा ही साधन है तथा जो मनुष्य बिना किसी फल की कामना किए उनकी भक्ति में डूबे रहते हैं, वही साधक हैं। कर्म के अनुष्ठान से प्राप्त फल को भगवान शिव के श्रीचरणों में समर्पित करना ही परमेश्वर की प्राप्ति का उपाय है तथा यही मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है। साक्षात महेश्वर ने ही भक्ति के साधनों का प्रतिपादन किया है। कान से भगवान के नाम, गुण और लीलाओं का श्रवण, वाणी द्वारा उनका कीर्तन तथा मन में उनका मनन शिवपद की प्राप्ति के महान साधन हैं तथा इन साधनों से ही संपूर्ण मनोरथों की सिद्ध होती है। जिस वस्तु को हम प्रत्यक्ष अपनी आंखों के सामने देख सकते हैं, उसकी तरफ आकर्षण स्वाभाविक है परंतु जिस वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता उसे केवल सुनकर और समझकर ही उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है। अतः श्रवण पहला साधन है। श्रवण द्वारा ही गुरु मुख से तत्व को सुनकर श्रेष्ठ बुद्धि वाला विद्वान अन्य साधन कीर्तन और मनन की शक्ति व सिद्धि प्राप्त करने का यत्न करता है। मनन के बाद इस साधन की साधना करते रहने से धीरे-धीरे भगवान शिव का संयोग प्राप्त

होता है और लौकिक आनंद की प्राप्ति होती है।

भगवान शिव की पूजा, उनके नामों का जाप तथा उनके रूप, गुण, विलास के हृदय में निरंतर चिंतन को ही मनन कहा जाता है। महेश्वर की कृपादृष्टि से उपलब्ध इस साधन को ही प्रमुख साधन कहा जाता है।

चौथा अध्याय

सनत्कुमार-व्यास संवाद

सूत जी कहते हैं—हे मुनियो! इस साधन का माहात्म्य बताते समय मैं एक प्राचीन वृत्तांत का वर्णन करूंगा, जिसे आप ध्यानपूर्वक सुनें।

बहुत पहले की बात है, पराशर मुनि के पुत्र मेरे गुरु व्यासदेव जी सरस्वती नदी के तट पर तपस्या कर रहे थे। एक दिन सूर्य के समान तेजस्वी विमान से यात्रा करते हुए भगवान सनत्कुमार वहां जा पहुंचे। मेरे गुरु ध्यान में मग्न थे। जागने पर अपने सामने सनत्कुमार जी को देखकर वे बड़ी तेजी से उठे और उनके चरणों का स्पर्श कर उन्हें अर्घ्य देकर योग्य आसन पर विराजमान किया। प्रसन्न होकर सनत्कुमार जी गंभीर वाणी में बोले—मुनि तुम सत्य का चिंतन करो। सत्य तत्व का चिंतन ही श्रेय प्राप्ति का मार्ग है। इसी से कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। यही कल्याणकारी है। यह जब जीवन में आ जाता है, तो सब सुंदर हो जाता है। सत्य का अर्थ है—सदैव रहने वाला। इस काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह सदा एक समान रहता है।

सनत्कुमार जी ने महर्षि व्यास को आगे समझाते हुए कहा, महर्षे! सत्य पदार्थ भगवान शिव ही हैं। भगवान शंकर का श्रवण, कीर्तन और मनन ही उन्हें प्राप्त करने के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। पूर्वकाल में मैं दूसरे अनेकानेक साधनों के भ्रम में पड़ा घूमता हुआ तपस्या करने मंदराचल पर जा पहुंचा। कुछ समय बाद महेश्वर शिव की आज्ञा से सबके साक्षी तथा शिवगणों के स्वामी नंदिकेश्वर वहां आए और स्नेहपूर्वक मुक्ति का साधन बताते हुए बोले—भगवान शंकर का श्रवण, कीर्तन और मनन ही मुक्ति का स्रोत है। यह बात मुझे स्वयं देवाधिदेव भगवान शिव ने बताई है। अतः तुम इन्हीं साधनों का अनुष्ठान करो।

व्यास जी से ऐसा कहकर अनुगामियों सहित सनत्कुमार ब्रह्मधाम को चले गए। इस प्रकार इस उत्तम वृत्तांत का संक्षेप में मैंने वर्णन किया है।

ऋषि बोले—सूत जी! आपने श्रवण, कीर्तन और मनन को मुक्ति का उपाय बताया है, किंतु जो मनुष्य इन तीनों साधनों में असमर्थ हो, वह मनुष्य कैसे मुक्त हो सकता है? किस कर्म के द्वारा बिना यत्न के ही मोक्ष मिल सकता है?

पांचवां अध्याय

शिवलिंग का रहस्य एवं महत्व

सूत जी कहते हैं—हे शौनक जी! श्रवण, कीर्तन और मनन जैसे साधनों को करना प्रत्येक के लिए सुगम नहीं है। इसके लिए योग्य गुरु और आचार्य चाहिए। गुरुमुख से सुनी गई वाणी मन की शंकाओं को दग्ध करती है। गुरुमुख से सुने शिव तत्व द्वारा शिव के रूप-स्वरूप के दर्शन और गुणानुवाद में रसानुभूति होती है। तभी भक्त कीर्तन कर पाता है। यदि ऐसा कर पाना संभव न हो, तो मोक्षार्थी को चाहिए कि वह भगवान शंकर के लिंग एवं मूर्ति की स्थापना करके रोज उनकी पूजा करे। इसे अपनाकर वह इस संसार सागर से पार हो सकता है। संसार सागर से पार होने के लिए इस तरह की पूजा आसानी से भक्तिपूर्वक की जा सकती है। अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार धनराशि से शिवलिंग या शिवमूर्ति की स्थापना कर भक्तिभाव से उसकी पूजा करनी चाहिए। मंडप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्र की स्थापना कर उत्सव का आयोजन करना चाहिए तथा पुष्प, धूप, वस्त्र, गंध, दीप तथा पुआ और तरह-तरह के भोजन नैवेद्य के रूप में अर्पित करने चाहिए। श्री शिवजी ब्रह्मरूप और निष्कल अर्थात कला रहित भी हैं और कला सहित भी। मनुष्य इन दोनों स्वरूपों की पूजा करते हैं। शंकर जी को ही ब्रह्म पदवी भी प्राप्त है। कलापूर्ण भगवान शिव की मूर्ति पूजा भी मनुष्यों द्वारा की जाती है और वेदों ने भी इस तरह की पूजा की आज्ञा प्रदान की है।

सनत्कुमार जी ने पूछा—हे नंदिकेश्वर! पूर्वकाल में उत्पन्न हुए लिंग बेर अर्थात मूर्ति की उत्पत्ति के संबंध में आप हमें विस्तार से बताइए।

नंदिकेश्वर ने बताया—मुनिश्वर! प्राचीन काल में एक बार ब्रह्मा और विष्णु के मध्य युद्ध हुआ तो उनके बीच स्तंभ रूप में शिवजी प्रकट हो गए। इस प्रकार उन्होंने पृथ्वीलोक का संरक्षण किया। उसी दिन से महादेव जी का लिंग के साथ-साथ मूर्ति पूजन भी जगत में प्रचलित हो गया। अन्य देवताओं की साकार अर्थात मूर्ति-पूजा होने लगी, जो कि अभीष्ट फल प्रदान करने वाली थी। परंतु शिवजी के लिंग और मूर्ति, दोनों रूप ही पूजनीय हैं।

छठा अध्याय

ब्रह्मा-विष्णु युद्ध

नंदिकेश्वर बोले—पूर्व काल में श्रीविष्णु अपनी पत्नी श्री लक्ष्मी जी के साथ शेष-शय्या पर शयन कर रहे थे। तब एक बार ब्रह्माजी वहां पहुंचे और विष्णुजी को पुत्र कहकर पुकारने लगे—पुत्र उठो! मैं तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे सामने खड़ा हूं। यह सुनकर विष्णुजी को क्रोध आ गया। फिर भी शांत रहते हुए वे बोले—पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। कहो अपने पिता के पास कैसे आना हुआ? यह सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे—मैं तुम्हारा रक्षक हूं। सारे जगत का पितामह हूं। सारा जगत मुझमें निवास करता है। तू मेरी नाभि कमल से प्रकट होकर मुझसे ऐसी बातें कर रहा है। इस प्रकार दोनों में विवाद होने लगा। तब वे दोनों अपने को प्रभु कहते-कहते एक-दूसरे का वध करने को तैयार हो गए। हंस और गरुड़ पर बैठे दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। ब्रह्माजी के वक्षस्थल में विष्णुजी ने अनेकों अस्त्रों का प्रहार करके उन्हें व्याकुल कर दिया। इससे कुपित हो ब्रह्माजी ने भी पलटकर भयानक प्रहार किए। उनके पारस्परिक आघातों से देवताओं में हलचल मच गई। वे घबराए और त्रिशूलधारी भगवान शिव के पास गए और उन्हें सारी व्यथा सुनाई। भगवान शिव अपनी सभा में उमा देवी सहित सिंहासन पर विराजमान थे और मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

सातवां अध्याय

शिव निर्णय

महादेव जी बोले—पुत्रो! मैं जानता हूं कि तुम ब्रह्मा और विष्णु के परस्पर युद्ध से बहुत दुखी हो। तुम डरो मत, मैं अपने गणों के साथ तुम्हारे साथ चलता हूं। तब भगवान शिव अपने नंदी पर आरूढ़ हो, देवताओं सहित युद्धस्थल की ओर चल दिए। वहां छिपकर वे ब्रह्मा-विष्णु के युद्ध को देखने लगे। उन्हें जब यह ज्ञात हुआ कि वे दोनों एक-दूसरे को मारने की इच्छा से माहेश्वर और पाशुपात अस्त्रों का प्रयोग करने जा रहे हैं तो वे युद्ध को शांत करने के लिए महाअग्नि के तुल्य एक स्तंभ रूप में ब्रह्मा और विष्णु के मध्य खड़े हो गए। महाअग्नि के प्रकट होते ही दोनों के अस्त्र स्वयं ही शांत हो गए। अस्त्रों को शांत होते देखकर ब्रह्मा और विष्णु दोनों कहने लगे कि इस अग्नि स्वरूप स्तंभ के बारे में हमें जानकारी करनी चाहिए। दोनों ने उसकी परीक्षा लेने का निर्णय लिया। भगवान विष्णु ने शूकर रूप धारण किया और उसको देखने के लिए नीचे धरती में चल दिए। ब्रह्माजी हंस का रूप धारण करके ऊपर की ओर चल दिए। पाताल में बहुत नीचे जाने पर भी विष्णुजी को स्तंभ का अंत नहीं मिला। अतः वे वापस चले आए। ब्रह्माजी ने आकाश में जाकर केतकी का फूल देखा। वे उस फूल को लेकर विष्णुजी के पास गए। विष्णु ने उनके चरण पकड़ लिए। ब्रह्माजी के छल को देखकर भगवान शिव प्रकट हुए। विष्णुजी की महानता से शिव प्रसन्न होकर बोले—हे विष्णुजी! आप सत्य बोलते हैं। अतः मैं आपको अपनी समानता का अधिकार देता हूं।

आठवां अध्याय

ब्रह्मा का अभिमान भंग

नंदिकेश्वर बोले—महादेव जी ब्रह्माजी के छल पर अत्यंत क्रोधित हुए। उन्होंने अपने त्रिनेत्र (तीसरी आंख) से भैरव को प्रकट किया और उन्हें आज्ञा दी कि वह तलवार से ब्रह्माजी को दंड दें। आज्ञा पाते ही भैरव ने ब्रह्माजी के बाल पकड़ लिए और उनका पांचवां सिर काट दिया। ब्रह्माजी डर के मारे कांपने लगे। उन्होंने भैरव के चरण पकड़ लिए तथा क्षमा मांगने लगे। इसे देखकर श्रीविष्णु ने भगवान शिव से प्रार्थना की कि आपकी कृपा से ही ब्रह्माजी को पांचवां सिर मिला था। अतः आप इन्हें क्षमा कर दें। तब शिवजी की आज्ञा पाकर ब्रह्मा को भैरव ने छोड़ दिया। शिवजी ने कहा तुमने प्रतिष्ठा और ईश्वरत्व को दिखाने के लिए छल किया है। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम सत्कार, स्थान व उत्सव से विहीन रहोगे। ब्रह्माजी को अपनी गलती का पछतावा हो चुका था। उन्होंने भगवान शिव के चरण पकड़कर क्षमा मांगी और निवेदन किया कि वे उनका पांचवां सिर पुनः प्रदान करें। महादेव जी ने कहा—जगत की स्थिति को बिगड़ने से बचाने के लिए पापी को दंड अवश्य देना चाहिए, ताकि लोक-मर्यादा बनी रहे। मैं तुम्हें वरदान देता हूं कि तुम गणों के आचार्य कहलाओगे और तुम्हारे बिना यज्ञ पूर्ण न होंगे।

फिर उन्होंने केतकी के पुष्प से कहा—अरे दुष्ट केतकी पुष्प! अब तुम मेरी पूजा के अयोग्य रहोगे। तब केतकी पुष्प बहुत दुखी हुआ और उनके चरणों में गिरकर माफी मांगने लगा। तब महादेव जी ने कहा—मेरा वचन तो झूठा नहीं हो सकता। इसलिए तू मेरे भक्तों के योग्य होगा। इस प्रकार तेरा जन्म सफल हो जाएगा।

नवां अध्याय

लिंग पूजन का महत्व

नंदिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मा और विष्णु भगवान शिव को प्रणाम कर चुपचाप उनके दाएं-बाएं भाग में खड़े हो गए। उन्होंने पूजनीय महादेव जी को श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर पवित्र वस्तुओं से उनका पूजन किया। दीर्घकाल तक स्थिर रहने वाली वस्तुओं को 'पुष्प वस्तु' तथा अल्पकाल तक टिकने वाली वस्तुओं को 'प्राकृत वस्तु' कहते हैं। हार, नूपुर, कियूर, किरीट, मणिमय कुंडल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्पमाला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका, पुष्प, तांबूल, कपूर, चंदन एवं अगरु का अनुलेप, धूप, दीप, श्वेत छत्र, व्यंजन, ध्वजा, चंवर तथा अनेक दिव्य उपहारों द्वारा, जिनका वैभव वाणी और मन की पहुंच से परे था, जो केवल परमात्मा के योग्य थे, उनसे ब्रह्मा और विष्णु ने अपने स्वामी महेश्वर का पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान शिव ने दोनों देवताओं से मुस्कराकर कहा—

पुत्रो! आज तुम्हारे द्वारा की गई पूजा से मैं बहुत प्रसन्न हूं। इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान होगा। यह तिथि 'शिवरात्रि' के नाम से प्रसिद्ध होगी और मुझे परम प्रिय होगी। इस दिन जो मनुष्य मेरे लिंग अर्थात निराकार रूप की या मेरी मूर्ति अर्थात साकार रूप की दिन-रात निराहार रहकर अपनी शक्ति के अनुसार निश्चल भाव से यथोचित पूजा करेगा, वह मेरा परम प्रिय भक्त होगा। पूरे वर्ष भर निरंतर मेरी पूजा करने पर जो फल मिलता है, वह फल शिवरात्रि को मेरा पूजन करके मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है। जैसे पूर्ण चंद्रमा का उदय समुद्र की वृद्धि का अवसर है, उसी प्रकार शिवरात्रि की तिथि मेरे धर्म की वृद्धि का समय है। इस तिथि को मेरी स्थापना का मंगलमय उत्सव होना चाहिए। मैं मार्गशीर्ष मास में आर्द्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी या प्रतिपदा को ज्योतिर्मय स्तंभ के रूप में प्रकट हुआ था। इस दिन जो भी मनुष्य पार्वती सहित मेरा दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिंग की झांकी निकालता है, वह मेरे लिए कार्तिकेय से भी अधिक प्रिय है। इस शुभ दिन मेरे दर्शन मात्र से पूरा फल प्राप्त होता है। यदि दर्शन के साथ मेरा पूजन भी किया जाए तो इतना अधिक फल प्राप्त होता है कि वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

लिंग रूप में प्रकट होकर मैं बहुत बड़ा हो गया था। अतः लिंग के कारण यह भूतल 'लिंग स्थान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जगत के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिए यह अनादि और अनंत ज्योति स्तंभ अथवा ज्योतिर्मय लिंग अत्यंत छोटा हो जाएगा। यह लिंग सब प्रकार के भोग सुलभ कराने वाला तथा भोग और मोक्ष का एकमात्र साधन है। इसका दर्शन, स्पर्श और ध्यान प्राणियों को जन्म और मृत्यु के कष्ट से छुड़ाने वाला है। शिवलिंग के यहां प्रकट होने के कारण यह स्थान 'अरुणाचल' नाम से प्रसिद्ध होगा तथा यहां बड़े-बड़े तीर्थ प्रकट होंगे। इस स्थान पर रहने या मरने से जीवों को मोक्ष प्राप्त होगा।

मेरे दो रूप हैं—साकार और निराकार। पहले मैं स्तंभ रूप में प्रकट हुआ। फिर अपने

साक्षात रूप में। 'ब्रह्मभाव' मेरा निराकार रूप है तथा 'महेश्वरभाव' मेरा साक्षात रूप है। ये दोनों ही मेरे सिद्ध रूप हैं। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूं। जीवों पर अनुग्रह करना मेरा कार्य है। मैं जगत की वृद्धि करने वाला होने के कारण 'ब्रह्म' कहलाता हूं। सर्वत्र स्थित होने के कारण मैं ही सबकी आत्मा हूं। सर्ग से लेकर अनुग्रह तक जो जगत संबंधी पांच कृत्य हैं, वे सदा ही मेरे हैं।

मेरी ब्रह्मरूपता का बोध कराने के लिए पहले लिंग प्रकट हुआ। फिर अज्ञात ईश्वरत्व का साक्षात्कार कराने के लिए मैं जगदीश्वर रूप में प्रकट हो गया। मेरा सकल रूप मेरे ईशत्व का और निष्कल रूप मेरे ब्रह्मस्वरूप का बोध कराता है। मेरा लिंग मेरा स्वरूप है और मेरे सामीप्य की प्राप्ति कराने वाला है।

मेरे लिंग की स्थापना करने वाले मेरे उपासक को मेरी समानता की प्राप्ति हो जाती है तथा मेरे साथ एकत्व का अनुभव करता हुआ संसार सागर से मुक्त हो जाता है। वह जीते जी परमानंद की अनुभूति करता हुआ, शरीर का त्याग कर शिवलोक को प्राप्त होता है अर्थात मेरा ही स्वरूप हो जाता है। मूर्ति की स्थापना लिंग की अपेक्षा गौण है। यह उन भक्तों के लिए है, जो शिवतत्व के अनुशीलन में सक्षम नहीं हैं।

दसवां अध्याय

प्रणव एवं पंचाक्षर मंत्र की महत्ता

ब्रह्मा और विष्णु ने पूछा—प्रभो! सृष्टि आदि पांच कृत्यों के लक्षण क्या हैं? यह हम दोनों को बताइए।

भगवान शिव बोले—मेरे कर्तव्यों को समझना अत्यंत गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम्हें बता रहा हूं। 'सृष्टि', 'पालन', 'संहार', 'तिरोभाव' और 'अनुग्रह' मेरे जगत संबंधी पांच कार्य हैं, जो नित्य सिद्ध हैं। संसार की रचना का आरंभ सृष्टि कहलाता है। मुझसे पालित होकर सृष्टि का सुस्थिर रहना उसका पालन है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणों के उत्क्रमण को 'तिरोभाव' कहते हैं। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' अर्थात 'मोक्ष' है। ये मेरे पांच कृत्य हैं। सृष्टि आदि चार कृत्य संसार का विस्तार करने वाले हैं। पांचवां कृत्य मोक्ष का है। मेरे भक्तजन इन पांचों कार्यों को पांच भूतों में देखते हैं। सृष्टि धरती पर, स्थिति जल में, संहार अग्नि में, तिरोभाव वायु में और अनुग्रह आकाश में स्थित है। पृथ्वी से सबकी सृष्टि होती है। जल से वृद्धि होती है। आग सबको जला देती है। वायु एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है। इन पांचों कृत्यों का भार वहन करने के लिए ही मेरे पांच मुख हैं।

चार दिशाओं में चार मुख और इनके बीच में पांचवां मुख है। पुत्रो, तुम दोनों ने मुझे तपस्या से प्रसन्न कर सृष्टि और पालन दो कार्य प्राप्त किए हैं। इसी प्रकार मेरी 'विभूतिस्वरूप रुद्र' और 'महेश्वर' ने संहार और तिरोभाव कार्य मुझसे प्राप्त किए हैं परंतु मोक्ष मैं स्वयं प्रदान करता हूं। मैंने पूर्वकाल में अपने स्वरूपभूत मंत्र का उपदेश किया है, जो ओंकार रूप में प्रसिद्ध है। यह मंगलकारी मंत्र है। सर्वप्रथम मेरे मुख से ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ जो मेरे स्वरूप का बोध कराता है। इसका स्मरण निरंतर करने से मेरा ही सदा स्मरण होता है।

मेरे उत्तरवर्ती मुख से अकार का, पश्चिम मुख से उकार का, दक्षिण मुख से मकार का, पूर्ववर्ती मुख से बिंदु का तथा मध्यवर्ती मुख से नाद का प्रकटीकरण हुआ है। इस प्रकार इन पांच अवयवों से ओंकार का विस्तार हुआ है। इन पांचों अवयवों के एकाकार होने पर प्रणव 'ॐ' नामक अक्षर उत्पन्न हुआ। जगत में उत्पन्न सभी स्त्री-पुरुष इस प्रणव-मंत्र में व्याप्त हैं। यह मंत्र शिव-शक्ति दोनों का बोधक है। इसी से पंचाक्षर मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' की उत्पत्ति हुई है। यह मेरे साकार रूप का बोधक है।

इस पंचाक्षर-मंत्र से मातृका वर्ण प्रकट हुए हैं, जो पांच भेद वाले हैं। इसी से शिरोमंत्र सहित त्रिपदा गायत्री का प्राकट्य हुआ है। इस गायत्री से संपूर्ण वेद प्रकट हुए और उन वेदों से करोड़ों मंत्र निकले हैं। उन मंत्रों से विभिन्न कार्यों की सिद्धि होती है। इस पंचाक्षर प्रणव मंत्र से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इस मंत्र से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

नंदिकेश्वर कहते हैं—जगदंबा उमा गौरी पार्वती के साथ बैठे महादेव ने उत्तरवर्ती मुख बैठे

ब्रह्मा और विष्णु को परदा करने वाले वस्त्र से आच्छादित कर उनके मस्तक पर अपना हाथ रखकर धीरे-धीरे उच्चारण कर उन्हें उत्तम मंत्र का उपदेश दिया। तीन बार मंत्र का उच्चारण करके भगवान शिव ने उन्हें शिष्यों के रूप में दीक्षा दी। गुरुदक्षिणा के रूप में दोनों ने अपने आपको समर्पित करते हुए दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो, जगद्‌गुरु भगवान शिव की इस प्रकार स्तुति करने लगे।

ब्रह्मा-विष्णु बोले—प्रभो! आपके साकार और निराकार दो रूप हैं। आप तेज से प्रकाशित हैं, आप सबके स्वामी हैं, आप सर्वात्मा को नमस्कार है। आप प्रणव मंत्र के बताने वाले हैं तथा आप ही प्रणव लिंग वाले हैं। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह आदि आपके ही कार्य हैं। आपके पांच मुख हैं, आप ही परमेश्वर हैं, आप सबकी आत्मा हैं, ब्रह्म हैं। आपके गुण और शक्तियां अनंत हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं।

इन पंक्तियों से स्तुति करते हुए गुरु महेश्वर को प्रसन्न कर ब्रह्मा और विष्णु ने उनके चरणों में प्रणाम किया।

महेश्वर बोले—आर्द्रा नक्षत्र में चतुर्दशी को यदि इस प्रणव मंत्र का जप किया जाए तो यह अक्षय फल देने वाला है। सूर्य की संक्रांति में महा आर्द्रा नक्षत्र में एक बार किया प्रणव जप करोड़ों गुना जप का फल देता है। 'मृगशिरा' नक्षत्र का अंतिम भाग तथा 'पुनर्वसु' का शुरू का भाग पूजा, होम और तर्पण के लिए सदा आर्द्रा के समान ही है। मेरे लिंग का दर्शन प्रातः काल अर्थात मध्यान्ह से पूर्वकाल में करना चाहिए। मेरे दर्शन-पूजन के लिए चतुर्दशी तिथि उत्तम है। पूजा करने वालों के लिए मेरी मूर्ति और लिंग दोनों समान हैं। फिर भी मूर्ति की अपेक्षा लिंग का स्थान ऊंचा है। इसलिए मनुष्यों को शिवलिंग का ही पूजन करना चाहिए। लिंग का 'ॐ' मंत्र से और मूर्ति का पंचाक्षर मंत्र से पूजन करना चाहिए। शिवलिंग की स्वयं स्थापना करके या दूसरों से स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यों से पूजा करने से मेरा पद सुलभ होता है। इस प्रकार दोनों शिष्यों को उपदेश देकर भगवान शिव अंतर्धान हो गए।

ग्यारहवां अध्याय

शिवलिंग की स्थापना और पूजन-विधि का वर्णन

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! शिवलिंग की स्थापना कैसे करनी चाहिए तथा उसकी पूजा कैसे, किस काल में तथा किस द्रव्य द्वारा करनी चाहिए?

सूत जी ने कहा—महर्षियो! मैं तुम लोगों के लिए इस विषय का वर्णन करता हूं, इसे ध्यान से सुनो और समझो। अनुकूल एवं शुभ समय में किसी पवित्र तीर्थ में, नदी के तट पर, ऐसी जगह पर शिवलिंग की स्थापना करनी चाहिए जहां रोज पूजन कर सके। पार्थिव द्रव्य से, जलमय द्रव्य से अथवा तेजस द्रव्य से पूजन करने से उपासक को पूजन का पूरा फल प्राप्त होता है। शुभ लक्षणों में पूजा करने पर यह तुरंत फल देने वाला है। चल प्रतिष्ठा के लिए छोटा शिवलिंग श्रेष्ठ माना जाता है। अचल प्रतिष्ठा हेतु बड़ा शिवलिंग अच्छा रहता है। शिवलिंग की पीठ सहित स्थापना करनी चाहिए। शिवलिंग की पीठ गोल, चौकोर, त्रिकोण अथवा खाट के पाए की भांति ऊपर नीचे मोटा और बीच में पतला होना चाहिए। ऐसा लिंग-पीठ महान फल देने वाला होता है। पहले मिट्टी अथवा लोहे से शिवलिंग का निर्माण करना चाहिए। जिस द्रव्य से लिंग का निर्माण हो उसी से उसका पीठ बनाना चाहिए। यही अचल प्रतिष्ठा वाले शिवलिंग की विशेषता है। चल प्रतिष्ठा वाले शिवलिंग में लिंग व प्रतिष्ठा एक ही तत्व से बनानी चाहिए। लिंग की लंबाई स्थापना करने वाले मनुष्य के बारह अंगुल के बराबर होनी चाहिए। इससे कम होने पर फल भी कम प्राप्त होता है। परंतु बारह अंगुल से लंबाई अधिक भी हो सकती है। चल लिंग में लंबाई स्थापना करने वाले के एक अंगुल के बराबर होनी चाहिए उससे कम नहीं। यजमान को चाहिए कि पहले वह शिल्प शास्त्र के अनुसार देवालय बनवाए तथा उसमें सभी देवगणों की मूर्ति स्थापित करे। देवालय का गर्भगृह सुंदर, सुदृढ़ और स्वच्छ होना चाहिए। उसमें पूर्व और पश्चिम में दो मुख्य द्वार हों। जहां शिवलिंग की स्थापना करनी हो उस स्थान के गर्त में नीलम, लाल वैदूर्य, श्याम, मरकत, मोती, मूंगा, गोमेद और हीरा इन नौ रत्नों को वैदिक मंत्रों के साथ छोड़े। पांच वैदिक मंत्रों द्वारा पांच स्थानों से पूजन करके अग्नि में आहुति दें और परिवार सहित मेरी पूजा करके आचार्य को धन से तथा भाई-बंधुओं को मनचाही वस्तु से संतुष्ट करें। याचकों को सुवर्ण, गृह एवं भू-संपत्ति तथा गाय आदि प्रदान करें।

स्थावर जंगम सभी जीवों को यत्नपूर्वक संतुष्ट कर एक गड्ढे में सुवर्ण तथा नौ प्रकार के रत्न भरकर वैदिक मंत्रों का उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेव जी का ध्यान करें। तत्पश्चात नाद घोष से युक्त महामंत्र ओंकार (ॐ) का उच्चारण करके गड्ढे में पीठयुक्त शिवलिंग की स्थापना करें। वहां परम सुंदर मूर्ति की भी स्थापना करनी चाहिए तथा भूमि-संस्कार की विधि जिस प्रकार शिवलिंग के लिए की गई है, उसी प्रकार मूर्ति की प्रतिष्ठा भी करनी चाहिए। मूर्ति की स्थापना अर्थात प्रतिष्ठा पंचाक्षर मंत्र से करनी चाहिए। मूर्ति को बाहर

से भी लिया जा सकता है, परंतु वह साधु पुरुषों द्वारा पूजित हो। इस प्रकार शिवलिंग व मूर्ति द्वारा की गई महादेव जी की पूजा शिवपद प्रदान करने वाली है। स्थावर और जंगम से लिंग भी दो तरह का हो गया है। वृक्ष लता आदि को 'स्थावर लिंग' कहते हैं और कृमि कीट आदि को 'जंगम लिंग'। स्थावर लिंग को सींचना चाहिए तथा जंगम लिंग को आहार एवं जल देकर तृप्त करना चाहिए। यों चराचर जीवों को भगवान शंकर का प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिए।

इस तरह महालिंग की स्थापना करके विविध उपचारों द्वारा उसका रोज पूजन करें तथा देवालय के पास ध्वजारोहण करें। शिवलिंग साक्षात शिव का पद प्रदान करने वाला है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्यांग, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन ये सोलह उपचार हैं। इनके द्वारा पूजन करें। इस तरह किया गया भगवान शिव का पूजन शिवपद की प्राप्ति कराने वाला है। सभी शिवलिंगों की स्थापना के उपरांत, चाहे वे मनुष्य द्वारा स्थापित, ऋषियों या देवताओं द्वारा अथवा अपने आप प्रकट हुए हों, सभी का उपर्युक्त विधि से पूजन करना चाहिए, तभी फल प्राप्त होता है। उसकी परिक्रमा और नमस्कार करने से शिवपद की प्राप्ति होती है। शिवलिंग का नियमपूर्वक दर्शन भी कल्याणकारी होता है। मिट्टी, आटा, गाय के गोबर, फूल, कनेर पुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्न से शिवलिंग बनाकर प्रतिदिन पूजन करें तथा प्रतिदिन दस हजार प्रणव-मंत्रों का जाप करें अथवा दोनों संध्याओं के समय एक सहस्र प्रणव मंत्रों का जाप करें। इससे भी शिव पद की प्राप्ति होती है।

जपकाल में प्रणव मंत्र का उच्चारण मन की शुद्धि करता है। नाद और बिंदु से युक्त ओंकार को कुछ विद्वान 'समान प्रणव' कहते हैं। प्रतिदिन दस हजार पंचाक्षर मंत्र का जाप अथवा दोनों संध्याओं को एक सहस्र मंत्र का जाप शिव पद की प्राप्ति कराने वाला है। सभी ब्राह्मणों के लिए प्रणव से युक्त पंचाक्षर मंत्र अति फलदायक है। कलश से किया स्नान, मंत्र की दीक्षा, मातृकाओं का न्यास, सत्य से पवित्र अंतःकरण, ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु, सभी को उत्तम माना गया है। पंचाक्षर मंत्र का पांच करोड़ जाप करने से मनुष्य भगवान शिव के समान हो जाता है। एक, दो, तीन, अथवा चार करोड़ जाप करके मनुष्य क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वर का पद प्राप्त कर लेता है। यदि एक हजार दिनों तक प्रतिदिन एक सहस्र जाप पंचाक्षर मंत्रों का किया जाए और प्रतिदिन ब्राह्मण को भोजन कराया जाए तो इससे अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है।

ब्राह्मण को प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्री मंत्र का जाप करना चाहिए क्योंकि गायत्री मंत्र शिव पद की प्राप्ति कराता है। वेदमंत्रों और वैदिक सूक्तियों का भी नियम से जाप करें। अन्य मंत्रों में जितने अक्षर हैं उनके उतने लाख जाप करें। इस प्रकार यथाशक्ति जाप करने वाला मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। अपनी पसंद से कोई एक मंत्र अपनाकर प्रतिदिन उसका जाप करें अथवा ॐ का नित्य एक सहस्र जाप करें। ऐसा करने से संपूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है।

जो मनुष्य भगवान शिव के लिए फुलवाड़ी या बगीचे लगाता है तथा शिव मंदिर में

झाड़ने-बुहारने का सेवा कार्य करता है ऐसे शिवभक्त को पुण्यकर्म की प्राप्ति होती है, अंत समय में भगवान शिव उसे मोक्ष प्रदान करते हैं। काशी में निवास करने से भी योग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए आमरण भगवान शिव के क्षेत्र में निवास करना चाहिए। उस क्षेत्र में स्थित बावड़ी, तालाब, कुंआ और पोखर को शिवलिंग समझकर वहां स्नान, दान और जाप करके मनुष्य भगवान शिव को प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य शिव के क्षेत्र में अपने किसी मृत संबंधी का दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा अपने पितरों को पिण्ड देता है, वह तत्काल सभी पापों से मुक्त हो जाता है और अंत में शिवपद प्राप्त करता है। लोक में अपने वर्ण के अनुसार आचरण करने व सदाचार का पालन करने से शिव पद की प्राप्ति होती है। निष्काम भाव से किया गया कार्य अभीष्ट फल देने वाला एवं शिवपद प्रदान करने वाला होता है।

दिन के प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन विभाग होते हैं। इनमें सभी को एक-एक प्रकार के कर्म का प्रतिपादन करना चाहिए। प्रातःकाल रोजाना दैनिक शास्त्र कर्म, मध्याह्न सकाम कर्म तथा सायंकाल शांति कर्म के लिए पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार रात्रि में चार प्रहर होते हैं, उनमें से बीच के दो प्रहर निशीथकाल कहलाते हैं—इसी काल में पूजा करनी चाहिए, क्योंकि यह पूजा अभीष्ट फल देने वाली है। कलियुग में कर्म द्वारा ही फल की सिद्धि होगी। इस प्रकार विधिपूर्वक और समयानुसार भगवान शिव का पूजन करने वाले मनुष्य को अपने कर्मों का पूरा फल मिलता है।

ऋषियों ने कहा—सूत जी! ऐसे पुण्य क्षेत्र कौन-कौन से हैं? जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री-पुरुष शिवपद को प्राप्त कर लें? कृपया कर हमें बताइए।

बारहवां अध्याय

मोक्षदायक पुण्य क्षेत्रों का वर्णन

सूत जी बोले—हे विद्वान और बुद्धिमान महर्षियो! मैं मोक्ष देने वाले शिवक्षेत्रों का वर्णन कर रहा हूं। पर्वत, वन और काननों सहित इस पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है। भगवान शिव की इच्छा से पृथ्वी ने सभी को धारण किया है। भगवान शिव ने भूतल पर विभिन्न स्थानों पर वहां के प्राणियों को मोक्ष देने के लिए शिव क्षेत्र का निर्माण किया है। कुछ क्षेत्रों को देवताओं और ऋषियों ने अपना निवास स्थान बनाया है। इसलिए उसमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है। बहुत से तीर्थ ऐसे हैं, जो स्वयं प्रकट हुए हैं। तीर्थ क्षेत्र में जाने पर मनुष्य को सदा स्नान, दान और जाप करना चाहिए अन्यथा मनुष्य रोग, गरीबी तथा मूकता आदि दोषों का भागी हो जाता है। जो मनुष्य अपने देश में मृत्यु को प्राप्त होता है, वह इस पुण्य के फल से दुबारा मनुष्य योनि प्राप्त करता है। परंतु पापी मनुष्य दुर्गति को ही प्राप्त करता है। हे ब्राह्मणो! पुण्यक्षेत्र में किया गया पाप कर्म, अधिक दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्य क्षेत्र में निवास करते समय पाप कर्म करने से बचना चाहिए।

सिंधु और सतलुज नदी के तट पर बहुत से पुण्य क्षेत्र हैं। सरस्वती नदी परम पवित्र और साठ मुखवाली है अर्थात उसकी साठ धाराएं हैं। इन धाराओं के तट पर निवास करने से परम पद की प्राप्ति होती है। हिमालय से निकली हुई पुण्य सलिला गंगा सौ मुख वाली नदी है। इसके तट पर काशी, प्रयाग आदि पुण्य क्षेत्र हैं। मकर राशि में सूर्य होने पर गंगा की तटभूमि अधिक प्रशस्त एवं पुण्यदायक हो जाती है। सोनभद्र नदी की दस धाराएं हैं। बृहस्पति के मकर राशि में आने पर यह अत्यंत पवित्र तथा अभीष्ट फल देने वाली है। इस समय यहां स्नान और उपवास करने से विनायक पद की प्राप्ति होती है। पुण्य सलिला महानदी नर्मदा के चौबीस मुख हैं। इसमें स्नान करके तट पर निवास करने से मनुष्य को वैष्णव पद की प्राप्ति होती है। तमसा के बारह तथा रेवा के दस मुख हैं। परम पुण्यमयी गोदावरी के इक्कीस मुख हैं। यह ब्रह्महत्या तथा गोवध पाप का नाश करने वाली एवं रुद्रलोक देने वाली है। कृष्णवेणी नदी समस्त पापों का नाश करने वाली है। इसके अठारह मुख हैं तथा यह विष्णुलोक प्रदान करने वाली है। तुंगभद्रा दस मुखी है एवं ब्रह्मलोक देने वाली है। सुवर्ण मुखरी के नौ मुख हैं। ब्रह्मलोक से लौटे जीव इसी नदी के तट पर जन्म लेते हैं। सरस्वती नदी, पंपा सरोवर, कन्याकुमारी अंतरीप तथा शुभकारक श्वेत नदी सभी पुण्य क्षेत्र हैं। इनके तट पर निवास करने से इंद्रलोक की प्राप्ति होती है। महानदी कावेरी परम पुण्यमयी है। इसके सत्ताईस मुख हैं। यह संपूर्ण अभीष्ट वस्तुओं को देने वाली है। इसके तट ब्रह्मा, विष्णु का पद देने वाले हैं। कावेरी के जो तट शैव क्षेत्र के अंतर्गत हैं, वे अभीष्ट फल तथा शिवलोक प्रदान करने वाले हैं।

नैमिषारण्य तथा बदरिकाश्रम में सूर्य और बृहस्पति के मेष राशि में आने पर स्नान और

पूजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। सिंह और कर्क राशि में सूर्य की संक्रांति होने पर सिंधु नदी में किया स्नान तथा केदार तीर्थ के जल का पान एवं स्नान ज्ञानदायक माना जाता है। बृहस्पति के सिंह राशि में स्थित होने पर भाद्रमास में गोदावरी के जल में स्नान करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा स्वयं भगवान शिव ने कहा था। सूर्य और बृहस्पति के कन्या राशि में स्थित होने पर यमुना और सोनभद्र में स्नान से धर्मराज और गणेश लोक में महान भोग की प्राप्ति होती है, ऐसी महर्षियों की मान्यता है। सूर्य और बृहस्पति के तुला राशि में होने पर कावेरी नदी में स्नान करने से भगवान विष्णु के वचन की महिमा से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष माह में, सूर्य और बृहस्पति के वृश्चिक राशि में आने पर, नर्मदा में स्नान करने से विष्णु पद की प्राप्ति होती है। सूर्य और बृहस्पति के धनु राशि में होने पर सुवर्ण मुखरी नदी में किया स्नान शिवलोक प्रदान करने वाला है। मकर राशि में सूर्य और बृहस्पति के माघ मास में होने पर गंगाजी में किया गया स्नान शिवलोक प्रदान कराने वाला है। शिवलोक के पश्चात ब्रह्मा और विष्णु के स्थानों में सुख भोगकर अंत में मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है। माघ मास में सूर्य के कुंभ राशि में होने पर फाल्गुन मास में गंगा तट पर किया श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदक दान पिता और नाना, दोनों कुलों के पितरों की अनेकों पीढ़ियों का उद्धार करने वाला है। गंगा व कावेरी नदी का आश्रय लेकर तीर्थवास करने से पाप का नाश हो जाता है।

ताम्रपर्णी और वेगवती नदियां ब्रह्मलोक की प्राप्ति रूप फल देने वाली हैं। इनके तट पर स्वर्गदायक क्षेत्र हैं। इन नदियों के मध्य में बहुत से पुण्य क्षेत्र हैं। यहां निवास करने वाला मनुष्य अभीष्ट फल का भागी होता है। सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्‌भावना के साथ मन में दयाभाव रखते हुए विद्वान पुरुष को तीर्थ में निवास करना चाहिए अन्यथा उसे फल नहीं मिलता। पुण्य क्षेत्र में जीवन बिताने का निश्चय करने पर तथा वास करने पर पहले का सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाएगा। क्योंकि पुण्य को ऐश्वर्यदायक कहा जाता है। हे ब्राह्मणो! तीर्थ में वास करने पर उत्पन्न पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक—सभी पापों का नाश कर देता है। तीर्थ में किया मानसिक पाप कई कल्पों तक पीछा नहीं छोड़ता, यह केवल ध्यान से ही नष्ट होता है। 'वाचिक' पाप जाप से तथा 'कायिक' पाप शरीर को सुखाने जैसे कठोर तप से नष्ट होता है। अतः सुख चाहने वाले पुरुष को देवताओं की पूजा करते हुए और ब्राह्मणों को दान देते हुए, पाप से बचकर ही तीर्थ में निवास करना चाहिए।

तेरहवां अध्याय

सदाचार, संध्यावंदन, प्रणव, गायत्री जाप एवं अग्निहोत्र की विधि तथा महिमा

ऋषियों ने कहा—सूत जी! आप हमें वह सदाचार सुनाइए जिससे विद्वान पुरुष पुण्य लोकों पर विजय पाता है। स्वर्ग प्रदान करने वाले धर्ममय तथा नरक का कष्ट देने वाले अधर्ममय आचारों का वर्णन कीजिए।

सूत जी बोले—सदाचार का पालन करने वाला मनुष्य ही 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी है। वेदों के अनुसार आचार का पालन करने वाले एवं वेद के अभ्यासी ब्राह्मण को 'विप्र' कहते हैं। सदाचार, वेदाचार तथा विद्या गुणों से युक्त होने पर उसे 'द्विज' कहते हैं। वेदों का कम आचार तथा कम अध्ययन करने वाले एवं राजा के पुरोहित अथवा सेवक ब्राह्मण को 'क्षत्रिय ब्राह्मण' कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि या वाणिज्य कर्म करने वाला है तथा ब्राह्मणोचित आचार का भी पालन करता है वह 'वैश्य ब्राह्मण' है तथा स्वयं खेत जोतने वाला 'शूद्र-ब्राह्मण' कहलाता है। जो दूसरों के दोष देखने वाला तथा परद्रोही है उसे 'चाण्डाल-द्विज' कहते हैं। क्षत्रियों में जो पृथ्वी का पालन करता है, वह राजा है तथा अन्य मनुष्य राजत्वहीन क्षत्रिय माने जाते हैं। जो धान्य आदि वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता है, वह 'वैश्य' कहलाता है। दूसरों को 'वणिक' कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सेवा में लगा रहता है 'शूद्र' कहलाता है। जो शूद्र हल जोतता है, उसे 'वृषल' समझना चाहिए। इन सभी वर्णों के मनुष्यों को चाहिए कि वे ब्रह्ममुहूर्त में उठकर पूर्व की ओर मुख करके देवताओं का, धर्म का, अर्थ का, उसकी प्राप्ति के लिए उठाए जाने वाले क्लेशों का तथा आय और व्यय का चिंतन करें।

रात के अंतिम प्रहर के मध्य भाग में मनुष्य को उठकर मल-मूत्र त्याग करना चाहिए। घर से बाहर शरीर को ढककर जाकर उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्र का त्याग करें। जल, अग्नि, ब्राह्मण तथा देवताओं का स्थान बचाकर बैठें। उठने पर उस ओर न देखें। हाथ-पैरों की शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करें। किसी वृक्ष के पत्ते से दातुन करें। दातुन करते समय तर्जनी अंगुली का उपयोग नहीं करें। तदंतर जल-संबंधी देवताओं को नमस्कार कर मंत्रपाठ करते हुए जलाशय में स्नान करें। यदि कंठ तक या कमर तक पानी में खड़े होने की शक्ति न हो तो घुटने तक जल में खड़े होकर ऊपर जल छिड़ककर मंत्रोच्चारण करते हुए स्नान कर तर्पण करें। इसके उपरांत वस्त्र धारण कर उत्तरीय भी धारण करें। नदी अथवा तीर्थ में स्नान करने पर उतारे हुए वस्त्र वहां न धोएं। उसे किसी कुंए, बावड़ी अथवा घर ले जाकर धोएं। कपड़ों को निचोड़ने से जो जल गिरता है, वह एक श्रेणी के पितरों की तृप्ति के लिए होता है। इसके बाद जाबालि उपनिषद में बताए गए मंत्र से भस्म लेकर लगाएं। इस विधि का पालन करने से पूर्व यदि भस्म गिर जाए तो गिराने वाला मनुष्य नरक में जाता है। 'आपो हिष्ठा' मंत्र से पाप

शांति के लिए सिर पर जल छिड़ककर 'यस्य क्षयाय' मंत्र पढ़कर पैर पर जल छिड़कें। 'आपो हिष्ठा' में तीन ऋचाएं हैं। पहली ऋचा का पाठ कर पैर, मस्तक और हृदय में जल छिड़कें। दूसरी ऋचा का पाठ कर मस्तक, हृदय और पैर पर जल छिड़कें तथा तीसरी ऋचा का पाठ करके हृदय, मस्तक और पैर पर जल छिड़कें। इस प्रकार के स्नान को 'मंत्र स्नान' कहते हैं। किसी अपवित्र वस्तु से स्पर्श हो जाने पर, स्वास्थ्य ठीक न रहने पर, यात्रा में या जल उपलब्ध न होने की दशा में, मंत्र स्नान करना चाहिए।

प्रातःकाल की संध्योपासना में 'गायत्री मंत्र' का जाप करके तीन बार सूर्य को अर्घ्य दें। मध्यान्ह में गायत्री मंत्र का उच्चारण कर सूर्य को एक अर्घ्य देना चाहिए। सायंकाल में पश्चिम की ओर मुख करके पृथ्वी पर ही सूर्य को अर्घ्य दें। सायंकाल में सूर्यास्त से दो घड़ी पहले की गई संध्या का कोई महत्व नहीं होता। ठीक समय पर ही संध्या करनी चाहिए। यदि संध्योपासना किए बिना एक दिन बीत जाए तो उसके प्रायश्चित हेतु अगली संध्या के समय सौ गायत्री मंत्र का जाप करें। दस दिन छूटने पर एक लाख तथा एक माह छूटने पर अपना 'उपनयन संस्कार' कराएं।

अर्थसिद्धि के लिए ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, चंद्रमा और यम व अन्य देवताओं का शुद्ध जल से तर्पण करें। तीर्थ के दक्षिण में, मंत्रालय में, देवालय में अथवा घर में आसन पर बैठकर अपनी बुद्धि को स्थिर कर देवताओं को नमस्कार कर प्रणव मंत्र का जाप करने के पश्चात गायत्री मंत्र का जाप करें। प्रणव के 'अ', 'उ' और 'म' तीनों अक्षरों में जीव और ब्रह्मा की एकता का प्रतिपादन होता है। अतः प्रणव मंत्र का जाप करते समय मन में यह भावना होनी चाहिए कि हम तीनों लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा, पालन करने वाले विष्णु तथा संहार करने वाले रुद्र की उपासना कर रहे हैं। यह ब्रह्मस्वरूप ओंकार हमारी कर्मेंद्रियों, ज्ञानेंद्रियों, मन की वृत्तियों तथा बुद्धिवृत्तियों को सदा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले धर्म एवं ज्ञान की ओर प्रेरित करें। जो मनुष्य प्रणव मंत्र के अर्थ का चिंतन करते हुए इसका जाप करते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्मा को प्राप्त करते हैं तथा जो मनुष्य बिना अर्थ जाने प्रणव मंत्र का जाप करते हैं, उनको 'ब्राह्मणत्व' की पूर्ति होती है। इस हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहस्र गायत्री-मंत्र का जाप करना चाहिए। मध्याह्न में सौ बार तथा सायं अट्ठाईस बार जाप करें। अन्य वर्णों के मनुष्यों को सामर्थ्य के अनुसार जाप करना चाहिए।

हमारे शरीर के भीतर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार नामक छः चक्र हैं। इन चक्रों में क्रमशः विद्येश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा और परमेश्वर स्थित हैं। सद्भावनापूर्वक श्वास के साथ 'सोऽहं' का जाप करें। सहस्र बार किया गया जाप ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला है। सौ बार किए जाप से इंद्र पद की प्राप्ति होती है। आत्मरक्षा के लिए जो मनुष्य अल्प मात्रा में इसका जाप करता है, वह ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है। बारह लाख गायत्री का जाप करने वाला मनुष्य 'ब्राह्मण' कहा जाता है। जिस ब्राह्मण ने एक लाख गायत्री का भी जप न किया हो उसे वैदिक कार्यों में न लगाएं। यदि एक दिन उल्लंघन हो जाए तो अगले दिन उसके बदले में उतने अधिक मंत्रों का जाप करना चाहिए। ऐसा करने से दोषों की शांति होती है। धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है, अर्थ से भोग सुलभ होता है। भोग से

वैराग्य की संभावना होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धन से भोग प्राप्त होता है, उससे भोगों के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य धर्म से धन पाता है एवं तपस्याओं से दिव्य रूप प्राप्त करता है। कामनाओं का त्याग करने से अंतःकरण की शुद्धि होती है, उस शुद्धि से ज्ञान का उदय होता है।

सतयुग में 'तप' को तथा कलियुग में 'दान' को धर्म का अच्छा साधन माना गया है। सतयुग में 'ध्यान' से, त्रेता में 'तपस्या' से और द्वापर में 'यज्ञ' करने से ज्ञान की सिद्धि होती है। परंतु कलियुग में प्रतिमा की पूजा से ज्ञान लाभ होता है। अधर्म, हिंसात्मक और दुख देने वाला है। धर्म से सुख व अभ्युदय की प्राप्ति होती है। दुराचार से दुख तथा सदाचार से सुख मिलता है। अतः भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए धर्म का उपार्जन करना चाहिए। किसी ब्राह्मण को सौ वर्ष के जीवन निर्वाह की सामग्री देने पर ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। एक सहस्र चांद्रायण व्रत का अनुष्ठान ब्रह्मलोक दायक माना जाता है। दान देने वाला पुरुष जिस देवता को सामने रखकर दान करता है अर्थात जिस देवता को वह दान द्वारा प्रसन्न करना चाहता है, उसी देवता का लोक उसे प्राप्त होता है। धनहीन पुरुष तपस्या कर अक्षय सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

ब्राह्मण को दान ग्रहण कर तथा यज्ञ करके धन का अर्जन करना चाहिए। क्षत्रिय बाहुबल से तथा वैश्य कृषि एवं गोरक्षा से धन का उपार्जन करें। इस प्रकार न्याय से उपार्जित धन को दान करने से दाता को ज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है एवं ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति सुलभ होती है।

गृहस्थ मनुष्य को धन-धान्य आदि सभी वस्तुओं का दान करना चाहिए। जिसके अन्न को खाकर मनुष्य कथा श्रवण तथा सद्कर्म का पालन करता है तो उसका आधा फल दाता को मिलता है। दान लेने वाले मनुष्य को दान में प्राप्त वस्तु का दान तथा तपस्या द्वारा पाप की शुद्धि करनी चाहिए। उसे अपने धन के तीन भाग करने चाहिए—एक धर्म के लिए, दूसरा वृद्धि के लिए एवं तीसरा उपभोग के लिए। धर्म के लिए रखे धन से नित्य, नैमित्तिक और इच्छित कार्य करें। वृद्धि के लिए रखे धन से ऐसा व्यापार करें, जिससे धन की प्राप्ति हो तथा उपभोग के धन से पवित्र भोग भोगें। खेती से प्राप्त धन का दसवां भाग दान कर दें। इससे पाप की शुद्धि होती है। वृद्धि के लिए किए गए व्यापार से प्राप्त धन का छठा भाग दान देना चाहिए।

विद्वान को चाहिए कि वह दूसरों के दोषों का बखान न करे। ब्राह्मण भी दोषवश दूसरों के सुने या देखे हुए छिद्र को कभी प्रकट न करे। विद्वान पुरुष ऐसी बात न कहे, जो समस्त प्राणियों के हृदय में रोष पैदा करने वाली हो। दोनों संध्याओं के समय अग्नि को विधिपूर्वक दी हुई आहुति से संतुष्ट करे। चावल, धान्य, घी, फल, कंद तथा हविष्य के द्वारा स्थालीपाक बनाए तथा यथोचित रीति से सूर्य और अग्नि को अर्पित करे। यदि दोनों समय अग्निहोत्र करने में असमर्थ हो तो संध्या के समय जाप और सूर्य की वंदना कर ले। आत्मज्ञान की इच्छा रखने वाले तथा धनी पुरुषों को इसी प्रकार उपासना करनी चाहिए। जो मनुष्य सदा ब्रह्मयज्ञ करते हैं, देवताओं की पूजा, अग्निपूजा और गुरुपूजा प्रतिदिन करते हैं तथा ब्राह्मणों को

भोजन तथा दक्षिणा देते हैं, वे स्वर्गलोक के भागी होते हैं।

चौदहवां अध्याय

अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ का वर्णन

ऋषियों ने कहा—प्रभो! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ का वर्णन करके हमें कृतार्थ करें।

सूत जी बोले—महर्षियो! गृहस्थ पुरुषों के लिए प्रातः और सायंकाल अग्नि में दो चावल और द्रव्य की आहुति ही अग्नियज्ञ है। ब्रह्मचारियों के लिए समिधा का देना ही अग्नियज्ञ है अर्थात अग्नि में सामग्री की आहुति देना उनके लिए अग्नियज्ञ है। द्विजों का जब तक विवाह न हो जाए, उनके लिए अग्नि में समिधा की आहुति, व्रत तथा जाप करना ही अग्नियज्ञ है। द्विजो! जिसने अग्नि को विसर्जित कर उसे अपनी आत्मा में स्थापित कर लिया है, ऐसे वानप्रस्थियों और संन्यासियों के लिए यही अग्नियज्ञ है कि वे समय पर हितकर और पवित्र अन्न का भोजन कर लें। ब्राह्मणो! सायंकाल अग्नि के लिए दी आहुति से संपत्ति की प्राप्ति होती है तथा प्रातःकाल सूर्यदेव को दी आहुति से आयु की वृद्धि होती है। दिन में अग्निदेव सूर्य में हो प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्य को दी आहुति अग्नियज्ञ के समान ही होती है।

इंद्र आदि समस्त देवताओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से जो आहुति अग्नि में दी जाती है, वह देवयज्ञ कहलाती है। लौकिक अग्नि में प्रतिष्ठित जो संस्कार-निमित्तिक हवन कर्म है, वह देवयज्ञ है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नियम से विधिपूर्वक किया गया यज्ञ ही देवयज्ञ है। वेदों के नित्य अध्ययन और स्वाध्याय को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। मनुष्य को देवताओं की तृप्ति के लिए प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ करना चाहिए। प्रातःकाल और सायंकाल को ही इसे किया जा सकता है।

अग्नि के बिना देवयज्ञ कैसे होता है? इसे श्रद्धा और आदर से सुनो। सृष्टि के आरंभ में सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ महादेव शिवजी ने समस्त लोकों के उपकार के लिए वारों की कल्पना की। भगवान शिव संसाररूपी रोग को दूर करने के लिए वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधियों के औषध हैं। भगवान शिव ने सबसे पहले अपने वार की रचना की जो आरोग्य प्रदान करने वाला है। तत्पश्चात अपनी मायाशक्ति का वार बनाया, जो संपत्ति प्रदान करने वाला है। जन्मकाल में दुर्गतिग्रस्त बालक की रक्षा के लिए कुमार के वार की कल्पना की। आलस्य और पाप की निवृत्ति तथा समस्त लोकों का हित करने की इच्छा से लोकरक्षक भगवान विष्णु का वार बनाया। इसके बाद शिवजी ने पुष्टि और रक्षा के लिए आयुःकर्ता त्रिलोकसृष्टा परमेष्टी ब्रह्मा का आयुष्कारक वार बनाया। तीनों लोकों की वृद्धि के लिए पहले पुण्य-पाप की रचना होने पर लोगों को शुभाशुभ फल देने वाले इंद्र और यम के वारों का निर्माण किया। ये वार भोग देने वाले तथा मृत्युभय को दूर करने वाले हैं। इसके उपरांत भगवान शिव ने सात ग्रहों को इन वारों का स्वामी निश्चित किया। ये सभी ग्रह-नक्षत्र ज्योतिर्मय मंडल में प्रतिष्ठित हैं। शिव के वार के स्वामी सूर्य हैं। शक्ति संबंधी वार के स्वामी

सोम, कुमार संबंधी वार के अधिपति मंगल, विष्णुवार के स्वामी बुद्ध, ब्रह्माजी के वार के स्वामी बृहस्पति, इंद्रवार के स्वामी शुक्र व यमवार के स्वामी शनि हैं। अपने-अपने वार में की गई देवताओं की पूजा उनके फलों को देने वाली है।

सूर्य आरोग्य और चंद्रमा संपत्ति के दाता हैं। बुद्ध व्याधियों के निवारक तथा बुद्धि प्रदाता हैं। बृहस्पति आयु की वृद्धि करते हैं। शुक्र भोग देते हैं और शनि मृत्यु का निवारण करते हैं। इन सातों वारों के फल उनके देवताओं के पूजन से प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओं की पूजा का फल भी भगवान शिव ही देते हैं। देवताओं की प्रसन्नता के लिए पूजा की पांच पद्धतियां हैं। पहले उन देवताओं के मंत्रों का जाप, दूसरा होम, तीसरा दान, चौथा तप तथा पांचवां वेदी पर प्रतिमा में अग्नि अथवा ब्राह्मण के शरीर में विशिष्ट देव की भावना करके सोलह उपचारों से पूजा तथा आराधना करना।

दोनों नेत्रों तथा मस्तक के रोग में और कुष्ठ रोग की शांति के लिए भगवान सूर्य की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराएं। इससे यदि प्रबल प्रारब्ध का निर्माण हो जाए तो जरा एवं रोगों का नाश हो जाता है। इष्टदेव के नाम मंत्रों का जाप वार के अनुसार फल देते हैं। रविवार को सूर्य देव व अन्य देवताओं के लिए तथा अन्य ब्राह्मणों के लिए विशिष्ट वस्तु अर्पित करें। यह साधन विशिष्ट फल देने वाला होता है तथा इसके द्वारा पापों की शांति होती है। सोमवार को संपत्ति व लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए लक्ष्मी की पूजा करें तथा पत्नी के साथ ब्राह्मणों को घी में पका अन्न भोजन कराएं। मंगलवार को रोगों की शांति के लिए काली की पूजा करें। उड़द, मूंग एवं अरहर की दाल से युक्त अन्न का भोजन ब्राह्मणों को कराएं। बुधवार को दधियुक्त अन्न से भगवान विष्णु का पूजन करें। ऐसा करने से पुत्र-मित्र की प्राप्ति होती है। जो दीर्घायु होने की इच्छा रखते हैं, वे बृहस्पतिवार को देवताओं का वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा घी मिश्रित खीर से पूजन करें। भोगों की प्राप्ति के लिए शुक्रवार को एकाग्रचित्त होकर देवताओं का पूजन करें और ब्राह्मणों की तृप्ति के लिए षड्रस युक्त अन्न दें। स्त्रियों की प्रसन्नता के लिए सुंदर वस्त्र का विधान करें। शनिवार अपमृत्यु का निवारण करने वाला है। इस दिन रुद्र की पूजा करें। तिल के होम व दान से देवताओं को संतुष्ट करके, ब्राह्मणों को तिल मिश्रित भोजन कराएं। इस तरह से देवताओं की पूजा करने से आरोग्य एवं उत्तम फल की प्राप्ति होगी।

देवताओं के नित्य विशेष पूजन, स्नान, दान, जाप, होम तथा ब्राह्मण-तर्पण एवं रवि आदि वारों में विशेष तिथि और नक्षत्रों का योग प्राप्त होने पर विभिन्न देवताओं के पूजन में जगदीश्वर भगवान शिव ही उन देवताओं के रूप में पूजित होकर, सब लोगों को आरोग्य फल प्रदान करते हैं। देश, काल, पात्र, द्रव्य, श्रद्धा एवं लोक के अनुसार उनका ध्यान रखते हुए महादेव जी आराधना करने वालों को आरोग्य आदि फल देते हैं। मंगल कार्यों के आरंभ में और अशुभ कार्यों के अंत में तथा जन्म नक्षत्रों के आने पर गृहस्थ पुरुष अपने घर में आरोग्य की समृद्धि के लिए सूर्य ग्रह का पूजन करें। इससे सिद्ध होता है कि देवताओं का पूजन संपूर्ण अभीष्ट वस्तुओं को देने वाला है। पूजन वैदिक मंत्रों के अनुसार ही होना चाहिए। शुभ फल की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को सातों दिन अपनी शक्ति के अनुसार देवपूजन करना

चाहिए। निर्धन मनुष्य तपस्या व व्रत आदि से तथा धनी धन के द्वारा देवी-देवताओं की आराधना करें। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस तरह के धर्म का अनुष्ठान करता है, वह पुण्यलोक में अनेक प्रकार के फल भोगकर पुनः इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करता है। धनवान पुरुष सदा भोग सिद्धि के लिए मार्ग में वृक्ष लगाकर लोगों के लिए छाया की व्यवस्था करते हैं और उनके लिए कुएं, बावली बनवाकर पानी की व्यवस्था करते हैं। वेद-शास्त्रों की प्रतिष्ठा के लिए पाठशाला का निर्माण या अन्य किसी भी प्रकार से धर्म का संग्रह करते हैं और स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं। समयानुसार पुण्य कर्मों के परिपाक से अंतःकरण शुद्ध होने पर ज्ञान की सिद्धि होती है। द्विजो! इस अध्याय को जो सुनता, पढ़ता अथवा सुनने की व्यवस्था करता है, उसे 'देवयज्ञ' का फल प्राप्त होता है।

पंद्रहवां अध्याय

देश, काल, पात्र और दान का विचार

ऋषियों ने कहा—समस्त पदार्थों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ सूत जी हमसे देश, काल और दान का वर्णन करें।

देश का वर्णन

सूत जी बोले—अपने घर में किया देवयज्ञ शुद्ध गृह के फल को देने वाला है। गोशाला का स्थान घर में किए गए देवयज्ञ से दस गुना जबकि जलाशय का तट गोशाला से दस गुना है एवं जहां तुलसी, बेल और पीपल वृक्ष का मूल हो, वह स्थान जलाशय तट से भी दस गुना महत्व देने वाला है। देवालय उससे भी अधिक महत्व रखता है। देवालय से दस गुना महत्व रखता है तीर्थ भूमि का तट। उससे भी श्रेष्ठ है नदी का किनारा तथा उसका दस गुना उत्कृष्ट है तीर्थ नदी का तट। इससे भी अधिक महत्व रखने वाला है सप्तगंगा का तट, जिसमें गंगा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिंधु, सरयू और रेवा नदियां आती हैं। इससे भी दस गुना अधिक फल समुद्र का तट और उससे भी दस गुना अधिक फल पर्वत चोटी पर पूजा करने से होता है और सबसे अधिक महत्व का स्थान वह होता है, जहां मन रम जाए।

काल का वर्णन

सतयुग में यज्ञ, दान आदि से संपूर्ण फलों की प्राप्ति होती है। त्रेता में तिहाई, द्वापर में आधा, कलियुग में इससे भी कम फल प्राप्त होता है। परंतु शुद्ध हृदय से किया गया पूजन फल देने वाला होता है। इससे दस गुना फल सूर्य-संक्रांति के दिन, उससे दस गुना अधिक फल तुला और मेष की संक्रांति में तथा चंद्र ग्रहण में उससे भी दस गुना फल मिलता है। सूर्य ग्रहण में उससे भी दस गुना अधिक फल प्राप्त होता है। महापुरुषों के साथ में वह काल करोड़ों सूर्यग्रहण के समान पावन है, ऐसा ज्ञानी पुरुष मानते हैं।

पात्र वर्णन

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ योगी पूजा के पात्र होते हैं। क्योंकि ये पापों के नाश के कारण होते हैं। जिस ब्राह्मण ने चौबीस लाख गायत्री का जाप कर लिया हो वह भी पूजा का पात्र है। वह संपूर्ण काल और भोग का दाता है। गायत्री के जाप से शुद्ध हुआ ब्राह्मण परम पवित्र है। इसलिए दान, जाप, होम और पूजा सभी कर्मों के लिए वही शुद्ध पात्र है।

स्त्री या पुरुष जो भी भूखा हो वही अन्नदान का पात्र है। जिसे जिस वस्तु की इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना मांगे ही दे दी जाए, तो दाता को उस दान का पूरा फल प्राप्त होता है।

याचना करने के बाद दिया गया दान आधा ही फल देता है। सेवक को दिया दान चौथाई फल देने वाला होता है। दीन ब्राह्मण को दिए गए धन का दान दाता को इस भूतल पर दस वर्षों तक भोग प्रदान करने वाला है। वेदवेत्ता को दान देने पर वह स्वर्गलोक में देवताओं के वर्ष से दस वर्षों तक दिव्य भोग देने वाला है। गुरुदक्षिणा में प्राप्त धन शुद्ध द्रव्य कहलाता है। इसका दान संपूर्ण फल देने वाला है। क्षत्रियों का शौर्य से कमाया हुआ, वैश्यों का व्यापार से आया हुआ और शूद्रों का सेवावृत्ति से प्राप्त किया धन उत्तम द्रव्य है।

दान का वर्णन

गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चांदी, नमक, कोंहड़ा और कन्या नामक बारह वस्तुओं का दान करना चाहिए। गोदान से सभी पापों का निवारण होता है और पुण्यकर्मों की पुष्टि होती है। भूमि का दान परलोक में आश्रय देने वाला होता है। तिल का दान बल देने वाला तथा मृत्यु का निवारक होता है। सुवर्ण का दान वीर्यदायक और घी का दान पुष्टिकारक होता है। वस्त्र का दान आयु की वृद्धि करता है। धान्य का दान करने से अन्न और धन की समृद्धि होती है। गुड़ का दान मधुर भोजन की प्राप्ति कराता है। चांदी के दान से वीर्य की वृद्धि होती है। लवण के दान से षड्रस भोजन की प्राप्ति होती है। कोंहड़ा या कूष्माण्ड के दान को पुष्टिदायक माना जाता है। कन्या का दान आजीवन भोग देने वाला होता है।

जिन वस्तुओं से श्रवण आदि इंद्रियों की तृप्ति होती है, उनका सदा दान करें। वेद और शास्त्र को गुरुमुख से ग्रहण करके कर्मों का फल अवश्य मिलता है, इसे ही उच्चकोटि की आस्तिकता कहते हैं। भाई-बंधु अथवा राजा के भय से जो आस्तिकता होती है, वह निम्न श्रेणी की होती है। जिस मनुष्य के पास धन का अभाव है, वह वाणी और कर्म द्वारा ही पूजन करे। तीर्थयात्रा और व्रत को शारीरिक पूजन माना जाता है। तपस्या और दान मनुष्य को सदा करने चाहिए। देवताओं की तृप्ति के लिए जो कुछ दान किया जाता है, वह सब प्रकार के भोग प्रदान करने वाला है। इससे इस लोक और परलोक में उत्तम जन्म और सदा सुलभ होने वाला भोग प्राप्त होता है। ईश्वर को सबकुछ समर्पित करने एवं बुद्धि से यज्ञ व दान करने से 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है।

सोलहवां अध्याय

देव प्रतिमा का पूजन तथा शिवलिंग के वैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन

ऋषियों ने कहा—साधु शिरोमणि सूत जी! हमें देव प्रतिमा के पूजन की विधि बताइए, जिससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

सूत जी बोले—हे महर्षियो! मिट्टी से बनाई हुई प्रतिमा का पूजन करने से पुरुष-स्त्री सभी के मनोरथ सफल हो जाते हैं। इसके लिए नदी, तालाब, कुआं या जल के भीतर की मिट्टी लाकर सुगंधित द्रव्य से उसको शुद्ध करें, उसके बाद दूध डालकर अपने हाथ से सुंदर मूर्ति बनाएं। पद्मासन द्वारा प्रतिमा का आदर सहित पूजन करें। गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, पार्वती की मूर्ति और शिवलिंग का सदैव पूजन करें। संपूर्ण मनोरथों की सिद्धि के लिए सोलह उपचारों द्वारा पूजन करें। किसी मनुष्य द्वारा स्थापित शिवलिंग पर एक सेर नैवेद्य से पूजन करें। देवताओं द्वारा स्थापित शिवलिंग को तीन सेर नैवेद्य अर्पित करें तथा स्वयं प्रकट हुए शिवलिंग का पूजन पांच सेर नैवेद्य से करें। इससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सहस्र बार पूजन करने से सत्यलोक की प्राप्ति होती है। बारह अंगुल चौड़ा और पच्चीस अंगुल लंबा यह लिंग का प्रमाण है और पंद्रह अंगुल ऊंचा लोहे या लकड़ी के बनाए हुए पत्र का नाम शिव है। इसके अभिषेक से आत्मशुद्धि, गंध चढ़ाने से पुण्य, नैवेद्य चढ़ाने से आयु तथा धूप देने से धन की प्राप्ति होती है। दीप से ज्ञान और तांबूल से भोग मिलता है। अतएव स्नान आदि छः पूजन के अंगों को अर्पित करें। नमस्कार और जाप संपूर्ण अभीष्ट फलों को देने वाला है। भोग और मोक्ष की इच्छा रखने वाले लोगों को पूजा के अंत में सदा जाप और नमस्कार करना चाहिए। जो मनुष्य जिस देवता की पूजा करता है, वह उस देवता के लोक को प्राप्त करता है तथा उनके बीच के लोकों में उचित फल को भोगता है। हे महर्षियो! भू-लोक में श्रीगणेश पूजनीय हैं। शिवजी के द्वारा निर्धारित तिथि, वार, नक्षत्र में जो विधि सहित इनकी पूजा करता है उसके सभी पाप एवं शोक दूर हो जाते हैं और वह अभीष्ट फलों को पाकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

यदि मध्याह्न के बाद तिथि का आरंभ होता है तो रात्रि तिथि का पूर्व भाग पितरों के श्राद्ध आदि कर्म के लिए उत्तम होता है तथा बाद का भाग, दिन के समय देवकर्म के लिए अच्छा होता है। वेदों में पूजा शब्द को ठीक प्रकार से परिभाषित नहीं किया गया है—'पूः' का अर्थ है भोग और फल की सिद्धि जिस कर्म से संपन्न होती है, उसका नाम 'पूजा' है। मनोवांछित वस्तु तथा ज्ञान अभीष्ट वस्तुएं हैं। लोक और वेद में पूजा शब्द का अर्थ विख्यात है। नित्य कर्म भविष्य में फल देने वाले होते हैं। लगातार पूजन करने से शुभकामनाओं की पूर्ति होती है तथा पापों का क्षय होता है।

इसी प्रकार श्रीविष्णु भगवान तथा अन्य देवताओं की पूजा उन देवताओं के वार, तिथि,

नक्षत्र को ध्यान में रखते हुए तथा सोलह उपचारों से पूजन एवं भजन करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। शिवजी सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। महा आर्द्रा नक्षत्र अर्थात माघ कृष्णा चतुर्दशी को शिवजी का पूजन करने से आयु की वृद्धि होती है। ऐसे ही और भी नक्षत्रों, महीनों तथा वारों में शिवजी की पूजा व भोजन, भोग और मोक्ष देने वाला है। कार्तिक मास में देवताओं का भजन विशेष फलदायक होता है। विद्वानों के लिए यह उचित है कि इस महीने में सब देवताओं का भजन करें। संयम व नियम से जाप, तप, हवन और दान करें, क्योंकि कार्तिक मास में देवताओं का भजन सभी दुखों को दूर करने वाला है। कार्तिक मास में रविवार के दिन जो सूर्य की पूजा करता है और तेल व कपास का दान करता है, उसका कुष्ठ रोग भी दूर हो जाता है। जो अपने तन-मन को जीवन पर्यंत शिव को अर्पित कर देता है, उसे शिवजी मोक्ष प्रदान करते हैं। 'योनि' और 'लिंग' इन दोनों स्वरूपों के शिव स्वरूप में समाविष्ट होने के कारण वे जगत के जन्म निरूपण हैं, और इसी नाते से जन्म की निवृत्ति के लिए शिवजी की पूजा का अलग विधान है। सारा जगत बिंदु-नादस्वरूप है। 'बिंदु शक्ति' है और नाद 'शिव'। इसलिए सारा जगत शिव-शक्ति स्वरूप ही है। नाद बिंदु का और बिंदु इस जगत का आधार है। आधार में ही आधेय का समावेश अथवा लय होता है। यही 'सकलीकरण' है। इस सकलीकरण की स्थिति में ही, सृष्टिकाल में जगत का आरंभ हुआ है। शिवलिंग बिंदु नादस्वरूप है। अतः इसे जगत का कारण बताया जाता है। बिंदु 'देव' है और नाद 'शिव', इनका संयुक्त रूप ही शिवलिंग कहलाता है। अतः जन्म के संकट से छुटकारा पाने के लिए शिवलिंग की पूजा करनी चाहिए। बिंदुरूपा देवी 'उमा' माता हैं और नादस्वरूप भगवान 'शिव' पिता। इन माता-पिता के पूजित होने से परमानंद की प्राप्ति होती है। देवी उमा जगत की माता हैं और शिव जगत के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्र पर इनकी कृपा नित्य बढ़ती रहती है। वह पूजक पर कृपा कर उसे अपना आंतरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

अतः शिवलिंग को माता-पिता का स्वरूप मानकर पूजा करने से, आंतरिक आनंद की प्राप्ति होती है। भर्ग (शिव) पुरुषरूप हैं और भर्गा (शक्ति) प्रकृति कहलाती है। पुरुष आदिगर्भ है, क्योंकि वही प्रकृति का जनक है। प्रकृति में पुरुष का संयोग होने से होने वाला जन्म उसका प्रथम जन्म कहलाता है। 'जीव' पुरुष से बारंबार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है। माया द्वारा प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है। जीव का शरीर जन्मकाल से ही छः विकारों से युक्त होता है। इसीलिए इसे जीव की संज्ञा दी गई है।

जन्म लेकर जो प्राणी विभिन्न पाशों अर्थात बंधनों में पड़ता है, वह जीव है। जीव पशुता के पाश से जितना छूटने का प्रयास करता है, उसमें उतना ही उलझता जाता है। कोई भी साधन जीव को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं कर पाते। शिव के अनुग्रह से ही महामाया का प्रसाद जीव को प्राप्त होता है और मुक्ति मार्ग पर अग्रसर होता है। जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त होने के लिए श्रद्धापूर्वक शिव-लिंग का पूजन करना चाहिए।

गाय के दूध, दही और घी को शहद और शक्कर के साथ मिलाकर पंचामृत तैयार करें तथा इन्हें अलग-अलग भी रखें। पंचामृत से शिवलिंग का अभिषेक व स्नान करें। दूध व अन्न

मिलाकर नैवेद्य तैयार कर प्रणव मंत्र का जाप करते हुए उसे भगवान शिव को अर्पित कर दें। प्रणव को 'ध्वनिलिंग', 'स्वयंभूलिंग' और नादस्वरूप होने के कारण 'नादलिंग' तथा बिंदुस्वरूप होने के कारण 'बिंदुलिंग' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। अचल रूप से प्रतिष्ठित शिवलिंग को मकार स्वरूप माना जाता है। इसलिए वह 'मकारलिंग' कहलाता है। सवारी निकालने में 'उकारलिंग' का उपयोग होता है। पूजा की दीक्षा देने वाले गुरु-आचार्य विग्रह आकार का प्रतीक होने से 'अकारलिंग' के छः भेद हैं। इनकी नित्य पूजा करने से साधक जीवन मुक्त हो जाता है।

सत्रहवां अध्याय

प्रणव का माहात्म्य व शिवलोक के वैभव का वर्णन

ऋषि बोले—महामुनि! आप हमें 'प्रणव मंत्र' का माहात्म्य तथा 'शिव' की भक्ति-पूजा का विधान सुनाइए।

प्रणव का माहात्म्य

सूत जी ने कहा—महर्षियो! आप लोग तपस्या के धनी हैं तथा आपने मनुष्यों की भलाई के लिए बहुत ही सुंदर प्रश्न किया है। मैं आपको इसका उत्तर सरल भाषा में दे रहा हूं। 'प्र' प्रकृति से उत्पन्न संसार रूपी महासागर का नाम है। प्रणव इससे पार करने के लिए नौका स्वरूप है। इसलिए ओंकार को प्रणव की संज्ञा दी गई है। प्र-प्रपंच, न—नहीं है, वः—तुम्हारे लिए। इसलिए 'ओम्' को प्रणव नाम से जाना जाता है अर्थात प्रणव वह शक्ति है, जिसमें जीव के लिए किसी प्रकार का भी प्रपंच अथवा धोखा नहीं है। यह प्रणव मंत्र सभी भक्तों को मोक्ष देता है। मंत्र का जाप तथा इसकी पूजा करने वाले उपासकों को यह नूतन ज्ञान देता है। माया रहित महेश्वर को भी नव अर्थात नूतन कहते हैं। वे परमात्मा के शुद्ध स्वरूप हैं। प्रणव साधक को नया अर्थात शिवस्वरूप देता है। इसलिए विद्वान इसे प्रणव नाम से जानते हैं, क्योंकि यह नव दिव्य परमात्म ज्ञान प्रकट करता है। इसलिए यह प्रणव है।

प्रणव के दो भेद हैं—'स्थूल' और 'सूक्ष्म'। 'ॐ' सूक्ष्म प्रणव व 'नमः शिवाय' यह पंचाक्षर मंत्र स्थूल प्रणव है। जीवन मुक्त पुरुष के लिए सूक्ष्म प्रणव के जाप का विधान है क्योंकि यह सभी साधनों का सार है। देह का विलय होने तक सूक्ष्म प्रणव मंत्र का जाप, अर्थभूत परमात्म-तत्व का अनुसंधान करता है। शरीर नष्ट होने पर ब्रह्मस्वरूप शिव को प्राप्त करता है। इस मंत्र का छत्तीस करोड़ बार जाप करने से, मनुष्य योगी हो जाता है। यह अकार, उकार, मकार, बिंदु और नाद सहित अर्थात 'अ', 'ऊ', 'म' तीन दीर्घ अक्षरों और मात्राओं सहित 'प्रणव' होता है, जो योगियों के हृदय में निवास करता है। यही सब पापों का नाश करने वाला है। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति और 'मकार' इनकी एकता है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—पांच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि पांच विषय कुल मिलाकर दस वस्तुएं मनुष्यों की कामना के विषय हैं। इनकी आशा मन में लेकर जो कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे प्रवृत्ति मार्गी कहलाते हैं तथा जो निष्काम भाव से शास्त्रों के अनुसार कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे निवृत्त मार्गी हैं। वेद के आरंभ में तथा दोनों समय की संध्या वंदना के समय सबसे पहले उकार का प्रयोग करना चाहिए। प्रणव के नौ करोड़ जाप से पुरुष शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़ जाप से पृथ्वी की, फिर इतने ही जाप से तेज की, फिर नौ करोड़ जाप से वायु की और फिर नौ-नौ करोड़ जाप से गंध की सिद्धि होती है।

ब्राह्मण सहस्र ओंकार मंत्रों का रोजाना जाप करने से प्रबुद्ध व शुद्ध योगी हो जाता है। फिर जितेंद्रिय होकर पांच करोड़ का जाप करता है तथा शिवलोक को प्राप्त होता है।

क्रिया, तप और जाप के योग से शिवयोगी तीन प्रकार के होते हैं। धन और वैभव से पूजा सामग्री एकत्र कर अंगों से नमस्कार आदि करते हुए इष्टदेव की प्राप्ति के लिए जो पूजा में लगा रहता है, वह क्रियायोगी कहलाता है। पूजा में संलग्न रहकर जो परिमित भोजन करता है एवं बाह्य इंद्रियों को जीतकर वश में करता है उसे तपोयोगी कहते हैं। सभी सद्‌गुणों से युक्त होकर सदा शुद्ध भाव से समस्त कार्य कर शांत हृदय से निरंतर जो जाप करता है, वह 'जप योगी' कहलाता है। जो मनुष्य सोलह उपचारों से शिवयोगी महात्माओं की पूजा करता है, वह शुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

जपयोग का वर्णन

ऋषियो! अब मैं तुमसे जपयोग का वर्णन करता हूं। सर्वप्रथम, मनुष्य को अपने मन को शुद्ध कर पंचाक्षर मंत्र 'नमः शिवाय' का जाप करना चाहिए। यह मंत्र संपूर्ण सिद्धियां प्रदान करता है। इस पंचाक्षर मंत्र के आरंभ में 'ॐ' (ओंकार) का जाप करना चाहिए। गुरु के मुख से पंचाक्षर मंत्र का उपदेश पाकर कृष्ण पक्ष प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशी तक साधक रोज एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इंद्रियों को वश में रखे, माता-पिता की सेवा करे, नियम से एक सहस्र पंचाक्षर मंत्र का जाप करे तभी उसका जपयोग शुद्ध होता है। भगवान शिव का निरंतर चिंतन करते हुए पंचाक्षर मंत्र का पांच लाख जाप करे। जपकाल में शिवजी के कल्याणमय स्वरूप का ध्यान करे। ऐसा ध्यान करे कि भगवान शिव कमल के आसन पर विराजमान हैं। उनका मस्तक गंगाजी और चंद्रमा की कला से सुशोभित है। उनकी बाईं ओर भगवती उमा विराजमान हैं। अनेक शिवगण वहां खड़े होकर उनकी अनुपम छवि को निहार रहे हैं। मन में सदाशिव का बारंबार स्मरण करते हुए सूर्यमंडल से पहले उनकी मानसिक पूजा करे। पूर्व की ओर मुख करके पंचाक्षर मंत्र का जाप करे। उन दिनों साधक शुद्ध कर्म करे तथा अशुद्ध कर्मों से बचा रहे। जाप की समाप्ति के दिन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को शुद्ध होकर शुद्ध हृदय से बारह सहस्र जाप करे। तत्पश्चात ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात के प्रतीक स्वरूप पांच शिवभक्त ब्राह्मणों का वरण कर, शिव का पूजन विधिपूर्वक कर होम प्रारंभ करे।

विधि-विधान से भूमि को शुद्ध कर वेदी पर अग्नि प्रज्वलित करे। गाय के घी से ग्यारह सौ अथवा एक हजार आहुतियां स्वयं दे या एक सौ आठ आहुतियां ब्राह्मण से दिलाए। दक्षिणा के रूप में एक गाय अथवा बैल देना चाहिए। प्रतीकरूप पांच ब्राह्मणों के चरणों को धोए तथा उस जल से मस्तक को सींचे। ऐसा करने से अगणित तीर्थों में तत्काल स्नान का फल प्राप्त होता है। इसके उपरांत ब्राह्मणों को भरपूर भोजन कराकर देवेश्वर शिव से प्रार्थना करे। फिर पांच लाख जाप करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। पुनः पांच लाख जाप करने पर, भूतल से सत्य लोक तक चौदह भुवनों पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

कर्म माया और ज्ञान माया का तात्पर्य

मां का अर्थ है लक्ष्मी। उससे कर्मभोग प्राप्त होता है। इसलिए यह माया अथवा कर्म माया कहलाती है। इसी से ज्ञान-भोग की प्राप्ति होती है। इसलिए उसे माया या ज्ञानमाया भी कहा गया है। उपर्युक्त सीमा से नीचे नश्वर भोग है और ऊपर नित्य भोग। नश्वर भोग में जीव सकाम कर्मों का अनुसरण करता हुआ विभिन्न योनियों व लोकों के चक्कर काटता है। बिंदु पूजा में तत्पर रहने वाले उपासक नीचे के लोकों में घूमते हैं। निष्काम भाव से शिवलिंग की पूजा करने वाले ऊपर के लोक में जाते हैं। नीचे कर्मलोक है और यहां सांसारिक जीव रहते हैं। ऊपर ज्ञानलोक है जिसमें मुक्त पुरुष रहते हैं और आध्यात्मिक उपासना करते हैं।

शिवलोक के वैभव का वर्णन

जो मनुष्य सत्य अहिंसा से भगवान शिव की पूजा में तत्पर रहते हैं, कालचक्र को पार कर जाते हैं। काल चक्रेश्वर की सीमा तक महेश्वर लोक है। उससे ऊपर वृषभ के आकार में धर्म की स्थिति है। उसके सत्य, शौच, अहिंसा और दया चार पाद हैं। वह साक्षात शिवलोक के द्वार पर खड़ा है। क्षमा उसके सींग हैं, शम कान हैं। वह वेदध्वनिरूपी शब्द से विभूषित है। भक्ति उसके नेत्र व विश्वास और बुद्धि मन हैं। क्रिया आदि धर्मरूपी वृषभ हैं, जिस पर शिव आरूढ़ होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की आयु को दिन कहते हैं। कारण स्वरूप ब्रह्मा के सत्यलोक पर्यंत चौदह लोक स्थित हैं, जो पांच भौतिक गंध से परे हैं। उनसे ऊपर कारणरूप विष्णु के चौदह लोक हैं तथा इससे ऊपर कारणरूपी रुद्र के अट्ठाईस लोकों की स्थिति है। फिर कारणेश शिव के छप्पन लोक विद्यमान हैं। सबसे ऊपर पांच आवरणों से युक्त ज्ञानमय कैलाश है, जहां पांच मंडलों, पांच ब्रह्मकालों और आदि शक्ति से संयुक्त आदिलिंग है, जिसे शिवालय कहा जाता है। वहीं पराशक्ति से युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह आदि कार्यों में कुशल हैं। नित्य कर्मों द्वारा देवताओं का पूजन करने से शिव-तत्व का साक्षात्कार होता है। जिन पर शिव की कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त हो जाते हैं। अपनी आत्मा में आनंद का अनुभव करना ही मुक्ति का साधन है। जो पुरुष क्रिया, तप, जाप, ज्ञान और ध्यान रूपी धर्मों से शिव का साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, उसके अज्ञान को भगवान शिव दूर कर देते हैं।

शिवभक्ति का सत्कार

साधक पांच लाख जाप करने के पश्चात भगवान शिव की प्रसन्नता के लिए महाभिषेक एवं नैवेद्य से शिव भक्तों का पूजन करे। भक्त की पूजा से भगवान शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव भक्त का शरीर शिवरूप ही है। जो शिव के भक्त हैं और वेद की सारी क्रियाओं को जानते हैं, वे जितना अधिक शिवमंत्र का जाप करते हैं, उतना ही शिव का सामीप्य बढ़ता है। शिवभक्त स्त्री का रूप पार्वती देवी का है तथा मंत्रों का जाप करने से देवी का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्ति अर्थात पार्वती का पूजन शक्ति, बेर

तथा लिंग का चित्र बनाकर अथवा मिट्टी से इनकी आकृति का निर्माण करके, प्राण प्रतिष्ठा कर इसका पूजन करे। शिवलिंग को शिव मानकर अपने को शक्ति रूप समझकर शक्ति लिंग को देवी मानकर पूजन करे। शिवभक्त शिव मंत्र रूप होने के कारण शिव के स्वरूप है। जो सोलह उपचारों से उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। उपासना के उपरांत शिव भक्त की सेवा से विद्वानों पर शिवजी प्रसन्न होते हैं। पांच, दस या सौ सपत्नीक शिवभक्तों को बुलाकर आदरपूर्वक भोजन कराए। शिव भावना रखते हुए निष्कपट पूजा करने से भूतल पर फिर जन्म नहीं होता।

अठारहवां अध्याय

बंधन और मोक्ष का विवेचन
शिव के भस्मधारण का रहस्य

ऋषि बोले—सर्वज्ञों में श्रेष्ठ सूत जी! बंधन और मोक्ष क्या है? कृपया हम पर कृपा कर हमें बताएं?

सूत जी ने कहा—महर्षियो! मैं बंधन और मोक्ष के स्वरूप व उपाय का वर्णन तुम्हारे लिए कर रहा हूं। पृथ्वी के आठ बंधनों के कारण ही आत्मा की जीव संज्ञा है। अर्थात बंधनों में बंधा हुआ जीव 'बद्ध' कहलाता है और जो उन बंधनों से छूटा हुआ है उसे 'मुक्त' कहते हैं। प्रकृति, बुद्धि, त्रिगुणात्मक अहंकार और पांच तन्मात्राएं आदि आठ तत्वों के समूह से देह की उत्पत्ति हुई है। देह से कर्म होता है और फिर कर्म से नूतन देह की उत्पत्ति होती है। शरीर को स्थूल, सूक्ष्म और कारण के भेद से जानना चाहिए। स्थूल शरीर व्यापार कराने वाला, सूक्ष्म शरीर इंद्रिय भोग प्रदान करने वाला तथा शरीर को आत्मानंद की अनुभूति कराने वाला होता है। कर्मों के द्वारा ही जीव पाप और पुण्य भोगता है। इन्हीं से सुख-दुख की प्राप्ति होती है। अतः कर्मपाश में बंधकर जीव शुभाशुभ कर्मों द्वारा चक्र की भांति घुमाया जाता है। इससे छुटकारा पाने के लिए महाचक्र के कर्ता भगवान शिव की स्तुति और आराधना करनी चाहिए। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण और अनंत शक्तियों को धारण किए हैं। जो मन, वचन, शरीर और धन से बेरलिंग या भक्तजनों में शिव भावना करके उनकी पूजा करते हैं, उन पर शिवजी की कृपा अवश्य होती है। शिवलिंग में शिव की प्रतिमा ने शिव भक्तजनों में शिव की भावना करके उनकी प्रसन्नता के लिए पूजा करनी चाहिए। पूजन शरीर, मन, वाणी और धन से कर सकते हैं। भगवान शिव पूजा करने वाले पर विशेष कृपा करते हैं और अपने लोक में निवास का सौभाग्य प्रदान करते हैं। जब तन्मात्राएं वश में हो जाती हैं, तब जीव जगदंबा सहित शिव का सामीप्य प्राप्त कर लेता है। भगवान का प्रसाद प्राप्त होने पर बुद्धि वश में हो जाती है। सर्वज्ञता और तृप्ति शिव के ऐश्वर्य हैं। इन्हें पाकर मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। इसलिए शिव का कृपा प्रसाद प्राप्त करने के लिए उन्हीं का पूजन करना चाहिए। शिवक्रिया, शिव तप, शिवमंत्र-जाप, शिवज्ञान और शिव ध्यान प्रतिदिन प्रातः से रात को सोते समय तक, जन्म से मृत्यु तक करना चाहिए एवं मंत्रों और विभिन्न पुष्पों से शिव की पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से भगवान शिव का लोक प्राप्त होता है।

ऋषि बोले—उत्तम व्रत का पालन करने वाले सूत जी! शिवलिंग की पूजा कैसे करनी चाहिए? कृपया हमें बताइए?

सूत जी ने कहा—ब्राह्मणो! सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले लिंग के स्वरूप का मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूं। सूक्ष्मलिंग निष्कल होता है और स्थूल लिंग सकल। पंचाक्षर मंत्र को स्थूल लिंग कहते हैं। दोनों ही लिंग साक्षात मोक्ष देने वाले हैं। प्रकृति एवं पौरुष लिंग के रूपों

के बारे में एकमात्र भगवान शिव ही जानते हैं और कोई नहीं जानता। पृथ्वी पर पांच लिंग हैं, जिनका विवरण मैं तुम्हें सुनाता हूं।

पहला 'स्वयंभू शिवलिंग', दूसरा 'बिंदुलिंग', तीसरा 'प्रतिष्ठित लिंग', चौथा 'चरलिंग', और पांचवां 'गुरुलिंग' है। देवर्षियों की तपस्या से संतुष्ट हो उनके समीप प्रकट होने के लिए पृथ्वी के अंतर्गत बीजरूप में व्याप्त हुए भगवान शिव वृक्षों के अंकुर की भांति भूमि को भेदकर 'नादलिंग' के रूप में व्यक्त हो जाते हैं। स्वतः प्रकट होने के कारण ही इसका नाम 'स्वयंभूलिंग' है। इसकी आराधना करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। सोने-चांदी, भूमि, वेदी पर हाथ से प्रणव मंत्र लिखकर भगवान शिव की प्रतिष्ठा और आह्वान करें तथा सोलह उपचारों से उनकी पूजा करें। ऐसा करने से साधक को ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। देवताओं और ऋषियों ने आत्मसिद्धि के लिए 'पौरुष लिंग' की स्थापना मंत्रों के उच्चारण द्वारा की है। यही 'प्रतिष्ठित लिंग' कहलाता है। किसी ब्राह्मण अथवा राजा द्वारा मंत्रपूर्वक स्थापित किया गया लिंग भी प्रतिष्ठित लिंग कहलाता है, किंतु वह 'प्राकृत लिंग' है। शक्तिशाली और नित्य होने वाला 'पौरुष लिंग' तथा दुर्बल और अनित्य होने वाला 'प्राकृत लिंग' कहलाता है।

लिंग, नाभि, जीभ, हृदय और मस्तक में विराजमान आध्यात्मिक लिंग को 'चरलिंग' कहते हैं। पर्वत को 'पौरुष लिंग' और भूतल को विद्वान 'प्राकृत लिंग' मानते हैं। पौरुष लिंग समस्त ऐश्वर्य को प्रदान करने वाला है। प्राकृत लिंग धन प्रदान करने वाला है। 'चरलिंग' में सबसे प्रथम 'रसलिंग' ब्राह्मणों को अभीष्ट वस्तु प्रदान करने वाला है। 'सुवर्ण लिंग' वैश्यों को धन, 'बाणलिंग' क्षत्रियों को राज्य, 'सुंदर लिंग' शूद्रों को महाशुद्धि प्रदान करने वाला है। बचपन, जवानी और बुढ़ापे में स्फटिकमय शिवलिंग का पूजन स्त्रियों को समस्त भोग प्रदान करने वाला है।

समस्त पूजा कर्म गुरु के सहयोग से करें। इष्टदेव का अभिषेक करने के पश्चात अगहनी के चावल की बनी खीर तथा नैवेद्य अर्पण करें। निवृत्त मनुष्य को 'सूक्ष्म लिंग' का पूजन विभूति के द्वारा करना चाहिए। विभूति लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और शिवाग्निजनित तीन प्रकार की होती हैं। लोकाग्निजनित अर्थात लौकिक भस्म को शुद्धि के लिए रखें। मिट्टी, लकड़ी और लोहे के पात्रों की धान्य, तिल, वस्त्र आदि की भस्म से शुद्धि होती है। वेदों से जनित भस्म को वैदिक कर्मों के अंत में धारण करना चाहिए। मूर्तिधारी शिव का मंत्र पढ़कर बेल की लकड़ी जलाएं। कपिला गाय के गोबर तथा शमी, पीपल, पलाश, बड़, अमलताश और बेर की लकड़ियों से अग्नि जलाएं, इसे शुद्ध भस्म माना जाता है। भगवान शिव ने अपने गले में विराजमान प्रपंच को जलाकर भस्मरूप से सारतत्व को ग्रहण किया है। उनके सारे अंग विभिन्न वस्तुओं के सार रूप हैं। भगवान शिव ने अपने माथे के तिलक में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के सारतत्व को धारण किया है। सजल भस्म को धारण करके शिवजी की पूजा करने से सारा फल मिलता है। शिव मंत्र से भस्म धारण कर श्रेष्ठ आश्रमी होता है। शिव की पूजा अर्चना करने वाले को अपवित्रता और सूतक नहीं लगता। गुरु शिष्य के राजस, तामस और तमोगुण का नाश कर शिव का बोध कराता है। ऐसे गुरु के हाथ से भस्म धारण करनी चाहिए।

जन्म और मरण सब भगवान शिव ने ही बनाए हैं, जो इन्हें उनकी सेवा में ही अर्पित कर देता है, वह बंधनों से मुक्त हो जाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण को वश में कर लेने से मोक्ष प्राप्त होता है। जो शिव की पूजा में तत्पर हो, मौन रहे, सत्य तथा गुणों से युक्त हो, क्रिया, जाप, तप करता रहे, उसे दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है तथा ज्ञान का उदय होता है। शिवभक्त यथायोग्य क्रिया एवं अनुष्ठान करें तथा धन का उपयोग कर शिव स्थान में निवास करें। भगवान शिव के माहात्म्य का सभी के सामने प्रचार करें। शिव मंत्र के रहस्य को उनके अलावा कोई नहीं जानता है, इसलिए शिवलिंग का नित्य पूजन करें।

उन्नीसवां अध्याय

पूजा का भेद

ऋषि बोले—हे सूत जी! आप हम पर कृपा करके पार्थिव महेश्वर की महिमा का वर्णन, जो आपने वेद-व्यास जी से सुना है, सुनाइए।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! मैं भोग और मोक्ष देने वाली पार्थिव पूजा पद्धति का वर्णन कर रहा हूं। पार्थिव लिंग सभी लिंगों में सर्वश्रेष्ठ है। इसके पूजन से मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। अनेक देवता, दैत्य, मनुष्य, गंधर्व, सर्प एवं राक्षस शिवलिंग की उपासना से अनेक सिद्धियां प्राप्त कर चुके हैं। जिस प्रकार सतयुग में रत्न का, त्रेता में स्वर्ण का व द्वापर में पारे का महत्व है, उसी प्रकार कलियुग में पार्थिव लिंग अति महत्वपूर्ण है। शिवमूर्ति का पूजन तप से भी अधिक फल प्रदान करता है। जिस प्रकार गंगा नदी सभी नदियों में श्रेष्ठ एवं पवित्र मानी जाती है, उसी प्रकार पार्थिव लिंग सभी लिंगों में सर्वश्रेष्ठ है। जैसे सब व्रतों में शिवरात्रि का व्रत श्रेष्ठ है, सब दैवीय शक्तियों में दैवी-शक्ति श्रेष्ठ है, वैसे ही सब लिंगों में 'पार्थिव लिंग' श्रेष्ठ है।

'पार्थिव लिंग' का पूजन धन, वैभव, आयु एवं लक्ष्मी देने वाला तथा संपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने वाला है। जो मनुष्य भगवान शिव का पार्थिव लिंग बनाकर प्रतिदिन पूजा करता है, वह शिवपद एवं शिवलोक को प्राप्त करता है। निष्काम भाव से पूजन करने वाले को मुक्ति मिल जाती है। जो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी पूजन नहीं करता, वह घोर नरक को प्राप्त करता है।

बीसवां अध्याय

पार्थिव लिंग पूजन की विधि

पार्थिव लिंग की श्रेष्ठता तथा महिमा का वर्णन करते हुए सूत जी ने कहा—हे श्रेष्ठ महर्षियो! वैदिक कर्मों के प्रति श्रद्धाभक्ति रखने वाले मनुष्यों के लिए पार्थिव लिंग पूजा पद्धति ही परम उपयोगी एवं श्रेष्ठ है तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है। सर्वप्रथम सूत्रों की विधि से स्नान करें। सांध्योपासना के उपरांत ब्रह्मयज्ञ करें। तत्पश्चात देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों और पितरों का तर्पण करें। सब नित्य कर्मों को करके शिव भगवान का स्मरण करते हुए भस्म तथा रुद्राक्ष को धारण करें। फिर पूर्ण भक्ति भावना से पार्थिव-लिंग की पूजा अर्चना करें। ऐसा करने से संपूर्ण मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। किसी नदी या तालाब के किनारे, पर्वत पर या जंगल में या शिवालय में अथवा अन्य किसी पवित्र स्थान पर, पार्थिव पूजन करना चाहिए। पवित्र स्थान की मिट्टी से शिवलिंग का निर्माण करना चाहिए। ब्राह्मण श्वेत मिट्टी से, क्षत्रिय लाल मिट्टी से, वैश्य पीली मिट्टी से एवं शूद्र काली मिट्टी से शिवलिंग का निर्माण करें।

शिवलिंग हेतु मिट्टी को एकत्र कर उसे गंगाजल से शुद्ध करके धीरे-धीरे उससे लिंग का निर्माण करें तथा इस संसार के सभी भोगों को तथा संसार से मोक्ष प्राप्त करने हेतु पार्थिव लिंग का पूजन भक्तिभावना से करें। सर्वप्रथम 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का उच्चारण करते हुए समस्त पूजन सामग्री को एकत्र कर उसे जल से शुद्ध करें। 'भूरसि' मंत्र द्वारा क्षेत्र की सिद्धि करें। फिर जल का संस्कार करें। स्फटिक शिला का घेरा बनाएं तथा क्षेत्र शुद्धि करें। तत्पश्चात शिवलिंग की प्रतिष्ठा करें तथा वैदिक रीति से पूजा-उपासना करें। भगवान शिव का आवाहन करें तथा आसन पर उन्हें स्थापित करके उनके समक्ष आसन पर स्वयं बैठ जाएं। शिवलिंग को दूध, दही और घी से स्नान कराएं, ऋचाओं से मधु (शहद) और शक्कर से स्नान कराएं। ये पांचों वस्तुएं—दूध, दही, घी, शहद और शक्कर 'पंचामृत' कहलाते हैं। इन्हीं वस्तुओं से लिंग को स्नान कराएं। तदोपरांत उत्तरीय धारण कराएं। चारों ऋचाओं को पढ़कर भगवान शिव को वस्त्र और यज्ञोपवीत समर्पित करें तथा सुगंधित चंदन एवं रोली चढ़ाएं तथा अक्षत, फूल और बेलपत्र अर्पित करें। नैवेद्य और फल अर्पित कर ग्यारह रुद्रों का पूजन करें तथा पूजन कर्म करने वाले पुरोहित को दक्षिणा दें। हर, महेश्वर, शंभु, शूल-पाणि, पिनाकधारी, शिव, पशुपति, महादेव, गिरिजापति आदि नामों से पार्थिव-लिंग का पूजन करें तथा आरती करें। शिवलिंग की परिक्रमा करें तथा भगवान शिव को साष्टांग प्रणाम करें। पंचाक्षर मंत्र तथा सोलह उपचारों से विधिवत पूजन करें। इस प्रकार पूजन करते हुए भगवान शिव से इस प्रकार प्रार्थना करें—

सबको सुख-समृद्धि प्रदान करने वाले हे कृपानिधान, भूतनाथ शिव! आप मेरे प्राणों में बसते हैं। आपके गुण ही मेरे प्राण हैं। आप मेरे सबकुछ हैं। मेरा मन सदैव आपका ही चिंतन

करता है। हे प्रभु! यदि मैंने कभी भूलवश अथवा जानबूझकर भक्तिपूर्वक आपका पूजन किया हो तो वह सफल हो जाए। मैं महापापी हूं, पतित हूं जबकि आप पतितपावन हैं। हे महादेव सदाशिव! आप वेदों, पुराणों और शास्त्रों के सिद्धांतों के परम ज्ञाता हैं। अब तक कोई भी आपको पूर्ण रूप से नहीं जानता है फिर भला मुझ जैसा पापी मनुष्य आपको कैसे जान सकता है? हे महेश्वर! मैं पूर्ण रूप से आपके अधीन हूं। हे प्रभु! कृपा कर मुझ पर प्रसन्न होइए और मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद भगवान शिव को फूल व अक्षत चढ़ाकर प्रणाम कर आदरपूर्वक विसर्जन करें। हे मुनियो! इस प्रकार की गई भगवान शिव की पूजा, भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली एवं भक्तिभाव बढ़ाने वाली है।

इक्कीसवां अध्याय

शिवलिंग की संख्या

सूत जी बोले—महर्षियो! पार्थिव लिंगों की पूजा करोड़ों यज्ञों का फल देने वाली है। कलियुग में शिवलिंग पूजन मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ है। यह भोग और मोक्ष देने वाला एवं शास्त्रों का निश्चित सिद्धांत है। शिवलिंग तीन प्रकार के हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। चार अंगुल ऊंचे वेदी से युक्त, सुंदर शिवलिंग को 'उत्तम शिवलिंग' कहा जाता है। उससे आधा 'मध्यम' तथा मध्यम से आधा 'अधम' कहलाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को वैदिक उपचारों से आदरपूर्वक शिवलिंग की पूजा करनी चाहिए।

ऋषि बोले—हे सूत जी! शिवजी के पार्थिव लिंग की कुल कितनी संख्या है?

सूत जी बोले—हे ऋषियो! पार्थिव लिंग की संख्या मनोकामना पर निर्भर करती है। बुद्धि की प्राप्ति के लिए सद्भावनापूर्वक एक हजार पार्थिव शिवलिंग का पूजन करें। धन की प्राप्ति के इच्छुक डेढ़ हजार शिवलिंगों का तथा वस्त्र प्राप्ति हेतु पांच सौ शिवलिंगों का पूजन करें। भूमि का इच्छुक एक हजार, दया भाव चाहने वाला तीन हजार, तीर्थ यात्रा करने की चाह रखने वाले को दो हजार तथा मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक मनुष्य एक करोड़ पार्थिव लिंगों की वेदोक्त विधि से पूजा-आराधना करें। अपनी कामनाओं के अनुसार शिवलिंगों की पूजा करें। पार्थिव लिंगों की पूजा करोड़ों यज्ञों का फल देने वाली है तथा उपासक को भोग और मोक्ष प्रदान करती है। इसके समान कोई और श्रेष्ठ नहीं है। अर्थात यह सर्वश्रेष्ठ है।

शिवलिंग की नियमित पूजा-अर्चना से मनुष्य सभी विपत्तियों से मुक्त हो जाता है। शिवलिंग का नियमित पूजन भवसागर से तरने का सबसे सरल तथा उत्तम उपाय है। हर रोज लिंग का पूजन वेदोक्त विधि से करना चाहिए। भगवान शंकर का नैवेद्यांत पूजन करना चाहिए।

भगवान शंकर की आठ मूर्तियां पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्रमा तथा यजमान हैं। इसके अतिरिक्त शिव, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति नामों का भी पूजन करें। अक्षत, चंदन और बेलपत्र लेकर भक्तिपूर्वक शिवजी का पूजन करें तथा उनके परिवार, जिसमें ईशान, नंदी, चण्ड, महाकाल, भृंगी, वृष, स्कंद, कपर्दीश्वर, शुक्र तथा सोम हैं, का दसों दिशाओं में पूजन करें। शिवजी के वीर भद्र और कीर्तिमुख के पूजन के पश्चात ग्यारह रुद्रों की पूजा करें। पंचाक्षर-मंत्र का जाप करें तथा शतरुद्रिय और शिवपंचाग का पाठ करें। इसके उपरांत शिवलिंग की परिक्रमा कर शिवलिंग का विसर्जन करें। रात्रि के समय समस्त देवकार्यों को उत्तर दिशा की ओर मुंह करके ही करना चाहिए। पूजन करते समय मन में भगवान शिव का स्मरण करना चाहिए। जिस स्थान पर शिवलिंग स्थापित हो वहां पर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में न बैठें, क्योंकि पूर्व दिशा भगवान शिव के सामने पड़ती है और इष्टदेव का सामना नहीं रोकना चाहिए। उत्तर दिशा में शक्तिस्वरूपा देवी उमा

विराजमान रहती हैं। पश्चिम दिशा में शिवजी का पीछे का भाग है और पूजा पीछे से नहीं की जा सकती, इसलिए दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिए।

शिव के उपासकों को भस्म से त्रिपुण्ड लगाकर, रुद्राक्ष की माला, बेलपत्र आदि लेकर भगवान का पूजन करना चाहिए। यदि भस्म न मिले तो मिट्‌टी से ही त्रिपुण्ड का निर्माण करके पूजन करना चाहिए।

बाईसवां अध्याय

शिव नैवेद्य और बिल्व माहात्म्य

ऋषि बोले—हे सूत जी! हमने पूर्व में सुना है कि शिव का नैवेद्य ग्रहण नहीं करना चाहिए। इस संबंध में शास्त्र क्या कहते हैं? इसके बारे में बताइए तथा बिल्व के माहात्म्य को भी स्पष्ट कीजिए।

सूत जी ने कहा—हे मुनियो! आप सभी शिव व्रत का पालन करने वाले हैं। इसलिए मैं आपको प्रसन्नतापूर्वक सारी बातें बता रहा हूं। आप ध्यानपूर्वक सुनें। भगवान शिव के भक्त को, जो उत्तम व्रत का पालन करता है तथा बाहर-भीतर से पवित्र व शुद्ध है अर्थात निष्काम भावना से भगवान शंकर की पूजा-अर्चना करता है, शिव नैवेद्य का अवश्य भक्षण करना चाहिए क्योंकि नैवेद्य को देख लेने से ही सारे पाप दूर हो जाते हैं। उसको ग्रहण करने से बहुत से पुण्यों का फल मिलता है। नैवेद्य को खाने से हजारों और अरबों यज्ञों का पुण्य अंदर आ जाता है। जिसके घर में शिवजी के नैवेद्य का प्रचार होता है, उसका घर तो पवित्र है ही, बल्कि वह साथ के अन्य घरों को भी पवित्र कर देता है। इसलिए सिर झुकाकर प्रसन्नतापूर्वक एवं भक्ति भावना से इसे ग्रहण करें और इसे खा लें। जो मनुष्य इसे ग्रहण करने या लेने में विलंब करता है, वह पाप का भागी होता है। शिव की दीक्षा से युक्त शिवभक्त के लिए नैवेद्य महाप्रसाद है।

जो मनुष्य भगवान शिव के अलावा अन्य देवताओं की दीक्षा भी धारण किए हैं, उनके संबंध में ध्यानपूर्वक सुनिए—ब्राह्मणो! जहां से शालग्राम शिला की उत्पत्ति होती है, वहां उत्पन्न लिंग में रसलिंग में, पाषाण, रजत तथा सुवर्ण से निर्मित लिंग में, देवताओं तथा सिद्धों द्वारा प्रतिष्ठित लिंग में, केसर लिंग, स्फटिक लिंग, रत्न निर्मित लिंग तथा समस्त ज्योतिर्लिंगों में विराजमान भगवान शिव के नैवेद्य को ग्रहण करना 'चांद्रायण व्रत' के समान पुण्यदायक है। शिव नैवेद्य भक्षण करने एवं उसे सिर पर धारण करने से ब्रह्म हत्या के पाप से भी छुटकारा मिल जाता है और मनुष्य पवित्र हो जाता है परंतु जहां चाण्डालों का अधिकार हो, वहां का महाप्रसाद भक्तिपूर्वक भक्षण नहीं करना चाहिए। बाणलिंग, लौह निर्मित लिंग, सिद्धलिंग उपासना से प्राप्त अर्थात सिद्धों द्वारा स्थापित लिंग, स्वयंभूलिंग एवं मूर्तियों का जहां पर चण्ड का अधिकार नहीं है, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक स्नान कराकर उस जल का तीन बार आचमन करता है, उसके सभी कायिक, वाचिक और मानसिक पाप नष्ट हो जाते हैं। जो वस्तु भगवान शिव को अर्पित की जाती है वह अत्यंत पवित्र मानी जाती है।

हे ऋषियो! बिल्व अर्थात बेल का वृक्ष महादेव का रूप है। देवताओं द्वारा इसकी स्तुति की गई है। तीनों लोकों में स्थित सभी तीर्थ बिल्व में ही निवास करते हैं क्योंकि इसकी जड़ में लिंग रूपी महादेव जी का वास होता है। जो इसकी पूजा करता है, वह निश्चय ही शिवपद प्राप्त करता है।

जो मनुष्य बिल्व की जड़ के पास अपने मस्तक को जल से सींचता है, उसे संपूर्ण तीर्थ स्थलों पर स्नान का फल प्राप्त होता है। बिल्व की जड़ों को पूरा पानी से भरा देखकर भगवान शिव संतुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं, जो मनुष्य बिल्व की जड़ों अर्थात मूल भाग का गंध, पुष्प इत्यादि से पूजन करता है वह सीधा शिवलोक जाता है। उसे संतान और सुख की प्राप्ति होती है। भक्तिपूर्वक पवित्र मन से बिल्व की जड़ में दीपक जलाने वाला मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। इस वृक्ष के नीचे जो मनुष्य एक शिवभक्त ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसे एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल मिलता है। इस वृक्ष के नीचे दूध-घी में पके अन्न का दान देने से दरिद्रता दूर हो जाती है।

हे ऋषियो! 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति' के दो मार्ग हैं। 'प्रवृत्ति' के मार्ग में पूजा-पाठ करने से मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यह संपूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करता है। किसी सुपात्र गुरु द्वारा विधि-विधान से पूजन कराएं। अभिषेक के बाद अगहनी चावल से बना नैवेद्य अर्पण करें। पूजा के अंत में शिवलिंग को संपुट में विराजमान कर घर में किसी शुद्ध स्थान पर रख दें। निवृत्ति मार्गी उपासकों को हाथ में ही पूजन करना चाहिए। भिक्षा में प्राप्त भोजन को ही नैवेद्य के रूप में अर्पित करें। निवृत्ति पुरुषों के लिए सूक्ष्म लिंग ही श्रेष्ठ है। विभूति से पूजन करें तथा विभूति को ही निवेदित करें। पूजा करने के उपरांत लिंग को मस्तक पर धारण करें।

तेईसवां अध्याय

शिव नाम की महिमा

ऋषि बोले—हे व्यास शिष्य सूत जी! आपको नमस्कार है। हम पर कृपा कर हमें परम उत्तम 'रुद्राक्ष' तथा शिव नाम की महिमा का माहात्म्य सुनाइए।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! आपने बहुत ही उत्तम तथा समस्त लोकों के हित की बात पूछी है। भगवान शिव की उपासना करने वाले मनुष्य धन्य हैं। उनका मनुष्य होना सफल हो गया है। साथ ही शिवभक्ति से उनके कुल का उद्धार हो गया है। जो मनुष्य अपने मुख से सदाशिव और शिव नामों का उच्चारण करते हैं, पाप उनका स्पर्श भी नहीं कर पाता है। भस्म, रुद्राक्ष और शिव नाम त्रिवेणी के समान महा पुण्यमय हैं। इन तीनों के निवास और दर्शन मात्र से ही त्रिवेणी के स्नान का फल प्राप्त हो जाता है। इनका निवास जिसके शरीर में होता है, उसके दर्शन से ही सभी पापों का विनाश हो जाता है। भगवान शिव का नाम 'गंगा' है, विभूति (भस्म) 'यमुना' मानी गई है तथा रुद्राक्ष को 'सरस्वती' कहा गया है। इनकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापों का नाश करने वाली है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इनकी महिमा सिर्फ भगवान महेश्वर ही जानते हैं। यह शिव नाम का माहात्म्य समस्त पापों को हर लेने वाला है। 'शिव-नाम' अग्नि है और 'महापाप' पर्वत है। इस अग्नि से पाप रूपी पर्वत जल जाते हैं। शिव नाम को जपने मात्र से ही पाप-मूल नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य इस पृथ्वी लोक में भगवान शिव के जाप में लगा हुआ रहता है, वह विद्वान पुण्यात्मा और वेदों का ज्ञाता है। उसके द्वारा किए गए धर्म-कर्म फल देने वाले हैं। जो भी मनुष्य शिव नाम रूपी नौका पाकर भवसागर को तर जाते हैं, उनके भवरूपी पाप निःसंदेह ही नष्ट हो जाते हैं। जो पाप रूपी दावानल से पीड़ित हैं, उन्हें शिव नामरूपी अमृत का पान करना चाहिए।

हे मुनीश्वरो! जिसने अनेक जन्मों तक तपस्या की है, उसे ही पापों का नाश करने वाली शिव भक्ति प्राप्त होती है। जिस मनुष्य के मन में कभी न खण्डित होने वाली शिव-भक्ति प्रकट हुई है, उसे ही मोक्ष मिलता है। जो अनेक पाप करके भी भगवान शिव के नाम-जप में आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें जरा भी संशय नहीं है। जिस प्रकार जंगल में दावानल से दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिव नाम रूपी दावानल से दग्ध होकर उसके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जिसके भस्म लगाने से अंग पवित्र हो गए हैं और जो आदर सहित शिव नाम जपता है, वह इस अथाह भवसागर से पार हो जाता है। संपूर्ण वेदों का अवलोकन करके महर्षियों ने शिव नाम को संसार-सागर को पार करने का उपाय बताया है। भगवान शंकर के एक नाम में भी पाप को समाप्त करने की इतनी शक्ति है कि उतने पातक कभी कोई मनुष्य कर ही नहीं सकता। पूर्वकाल में इंद्रद्युम्न नाम का एक महापापी राजा हुआ था और एक ब्राह्मण युवती, जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिव नाम के प्रभाव से दोनों उत्तम गति को प्राप्त हुए। हे द्विजो! इस प्रकार मैंने तुमसे शिव

नाम की महिमा का वर्णन किया है।

चौबीसवां अध्याय

भस्मधारण की महिमा

सूत जी ने कहा—हे ऋषियो! अब मैं तुम्हारे लिए समस्त वस्तुओं को पावन करने वाले भस्म का माहात्म्य सुनाता हूं। भस्म दो प्रकार की होती है—एक 'महाभस्म' और दूसरी 'स्वल्प भस्म'। महाभस्म के भी अनेक भेद हैं। यह तीन प्रकार की होती है—'श्रोता', 'स्मार्थ', और 'लौकिक'। श्रोता और स्मार्थ भस्म केवल ब्राह्मणों के ही उपयोग में आने योग्य है। लौकिक भस्म का उपयोग सभी मनुष्यजन कर सकते हैं। ब्राह्मणों को वैदिक मंत्रों का जाप करते हुए भस्म धारण करनी चाहिए तथा अन्य मनुष्य बिना मंत्रों के भस्म धारण कर सकते हैं। उपलों से सिद्ध की हुई भस्म 'आग्नेय भस्म' कहलाती है। यह त्रिपुण्ड का द्रव्य है। अन्य यज्ञ से प्रकट हुई भस्म भी त्रिपुण्ड धारण के काम आती है। जाबालि उपनिषद के अनुसार, 'अग्नि' इत्यादि मंत्रों द्वारा सात बार जल में भिगोकर शरीर में भस्म लगाएं। तीनों संध्याओं में जो शिव भस्म से त्रिपुण्ड लगाता है, वह सब पापों से मुक्त होकर शिव की कृपा से मोक्ष पाता है। त्रिपुण्ड और भस्म लगाकर विधिपूर्वक जाप करें। भगवान शिव और विष्णु ने भी त्रिपुण्ड धारण किया है। अन्य देवियों सहित भगवती उमा और देवी लक्ष्मी ने इनकी प्रशंसा की है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरों तथा जातिभ्रष्ट पुरुषों ने भी उद्धूलन एवं त्रिपुण्ड रूप में भस्म धारण की है।

महर्षियो! इस प्रकार संक्षेप में मैंने त्रिपुण्ड का माहात्म्य बताया है। यह समस्त प्राणियों के लिए गोपनीय है। ललाट अर्थात माथे पर भौंहों के मध्य भाग से भौंहों के अंत भाग जितना बड़ा त्रिपुण्ड ललाट में धारण करना चाहिए। मध्यमा और अनामिका अंगुली से दो रेखाएं करके अंगूठे द्वारा बीच में सीधी रेखा त्रिपुण्ड कहलाती है। त्रिपुण्ड अत्यंत उत्तम तथा भोग और मोक्ष देने वाला है। त्रिपुण्ड की एक-एक रेखा में नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अंगों में स्थित हैं। प्रणव का प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रातः सवन तथा महादेव—ये त्रिपुण्ड की प्रथम रेखा के नौ देवता हैं। प्रणव का दूसरा अक्षर उकार—दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्वगुण, यजुर्वेद, मध्यदिन सवन, इच्छाशक्ति, अंतरात्मा तथा महेश्वर—ये दूसरी रेखा के नौ देवता हैं। प्रणव का तीसरा अक्षर मकार—आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, द्युलोक, ज्ञानशक्ति, सामवेद तृतीय सवन तथा शिव—ये तीसरी रेखा के नौ देवता हैं।

प्रतिदिन स्नान से शुद्ध होकर भक्तिभाव से त्रिपुण्ड में स्थित देवताओं को नमस्कार कर त्रिपुण्ड धारण करें तो भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। भस्म को बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पांच स्थानों में धारण करें। सिर, माथा, दोनों कान, दोनों आंखें, नाक के दोनों नथुनों, दोनों हाथ, मुंह, कंठ, दोनों कोहनी, दोनों भुजदंड, हृदय, दोनों बगल, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों उरु, दोनों घुटनों, दोनों पिंडली, दोनों जांघों और पांव आदि बत्तीस अंगों में

क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, देश, दसों दिशाएं, दसों दिग्पाल, आठों वसुंधरा, ध्रुव, सोम, आम, अनिल, प्रातःकाल इत्यादि का नाम लेकर भक्तिभाव से त्रिपुण्ड धारण करें अथवा एकाग्रचित्त हो सोलह स्थान में ही त्रिपुण्ड धारण करें। सिर, माथा, कण्ठ, दोनों कंधों, दोनों हाथों, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाइयों, हृदय, नाभि, दोनों पसलियों एवं पीठ में त्रिपुण्ड लगाकर इन सोलह अंगों में धारण करें। तब अश्विनीकुमार, शिवशक्ति, रुद्र, ईश, नारद और वामा आदि नौ शक्तियों का पूजन करके उन्हें त्रिपुण्ड में धारण करें। सिर, बालों, दोनों कान, मुंह, दोनों हाथ, हृदय, नाभि, उरुयुगल, दोनों पिंडली एवं दोनों पावों—इन सोलह अंगों में क्रमशः शिव, चंद्रमा, रुद्र, ब्रह्मा, गणेश, लक्ष्मी, विष्णु, शिव, प्रजापति, नाग, दोनों नाग कन्या, ऋषि कन्या, समुद्र तीर्थ इत्यादि के नाम स्मरण करके त्रिपुण्ड भस्म धारण करें। माथा, दोनों कान, दोनों कंधे, छाती, नाभि एवं गुह्य अंग आदि आठ अंगों में सप्तऋषि ब्राह्मणों का नाम लेकर भस्म धारण करें अथवा मस्तक, दोनों भुजाएं, हृदय और नाभि इन पांच स्थानों को भस्म धारण करने के योग्य बताया गया है। देश तथा काल को ध्यान में रखकर भस्म को अभिमंत्रित करना चाहिए तथा भस्म को जल में मिलाना चाहिए। त्रिनेत्रधारी, सभी गुणों के आधार तथा सभी देवताओं के जनक और ब्रह्मा एवं रुद्र की उत्पत्ति करने वाले परब्रह्म परमात्मा 'शिव' का ध्यान करते हुए 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र को बोलते हुए माथे एवं अंगों पर त्रिपुण्ड धारण करें।

पच्चीसवां अध्याय

रुद्राक्ष माहात्म्य

सूत जी कहते हैं—महाज्ञानी शिवस्वरूप शौनक! भगवान शंकर के प्रिय रुद्राक्ष का माहात्म्य मैं तुम्हें सुना रहा हूं। यह रुद्राक्ष परम पावन है। इसके दर्शन, स्पर्श एवं जप करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इसकी महिमा तो स्वयं सदाशिव ने संपूर्ण लोकों के कल्याण के लिए देवी पार्वती को सुनाई है।

भगवान शिव बोले—हे देवी! तुम्हारे प्रेमवश भक्तों के हित की कामना से रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन कर रहा हूं। पूर्वकाल में मैंने मन को संयम में रखकर हजारों दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या की। एक दिन अचानक मेरा मन क्षुब्ध हो उठा और मैं सोचने लगा कि मैं संपूर्ण लोकों का उपकार करने वाला स्वतंत्र परमेश्वर हूं। अतः मैंने लीलावश अपने दोनों नेत्र खोल दिए। नेत्र खुलते ही मेरे नेत्रों से जल की झड़ी लग गई, उसी से गौड़ देश से लेकर मथुरा, अयोध्या, काशी, लंका, मलयाचल पर्वत आदि स्थानों में रुद्राक्षों के पेड़ उत्पन्न हो गए। तभी से इनका माहात्म्य बढ़ गया और वेदों में भी इनकी महिमा का वर्णन किया गया है। इसलिए रुद्राक्ष की माला समस्त पापों का नाश कर भक्ति-मुक्ति देने वाली है। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र जातियों में जन्मे शिवभक्त सफेद, लाल, पीले या काले रुद्राक्ष धारण करें। मनुष्यों को जाति अनुसार ही रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। आंवले के फल के बराबर रुद्राक्ष को श्रेष्ठ माना जाता है। बेर के फल के बराबर को मध्यम श्रेणी का और चने के आकार के रुद्राक्ष को निम्न श्रेणी का माना जाता है।

हे देवी! बेर के समान रुद्राक्ष छोटा होने पर भी लोक में उत्तम फल देने वाला तथा सुख, सौभाग्य की वृद्धि करने वाला होता है। जो रुद्राक्ष आंवले के बराबर है, वह सभी अनिष्टों का विनाश करने वाला तथा सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता है। रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे ही वैसे अधिक फल देने वाला होता है। पापों का नाश करने के लिए रुद्राक्ष धारण अवश्य करना चाहिए। यह संपूर्ण अभीष्ट फलों की प्राप्ति सुनिश्चित करता है। लोक में मंगलमय रुद्राक्ष जैसा फल देने वाला कुछ भी नहीं है। समान आकार वाले चिकने, गोल, मजबूत, मोटे, कांटेदार रुद्राक्ष (उभरे हुए छोटे-छोटे दानों वाले रुद्राक्ष) सब मनोरथ सिद्धि एवं भक्ति-मुक्ति दायक हैं किंतु कीड़ों द्वारा खाए गए, टूटे-फूटे, कांटों से युक्त तथा जो पूरा गोल न हो, इन पांच प्रकार के रुद्राक्षों का त्याग करें। जिस रुद्राक्ष में अपने आप डोरा पिरोने के लिए छेद हो, वही उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्य द्वारा छेद किया हो उसे मध्यम श्रेणी का माना जाता है। इस जगत में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जो फल पाता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भक्तिमान पुरुष साढ़े पांच सौ रुद्राक्ष के दानों का मुकुट बना ले और उसे सिर पर धारण करे। तीन सौ साठ दानों का हार बना ले, ऐसे तीन हार बनाकर उनका यज्ञोपवीत धारण करे।

महर्षियो! सिर पर ईशान मंत्र से, कान में तत्पुरुष मंत्र से रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। गले में रुद्राक्ष, मस्तक पर त्रिपुण्डधारी रुद्राक्ष पहने 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जाप करने वाला मनुष्य यमपुर को नहीं जाता। रुद्राक्ष माला पर मंत्र जपने का करोड़ गुना फल मिलता है। तीन मुख वाला रुद्राक्ष साधन सिद्ध करता है एवं विद्याओं में निपुण बनाता है। चार मुख वाला रुद्राक्ष ब्रह्मस्वरूप है। इसके दर्शन एवं पूजन से नर-हत्या का पाप छूट जाता है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों का फल देता है। पांच मुख वाले रुद्राक्ष को कालाग्नि अर्थात पंचमुखी कहा जाता है। यह सर्व कामनाएं पूर्ण कर मोक्ष प्रदान करता है। अभोग्य स्त्रियों को भोगने के पाप तथा भक्षण के पापों से मुक्त हो जाता है। छः मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय का स्वरूप है। इसको सीधी बांह में बांधने से ब्रह्महत्या के दोष से मुक्ति मिलती है। सप्तमुखी रुद्राक्ष धारण करने से धन की प्राप्ति होती है। आठ मुखों वाला रुद्राक्ष 'भैरव' का स्वरूप है। इसे धारण करने से लंबी आयु प्राप्त होती है और मरने पर शिव-पद प्राप्त हो जाता है। नौ मुखों वाला रुद्राक्ष भैरव तथा कपिल मुनि का स्वरूप माना जाता है और भगवती दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गई हैं। इसे बाएं हाथ में धारण करने से समस्त वैभवों की प्राप्ति होती है। दस मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात भगवान विष्णु का रूप है। इसे धारण करने से सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। ग्यारह मुख वाला रुद्राक्ष रुद्ररूप है। इसको धारण करने से मनुष्य को सब स्थानों पर विजय मिलती है। बारह मुख वाले रुद्राक्ष को बालों में धारण करने से मस्तक पर 11 सूर्यों के समान तेज प्राप्त होता है। तेरह मुख वाला रुद्राक्ष विश्वेदेवों का स्वरूप है। इसे धारण करने से सौभाग्य और मंगल का लाभ मिलता है। चौदह मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात शिव स्वरूप है। इसे भक्तिपूर्वक मस्तक पर धारण करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। इस प्रकार मुखों के भेद से रुद्राक्ष के चौदह भेद बताए गए हैं। हे पार्वती जी! अब मैं तुम्हें रुद्राक्ष धारण के मंत्र सुनाता हूं—(1) 'ॐ ह्रीं नमः', (2) 'ॐ नमः', (3) 'क्लीं नमः', (4) 'ॐ ह्रीं नमः', (5) 'ॐ ह्रीं नमः', (6) 'ॐ ह्रीं हुं नमः', (7) 'ॐ हुं नमः', (8) 'ॐ हुं नमः', (9) 'ॐ हुं नमः', (10) 'ॐ ह्र हुं नमः', (11) 'ॐ ह्रीं हुं नमः', (12) 'ॐ हुं नमः', (13) 'ॐ क्रौं क्षौरो नमः' तथा (14) 'ॐ ह्रीं नमः'। इन चौदह मंत्रों द्वारा क्रमशः एक से लेकर चौदह मुख वाले रुद्राक्ष को धारण करने का विधान है। साधक को नींद और आलस्य का त्याग कर श्रद्धाभक्ति से मंत्रों द्वारा रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

रुद्राक्ष की माला धारण करने वाले मनुष्य को देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी दूर भाग जाते हैं। रुद्राक्षधारी पुरुष को देखकर स्वयं मैं, भगवान विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए धर्म की वृद्धि के लिए भक्तिपूर्वक मंत्रों द्वारा विधिवत रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

मुनीश्वर! भगवान शिव ने देवी पार्वती से जो कुछ कहा था, वह मैंने आपको कह सुनाया है। मैंने आपके समक्ष विद्येश्वर संहिता का वर्णन किया है। यह संहिता संपूर्ण सिद्धियों को देने वाली तथा भगवान शिव की आज्ञा से मोक्ष प्रदान करने वाली है। जो मनुष्य इसे नित्य पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे पुत्र-पौत्रादि के सुख भोगकर, सुखमय जीवन व्यतीत करके अंत में शिवरूप होकर मुक्त हो जाते हैं।

।। विद्येश्वर संहिता संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीरुद्र संहिता

प्रथम खण्ड

पहला अध्याय

ऋषिगणों की वार्ता

जो विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि के एकमात्र कारण हैं, गिरिराजकुमारी उमा के पति हैं, जिनकी कीर्ति का कहीं अंत नहीं है, जो माया के आश्रय होकर भी उससे दूर हैं तथा जिनका स्वरूप दुर्लभ है, मैं उन भगवान शंकर की वंदना करता हूं। जिनकी माया विश्व की सृष्टि करती है। जैसे लोहा चुंबक से आकर्षित होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत जिसके आसपास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने इन प्रपंचों को रचने की विधि बताई है, जो सभी के भीतर अंतर्यामी रूप से विराजमान हैं, मैं उन भगवान शिव को नमन करता हूं।

ऋषि बोले—हे सूत जी! अब आप हमसे भगवान शिव व पार्वती के परम उत्तम व दिव्य स्वरूप का वर्णन कीजिए। सृष्टि की रचना से पूर्व, सृष्टि के मध्यकाल व अंतकाल में महेश्वर किस प्रकार व किस रूप में स्थित होते हैं? सभी लोकों का कल्याण करने वाले भगवान शिव कैसे प्रसन्न होते हैं? तथा प्रसन्न होने पर अपने भक्तों को कौन-कौन से उत्तम फल देते हैं? हमने सुना है कि भगवान शिव महान दयालु हैं। अपने भक्तों को कष्ट में नहीं देख सकते। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवता शिवजी के अंग से ही उत्पन्न हुए हैं। हम पर कृपा कर शिवजी के प्राकट्य, देवी उमा की उत्पत्ति, शिव-उमा विवाह, गृहस्थ धर्म एवं शिवजी के अनंत चरित्रों को सुनाइए।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! आप लोगों के प्रश्न पतित-पावनी श्री गंगाजी के समान हैं। ये सुनने वालों, कहने वालों और पूछने वालों इन तीनों को पवित्र करने वाले हैं। आपकी इस कथा को सुनने की आंतरिक इच्छा है, इसलिए आप धन्यवाद के पात्र हैं। ब्राह्मणो! भगवान शंकर का रूप साधु, राजसी और तामसी तीनों प्रकृति के मनुष्यों को सदा आनंद प्रदान करने वाला है। वे मनुष्य, जिनके मन में कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे-ऐसे महात्मा पुरुष भगवान शिव के गुणों का ज्ञान करते हैं क्योंकि शिव की भक्ति मन और कानों को प्रिय लगने वाली और संपूर्ण मनोरथों को देने वाली है। हे ऋषियो! मैं आपके प्रश्नों के अनुसार ही शिव के चरित्रों का वर्णन करता हूं, आप उसे आदरपूर्वक श्रवण करें। आपके प्रश्नों के अनुसार ही नारद जी ने अपने पिता ब्रह्माजी से यही प्रश्न किया था, तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर शिव चरित्र सुनाया था। उसी संवाद को मैं तुम्हें सुनाता हूं क्योंकि उस संवाद में भवसागर से मुक्त कराने वाले गौरीश की अनेकों आश्चर्यमयी लीलाएं वर्णित हैं।

दूसरा अध्याय

नारद जी की काम वासना

सूत जी बोले—हे ऋषियो! एक समय की बात है। ब्रह्मा पुत्र नारद जी हिमालय पर्वत की एक गुफा में बहुत दिनों से तपस्या कर रहे थे। उन्होंने दृढ़तापूर्वक समाधि लगाई थी और तप करने लगे थे। उनके उग्र तप का समाचार पाकर देवराज इंद्र कांप उठे। उन्होंने सोचा कि नारद मुनि मेरे स्वर्गलोक के राज्य को छीनना चाहते हैं। यह खयाल आते ही इंद्र ने उनकी तपस्या में विघ्न डालने की कोशिश की। उन्होंने कामदेव को बुलाया और कहने लगे—हे कामदेव! तुम मेरे परम मित्र एवं हितैषी हो। नारद हिमाचल पर्वत की गुफा में बैठकर तपस्या कर रहा है। कहीं ऐसा न हो कि वह वरदान में ब्रह्माजी से मेरा स्वर्ग का राज्य ही मांग बैठे। अतः तुम वहां जाकर उसका तप भंग कर दो। यह आज्ञा पाकर कामदेव वसंत को साथ ले बड़े गर्व से उस स्थान पर गए और अपनी सारी कलाएं रच डालीं। कामदेव और वसंत के बहुत प्रयत्न करने पर भी नारद मुनि के मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। महादेव जी के अनुग्रह से उन दोनों का गर्व चूर्ण हो गया।

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि महादेव जी की कृपा से नारद मुनि पर कामदेव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। पहले उस आश्रम में भगवान शिव ने भी तपस्या की थी। उसी स्थान पर उन्होंने ऋषि-मुनियों की तपस्या का नाश करने वाले कामदेव को भस्म कर डाला था। कामदेव को भस्म देखकर उनकी पत्नी रति ने बिलखते हुए भगवान शंकर से उन्हें जीवित करने की प्रार्थना की तथा सभी देवता भी शिवजी से प्रार्थना करने लगे तो भगवान महादेव जी ने कहा था कि कुछ समय पश्चात कामदेव स्वयं जीवित हो जाएंगे। किंतु इस स्थान पर और इसके आस-पास जहां तक भस्म दिखाई देती है, वहां तक की पृथ्वी पर कामदेव की माया और काम बाण का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस प्रकार उस स्थान से कामदेव लज्जित होकर वापस लौट आया। देवराज इंद्र ने जब यह सुना कि नारद जी पर कामदेव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने नारद जी की खूब प्रशंसा की। भगवान शिव की माया के कारण वे भूल गए थे कि शिवजी के शाप के कारण उस स्थान पर कामदेव की माया नहीं चल सकती। नारद जी भगवान शिव की कृपा से बहुत समय तक तपस्या करते रहे। अपने तप को पूर्ण हुआ समझकर नारद जी उठे तो उन्हें कामदेव पर विजय प्राप्त करने का ध्यान आया। तब उन्हें मन ही मन इस बात का घमंड हुआ कि उन्होंने कामदेव पर विजय प्राप्त कर ली है। इस प्रकार अभिमान से उनका ज्ञान नष्ट हो गया। वे यह समझ नहीं सके कि कामदेव के पराजित होने में भगवान शंकर की ही माया थी। तब वे अपनी काम विजय की कथा सुनाने के लिए शीघ्र ही कैलाश पर्वत पर जा पहुंचे और भगवान शिव को नमस्कार करके अपनी तपस्या की सफलता का समाचार तथा कामदेव पर विजय प्राप्त करने का समाचार कह सुनाया।

यह सब सुनकर महादेव जी ने नारद की प्रशंसा करते हुए कहा—हे नारद जी! आप परम धन्य हैं परंतु मेरी एक बात याद रखना कि यह समाचार किसी अन्य देवता को मत सुनाना, विशेषकर भगवान विष्णु से तो इस बात को कदापि न कहना। यह वृत्तांत सबसे छिपाकर रखने योग्य है। तुम मेरे प्रिय हो, इसलिए मैं तुम्हें यह आज्ञा देता हूं कि यह बात किसी के सामने प्रकट मत करना। परंतु वे तो शिव की माया से मोहित हो चुके थे। इसलिए उनकी दी शिक्षा को ध्यान में न रखते हुए वे ब्रह्मलोक चले गए। वहां ब्रह्माजी को नमस्कार कर बोले—मैंने अपने तपोबल से कामदेव को जीत लिया है। यह सुनकर ब्रह्माजी ने भगवान शिव के चरणों का चिंतन करके सारा कारण जान लिया तथा अपने पुत्र नारद को यह सब किसी और से कहने के लिए मना कर दिया।

नारद के मन में अभिमान के अंकुर उत्पन्न हो गए थे जिसके फलस्वरूप उनकी बुद्धि नष्ट हो गई थी। वे तो तुरंत विष्णुलोक पहुंचकर भगवान विष्णु को यह सारा किस्सा सुनाना चाहते थे। अतः शीघ्र ही वे ब्रह्मलोक से चल दिए। नारद मुनि को आते देखकर भगवान विष्णु सिंहासन से उठ खड़े हुए। उन्होंने नारद को गले लगा लिया और आदर सहित आसन पर बैठाया। भगवान शिव के चरणों का स्मरण करके भगवान विष्णु ने नारद जी से पूछा, नारद जी! आप कहां से आ रहे हैं और इस लोक में आपका शुभागमन किसलिए हुआ है? यह सुनकर नारद जी ने अहंकार सहित अपने तप के पूर्ण होने एवं कामदेव पर विजय प्राप्त करने का समस्त हाल उन्हें कह सुनाया। भगवान विष्णु काम के विजय के असली कारण को समझ चुके थे। वे नारद जी से बोले—हे नारद जी! आपकी कीर्ति एवं निर्मल बुद्धि धन्य है। काम-क्रोध एवं लोभ-मोह उन मनुष्यों को पीड़ित करते हैं, जो भक्तिहीन हैं। आप तो ज्ञान, वैराग्य से युक्त एवं ब्रह्मचारी हैं, फिर भला यह काम आपका क्या बिगाड़ सकता था?

देवर्षि नारद बोले—हे भगवन्! यह सब आपकी कृपा का ही फल है। आपकी कृपा के आगे कामदेव की क्या सामर्थ्य है जो मेरा कुछ बिगाड़ सके। मैं तो सदा ही निर्भय हूं। इतना कहकर नारद जी विष्णु भगवान को नमस्कार कर वहां से चल दिए।

तीसरा अध्याय

नारद जी का भगवान विष्णु से उनका रूप मांगना

सूत जी बोले—महर्षियो! नारद जी के चले जाने पर शिवजी की इच्छा से विष्णु भगवान ने एक अद्‌भुत माया रची। उन्होंने जिस ओर नारद जी जा रहे थे, वहां एक सुंदर नगर बना दिया। वह नगर बैकुण्ठलोक से भी अधिक रमणीय था। वहां बहुत से विहार-स्थल थे। उस नगर के राजा का नाम 'शीलनिधि' था। उस राजा की एक बहुत सुंदर कन्या थी। उन्होंने अपनी पुत्री के लिए स्वयंवर का आयोजन किया था। उनकी कन्या का वरण करने के लिए उत्सुक बहुत से राजकुमार पधारे थे। वहां बहुत चहल-पहल थी। इस नगर की शोभा देखते ही नारद जी का मन मोहित हो गया। जब राजा शीलनिधि ने नारद जी को आते देखा तो उन्हें सादर प्रणाम करके स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर उनकी पूजा की। फिर अपनी देव-सुंदरी कन्या को बुलाया जिसने महर्षि के चरणों में प्रणाम किया। नारद जी से उसका परिचय कराते हुए शीलनिधि ने निवेदन किया—महर्षि! यह मेरी पुत्री 'श्रीमती' है। इसके स्वयंवर का आयोजन किया गया है। इस कन्या के गुण दोषों को बताने की कृपा कीजिए।

राजा के ऐसे वचन सुनकर नारद जी बोले—राजन! आपकी कन्या साक्षात लक्ष्मी है। इसका भावी पति भगवान शिव के समान वैभवशाली, त्रिलोकजयी, वीर तथा कामदेव को भी जीतने वाला होगा। ऐसा कहकर नारद मुनि वहां से चल दिए। शिव की माया के कारण वे काम के वशीभूत हो सोचने लगे कि राजकुमारी को कैसे प्राप्त करूं? स्वयंवर में आए सुंदर एवं वैभवशाली राजाओं को छोड़कर भला यह मेरा वरण कैसे करेगी? वे सोचने लगे कि नारियों को सौंदर्य बहुत प्रिय होता है। सौंदर्य को देखकर ही 'श्रीमती' मेरा वरण कर सकती है। ऐसा विचार कर नारद जी फिर विष्णुलोक में जा पहुंचे और उन्हें राजा शीलनिधि की कन्या के स्वयंवर के बारे में बताया तथा उस कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने भगवान विष्णु से प्रार्थना की कि वे अपना रूप उन्हें प्रदान करें ताकि श्रीमती उन्हें ही वरे।

सूत जी कहते हैं—महर्षियो! नारद मुनि की ऐसी बात सुनकर भगवान मधुसूदन हंस पड़े और भगवान शंकर के प्रभाव का अनुभव करके उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया। भगवान विष्णु बोले—हे नारद! वहां आप अवश्य जाइए, मैं आपका हित उसी प्रकार करूंगा, जिस प्रकार पीड़ित व्यक्ति का श्रेष्ठ वैद्य करता है क्योंकि तुम मुझे विशेष प्रिय हो। ऐसा कहकर भगवान विष्णु ने नारद मुनि को वानर का मुख तथा शेष अंगों को अपना मनोहर रूप प्रदान कर दिया। तब नारद जी अत्यंत प्रसन्न होते हुए अपने को परम सुंदर समझकर शीघ्र ही स्वयंवर में आ गए और उस राज्य सभा में जा बैठे। उस सभा में रुद्रगण ब्राह्मण के रूप में बैठे हुए थे। नारद जी का वानर रूप केवल कन्या और रुद्रगणों को ही दिखाई दे रहा था, बाकी सबको नारद जी का वास्तविक रूप ही दिखाई दे रहा था। नारद जी मन ही मन प्रसन्न

होते हुए श्रीमती की प्रतीक्षा कर रहे थे।

हे ऋषियो! वह कन्या हाथ में जयमाला लिए अपनी सखियों के साथ स्वयंवर में आई। उसके हाथों में सोने की सुंदर माला थी। वह शुभलक्षणा राजकुमारी लक्ष्मी के समान अपूर्व शोभा पा रही थी। नारद मुनि का भगवान विष्णु जैसा शरीर और वानर जैसा मुख देख वह कुपित हो गई और उनकी ओर से दृष्टि हटाकर मनोवांछित वर की तलाश में आगे चली गई। सभा में अपने मनपसंद वर को न पाकर वह उदास हो गई। उसने किसी के भी गले में वरमाला नहीं डाली। तभी भगवान विष्णु राजा की वेशभूषा धारण कर वहां आ पहुंचे। विष्णुजी को देखते ही उस परम सुंदरी ने उनके गले में वरमाला डाल दी। विष्णुजी राजकुमारी को साथ लेकर तुरंत अपने लोक को चले गए। यह देखकर नारद जी विचलित हो गए। तब ब्राह्मणों के रूप में उपस्थित रुद्रगणों ने नारद जी से कहा—हे नारद जी! आप व्यर्थ ही काम से मोहित हो सौंदर्य के बल से राजकुमारी को पाना चाहते हैं। पहले जरा अपना वानर के समान मुख तो देख लीजिए। सूत जी बोले—यह वचन सुनकर नारद जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने दर्पण में अपना मुंह देखा। वानर के समान मुख को देखकर वे अत्यंत क्रोधित हो उठे तथा दोनों रुद्रगणों को शाप देते हुए बोले—तुमने एक ब्राह्मण का मजाक उड़ाया है। अतः तुम ब्राह्मण कुल में पैदा होकर भी राक्षस बन जाओ। यह सुनकर वे शिवगण कुछ नहीं बोले बल्कि इसे भगवान शिव की इच्छा मानते हुए उदासीन भाव से अपने स्थान को चले गए और भगवान शिव की स्तुति करने लगे।

चौथा अध्याय

नारद जी का भगवान विष्णु को शाप देना

ऋषि बोले—हे सूत जी! रुद्रगणों के चले जाने पर नारद जी ने क्या किया और वे कहां गए? इस सबके बारे में भी हमें बताइए।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! माया से मोहित नारद जी उन दोनों शिवगणों को शाप देकर भी मोहवश कुछ जान न सके। तत्पश्चात क्रोधित होते हुए वे तालाब के पास पहुंचे और वहां जल में पुनः अपनी परछाईं देखी तो उन्हें फिर वानर जैसी आकृति दिखाई दी। उसे देखकर नारद जी को और अधिक क्रोध चढ़ आया। वे सीधे विष्णुलोक की ओर चल दिए। वहां पहुंचकर भगवान विष्णु से वे बोले—हे हरि! तुम बड़े दुष्ट हो। अपने कपट से विश्व को मोहने वाले तुम दूसरों को सुखी होता नहीं देख सकते। तभी तो तुमने सागर मंथन के समय 'मोहिनी' का रूप धारण कर दैत्यों से अमृत का कलश छीन लिया था और उन्हें अमृत की जगह मदिरा पिलाकर पागल बना दिया था। यदि उस समय भगवान शंकर दया करके विष को न पीते तो तुम्हारा सारा कपट प्रकट हो जाता। तुम्हें कपटपूर्ण चालें अधिक प्रिय हैं। भगवान महादेव जी ने ब्राह्मणों को सर्वोपरि बताया है। आज तुम्हें मैं ऐसी सीख दूंगा, जिससे तुम फिर कभी कहीं भी ऐसा कार्य नहीं कर सकोगे। अब तक तुम्हारा किसी शक्तिशाली मनुष्य से पाला नहीं पड़ा है। इसलिए तुम निडर बने हुए हो परंतु अब तुम्हें तुम्हारी करनी का पूरा फल मिलेगा। माया मोहित नारद जी क्रोध से खिन्न थे। वे भगवान विष्णु को शाप देते हुए बोले—विष्णु! तुमने स्त्री के लिए मुझे व्याकुल किया है। तुम सभी को मोह में डालते हो। तुमने राजा का रूप धारण करके मुझे छला था। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम्हारे जिस रूप ने कपटपूर्वक मुझे छला है, तुम्हें वही रूप मिले। तुम राजा होगे और इसी तरह स्त्री का वियोग भोगोगे, जिस तरह मैं भोग रहा हूं। तुमने जिन वानरों के समान मेरी आकृति बना दी है, वही वानर तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम दूसरों को स्त्री वियोग का दुख देते हो, इसलिए तुम्हें भी यही दुख भोगना पड़ेगा। तुम्हारी स्थिति अज्ञान से मोहित मनुष्य जैसी हो जाएगी।

अज्ञान से मोहित नारद जी का शाप विष्णु भगवान ने स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात उन्होंने महालीला करने वाली मोहिनी माया को समाप्त कर दिया। माया के जाते ही नारद जी का खोया हुआ ज्ञान लौट आया और उनकी बुद्धि पहले की तरह हो गई। उनकी सारी व्याकुलता चली गई तथा मन में आश्चर्य उत्पन्न हो गया। यह सब जानकर नारद जी बहुत पछताने लगे और अपने को धिक्कारते हुए भगवान विष्णु के चरणों में गिर पड़े और उनसे क्षमा मांगने लगे। नारद जी कहने लगे कि मैंने अज्ञानवश होकर और माया के कारण आपको जो शाप दे दिया है, वह झूठा हो जाए। भगवान मेरी बुद्धि खराब हो गई थी, जो मैंने आपके लिए बुरे वचन अपनी जबान से निकाले। मैंने बहुत बड़ा पाप किया है। हे प्रभु! मुझ पर कृपा कर मुझे ऐसा कोई उपाय बताइए जिससे मेरा सारा पाप नष्ट हो जाए। कृपया मुझे प्रायश्चित

का तरीका बताइए। तब श्रीविष्णु ने उन्हें उठाकर मधुर वाणी में कहा—

हे महर्षि! आप दुखी न हों, आप मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। नारद जी आप चिंता मत कीजिए, आप परम धन्य हैं। आपने अहंकार के वशीभूत होकर भगवान शिव की आज्ञा का पालन नहीं किया था। इसलिए उन्होंने ही आपका गर्व नष्ट करने के लिए यह लीला रची थी। वे निर्गुण और निर्विकार हैं और सत, रज और तम आदि गुणों से परे हैं। उन्होंने अपनी माया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों रूपों को प्रकट किया है। निर्गुण अवस्था में उन्हीं का नाम शिव है, वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनंत और महादेव नामों से जाने जाते हैं। उन्हीं की आज्ञा से ब्रह्माजी जगत के स्रष्टा हुए हैं, मैं तीनों लोकों का पालन करता हूं और शिवजी रुद्ररूप में सबका संहार करते हैं। वे शिवस्वरूप सबके साक्षी हैं। वे माया से भिन्न और निर्गुण हैं। वे अपने भक्तों पर सदा दया करते हैं। मैं तुम्हें समस्त पापों का नाश करने वाला, भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला उपाय बताता हूं। अपने सारे शकों एवं चिंताओं को त्यागकर भगवान शंकर की यश और कीर्ति का गुणगान करो और सदा अनन्य भाव से शिवजी के शतनाम स्तोत्र का पाठ करो। उनकी उपासना करो तथा प्रतिदिन उनकी पूजा-अर्चना करो। जो मनुष्य शरीर, मन और वाणी द्वारा भगवान शिव की उपासना करते हैं, उन्हें पण्डित या ज्ञानी कहा जाता है। जो मनुष्य शिवजी की भक्ति करते हैं, उन्हें संसाररूपी भवसागर से तत्काल मुक्ति मिल जाती है। जो लोग पाप रूपी दावानल से पीड़ित हैं, उन्हें शिव नाम रूपी अमृत का पान करना चाहिए। वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात ही ज्ञानी मनुष्यों ने शिवजी की पूजा को जन्म-मरण रूपी बंधनों से मुक्त होने का सर्वश्रेष्ठ साधन बताया है। इसलिए आज से ही रोज भगवान शिव की कथा सुनो और कहा करो तथा उनका पूजन किया करो। अपने हृदय में भगवान शिव के चरणों की स्थापना करो तथा उनके तीर्थों में निवास करते हुए उनकी स्तुति कर उनका गुणगान करो।

इसके बाद नारद जी तुम मेरी आज्ञा से अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए ब्रह्मलोक जाना। वहां अपने पिता ब्रह्माजी की स्तुति करके उनसे शिव महिमा के बारे में पूछना। ब्रह्माजी शिवभक्तों में श्रेष्ठ हैं। वे तुम्हें भगवान शंकर का माहात्म्य और शतनाम स्तोत्र अवश्य सुनाएंगे। आज से तुम शिवभक्ति में लीन हो जाओ। वे अवश्य तुम्हारा कल्याण करेंगे। यह कहकर विष्णुजी अंतर्धान हो गए।

पांचवां अध्याय

नारद जी का शिवतीर्थों में भ्रमण व ब्रह्माजी से प्रश्न

सूत जी बोले—महर्षियो! भगवान श्रीहरि के अंतर्धान हो जाने पर मुनिश्रेष्ठ नारद शिवलिंगों का भक्तिपूर्वक दर्शन करने के लिए निकल गए। इस प्रकार भक्ति-मुक्ति देने वाले अनेक शिवलिंगों के उन्होंने दर्शन किए। जब उन रुद्रगणों ने नारद जी को वहां देखा तो वे दोनों गण अपने शाप की मुक्ति के लिए उनके चरणों पर गिर पड़े और उनसे प्रार्थना करने लगे कि वे उनका उद्धार करें। नारद मुने! हम आपके अपराधी हैं। राजकुमारी श्रीमती के स्वयंवर में आपका मन माया से मोहित था। उस समय भगवान शिव की प्रेरणा से आपने हमें शाप दे दिया था। अब आप हमारी जीवन रक्षा का उपाय कीजिए। हमने अपने कर्मों का फल भोग लिया हौ। कृपा कर हम पर प्रसन्न होकर हमें शापमुक्त कीजिए।

नारद जी ने कहा—हे रुद्रगणों! आप महादेव के गण हैं एवं सभी के लिए आदरणीय हैं। उस समय भगवान शिव की इच्छा से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। इसलिए मोहवश मैंने आपको शाप दे दिया था। आप लोग मेरे इस अपराध को क्षमा कर दें। परंतु मेरा वचन झूठा नहीं हो सकता। इसलिए मैं आपको शाप से मुक्ति का उपाय बताता हूं। मुनिवर विश्रवा के वीर्य द्वारा तुम एक राक्षसी के गर्भ में जन्म लोगे। समस्त दिशाओं में रावण और कुंभकर्ण के नाम से प्रसिद्धि पाओगे। राक्षसराज का पद प्राप्त करोगे। तुम बलवान व वैभव से युक्त होओगे। तुम्हारा प्रताप सभी लोकों में फैलेगा। समस्त ब्रह्माण्ड के राजा होकर भी भगवान शिव के परम भक्तों में होओगे। भगवान शिव के ही दूसरे स्वरूप श्रीविष्णु के अवतार के हाथों से मृत्यु पाकर तुम्हारा उद्धार होगा तथा फिर अपने पद पर प्रतिष्ठित हो जाओगे।

सूत जी कहने लगे कि इस प्रकार नारद जी का कथन सुनकर वे दोनों रुद्रगण प्रसन्न होते हुए वहां से चले गए और नारद जी भी आनंद से सराबोर हो मन ही मन शिवजी का ध्यान करते हुए शिवतीर्थों का दर्शन करने लगे। इसी प्रकार भ्रमण करते-करते वे शिव की प्रिय नगरी काशीपुरी में पहुंचे और काशीनाथ का दर्शन कर उनकी पूजा-उपासना की। श्री नारद जी शिवजी की भक्ति में डूबे, उनका स्मरण करते हुए ब्रह्मलोक को चले गए। वहां पहुंचकर उन्होंने ब्रह्माजी को आदरपूर्वक नमस्कार किया और उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनका हृदय शुद्ध हो चुका था और उनके हृदय में शिवजी के प्रति भक्ति भावना ही थी और कुछ नहीं।

नारद जी बोले—हे पितामह! आप तो परमब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को अच्छी प्रकार से जानते हो। आपकी कृपा से मैंने भगवान विष्णु के माहात्म्य का ज्ञान प्राप्त किया है एवं भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग, तपो मार्ग, दान मार्ग तथा तीर्थ मार्ग के बारे में जाना है परंतु मैं शिव तत्व के ज्ञान को अभी तक नहीं जान पाया हूं। मैं उनकी पूजा विधि को भी नहीं जानता हूं। अतः अब मैं उनके बारे में सभी कुछ जानना चाहता हूं। मैं भगवान शिव के विभिन्न चरित्रों, उनके

स्वरूप तथा वे सृष्टि के आरंभ में, मध्य में, किस रूप में थे, उनकी लीलाएं कैसी होती हैं और प्रलय काल में भगवान शिव कहां निवास करते हैं? उनका विवाह तथा उनके पुत्र कार्तिकेय के जन्म आदि की कथाएं मैं आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूं। भगवान शिव कैसे प्रसन्न होते है और प्रसन्न होने पर क्या-क्या प्रदान करते हैं? इस संपूर्ण वृत्तांत को मुझे बताने की कृपा करें।

अपने पुत्र नारद की ये बातें सुनकर पितामह ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए।

छठा अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा शिवतत्व का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! तुम सदैव जगत के उपकार में लगे रहते हो। तुमने जगत के लोगों के हित के लिए बहुत उत्तम बात पूछी है। जिसके सुनने से मनुष्य के सब जन्मों के पापों का नाश हो जाता है। उस परमब्रह्म शिवतत्व का वर्णन मैं तुम्हारे लिए कर रहा हूं। शिव तत्व का स्वरूप बहुत सुंदर और अद्‌भुत है। जिस समय महाप्रलय आई थी और पूरा संसार नष्ट हो गया था तथा चारों ओर सिर्फ अंधकार ही अंधकार था, आकाश व ब्रह्माण्ड तारों व ग्रहों से रहित होकर अंधकार में डूब गए थे, सूर्य और चंद्रमा दिखाई देने बंद हो गए थे, सभी ग्रहों और नक्षत्रों का कहीं पता नहीं चल रहा था, दिन-रात, अग्नि-जल कुछ भी नहीं था। प्रधान आकाश और अन्य तेज भी शून्य हो गए थे। शब्द, स्पर्श, गंध, रूप, रस का अभाव हो गया था, सत्य-असत्य सबकुछ खत्म हो गया था, तब सिर्फ 'सत्' ही बचा था। उस तत्व को मुनिजन एवं योगी अपने हृदय के भीतर ही देखते हैं। वाणी, नाम, रूप, रंग आदि की वहां तक पहुंच नहीं है।

उस परब्रह्म के विषय में ज्ञान और अज्ञान से किए गए संबोधन के द्वारा कुछ समय बाद अर्थात सृष्टि का समय आने पर एक से अनेक होने के संकल्प का उदय हुआ। तब उन्होंने अपनी लीला से मूर्ति की रचना की। वह मूर्ति संपूर्ण ऐश्वर्य तथा गुणों से युक्त, संपन्न, सर्वज्ञानमयी एवं सबकुछ प्रदान करने वाली है। यही सदाशिव की मूर्ति है। सभी पण्डित, विद्वान इसी प्राचीन मूर्ति को ईश्वर कहते हैं। उसने अपने शरीर से स्वच्छ शरीर वाली एवं स्वरूपभूता शक्ति की रचना की। वही परमशक्ति, प्रकृति गुणमयी और बुद्धित्व की जननी कहलाई। उसे शक्ति, अंबिका, प्रकृति, संपूर्ण लोकों की जननी, त्रिदेवों की माता, नित्या और मूल कारण भी कहते हैं। उसकी आठ भुजाओं एवं मुख की शोभा विचित्र है। उसके मुख के सामने चंद्रमा की कांति भी क्षीण हो जाती है। विभिन्न प्रकार के आभूषण एवं गतियां देवी की शोभा बढ़ाती हैं। वे अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए हैं।

सदाशिव को ही सब मनुष्य परम पुरुष, ईश्वर, शिव-शंभु और महेश्वर कहकर पुकारते हैं। उनके मस्तक पर गंगा, भाल में चंद्रमा और मुख में तीन नेत्र शोभा पाते हैं। उनके पांच मुख हैं तथा दस भुजाओं के स्वामी एवं त्रिशूलधारी हैं। वे अपने शरीर में भस्म लगाए हैं। उन्होंने शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया है। यह परम पावन स्थान काशी नाम से जाना जाता है। यह परम मोक्षदायक स्थान है। इस क्षेत्र में परमानंद रूप 'शिव' पार्वती सहित निवास करते हैं। शिव और शिवा ने प्रलयकाल में भी उस स्थान को नहीं छोड़ा। इसलिए शिवजी ने इसका नाम आनंदवन रखा है।

एक दिन आनंदवन में घूमते समय शिव-शिवा के मन में किसी दूसरे पुरुष की रचना करने की इच्छा हुई। तब उन्होंने सोचा कि इसका भार किसी दूसरे व्यक्ति को सौंपकर हम यहीं

काशी में विराजमान रहेंगे। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने वामभाग के दसवें अंग पर अमृत मल दिया। जिससे एक सुंदर पुरुष वहां प्रकट हुआ, जो शांत और सत्व गुणों से युक्त एवं गंभीरता का अथाह सागर था। उसकी कांति इंद्रनील मणि के समान श्याम थी। उसका पूरा शरीर दिव्य शोभा से चमक रहा था तथा नेत्र कमल के समान थे। उसने हाथ जोड़कर भगवान शिव और शिवा को प्रणाम किया तथा प्रार्थना की कि मेरा नाम निश्चित कीजिए। यह सुनकर भगवान शिव हंसकर बोले कि सर्वत्र व्यापक होने से तुम्हारा नाम 'विष्णु' होगा। तुम भक्तों को सुख देने वाले होओगे। तुम यहीं स्थिर रहकर तप करो। वही सभी कार्यों का साधन है। ऐसा कहकर शिवजी ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया तथा वहां से अंतर्धान हो गए। तब विष्णुजी ने बारह वर्ष तक वहां दिव्य तप किया। तपस्या के कारण उनके शरीर से अनेक जलधाराएं निकलने लगीं। उस जल से सारा सूना आकाश व्याप्त हो गया। वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्शमात्र से पापों का नाश करने वाला था। उस जल में भगवान विष्णु ने स्वयं शयन किया। नार अर्थात जल में निवास करने के कारण ही वे 'नारायण' कहलाए। तभी से उन महात्मा से सब तत्वों की उत्पत्ति हुई। पहले प्रकृति से महान और उससे तीन गुण उत्पन्न हुए तथा उनसे अहंकार उत्पन्न हुआ। उससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध एवं पांच भूत प्रकट हुए। उनसे ज्ञानेंद्रियां एवं कर्मेंद्रियां बनीं। उस समय एकाकार 24 तत्व प्रकृति से प्रकट हुए एवं उनको ग्रहण करके परम पुरुष नारायण भगवान शिवजी की इच्छा से जल में सो गए।

सातवां अध्याय

विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णु के मध्य अग्नि-स्तंभ का प्रकट होना

ब्रह्माजी कहते हैं—हे देवर्षि! जब नारायण जल में शयन करने लगे, तब शिवजी की इच्छा से विष्णुजी की नाभि से एक बहुत बड़ा कमल प्रकट हुआ। उसमें असंख्य नालदण्ड थे। वह पीले रंग का था और उसकी ऊंचाई भी कई योजन थी। कमल सुंदर, अद्‌भुत और संपूर्ण तत्वों से युक्त था। वह रमणीय और पुण्य दर्शनों के योग्य था। तत्पश्चात भगवान शिव ने मुझे अपने दाहिने अंग से उत्पन्न किया। उन महेश्वर ने अपनी माया से मोहित कर नारायण देव के नाभि कमल में मुझे डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे प्रकट किया। इस प्रकार उस कमल से पुत्र के रूप में मुझे जन्म मिला। मेरे चार मुख लाल मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण किए हुए थे। भगवान शिव की माया से मोहित होने के कारण मेरी ज्ञानशक्ति बहुत दुर्लभ हो गई थी और मुझे कमल के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? मेरा कार्य क्या है? मैं किसका पुत्र हूं? किसने मेरा निर्माण किया है? कुछ इसी प्रकार के प्रश्नों ने मुझे परेशानी में डाल दिया था। कुछ क्षण बाद मुझे बुद्धि प्राप्त हुई और मुझे लगा कि इसका पता लगाना बहुत सरल है। इस कमल का उद्‌गम स्थान इस जल में नीचे की ओर है और इसके नीचे मैं उस पुरुष को पा सकूंगा जिसने मुझे प्रकट किया है। यह सोचकर एक नाल को पकड़कर मैं सौ वर्षों तक नीचे की ओर उतरता रहा, परंतु फिर भी मैंने कमल की जड़ को नहीं पाया। इसलिए मैं पुनः ऊपर की ओर बढ़ने लगा। बहुत ऊपर जाने पर भी कमल कोश को नहीं पा सका। तब मैं और अधिक परेशान हो गया। उसी समय भगवान शिव की इच्छा से मंगलमयी आकाशवाणी प्रकट हुई। उस वाणी ने कहा, 'तपस्या करो'।

उस आकाशवाणी को सुनकर अपने पिता का दर्शन करने हेतु मैंने तपस्या करना आरंभ कर दिया और बारह वर्ष तक घोर तपस्या की। तब चार भुजाधारी, सुंदर नेत्रों से शोभित भगवान विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्‌म धारण कर रखे थे। उनका शरीर श्याम कांति से सुशोभित था। उनके मस्तक पर मुकुट विराजमान था तथा उन्होंने पीतांबर वस्त्र और बहुत से आभूषण धारण किए हुए थे। वे करोड़ों कामदेवों के समान मनोहर दिखाई दे रहे थे और सांवली व सुनहरी आभा से शोभित थे। उन्हें वहां देखकर मुझे बहुत हर्ष व आश्चर्य हुआ।

भगवान शिव की लीला से हम दोनों में विवाद छिड़ गया कि हम में बड़ा कौन है? उसी समय हम दोनों के बीच में एक ज्योतिर्मय लिंग प्रकट हो गया। हमने उसका पता लगाने का निश्चय किया। मैंने ऊपर की ओर और विष्णुजी ने नीचे की ओर उस स्तंभ के आरंभ और अंत का पता लगाने के लिए चलना आरंभ किया परंतु हम दोनों को उस स्तंभ का कोई ओर-छोर नहीं मिला। थककर हम दोनों अपने उसी स्थान पर आ गए। हम दोनों ही शिवजी की

माया से मोहित थे। श्रीहरि ने सभी ओर से परमेश्वर शिव को प्रणाम किया। ध्यान करने पर भी हमें कुछ ज्ञात न हो सका। तब मैंने और श्रीहरि ने अपने मन को शुद्ध करते हुए अग्नि स्तंभ को प्रणाम किया।

हम दोनों कहने लगे—महाप्रभु! हम आपके स्वरूप को नहीं जानते। आप जो भी हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं! आप शीघ्र ही हमें अपने असली रूप में दर्शन दें। इस प्रकार हम दोनों अपने अहंकार को भूलकर भगवान शिव को नमस्कार करने लगे। ऐसा करते हुए सौ वर्ष बीत गए।

आठवां अध्याय

ब्रह्मा-विष्णु को भगवान शिव के दर्शन

ब्रह्माजी बोले—मुनिश्रेष्ठ नारद! हम दोनों देवता घमंड को भूलकर निरंतर भगवान शिव का स्मरण करने लगे। हमारे मन में ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट परमेश्वर के वास्तविक रूप का दर्शन करने की इच्छा और प्रबल हो गई। शिव शंकर गरीबों के प्रतिपालक, अहंकारियों के गर्व को चूर करने वाले तथा सबके अविनाशी प्रभु हैं। वे हम पर दया करते हुए हमारी उपासना से प्रसन्न हो गए। उस समय वहां उन सुरश्रेष्ठ से 'ॐ' नाद स्पष्ट रूप से सुनाई देता था। उस नाद के विषय में मैं और विष्णुजी दोनों यही सोच रहे थे कि यह कहां से सुनाई पड़ रहा है। उन्होंने लिंग के दक्षिण भाग में सनातन आदिवर्ण अकार का दर्शन किया। उत्तर भाग में उकार का, मध्य भाग में मकार का और अंत में 'ॐ' नाद का साक्षात दर्शन एवं अनुभव किया। दक्षिण भाग में प्रकट हुए आकार का सूर्य मण्डल के समान तेजोमय रूप देखकर, जब उन्होंने उत्तर भाग में देखा तो वह अग्नि के समान दीप्तिशाली दिखाई दिया। तत्पश्चात 'ॐ' को देखा, जो सूर्य और चंद्रमण्डल की भांति स्थित थे और जिनके शुरू एवं अंत का कुछ पता नहीं था तथा सत्य आनंद और अमृत स्वरूप परब्रह्म परायण ही दृष्टिगोचर हो रहा था। परंतु यह कहां से प्रकट हुआ है? इस अग्नि स्तंभ की उत्पत्ति कहां से हुई है? यह श्रीहरि सोचने लगे तथा इसकी परीक्षा लेने के संबंध में विचार करने लगे। तब श्रीहरि ने भगवान शिव का चिंतन करते हुए वेद और शब्द के आवेश से युक्त हो अनुपम अग्नि स्तंभ के नीचे जाने का निर्णय लिया। मैं और विष्णुजी विश्वात्मा शिव का चिंतन कर रहे थे, तभी वहां एक ऋषि प्रकट हुए। उन्हीं ऋषि के द्वारा परमेश्वर विष्णु ने जाना कि इस शब्द ब्रह्ममय शरीर वाले परम लिंग के रूप में साक्षात परब्रह्मस्वरूप महादेव जी प्रकट हुए हैं। ये चिंतारहित रुद्र हैं। परब्रह्म परमात्मा शिव का वाचक प्रणव ही है। वह एक सत्य परम कारण, आनंद, अकृत, परात्पर और परमब्रह्म है। प्रणव के पहले अक्षर 'अकार' से जगत के बीजभूत अर्थात ब्रह्माजी का बोध होता है। दूसरे अक्षर 'उकार' से सभी के कारण श्रीहरि विष्णु का बोध होता है। तीसरा अक्षर 'मकार' से भगवान शिव का ज्ञान होता है। 'अकार' सृष्टिकर्ता, 'उकार' मोह में डालने वाला और 'मकार' नित्य अनुग्रह करने वाला है। 'मकार' अर्थात भगवान शिव बीजी अर्थात बीज के स्वामी हैं, तो 'अकार' अर्थात ब्रह्माजी बीज हैं। 'उकार' अर्थात विष्णुजी योनि हैं। महेश्वर बीजी, बीज और योनि हैं। इन सभी को नाद कहा गया है। बीजी अपने बीज को अनेक रूपों में विभक्त करते हैं। बीजी भगवान शिव के लिंग से 'उकार' रूप योनि में स्थापित होकर चारों तरफ ऊपर की ओर बढ़ने लगा। वह दिव्य अण्ड कई वर्षों तक जल में रहा।

हजारों वर्ष के बाद भगवान शिव ने इस अण्ड को दो भागों में विभक्त कर दिया। तब इसके दो भागों में से पहला सुवर्णमय कपाल ऊपर की ओर स्थित हो गया, जिससे स्वर्गलोक

उत्पन्न हुआ तथा कपाल के नीचे के भाग से पांच तत्वों वाली पृथ्वी प्रकट हुई। उस अण्ड से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जो समस्त लोकों के सृष्टा हैं। भगवान महेश्वर ही 'अ', 'उ' व 'म' त्रिविध रूपों में वर्णित हैं। इसलिए ज्योतिर्लिंग स्वरूप सदाशिव को 'ॐ' कहा गया है। इसकी सिद्धि यजुर्वेद में भी होती है। देवेश्वर शिव को जानकर विष्णुजी ने शक्ति संभूत मंत्रों द्वारा उत्तम एवं महान अभ्युदय से शोभित भगवान शिव की स्तुति करनी शुरू कर दी। इसी समय मैंने और विश्वपालक भगवान विष्णु ने एक अद्‌भुत व सुंदर रूप देखा। जिसके पांच मुख, दस भुजा, कपूर के समान गौरवर्ण, परम कांतिमय, अनेक आभूषणों से विभूषित, महान उदार, महावीर्यवान और महापुरुषों के लक्षणों से युक्त था और जिसके दर्शन पाकर मैं और विष्णुजी धन्य हो गए। तब परमेश्वर महादेव भगवान प्रसन्न होकर अपने दिव्यमय रूप में स्थित हो गए। 'अकार' उनका मस्तक और आकार ललाट है। इकार दाहिना और ईकार बायां नेत्र है। उकार दाहिना और ऊकार बायां कान है। ऋकार दायां और ॠकार बायां गाल है। लृ, लॄं उनकी नाक के छिद्र हैं। एकार और ऐकार उनके दोनों होंठ हैं। ओकार और औकार उनकी दोनों दंत पक्तियां हैं। अं और अः देवाधिदेव शिव के तालु हैं। 'क' आदि पांच अक्षर उनके दाहिने पांच हाथ हैं और 'च' आदि बाएं पांच हाथ हैं। 'त' और 'ट' से शुरू पांच अक्षर उनके पैर हैं। पकार पेट है, फकार दाहिना और बकार बायां पार्श्व भाग है। भकार कंधा, मकार हृदय है। हकार नाभि है। 'य' से 'स' तक के सात अक्षर सात धातुएं हैं जिनसे भगवान शिव का शरीर बना है।

इस प्रकार भगवान महादेव व भगवती उमा के दर्शन कर हम दोनों कृतार्थ हो गए। हमने उनके चरणों में प्रणाम किया तब हमें पांच कलाओं से युक्त ॐकार जनित मंत्र का साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात महादेव जी 'ॐ तत्वमसि' महावाक्य दृष्टिगोचर हुआ, जो परम उत्तम मंत्ररूप है। इसके बाद धर्म और अर्थ का साधक बुद्धिस्वरूप चौबीस अक्षरीय गायत्री मंत्र प्रकट हुआ, जो पुरुषार्थरूपी फल देने वाला है। तत्पश्चात मृत्युंजय-मंत्र फिर पंचाक्षर मंत्र तथा दक्षिणामूर्ति व चिंतामणि का साक्षात्कार हुआ। इन पांचों मंत्रों को विष्णु भगवान ने ग्रहण कर जपना आरंभ किया। ईशों के मुकुट मणि ईशान हैं, जो पुरातत्व पुरुष हैं, हृदय को प्रिय लगने वाले, जिनके चरण सुंदर हैं, जो सांप को आभूषण के रूप में धारण करते हैं, जिनके पैर व नेत्र सभी ओर हैं, जो मुझ ब्रह्मा के अधिपति, कल्याणकारी तथा सृष्टिपालन एवं संहार करने वाले हैं। उन वरदायक शिव की मेरे साथ भगवान विष्णु ने प्रिय वचनों द्वारा संतुष्ट चित्त से स्तुति की।

नवां अध्याय

देवी उमा एवं भगवान शिव का प्राकट्य एवं उपदेश देना

ब्रह्माजी बोले—नारद! भगवान विष्णु द्वारा की गई अपनी स्तुति सुनकर कल्याणमयी शिव बहुत प्रसन्न हुए और देवी उमा सहित वहां प्रकट हो गए। भगवान शिव के पांच मुख थे और हर मुख में तीन-तीन नेत्र थे, मस्तक में चंद्रमा, सिर पर जटा तथा संपूर्ण अंगों में विभूति लगा रखी थी। दसभुजा वाले गले में नीलकंठ, आभूषणों से विभूषित और माथे पर भस्म का त्रिपुण्ड लगाए थे। उनका यह रूप मन को मोहित करने वाला और परम आनंदमयी था। महादेव जी के साथ भगवती उमा ने भी हमें दर्शन दिए। उनको देखकर मैंने और विष्णुजी ने पुनः उनकी स्तुति करनी शुरू कर दी। तब पापों का नाश करने वाले तथा अपने भक्तों पर सदा कृपादृष्टि रखने वाले महेश्वर ने मुझे और भगवान विष्णु को श्वास से वेद का उपदेश दिया। तत्पश्चात उन्होंने हमें गुप्त ज्ञान प्रदान किया। वेद का ज्ञान प्राप्त कर कृतार्थ हुए विष्णुजी और मैंने भगवान शिव और देवी के सामने अपने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया तथा प्रार्थना की।

विष्णुजी ने पूछा—हे देव! आप किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? तथा किस प्रकार आपकी पूजा और ध्यान करना चाहिए? कृपया कर हमें इसके बारे में बताएं तथा सदुपदेश देकर धन्य करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार श्रीहरि की यह बात सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए कृपानिधान शिव ने प्रीतिपूर्वक यह बात की।

श्रीशिव बोले—मैं तुम दोनों की भक्ति से बहुत प्रसन्न हूं। मेरे इसी रूप का पूजन व चिंतन करना चाहिए। तुम दोनों महाबली हो। मेरे दाएं-बाएं अंगों से तुम प्रकट हुए हो। लोकपिता ब्रह्मा मेरे दाहिने पार्श्व से और पालनहार विष्णु मेरे बाएं पार्श्व से प्रकट हुए हो। मैं तुम पर भली-भांति प्रसन्न हूं और तुम्हें मनोवांछित फल देता हूं। तुम दोनों की भक्ति सुदृढ़ हो। मेरी आज्ञा का पालन करते हुए ब्रह्माजी आप जगत की रचना करें तथा भक्त विष्णुजी आप इस जगत का पालन करें।

भगवान विष्णु बोले—प्रभो! यदि आपके हृदय में हमारी भक्ति से प्रीति उत्पन्न हुई है और आप हम पर प्रसन्न होकर हमें वर देना चाहते हैं, तो हम यही वर मांगते हैं कि हमारे हृदय में सदैव आपकी अनन्य एवं अविचल भक्ति बनी रहे।

ब्रह्माजी बोले—नारद! विष्णुजी की यह बात सुनकर भगवान शंकर प्रसन्न हुए। तब हमने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया।

शिवजी कहते हैं—मैं सृष्टि, पालन और संहार का कर्ता हूं। मेरा स्वरूप सगुण और निर्गुण है! मैं ही सच्चिदानंद निर्विकार परमब्रह्म और परमात्मा हूं। सृष्टि की रचना, रक्षा और प्रलयरूप गुणों के कारण मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण कर तीन रूपों में विभक्त

हुआ हूं। मैं भक्तवत्सल हूं और भक्तों की प्रार्थना को सदैव पूरी करता हूं। मेरे इसी अंश से रुद्र की उत्पत्ति होगी। पूजा की विधि-विधान की दृष्टि से हममें कोई अंतर नहीं होगा। विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र तीनों एकरूप होंगे। इनमें भेद नहीं है। इनमें जो भेद मानेगा, वह घोर नरक को भोगेगा। मेरा शिवरूप सनातन है तथा सभी का मूलभूत रूप है। यह सत्य ज्ञान एवं अनंत ब्रह्म है, ऐसा जानकर मेरे यथार्थ स्वरूप का दर्शन करना चाहिए। मैं स्वयं ब्रह्माजी की भृकुटि से प्रकट होऊंगा। ब्रह्माजी आप सृष्टि के निर्माता बनो, श्रीहरि विष्णु इसका पालन करें तथा मेरे अंश से प्रकट होने वाले रुद्र प्रलय करने वाले हैं। 'उमा' नाम से विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी है। इन्हीं की शक्तिभूता वाग्देवी सरस्वती ब्रह्माजी की अर्द्धांगिनी होंगी और दूसरी देवी, जो प्रकृति देवी से उत्पन्न होंगी, लक्ष्मी रूप में विष्णुजी की शोभा बढ़ाएंगी तथा काली नाम से जो तीसरी शक्ति उत्पन्न होगी, वह मेरे अंशभूत रुद्रदेव को प्राप्त होंगी। कार्यसिद्धि के लिए वे ज्योतिरूप में प्रकट होंगी। उनका कार्य सृष्टि, पालन और संहार का संपादन है। मैं ही सृष्टि, पालन और संहार करने वाले रज आदि तीन गुणों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम से प्रसिद्ध हो तीन रूपों में प्रकट होता हूं। तीनों लोकों का पालन करने वाले श्रीहरि अपने भीतर तमोगुण और बाहर सत्वगुण धारण करते हैं, त्रिलोक का संहार करने वाले रुद्रदेव भीतर सत्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवन की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी बाहर और भीतर से रजोगुणी हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र तीनों देवताओं में गुण हैं तो शिव गुणातीत माने जाते हैं। हे विष्णो! तुम मेरी आज्ञा से सृष्टि का प्रसन्नतापूर्वक पालन करो। ऐसा करने से तुम तीनों लोकों में पूजनीय होओगे।

दसवां अध्याय

श्रीहरि को सृष्टि की रक्षा का भार एवं त्रिदेव को आयुर्बल देना

परमेश्वर शिव बोले—हे उत्तम व्रत का पालन करने वाले विष्णु! तुम सर्वदा सब लोकों में पूजनीय और मान्य होगे। ब्रह्माजी के द्वारा रचे लोक में कोई दुख या संकट होने पर दुखों और संकटों का नाश करने के लिए तुम सदा तत्पर रहना। तुम अनेकों अवतार ग्रहण कर जीवों का कल्याण कर अपनी कीर्ति का विस्तार करोगे। मैं तुम्हारे कार्यों में तुम्हारी सहायता करूंगा और तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूंगा। तुममें और रुद्र में कोई अंतर नहीं है, तुम एक-दूसरे के पूरक हो। जो मनुष्य रुद्र का भक्त होकर तुम्हारी निंदा करेगा, उसका पुण्य नष्ट हो जाएगा और उसे नरक भोगना पड़ेगा। मनुष्यों को तुम भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले और उनके परम पूज्य देव होकर उनका निग्रह, अनुग्रह आदि करोगे।

ऐसा कहकर भगवान शिव ने मेरा हाथ विष्णुजी के हाथ में देकर कहा—तुम संकट के समय सदा इनकी सहायता करना तथा सभी को भोग और मोक्ष प्रदान करना तथा सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूरा करना। तुम्हारी शरण में आने वाले मनुष्य को मेरा आश्रय भी मिलेगा तथा हममें भेद करने वाला मनुष्य नरक में जाएगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षि नारद! भगवान शिव का यह वचन सुनकर मैंने और भगवान विष्णु ने महादेव जी को प्रणाम कर धीरे से कहा—हे करुणानिधि भगवान शंकर! मैं आपकी आज्ञा मानकर सब कार्य करूंगा। मेरा जो भक्त आपकी निंदा करे, उसे आप नरक प्रदान करें। आपका भक्त मुझे अत्यंत प्रिय है।

महादेव जी बोले—अब ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के आयुर्बल को सुनो। चार हजार युग का ब्रह्मा का एक दिन होता है और चार हजार युग की एक रात होती है। तीस दिन का एक महीना और बारह महीनों का एक वर्ष होता है! इस प्रकार के वर्ष-प्रमाण से ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु होती है और ब्रह्मा का एक वर्ष विष्णु का एक दिन होता है। वह भी इसी प्रकार से सौ वर्ष जिएंगे तथा विष्णु का एक वर्ष रुद्र के एक दिन के बराबर होता है और वह भी इसी क्रम से सौ वर्ष तक स्थित रहेंगे। तब शिव के मुख से एक ऐसा श्वास प्रकट होता है, जिसमें उनके इक्कीस हजार छः सौ दिन और रात होते हैं। उनके छः बार सांस अंदर लेने और छोड़ने का एक पल और आठ घड़ी और साठ घड़ी का एक दिन होता है। उनके सांसों की कोई संख्या नहीं है इसलिए वे अक्षय हैं। अतः तुम मेरी आज्ञा से सृष्टि का निर्माण करो। उनके वचनों को सुनकर विष्णुजी ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा कि आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। यह सुनकर भगवान शिव ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अंतर्धान हो गए। उसी समय से लिंग पूजा आरंभ हो गई।

ग्यारहवां अध्याय

शिव पूजन की विधि तथा फल प्राप्ति

ऋषि बोले—हे सूत जी! अब आप हम पर कृपा कर हमें ब्रह्माजी व नारद के संवादों के अनुसार शिव पूजन की विधि बताइए, जिससे भगवान शिव प्रसन्न होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चारों वर्णों को शिव पूजन किस प्रकार करना चाहिए? आपने व्यास जी के मुख से जो सुना हो, कृपया हमें भी बताइए।

महर्षियों के ये वचन सुनकर सूत जी ने ऋषियों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहना आरंभ किया।

सूत जी बोले—हे मुनिश्वर! जैसा आपने पूछा है, वह बड़े रहस्य की बात है। मैंने इसे जैसा सुना है, उसे मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपको सुना रहा हूं। पूर्वकाल में व्यास जी ने सनत्कुमार जी से यही प्रश्न किया था। फिर उपमन्यु जी ने भी इसे सुना था और इसे भगवान श्रीकृष्ण को सुनाया था। वही सब मैं अब ब्रह्मा-नारद संवाद के रूप में आपको बता रहा हूं।

ब्रह्माजी ने कहा—भगवान शिव की भक्ति सुखमय, निर्मल एवं सनातन रूप है तथा समस्त मनोवांछित फलों को देने वाली है। यह दरिद्रता, रोग, दुख तथा शत्रु द्वारा दी गई पीड़ा का नाश करने वाली है। जब तक मनुष्य भगवान शिव का पूजन नहीं करता और उनकी शरण में नहीं जाता, तब तक ही उसे दरिद्रता, दुख, रोग और शत्रुजनित पीड़ा, ये चारों प्रकार के पाप दुखी करते हैं। भगवान शिव की पूजा करते ही ये दुख समाप्त हो जाते हैं और अक्षय सुखों की प्राप्ति होती है। वह सभी भोगों को प्राप्त कर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है। शिवजी का पूजन करने वालों को धन, संतान और सुख की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को सभी कामनाओं तथा प्रयोजनों की सिद्धि के लिए विधि अनुसार पूजा-उपासना करनी चाहिए।

ब्रह्ममुहूर्त में उठकर गुरु तथा शिव का स्मरण करके तीर्थों का चिंतन एवं भगवान विष्णु का ध्यान करें। फिर मेरा स्मरण-चिंतन करके स्तोत्र पाठ पूर्वक शंकरजी का विधिपूर्वक नाम लें। तत्पश्चात उठकर शौचक्रिया करने के लिए दक्षिण दिशा में जाएं तथा मल-मूत्र त्याग करें। ब्राह्मण गुदा की शुद्धि के लिए उसमें पांच बार शुद्ध मिट्टी का लेप करें और धोएं। क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार और शूद्र दो बार यही क्रम करें। तत्पश्चात बाएं हाथ में दस बार और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाकर धोएं। प्रत्येक पैर में तीन-तीन बार मिट्टी लगाएं। स्त्रियों को भी इसी प्रकार क्रम करते हुए शुद्ध मिट्टी से हाथ-पैर धोने चाहिए। ब्राह्मण को बारह अंगुल, क्षत्रिय को ग्यारह, वैश्य को दस और शूद्र को नौ अंगुल की दातुन करनी चाहिए। षष्ठी, अमावस्या, नवमी, व्रत के दिन, सूर्यास्त के समय, रविवार और श्राद्ध के दिन दातुन न करें। दातुन के पश्चात जलाशय में जाकर स्नान करें तथा विशेष देश-काल आने पर मंत्रोच्चारपूर्वक स्नान करें। फिर एकांत स्थान पर बैठकर विधिपूर्वक संध्या करें तथा इसके

उपरांत विधि-विधान से शिवपूजन का कार्य आरंभ करें। तदुपरांत मन को सुस्थिर करके पूजा ग्रह में प्रवेश करें तथा आसन पर बैठें।

सर्वप्रथम गणेश जी का पूजन करें। उसके उपरांत शिवजी की स्थापना करें। तीन बार आचमन कर तीन प्राणायाम करते समय त्रिनेत्रधारी शिव का ध्यान करें। महादेव जी के पांच मुख, दस भुजाएं और जिनकी स्फटिक के समान उज्ज्वल कांति है। सब प्रकार के आभूषण उनके श्रीअंगों को विभूषित करते हैं तथा वे बाघंबर बांधे हुए हैं। फिर प्रणव-मंत्र अर्थात ओंकार से शिवजी की पूजा आरंभ करें। पाद्य, अर्घ्य और आचमन के लिए पात्रों को तैयार करें। नौ कलश स्थापित करें तथा उन्हें कुशाओं से ढककर रखें। कुशाओं से जल लेकर ही सबका प्रक्षालन करें। तत्पश्चात सभी कलशों में शीतल जल डालें। खस और चंदन को पाद्यपात्र में रखें। चमेली के फूल, शीतल चीनी, कपूर, बड़ की जड़ तथा तमाल का चूर्ण बना लें और आचमनीय के पात्र में डालें। इलायची और चंदन को तो सभी पात्रों में डालें। देवाधिदेव महादेव जी के सामने नंदीश्वर का पूजन करें। गंध, धूप तथा दीपों द्वारा भगवान शिव की आराधना आरंभ करें।

'सद्योजातं प्रपद्यामि' मंत्र से शिवजी का आवाहन करें। 'ॐ वामदेवाय नमः' मंत्र द्वारा भगवान महेश्वर को आसन पर स्थापित करें। फिर 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' मंत्र से आराध्य देव का पूजन करें। पाद्य और आचमनीय अर्पित कर अर्घ्य दें। तत्पश्चात गंध और चंदन मिले हुए जल से भगवान शिव को विधिपूर्वक स्नान कराएं। तत्पश्चात पंचामृत से भगवान शिव को स्नान कराएं। पंचामृत के पांचों तत्वों—दूध, दही, शहद, गन्ने का रस तथा घी से नहलाकर महादेव जी के प्रणव मंत्र को बोलते हुए उनका अभिषेक करें। जलपात्रों में शुद्ध व शीतल जल लें। सर्वप्रथम महादेव जी के लिंग पर कुश, अपामार्ग, कपूर, चमेली, चंपा, गुलाब, सफेद कनेर, बेला, कमल और उत्पल पुष्पों एवं चंदन को चढ़ाकर पूजा करें। उन पर अनवरत जल की धारा गिरने की भी व्यवस्था करें। जल से भरे पात्रों से महेश्वर को नहलाएं। मंत्रों से भी पूजा करनी चाहिए। ऐसी पूजा समस्त अभीष्ट फलों को देने वाली है।

पावमान मंत्र, रुद्र मंत्र, नीलरुद्र मंत्र, पुरुष सूक्त, श्री सूक्त, अथर्वशीर्ष मंत्र, शांति मंत्र, भारुण्ड मंत्र, स्थंतरसाम, मृत्युंजय मंत्र एवं पंचाक्षर मंत्रों से पूजन करें। शिवलिंग पर एक सहस्र या एक सौ जलधाराएं गिराने की व्यवस्था करें। स्फटिक के समान निर्मल, अविनाशी, सर्वलोकमय परमदेव, जो आरंभ और अंत से हीन तथा रोगियों के औषधि के समान हैं, जिन्हें शिव के नाम से पहचाना जाता है एवं जो शिवलिंग के रूप में विख्यात हैं, उन भगवान शिव के मस्तक पर धूप, दीप, नैवेद्य और तांबूल आदि मंत्रों द्वारा अर्पित करें। अर्घ्य देकर भगवान शिव के चरणों में फूल अर्पित करें। फिर महेश्वर को प्रणाम कर आत्मा से शिवजी की आराधना करें और प्रार्थना करते समय हाथ में फूल लें। भगवान शिव से क्षमायाचना करते हुए कहें—हे कल्याणकारी शिव! मैंने अनजाने में अथवा जानबूझकर जो जप-तप पूजा आदि सत्कर्म किए हों, आपकी कृपा से वे सफल हों। हर्षित मन से शिवजी को फूल अर्पित करें। स्वस्ति वाचन कर, अनेक आशीर्वाद ग्रहण करें। भगवान शिव से प्रार्थना करें कि 'प्रत्येक जन्म में मेरी शिव में भक्ति हो तथा शिव ही मेरे शरणदाता हों।' इस प्रकार परम

भक्ति से उनका पूजन करें। फिर सपरिवार भगवान को नमस्कार करें।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक प्रतिदिन भगवान शिव की पूजा करता है, उसे सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं। उसे मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। उसके सभी रोग, दुख, दर्द और कष्ट समाप्त हो जाते हैं। भगवान शिव की कृपा से उपासक का कल्याण होता है। भगवान शंकर की पूजा से मनुष्य में सद्गुणों की वृद्धि होती है।

यह सब जानकर नारद अत्यंत प्रसन्न होते हुए अपने पिता ब्रह्माजी को धन्यवाद देते हुए बोले कि आपने मुझ पर कृपा कर मुझे शिव पूजन की अमृत विधि बताई है। शिव भक्ति समस्त भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है।

बारहवां अध्याय

देवताओं को उपदेश देना

नारद जी बोले—ब्रह्माजी! आप धन्य हैं क्योंकि आपने अपनी बुद्धि को शिव चरणों में लगा रखा है। कृपा कर इस आनंदमय विषय का वर्णन सविस्तार पुनः कीजिए।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! एक समय की बात है। मैंने सब ओर से देवताओं और ऋषियों को बुलाया और क्षीरसागर के तट पर भगवान विष्णु की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। भगवान विष्णु प्रसन्न होकर बोले—हे ब्रह्माजी! एवं अन्य देवगणो। आप यहां क्यों पधारे हैं? आपके मन में क्या इच्छा है? आप अपनी समस्या बताइए। मैं निश्चय ही उसे दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

यह सुनकर, ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! दुखों को दूर करने के लिए किस देवता की सेवा करनी चाहिए? तब भगवान विष्णु ने उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—हे ब्रह्मन्! भगवान शिव शंकर ही सब दुखों को दूर करने वाले हैं। सुख की कामना करने वाले मनुष्य को उनकी भक्ति में सदैव लगे रहना चाहिए। उन्हीं में मन लगाए और उन्हीं का चिंतन करे। जो मनुष्य शिव भक्ति में लीन रहता है, जिसके मन में वे विराजमान हैं, वह मनुष्य कभी दुखी नहीं हो सकता। पूर्व जन्म में किए गए पुण्यों एवं शिवभक्ति से ही पुरुषों को सुंदर भवन, आभूषणों से विभूषित स्त्रियां, मन का संतोष, धन-संपदा, स्वस्थ शरीर, पुत्र-पौत्र, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्ग के सुख एवं मोक्ष प्राप्त होता है। जो स्त्री या पुरुष प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिवलिंग की पूजा करता है उसको हर जगह सफलता प्राप्त होती है। वह पापों के बंधन से छूट जाता है।

ब्रह्माजी एवं अन्य गणों ने भगवान विष्णु के उपदेश को ध्यानपूर्वक सुना। भगवान विष्णु को प्रणाम कर, कामनाओं की पूर्ति हेतु उन्होंने शिवलिंग की प्रार्थना की। तब श्री विष्णु ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—हे मुने! तुम मेरी आज्ञा से देवताओं के लिए शिवलिगों का निर्माण करो।’ तब विश्वकर्मा ने मेरी और श्रीहरि की आज्ञा को मानते हुए, देवताओं के लिए उनके अनुसार लिंगों का निर्माण कर उन्हें प्रदान किया।

मुनिश्रेष्ठ नारद! सभी देवताओं को प्राप्त शिवलिंगों के विषय में सुनो। सभी देवता अपने द्वारा प्राप्त लिंग की पूजा उपासना करते हैं। पद्मपराग मणि का लिंग इंद्र को, सोने का कुबेर को, पुखराज का धर्मराज को, श्याम-वर्ण का वरुण को, इंद्रनीलमणि का विष्णु को और ब्रह्माजी हेमलय लिंग को प्राप्त कर उसका भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं। इसी प्रकार विश्वदेव चांदी के लिंग की और वसुगण पीतल के बने लिंग की भक्ति करते हैं। पीतल का अश्विनी कुमारों को, स्फटिक का लक्ष्मी को, तांबे का आदित्यों को और मोती का लिंग चंद्रमा को प्रदान किया गया है। व्रज-लिंग ब्राह्मणों के लिए व मिट्टी का लिंग ब्राह्मणों की स्त्रियों के लिए है। मयासुर चंदन द्वारा बने लिंग का और नागों द्वारा मूंगे के बने शिवलिंग का आदरपूर्वक पूजन किया जाता है। देवी मक्खन के बने लिंग की अर्चना करती हैं। योगीजन भस्म-मय

लिंग की, यक्षगण दधि से निर्मित लिंग की, छायादेवी आटे के लिंग और ब्रह्मपत्नी रत्नमय शिव लिंग की पूजा करती हैं। बाणासुर पार्थिव लिंग की पूजा करता है। भगवान विष्णु ने देवताओं को उनके हित के लिए शिवलिंग के साथ पूजन विधि भी बताई। देवताओं के वचनों को सुनकर मेरे हृदय में हर्ष की अनुभूति हुई। मैंने लोकों का कल्याण करने वाली शिव पूजा की उत्तम विधि बताई। यह शिव भक्ति समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाली है।

इस प्रकार लिंगों के विषय में बताकर ब्रह्माजी ने शिवलिंग व शिवभक्ति की महिमा का वर्णन किया। शिवपूजन भोग और मोक्ष प्रदान करता है। मनुष्य जन्म, उच्च कुल में प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ है। इसलिए मनुष्य रूप में जन्म लेकर मनुष्य को शिव भक्ति में लीन रहना चाहिए। शास्त्रों द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते हुए, जाति के नियमों का पालन करते हुए कर्म करें। संपत्ति के अनुसार दान आदि दें। जप, तप, यज्ञ और ध्यान करें। ध्यान के द्वारा ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है। भगवान शंकर अपने भक्तों के लिए सदा उपलब्ध रहते हैं।

जब तक ज्ञान की प्राप्ति न हो, तब तक कर्मों से ही आराधना करें। इस संसार में जो-जो वस्तु सत-असत रूप में दिखती है अथवा सुनाई देती है, वह परब्रह्म शिव रूप है। तत्वज्ञान न होने तक देव की मूर्ति का पूजन करें। अपनी जाति के लिए अपनाए गए कर्म का प्रयत्नपूर्वक पालन करें। आराध्य देव का पूजन श्रद्धापूर्वक करें क्योंकि पूजन और दान से ही हमारी सभी विघ्न व बाधाएं दूर होती हैं। जिस प्रकार मैले कपड़े पर रंग अच्छे से नहीं चढ़ता, परंतु साफ कपड़े पर अच्छी तरह से रंग चढ़ता है, उसी प्रकार देवताओं की पूजा-अर्चना से मनुष्य का शरीर पूर्णतया निर्मल हो जाता है। उस पर ज्ञान का रंग चढ़ता है और वह भेदभाव आदि बंधनों से छूट जाता है। बंधनों से छूटने पर उसके सभी दुख-दर्द समाप्त हो जाते हैं और मोह-माया से मुक्त मनुष्य शिवपद प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जब तक गृहस्थ आश्रम में रहे, तब तक सभी देवताओं में श्रेष्ठ भगवान शंकर की मूर्ति का प्रेमपूर्वक पूजन करे। भगवान शंकर ही सभी देवों के मूल हैं। उनकी पूजा से बढ़कर कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी से सींचने पर जड़ एवं शाखाएं सभी तृप्त हो जाती हैं उसी प्रकार भगवान शिव की भक्ति है। अतः मनोवांछित फलों की प्राप्ति के लिए शिवजी की पूजा करनी चाहिए। अभीष्ट फलों की प्राप्ति तथा सिद्धि के लिए समस्त प्राणियों को सदैव लोक कल्याणकारी भगवान शिव का पूजन करना चाहिए।

तेरहवां अध्याय

शिव-पूजन की श्रेष्ठ विधि

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! अब मैं शिव पूजन की सर्वोत्तम विधि बताता हूं। यह विधि समस्त अभीष्ट तथा सुखों को प्रदान करने वाली है। उपासक ब्रह्ममुहूर्त में उठकर जगदंबा पार्वती और भगवान शिव का स्मरण करे। दोनों हाथ जोड़कर उनके सामने सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रार्थना करे—हे देवेश! उठिए, हे त्रिलोकीनाथ! उठिए, मेरे हृदय में निवास करने वाले देव उठिए और पूरे ब्रह्माण्ड का मंगल करिए। हे प्रभु! मैं धर्म-अधर्म को नहीं जानता हूं। आपकी प्रेरणा से ही मैं कार्य करता हूं। फिर गुरु चरणों का ध्यान करते हुए कमरे से निकलकर शौच आदि से निवृत्त हों। मिट्टी और जल से देह को शुद्ध करें। दोनों हाथों और पैरों को धोकर दातुन करें तथा सोलह बार जल की अंजलियों से मुंह को धोएं। ये कार्य सूर्योदय से पूर्व ही करें। हे देवताओ और ऋषियो! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावस्या, नवमी और रविवार के दिन दातुन न करें। नदी अथवा घर में समय से स्नान करें। मनुष्य को देश और काल के विरुद्ध स्नान नहीं करना चाहिए। रविवार, श्राद्ध, संक्रांति, ग्रहण, महादान और उपवास वाले दिन गरम जल में स्नान न करें। क्रम से वारों को देखकर ही तेल लगाएं। जो मनुष्य नियमपूर्वक रोज तेल लगाता है, उसके लिए तेल लगाना किसी भी दिन दूषित नहीं है। सरसों के तेल को ग्रहण के दिन प्रयोग में न लाएं। इसके उपरांत स्नान पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके करें।

स्नान के उपरांत स्वच्छ अर्थात धुले हुए वस्त्र को धारण करें। दूसरों के पहने हुए अथवा रात में सोते समय पहने वस्त्रों को बिना धुले धारण न करें। स्नान के बाद पितरों एवं देवताओं को प्रसन्न करने हेतु तर्पण करें। उसके बाद धुले हुए वस्त्र धारण करें और आचमन करें। पूजा हेतु स्थान को गोबर आदि से लीपकर शुद्ध करें। वहां लकड़ी के आसन की व्यवस्था करें। ऐसा आसन अभीष्ट फल देने वाला होता है। उस आसन पर बिछाने के लिए मृग अर्थात हिरन की खाल की व्यवस्था करें। उस पर बैठकर भस्म से त्रिपुण्ड लगाएं। त्रिपुण्ड से जप-तप तथा दान सफल होता है। त्रिपुण्ड लगाकर रुद्राक्ष धारण करें। तत्पश्चात मंत्रों का उच्चारण करते हुए आचमन करें। पूजा सामग्री को एकत्र करें। फिर जल, गंध और अक्षत के पात्र को दाहिने भाग में रखें। फिर गुरु की आज्ञा लेकर और उनका ध्यान करते हुए सपरिवार शिव का पूजन करें। विघ्न विनाशक गणेश जी का बुद्धि-सिद्धि सहित पूजन करें। 'ॐ गणपतये नमः' का जाप करके उन्हें नमस्कार करें तथा क्षमा याचना करें। कार्तिकेय एवं गणेश जी का एक साथ पूजन करें तथा उन्हें बारंबार नमस्कार करें। फिर द्वार पर स्थित लंबोदर नामक द्वारपाल की पूजा करें। तत्पश्चात भगवती देवी की पूजा करें। चंदन, कुमकुम, धूप, दीप और नैवेद्य से शिवजी का पूजन करें। प्रेमपूर्वक नमस्कार करें। अपने घर में मिट्टी, सोना, चांदी, धातु या अन्य किसी धातु की शिव प्रतिमा बनाएं। भक्तिपूर्वक शिवजी की पूजा कर उन्हें नमस्कार

करें।

मिट्टी का शिवलिंग बनाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना करें तथा उसकी प्राण प्रतिष्ठा करें। घर में भी मंत्रोच्चार करते हुए पूजा करनी चाहिए। पूजा उत्तर की ओर मुख करके करनी चाहिए। आसन पर बैठकर गुरु को नमस्कार करें। अर्घ्यपात्र से शिवलिंग पर जल चढ़ाएं। शांत मन से, पूर्ण श्रद्धावनत होकर महादेव जी का आवाहन इस प्रकार करें।

जो कैलाश के शिखर पर निवास करते हैं और पार्वती देवी के पति हैं। जिनके स्वरूप का वर्णन शास्त्रों में है। जो समस्त देवताओं के लिए पूजित हैं। जिनके पांच मुख, दस हाथ तथा प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र हैं। जो सिर पर चंद्रमा का मुकुट और जटा धारण किए हुए हैं, जिनका रंग कपूर के समान है, जो बाघ की खाल बांधते हैं। जिनके गले में वासुकि नामक नाग लिपटा है, जो सभी मनुष्यों को शरण देते हैं और सभी भक्तगण जिनकी जय-जयकार करते हैं। जिनका सभी वेद और शास्त्रों में गुणगान किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं। जो परम आनंद देने वाले तथा भक्तवत्सल हैं, ऐसे देवों के देव महादेव भगवान शिवजी का मैं आवाहन करता हूं।

इस प्रकार आवाहन करने के पश्चात उनका आसन स्थापित करें। आसन के बाद शिवजी को पाद्य और अर्घ्य दें। पंचामृत के द्रव्यों द्वारा शिवलिंग को स्नान कराएं तथा मंत्रों सहित द्रव्य अर्पित करें। स्नान के पश्चात सुगंधित चंदन का लेप करें तथा सुगंधित जलधारा से उनका अभिषेक करें। फिर आचमन कर जल दें और वस्त्र अर्पित करें। मंत्रों द्वारा भगवान शिव को तिल, जौ, गेहूं, मूंग और उड़द अर्पित करें। पुष्प चढ़ाएं। शिवजी के प्रत्येक मुख पर कमल, शतपत्र, शंख-पुष्प, कुश पुष्प, धतूरा, मंदार, द्रोण पुष्प, तुलसीदल तथा बेलपत्र चढ़ाकर पराभक्ति से महेश्वर की विशेष पूजा करें। बेलपत्र समर्पित करने से शिवजी की पूजा सफल होती है। तत्पश्चात सुगंधित चूर्ण तथा सुवासित तेल बड़े हर्ष के साथ भगवान शिव को अर्पित करें। गुग्गुल और अगरु की धूप दें। घी का दीपक जलाएं। प्रभो शंकर! आपको हम नमस्कार करते हैं। आप अर्घ्य को स्वीकार करके मुझे रूप दीजिए, यश दीजिए और भोग व मोक्ष रूपी फल प्रदान कीजिए। यह कहकर अर्घ्य अर्पित करें। नैवेद्य व तांबूल अर्पित करें। पांच बत्ती की आरती करें। चार बार पैरों में, दो बार नाभि के सामने, एक बार मुख के सामने तथा संपूर्ण शरीर में सात बार आरती दिखाएं। तत्पश्चात शिवजी की परिक्रमा करें।

हे प्रभु शिव शंकर! मैंने अज्ञान से अथवा जान-बूझकर जो पूजन किया है, वह आपकी कृपा से सफल हो। हे भगवन मेरे प्राण आप में लगे हैं। मेरा मन सदा आपका ही चिंतन करता है। हे गौरीनाथ! भूतनाथ! आप मुझ पर प्रसन्न होइए। प्रभो! जिनके पैर लड़खड़ाते हैं, उनका आप ही एकमात्र सहारा हैं। जिन्होंने कोई भी अपराध किया है, उनके लिए आप ही शरणदाता हैं। यह प्रार्थना करके पुष्पांजलि अर्पित करें तथा पुनः भगवान शिव को नमस्कार करें।

देवेश्वर प्रभो! अब आप परिवार सहित अपने स्थान को पधारें तथा जब पूजा का समय हो, तब पुनः यहां पधारें। इस प्रकार भगवान शंकर की प्रार्थना करते हुए उनका विसर्जन करें और उस जल को अपने हृदय में लगाकर मस्तक पर लगाएं।

हे महर्षियो! इस प्रकार मैंने आपको शिवपूजन की सर्वोत्तम विधि बता दी है, जो भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है।

ऋषिगण बोले—हे ब्रह्माजी! आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आपने हम पर कृपा कर शिवपूजन की सर्वोत्तम विधि का वर्णन हमसे किया, जिसे सुनकर हम सब कृतार्थ हो गए।

चौदहवां अध्याय

पुष्पों द्वारा शिव पूजा का माहात्म्य

ऋषियों ने पूछा—हे महाभाग! अब आप यह बताइए कि भगवान शिवजी की किन-किन फूलों से पूजा करनी चाहिए? विभिन्न फूलों से पूजा करने पर क्या-क्या फल प्राप्त होते हैं?

सूत जी बोले—हे ऋषियो! यही प्रश्न नारद जी ने ब्रह्माजी से किया था। ब्रह्माजी ने उन्हें पुष्पों द्वारा शिवजी की पूजा के माहात्म्य को बताया।

ब्रह्माजी ने कहा—नारद! लक्ष्मी अर्थात धन की कामना करने वाले मनुष्य को कमल के फूल, बेल पत्र, शतपत्र और शंख पुष्प से भगवान शिव का पूजन करना चाहिए। एक लाख पुष्पों द्वारा भगवान शिव की पूजा होने पर सभी पापों का नाश हो जाता है और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। एक लाख फूलों से शिवजी की पूजा करने से मनुष्य को संपूर्ण अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। जिसके मन में कोई कामना न हो, वह उपासक इस पूजन से शिव स्वरूप हो जाता है।

मृत्युंजय मंत्र के पांच लाख जाप पूरे होने पर महादेव के स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं। एक लाख जाप से शरीर की शुद्धि होती है। दूसरे लाख के जाप से पहले जन्म की बातें याद आ जाती हैं। तीसरे लाख जाप के पूर्ण होने पर इच्छा की गई सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। चौथे लाख जाप पूर्ण होने पर भगवान शिव सपनों में दर्शन देते हैं। पांचवां लाख जाप पूरा होने पर वे प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। मृत्युंजय मंत्र के दस लाख जाप करने से संपूर्ण फलों की सिद्धि होती है। मोक्ष की कामना करने वाले मनुष्य को एक लाख दर्भों (दूर्वा) से शिव पूजन करना चाहिए। आयु वृद्धि की इच्छा करने वाले मनुष्य को एक लाख दुर्वाओं द्वारा पूजन करना चाहिए। पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य को एक लाख धतूरे के फूलों से पूजा करनी चाहिए। पूजन में लाल डंठल वाले धतूरे को शुभदायक माना जाता है। यश प्राप्ति के लिए एक लाख अगस्त्य के फूलों से पूजा करनी चाहिए। तुलसीदल द्वारा शिवजी की पूजा करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। अड़हुल (जवा कुसुम) के एक लाख फूलों से पूजा करने पर शत्रुओं की मृत्यु होती है। एक लाख करवीर के फूलों से शिव पूजन करने पर समस्त रोगों का नाश हो जाता है। दुपहरिया के फूलों के पूजन से आभूषण तथा चमेली के फूलों से पूजन करने से वाहन की प्राप्ति होती है। अलसी के फूलों से शिव पूजन करने से विष्णुजी भी प्रसन्न होते हैं। बेलों के फूलों से अर्घ्य देने पर अच्छे जीवन साथी की प्राप्ति होती है। जूही के फूलों से पूजन करने पर घर में धन-संपदा का वास होता है तथा अन्न के भंडार भर जाते हैं। कनेर के फूलों से पूजा करने पर वस्त्रों की प्राप्ति होती है। सेदुआरि और शेफालिका के फूलों से पूजन करने पर मन निर्मल हो जाता है। हारसिंगार के फूलों से पूजन करने पर सुख-संपत्ति की वृद्धि होती है। राई के एक लाख फूलों से पूजन करने पर शत्रु मृत्यु को प्राप्त होते हैं। चंपा और केवड़े के फूलों से शिव पूजन नहीं करना चाहिए। ये दोनों फूल

महादेव के पूजन के लिए अयोग्य होते हैं। इसके अलावा सभी फूलों का पूजा में उपयोग किया जा सकता है।

महादेवी जी पर चावल चढ़ाने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। ये चावल अखण्डित होने चाहिए। उन्हें विधिपूर्वक अर्पित करें। रुद्रप्रधान मंत्र से पूजन करते हुए, शिवलिंग पर वस्त्र अर्पित करें। गंध, पुष्प और श्रीफल चढ़ाकर धूप-दीप से पूजन करने से पूजा का पूरा फल प्राप्त होता है। उसी प्रांगण में बारह ब्राह्मणों को भोजन कराएं। इससे सांगोपांग पूजा संपन्न होती है। एक लाख तिलों से शिवजी का पूजन करने पर समस्त दुखों और क्लेशों का नाश होता है। जौ के दाने चढ़ाने पर स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होती है। गेहूं के बने भोजन से लाख बार शिव पूजन करने से संतान की प्राप्त होती है। मूंग से पूजन करने पर उपासक को धर्म, अर्थ और काम-भोग की प्राप्ति होती है तथा वह पूजा समस्त सुखों को देने वाली है।

उपासक को निष्काम होकर मोक्ष की प्राप्ति के लिए भगवान शिव की पूजा करनी चाहिए। भक्तिभाव से विधिपूर्वक शिव की पूजा करके जलधारा समर्पित करनी चाहिए। शत रुद्रीय मंत्र से एकादश रुद्र जप, सूक्त, षडंग, महामृत्युंजय और गायत्री मंत्र में नमः लगाकर नामों से अथवा प्रणव 'ॐ' मंत्र द्वारा शास्त्रोक्त मंत्र से जलधारा शिवलिंग पर चढ़ाएं।

धारा पूजन से संतान की प्राप्ति होती है। सुख और संतान की वृद्धि के लिए जलधारा का पूजन उत्तम होता है। उपासक को भस्म धारण प्रेमपूर्वक शुभ एवं दिव्य द्रवों द्वारा शिव पूजन कर उनके सहस्र नामों का जाप करते हुए शिवलिंग पर घी की धारा चढ़ानी चाहिए। इससे वंश का विस्तार होता है। दस हजार मंत्रों द्वारा इस प्रकार किया गया पूजन रोगों को समाप्त करता है तथा मनोवांछित फल की प्राप्त होती है। नपुंसक पुरुष को शिवजी का पूजन घी से करना चाहिए। ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और प्राजापत्य का व्रत रखना चाहिए।

बुद्धिहीन मनुष्य को दूध में शक्कर मिलाकर इसकी धारा शिवलिंग पर चढ़ानी चाहिए। इससे भगवान प्रसन्न होकर उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं। यदि मनुष्य का मन उदास रहता हो, जी उचट जाए, कहीं भी प्रेम न रहे, दुख बढ़ जाए तथा घर में सदैव लड़ाई रहती हो तो मनुष्यों को शक्कर मिश्रित दूध दस हजार मंत्रों का जाप करते हुए शिवलिंग को अर्पित करना चाहिए। खुशबू वाला तेल चढ़ाने पर भोगों की वृद्धि होती है। यदि शिवजी पर शहद चढ़ाया जाए तो टी. बी. जैसा रोग भी समाप्त हो जाता है। शिवजी को गन्ने का रस चढ़ाने से आनंद की प्राप्ति होती है। गंगाजल को चढ़ाने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त वस्तुओं को अर्पित करते समय मृत्युंजय मंत्र के दस हजार जाप करने चाहिए और ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार शिवजी की विधि सहित पूजा करने से पुत्र-पौत्रादि सहित सब सुखों को भोगकर अंत में शिवलोक की प्राप्ति होती है।

पंद्रहवां अध्याय

सृष्टि का वर्णन

नारद जी ने पूछा—हे पितामह! आपने बहुत सी ज्ञान बढ़ाने वाली उत्तम बातों को सुनाया। कृपया इसके अलावा और भी जो आप सृष्टि एवं उससे संबंधित लोगों के बारे में जानते हैं, हमें बताने की कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—मुने! हमें आदेश देकर जब महादेव जी अंतर्धान हो गए तो मैं उनकी आज्ञा का पालन करते हुए ध्यानमग्न होकर अपने कर्तव्यों के विषय में सोचने लगा। उस समय भगवान श्रीहरि विष्णु से ज्ञान प्राप्त कर मैंने सृष्टि की रचना करने का निश्चय किया। भगवान विष्णु मुझे आवश्यक उपदेश देकर वहां से चले गए। भगवान शिव की कृपा से ब्रह्माण्ड से बाहर बैकुण्ठ धाम में जा पहुंचे और वहीं निवास करने लगे। सृष्टि की रचना करने के उद्देश्य से मैंने भगवान शिव और विष्णु का स्मरण करके, जल को हाथ में लेकर ऊपर की ओर उछाला। इससे वहां एक अण्ड प्रकट हुआ, जो चौबीस तत्वों का समूह कहा जाता है। वह विराट आकार वाला अण्ड जड़ रूप में था। उसे चेतनता प्रदान करने हेतु मैं कठोर तप करने लगा और बारह वर्षों तक तप करता रहा। तब श्रीहरि विष्णु स्वयं प्रकट हुए और प्रसन्नतापूर्वक बोले।

श्रीविष्णु ने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। जो इच्छा हो वह वर मांग लो। भगवान शिव की कृपा से मैं सबकुछ देने में समर्थ हूं।

ब्रह्मा बोले—महाभाग! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है। भगवान शंकर ने मुझे आपके हाथों में सौंप दिया है। आपको मैं नमस्कार करता हूं। कृपा कर इस विराट चौबीस तत्वों से बने अण्ड को चेतना प्रदान कीजिए। मेरे ऐसा कहने पर श्रीविष्णु ने अनंतरूप धारण कर अण्ड में प्रवेश किया। उस समय उनके सहस्रों मस्तक, सहस्र आंखें और सहस्र पैर थे। उनके अण्ड में प्रवेश करते ही वह चेतन हो गया। पाताल से सत्य लोक तक अण्ड के रूप में वहां विष्णु भगवान विराजने लगे। अण्ड में विराजमान होने के कारण विष्णुजी 'वैराज पुरुष' कहलाए। पंचमुख महादेव ने अपने निवास हेतु कैलाश नगर का निर्माण किया। देवर्षि! संपूर्ण ब्रह्माण्ड का नाश होने पर भी बैकुण्ठ और कैलाश अमर रहेंगे अर्थात इनका नाश नहीं हो सकता। महादेव की आज्ञा से ही मुझमें सृष्टि की रचना करने की इच्छा उत्पन्न हुई है।

अनजाने में ही मुझसे तमोगुणी सृष्टि की उत्पत्ति हुई, जिसे अविद्या पंचक कहते हैं। उसके पश्चात भगवान शिव की आज्ञा से स्थावरसंज्ञक वृक्ष, जिसे पहला सर्ग कहते हैं, का निर्माण हुआ परंतु पुरुषार्थ का साधक नहीं था। अतः दूसरा सर्ग 'तिर्यक्स्रोता' प्रकट हुआ। यह दुखों से भरा हुआ था। तब ब्रह्माजी द्वारा 'ऊर्ध्वस्रोता' नामक तीसरे सर्ग की रचना की गई। यह सात्विक सर्ग देव सर्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सर्ग सत्यवादी तथा परम सुखदायक है। इसकी रचना के उपरांत मैंने पुनः शिव चिंतन आरंभ कर दिया। तब एक रजोगुणी सृष्टि का

आरंभ हुआ जो 'अर्वाकस्रोता' नाम से विख्यात हुआ। इसके बाद मैंने पांच विकृत सृष्टि और तीन प्राकृत सर्गों को जन्म दिया। पहला 'महत्तत्व', दूसरा 'भूतो' और तीसरा 'वैकारिक' सर्ग है। इसके अलावा पांच विकृत सर्ग हैं। दोनों को मिलाकर कुल आठ सर्ग होते हैं। नवां 'कौमार' सर्ग है जिससे सनत सनंदन कुमारों की रचना हुई है। सनत आदि मेरे चार मानस पुत्र हैं, जो ब्रह्मा के समान हैं। वे महान व्रत का पालन करने वाले हैं। वे संसार से विमुख एवं ज्ञानी हैं। उनका मन शिव चिंतन में लगा रहता है। मुनि नारद! मेरी आज्ञा पाकर भी उन्होंने सृष्टि के कार्य में मन नहीं लगाया। इससे मुझमें क्रोध प्रवेश कर गया। तब भगवान विष्णु ने मुझे समझाया और भगवान शिव की तपस्या करने के लिए कहा। मेरी घोर तपस्या से मेरी भौंहों और नाक के मध्य भाग से महेश्वर की तीन मूर्तियां प्रकट हुईं, जो पूर्णांश, सर्वेश्वर एवं दया सागर थीं और भगवान शिव का अर्धनारीश्वर रूप प्रकट हुआ।

जन्म-मरण से रहित, परम तेजस्वी, सर्वज्ञ, नीलकंठ, साक्षात उमावल्लभ भगवान महादेव के साक्षात दर्शन कर मैं धन्य हो गया। मैंने भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम किया और उन्हें प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करने लगा। तब मैंने उनसे जीवों की रचना करने की प्रार्थना की। मेरी प्रार्थना स्वीकारते हुए देवाधिदेव भगवान शिव ने रुद्र गणों की रचना की। तब मैंने उनसे पुनः कहा—देवेश्वर शिव शंकर! अब आप संसार की मोह-माया में लिप्त ऐसे जीवों की रचना करें, जो मृत्यु और जन्म के बंधन में बंधे हों। यह सुनकर महादेव जी हंसते हुए कहने लगे।

शिवजी ने कहा—हे ब्रह्मा! मैं जन्म और मृत्यु के भय में लिप्त जीवों की रचना नहीं करूंगा क्योंकि वे जीव संसार रूपी बंधन में बंधे होने के कारण दुखों से युक्त होंगे। मैं सिर्फ उनका उद्धार करूंगा। उन्हें परम ज्ञान प्रदान कर उनके ज्ञान का विकास करूंगा। हे प्रजापते! इन जीवों की रचना आप करें। मोह-माया के बंधनों में बंधे इस प्रकार के जीवों की सृष्टि करने पर भी आप इस माया में नहीं बंधेंगे। मुझसे इस प्रकार कहकर महादेव शिव शंकर अपने पार्षदों के साथ वहां से अंतर्धान हो गए।

सोलहवां अध्याय

सृष्टि की उत्पत्ति

ब्रह्माजी बोले—नारद! शब्द आदि पंचभूतों द्वारा पंचकरण करके उनके स्थूल, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, वृक्ष और कला आदि से युगों और कालों की मैंने रचना की तथा और भी कई पदार्थ मैंने बनाए। उत्पत्ति और विनाश वाले पदार्थों का भी मैंने निर्माण किया है परंतु जब इससे भी मुझे संतोष नहीं हुआ तो मैंने मां अंबा सहित भगवान शिव का ध्यान करके सृष्टि के अन्य पदार्थों की रचना की और अपने नेत्रों से मरीच को, हृदय से भृगु को, सिर से अंगिरा को, कान से मुनिश्रेष्ठ पुलह को, उदान से पुलस्त्य को, समान से वशिष्ठ को, अपान से कृतु को, दोनों कानों से अत्री को, प्राण से दक्ष को और गोद से तुमको, छाया से कर्दम मुनि को उत्पन्न किया। सब साधनाओं के साधन धर्म को भी मैंने अपने संकल्प से प्रकट किया। मुनिश्रेष्ठ! इस तरह साधकों की रचना करके, महादेव जी की कृपा से मैंने अपने को कृतार्थ माना। मेरे संकल्प से उत्पन्न धर्म मेरी आज्ञा से मानव का रूप धारण कर साधन में लग गए। इसके उपरांत मैंने अपने शरीर के विभिन्न अंगों से देवता व असुरों के रूप में अनेक पुत्रों की रचना करके उन्हें विभिन्न शरीर प्रदान किए। तत्पश्चात भगवान शिव की प्रेरणा से मैं अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर दो रूपों वाला हो गया। मैं आधे शरीर से पुरुष व आधे से नारी हो गया। पुरुष स्वयंभुव मनु नाम से प्रसिद्ध हुए एवं उच्चकोटि के साधक कहलाए। नारी रूप से शतरूपा नाम वाली योगिनी एवं परम तपस्विनी स्त्री उत्पन्न हुई। मनु ने वैवाहिक विधि से अत्यंत सुंदरी, शतरूपा का पाणिग्रहण किया और मैथुन द्वारा सृष्टि को उत्पन्न करने लगे। उन्होंने शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नामक तीन पुत्रियां प्राप्त कीं। आकूति का 'रुचि' मुनि से, देवहूति का 'कर्दम' मुनि से तथा प्रसूति का 'दक्ष प्रजापति' के साथ विवाह कर दिया गया। इनकी संतानों से पूरा जगत चराचर हो गया।

रुचि और आकूति के वैवाहिक संबंध में यज्ञ और दक्षिणा नामक स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। यज्ञ की दक्षिणा से बारह पुत्र हुए। मुने! कर्दम और देवहूति के संबंध से बहुत सी पुत्रियां पैदा हुईं। दक्ष और प्रसूति से चौबीस कन्याएं हुईं। दक्ष ने तेरह कन्याओं का विवाह धर्म से कर दिया। ये तेरह कन्याएं—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शांति, सिद्धि और कीर्ति हैं। अन्य ग्यारह कन्याओं—ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा का विवाह भृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वशिष्ठ, अग्नि और पितर नामक मुनियों से संपन्न हुआ। इनकी संतानों से पूरा त्रिलोक भर गया।

अंबिका पति महादेव जी की आज्ञा से बहुत से प्राणी श्रेष्ठ मुनियों के रूप में उत्पन्न हुए। कल्पभेद से दक्ष की साठ कन्याएं हुईं। उनमें से दस कन्याओं का विवाह धर्म से, सत्ताईस का

चंद्रमा से, तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप ऋषि से संपन्न हुआ। नारद! उन्होंने चार कन्याएं अरिष्टनेमि को ब्याह दीं। भृगु, अंगिरा और कुशाश्व से दो-दो कन्याओं का विवाह कर दिया। कश्यप ऋषि की संतानों से संपूर्ण त्रिलोक आलोकित है। देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा लताएं आदि कश्यप पत्नियों से पैदा हुए हैं। इस तरह भगवान शंकर की आज्ञा से ब्रह्माजी ने पूरी सृष्टि की रचना की। सर्वव्यापी शिवजी द्वारा तपस्या के लिए प्रकट देवी, जिन्हें रुद्रदेव ने त्रिशूल के अग्रभाग पर रखकर उनकी रक्षा की वे सती देवी ही दक्ष से प्रकट हुई थीं। उन्होंने भक्तों का उद्धार करने के लिए अनेक लीलाएं कीं। इस प्रकार देवी शिवा ही सती के रूप में भगवान शंकर की अर्धांगिनी बनीं। परंतु अपने पिता के यज्ञ में अपने पति का अपमान देखकर उन्होंने अपने शरीर को यज्ञ की अग्नि में भस्म कर दिया। देवताओं की प्रार्थना पर ही वे मां सती पार्वती के रूप में प्रकट हुईं और कठिन तपस्या करके उन्होंने पुनः भगवान भोलेनाथ को प्राप्त कर लिया। वे इस संसार में कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयंती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अंबा, मृडानी और सर्वमंगला आदि अनेक नामों से पूजी जाती हैं। देवी के ये नाम भोग और मोक्ष को देने वाले हैं।

मुनि नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें सृष्टि की उत्पत्ति की कथा सुनाई है। पूरा ब्रह्माण्ड भगवान शिव की आज्ञा से मेरे द्वारा रचा गया है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आदि तीनों देवता उन्हीं महादेव के अंश हैं। भगवान शिव निर्गुण और सगुण हैं। वे शिवलोक में शिवा के साथ निवास करते हैं।

सत्रहवां अध्याय

पापी गुणनिधि की कथा

सूत जी कहते हैं—हे ऋषियो! तत्पश्चात नारद जी ने विनयपूर्वक प्रणाम किया और उनसे पूछा—भगवन्! भगवान शंकर कैलाश पर कब गए और महात्मा कुबेर से उनकी मित्रता कहां और कैसे हुई? प्रभु शिवजी कैलाश पर क्या करते हैं? कृपा कर मुझे बताइए। इसे सुनने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूं।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैं तुम्हें चंद्रमौलि भगवान शिव के विषय में बताता हूं। कांपिल्य नगर में यज्ञ दत्त दीक्षित नामक एक ब्राह्मण रहते थे। जो अत्यंत प्रसिद्ध थे। वे यज्ञ विद्या में बड़े पारंगत थे। उनका गुणनिधि नामक एक आठ वर्षीय पुत्र था। उसका यज्ञोपवीत हो चुका था और वह भी बहुत सी विद्याएं जानता था। परंतु वह दुराचारी और जुआरी हो गया। वह हर वक्त खेलता-कूदता रहता था तथा गाने बजाने वालों का साथी हो गया था। माता के बहुत कहने पर भी वह पिता के समीप नहीं जाता था और उनकी किसी आज्ञा को नहीं मानता था। उसके पिता घर के कार्यों तथा दीक्षा आदि देने में लगे रहते थे। जब घर पर आकर अपनी पत्नी से गुणनिधि के बारे में पूछते तो वह झूठ कह देती कि वह कहीं स्नान करने या देवताओं का पूजन करने गया है। केवल एक ही पुत्र होने के कारण वह अपने पुत्र की कमियों को छुपाती रहती थी। उन्होंने अपने पुत्र का विवाह भी करा दिया। माता नित्य अपने पुत्र को समझाती थी। वह उसे यह भी समझाती थी कि तुम्हारी बुरी आदतों के बारे में तुम्हारे पिता को पता चल गया तो वे क्रोध के आवेश में हम दोनों को मार देंगे। परंतु गुणनिधि पर मां के समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

एक दिन उसने अपने पिता की अंगूठी चुरा ली और उसे जुए में हार आया। दैवयोग से उसके पिता को अंगूठी के विषय में पता चल गया। जब उन्होंने अंगूठी जुआरी के हाथ में देखी और उससे पूछा तो जुआरी ने कहा—मैंने कोई चोरी नहीं की है। अंगूठी मुझे तुम्हारे पुत्र ने ही दी है। यही नहीं, बल्कि उसने और जुआरियों को भी बहुत-सारा धन घर से लाकर दिया है। परंतु आश्चर्य तो यह है कि तुम जैसे पण्डित भी अपने पुत्र के लक्षणों को नहीं जान पाए। यह सारी बातें सुनकर पंडित दीक्षित का सिर शर्म से झुक गया। वे सिर झुकाकर और अपना मुंह ढककर अपने घर की ओर चल दिए। घर पहुंचकर, गुस्से से उन्होंने अपनी पत्नी को पुकारा। अपनी पत्नी से उन्होंने पूछा, तेरा लाडला पुत्र कहां गया है? मेरी अंगूठी जो मैंने सुबह तुम्हें दी थी, वह कहां है? मुझे जल्दी से दो। पंडित की पत्नी ने फिर झूठ बोल दिया, मुझे स्मरण नहीं है कि वह कहां है। अब तो दीक्षित जी को और भी क्रोध आ गया। वे अपनी पत्नी से बोले—तू बड़ी सत्यवादिनी है। इसलिए मैं जब भी गुणनिधि के बारे में पूछता हूं, तब मुझे अपनी बातों से बहला देती है। यह कहकर दीक्षित जी घर के अन्य सामानों को ढूंढ़ने लगे किंतु उन्हें कोई वस्तु न मिली, क्योंकि वे सब वस्तुएं गुणनिधि जुए में हार चुका था। क्रोध

में आकर पंडित ने अपनी पत्नी और पुत्र को घर से निकाल दिया और दूसरा विवाह कर लिया।

अठारहवां अध्याय

गुणनिधि को मोक्ष की प्राप्ति

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब यह समाचार गुणनिधि को मिला तो उसे अपने भविष्य की चिंता हुई। वह कई दिनों तक भूखा-प्यासा भटकता रहा। एक दिन भूख-प्यास से व्याकुल वह एक शिव मंदिर के पास बैठ गया। एक शिवभक्त अपने परिवार सहित, शिव पूजन के लिए विविध सामग्री लेकर वहां आया था। उसने परिवार सहित भगवान शिव का विधि-विधान से पूजन किया और नाना प्रकार के पकवान शिवलिंग पर चढ़ाए।

पूजन के बाद वे लोग वहां से चले गए तो गुणनिधि ने भूख से मजबूर होकर उस भोग को चोरी करने का विचार किया और मंदिर में चला गया। उस समय अंधेरा हो चुका था इसलिए उसने अपने वस्त्र को जलाकर उजाला किया। यह मानो उसने भगवान शिव के सम्मुख दीप जलाकर दीपदान किया था। जैसे ही वह सब भोग उठाकर भागने लगा उसके पैरों की धमक से लोगों को पता चल गया कि उसने मंदिर में चोरी की है। सभी उसे पकड़ने के लिए दौड़े और उसका पीछा करने लगे। नगर के लोगों ने उसे खूब मारा। उनकी मार को उसका भूखा शरीर सहन नहीं कर सका। उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

उसके कुकर्मों के कारण यमदूत उसको बांधकर ले जा रहे थे। तभी भगवान शिव के पार्षद वहां आ गए और गुणनिधि को यमदूतों के बंधनों से मुक्त करा दिया। यमदूतों ने शिवगणों को नमस्कार किया और बताया कि यह बड़ा पापी और धर्म-कर्म से हीन है। यह अपने पिता का भी शत्रु है। इसने शिवजी के भोग की भी चोरी की है। इसने बहुत पाप किए हैं। इसलिए यह यमलोक का अधिकारी है। इसे हमारे साथ जाने दें ताकि विभिन्न नरकों को यह भोग सके। तब शिव गणों ने उत्तर दिया कि निश्चय ही गुणनिधि ने बहुत से पाप कर्म किए हैं परंतु इसने कुछ पुण्य कर्म भी किए हैं। जो संख्या में कम होने पर भी पापकर्मों को नष्ट करने वाले हैं। इसने रात्रि में अपने वस्त्र को फाड़कर शिवलिंग के समक्ष दीपक में बत्ती डालकर उसे जलाया और दीपदान किया।

इसने अपने पिता के श्रीमुख से एवं मंदिर के बाहर बैठकर शिवगुणों को सुना है और ऐसे ही और भी अनेक धर्म-कर्म इसने किए हैं। इतने दिनों तक भूखा रहकर इसने व्रत किया और शिवदर्शन तथा शिव पूजन भी अनेकों बार किया है। इसलिए यह हमारे साथ शिवलोक को जाएगा। वहां कुछ दिनों तक निवास करेगा। जब इसके संपूर्ण पापों का नाश हो जाएगा तो भगवान शिव की कृपा से यह कलिंग देश का राजा बनेगा। अतः यमदूतो, तुम अपने लोक को लौट जाओ। यह सुनकर यमदूत यमलोक को चले गए। उन्होंने यमराज को इस विषय में सूचना दे दी और यमराज ने इसको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात गुणनिधि नामक ब्राह्मण को लेकर शिवगण शिवलोक को चल दिए। कैलाश पर भगवान शिव और देवी उमा विराजमान थे। उसे उनके सामने लाया गया। गुणनिधि ने

भगवान शिव-उमा की चरण वंदना की और उनकी स्तुति की। उसने महादेव से अपने किए कर्मों के बारे में क्षमा याचना की। भगवान ने उसे क्षमा प्रदान कर दी। वहां शिवलोक में कुछ दिन निवास करने के बाद गुणनिधि कलिंग देश के राजा 'अरिंदम' के पुत्र दम के रूप में विख्यात हुआ।

हे नारद! शिवजी की थोड़ी सी सेवा भी उसके लिए अत्यंत फलदायक हुई। इस गुणनिधि के चरित्र को जो कोई पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी सभी कामनाएं पूरी होती हैं तथा वह मनुष्य सुख-शांति प्राप्त करता है।

उन्नीसवां अध्याय

गुणनिधि को कुबेर पद की प्राप्ति

नारद जी ने प्रश्न किया—हे ब्रह्माजी! अब आप मुझे यह बताइए कि गुणनिधि जैसे महापापी मनुष्य को भगवान शिव द्वारा कुबेर पद क्यों और कैसे प्रदान किया गया? हे प्रभु! कृपा कर इस कथा को भी बताइए। ब्रह्माजी बोले—नारद! शिवलोक में सारे दिव्य भोगों का उपभोग तथा उमा महेश्वर का सेवन कर, वह अगले जन्म में कलिंग के राजा अरिंदम का पुत्र हुआ। उसका नाम दम था। बालक दम की भगवान शंकर में असीम भक्ति थी। वह सदैव शिवजी की सेवा में लगा रहता था। वह अन्य बालकों के साथ मिलकर शिव भजन करता। युवा होने पर उसके पिता अरिंदम की मृत्यु के पश्चात दम को राजसिंहासन पर बैठाया गया।

राजा दम सब ओर शिवधर्म का प्रचार और प्रसार करने लगे। वे सभी शिवालयों में दीप दान करते थे। उनकी शिवजी में अनन्य भक्ति थी। उन्होंने अपने राज्य में रहने वाले सभी ग्रामाध्यक्षों को यह आज्ञा दी थी कि 'शिव मंदिर' में दीपदान करना सबके लिए अनिवार्य है। अपने गांव के आस-पास जितने शिवालय हैं, वहां सदा दीप जलाना चाहिए। राजा दम ने आजीवन शिव धर्म का पालन किया। इस तरह वे बड़े धर्मात्मा कहलाए। उन्होंने शिवालयों में बहुत से दीप जलवाए। इसके फलस्वरूप वे दीपों की प्रभा के आश्रय हो मृत्योपरांत अलकापुरी के स्वामी बने।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! भगवान शिव का पूजन व उपासना महान फल देने वाली है। दीक्षित के पुत्र गुणनिधि ने, जो पूर्ण अधर्मी था, भगवान शिव की कृपा पाकर दिक्पाल का पद पा लिया था। अब मैं तुम्हें उसकी भगवान शिव के साथ मित्रता के विषय में बताता हूं।

नारद! बहुत पहले की बात है। मेरे मानस पुत्र पुलस्त्य से विश्रवा का जन्म हुआ और विश्रवा के पुत्र कुबेर हुए। उन्होंने पूर्वकाल में बहुत कठोर तप किया। उन्होंने विश्वकर्मा द्वारा रचित अलकापुरी का उपभोग किया। मेघवाहन कल्प के आरंभ होने पर वे कुबेर के रूप में घोर तप करने लगे। वे भगवान शिव द्वारा प्रकाशित काशी पुरी में गए और अपने मन के रत्नमय दीपों से ग्यारह रुद्रों को उद्बोधित कर वे तन्मयता से शिवजी के ध्यान में मग्न होकर निश्चल भाव से उनकी उपासना करने लगे। वहां उन्होंने शिवलिंग की प्रतिष्ठा की। उत्तम पुष्पों द्वारा शिवलिंग का पूजन किया। कुबेर पूरे मन से तप में लगे थे। उनके पूरे शरीर में केवल हड्डियों का ढांचा और चमड़ी ही बची थी। इस प्रकार उन्होंने दस हजार वर्षों तक तपस्या की। तत्पश्चात भगवान शिव अपनी दिव्य शक्ति उमा के भव्य रूप के साथ कुबेर के पास गए। अलकापति कुबेर मन को एकाग्र कर शिवलिंग के सामने तपस्या में लीन थे। भगवान शिव ने कहा—अलकापते! मैं तुम्हारी भक्ति और तपस्या से प्रसन्न हूं। तुम मुझसे अपनी इच्छानुसार वर मांग सकते हो। यह सुनकर जैसे ही कुबेर ने आंखें खोलीं तो उन्हें अपने सामने भगवान नीलकंठ खड़े दिखाई दिए। उनका तेज सूर्य के समान था। उनके मस्तक पर चंद्रमा अपनी

चांदनी बिखेर रहा था। उनके तेज से कुबेर की आंखें चौंधिया गईं। तत्काल उन्होंने अपनी आंखें बंद कर लीं। वे भगवान शिव से बोले—भगवन्! मेरे नेत्रों को वह शक्ति दीजिए, जिससे मैं आपके चरणारविंदों का दर्शन कर सकूं।

कुबेर की बात सुनकर भगवान शिव ने अपनी हथेली से कुबेर को स्पर्श कर देखने की शक्ति प्रदान की। दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर वे आंखें फाड़-फाड़कर देवी उमा की ओर देखने लगे। वे सोचने लगे कि भगवान शिव के साथ यह सर्वांग सुंदरी कौन है? इसने ऐसा कौन सा तप किया है जो इसे भगवान शिव की कृपा से उनका सामीप्य, रूप और सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे देवी उमा को निरंतर देखते जा रहे थे। देवी को घूरने के कारण उनकी बायीं आंख फूट गई। शिवजी ने उमा से कहा—उमे! यह तुम्हारा पुत्र है। यह तुम्हें क्रूर दृष्टि से नहीं देख रहा है। यह तुम्हारे तप बल को जानने की कोशिश कर रहा है, फिर भगवान शिव ने कुबेर से कहा—मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें वर देता हूं कि तुम समस्त निधियों और गुह्य शक्तियों के स्वामी हो जाओ। सुव्रतों, यक्षों और किन्नरों के अधिपति होकर धन के दाता बनो। मेरी तुमसे सदा मित्रता रहेगी और मैं तुम्हारे पास सदा निवास करूंगा अर्थात तुम्हारे स्थान अलकापुरी के पास ही मैं निवास करूंगा। कुबेर अब तुम अपनी माता उमा के चरणों में प्रणाम करो। ये ही तुम्हारी माता हैं। ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार भगवान शिव ने देवी से कहा—हे देवी! यह आपके पुत्र के समान है। इस पर अपनी कृपा करो।' यह सुनकर उमा देवी बोली—वत्स! तुम्हारी, भगवान शिव में सदैव निर्मल भक्ति बनी रहे। बायीं आंख फूट जाने पर तुम एक ही पिंगल नेत्र से युक्त रहो। महादेव जी ने जो वर तुम्हें प्रदान किए हैं, वे सुलभ हैं। मेरे रूप से ईर्ष्या के कारण तुम कुबेर नाम से प्रसिद्ध होगे। कुबेर को वर देकर भगवान शिव और देवी उमा अपने धाम को चले गए। इस प्रकार भगवान शिव और कुबेर में मित्रता हुई और वे अलकापुरी के निकट कैलाश पर्वत पर निवास करने लगे।

नारद जी ने कहा—ब्रह्माजी! आप धन्य हैं। आपने मुझ पर कृपा कर मुझे इस अमृत कथा के बारे में बताया है। निश्चय ही, शिव भक्ति दुखों को दूर कर समस्त सुख प्रदान करने वाली है।

बीसवां अध्याय

भगवान शिव का कैलाश पर्वत पर गमन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद मुनि! कुबेर के कैलाश पर्वत पर तप करने से वहां पर भगवान शिव का शुभ आगमन हुआ। कुबेर को वर देने वाले विश्वेश्वर शिव जब निधिपति होने का वर देकर अंतर्धान हो गए, तब उनके मन में विचार आया कि मैं अपने रुद्र रूप में, जिसका जन्म ब्रह्माजी के ललाट से हुआ है और जो संहारक है, कैलाश पर्वत पर निवास करूंगा। शिव की इच्छा से कैलाश जाने के इच्छुक रुद्र देव ने बड़े जोर-जोर से अपना डमरू बजाना शुरू कर दिया।

वह ध्वनि उत्साह बढ़ाने वाली थी। डमरू की ध्वनि तीनों लोकों में गूंज रही थी। उस ध्वनि में सुनने वालों को अपने पास आने का आग्रह था। उस डमरू ध्वनि को सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता, ऋषि-मुनि, वेद-शास्त्रों को जानने वाले सिद्ध लोग, बड़े उत्साहित होकर कैलाश पर्वत पर पहुंचे। भगवान शिव के सारे पार्षद और गणपाल जहां भी थे वे कैलाश पर्वत पर पहुंचे। साथ ही असंख्य गणों सहित अपनी लाखों-करोड़ों भयावनी भूत-प्रेतों की सेना के साथ स्वयं शिवजी भी वहां पहुंचे। सभी गणपाल सहस्रों भुजाओं से युक्त थे। उनके मस्तक पर जटाएं थीं। सभी चंद्रचूड़, नीलकण्ठ और त्रिलोचन थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट से वे अलंकृत थे।

भगवान शिव ने विश्वकर्मा को कैलाश पर्वत पर निवास बनाने की आज्ञा दी। अपने व अपने भक्तों के रहने के लिए योग्य आवास तैयार करने का आदेश दिया। विश्वकर्मा ने आज्ञा पाते ही अनेकों प्रकार के सुंदर निवास स्थान वहां बना दिए। उत्तम मुहूर्त में उन्होंने वहां प्रवेश किया। इस मधुर बेला पर सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों और सिद्धों सहित ब्रह्मा और विष्णुजी ने शिवजी व उमा का अभिषेक किया। विभिन्न प्रकार से उनकी पूजा-अर्चना और स्तुति की। प्रभु की आरती उतारी। उस समय आकाश में फूलों की वर्षा हुई। इस समय चारों ओर भगवान शिव तथा देवी उमा की जय-जयकार हो रही थी। सभी की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार वरदान दिया तथा उन्हें अभीष्ट और मनोवांछित वस्तुएं भेंट कीं।

तत्पश्चात भगवान शंकर की आज्ञा लेकर सभी देवता अपने-अपने निवास को चले गए। कुबेर भी भगवान शिव की आज्ञा पाकर अपने स्थान अलकापुरी को चले गए। तत्पश्चात भगवान शंभु वहां निवास करने लगे। वे योग साधना में लीन होकर ध्यान में मग्न रहते। कुछ समय तक वहां अकेले निवास करने के बाद उन्होंने दक्षकन्या देवी सती को पत्नी रूप में प्राप्त कर लिया। देवर्षि! अब रुद्र भगवान देवी सती के साथ वहां सुखपूर्वक विहार करने लगे।

हे नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें भगवान शिव के रुद्र अवतार का वर्णन और उनके कैलाश

पर आगमन की उत्तम कथा सुनाई है। तुम्हें शिवजी व कुबेर की मित्रता और भगवान शिव की विभिन्न लीलाओं के विषय में बताया है। उनकी भक्ति तीनों लोकों का सुख प्रदान करने वाली तथा मनोवांछित फलों को देने वाली है। इस लोक में ही नहीं परलोक में भी सद्‌गति प्राप्त होती है।

इस कथा को जो भी मनुष्य एकाग्र होकर सुनता या पढ़ता है, वह इस लोक में सुख और भोगों को पाकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

नारद जी ने ब्रह्माजी का धन्यवाद किया और उनकी स्तुति की। वे बोले कि प्रभु, आपने मुझे इस अमृत कथा को सुनाया है। आप महाज्ञानी हैं। आप सभी की इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। मैं आपका आभारी हूं। शिव चरित्र जैसा श्रेष्ठ ज्ञान आपने मुझे दिया है। हे प्रभो! मैं आपको बारंबार नमन करता हूं।

।। श्रीरुद्र संहिता संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीरुद्र संहिता

द्वितीय खण्ड

पहला अध्याय

सती चरित्र

नारद जी ने पूछा—हे ब्रह्माजी! आपके श्रीमुख से मंगलकारी व अमृतमयी शिव कथा सुनकर मुझमें उनके विषय में और अधिक जानने की लालसा उत्पन्न हो गई है। अतः भगवान शिव के बारे में मुझे बताइए। विश्व की सृष्टि करने वाले हे ब्रह्माजी! मैं सती के विषय में भी जानना चाहता हूं। सदाशिव योगी होते हुए एक स्त्री के साथ विवाह करके गृहस्थ कैसे हो गए? उन्हें विवाह करने का विचार कैसे आया? जो पहले दक्ष की कन्या थी, फिर हिमालय की कन्या हुई, वे सती (पार्वती) किस प्रकार शंकरजी को प्राप्त हुईं? पार्वती ने किस प्रकार घोर तपस्या की और कैसे उनका विवाह हुआ? कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान शिव के आधे शरीर में वे किस प्रकार स्थान पा सकीं? उनका अर्द्धनारीश्वर रूप क्या है? हे प्रभो! आप ही मेरे इन प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। आप ही मेरे संशयों का निवारण कर सकते हैं।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! देवी सती और भगवान शिव का शुभ यश परमपावन दिव्य और गोपनीय है। उसके रहस्य को वे ही समझते हैं। सर्वप्रथम तुम्हारी प्रार्थना पर मैं सती के चरित्र को बताता हूं।

पहले मेरे एक कन्या पैदा हुई। जिसे देखकर मैं काम पीड़ित हो गया। तब रुद्र ने धर्म का स्मरण कराते हुए मुझे बहुत धिक्कारा। फिर वे अपने निवास कैलाश पर्वत को चले गए। उन्हें मैंने समझाने की कोशिश की, परंतु मेरे सभी प्रयत्न निष्फल हो गए। तब मैंने शिवजी की आराधना की। शिवजी ने मुझे बहुत समझाया परंतु मैंने हठ नहीं छोड़ा और फिर रुद्रदेव को मोहित करने के लिए शक्ति का उपयोग करने लगा। मेरे पुत्र दक्ष के यहां सती का जन्म हुआ। वह दक्ष सुता 'उमा' नाम से उत्पन्न होकर कठिन तप करके रुद्र की स्त्री हुई। रुद्र ने गृहस्थाश्रम में सुखपूर्वक समय व्यतीत किया। उधर शिवजी की माया से दक्ष को घमंड हो गया और वह महादेव जी की निंदा करने लगा।

दक्ष ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में दक्ष ने मुझे, विष्णुजी को, सभी देवी-देवताओं को और ऋषि-मुनियों को निमंत्रण दिया परन्तु महादेव शिवजी एवं अपनी पुत्री सती को उस विशाल यज्ञ का निमंत्रण नहीं दिया। सती को जब इस बात की जानकारी मिली, तो उन्होंने शिव-चरणों में वंदना कर उनसे दक्ष-यज्ञ में जाने की इच्छा प्रकट की। भगवान शिव ने देवी सती को बहुत समझाया कि बिना बुलाए ऐसे आयोजनों में जाना अपमान और अनिष्टकारक होता है। लेकिन सती ने जाने का हठ किया। शिव ने भावी को देखते हुए आज्ञा दे दी। शिव सर्वज्ञ हैं। सती पिता के घर चली गई। वहां यज्ञ में महादेव जी के लिए भाग न देख और अपने पिता के मुख से अपने पति की घोर निंदा सुनकर उन्हें बहुत क्रोध आया। वे महादेव की निंदा सहन न कर सकीं और उन्होंने उसी यज्ञ कुंड में कूदकर अपने शरीर का त्याग कर दिया।

जब इसका समाचार शिव तक पहुंचा, तो वे बहुत कुपित हुए। उन्होंने अपनी जटा का एक बाल उखाड़कर वीरभद्र नामक अपने गण को उत्पन्न किया। भगवान शिव ने वीरभद्र को आज्ञा दी कि वह दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दे। वीरभद्र ने शिव आज्ञा का पालन करते हुए यज्ञ का विध्वंस कर दिया और दक्ष का सिर काट दिया। इस उपद्रव को देखकर सभी लोग भगवान शिव की प्रार्थना करने लगे। तब भगवान शिव ने दक्ष को पुनः जीवित कर दिया और उनके यज्ञ को पूर्ण कराया। भगवान शिव सती के मृत शरीर को लेकर वहां से चले गए। उस समय सती के शरीर से उत्पन्न ज्वाला पर्वत पर गिरी थी। वही पर्वत आज भी ज्वालामुखी के नाम से पूजित है। आज भी उसके दर्शन से मनोकामनाएं पूरी होती हैं।

वही सती दूसरे जन्म में हिमाचल के घर में पुत्री रूप में प्रकट हुईं, जिनका नाम पार्वती था। उन्होंने कठोर तप द्वारा पुनः महादेव शिव को अपने पति के रूप में प्राप्त कर लिया।

दूसरा अध्याय

शिव-पार्वती चरित्र

सूत जी बोले—हे ऋषियो! ब्रह्माजी के ये वचन सुनकर नारद जी पुनः पूछने लगे। हे ब्रह्माजी! मैं सती और शंकरजी के परम पवित्र व दिव्य चरित्र को पुनः सुनना चाहता हूं कि सती की उत्पत्ति कैसे हुई और महादेव जी का मन विवाह करने के लिए कैसे तैयार हुआ? दक्ष से नाराज होकर देवी सती ने अपनी देह को कैसे त्याग दिया और फिर कैसे हिमाचल की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म लिया? उनके तप, विवाह, काम-नाश आदि की सभी कथाएं मुझे सविस्तार सुनाने की कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पहले भगवान शिव निर्गुण, निर्विकल्प, निर्विकारी और दिव्य थे परंतु देवी उमा से विवाह करने के बाद वे सगुण और शक्तिमान हो गए। उनके बाएं अंग से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और दाएं अंग से विष्णु उत्पन्न हुए। तभी से भगवान सदाशिव के तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता के रूप में विख्यात हुए। उनकी आराधना करते हुए मैं सुरासुर सहित मनुष्य आदि जीवों की रचना करने लगा। मैंने सभी जातियों का निर्माण किया। मैंने ही मरीच, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, क्रतु, वशिष्ठ, नारद, दक्ष और भृगु की उत्पत्ति की और ये मेरे मानस पुत्र कहलाए। तत्पश्चात, मेरे मन में माया का मोह उत्पन्न होने लगा। तब मेरे हृदय से अत्यंत मनोहारी और सुंदर रूप वाली नारी प्रकट हुई। उसका नाम संध्या था। वह दिन में क्षीण होती, परंतु रात में उसका रूप-सौंदर्य और निखर जाता था। वह सायं संध्या ही थी। संध्या निरंतर मंत्र का जाप करती थी। उसके सौंदर्य से ऋषि-मुनियों का मन भी भ्रमित हो जाता था। इसी प्रकार मेरे मन से एक मनोहर रूप वाला पुरुष भी प्रकट हुआ। वह अत्यंत सुंदर और अद्‌भुत रूप वाला था। उसके शरीर का मध्य भाग पतला था। वह काले बालों से युक्त था। उसके दांत सफेद मोतियों से चमक रहे थे। उसके श्वास से सुगंधि निकल रही थी। उसकी चाल मदमस्त हाथी के समान थी। उसकी आंखें कमल के समान थीं। उसके अंगों में लगे केसर की सुगंध नासिका को तृप्त कर रही थी। तभी उस रूपवान पुरुष ने विनयपूर्वक अपने सिर को मुझ ब्रह्मा के सामने झुकाकर, मुझे प्रणाम किया और मेरी बहुत स्तुति की।

वह पुरुष बोला—ब्रह्मन्! आप अत्यंत शक्तिशाली हैं। आपने ही मेरी उत्पत्ति की है। प्रभु मुझ पर कृपा करें और मेरे योग्य काम मुझे बताएं ताकि मैं आपकी आज्ञा से उस कार्य को पूरा कर सकूं।

ब्रह्माजी ने कहा—हे भद्रपुरुष! तुम सनातनी सृष्टि उत्पन्न करो। तुम अपने इसी स्वरूप में फूल के पांच बाणों से स्त्रियों और पुरुषों को मोहित करो। इस चराचर जगत में कोई भी जीव तुम्हारा तिरस्कार नहीं कर पाएगा। तुम छिपकर प्राणियों के हृदय में प्रवेश करके सुख का हेतु बनकर सृष्टि का सनातन कार्य आगे बढ़ाओगे। तुम्हारे पुष्पमय बाण समस्त प्राणियों को

भेदकर उन्हें मदमस्त करेंगे। आज से तुम ‘पुष्प बाण’ नाम से जाने जाओगे। इसी प्रकार तुम सृष्टि के प्रवर्तक के रूप में जाने जाओगे।

तीसरा अध्याय

कामदेव को ब्रह्माजी द्वारा शाप देना

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! सभी ऋषि-मुनि उस पुरुष के लिए उचित नाम खोजने लगे। तब सोच-विचारकर वे बोले कि तुमने उत्पन्न होते ही ब्रह्मा का मन मंथन कर दिया है। अतः तुम्हारा पहला नाम मन्मथ होगा। तुम्हारे जैसा इस संसार में कोई नहीं है इसलिए तुम्हारा दूसरा नाम काम होगा। तीसरा नाम मदन और चौथा नाम कंदर्प होगा। अपने नामों के विषय में जानते ही काम ने अपने पांच बाणों का नामकरण कर उनका परीक्षण किया। काम ने अपने पांच बाणों को हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मारण नाम से सुशोभित किया। ये बाण ऋषि-मुनियों को भी मोहित कर सकते थे। उस स्थान पर बहुत से देवता व ऋषि उपस्थित थे। उस समय संध्या भी वहीं थी। कामदेव द्वारा चलाए गए बाणों के फलस्वरूप सभी मोहित हो गए। सबके मनों में विकार आ गया। सभी काम के वशीभूत हो चुके थे। प्रजापति, मरीचि, अत्रि, दक्ष आदि सब मुनियों के साथ-साथ ब्रह्माजी भी काम के वश में होकर संध्या को पाने की इच्छा करने लगे। ब्रह्मा व उनके मानस पुत्रों, सभी को एक कन्या पर मोहित होते देखकर धर्म को बहुत दुख हुआ। धर्म ने धर्मरक्षक त्रिलोकीनाथ का स्मरण किया। तब मुझे देखकर शिवजी हंसे और कहने लगे—हे ब्रह्मा! अपनी पुत्री के ही प्रति तुम मोहित कैसे हो गए? सूर्य का दर्शन करने वाले दक्ष, मरीचि आदि योगियों का निर्मल मन कैसे स्त्री को देखते ही मलिन हो गया? जिन देवताओं का मन स्त्री के प्रति आसक्त हो, उनके साथ शास्त्र संगति किस प्रकार की जा सकती है?

इस प्रकार के शिव वचन सुनकर मुझे बहुत लज्जा का अनुभव हुआ और मेरा पूरा शरीर पसीने-पसीने हो गया। मेरा विकार समाप्त हो गया परंतु मेरे शरीर से जो पसीना नीचे गिरा उससे पितृगणों की उत्पत्ति हुई। उससे चौंसठ हजार आग्नेष्वातो पितृगण उत्पन्न हुए और छियासी हजार बहिर्षद पितर हुए। एक सर्व गुण संपन्न, अति सुंदर कन्या भी उत्पन्न हुई, जिसका नाम रति था। उसका रूप-सौंदर्य देखकर ऋतु आदि स्खलित हो गए एवं उससे अनेक पितरों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार संध्या से बहुत से पितरों की उत्पत्ति हुई।

शिवजी के वहां से अंतर्धान होने पर मैं काम पर क्रोधित हुआ। मेरे क्रुद्ध होने पर काम ने वह बाण वापस खींच लिया। बाण के निकलते ही मैं क्रोध की अग्नि से जलने लगा। मैंने काम को शिव बाण से भस्म होने का शाप दे डाला। यह सुनकर काम और रति दोनों मेरे चरणों में गिर पड़े और मेरी स्तुति करने लगे तथा क्षमा-याचना करने लगे।

तब काम ने कहा—हे प्रभु! आपने ही तो मुझे वर देते हुए कहा था कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र समेत सभी देवता, ऋषि-मुनि और मनुष्य तुम्हारे वश में होंगे। मैं तो सिर्फ अपनी उस शक्ति का परीक्षण कर रहा था। इसलिए मैं निरपराध हूं। प्रभु मुझ पर कृपा करें। इस शाप के प्रभाव को समाप्त करने का उपाय बताएं।

इस प्रकार काम के वचनों को सुनकर ब्रह्माजी का क्रोध शांत हुआ। तब उन्होंने कहा कि मेरा शाप झूठा नहीं हो सकता। इसलिए तुम महादेव के तीसरे नेत्र रूपी अग्नि बाण से भस्म हो जाओगे। परंतु कुछ समय पश्चात जब शिवजी विवाह करेंगे अर्थात उनके जीवन में देवी पार्वती आएंगी, तब तुम्हारा शरीर तुम्हें पुनः प्राप्त हो जाएगा।

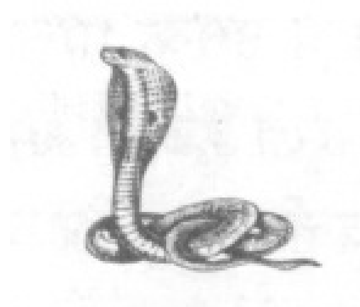

चौथा अध्याय

काम-रति विवाह

नारद जी ने पूछा—हे ब्रह्माजी! इसके पश्चात क्या हुआ? आप मुझे इससे आगे की कथा भी बताइए। भगवन् काम और रति का विवाह हुआ या नहीं? आपके शाप का क्या हुआ? कृपया इसके बारे में भी मुझे सविस्तार बताइए।

ब्रह्माजी बोले—शिवजी के वहां से अंतर्धान हो जाने पर दक्ष ने काम से कहा—हे कामदेव! आपके ही समान गुणों वाली परम सुंदरी एवं सुशीला मेरी कन्या को तुम पत्नी के रूप में स्वीकार करो। मेरी पुत्री सर्वगुण संपन्न है तथा हर तरीके से आपके लिए सुयोग्य है। हे महातेजस्वी मनोभव! यह हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी और तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करेगी। यह कहकर दक्ष ने अपनी कन्या, जो उनके पसीने से उत्पन्न हुई थी, का नाम 'रति' रख दिया। तत्पश्चात कामदेव और रति का विवाह सोल्लास संपन्न हुआ। हे नारद! दक्ष की पुत्री रति बड़ी रमणीय और परम सुंदरी थी। उसका रूप-लावण्य मुनियों को भी मोह लेने वाला था। रति से विवाह होने पर कामदेव अत्यंत प्रसन्न हुए। वे रति पर पूर्ण मोहित थे। उनके विवाह पर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। प्रजापति दक्ष पुत्री के लिए सुयोग्य वर पाकर बहुत खुश थे। दक्षकन्या देवी रति भी कामदेव को पाकर धन्य हो गई थी। जिस प्रकार बादलों में बिजली शोभा पाती है, उसी प्रकार कामदेव के साथ रति शोभा पा रही थी। कामदेव ने रति को अपने हृदय सिंहासन में बैठाया तो रति भी कामदेव को पाकर उसी प्रकार प्रसन्न हुई, जिस प्रकार श्रीहरि को पाकर देवी लक्ष्मी। उस समय आनंद और खुशी से सराबोर कामदेव व रति भगवान शिव का शाप भूल गए।

सूत जी कहते हैं—ब्रह्माजी का यह कथन सुनकर महर्षि नारद बड़े प्रसन्न हुए और हर्षपूर्वक बोले—हे महामते! आपने भगवान शिव की अद्भुत लीला मुझे सुनाई है। प्रभो! अब मुझे आप यह बताइए कि कामदेव और रति के विवाह के उपरांत सब देवताओं के अपने धाम चले जाने के बाद, पितरों को उत्पन्न करने वाली ब्रह्मकुमारी संध्या कहां गई? उनका विवाह कब और किससे हुआ? संध्या के विषय में मेरी जिज्ञासा शांत करिए।

पांचवां अध्याय

संध्या का चरित्र

सूत जी बोले—हे ऋषियो! नारद जी के इस प्रकार प्रश्न करने पर ब्रह्माजी ने कहा—मुने! संध्या का चरित्र सुनकर समस्त कामनियां सती-साध्वी हो सकती हैं। वह संध्या मेरी मानस पुत्री थी, जिसने घोर तपस्या करके अपना शरीर त्याग दिया था। फिर वह मुनिश्रेष्ठ मेधातिथि की पुत्री अरुंधती के रूप में जन्मी। संध्या ने तपस्या करते हुए अपना शरीर इसलिए त्याग दिया था क्योंकि वह स्वयं को पापिनी समझती थी। उसे देखकर स्वयं उसके पिता और भाइयों में काम की इच्छा जाग्रत हुई थी। तब उसने इसका प्रायश्चित करने के बारे में सोचा तथा निश्चय किया कि वह अपना शरीर वैदिक अग्नि में जला देगी, जिससे मर्यादा स्थापित हो। भूतल पर जन्म लेने वाला कोई भी जीव तरुणावस्था से पहले काम के प्रभाव में नहीं आ पाएगा। यह मर्यादा स्थापित कर मैं अपने जीवन का त्याग कर दूंगी।

मन में ऐसा विचार करके संध्या चंद्रभाग नामक पर्वत पर चली गई। यहीं से चंद्रभागा नदी का आरंभ हुआ। इस बात का ज्ञान होने पर मैंने वेद-शास्त्रों के पारंगत, विद्वान, सर्वज्ञ और ज्ञानयोगी पुत्र वशिष्ठ को वहां जाने की आज्ञा दी। मैंने वशिष्ठ जी को संध्या को विधिपूर्वक दीक्षा देने के लिए वहां भेजा था।

नारद! चंद्रभाग पर्वत पर एक देव सरोवर है, जो जलाशयोचित गुणों से पूर्ण है। उस सरोवर के तट पर बैठी संध्या इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जैसे प्रदोष काल में उदित चंद्रमा और नक्षत्रों से युक्त आकाश शोभा पाता है। तभी उन्होंने चंद्रभागा नदी का भी दर्शन किया। तब उस सरोवर के तट पर बैठी संध्या से वशिष्ठ जी ने आदरपूर्वक पूछा, हे देवी! तुम इस निर्जन पर्वत पर क्या कर रही हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? यदि यह छिपाने योग्य न हो तो कृपया मुझे बताओ। यह वचन सुनकर संध्या ने महर्षि वशिष्ठ की ओर देखा। उनका शरीर दिव्य तेज से प्रकाशित था। मस्तक पर जटा धारण किए वे साक्षात कोई पुण्यात्मा जान पड़ते थे। संध्या ने आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए वशिष्ठ जी को अपना परिचय देते हुए कहा—ब्रह्मन्। मैं ब्रह्माजी की पुत्री संध्या हूं। मैं इस निर्जन पर्वत पर तपस्या करने आई हूं। यदि आप उचित समझें तो मुझे तपस्या की विधि बताइए। मैं तपस्या के नियमों को नहीं जानती हूं। अतः मुझ पर कृपा करके आप मेरा उचित मार्गदर्शन करें। संध्या की बात सुनकर वशिष्ठ जी ने जान लिया कि देवी संध्या मन में तपस्या का दृढ़ संकल्प कर चुकी हैं। इसलिए वशिष्ठ जी ने भक्तवत्सल भगवान शिव का स्मरण करते हुए कहा—

हे देवी! जो सबसे महान और उत्कृष्ट हैं, सभी के परम आराध्य हैं, जिन्हें परमात्मा कहा जाता है, तुम उन महादेव शिव को अपने हृदय में धारण करो। भगवान शिव ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्रोत हैं। तुम उन्हीं का भजन करो। 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जाप करते हुए मौन तपस्या करो। उसके अनुसार मौन रहकर ही स्नान तथा शिव-पूजन करो। प्रथम दो

बार छठे समय में जल को आहार के रूप में लो। तीसरी बार छठा समय आने पर उपवास करो। देवी! इस प्रकार की गई तपस्या ब्रह्मचर्य का फल देने वाली तथा अभीष्ट मनोरथों को पूरा करने वाली होती है। अपने मन में शुभ उद्देश्य लेकर शिवजी का मनन व चिंतन करो। वे प्रसन्न होकर तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी करेंगे। इस प्रकार संध्या को तपस्या की विधि बताकर और उपदेश देकर मुनि वशिष्ठ वहां से अंतर्धान हो गए।

छठा अध्याय

संध्या की तपस्या

ब्रह्माजी बोले—हे महाप्रज्ञ नारद! तपस्या की विधि बताकर जब वशिष्ठ जी चले गए, तब संध्या आसन लगाकर कठोर तप शुरू करने लगी। वशिष्ठ जी द्वारा बताए गए विधान एवं मंत्र द्वारा संध्या ने भगवान शिव की आराधना करनी आरंभ कर दी। उसने अपना मन शिवभक्ति में लगा दिया और एकाग्र होकर तपस्या में मग्न हो गई। तपस्या करते-करते चार युग बीत गए। तब भगवान शिव प्रसन्न हुए और संध्या को अपने स्वरूप के दर्शन दिए, जिसका चिंतन संध्या द्वारा किया गया था। भगवान का मुख प्रसन्न था। उनके स्वरूप से शांति बरस रही थी। संध्या के मन में विचार आया कि मैं महादेव की स्तुति कैसे करूं? इसी सोच में संध्या ने नेत्र बंद कर लिए। भगवान शिव ने संध्या के हृदय में प्रवेश कर उसे दिव्य ज्ञान दिया। साथ ही दिव्य-वाणी और दिव्य-दृष्टि भी प्रदान की। संध्या ने प्रसन्न मन से भगवान शिव की स्तुति की।

संध्या बोली—हे निराकार! परमज्ञानी, लोकस्रष्टा, भगवान शिव, मैं आपको नमस्कार करती हूं। जो शांत, निर्मल, निर्विकार और ज्ञान के स्रोत हैं। जो प्रकाश को प्रकाशित करते हैं, उन भगवान शिव को मैं प्रणाम करती हूं। जिनका रूप अद्वितीय, शुद्ध, माया रहित, प्रकाशमान, सच्चिदानंदमय, नित्यानंदमय, सत्य, ऐश्वर्य से युक्त तथा लक्ष्मी और सुख देने वाला है, उन परमपिता परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। जो सत्वप्रधान, ध्यान योग्य, आत्मस्वरूप, सारभूत सबको पार लगाने वाला तथा परम पवित्र है, उन प्रभु को मेरा प्रणाम है। भगवान शिव आपका स्वरूप शुद्ध, मनोहर, रत्नमय, आभूषणों से अलंकृत एवं कपूर के समान है। आपके हाथों में डमरू, रुद्राक्ष और त्रिशूल शोभा पाते हैं। आपके इस दिव्य, चिन्मय, सगुण, साकार रूप को मैं नमस्कार करती हूं। आकाश, पृथ्वी, दिशाएं, जल, तेज और काल सभी आपके रूप हैं। हे प्रभु! आप ही ब्रह्मा के रूप में जगत की सृष्टि, विष्णु रूप में संसार का पालन करते हैं। आप ही रुद्र रूप धरकर संहार करते हैं। जिनके चरणों से पृथ्वी तथा अन्य शरीर से सारी दिशाएं, सूर्य, चंद्रमा एवं अन्य देवता प्रकट हुए हैं, जिनकी नाभि से अंतरिक्ष का निर्माण हुआ है, वे ही सद्ब्रह्म तथा परब्रह्म हैं। आपसे ही सारे जगत की उत्पत्ति हुई है। जिनके स्वरूप और गुणों का वर्णन स्वयं ब्रह्मा, विष्णु भी नहीं कर सकते, भला उन त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की स्तुति मैं कैसे कर सकती हूं? मैं एक अज्ञानी और मूर्ख स्त्री हूं। मैं किस तरह आपको पूजूं कि आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे प्रभु! मैं बारंबार आपको नमस्कार करती हूं।

ब्रह्माजी बोले—नारद! संध्या द्वारा कहे गए वचनों से भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए। उसकी स्तुति ने उन्हें द्रवित कर दिया। भगवान शिव बोले—हे देवी! मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मांगो। तुम्हारी इच्छा मैं अवश्य पूर्ण

करूंगा। भगवान शिव के ये वचन सुनकर संध्या खुशी से उन्हें बार-बार प्रणाम करती हुए बोली—हे महेश्वर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न होकर कोई वर देना चाहते हैं और यदि मैं अपने पूर्व पापों से शुद्ध हो गई हूं तो हे महेश्वर! हे देवेश! आप मुझे वरदान दीजिए कि आकाश, पृथ्वी और किसी भी स्थान में रहने वाले जो भी प्राणी इस संसार में जन्म लें, वे जन्म लेते ही काम भाव से युक्त न हो जाएं। हे प्रभु! मेरे पति भी सुहृदय और मित्र के समान हों और अधिक कामी न हों। उनके अलावा जो भी मनुष्य मुझे सकाम भाव से देखे, वह पुरुषत्वहीन अर्थात नपुंसक हो जाए। हे प्रभु! मुझे यह वरदान भी दीजिए कि मेरे समान विख्यात और परम तपस्विनी तीनों लोकों में और कोई न हो।

निष्पाप संध्या के वरदान मांगने को सुनकर भगवान शिव बोले—हे देवी संध्या! तथास्तु! तुम जो चाहती हो, मैं तुम्हें प्रदान करता हूं। प्राणियों के जीवन में अब चार अवस्थाएं होंगी। पहली शैशव अवस्था, दूसरी कौमार्यावस्था, तीसरी यौवनावस्था और चौथी वृद्धावस्था। तीसरी अवस्था अर्थात यौवनावस्था में ही मनुष्य सकाम होगा। कहीं-कहीं दूसरी अवस्था के अंत में भी प्राणी सकाम हो सकते हैं। तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर ही मैंने यह मर्यादा निर्धारित की है। तुम परम सती होगी और तुम्हारे पति के अतिरिक्त जो भी मनुष्य तुम्हें सकाम भाव से देखेगा वह तुरंत पुरुषत्वहीन हो जाएगा। तुम्हारा पति महान तपस्वी होगा, जो कि सात कल्पों तक जीवित रहेगा। इस प्रकार मैंने तुम्हारे द्वारा मांगे गए दोनों वरदान तुम्हें प्रदान कर दिए हैं। अब मैं तुम्हें तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का साधन बताता हूं। तुमने अग्नि में अपना शरीर त्यागने की प्रतिज्ञा की थी। मुनिवर मेधातिथि का एक यज्ञ चल रहा है, जो कि बारह वर्षों तक चलेगा। उसमें अग्नि बड़े जोरों से जल रही है। तुम उसी अग्नि में अपना शरीर त्याग दो। चंद्रभागा नदी के तट पर ही तपस्वियों का आश्रम है, जहां महायज्ञ हो रहा है। तुम उसी अग्नि से प्रकट होकर मेधातिथि की पुत्री होगी। अपने मन में जिस पुरुष की इच्छा करके तुम शरीर त्यागोगी वही पुरुष तुम्हें पति रूप में प्राप्त होगा। संध्या, जब तुम इस पर्वत पर तपस्या कर रही थीं तब त्रेता युग में प्रजापति दक्ष की बहुत सी कन्याएं हुईं। उनमें से सत्ताईस कन्याओं का विवाह उन्होंने चंद्रमां से कर दिया। चंद्रमा उन सबको छोड़कर केवल रोहिणी से प्रेम करते थे। तब दक्ष ने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया। चंद्रमा को शाप से मुक्त कराने के लिए उन्होंने चंद्रभागा नदी की रचना की। उसी समय मेधातिथि यहां उपस्थित हुए थे। उनके समान कोई तपस्वी न है, न होगा। उन्हीं का 'ज्योतिष्टोम' नामक यज्ञ चल रहा है, जिसमें अग्निदेव प्रज्वलित हैं। तुम उसी आग में अपना शरीर डालकर पवित्र हो जाओ और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।

इस प्रकार उपदेश देकर भगवान शिव वहां से अंतर्धान हो गए।

सातवां अध्याय

संध्या की आत्माहुति

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब भगवान शिव देवी संध्या को वरदान देकर वहां से अंतर्धान हो गए, तब संध्या उस स्थान पर गई, जहां पर मुनि मेधातिथि यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने अपने हृदय में तेजस्वी ब्रह्मचारी वशिष्ठ जी का स्मरण किया तथा उन्हीं को पतिरूप में पाने की इच्छा लेकर संध्या महायज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में कूद गई। अग्नि में उसका शरीर जलकर सूर्य मण्डल में प्रवेश कर गया। तब सूर्य ने पितरों और देवताओं की तृप्ति के लिए उसे दो भागों में बांटकर रथ में स्थापित कर दिया। उसके शरीर का ऊपरी भाग प्रातः संध्या हुआ और शेष भाग सायं संध्या हुआ। सायं संध्या से पितरों को संतुष्टि मिलती है। सूर्योदय से पूर्व जब आकाश में लाली छाई होती है अर्थात अरुणोदय होता है उस समय देवताओं का पूजन करें। जिस समय लाल कमल के समान सूर्य अस्त होता है अर्थात डूबता है उस समय पितरों का पूजन करना चाहिए। भगवान शिव ने संध्या के प्राणों को दिव्य शरीर प्रदान कर दिया। जब मेधातिथि मुनि का यज्ञ समाप्त हुआ, तब उन्होंने एक कन्या को, जिसकी कांति सोने के समान थी, अग्नि में पड़े देखा। उसे मुनि ने भली प्रकार स्नान कराया और अपनी गोद में बैठा लिया। उन्होंने उसका नाम 'अरुंधती' रखा। यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने और पुत्री प्राप्त होने के कारण मेधातिथि मुनि बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने अरुंधती का पालन आश्रम में ही किया। वह धीरे-धीरे उसी चंद्रभागा नदी के तट पर रहते हुए बड़ी होने लगी। जब वह विवाह योग्य हुई तो हम त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने मेधा मुनि से बात कर, उसका विवाह मुनि वशिष्ठ से करा दिया।

मुने! मेधातिथि की पुत्री महासाध्वी अरुंधती अति पतिव्रता थी। वह मुनि वशिष्ठ को पति रूप में पाकर बहुत प्रसन्न थी। वह उनके साथ रमण करने लगी। उससे शक्ति आदि शुभ एवं श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। हे नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें परम पवित्र देवी संध्या का चरित्र सुनाया है। यह समस्त अभीष्ट फलों को देने वाला है। यह परम पावन और दिव्य है। जो स्त्री-पुरुष इस शुभ व्रत का पालन करते हैं, उनकी सभी कामनाएं पूरी होती हैं।

आठवां अध्याय

काम की हार

सूत जी बोले—हे ऋषियो! जब इस प्रकार प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा, तब उनके वचनों को सुनकर नारद जी आनंदित होकर बोले—हे ब्रह्मन्! मैं आपको बहुत धन्यवाद देता हूं कि आपने इस दिव्य कथा को मुझे सुनाया है। हे प्रभु! अब आप मुझे संध्या के विषय में और बताइए कि विवाह के बाद उन्होंने क्या किया? क्या उन्होंने दुबारा तप किया या नहीं? सूत जी बोले—इस प्रकार नारद जी ने ब्रह्माजी से पूछा। उन्होंने यह भी पूछा कि जब कामदेव रति के साथ विवाह करके वहां से चले गए और दक्ष आदि सभी मुनि वहां से चले गए, संध्या भी तपस्या के लिए वहां से चली गईं, तब वहां पर क्या हुआ?

ब्रह्माजी बोले—हे श्रेष्ठ नारद! तुम भगवान शिव के परम भक्त हो, तुम उनकी लीला को अच्छी प्रकार जानते हो। पूर्वकाल में जब मैं मोह में फंस गया तब भगवान शिव ने मेरा मजाक उड़ाया, तब मुझे बड़ा दुख हुआ। मैं भगवान शिव से ईर्ष्या करने लगा। मैं दक्ष मुनि के यहां गया। देवी रति और कामदेव भी वहीं थे। मैंने उन्हें बताया कि शिवजी ने किस प्रकार मेरा मजाक उड़ाया था। मैंने पुत्रों से कहा कि तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे महादेव शिव किसी कमनीय कांति वाली स्त्री से विवाह कर लें। मैंने प्रभु शिव को मोहित करने के लिए कामदेव और रति को तैयार किया। कामदेव ने मेरी आज्ञा को मान लिया। कामदेव बोले—हे ब्रह्माजी! मेरा अस्त्र तो सुंदर स्त्री ही है। अतः आप भगवान शिव के लिए किसी परम सुंदरी की सृष्टि कीजिए। यह सुनकर मैं चिंता में पड़ गया। मेरी तेज सांसों से पुष्पों से सजे बसंत का आरंभ हुआ। बसंत और मलयानल ने कामदेव की सहायता की। इनके साथ कामदेव ने शिवजी को मोहने की चेष्टा की, पर सफल नहीं हुए। मैंने मरुतगणों के साथ पुनः उन्हें शिवजी के पास भेजा। बहुत प्रयत्न करने पर भी वे सफल नहीं हो पाए।

अतः मैंने बसंत आदि सहचरों सहित रति को साथ लेकर शिवजी को मोहित करने को कहा। फिर कामदेव प्रसन्नता से रति और अन्य सहायकों को साथ लेकर शिवजी के स्थान को चले गए।

नवां अध्याय

ब्रह्मा का शिव विवाह हेतु प्रयत्न

ब्रह्माजी बोले—काम ने प्राणियों को मोहित करने वाला अपना प्रभाव फैलाया। बसंत ने उसका पूरा सहयोग किया। रति के साथ कामदेव ने शिवजी को मोहित करने के लिए अनेक प्रकार के यत्न किए। इसके फलस्वरूप सभी जीव और प्राणी मोहित हो गए। जड़-चेतन समस्त सृष्टि काम के वश में होकर अपनी मर्यादाओं को भूल गई। संयम का व्रत पालन करने वाले ऋषि-मुनि अपने कृत्यों पर पश्चाताप करते हुए आश्चर्यचकित थे कि उन्होंने कैसे अपने व्रत को तोड़ दिया। परंतु भगवान शिव पर उनका वश नहीं चल सका। कामदेव के सभी प्रयत्न व्यर्थ हो गए। तब कामदेव निराश हो गए और मेरे पास आए और मुझे प्रणाम करके बोले—हे भगवन्! मैं इतना शक्तिशाली नहीं हूं, जो शिवजी को मोह सकूं। यह बात सुनकर मैं चिंता में डूब गया। उसी समय मेरे सांस लेने से बहुत से भयंकर गण प्रकट हो गए। जो अनेक वाद्य-यंत्रों को जोर-जोर से बजाने लगे और 'मारो-मारो' की आवाज करने लगे। ऐसी अवस्था देखकर कामदेव ने उनके विषय में मुझसे प्रश्न किया। तब मैंने उन गणों को 'मार' नाम प्रदान कर उन्हें कामदेव को सौंप दिया और बताया कि ये सदा तुम्हारे वश में रहेंगे। तुम्हारी सहायता के लिए ही इनका जन्म हुआ है। यह सुनकर रति और कामदेव बहुत प्रसन्न हुए।

काम ने कहा—प्रभु! मैं आपकी आज्ञा के अनुसार पुनः शिवजी को मोहित करने के लिए जाऊंगा परंतु मुझे यह लगता है कि मैं उन्हें मोहने में सफल नहीं हो पाऊंगा। साथ ही मुझे इस बात का भी डर है कि कहीं वे आपके शाप के अनुसार मुझे भस्म न कर दें। यह कहकर कामदेव रति, बसंत और अपने मारगणों को साथ लेकर पुनः शिवधाम को चले गए। कामदेव ने शिवजी को मोहित करने के लिए बहुत से उपाय किए परंतु वे परमात्मा शिव को मोहित करने में सफल न हो सके। फिर कामदेव वहां से वापस आ गए और मुझे अपने असफल होने की सूचना दी। मुझसे कामदेव कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! आप ही शिवजी को मोह में डालने का उपाय करें। मेरे लिए उन्हें मोहना संभव नहीं है।

दसवां अध्याय

ब्रह्मा-विष्णु संवाद

ब्रह्माजी बोले—नारद! काम के चले जाने पर श्री महादेव जी को मोहित कराने का मेरा अहंकार गिरकर चूर-चूर हो गया परंतु मेरे मन में यही चलता रहा कि ऐसा क्या करूं, जिससे महात्मा शिवजी स्त्री ग्रहण कर लें। यह सोचते-सोचते मुझे विष्णुजी का स्मरण हुआ। उन्हें याद करते ही पीतांबरधारी श्रीहरि विष्णु मेरे सामने प्रकट हो गए। मैंने उनकी प्रसन्नता के लिए उनकी बहुत स्तुति की। तब विष्णुजी मुझसे पूछने लगे कि मैंने उनका स्मरण किस उद्‌देश्य से किया था? यदि तुम्हें कोई दुख या कष्ट है तो कृपया मुझे बताओ मैं उस दुख को मिटा दूंगा। तब मैंने उनसे कहा—हे केशव! यदि भगवान शिव किसी तरह पत्नी ग्रहण कर लें अर्थात विवाह कर लें तो मेरे सभी दुख दूर हो जाएंगे। मैं पुनः सुखी हो जाऊंगा। मेरी यह बात सुनकर भगवान मधुसूदन हंसने लगे और मुझ लोकस्रष्टा ब्रह्मा का हर्ष बढ़ाते हुए बोले—

हे ब्रह्माजी! मेरी बातों को सुनकर आपके सभी भ्रमों का निवारण हो जाएगा। शिवजी ही सबके कर्ता और भर्ता हैं। वे ही इस संसार का पालन करते हैं। वे ही पापों का नाश करते हैं। भगवान शिव ही परब्रह्म, परेश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, निर्विकार, अद्वितीय, अनंत और सबका अंत करने वाले हैं। वे सर्वव्यापी हैं। तीनों गुणों को आश्रय देने वाले, ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम से प्रसिद्ध रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण से दूर एवं माया से रहित हैं। भगवान शिव योगपरायण और भक्तवत्सल हैं।

हे विधे! जब भगवान शिव ने आपकी कृपा से हमें प्रकट किया था। उस समय उन्होंने हमें बताया था कि यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों मेरे ही अवतार होंगे परंतु रुद्र को मेरा पूर्ण रूप माना जाएगा। इसी प्रकार देवी उमा के भी तीन रूप होंगे। एक रूप का नाम लक्ष्मी होगा और वह श्रीहरि की पत्नी होंगी। दूसरा रूप सरस्वती का होगा और वे ब्रह्माजी की पत्नी होंगी। देवी सती उमा का पूर्णरूप होंगी। वे ही भावी रुद्र की पत्नी होंगी। ऐसा कहकर भगवान महेश्वर वहां से अंतर्धान हो गए। समय आने पर हम दोनों (ब्रह्मा-विष्णु) का विवाह देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी से हुआ।

भगवान शिव ने रुद्र के रूप में अवतार लिया। वे कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं। जैसा कि भगवान शिव ने बताया था कि रुद्र अवतार की पत्नी देवी सती होंगी, जो साक्षात शिवा रूप हैं। अतः तुम्हें उनके अवतरण हेतु प्रार्थना करनी चाहिए। अपने मनोरथ का ध्यान करते हुए देवी शिवा की स्तुति करो। वे देवेश्वरी प्रसन्न होने पर तुम्हारी सभी परेशानियों और बाधाओं को दूर कर देंगी। इसलिए तुम सच्चे हृदय से उनका स्मरण कर उनकी स्तुति करो। यदि शिवा प्रसन्न हो जाएंगी तो वे पृथ्वी पर अवतरित होंगी। वे इस लोक में किसी मनुष्य की पुत्री बनकर मानव शरीर धारण करेंगी। तब वे निश्चय ही भगवान रुद्र का वरण कर उन्हें पति रूप में प्राप्त करेंगी। तब तुम्हारी सभी इच्छाएं अवश्य ही पूर्ण होंगी। अतएव तुम प्रजापति

दक्ष को यह आज्ञा दो कि वे तपस्या करना आरंभ करें। उनके तप के प्रभाव से ही पार्वती देवी सती के रूप में उनके यहां जन्म लेंगी। देवी सती ही महोदव को विवाह सूत्र में बांधेंगी। शिवा और शिवजी दोनों निर्गुण और परम ब्रह्मस्वरूप हैं और अपने भक्तों के पूर्णतः अधीन हैं। वे उनकी इच्छानुसार कार्य करते हैं।

ऐसा कहकर भगवान श्रीहरि विष्णु वहां से अंतर्धान हो गए। उनकी बातें सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ क्योंकि मुझे मेरे दुखों और कष्टों का निवारण करने का उपाय मालूम हो गया था।

ग्यारहवां अध्याय

ब्रह्माजी की काली देवी से प्रार्थना

नारद जी बोले—पूज्य पिताजी! विष्णुजी के वहां से चले जाने पर क्या हुआ? ब्रह्माजी कहने लगे कि जब भगवान विष्णु वहां से चले गए तो मैं देवी दुर्गा का स्मरण करने लगा और उनकी स्तुति करने लगा। मैंने मां जगदंबा से यही प्रार्थना की कि वे मेरा मनोरथ पूर्ण करें। वे पृथ्वी पर अवतरित होकर भगवान शिव का वरण कर उन्हें विवाह बंधन में बांधें। मेरी अनन्य भक्ति-स्तुति से प्रसन्न हो योगनिद्रा चामुण्डा मेरे सामने प्रकट हुईं। उनकी कज्ज्ल सी कांति, रूप सुंदर और दिव्य था। वे चार भुजाओं वाले शेर पर बैठी थीं। उन्हें सामने देख मैंने उनको अत्यंत नम्रता से प्रणाम किया और उनकी पूजा-उपासना की। तब मैंने उन्हें बताया कि देवी! भगवान शिव रुद्र रूप में कैलाश पर्वत पर निवास कर रहे हैं। वे समाधि लगाकर तपस्या में लीन हैं। वे पूर्ण योगी हैं। भगवान रुद्र ब्रह्मचारी हैं और वे गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करना चाहते। वे विवाह नहीं करना चाहते। अतः आप उन्हें मोहित कर उनकी पत्नी बनना स्वीकार करें। हे देवी! स्त्री के कारण ही भगवान शिव ने मेरा मजाक उड़ाया है और मेरी निंदा की है। इसलिए मैं भी उन्हें स्त्री के लिए आसक्त देखना चाहता हूं। देवी! आपके अलावा कोई भी इतना शक्तिशाली नहीं है कि वह भगवान शंकर को मोह में डाले। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप प्रजापति दक्ष के यहां उनकी कन्या के रूप में जन्म लें और भगवान शिव का वरण कर उन्हें गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कराएं।

देवी चामुण्डा बोलीं—हे ब्रह्मा! भगवान शिव तो परम योगी हैं। भला उनको मोहित करके तुम्हें क्या लाभ होगा? इसके लिए तुम मुझसे क्या चाहते हो? मैं तो हमेशा से ही उनकी दासी हूं। उन्होंने अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए ही रुद्र अवतार धारण किया है। यह कहकर वे शिवजी का स्मरण करने लगीं। फिर वे कहने लगीं कि यह तो सच है कि कोई भगवान शिव को मोहमाया के बंधनों में नहीं बांध सकता। इस संसार में कोई भी शिवजी को मोहित नहीं कर सकता। मुझमें भी इतनी शक्ति नहीं है कि उन्हें उनके कर्तव्य-पथ से विमुख कर सकूं। फिर भी आपकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर मैं इसका प्रयत्न करूंगी जिससे भगवान शिव मोहित होकर विवाह कर लें। मैं सती रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होऊंगी। यह कहकर देवी वहां से अंतर्धान हो गई।

बारहवां अध्याय

दक्ष की तपस्या

नारद जी ने पूछा—हे ब्रह्माजी! उत्तम व्रत का पालन करने वाले प्रजापति दक्ष ने तपस्या करके देवी से कौन-सा वरदान प्राप्त किया? और वे किस प्रकार दक्ष की कन्या के रूप में जन्मीं?

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मेरी आज्ञा पाकर प्रजापति दक्ष क्षीरसागर के उत्तरी तट पर चले गए। वे उसी तट पर बैठकर देवी उमा को अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए, उन्हें हृदय से स्मरण करते हुए तपस्या करने लगे। मन को एकाग्र कर प्रजापति दक्ष दृढ़ता से कठोर व्रत का पालन करने लगे। उन्होंने तीन हजार दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या की। वे केवल जल और हवा ही ग्रहण करते थे। तत्पश्चात देवी जगदंबा ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिए। कालिका देवी अपने सिंह पर विराजमान थीं। उनकी श्यामल कांति व मुख अत्यंत मोहक था। उनकी चार भुजाएं थीं। वे एक हाथ में वरद, दूसरे में अभय, तीसरे में नीलकमल और चौथे हाथ में खड्ग धारण किए हुए थीं। उनके दोनों नेत्र लाल थे और केश लंबे व खुले हुए थे। देवी का स्वरूप बहुत ही मनोहारी था। उत्तम आभा से प्रकाशित देवी को दक्ष और उनकी पत्नी ने श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया। उन्होंने देवी की श्रद्धाभाव से स्तुति की।

दक्ष बोले—हे जगदंबा! भवानी! कालिका! चण्डिके! महेश्वरी! मैं आपको नमस्कार करता हूं। मैं आपका बहुत आभारी हूं, जो आपने मुझे दर्शन दिए हैं। हे देवी! मुझ पर प्रसन्न होइए।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! देवी जगदंबा ने स्वयं ही दक्ष के मन की इच्छा जान ली थी। वे बोलीं—दक्ष! मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। तुम अपने मन की इच्छा मुझे बताओ। मैं तुम्हारे सभी दुखों को अवश्य दूर करूंगी। तुम अपनी इच्छानुसार वरदान मांग सकते हो। जगदंबा की यह बात सुनकर प्रजापति दक्ष बहुत प्रसन्न हुए और देवी को प्रणाम करने लगे।

दक्ष बोले—हे देवी! आप धन्य हैं। आप ही प्रसन्न होने पर मनोवांछित फल देने वाली हैं। हे देवी! यदि आप मुझे वर देना चाहती हैं तो मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनें और मेरी इच्छा पूर्ण करें। हे जगदंबा, मेरे स्वामी शिव ने रुद्र अवतार धारण किया है परंतु अब तक आपने कोई अवतार धारण नहीं किया है। आपके सिवा कौन उनकी पत्नी होने योग्य है। अतः हे देवी! आप मेरी पुत्री के रूप में धरती पर जन्म लें और भगवान शिव को अपने रूप लावण्य से मोहित करें। हे जगदंबा! आपके अलावा कोई भी शिवजी को कभी मोहित नहीं कर सकता। इसलिए आप हर मोहिनी अर्थात भगवान को मोहने वाली बनकर संपूर्ण जगत का हित कीजिए। यही मेरे लिए वरदान है।

दक्ष का यह वचन सुनकर जगदंबिका हंसने लगीं और मन में भगवान शिव का स्मरण कर बोलीं—हे प्रजापति दक्ष! तुम्हारी पूजा-आराधना से मैं प्रसन्न हूं। तुम्हारे वर के अनुसार मैं

तुम्हारी पुत्री के रूप में जन्म लूंगी। तत्पश्चात बड़ी होकर मैं कठोर तप द्वारा महादेव जी को प्रसन्न कर, उन्हें पति रूप में प्राप्त करूंगी। मैं उनकी दासी हूं। प्रत्येक जन्म में शिव शंभु ही मेरे स्वामी होते हैं। अतः मैं तुम्हारे घर में जन्म लेकर शिवा का अवतार धारण करूंगी। अब तुम घर जाओ। परंतु एक बात हमेशा याद रखना। जिस दिन तुम्हारे मन में मेरा आदर कम हो जाएगा उसी दिन मैं अपना शरीर त्यागकर अपने स्वरूप में लीन हो जाऊंगी।

यह कहकर देवी जगदंबिका वहां से अंतर्धान हो गईं तथा प्रजापति दक्ष सुखी मन से घर लौट आए।

तेरहवां अध्याय

दक्ष द्वारा मैथुनी सृष्टि का आरंभ

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! प्रजापति दक्ष देवी का वरदान पाकर अपने आश्रम में लौट आए। मेरी आज्ञा पाकर प्रजापति दक्ष मानसिक सृष्टि की रचना करने लगे परंतु फिर भी प्रजा की संख्या में वृद्धि होती न देखकर वे बहुत चिंतित हुए और मेरे पास आकर कहने लगे—हे प्रभो! मैंने जितने भी जीवों की रचना की है वे सभी उतने ही रह गए अर्थात उनमें कोई भी वृद्धि नहीं हो पाई। हे तात! मुझे कृपा कर ऐसा कोई उपाय बताइए जिससे वे जीव अपने आप बढ़ने लगें।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्ष! मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। तुम त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की भक्ति करते हुए यह कार्य संपन्न करो। वे निश्चय ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुम प्रजापति वीरण की परम सुंदर पुत्री असिक्नी से विवाह करो और स्त्री के साथ मैथुन-धर्म का आश्रय लेकर प्रजा बढ़ाओ। असिक्नी से तुम्हें बहुत सी संतानें प्राप्त होंगी। मेरी आज्ञा के अनुसार दक्ष ने वीरण की पुत्री असिक्नी से विवाह कर लिया। उनकी पत्नी के गर्भ से उन्हें दस हजार पुत्रों की प्राप्ति हुई। ये हर्यश्व नाम से जाने गए। सभी पुत्र धर्म के पथ पर चलने वाले थे। एक दिन अपने पिता दक्ष से उन्हें प्रजा की सृष्टि करने का आदेश मिला। तब इस उद्देश्य से तपस्या करने के लिए वे पश्चिम दिशा में स्थित नारायण सर नामक तीर्थ पर गए। वहां सिंधु नदी व समुद्र का संगम हुआ है। उस पवित्र तीर्थ के जल के स्पर्श से उनका मन उज्ज्वल और ज्ञान से संपन्न हो गया। वे उसी स्थान पर प्रजा की वृद्धि के लिए तप करने लगे।

नारद! इस बात को जानने के बाद तुम श्रीहरि विष्णु की इच्छा से उनके पास गए और बोले—दक्षपुत्र हर्यश्वगण! तुम पृथ्वी का अंत देखे बिना सृष्टि की रचना करने के लिए कैसे उद्यत हो गए?

ब्रह्माजी बोले—हर्यश्व बड़े ही बुद्धिमान थे। वे तुम्हारा प्रश्न सुनकर उस पर विचार करने लगे। वे सोचने लगे, कि जो उत्तम शास्त्ररूपी पिता के निवृत्तिपरक आदेश को नहीं समझता, वह केवल रजो गुण पर विश्वास करने वाला पुरुष सृष्टि निर्माण का कार्य कैसे कर सकता है? इस बात को समझकर वे नारद जी की परिक्रमा करके ऐसे रास्ते पर चले गए, जहां से वापस लौटना असंभव है।

जब प्रजापति दक्ष को यह पता चला कि उनके सभी पुत्र नारद से शिक्षा पाकर मेरी आज्ञा को भूलकर ऐसे स्थान पर चले गए, जहां से लौटा नहीं जा सकता, तो दक्ष इस बात से बहुत दुखी हुए। वे पुत्रों के वियोग को सह नहीं पा रहे थे। तब मैंने उन्हें बहुत समझाया और उन्हें सांत्वना दी। तब पुनः दक्ष की पत्नी असिक्नी के गर्भ से शबलाश्व नामक एक सहस्र पुत्र हुए। वे सभी अपने पिता की आज्ञा को पाकर पुनः तपस्या के लिए उसी स्थान पर चले गए, जहां उनके बड़े भाई गए थे। नारायण सरोवर के जल के स्पर्श से उनके सभी पाप नष्ट हो गए और

मन शुद्ध हो गया। वे उसी तट पर प्रणव मंत्र का जाप करते हुए तपस्या करने लगे। तब नारद तुमने पुनः वही बातें, जो उनके भाइयों को कहीं थीं, उन्हें भी बता दीं और तुम्हारे दिखाए मार्ग के अनुसार वे अपने भाइयों के पथ पर चलते उर्ध्वगति को प्राप्त हुए। दक्ष को इस बात से बहुत दुख हुआ और वे दुख से बेहोश हो गए। जब प्रजापति दक्ष को ज्ञात हुआ कि यह सब नारद की वजह से हुआ है तो उन्हें बहुत क्रोध आया। संयोग से तुम भी उसी समय वहां पहुंच गए। तुम्हें देखते ही क्रोध के कारण वे तुम्हारी निंदा करने लगे और तुम्हें धिक्कारने लगे।

वे बोले—तुमने सिर्फ दिखाने के लिए ऋषियों का रूप धारण कर रखा है। तुमने मेरे पुत्रों को ठगकर उन्हें भिक्षुओं का मार्ग दिखाया है। तुमने लोक और परलोक दोनों के श्रेय का नाश कर दिया है। जो मनुष्य ऋषि, देव और पितृ ऋणों को उतारे बिना ही मोक्ष की इच्छा मन में लिए माता-पिता को त्यागकर घर से चला जाता है, संन्यासी बन जाता है वह अधोगति को प्राप्त हो जाता है। हे नारद! तुमने बार-बार मेरा अमंगल किया है। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम कहीं भी स्थिर नहीं रह सकोगे। तीनों लोकों में विचरते हुए तुम्हारा पैर कहीं भी स्थिर नहीं रहेगा अर्थात तुम्हें ठहरने के लिए सुस्थिर ठिकाना नहीं मिलेगा। नारद! यद्यपि तुम साधुपुरुषों द्वारा सम्मानित हो, परंतु तुम्हें शोकवश दक्ष ने ऐसा शाप दिया, जिसे तुमने शांत मन से ग्रहण कर लिया और तुम्हारे मन में किसी प्रकार का विकार नहीं आया।

चौदहवां अध्याय

दक्ष की साठ कन्याओं का विवाह

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिराज! दक्ष के इस रूप को जानकर मैं उसके पास गया। मैंने उसे शांत करने का बहुत प्रयत्न किया और सांत्वना दी। मैंने उसे तुम्हारा परिचय दिया। दक्ष को मैंने यह जानकारी भी दी कि तुम भी मेरे पुत्र हो। तुम मुनियों में श्रेष्ठ एवं देवताओं के प्रिय हो। तत्पश्चात प्रजापति दक्ष ने अपनी पत्नी से साठ सुंदर कन्याएं प्राप्त कीं। तब उनका धर्म आदि के साथ विवाह कर दिया। दक्ष ने अपनी दस कन्याओं का विवाह धर्म से, तेरह कन्याओं का ब्याह कश्यप मुनि से और सत्ताईस कन्याओं का विवाह चंद्रमा से कर दिया। दो-दो भूतागिरस और कृशाश्व को और शेष चार कन्याओं का विवाह तार्क्ष्य के साथ कर दिया। इन सबकी संतानों से तीनों लोक भर गए। पुत्र-पुत्रियों की उत्पत्ति के पश्चात प्रजापति दक्ष ने अपनी पत्नी सहित देवी जगदंबिका का ध्यान किया। देवी की बहुत स्तुति की। प्रजापति दक्ष की सपत्नीक स्तुति से देवी जगदंबिका ने प्रसन्न होकर दक्ष की पत्नी के गर्भ से जन्म लेने का निश्चय किया। उत्तम मुहूर्त देखकर दक्ष पत्नी ने गर्भ धारण किया। उस समय उनकी शोभा बढ़ गई।

भगवती के निवास के प्रभाव से दक्ष पत्नी महामंगल रूपिणी हो गई। देवी को गर्भ में जानकर सभी देवी-देवताओं ने जगदंबा की स्तुति की। नौ महीने बीत जाने पर शुभ मुहूर्त में देवी भगवती का जन्म हुआ। उनका मुख दिव्य आभा से सुशोभित था। उनके जन्म के समय आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी और मेघ जल बरसाने लगे। देवता आकाश में खड़े मांगलिक ध्वनि करने लगे। यज्ञ की बुझी हुई अग्नि पुनः जलने लगी। साक्षात जगदंबा को प्रकट हुए देखकर दक्ष ने भक्ति भाव से उनकी स्तुति की।

स्तुति सुनकर देवी प्रसन्न होकर बोली—हे प्रजापते! तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने तुम्हारे घर में पुत्री के रूप में जन्म लेने का जो वर दिया था, वह आज पूर्ण हो गया है। यह कहकर उन्होंने पुनः शिशु रूप धारण कर लिया तथा रोने लगीं। उनका रोना सुनकर दासियां उन्हें चुप कराने हेतु वहां एकत्र हो गईं। जन्मोत्सव में गीत और अनेक वाद्य यंत्र बजने लगे। दक्ष ने वैदिक रीति से अनुष्ठान किया और ब्राह्मणों को दान दिया। उन्होंने अपनी पुत्री का नाम 'उमा' रखा। देवी उमा का पालन बहुत अच्छे तरीके से किया जा रहा था। वह बालकपन में बहुत सी लीलाएं करती थीं। देवी उमा इस प्रकार बढ़ने लगीं जैसे शुक्ल पक्ष में चंद्रमा की कला बढ़ती है। जब भी वे अपनी सखियों के साथ बैठतीं, वे भगवान शिव की मूर्ति को ही चित्रित करती थीं। वे सदा प्रभु शिव के भजन गाती थीं। उन्हीं का स्मरण करतीं और भगवान शिव की भक्ति में ही लीन रहतीं।

पंद्रहवां अध्याय

सती की तपस्या

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! एक दिन मैं तुम्हें लेकर प्रजापति दक्ष के घर पहुंचा। वहां मैंने देवी सती को उनके पिता के पास बैठे देखा। मुझे देखकर दक्ष ने आसन से उठकर मुझे नमस्कार किया। तत्पश्चात सती ने भी प्रसन्नतापूर्वक मुझे नमस्कार किया। हम दोनों वहां आसन पर बैठ गए। तब मैंने देवी सती को आशीर्वाद देते हुए कहा—सती! जो केवल तुम्हें चाहते हैं और तुम्हारी ही कामना करते हैं। तुम भी मन में उन्हीं को सोचती हो और उसी के रूप का स्मरण करती हो। उन्हीं सर्वज्ञ जगदीश्वर महादेव को तुम पति रूप में प्राप्त करो। वे ही तुम्हारे योग्य हैं। कुछ देर बाद दक्ष से विदा लेकर मैं अपने धाम को चल दिया। दक्ष को मेरी बातें सुनकर बड़ा संतोष एवं प्रसन्नता हुई। मेरे कथन से उनकी सारी चिंताएं दूर हो गईं। धीरे-धीरे सती ने कुमारावस्था पार कर ली और वे युवा अवस्था में प्रवेश कर गईं। उनका रूप अत्यंत मनोहारी था। उनका मुख दिव्य तेज से शोभायमान था। देवी सती को देखकर प्रजापति दक्ष को उनके विवाह की चिंता होने लगी। तब पिता के मन की बात जानकर देवी सती ने महादेव को पति रूप में पाने की इच्छा अपनी माता को बताई। उन्होंने अपनी माता से भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने की आज्ञा मांगी। उनकी माता ने आज्ञा देकर घर पर ही उनकी आराधना आरंभ करा दी।

आश्विन मास में नंदा अर्थात प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथियों में उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान शिव का पूजन कर उन्हें गुड़, भात और नमक का भोग लगाया व नमस्कार किया। इसी प्रकार एक मास बीत गया। कार्तिक मास की चतुर्दशी को देवी सती ने मालपुओं और खीर से भगवान शिव को भोग लगाया और उनका निरंतर चिंतन करती रहीं। मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को वे तिल, जौ और चावल से शिवजी की आराधना करतीं और घी का दीपक जलातीं। पौष माह की शुक्ल पक्ष सप्तमी को पूरी रात जागरण कर सुबह खिचड़ी का भोग लगातीं। माघ की पूर्णिमा की रातभर वे शिव आराधना में लीन रहतीं और सुबह नदी में स्नान कर गीले वस्त्रों में ही पुनः पूजा करने बैठ जाती थीं। फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को जागरण कर शिवजी की विशेष पूजा करती थीं। उनका सारा समय शिवजी को समर्पित था। वे अपने दिन-रात शिवजी के स्मरण में ही बिताती थीं। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को वे ढाक के फूलों और दवनों से भगवान की पूजा करती थीं। वैशाख माह में वे सिर्फ तिलों को खाती थीं। वे नए जौ के भात से शिव पूजन करती थीं। ज्येष्ठ माह में वे भूखी रहतीं और वस्त्रों तथा भटकटैया के फूलों से शिव पूजन करती थीं। आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को वे काले वस्त्रों और भटकटैया से रुद्रदेव का पूजन करती थीं। श्रावण मास में यज्ञोपवीत, वस्त्रों तथा कुश आदि से वे पूजन करती थीं। भाद्रपद मास में विभिन्न फूलों व फलों से वे शिव को प्रसन्न करने की कोशिश करतीं। वे सिर्फ

जल ही ग्रहण करती थीं। देवी सती हर समय भगवान शिव की आराधना में ही लीन रहती थीं। इस प्रकार उन्होंने दृढ़तापूर्वक नंदा व्रत को पूरा किया। व्रत पूरा करने के पश्चात वे शिवजी का ध्यान करने लगीं। वे निश्चित आसन में स्थित हो निरंतर शिव आराधना करती रहीं।

हे नारद! देवी सती की इस अनन्य भक्ति और तपस्या को अपनी आंखों से देखने मैं, विष्णु तथा अन्य सभी देवी-देवता और ऋषि-मुनि वहां गए। वहां सभी ने देवी सती को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनके सामने मस्तक झुकाए। सभी देवी-देवताओं ने उनकी तपस्या को सराहा। तब सभी देवी-देवता और ऋषि-मुनि मेरे (ब्रह्मा) और विष्णु सहित कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां भगवान शिव ध्यानमग्न थे। हमने उनके निकट जाकर, दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति आरंभ कर दी। हमने कहा—

प्रभो! आप परम शक्तिशाली हैं। आप ही सत्व, रज और तप आदि शक्तियों के स्वामी हैं। वेदत्रयी, लोकत्रयी आपका स्वरूप है। आप अपनी शरण में आए भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं। आप सदैव भक्तों का उद्धार करते हैं। हे महादेव! हे महेश्वर! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपकी महिमा जान पाना कठिन ही नहीं असंभव है। हम आपके सामने अपना मस्तक झुकाते हैं।

ब्रह्माजी बोले—नारद! इस प्रकार भगवान शिव-शंकर की स्तुति करके सभी देवता मस्तक झुकाकर शिवजी के सामने चुपचाप खड़ हो गए।

सोलहवां अध्याय

रुद्रदेव का सती से विवाह

ब्रह्माजी बोले—श्रीविष्णु सहित अनेक देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों द्वारा की गई स्तुति सुनकर सृष्टिकर्ता शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक हम सबके आगमन का कारण पूछा।

रुद्रदेव बोले—हे हरे! हे देवताओ और महर्षियो। मुझे अपने कैलाश पर आगमन के विषय में बताइए। आप लोग यहां किसलिए आए हैं? और आपको कौन-सा कार्य है? कृपया मुझे बताइए। मुने! महादेव जी के इस प्रकार पूछने पर भगवान विष्णु की आज्ञा से मैंने इस प्रकार निवेदन किया।

मैं बोला—हे देवाधिदेव महादेव! करुणासागर! हम सब यहां आपकी सहायता मांगने के लिए आए हैं। भगवन्, हम तीन होते हुए भी एक हैं। सृष्टि के चक्र को नियमित तथा सुचारु रूप से चलाने के लिए हम एक-दूसरे के सहयोगी की तरह कार्य करते हैं। हम एक-दूसरे के सहायक हैं। हम तीनों के परस्पर सहयोग के फलस्वरूप ही जगत के सभी कार्य संपन्न होते हैं। महेश्वर! कुछ असुरों का वध आपके द्वारा, कुछ असुरों का वध मेरे द्वारा तथा कुछ असुरों का वध श्रीहरि द्वारा निश्चित है। हे प्रभो! कुछ असुर आपके वीर्य द्वारा उत्पन्न पुत्र के द्वारा नष्ट होंगे। हे भगवन्! आप घोर असुरों का विनाश कर जगत को स्वास्थ्य व अभय प्रदान करते हैं। हे प्रभो! सृष्टि की रचना, पालन और संहार ये तीनों ही हमारे कार्य हैं। यदि हम अपने कार्य सही तरह से नहीं करें तो हमारे अलग-अलग शरीर धारण करने का कोई उद्देश्य ही नहीं रहेगा। हे देव! एक ही परमात्मा महेश्वर तीन स्वरूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। वास्तव में शिव स्वतंत्र हैं। वे लीला के उद्देश्य से सृष्टि का कार्य करते हैं। भगवान विष्णु उनके बाएं अंग से प्रकट हुए हैं। मैं (ब्रह्मा) उनके दाएं अंग से प्रकट हुआ हूं। रुद्रदेव उनके हृदय से प्रकट हुए हैं। इसलिए वे ही भगवान शिव का पूर्ण रूप हैं। उनकी आज्ञा के अनुसार मैं सृष्टि की रचना और विष्णुजी जगत का पालन करते हैं। हम अपना कार्य करते हुए विवाह कर सपत्नीक हो गए हैं। अतः आप भी विश्व हित के लिए परम सुंदरी को पत्नी के रूप में ग्रहण करें। हे महेश्वर! पूर्वकाल में आपने शिवरूप में हमें एक बात कही थी।

आपने कहा था—मेरा एक अवतार तुम्हारे ललाट से होगा, जिसे 'रुद्र' नाम से जाना जाएगा। तुम ब्रह्मा सृष्टिकर्ता होओगे, भगवान विष्णु जगत का पालन करेंगे। मैं (शिव) सगुण रुद्ररूप संहार करने वाला होऊंगा। एक स्त्री के साथ विवाह करके लोक के कार्यों की सिद्धि करूंगा। हे महादेव! अब अपनी कही बात को पूरा कीजिए।

हे प्रभु! आपके बिना हम दोनों अपना कार्य करने में समर्थ नहीं हैं। अतः प्रभु! आप ऐसी स्त्री को पत्नी रूप में धारण करें, जो कि लोकहित के कार्य कर सके। भगवन् जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णु की और सरस्वती मेरी सहधर्मिणी हैं, उसी प्रकार आप भी अपने जीवनसाथी को स्वीकार कीजिए।

मेरी यह बात सुनकर महादेव जी मुस्कराने लगे और हमसे इस प्रकार बोले, उन्होंने कहा—हे ब्रह्मा! हे विष्णु! तुम मुझे सदा से अत्यंत प्रिय हो। तुम समस्त देवताओं में श्रेष्ठ तथा त्रिलोक के स्वामी हो। परंतु मेरे लिए विवाह करना उचित नहीं है। मैं सदैव तपस्या में लीन रहता हूं। इस संसार से मैं सदा विरक्त रहता हूं। मैं तो एक योगी हूं, जो सदैव निवृत्ति के मार्ग पर चलता है। घर-गृहस्थी से भला मेरा क्या काम? मैं तो सदैव आत्मरूप हूं। जो माया से दूर है, जिसका शरीर अवधूत है। जो ज्ञानी, आत्मा को जानने वाला और कामना से शून्य हो, भोगों से दूर रहता है, जो अविकारी है, भला उसे संसार में स्त्री से क्या प्रयोजन है? मैं तो योग करते समय ही आनंद का अनुभव करता हूं। जो मनुष्य ज्ञान से रहित हैं, वे ही भोग को अधिक महत्व देते हैं। विवाह एक बहुत बड़ा बंधन है। इसलिए मैं विवाह के बंधनों में बंधना नहीं चाहता। आत्मा का चिंतन करने के कारण मेरी लौकिक स्वार्थ में कोई रुचि नहीं है। फिर भी जगत के हित के लिए तुमने जो कहा है वह मैं करूंगा। तुम्हारे कहे अनुसार मैं विवाह अवश्य ही करूंगा, क्योंकि मैं सदा अपने भक्तों के वश में रहता हूं। परंतु मैं ऐसी स्त्री से विवाह करूंगा जो योगिनी तथा इच्छानुसार रूप धारण करने वाली हो। जब मैं योग साधना करूं तो वह भी योगिनी हो जाए और जब मैं कामासक्त होऊं तब वह कामिनी बन जाए। ऐसी स्त्री ही मुझे पत्नी रूप में स्वीकार्य होगी। मैं सदैव शिव चिंतन में लगा रहता हूं। जो स्त्री मेरे चिंतन में विघ्न डालेगी, वह जीवित नहीं रह सकेगी। मैं, विष्णु और ब्रह्मा हम सभी शिव के अंश हैं। इसलिए हम सदा ही उनका चिंतन करते हैं। उनके चिंतन के लिए मैं बिना विवाह किए रह सकता हूं। अतः मुझे ऐसी पत्नी प्रदान कीजिए जो मेरे अनुसार ही कार्य करे। यदि वह स्त्री मेरे कार्यों में विघ्न डालेगी तो मैं उसे त्याग दूंगा।

विवाह हेतु शिव की स्वीकृति पाकर मैं और विष्णुजी प्रसन्न हो गए। फिर मैं विनम्रतापूर्वक भगवान शिव से बोला—हे नाथ! महेश्वर! प्रभो! आपको जिस प्रकार की स्त्री की आवश्यकता है, ऐसी ही स्त्री के विषय में सुनो।

हे प्रभु! भगवान शिव की पत्नी उमा ही विभिन्न अवतार धारण करके पृथ्वी पर प्रकट होती हैं और सृष्टि के विभिन्न कार्यों को पूरा करने में अपना सहयोग प्रदान करती हैं। उन्हीं देवी उमा ने लक्ष्मी रूप धारण कर श्रीहरि को वरा। सरस्वती रूप में वे मेरी अर्द्धांगिनी बनीं। अब वही देवी लोकहित के लिए अपने तीसरे अवतार में अवतरित हुई हैं। उमा देवी प्रजापति दक्ष की कन्या के रूप में अवतार लेकर आपको पति रूप में पाने की इच्छा लिए घोर तपस्या कर रही हैं। उनका नाम देवी सती है। सती ही आपकी भार्या होने के योग्य हैं। वे महा तेजस्विनी ही आपको पति रूप में प्राप्त करेंगी।

हे भगवन्! आप उनकी कठोर तपस्या को पूर्ण करके उन्हें फलस्वरूप वरदान प्रदान करिए। उनका तपस्या का प्रयोजन आपको पति रूप में प्राप्त करना ही है। अतः प्रभु आप देवी सती की मनोकामना को पूरा कीजिए। हम सभी देवी-देवताओं की यही इच्छा है। हम आपके विवाह का उत्सव देखना चाहते हैं। आपका विवाह तीनों लोकों को सुख प्रदान करेगा तथा सभी के लिए मंगलमय होगा।

तब भगवान शिव बोले—आप सबकी आज्ञा मेरे लिए सबसे ऊपर है क्योंकि मैं सदैव

अपने भक्तों के अधीन हूं। आपकी इच्छानुसार मैं देवी सती द्वारा तपस्या पूरी कर उनसे विवाह अवश्य करूंगा। भगवान शिव के ये वचन सुनकर हम सभी बहुत प्रसन्न हुए और उनसे आज्ञा लेकर अपने-अपने धाम को चले गए।

सत्रहवां अध्याय

सती को शिव से वर की प्राप्ति

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! सती ने आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को उपवास किया। नंदाव्रत के पूर्ण होने पर जब वे भगवान शिव के ध्यान में मग्न थीं तो भगवान शिव ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिए। भगवान शिव का रूप अत्यंत मनोहारी था। उनके पांच मुख थे और प्रत्येक मुख में तीन नेत्र थे। मस्तक पर चंद्रमा शोभित था। उनके कण्ठ में नील चिन्ह था। उनके हाथ में त्रिशूल, ब्रह्मकपाल, वर तथा अभय था। उन्होंने पूरे शरीर पर भस्म लगा रखी थी। गंगा जी उनके मस्तक की शोभा बढ़ा रही थीं। उनका मुख करोड़ों चंद्रमाओं के समान प्रकाशमान था। सती ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप में अपने सामने पाकर उनके चरणों की वंदना की। उस समय लज्जा और शर्म के कारण उनका सिर नीचे की ओर झुका हुआ था। तपस्या का फल प्रदान करने के लिए शिवजी बोले—उत्तम व्रत का पालन करने वाली हे दक्ष नंदिनी! मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। इसलिए तुम्हारी मनोकामना को पूरा करने के लिए स्वयं यहां प्रकट हुआ हूं। अतः तुम्हारे मन में जो भी इच्छा है, तुम्हारी जो भी कामना है, जिसके वशीभूत होकर तुमने इतनी घोर तपस्या की है, वह मुझे बताओ, मैं उसे अवश्य ही पूर्ण करूंगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—हे मुनि! जगदीश्वर महादेव जी ने सती के मनोभाव को समझ लिया था। फिर भी वे सती से बोले कि देवी वर मांगो। देवी सती शर्म से सिर झुकाए थीं। वे चाहकर भी कुछ नहीं कह पा रही थीं। भगवान शिव के वचन सुनकर सती प्रेम में मग्न हो गई थीं। शिवजी बार-बार सती से वर मांगने के लिए कह रहे थे। तब देवी सती ने महादेव जी से कहा—हे वर देने वाले प्रभु! मुझे मेरी इच्छा के अनुसार ही वर दीजिए। इतना कहकर देवी चुप हो गईं। जब भगवान शिव ने देखा कि देवी सती लज्जावश कुछ कह नहीं पा रही हैं तो वे स्वयं उनसे बोले—हे देवी! तुम मेरी अर्द्धांगिनी बनो। यह सुनकर सती अत्यंत प्रसन्न हुईं, क्योंकि उन्हें अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति हुई थी। वे अपने हाथ जोड़कर और मस्तक को झुकाकर भक्तवत्सल शिव के चरणों की वंदना करने लगीं। सती बोलीं—हे देवाधिदेव महादेव! प्रभो! आप मेरे पिता को कहकर वैवाहिक विधि से मेरा पाणिग्रहण करें।

ब्रह्माजी बोले—नारद! सती की बात सुनकर शिवजी ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि ऐसा ही होगा।' तब देवी सती ने भगवान शिव को हर्ष एवं मोह से देखा और उनसे आज्ञा लेकर अपने पिता के घर चली गईं। भगवान शिव कैलाश पर लौट गए और देवी सती का स्मरण करते हुए उन्होंने मेरा चिंतन किया। शिवजी के स्मरण करने पर मैं तुरंत कैलाश की ओर चल दिया। मुझे देखकर भगवान शिव बोले—

ब्रह्मन्! दक्षकन्या सती ने बड़ी भक्ति से मेरी आराधना की है। उनके नंदाव्रत के प्रभाव से और आप सब देवताओं की इच्छाओं का सम्मान करते हुए मैंने देवी सती को उनका

मनोवांछित वर प्रदान कर दिया है। देवी ने मुझसे यह वर मांगा कि मैं उनका पति हो जाऊं। उनके वर के अनुसार मैंने सती को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करने का वर दे दिया है। वर प्राप्त कर वे बड़ी प्रसन्न हुईं तथा उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उनके पिता प्रजापति दक्ष के समक्ष देवी सती से विवाह करने का प्रस्ताव रखूं और पाणिग्रहण कर उनका वरण करूं। उनके विनम्र अनुरोध को मैंने स्वीकार कर लिया है। इसलिए मैंने आपको यहां बुलाया है कि आप प्रजापति दक्ष के घर जाकर उनसे देवी सती का कन्यादान मुझसे करने का अनुरोध करें।

भगवान शिव की आज्ञा से मैं बहुत प्रसन्न हुआ और मैंने उनसे कहा—भगवन्, मैं धन्य हो गया जो आपने हम सभी देवी-देवताओं के अनुरोध को स्वीकार कर देवी सती को अपनी पत्नी बनाना स्वीकार करने और इस कार्य को पूरा करने के लिए मुझे चुना। मैं आपकी आज्ञानुसार अभी प्रजापति दक्ष के घर जाता हूं तथा उन्हें आपका संदेश सुनाकर देवी सती का हाथ आपके लिए मांगता हूं। यह कहकर मैं वेगशाली रथ से दक्ष के घर की ओर चल दिया।

नारद जी ने पूछा—हे पितामह! पहले आप मुझे यह बताइए कि देवी सती के घर लौटने पर क्या हुआ? दक्ष ने उनसे क्या कहा और क्या किया?

ब्रह्माजी नारद जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—जब देवी सती तपस्या पूर्ण होने पर अपनी इच्छा के अनुरूप भगवान शिव से वर पाकर अपने घर लौटीं तो उन्होंने श्रद्धापूर्वक अपने माता-पिता को प्रणाम किया। उन्होंने अपनी सहेली द्वारा अपने माता-पिता को यह सूचना दी कि उन्हें भगवान शिव से वरदान की प्राप्ति हो गई है। वे सती की तपस्या से बहुत प्रसन्न हुए हैं और उन्हें अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं। यह सुनकर प्रजापति दक्ष और उनकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आनंदित होकर बड़े उत्सव का आयोजन किया। उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराया और उन्हें दक्षिणा दी। उन्होंने गरीबों और दीनों को दान दिया।

कुछ समय बीतने पर प्रजापति दक्ष को पुनः चिंता होने लगी कि वे अपनी पुत्री का विवाह भगवान शिव से कैसे करें? क्योंकि वे अब तक मेरे पास सती का हाथ मांगने नहीं आए हैं।

इस प्रकार प्रजापति दक्ष चिंतामग्न हो गए। लेकिन उन्हें ऐसी चिंता ज्यादा दिनों तक नहीं करनी पड़ी। शिव तो कृपा के सागर और करुणा की खान हैं, तब वह कैसे चिंतित रह सकता है, जिसकी पुत्री ने तप द्वारा शिव का वरण किया है।

जब मैं सरस्वती सहित उनके घर उपस्थित हो गया, तब मुझे देखकर उन्होंने मुझे प्रणाम किया और बैठने के लिए आसन दिया। तत्पश्चात दक्ष ने मेरे आने का कारण पूछा तो मैंने अपने आने का प्रयोजन बताते हुए कहा—

हे प्रजापति दक्ष! मैं भगवान शिव की आज्ञा से आपके घर आया हूं। मैं देवी सती का हाथ महादेव जी के लिए मांगने आया हूं। सती ने उत्तम आराधना करके भगवान शिव को प्रसन्न कर उन्हें अपने पति के रूप में प्राप्त करने का वर प्राप्त किया है। अतः तुम शीघ्र ही सती का पाणिग्रहण शिवजी के साथ कर दो।

नारद! मेरी यह बातें सुनकर दक्ष बहुत प्रसन्न हुआ। उसने हर्षित मन से इस विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। तब मैं प्रसन्न मन से कैलाश पर्वत पर चल दिया। वहां भगवान शिव मेरी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। वहीं दूसरी ओर प्रजापति दक्ष, उनकी पत्नी और पुत्री सती विवाह प्रस्ताव आने पर हर्ष से विभोर हो रहे थे।

अठारहवां अध्याय

शिव और सती का विवाह

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब मैं कैलाश पर्वत पर भगवान शिव को प्रजापति दक्ष की स्वीकृति की सूचना देने पहुंचा तो वे उत्सुकतापूर्वक मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। तब मैंने महादेव जी से कहा—

हे भगवन्! दक्ष ने कहा है कि वे अपनी पुत्री सती का विवाह भगवान शिव से करने को तैयार हैं क्योंकि सती का जन्म महादेव जी के लिए ही हुआ है। यह विवाह होने पर उन्हें सबसे अधिक प्रसन्नता होगी। उनकी पुत्री सती ने महादेव जी को पति रूप में प्राप्त करने हेतु ही उनकी घोर तपस्या की है। उन्हें इस बात की भी खुशी है कि मैं स्वयं आपकी आज्ञा से उनकी पुत्री के लिए आपका अर्थात भगवान शिव का विवाह प्रस्ताव लेकर वहां गया। उन्होंने कहा—

हे पितामह! उनसे कहिए कि वे शुभ लग्न और मुहूर्त में अपनी बारात लेकर स्वयं आएं। मैं अपनी पुत्री का कन्यादान सहर्ष महादेव जी को कर दूंगा। हे भगवन्! दक्ष ने मुझसे यह बात कही है, इसलिए आप शुभ मुहूर्त देखकर शीघ्र ही उनके घर चलें और देवी सती का वरण करें। हे नारद! मेरे ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने कहा—

हे संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी! मैं तुम्हारे और नारद जी के साथ ही प्रजापति दक्ष के घर चलूंगा। इसलिए ब्रह्माजी आप नारद और अपने मानस पुत्रों का स्मरण कर उन्हें यहां बुला लें। साथ ही मेरे पार्षद भी दक्ष के घर चलेंगे।

नारद! तब भगवान शिव की आज्ञा पाकर मैंने तुम्हारा और अपने अन्य मानस पुत्रों का स्मरण किया। उन तक मेरा संदेश पहुंचते ही वे तुरंत कैलाश पर्वत पर उपस्थित हो गए। उन्होंने हर्षित मन से महादेव जी को और मुझे प्रणाम किया। तत्पश्चात शिवजी ने भगवान श्रीहरि विष्णु का स्मरण किया। भगवान विष्णु देवी लक्ष्मी के साथ अपने विमान गरुड़ पर बैठ वहां आ गए। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि में रविवार को पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की बारात धूमधाम से कैलाश पर्वत से निकली। उनकी बारात में मैं, देवी सरस्वती, विष्णुजी, देवी लक्ष्मी, सभी देवी-देवता, मुनि और शिवगण आनंदमग्न होकर चल रहे थे। रास्ते में खूब उत्सव हो रहा था। भगवान शिव की इच्छा से बैल, बाघ, सांप, जटा और चंद्रकला उनके आभूषण बन गए। भगवन् स्वयं नंदी पर सवार होकर प्रजापति दक्ष के घर पहुंचे।

द्वार पर भगवान शिव की बारात देखकर सभी हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे। प्रजापति दक्ष ने विधिपूर्वक भगवान शिव की पूजा अर्चना की। उन्होंने सभी देवताओं का खूब आदर-सत्कार किया तथा उन्हें घर के अंदर ले गए। दक्ष ने भगवान शिव को उत्तम आसन पर बैठाया और हम सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों को भी यथायोग्य स्थान दिया। सभी का

भक्तिपूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात दक्ष ने मुझसे प्रार्थना की कि मैं ही वैवाहिक कार्य को संपन्न कराऊं। मैंने दक्ष की प्रार्थना को स्वीकार किया और वैवाहिक कार्य कराने लगा। शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त देखकर प्रजापति दक्ष ने अपनी पुत्री सती का हाथ भगवान शिव के हाथों में सौंप दिया और विधि-विधान से पाणिग्रहण-संस्कार संपन्न कराया। उस समय वहां बहुत बड़ा उत्सव हुआ और नाच-गाना भी हुआ। सभी आनंदमग्न थे। हम सभी देवी-देवताओं ने भगवान शिव और देवी सती की बहुत स्तुति की और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवान शिव और सती का विवाह हो जाने पर उनके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए और महादेव जी को अपनी कन्या का दान कर प्रजापति दक्ष कृतार्थ हो गए। महेश्वर का विवाह होने का पूरा संसार मंगल उत्सव मनाने लगा।

उन्नीसवां अध्याय

ब्रह्मा और विष्णु द्वारा शिव की स्तुति करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! कन्यादान करके दक्ष ने भगवान शिव को अनेक उपहार प्रदान किए। उन्होंने सभी ब्राह्मणों को भी दान-दक्षिणा दी। तत्पश्चात भगवान विष्णु अपनी पत्नी लक्ष्मी जी सहित भगवान शिव के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो उनकी आराधना करने लगे। वे बोले—हे दयासागर महादेव जी! आप संपूर्ण जगत के पिता हैं और देवी सती सबकी माता हैं। भगवन् आप दोनों ही अपने भक्तों की रक्षा के लिए और दुष्टों का नाश करने के लिए अनेक अवतार धारण करते हैं। इस प्रकार उन्होंने शिव-सती की बहुत स्तुति की।

नारद! मैं उनके पास आकर विधि के अनुसार फेरे कराने लगा। ब्राह्मणों की आज्ञा और मेरे सहयोग से सती और भगवान शिव ने विधिपूर्वक अग्नि के फेरे लिए। उस समय वहां बहुत अद्‌भुत उत्सव किया जा रहा था। वहां विभिन्न प्रकार के बाजे और शहनाइयां बज रहीं थी। स्त्रियां मंगल गीत गा रही थीं और खुशी से सभी नृत्य कर रहे थे।

तत्पश्चात भगवान विष्णु बोले—सदाशिव! आप संपूर्ण प्रकृति के रचयिता हैं। आपका स्वरूप ज्योतिर्मय है। ब्रह्माजी, मैं और रुद्रदेव आपके ही रूप हैं। हम सभी सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं। हे प्रभु! हम सब आपका ही अंश हैं। प्रभु! आप आकाश के समान सर्वव्यापी और ज्योतिर्मय हैं। जिस प्रकार हाथ, कान, नाक, मुंह, सिर आदि शरीर के विभिन्न रूप हैं। उसी प्रकार हम सब भी आपके शरीर के ही अंग हैं। आप निर्गुण निराकार हैं। समस्त दिशाएं आपकी मंगल कथा कहती हैं। सभी देवी-देवता और ऋषि-मुनि आपके ही चरणों की वंदना करते हैं। आपकी महिमा का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूं। भगवन्, यदि हम सबसे कुछ गलती हो गई हो तो कृपया उसे क्षमा करें और प्रसन्न हों।

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार श्रीहरि ने भगवान शिव की बहुत स्तुति की। उनकी स्तुति सुनकर भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए। विवाह की सभी रीतियों के पूर्ण होने पर हम सभी ने महादेव जी एवं देवी सती को बधाइयां दीं तथा उनसे प्रार्थना की कि वे अपनी कृपादृष्टि सदैव सभी पर बनाए रखें। वे जगत का कल्याण करें। तत्पश्चात भगवान शिव ने मुझसे कहा—हे ब्रह्मान्! आपने मेरा वैवाहिक कार्य संपन्न कराया है। अतः आप ही मेरे आचार्य हैं। आचार्य को कार्यसिद्धि के लिए दक्षिणा अवश्य दी जाती है। इसलिए आप मुझे बताइए कि मैं दक्षिणा में आपको क्या दूं? महाभाग! आप जो भी मांगेंगे मैं उसे अवश्य ही दूंगा।

मुने! भगवान शिव के इस प्रकार के वचन सुनकर मैं हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया। मैंने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे देवेश! यदि आप मुझे अपना आचार्य मानकर कोई वर देना चाहते हैं तो मैं आपसे यह वर मांगता हूं कि आप सदा इसी रूप में इसी वेदी पर विराजमान रहकर अपने भक्तों को दर्शन दें। इस स्थान पर आपके दर्शन करने से सभी पापियों के पाप धुल जाएं। आपके यहां विराजमान होने से मुझे आपका साथ प्राप्त हो

जाएगा। मैं इसी वेदी के पास आश्रम बनाकर यहां निवास करूंगा और तपस्या करूंगा। हे प्रभु! मेरी यही इच्छा है। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में रविवार के दिन जो भी मनुष्य भक्तिभाव से आपका दर्शन करे उसके सभी पाप नष्ट हो जाएं। रोगी मनुष्य के सभी रोग दूर हो जाएं। इस दिन आपका दर्शन कर मनुष्य जिस इच्छा को आपके सामने व्यक्त करे उसे आप तुरंत पूरा करें। हे प्रभु! आप इस दिन सभी को मनोवांछित वर प्रदान करें। भगवन् यही वरदान मैं आपसे मांगता हूं।

मेरी यह बात सुनकर भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—हे ब्रह्मा! मैं आपकी इच्छा अवश्य ही पूरी करूंगा। तुम्हारे वर के अनुसार मैं देवी सती सहित इस वेदी पर विराजमान रहूंगा। यह कहकर भगवान शिव देवी सती के साथ मूर्ति रूप में प्रकट होकर वेदी के मध्य भाग में विराजमान हो गए। इस प्रकार मेरी इच्छा को पूरा कर जगत के हित के लिए प्रभु शिव वेदी पर अंशरूप में विराजमान हुए।

बीसवां अध्याय

शिव-सती का विदा होकर कैलाश जाना

ब्रह्माजी बोले—हे महामुनि नारद! मुझे मेरा मनोवांछित वरदान देने के पश्चात भगवान शिव अपनी पत्नी देवी सती को साथ लेकर अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत पर जाने के लिए तैयार हुए। तब अपनी बेटी सती व दामाद भगवान शिव को विदा करते समय प्रजापति दक्ष ने अपने हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर महादेव जी की भक्तिपूर्वक स्तुति की। साथ ही श्रीहरि सहित सभी देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों ने हर्ष से प्रभु का जय-जयकार किया। भगवान शिव ने अपने ससुर प्रजापति दक्ष से आज्ञा लेकर अपनी पत्नी को अपनी सवारी नंदी पर बैठाया और स्वयं भी उस पर बैठकर कैलाश पर्वत की ओर चले गए। उस समय वृषभ पर बैठे भगवान शिव व सती की शोभा देखते ही बनती थी। उनका रूप मनोहारी था। सब मंत्रमुग्ध होकर उन दोनों को जाते हुए देख रहे थे। प्रजापति दक्ष और उनकी पत्नी अपनी बेटी व दामाद के अनोखे रूप पर मोहित हो उन्हें एकटक देख रहे थे। उनकी विदाई पर चारों ओर मंगल गीत गाए जा रहे थे। विभिन्न वाद्य यंत्र बज रहे थे। सभी बाराती शिव के कल्याणमय उज्ज्वल यश का गान करते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। भगवान शिव देवी सती के साथ अपने निवास कैलाश पर पहुंचे। सभी देवता सहित मैं और विष्णुजी भी कैलाश पर्वत पर पहुंचे। भगवान शिव ने उपस्थित सभी देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों का हृदय से धन्यवाद किया। भगवान शिव ने सभी को सम्मानपूर्वक विदा किया। तब सभी देवताओं ने उनकी स्तुति की और प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धाम को चले गए। तत्पश्चात भगवान शिव और देवी सती सुखपूर्वक अपने वैवाहिक जीवन का आनंद उठाने लगे।

सूत जी कहते हैं—हे मुनियो! मैंने तुम्हें भगवान शिव के शुभ विवाह की पुण्य कथा सुनाई है। भगवान शिव का विवाह कब और किससे हुआ? वे विवाह के लिए कैसे तैयार हुए? इस प्रकार मैंने सभी प्रसंगों का वर्णन तुमसे किया है। विवाह के समय, यज्ञ अथवा किसी भी शुभ कार्य के आरंभ में भगवान शिव का पूजन करने के पश्चात इस कथा को जो सुनता अथवा पढ़ता है उसका कार्य या वैवाहिक आयोजन बिना विघ्न और बाधाओं के पूरा होता है। इस कथा के श्रवण से सभी शुभकार्य निर्विघ्न पूर्ण होते हैं। इस अमृतमयी कथा को सुनकर जिस कन्या का विवाह होता है वह सुख, सौभाग्य, सुशीलता और सदाचार आदि सद्गुणों से युक्त हो जाती है। भगवान शिव की कृपा से पुत्रवती भी होती है।

इक्कीसवां अध्याय

शिव-सती विहार

नारद जी ने पूछा—हे पितामह ब्रह्माजी! शिवजी के विवाह के पश्चात सभी पधारे देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों सहित श्रीहरि और आपको विदा करने के पश्चात क्या हुआ? हे प्रभु! इससे आगे की कथा का वर्णन भी आप मुझसे करें। यह सुनकर ब्रह्माजी ने मुस्कुराते हुए कहा—हे महर्षि नारद! सभी उपस्थित देवताओं को विवाहोपरांत भगवान शिव और देवी सती ने प्रसन्नतापूर्वक विदा कर दिया। तत्पश्चात देवी सती ने सभी शिवगणों को भी कुछ समय के लिए कैलाश पर्वत से जाने की आज्ञा प्रदान की। सभी शिवगणों ने महादेव जी को प्रणाम कर उनकी स्तुति की। तत्पश्चात उन्होंने भगवान शंकर से वहां से जाने की आज्ञा मांगी। आज्ञा देते हुए महादेव जी ने कहा—जाएं लेकिन मेरे स्मरण करने पर आप सभी तुरंत मेरे समक्ष उपस्थित हो जाएं। तब नंदी समेत सभी गण वहां भगवान शिव और देवी सती को अकेला छोड़कर कुछ समय के लिए कैलाश पर्वत से चले गए।

अब कैलाश पर्वत पर भगवान शिव सती के साथ अकेले थे। देवी सती भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त कर बहुत खुश थीं। बहुत कठिन तप के उपरांत ही उन्हें भगवान शिव का सान्निध्य मिल पाया था। यह सोचकर वह बहुत रोमांचित थीं। उधर देवी सती के अनुपम सौंदर्य को देखकर शिवजी भी मोहित हो चुके थे। वे भी देवी सती का साथ पाकर अपने को धन्य समझ रहे थे। एकांत पाकर शिवजी अपनी पत्नी सती के साथ कैलाश पर्वत के शिखर पर रमण करने लगे।

बाईसवां अध्याय

शिव-सती का हिमालय गमन

कैलाश पर्वत पर श्रीशिव और दक्ष कन्या सती के विविध विहारों का विस्तार से वर्णन करने के बाद ब्रह्माजी ने कहा—

नारद! एक दिन की बात है कि देवी सती भगवान शिव को प्रेमपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं। उन्हें चुपचाप खड़े देखकर भगवान शिव समझ गए कि देवी सती के मन में कुछ बात अवश्य है, जिसे वह कहना चाह रही हैं। तब उन्होंने मुस्कुराकर देवी सती से पूछा कि हे प्राणवत्सला! कहिए आप क्या कहना चाहती हैं? यह सुनकर देवी सती बोलीं —

हे भगवन्! वर्षा ऋतु आ गई है। चारों ओर का वातावरण सुंदर व मनोहारी हो गया है। हे देवाधिदेव! मैं चाहती हूं कि कुछ समय हम कैलाश पर्वत से दूर पृथ्वी पर या हिमालय पर्वत पर जाकर रहें। वर्षा काल के लिए हम किसी योग्य स्थान पर चले जाएं और कुछ समय वहीं निवास करें। देवी सती की यह प्रार्थना सुनकर भगवान शिव हंसने लगे। हंसते हुए ही उन्होंने अपनी पत्नी सती से कहा कि प्रिये! जहां पर मैं निवास करता हूं, वहां पर मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई भी आ-जा नहीं सकता है। मेघ भी मेरी आज्ञा के बिना कैलाश पर्वत की ओर कभी नहीं आएंगे। वर्षा काल में भी मेघ सिर्फ नीचे की ओर ही घूमकर चले जाएंगे।

हे प्रिये! तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई भी तुम्हें परेशान नहीं कर सकता। फिर भी यदि आप चाहती हैं तो हम हिमालय पर्वत पर चलते हैं। तत्पश्चात भगवान शिव अपनी पत्नी सती के साथ हिमालय पर चले गए। कुछ समय वहां प्रसन्नतापूर्वक विहार करने के पश्चात वे पुनः अपने निवास पर लौट आए।

तेईसवां अध्याय

शिव द्वारा ज्ञान और मोक्ष का वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे महर्षि नारद! भगवान शिव और सती के हिमालय से वापस आने के पश्चात वे पुनः पहले की तरह कैलाश पर्वत पर अपना निवास करने लगे। एक दिन देवी सती ने भगवान शिव को भक्तिभाव से नमस्कार किया और कहने लगीं—हे देवाधिदेव! महादेव! कल्याणसागर! आप सभी की रक्षा करते हैं। हे भगवन्! मुझ पर भी अपनी कृपादृष्टि कीजिए। प्रभु, आप परम पुरुष और सबके स्वामी हैं। आप रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण से दूर हैं। आपको पति रूप में पाकर मेरा जन्म सफल हो गया। हे करुणानिधान! आपने मुझे हर प्रकार का सुख दिया है तथा मेरी हर इच्छा को पूरा किया है परंतु अब मेरा मन तत्वों की खोज करता है। मैं उस परम तत्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूं जो सभी को सुख प्रदान करने वाला है। जिसे पाकर जीव संसार के दुखों और मोह-माया से मुक्त हो जाता है और उसका उद्धार हो जाता है। प्रभु! मुझ पर कृपा कर आप मेरा ज्ञानवर्द्धन करें।

ब्रह्माजी बोले—मुने! इस प्रकार आदिशक्ति देवी सती ने जीवों के उद्धार के लिए भगवान शिव से प्रश्न किया। उस प्रश्न को सुनकर महान योगी, सबके स्वामी भगवान शिव प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे देवी! हे दक्षनंदिनी! मैं तुम्हें उस अमृतमयी कथा को सुनाता हूं, जिसे सुनकर मनुष्य संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। यही वह परमतत्व विज्ञान है जिसके उदय होने से मेरा ब्रह्मस्वरूप है। ज्ञान प्राप्त करने पर उस विज्ञानी पुरुष की बुद्धि शुद्ध हो जाती है। उस विज्ञान की माता मेरी भक्ति है। यह भोग और मोक्ष रूप को प्रदान करती है। भक्ति और ज्ञान सदा सुख प्रदान करता है। भक्ति के बिना ज्ञान और ज्ञान के बिना भक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। हे देवी! मैं सदा अपने भक्तों के अधीन हूं। भक्ति दो प्रकार की होती है—सगुण और निर्गुण। शास्त्रों से प्रेरित और हृदय के सहज प्रेम से प्रेरित भक्ति श्रेष्ठ होती है परंतु किसी वस्तु की कामनास्वरूप की गई भक्ति, निम्नकोटि की होती है। हे प्रिये! मुनियों ने सगुणा और निर्गुणा नामक दोनों भक्तियों के नौ-नौ भेद बताए हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, वंदन, सख्य और आत्मसमर्पण ही भक्ति के अंग माने जाते हैं। जो एक स्थान पर स्थिरतापूर्वक बैठकर तन-मन को एकाग्रचित्त करके मेरी कथा और कीर्तन को प्रतिदिन सुनता है, इसे 'श्रवण' कहा जाता है। जो अपने हृदय में मेरे दिव्य जन्म-कर्मों का चिंतन करता है और उसका अपनी वाणी से उच्चारण करता है, इसे भजन रूप में गाना ही 'कीर्तन' कहा जाता है।

मेरे स्वरूप को नित्य अपने आस-पास हर वस्तु में तलाश कर मुझे सर्वत्र व्यापक मानना तथा सदैव मेरा चिंतन करना ही 'स्मरण' है। सूर्य निकलने से लेकर रात्रि तक (सूर्यास्त तक) हृदय और इंद्रियों से निरंतर मेरी सेवा करना ही 'सेवन' कहा जाता है। स्वयं को प्रभु का किंकर समझकर अपने हृदयामृत के भोग से भगवान का स्मरण 'दास्य' कहा जाता है।

अपने धन और वैभव के अनुसार सोलह उपचारों के द्वारा मनुष्य द्वारा की गई मेरी पूजा 'अर्चन' कहलाती है। मन, ध्यान और वाणी से मंत्रों का उच्चारण करते हुए इष्टदेव को नमस्कार करना 'वंदन' कहा जाता है। ईश्वर द्वारा किए गए फैसले को अपना हित समझकर उसे सदैव मंगल मानना ही 'सख्य' है। मनुष्य के पास जो भी वस्तु है वह भगवान की प्रसन्नता के लिए उनके चरणों में अर्पण कर उन्हें समर्पित कर देना ही 'आत्मसमर्पण' कहलाता है। भक्ति के यह नौ अंग भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। ये सभी ज्ञान के साधन मुझे प्रिय हैं।

मेरी सांगोपांग भक्ति ज्ञान और वैराग्य को जन्म देती है। इससे सभी अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। मुझे मेरे भक्त बहुत प्यारे हैं। तीनों लोकों और चारों युगों में भक्ति के समान दूसरा कोई भी सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुग में, जब ज्ञान और वैराग्य का ह्रास हो जाएगा तब भी भक्ति ही शुभ फल प्रदान करने वाली होगी। मैं सदा ही अपने भक्तों के वश में रहता हूं। मैं अपने भक्तों की विपरीत परिस्थिति में सदैव सहायता करता हूं और उसके सभी कष्टों को दूर करता हूं। मैं अपने भक्तों का रक्षक हूं।

ब्रह्माजी बोले—नारद! देवी सती को भक्त और भक्ति का महत्व सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने भगवान शिव को प्रणाम किया और पुनः शास्त्रों के बारे में पूछा। वे यह जानना चाहती थीं कि सभी जीवों का उद्धार करने वाला, उन्हें सुख प्रदान करने वाला सभी साधनों का प्रतिपादक शास्त्र कौन-सा है? वे ऐसे शास्त्र का माहात्म्य सुनना चाहती थीं। सती का प्रश्न सुनकर शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक सब शास्त्रों के विषय में देवी सती को बताया। महेश्वर ने पांचों अंगों सहित तंत्रशास्त्र, यंत्रशास्त्र तथा सभी देवेश्वरों की महिमा का वर्णन किया। उन्होंने इतिहास की कथा भी सुनाई। पुत्र और स्त्री के धर्म की महिमा भी बताई। मनुष्यों को सुख प्रदान करने वाले वैद्यक शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र का भी वर्णन किया। भगवान शिव ने भक्तों का माहात्म्य और राज धर्म भी बताया।

इसी प्रकार भगवान शिव ने सती को उनके पूछे सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए सभी कथाएं सुनाईं।

चौबीसवां अध्याय

शिव की आज्ञा से सती द्वारा श्रीराम की परीक्षा

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! हे दयानिधे! आपने मुझे भगवान शंकर तथा देवी सती के मंगलकारी चरित्र के बारे में बताया। हे प्रभु! मैं महादेव जी का सपत्नीक यश वर्णन सुनना चाहता हूं। कृपया अब मुझे आप यह बताइए कि तत्पश्चात शिवजी व सती ने क्या किया? उनके सभी चरित्रों का वर्णन मुझसे करें।

ब्रह्माजी ने कहा—मुने! एक बार की बात है कि सतीजी को अपने पति का वियोग प्राप्त हुआ। यह वियोग भी उनकी लीला का ही रूप था क्योंकि इनका परस्पर वियोग तो हो ही नहीं सकता है। यह वाणी और अर्थ के समान है, यह शक्ति और शक्तिमान है तथा चित्रस्वरूप है। सती और शिव तो ईश्वर हैं। वे समय-समय पर नई-नई लीलाएं रचते हैं।

सूत जी कहते हैं—महर्षियो! ब्रह्माजी की बात सुनकर नारद जी ने ब्रह्माजी से देवी सती और भगवान शिव के बारे में पूछा कि भगवान शिव ने अपनी पत्नी सती का त्याग क्यों किया? ऐसा किसलिए हुआ कि स्वयं वर देने के बाद भी उन्होंने देवी सती को छोड़ दिया? प्रजापति दक्ष ने अपने यज्ञ के आयोजन में भगवान शिव को निमंत्रण क्यों नहीं दिया? और यज्ञ स्थल पर भगवान शंकर का अनादर क्यों किया। उस यज्ञ में सती ने अपने शरीर का त्याग क्यों किया तथा इसके पश्चात वहां पर क्या हुआ? हे प्रभु! कृपा कर मुझे इस विषय में सविस्तार बताइए।

ब्रह्माजी बोले—हे महाप्राज्ञ नारद! मैं तुम्हारी उत्सुकता देखकर तुम्हारी सभी जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए तुम्हें सारी बातें बताता हूं। ये सभी भगवान शिव की ही लीला है। उनका स्वरूप स्वतंत्र और निर्विकार है। देवी सती भी उनके अनुरूप ही हैं। एक समय की बात है, भगवान शिव अपनी प्राणप्रिया पत्नी सती के साथ अपनी सवारी नंदी पर बैठकर पृथ्वीलोक का भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते वे दण्डकारण्य में आ गए। उस वन में उन्होंने भगवान श्रीराम को उनके भ्राता लक्ष्मण के साथ जंगलों में भटकते हुए देखा। वे अपनी पत्नी सीता को खोज रहे थे, जिसे लंका का राजा रावण उठाकर ले गया था। वे जगह-जगह भटकते हुए उनका नाम पुकार कर उन्हें ढूंढ़ रहे थे। पत्नी के बिछुड़ जाने के कारण श्रीराम अत्यंत दुखी दिखाई दे रहे थे। उनकी कांति फीकी पड़ गई थी। भगवान शिव ने वन में राम जी को भटकते देखा परंतु उनके सामने प्रकट नहीं हुए। देवी सती को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे शिवजी से बोलीं—

हे सर्वेश! हे करुणानिधान सदाशिव! हे परमेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु सहित सभी देवता आपकी ही सेवा करते हैं। आप सब के द्वारा पूजित हैं। वेदांत और शास्त्रों के द्वारा आप ही निर्विकार प्रभु हैं। हे नाथ! ये दोनों पुरुष कौन हैं? ये दोनों विरह व्यथा से व्याकुल रहते हैं। ये दोनों धनुर्धर वीर जंगलों में क्यों भटक रहे हैं? भगवन् इनमें ज्येष्ठ पुरुष की अंगकांति नीलकमल

के समान श्याम है। आप उसे देखकर इतना आनंद विभोर क्यों हो रहे हैं? आपने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम क्यों किया? स्वामी कभी भक्त को प्रणाम नहीं करता। हे कल्याणकारी शिव! आप मेरे संशय को दूर कीजिए और मुझे इस विषय में बताइए।

ब्रह्माजी बोले—नारद! कल्याणमयी आदिशक्ति देवी सती ने जब भगवान शिव से इस प्रकार प्रश्न पूछने आरंभ किए तो देवों के देव महादेव भगवान हंसकर बोले—देवी यह सभी तो पूर्व निर्धारित है। मैंने उन्हें दिए गए वरदान स्वरूप ही उन्हें नमस्कार किया था। ये दोनों भाई सभी वीरों द्वारा सम्मानित हैं। इनके शुभ नाम श्रीराम और लक्ष्मण हैं। ये सूर्यवंशी राजा दशरथ के पुत्र हैं। इनमें गोरे रंग के छोटे भाई साक्षात शेष के अंश हैं तथा उनका नाम लक्ष्मण है। बड़े भाई श्रीराम भगवान विष्णु का अवतार हैं। धरती पर इनका जन्म साधुओं की रक्षा और पृथ्वी वासियों के कल्याण के लिए ही हुआ है। भगवान शिव की ये बातें सुनकर देवी सती को विश्वास नहीं हुआ। ऐसा विभ्रम भगवान शिव की माया के कारण ही हुआ था। जब भगवान शिव को यह ज्ञात हुआ कि देवी सती को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ है तो वे अपनी पत्नी दक्षकन्या सती से बोले—देवी! यदि तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं है तो तुम स्वयं श्रीराम की परीक्षा ले लो। जब तक तुम इस बात से आश्वस्त न हो जाओ कि वे दोनों पुरुष ही राम और लक्ष्मण हैं, और तुम्हारा मोह न नष्ट हो जाए, तब तक मैं यहीं बरगद के नीचे खड़ा हूं। तुम जाकर श्रीराम और लक्ष्मण की परीक्षा लो।

ब्रह्माजी बोले—हे महामुने नारद! अपने पति भगवान शिव के वचन सुनकर सती ने अपने पति का आदेश प्राप्त कर श्रीराम-लक्ष्मण की परीक्षा लेने की ठान ली परंतु उनके मन में बार-बार एक ही विचार उठ रहा था कि मैं कैसे उनकी परीक्षा लूं। तब उनके मन में यह विचार आया कि मैं देवी सीता का रूप धारण कर श्रीराम के सामने जाती हूं। यदि वे साक्षात विष्णुजी का अवतार हैं, तो वे मुझे आसानी से पहचान लेंगे अन्यथा वे मुझे पहचान नहीं पाएंगे। ऐसा विचार कर उन्होंने सीता का वेश धारण कर लिया और रामजी के समक्ष चली गईं। सती ने ऐसा भगवान शिव की माया से मोहित होकर ही किया था। सती को सीता के रूप में देखकर, राम जी सबकुछ जान गए। वे हंसते हुए देवी सती को प्रणाम करके बोले—

हे देवी सती! आपको मैं नमस्कार करता हूं। हे देवी! आप तो यहां हैं, परंतु त्रिलोकीनाथ भगवान शिव कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे हैं। बताइए देवी, आप इस निर्जन वन में अकेली क्या कर रही हैं? और आपने अपने परम सुंदर और कल्याणकारी रूप को त्यागकर यह नया रूप क्यों धारण किया है?

श्री रामचंद्र जी की बातें सुनकर देवी सती आश्चर्यचकित हो गईं। तब वे शिवजी की बातों का स्मरण कर तथा सच्चाई को जानकर बहुत शर्मिंदा हुईं और मन ही मन अपने पति भगवान शंकर के चरणों का स्मरण करती हुई बोलीं—हम अपने पति करुणानिधान भगवान शिव तथा अन्य पार्षदों के साथ पृथ्वी का भ्रमण करते हुए इस वन में आ गए थे। यहां आपको लक्ष्मण जी के साथ सीता की खोज में भटकते हुए देखकर भगवान शिव ने आपको प्रणाम किया और वहीं बरगद के पीछे खड़े हो गए। आपको वहां देख भगवान शिव आनंदित होकर आपकी महिमा का गान करने लगे। वे आपके दर्शनों से आनंदविभोर हो गए। मेरे द्वारा

इस विषय में पूछने पर जब उन्होंने मुझे बताया कि आप श्रीविष्णु का अवतार हैं तो मुझे इस पर विश्वास ही नहीं हुआ और मैं स्वयं आपकी परीक्षा लेने यहां आ गई। आपके द्वारा मुझे पहचान लेने से मेरा सारा भ्रम दूर हो गया है। हे श्रीहरि! अब मुझे आप यह बताइए कि आप भगवान शिव के भी वंदनीय कैसे हो गए? मेरे मन में यही एक संशय है। कृपया, आप मुझे इस विषय में बताकर मेरे संशय को दूर कर मुझे शांति प्रदान करें।

देवी सती के ऐसे वचन सुनकर श्रीराम प्रसन्न होते हुए तथा अपने मन में शिवजी का स्मरण करते हुए प्रेमविभोर हो उठे। वे प्रभु शिव के चरणों का चिंतन करते हुए मन में उनकी महिमा का वर्णन करने लगे।

पच्चीसवां अध्याय

श्रीराम का सती के संदेह को दूर करना

श्रीराम बोले—हे देवी सती! प्राचीनकाल की बात है। एक बार भगवान शिव ने अपने लोक में विश्वकर्मा को बुलाकर उसमें एक मनोहर गोशाला बनवाई, जो बहुत बड़ी थी। उसमें उन्होंने एक मनोहर विस्तृत भवन का भी निर्माण करवाया। उसमें एक दिव्य सिंहासन तथा एक दिव्य श्रेष्ठ छत्र भी बनवाया। यह बहुत ही अद्‌भुत और परम उत्तम था। तत्पश्चात उन्होंने सब ओर से इंद्र, देवगणों, सिद्धों, गंधर्वों, समस्त उपदेवों तथा नाग आदि को भी शीघ्र ही उस मनोहर भवन में बुलवाया। सभी वेदों और आगमों को, पुत्रों सहित ब्रह्माजी को, मुनियों, अप्सराओं सहित समस्त देवियों सहित सोलह नाग कन्याओं आदि सभी को उसमें आमंत्रित किया, जो कि अनेक मांगलिक वस्तुओं के साथ वहां आईं। संगीतज्ञों ने वीणा-मृदंग आदि बाजे बजाकर अपूर्व संगीत का गान किया।

इस प्रकार यह एक बड़ा समारोह और उत्सव था। राज्याभिषेक की सारी सामग्रियां एकत्रित हुईं और तीर्थों के जल से भरे घड़े मंगाए गए। अनेक दिव्य सामग्रियां भी गणों द्वारा मंगवाई गईं। फिर उच्च स्वरों में वेदमंत्रों का घोष कराया गया।

हे देवी! भगवान श्रीहरि विष्णु की उत्तम भक्ति से भगवान शिव सदा प्रसन्न रहते थे। उन्होंने बड़े प्रसन्न होकर श्रीहरि को बैकुंठ से बुलवाया और शुभ मुहूर्त में श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठाया। महादेव जी ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें बहुत से आभूषण और अलंकार पहनाए। उन्होंने भगवान विष्णु के सिर पर मुकुट पहनाकर उनका अभिषेक किया। उस समय वहां अनेक मंगल गान गाए गए। तब भगवान शिव ने अपना सारा ऐश्वर्य, जो कि किसी के पास भी नहीं था, उन्हें प्रेमपूर्वक प्रदान किया। इसके पश्चात भगवान शंकर ने उनकी बहुत स्तुति की और जगतकर्ता ब्रह्माजी से बोले—हे लोकेश! आज से श्रीहरि विष्णु मेरे वंदनीय हुए। यह सुनकर सभी देवता स्तब्ध रह गए। तब वे पुनः बोले कि आप सहित सभी देवी-देवता भगवान विष्णु को प्रणाम कर उनकी स्तुति करें तथा सभी वेद मेरे साथ-साथ श्रीविष्णु जी का भी वर्णन करें।

श्री रामचंद्र जी बोले—हे देवी! भगवान शिव अपने भक्तों के ही अधीन हैं। वे अत्यंत दयालु और कृपानिधान हैं। वे सदा ही भक्तों के वश में रहते हैं। इसलिए भगवान विष्णु की शिव भक्ति से प्रसन्न होकर भक्तवत्सल शिव ने यह सबकुछ किया तथा इसके उपरांत उन्होंने विष्णुजी के वाहन गरुड़ध्वज को भी प्रणाम किया। तत्पश्चात सभी देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों ने भी श्रीहरि की सच्चे मन से स्तुति की। तब भगवान शिव ने विष्णुजी को बहुत से वरदान दिए तथा कहा—श्रीहरि! आप मेरी आज्ञा के अनुसार संपूर्ण लोकों के कर्ता, पालक और संहारक हों। धर्म, अर्थ और काम के दाता तथा बुरे अथवा अन्याय करने वाले दुष्टों को दंड तथा उनका नाश करने वाले हों। आप पूरे जगत में पूजित हों तथा सभी मनुष्य सदैव

आपका पूजन करें। तुम कभी भी पराजित नहीं होगे। मैं तुम्हें इच्छा की सिद्धि, लीला करने की शक्ति और सदैव स्वतंत्रता का वरदान प्रदान करता हूं। हे हरे। जो तुमसे बैर रखेंगे उनको अवश्य ही दंड मिलेगा। मैं तुम्हारे भक्तों को भी मोक्ष प्रदान करूंगा तथा उनके सभी कष्टों का भी निवारण करूंगा। तुम मेरी बायीं भुजा से और ब्रह्माजी मेरी दायीं भुजा से प्रकट हुए हो। रुद्र देव, जो साक्षात मेरा ही रूप हैं, मेरे ही हृदय से प्रकट हुए हैं। हे विष्णो! आप सदा सबकी रक्षा करेंगे। मेरे धाम में तुम्हारा स्थान उज्ज्वल एवं वैभवशाली है। वह गोलोक नाम से जाना जाएगा। तुम्हारे द्वारा धारण किए गए सभी अवतार सबके रक्षक और मेरे परम भक्त होंगे। मैं उनका दर्शन करूंगा।

श्री रामचंद्र जी कहते हैं—देवी! श्रीहरि को अपना अखंड ऐश्वर्य सौंपकर भगवान शिव स्वयं कैलाश पर्वत पर रहते हुए अपने पार्षदों के साथ क्रीड़ा करते हैं। तभी भगवान लक्ष्मीपति विष्णु गोपवेश धारण करके आए और गोप-गोपी तथा गौओं के स्वामी बनकर प्रसन्नतापूर्वक विचरने लगे तथा जगत की रक्षा करने लगे। वे अनेक प्रकार के अवतार ग्रहण करते हुए जगत का पालन करने लगे। वे ही भगवान शिव की आज्ञा से चार भाइयों के रूप में प्रकट हुए। अब इस समय मैं (विष्णु) ही अवतार रूप में प्रकट होकर चार भाइयों में सबसे बड़ा राम हूं। दूसरे भरत हैं, तीसरे लक्ष्मण हैं और चौथे भाई शत्रुघ्न हैं। मैं अपनी माता के आदेशानुसार वनवास भोगने के लिए लक्ष्मण और सीता के साथ इस वन में आया था। किसी राक्षस ने मेरी पत्नी सीता का अपहरण कर लिया है और मैं यहां-वहां भटकता हुआ अपनी पत्नी को ही ढूंढ़ रहा हूं। सौभाग्यवश मुझे आपके दर्शन हो गए। अब निश्चय ही मुझे मेरे कार्य में सफलता मिलेगी। हे माता! आप मुझ पर कृपादृष्टि करें और मुझे यह वरदान दें कि मैं उस पापी राक्षस को मारकर अपनी पत्नी सीता को उसके चंगुल से मुक्त कर सकूं। मेरा यह महान सौभाग्य है कि मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए। मैं धन्य हो गया।

इस प्रकार देवी की अनेक प्रकार से स्तुति करके श्रीराम जी ने उन्हें अनेकों बार प्रणाम किया। श्रीराम की बातें सुनकर सती मन ही मन बहुत प्रसन्न हुईं और भक्तवत्सल भगवान शिव की स्तुति एवं चिंतन करने लगीं। अपनी भूल पर उन्हें लज्जा आ रही थी। वे उदास मन से शिवजी के पास चल दीं। वे रास्ते में सोच रही थीं कि मैंने अपने पति महादेव जी की बात न मानकर बहुत बुरा किया और श्रीराम जी के प्रति भी बुरे विचार अपने मन में लाई। अब मैं भगवान शिव को क्या उत्तर दूंगी? उन्हें अपनी करनी पर बहुत पश्चाताप हो रहा था। वे शिवजी के समीप गईं और चुपचाप खड़ी हो गईं। सती को इस प्रकार चुपचाप और दुखी देखकर भगवान शंकर ने पूछा—देवी! आपने श्रीराम की परीक्षा किस प्रकार ली? यह प्रश्न सुनकर देवी सती चुपचाप सिर झुकाकर खड़ी हो गईं। उन्होंने शिवजी को कोई उत्तर नहीं दिया। वे असमंजस में थीं कि क्या उत्तर दें। लेकिन महायोगी शिव ने ध्यान से सारा विवरण जान लिया और उनका मन से त्याग कर दिया। भगवान शिव ने सोचा, अब यदि मैं सती को पहले जैसा ही स्नेह करूं तो मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जाएगी। वेद धर्म के पालक शिवजी ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हुए सती का मन से त्याग कर दिया। फिर सती से कुछ न कहकर वे कैलाश की ओर बढ़े। मार्ग में सबको, विशेषकर सती जी को सुनाने के लिए आकाशवाणी

हुई कि महायोगी शिव आप धन्य हैं। आपके समान तीनों लोक में कोई भी प्रतिज्ञा-पालक नहीं है। इस आकाशवाणी को सुनते ही देवी सती शांत हो गईं। उनकी कांति फीकी पड़ गई। तब उन्होंने भगवान शिव से पूछा—

हे प्राणनाथ! आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? कृपया आप मुझे बताइए। परंतु भगवान शिव ने विवाह के समय भगवान विष्णु के समक्ष जो प्रतिज्ञा की थी, उसे सती को नहीं बताया। तब देवी सती ने भगवान शिव का ध्यान करके उन सभी कारणों को जान लिया, जिसके कारण भगवन् ने उनका त्याग कर दिया था। त्याग देने की बात जानकर देवी सती अत्यंत दुखी हो गईं। दुख बढ़ने के कारण उनकी आखों में आंसू आ गए और वह सिसकने लगीं। उनके मनोभावों को समझकर और देवी सती की ऐसी हालत देखकर भगवान शिव ने अपनी प्रतिज्ञा की बात उनके सामने नहीं कही। तब सती का मन बहलाने के लिए शिवजी उन्हें अनेकानेक कथाएं सुनाते हुए कैलाश की ओर चल दिए। कैलाश पर पहुंचकर, शिवजी अपने स्थान पर बैठकर समाधि लगाकर ध्यान करने लगे। सती ने दुखी मन से अपने धाम में रहना शुरू कर दिया।

भगवान शिव को समाधि में बैठे बहुत समय बीत गया। तत्पश्चात शिवजी ने अपनी समाधि तोड़ी। जब देवी सती को पता चला तो वे तुरंत शिवजी के पास दौड़ी चली आईं। वहां आकर उन्होंने शिवजी के चरणों में प्रणाम किया। भगवान शिव ने उन्हें अपने सम्मुख आसन दिया और उन्हें प्रेमपूर्वक बहुत सी कथाएं सुनाईं। इससे देवी सती का शोक दूर हो गया परंतु शिवजी ने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। हे नारद। ऋषि-मुनि आदि सभी शिव और सती की इन कथाओं को उनकी लीला का ही रूप मानते हैं क्योंकि वे तो साक्षात परमेश्वर हैं। एक-दूसरे के पूरक हैं। भला उनमें वियोग कैसे संभव हो सकता है। सती और शिव वाणी और अर्थ की भांति एक-दूसरे से मिले हुए हैं। उनमें वियोग होना असंभव है। उनकी इच्छाओं और लीलाओं से ही उनमें वियोग हो सकता है।

छब्बीसवां अध्याय

दक्ष का भगवान शिव को शाप देना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पूर्वकाल में समस्त महात्मा और ऋषि प्रयाग में इकट्ठा हुए। वहां पर उन्होंने एक बहुत विशाल यज्ञ का आयोजन किया था। उस यज्ञ में देवर्षि, देवता, ऋषि-मुनि, साधु-संत, सिद्धगण तथा ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले महान ज्ञानी पधारे। जिसमें मैं स्वयं अपने महातेजस्वी निगमों-आगमों सहित परिवार को लेकर वहां पहुंचा। वहां बहुत बड़ा उत्सव हो रहा था। अनेक शास्त्रों में ज्ञान की चर्चा एवं वाद-विवाद हो रहा था। उस यज्ञ में त्रिलोकीनाथ भगवान शिव भी देवी सती और अपने गणों सहित पधारे थे। भगवान शिव को वहां आया देख मैंने, सभी देवताओं, ऋषियों-मुनियों ने उन्हें झुककर, भक्तिभाव से प्रणाम किया तथा अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। शिवजी की आज्ञा पाकर सभी ने अपना आसन ग्रहण कर लिया। इसी समय प्रजापति दक्ष भी वहां आ पहुंचे। वे बड़े ही तेजस्वी थे। प्रजापति दक्ष ने मुझे प्रणाम करके अपना आसन ग्रहण कर लिया। वे ब्रह्माण्ड के अधिपति थे। इसी कारण उन्हें अपने पद का घमंड हो गया था। उनके मन में अहंकार ने घर कर लिया था। ब्रह्माण्ड के अधिपति होने के कारण वे सभी देवताओं के वंदनीय थे। सभी ऋषि-मुनियों सहित देवर्षियों ने भी मस्तक झुकाकर प्रजापति दक्ष को प्रणाम किया और उनकी स्तुति कर उनका आदर-सत्कार किया। परंतु त्रिलोकीनाथ भगवान शिव शंभु ने न तो उन्हें प्रणाम किया और न ही अपने आसन से उठकर दक्ष का स्वागत किया। इस बात पर दक्ष क्रोधित हो गए। ज्ञानशून्य होने के कारण प्रजापति दक्ष ने क्रोधित नेत्रों से महादेव जी को देखा और सबको सुनाते हुए उच्च स्वर में कहने लगे।

प्रजापति दक्ष बोले—सभी देवता, असुर, ब्राह्मण, ऋषि-मुनि सभी मुझे नम्रतापूर्वक प्रणाम कर मेरे आगे सिर झुकाते हैं। ये सभी उत्तम भक्ति भाव से मेरी आराधना करते हैं परंतु सदैव प्रेतों और पिशाचों से घिरा रहने वाला यह दुष्ट मनुष्य क्यों मुझे देखकर अनदेखा कर रहा है? श्मशान में निवास करने वाला यह निर्लज्ज जीव क्यों मेरे सामने मस्तक नहीं झुकाता? भूतों-पिशाचों का साथ करने के कारण क्या यह शास्त्रों की विधि भी भूल गया है। इसने नीति के मार्ग को भी कलंकित किया है। इसके साथ रहने वाले या इसकी बातों का अनुसरण करने वाले मनुष्य पाखण्डी, दुष्ट और पाप का आचरण करने वाले होते हैं। वे ब्राह्मणों की बुराई करते हैं तथा स्त्रियों के प्रति आकर्षित होते हैं। यह रुद्र चारों वर्णों से पृथक और कुरूप है। इसलिए इस पावन यज्ञ से इसे बहिष्कृत कर दिया जाए। यह उत्तम कुल और जन्म से हीन है। अतः इसे यज्ञ में भाग न लेने दिया जाए।

पुत्र! क्रोध से विवेक समाप्त हो जाता है। दक्ष ने शिव के लिए अपशब्द कहते समय उसके परिणाम पर तनिक भी विचार नहीं किया। अहंकार के कारण वह शिव के स्वरूप को भूल गया। वह यह भी भूल गया कि आदिशक्ति ने जिसका तप द्वारा वरण किया है, वह कोई

साधारण मनुष्य, ऋषि या देव नहीं है।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! दक्ष की ये बातें सुनकर भृगु आदि बहुत से महर्षि रुद्रदेव को दुष्ट मानकर उनकी निंदा करने लगे। ये बातें सुनकर नंदी को बुरा लगा। उनका क्रोध बढ़ने लगा और वे दक्ष को शाप देते हुए बोले कि हे महामूढ़! दुष्टबुद्धि दक्ष! तू मेरे स्वामी देवाधिदेव महेश्वर को यज्ञ से निकालने वाला कौन होता है? जिनके स्मरण मात्र से यज्ञ सफल हो जाते हैं और तीर्थ पवित्र हो जाते हैं तू उन महादेव जी को कैसे शाप दे सकता है? मेरे स्वामी निर्दोष हैं और तूने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उन्हें शाप दिया है और उनका मजाक उड़ाया है। जिन सदाशिव ने इस जगत की सृष्टि की, इसका पालन किया और जो इसका संहार करते हैं, तू उन्हीं महेश्वर को शाप देता है।

नंदी के ऐसे वचनों को सुनकर प्रजापति दक्ष के क्रोध की कोई सीमा न रही। वे आग-बबूला हो गए और नंदी समेत सभी रुद्रगणों को शाप देते हुए बोले—अरे दुष्ट रुद्रगणो। मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम सब वेदों से बहिष्कृत हो जाओ। तुम वैदिक मार्ग से भटक जाओ और सभी ज्ञानी मनुष्य तुम्हारा त्याग कर दें। तुम शिष्ट आचरण न करो और पाखंडी हो जाओ। सिर पर जटा, शरीर पर भस्म एवं हड्डियों के आभूषण धारण कर मद्यपान (शराब का सेवन) करो। जब दक्ष ने शिवजी के प्रिय पार्षदों को इस प्रकार शाप दे दिया तो नंदी बहुत क्रुद्ध हो गए। नंदी भगवान शिव के प्रिय पार्षद हैं। वे बड़े गर्व से दक्ष को उत्तर देते हुए बोले।

नंदीश्वर ने कहा—हे दुर्बुद्धि दक्ष! तुझे शिव तत्व का ज्ञान नहीं है। तूने अहंकार में शिवगणों को शाप दे दिया है। तेरे कहने पर भृगु आदि ब्राह्मणों ने भी अभिमान के कारण भगवान शिव का मजाक उड़ाया है। अतः मैं भगवान शिव के तेज के प्रभाव से तुझे शाप देता हूं कि तुझ जैसे अहंकारी मनुष्य, जो सिर्फ कर्मों के फल को देखते हैं, वेदवाद में फंसकर रह जाएंगे। उनका वेद तत्वज्ञान शून्य हो जाएगा। वे सदैव मोह-माया में ही लिप्त रहेंगे। वे पुरुषार्थ विहीन होंगे और स्वर्ग को ही महत्व देंगे। वे क्रोधी व लोभी होंगे। वे सदा ही दान लेने में लगे रहेंगे।

हे दक्ष! जो भी भगवान शिव को सामान्य देवता समझकर उनका अनादर करेगा, वह सदैव के लिए तत्वज्ञान से विमुख हो जाएगा। वह आत्मज्ञान को भूलकर पशु के समान हो जाएगा तथा यह दक्ष, जो कि कर्मों से भ्रष्ट हो चुका है, इसका मुख बकरे के समान हो जाएगा। इस प्रकार बहुत गुस्से से भरे नंदी ने जब दक्ष और ब्राह्मणों को शाप दिया तो वहां बहुत शोर मच गया। भगवान शिव मधुर वाणी में नंदी को समझाने लगे कि वे शांत हो जाएं।

प्रभु शिव बोले—नंदी! तुम तो परम ज्ञानी हो। तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए। तुमने बिना कुछ जाने और समझे ही दक्ष तथा समस्त ब्राह्मण कुल को शाप दे दिया है। सच्चाई तो यह है कि मुझे कोई भी शाप छू ही नहीं सकता है। इसलिए तुम्हें अपने क्रोध पर नियंत्रण रखना चाहिए था। किसी की बुद्धि कितनी ही दूषित क्यों न हो, वह कभी वेदों को शाप नहीं दे सकता। नंदी! तुम तो सिद्धों को भी तत्वज्ञान का उपदेश देने वाले हो। तुम तो जानते हो कि मैं ही यज्ञ हूं, मैं ही यज्ञकर्म हूं। यज्ञ की आत्मा मैं हूं, यज्ञपरायण यजमान भी मैं हूं। फिर मैं कैसे यज्ञ से बहिष्कृत हो सकता हूं? तुमने व्यर्थ ही ब्राह्मणों को शाप दे दिया है।

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब भगवान शिव ने अनेक प्रकार से नंदी को समझाया तो उनका क्रोध शांत हो गया। तब शिवजी अपने अन्य गणों व पार्षदों के साथ अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत पर चले गए। क्रोध से भरे दक्ष भी ब्राह्मणों के साथ अपने स्थान पर चले गए परंतु उनके मन में महादेव जी के लिए क्रोध एवं ईर्ष्या का भाव ऐसा ही रहा। उन्होंने शिवजी के प्रति श्रद्धा को त्याग दिया और उनकी निंदा करने लगे। दिन-ब-दिन उनकी ईर्ष्या बढ़ती जा रही थी।

सत्ताईसवां अध्याय

दक्ष द्वारा महान यज्ञ का आयोजन

ब्रह्माजी बोले—हे महर्षि नारद! इस प्रकार, क्रोधित व अपमानित दक्ष ने कनखल नामक तीर्थ में एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में उन्होंने सभी देवर्षियों, महर्षियों तथा देवताओं को दीक्षा देने के लिए बुलाया। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान व्यास, भारद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुष, सित, सुमंतु, त्रिक, कंक और वैशंपायन सहित अनेक ऋषि-मुनि अपनी पत्नियों व पुत्रों सहित प्रजापति दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित हुए। समस्त देवता अपने देवगणों के साथ प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ में गए। अपने पुत्र दक्ष की प्रार्थना स्वीकार करके मैं विश्वस्रष्टा ब्रह्मा और बैकुण्ठलोक से भगवान विष्णु भी उस यज्ञ में पहुंचे। वहां दक्ष ने सभी पधारे हुए अतिथियों का खूब आदर-सत्कार किया। उस यज्ञ के स्थान का निर्माण देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा किया गया था। विश्वकर्मा ने बहुत से दिव्य भवनों का निर्माण किया। उन भवनों में दक्ष ने यज्ञ में पधारे अतिथियों को ठहराया। दक्ष ने भृगु ऋषि को ऋत्विज बनाया। भगवान विष्णु यज्ञ के अधिष्ठाता थे। इस विधि को मैंने ही बताया। दक्ष सुंदर रूप धारण कर यज्ञ मण्डल में उपस्थित था। उस महान यज्ञ में अट्ठासी हजार ऋषि एक साथ हवन कर सकते थे। चौंसठ हजार देवर्षि मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे। सभी मग्न होकर वेद मंत्रों का गान कर रहे थे।

दक्ष ने उस महायज्ञ में गंधर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, बारह आदित्यों व उनके गणों तथा नागों को भी आमंत्रित किया था। साथ ही देश-विदेश के अनेक राजा उसमें उपस्थित थे, जो अपनी सेना एवं दरबारियों सहित यज्ञ में पधारे थे। कौतुक और मंगलाचार कर दक्ष ने यज्ञ की दीक्षा ली परंतु उस दुरात्मा दक्ष ने त्रिलोकीनाथ करुणानिधान भगवान शिव को यज्ञ के लिए निमंत्रण नहीं भेजा था। न ही अपनी पुत्री सती को ही बुलाया था। दक्ष के अनुसार भगवान शिव कपालधारी हैं, इसलिए उन्हें यज्ञ में स्थान देना गलत है। सती भी शिवजी की पत्नी होने के कारण 'कंपाली भार्या' हुईं। अतः उन्हें भी बुलाना पूर्णतः अनुचित था। दक्ष का यज्ञ महोत्सव अत्यंत धूमधाम एवं हर्ष-उल्लास से आरंभ हुआ। सभी ऋषि-मुनि अपने-अपने कार्य में संलग्न हो गए। तभी वहां महर्षि दधीचि पधारे। उस यज्ञ में भगवान शंकर को न पाकर दधीचि बोले—हे श्रेष्ठ देवताओ और महर्षियो! मैं आप सभी को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता हूं। हे श्रेष्ठजनो! आप सभी यहां इस महान यज्ञ में पधारे हैं। मैं आप सबसे यह पूछना चाहता हूं कि मुझे इस यज्ञ में त्रिलोकीनाथ भगवान शंकर कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे हैं। उनके बिना यह यज्ञ मुझे सूना लग रहा है। उनकी अनुपस्थिति से यज्ञ की शोभा कम हो गई है। जैसा कि आप जानते ही हैं कि भगवान शिव की कृपा से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। वे परम सिद्ध पुरुष, नीलकंठधारी प्रभु शंकर, यहां क्यों नहीं दिखाई दे रहे हैं? जिनकी कृपा से अमंगल भी मंगल हो जाता है, जो सर्वथा सबका मंगल करते हैं, उन भगवान शिव का यज्ञ में

उपस्थित होना बहुत आवश्यक है। इसलिए आप सभी को यज्ञ के सकुशल पूर्ण होने के लिए परम कल्याणकारी भगवान शिव को अनुनय-विनय कर इस यज्ञ में लाना चाहिए। तभी इस यज्ञ की पूर्ति हो सकती है। इसलिए आप सभी श्रेष्ठजन तुरंत कैलाश पर्वत पर जाएं और भगवान शिव और देवी सती को यज्ञ में ले आएं। उनके आने से यह यज्ञ पवित्र हो जाएगा। वे परम पुण्यमयी हैं। उनके यहां आने से ही यह यज्ञ पूरा हो सकता है।

महर्षि दधीचि की बातों को सुनकर दक्ष हंसते हुए बोला कि भगवान विष्णु देवताओं के मूल हैं। अतः मैंने उन्हें सादर यहां बुलाया है। जब वे यहां उपस्थित हैं तो भला यज्ञ में क्या कमी हो सकती है। भगवान विष्णु के साथ-साथ ब्रह्माजी भी वेदों, उपनिषदों और विविध आगमों के साथ यहां पधारे हैं। देवगणों सहित इंद्र भी यहां उपस्थित हैं। वेद और वेदतत्वों को जानने वाले तथा उनका पालन करने वाले सभी महर्षि यज्ञ में आ चुके हैं। जब सभी देवगण एवं श्रेष्ठजन यहां उपस्थित हैं तो रुद्रदेव की यहां क्या आवश्यकता है? मैंने सिर्फ ब्रह्माजी के कहने पर अपनी पुत्री सती का विवाह शिवजी से कर दिया था। मैं जानता हूं कि वे कुलहीन हैं। उनके माता-पिता का कुछ भी पता नहीं है। वे भूतों, प्रेतों और पिशाचों के स्वामी हैं। वे स्वयं ही अपनी प्रशंसा करते हैं। वे मूढ़, जड़, मौनी और ईर्ष्यालु होने के कारण यज्ञ में बुलाए जाने के योग्य नहीं हैं। अतः दधीचि जी, आप उन्हें यज्ञ में बुलाने के लिए न कहें। आप सब ऋषि-मुनि मिलकर अपने सहयोग से मेरे इस यज्ञ को सफल बनाएं।

दक्ष की बात सुनकर दधीचि मुनि बोले—हे दक्ष! परम कल्याणकारी भगवान शिव को यज्ञ में न बुलाकर तुमने इस यज्ञ को पहले ही भंग कर दिया है। यह यज्ञ कहलाने लायक ही नहीं है। तुमने भगवान शिव को निमंत्रण न देकर उनकी अवहेलना की है। इसलिए तुम्हारा विनाश निश्चित है, यह कहकर दधीचि वहां से अपने आश्रम चले गए। उनके पीछे-पीछे भगवान शिव का अनुसरण करने वाले सभी ऋषि-मुनि भी वहां से चले गए। दक्ष के समर्थकों ने यज्ञ छोड़कर गए ऋषियों-मुनियों के प्रति व्यंग्य भरे वचनों का प्रयोग किया। इस प्रकार प्रसन्न होकर दक्ष बोलने लगे कि यह बहुत अच्छी बात है कि मंदबुद्धि और मिथ्यावाद में लगे दुराचारी मनुष्य सभी इस यज्ञ का त्याग करके स्वयं ही चले गए हैं। भगवान विष्णु और ब्रह्माजी, जो कि सभी वेदों के ज्ञाता हैं और वेद तत्वों से परिपूर्ण हैं, इस यज्ञ में उपस्थित हैं। ये ही मेरे यज्ञ को सफल बनाएंगे।

ब्रह्माजी बोले कि दक्ष की ये बातें सुनकर वे सभी शिव माया से मोहित हो गए। सभी देवर्षि आदि देवताओं का पूजन करने लगे। इस प्रकार यज्ञ पुनः आरंभ हो गया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वहां यज्ञस्थल पर रुके अनेक देवर्षि और मुनि वहां पुनः यज्ञ को पूर्ण करने हेतु पूजन करने लगे।

अट्ठाईसवां अध्याय

सती का दक्ष के यज्ञ में आना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जिस समय देवता और ऋषिगण दक्ष के यज्ञ में भाग लेने के लिए उत्सव करते हुए जा रहे थे, उस समय दक्ष की पुत्री सती अपनी सखियों के साथ गंधमादन पर्वत पर धारागृह में अनेक क्रीड़ाएं कर रही थीं। सती ने देखा कि रोहिणी के साथ चंद्रमा कहीं जा रहे थे। तब सती ने अपनी प्रिय सखी विजया से कहा कि विजये! जल्दी जाकर पूछो कि देवी रोहिणी और चंद्र कहां जा रहे हैं? तब विजया दौड़कर चंद्रदेव के पास गई और उन्हें नमस्कार करके उनसे पूछा कि हे चंद्रदेव! आप कहां जा रहे हैं? चंद्रदेव ने उत्तर दिया कि वे दक्ष द्वारा आयोजित यज्ञ में निमंत्रित हैं, अतः वहीं जा रहे हैं। यज्ञोत्सव के बारे में सुनकर देवी विजया तुरंत देवी सती के पास आई और सारी बातों से सती को अवगत कराया। तब देवी सती को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसी क्या बात है, जो पिताजी ने यज्ञोत्सव के लिए अपनी बेटी-दामाद को निमंत्रण तो दूर, सूचना भी नहीं दी। बहुत सोचने पर भी उनकी समझ में कुछ नहीं आ सका। असमंजस की स्थिति में वे अपने पति महादेव जी के पास गईं और उनसे कहने लगीं।

सती बोलीं—हे महादेव जी! मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरे पिताश्री दक्ष जी ने एक बहुत बड़े यज्ञोत्सव का आयोजन किया है। जिसमें उन्होंने सभी देवर्षियों, महर्षियों एवं देवताओं को आमंत्रित किया है। सभी देवता और ऋषिगण वहां एकत्रित हो चुके हैं। हे प्रभु! मुझे बताइए कि आप वहां क्यों नहीं जा रहे हैं? आप सभी सुहृदयों से मिलने को हमेशा आतुर रहते हैं। आप भक्तवत्सल हैं। प्रभो! उस महायज्ञ में सभी आपके भक्त पधारे हैं। आप मेरी प्रार्थना मानकर आज ही मेरे साथ मेरे पिता के उस महान यज्ञ में चलिए। सती इस प्रकार भगवान शंकर से यज्ञशाला में चलने की प्रार्थना करने लगीं।

सती की प्रार्थना सुनकर भगवान महेश्वर बोले—हे देवी! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गए हैं। वे मुझसे बैर की भावना रखते हैं। इसी कारण उन्होंने मुझे निमंत्रण नहीं दिया और जो बिना बुलाए दूसरों के घर जाते हैं, वे मरण से भी अधिक अपमान पाते हैं। हे देवी! उस यज्ञ में सभी अभिमानी, मूढ़ और ज्ञानशून्य देवता और ऋषि ही हैं। उत्तम व्रत का पालन करने वाले और मेरा पूजन करने वाले सभी ऋषि-मुनियों और देवताओं ने उस महायज्ञ का त्याग कर दिया है तथा अपने-अपने धाम को वापस चले गए हैं। अतः प्रिये, हमारा उस यज्ञ में जाना अनुचित है। वैसे भी बिना बुलाए जाना अपना अपमान कराना है।

शिवजी के इन वचनों को सुनकर देवी सती क्रुद्ध हो गईं और शिवजी से बोलीं—हे प्रभु! आप तो सबके परमेश्वर हैं। आपके उपस्थित होने से यज्ञ सफल हो जाते हैं। आपको मेरे दुष्ट पिता ने आमंत्रित नहीं करके आपका अपमान किया है। भगवन्! मैं ऐसा करने का प्रयोजन जानना चाहती हूं कि क्यों मेरे पिता ने आपका अनादर किया है? इसलिए मैं अपने पिता के

यज्ञ में जाना चाहती हूं, ताकि इस बात का पता लगा सकूं। अतः प्रभु! आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।

देवी सती के क्रोधित शब्दों को सुनकर भगवान शंकर बोले—हे देवी! यदि तुम्हारी इच्छा वहां जाने की है तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि अपने पिता के यज्ञ में जाओ। नंदीश्वर को सजाकर, उस पर चढ़कर अपने संपूर्ण वैभव के साथ अपने पिता के यहां जाओ। शिवजी की आज्ञा मानकर देवी सती ने उत्तम शृंगार किया और अनेक प्रकार के आभूषण धारण करके देवी सती अपने पिता के घर की ओर चल दीं। उनके साथ शिवजी ने साठ हजार रौद्रगणों को भी भेजा। वे सभी गण उत्सव रचाकर देवी का गुणगान करते हुए दक्ष के घर की ओर जाने लगे। शिवगणों ने पूरे रास्ते शिव-शिवा के यश का गान किया। उस यात्रा काल में जगदंबा बहुत शोभा पा रही थीं। उनकी जय-जयकार से सारी दिशाएं गूंज रही थीं।

उन्तीसवां अध्याय

यज्ञशाला में सती का अपमान

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! दक्षकन्या देवी सती उस स्थान पर गईं जहां महान यज्ञोत्सव चल रहा था। जहां देवता, असुर और मुनि, साधु-संत अग्नि में मंत्रोच्चारण के साथ आहुतियां डाल रहे थे। सती ने अपने पिता के घर में अनेक आश्चर्यजनक बहुमूल्य वस्तुएं देखीं। अनेक मनोहारी और उत्तम आभा से परिपूर्ण धन्य-धान्य से युक्त दक्ष का भवन अनोखी शोभा पा रहा था। देवी सती नंदी से उतरकर अकेली ही यज्ञशाला के अंदर चली गईं। सती को वहां आया देखकर उनकी माता और बहिनें बहुत प्रसन्न हुईं और देवी सती का खूब आदर सत्कार करने लगीं। परंतु उनके पिता दक्ष ने उनको देखकर कोई खुशी जाहिर न की और न ही उनकी तरफ ध्यान दिया। दक्ष के भय से ही अन्य लोगों ने भी देवी सती का आदर नहीं किया। सभी के व्यवहार में तिरस्कार देखकर देवी सती को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्होंने अपने माता-पिता के चरणों में मस्तक झुकाया। देवी सती ने यज्ञ में सभी देवताओं का अलग-अलग भाग देखा। जब सती को अपने पति भगवान शिव का भाग वहां दिखाई नहीं दिया तो उन्हें बहुत क्रोध आया। अपमानित होने के कारण देवी सती दक्ष को लताड़ते हुए बोलीं—हे प्रजापति! आपने परम मंगलकारी भगवान शिव को इस यज्ञ में क्यों नहीं बुलाया? जिनकी उपस्थिति से ही सारा जगत पवित्र हो जाता है। भगवान शिव यज्ञवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। वे ही यज्ञ के अंग हैं। वे ही यजमान हैं। जब सबकुछ वे ही हैं तो उनके बिना इस महायज्ञ की सिद्धि कैसे हो सकती है? उनके बिना तो यह यज्ञ अपवित्र है। आपने भगवान शिव को सामान्य समझकर उनका घोर अनादर किया है। शायद आपकी बुद्धि के भ्रष्ट होने के कारण ही ऐसा हुआ है। मुझे तो यह समझ में नहीं आ रहा है कि बिना भगवान शिव के आए ये विष्णु और ब्रह्मा सहित सभी ऋषि-मुनि इस यज्ञ में कैसे आ गए?

तब देवी सती मेरे सम्मुख खड़ी हुईं और विष्णु सहित सभी उपस्थित देवताओं व ऋषियों और मुनियों को डांटने लगीं और उन्हें बहुत फटकारा।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! क्रोध से भरी देवी जगदंबा ने अत्यंत दुखी मन से हम सभी देवता और मुनियों को बहुत सी बातें सुनाईं। देवी सती की बातें सुनकर कोई भी कुछ नहीं बोला परंतु उनके पिता दक्ष उनके वचनों से बहुत अधिक क्रोधित हो गए और इस प्रकार बोले—

दक्ष ने कहा—हे पुत्री सती! तुम्हारे इस प्रकार के वचनों से क्या लाभ होगा? तुम बिना बात के सभी का अपमान कर रही हो। वैसे भी मैंने तुम्हें यहां आने का कोई निमंत्रण नहीं दिया था तो तुम क्यों चली आईं? तुम यहां खड़ी रहो या वापस चली जाओ, तुम्हारी इच्छा है। वैसे भी यहां उपस्थित सभी देवता और ऋषि-मुनि यह जानते हैं कि तुम्हारे पति शिव अमंगलकारी हैं। उन्हें वेदों से बहिष्कृत किया गया है। वे भूतों, प्रेतों तथा पिशाचों के स्वामी

हैं। उन्होंने बहुत बुरा वेश धारण किया है। इसलिए मैंने रुद्र को इस महायज्ञ में नहीं बुलाया है। मैंने बिना सोचे-समझे ब्रह्माजी के कहने पर तुम्हारा विवाह उनसे कर दिया। नहीं तो शिव इस योग्य नहीं हैं कि उनसे किसी भी प्रकार से कोई संबंध बनाया जाए। अब तुम आ ही गई हो तो स्थान ग्रहण कर लो। आगे तुम्हारी जैसी इच्छा। हमारा कोई आग्रह नहीं है।

दक्ष की ये बातें सुनकर उनकी दुहिता सती ने अपने पति की बुराई करने वाले अपने पिता को देखा तो उनके मन में रोष बढ़ गया। वे क्रोध से भर गईं। तब वे मन में ही विचार करने लगीं कि अब मैं शिवजी के सामने कैसे जाऊंगी? यदि किसी तरह उनके पास चली भी गई तो उनके द्वारा यज्ञ का समाचार पूछने पर क्या कहूंगी? यह सब सोचकर वे अपने पिता दक्ष से बोलीं—जो त्रिलोकीनाथ करुणानिधान महादेव जी की निंदा करता अथवा सुनता है वह हमेशा के लिए नरक में जाता है। अर्थात जब तक सूर्य और चंद्रमा का अस्तित्व है, उसे नरक भोगना पड़ता है। इस प्रकार देवी सती को वहां आने पर बहुत पश्चाताप हो रहा था। अपने पति भगवान शिव की अवहेलना को वह सहन नहीं कर पा रही थीं। तब वे अपने पिता दक्ष सहित अन्य देवताओं से कहने लगीं।

देवी सती बोलीं—तुम सभी भगवान शिव के निंदक हो। तुमने उनकी अवहेलना होते देखकर प्रभु शिव का अपमान किया है। इस पाप का फल तुम सभी को अवश्य भोगना पड़ेगा। जो लोग भक्ति और ज्ञान से विमुख हैं, वे यदि ऐसा कार्य करें तो कोई आश्चर्य नहीं होता परंतु जिन लोगों ने अज्ञान के अंधेरों को दूर कर अपने ज्ञान चक्षुओं को खोल लिया है, जो महात्माओं के चरणों की धूल से अपने को शुद्ध और पवित्र कर चुके हैं, उन्हें किसी से बैर भाव रखना, ईर्ष्या करना और निंदा करना कतई शोभा नहीं देता है। भगवान के श्रीचरणों का ध्यान करते हुए उनका दो अक्षर का नाम 'शिव' का उच्चारण करने से ही सारे पाप धुल जाते हैं। तुम मूर्खता के वश में होकर उन्हीं भगवान का अनादर कर रहे हो। उनसे द्रोह करके तुम्हें कुछ भी हासिल नहीं होगा। उदार भगवान महादेव जी जटा और कपाल धारण किए श्मशान में भूतों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। वे शरीर पर भस्म लगाए और गले में नरमुंडों की माला धारण करते हैं। फिर भी मनुष्य उनके चरणों की धूल अपने माथे पर लगाते हैं, क्योंकि वे साक्षात परमेश्वर हैं। वे परम ब्रह्म परमात्मा हैं। वे ऐश्वर्य से सदा ही दूर रहते हैं। जो ऐसे महापुरुष की निंदा करता है, उसके जीवन को धिक्कार है। मैंने भी तुम्हारे द्वारा की गई अपने पति भगवान शिव की निंदा को सुना है। इसलिए मैं अपने शरीर को त्याग दूंगी। इस यज्ञ की अग्नि में प्रवेश कर मैं भस्म हो जाऊंगी। मैंने अपने प्रिय पति भगवान शिव का अनादर देख भी लिया है और उनके प्रति अपने पिता के कटु वचनों को भी सुन लिया है। अतः अब मैं इस जीवन का क्या करूं? मैं इस समय पूर्णतः असमर्थ हूं।

इस यज्ञशाला में जो भी शक्तिवान और सामर्थ्यवान पुरुष हो, वह भगवान शिव की उपेक्षा करने वालों और उन्हें बुरा और अमंगलकारी कहने वाले की जीभ काट दे। तभी वह शिव निंदा सुनने के पाप से बच सकता है। जो ऐसा करने में समर्थ न हो तो उसे अपने दोनों कानों को बंद करके यहां से तुरंत चले जाना चाहिए। तभी वह दोषमुक्त होगा। फिर देवी सती अपने पिता दक्ष की ओर मुख करके बोलीं—जब मेरे पति महादेव जी मुझे आपके साथ संबंध होने

के कारण दाक्षायणी कहकर पुकारेंगे तो मैं कैसे कुछ कह पाऊंगी। हे पिताजी! आपने मेरे पति का घोर अपमान करके मुझे उनके सामने जाने लायक भी नहीं छोड़ा। इसलिए मेरे पास अब एक ही रास्ता शेष है। मैं आपके द्वारा प्राप्त इस घृणित शरीर का आपके सामने ही त्याग कर दूंगी। तत्पश्चात सती वहां उपस्थित सभी देवताओं से बोलीं कि तुम सबने करुणानिधान भगवान शिव की निंदा सुनी है। इसलिए तुम्हारे कर्मों का दुष्परिणाम तुम्हें अवश्य मिलेगा। मेरे पति भगवान शिव तुम सबको इसका दंड अवश्य ही देंगे।

उस समय देवी बहुत क्रोधित थीं। यह सब कहकर वे चुप हो गईं और अपने मन में अपने प्राणवल्लभ भगवान शिव का स्मरण करने लगीं।

तीसवां अध्याय

सती द्वारा योगाग्नि से शरीर को भस्म करना

ब्रह्माजी से श्री नारद जी ने पूछा—हे पितामह! जब सती जी ऐसा कहकर मौन हो गईं तब वहां क्या हुआ? देवी सती ने आगे क्या किया? इस प्रकार नारद जी ने अनेक प्रश्न पूछ डाले और ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि वे आगे की कथा सविस्तार सुनाएं। यह सुनकर ब्रह्माजी मुस्कुराए, और प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—

हे नारद! मौन होकर देवी सती अपने पति भगवान शिव का स्मरण करने लगीं। उनका स्मरण करने के बाद उनका क्रोधित मन शांत हो गया। तब शांत मनोभाव से शिवजी का चिंतन करती हुई देवी सती पृथ्वी पर उत्तर की ओर मुख करके बैठ गईं। तत्पश्चात विधिपूर्वक जल से आचमन करके उन्होंने वस्त्र ओढ़ लिया। फिर पवित्र भाव से उन्होंने अपनी दोनों आंखें मूंद लीं और पुनः शिवजी का चिंतन करने लगीं। सती ने प्राणायाम से प्राण और अपान को एकरूप करके नाभि में स्थित कर लिया। सांसों को संयत कर नाभिचक्र के ऊपर हृदय में स्थापित कर लिया। सती ने अपने शरीर में योगमार्ग के अनुसार वायु और अग्नि को स्थापित कर लिया। तब उनका शरीर योग मार्ग में स्थित हो गया। उनके हृदय में शिवजी विद्यमान थे। यही वह समय था जब उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया था। उनका शरीर यज्ञ की पवित्र योगाग्नि में गिरा और पल भर में ही भस्म हो गया। वहां उपस्थित मनुष्यों सहित देवताओं ने जब यह देखा कि देवी सती भस्म हो गई हैं, तो आकाश और भूमि पर हाहाकार मच गया। यह हाहाकार सभी को भयभीत कर रहा था। सभी लोग कह रहे थे कि किस दुष्ट के दुर्व्यवहार के कारण भगवान शिव की पत्नी सती ने अपनी देह का त्याग कर दिया। तो कुछ लोग दक्ष की दुष्टता को धिक्कार रहे थे, जिसके व्यवहार से दुखी होकर देवी सती ने यह कदम उठाया था। सभी सत्पुरुष उनका सम्मान करते थे। उनका हृदय असहिष्णु था। उन्होंने ऐसी महान देवी और उनके पति करुणानिधान भगवान शिव का अनादर और निंदा करने वाले दक्ष को भी कोसा। सभी कह रहे थे कि दक्ष ने अपनी ही पुत्री को प्राण त्यागने के लिए मजबूर किया है। इसलिए दक्ष अवश्य ही महा नरक में जाएगा और पूरे संसार में उसका अपयश होगा।

दूसरी ओर, देवी सती के साथ पधारे सभी शिवगणों ने जब यह दृश्य देखा तो उनके क्रोध की कोई सीमा न रही। वे तुरंत अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर दक्ष को मारने के लिए दौड़े। वे साठ हजार पार्षदगण क्रोध से चिल्ला रहे थे और अपने को ही धिक्कार रहे थे कि यहां उपस्थित होते हुए भी हम अपनी माता देवी सती की रक्षा नहीं कर पाए। उनमें से कई पार्षदों ने तो स्वयं अपने शरीर का त्याग कर दिया। बचे हुए सभी शिवगण दक्ष को मारने के लिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे थे। जब ऋषि भृगु ने उन्हें आक्रमण के लिए आगे बढ़ते हुए देखा तो उन्होंने यज्ञ में विघ्न डालने वालों का नाश करने के लिए यजुर्मंत्र पढ़कर दक्षिणाग्नि में

आहुति दे दी। आहुति के प्रभाव के फलस्वरूप यज्ञकुण्ड में से ऋभु नामक अनेक देवता, जो प्रबल वीर थे, वहां प्रकट हो गए। ऋभु नामक सहस्रों देवताओं और शिवगणों में भयानक युद्ध होने लगा। वे देवता ब्रह्मतेज से संपन्न थे। उन्होंने शिवगणों को मारकर तुरंत भगा दिया। इससे वहां यज्ञ में और अशांति फैल गई। सभी देवता और मुनि भगवान विष्णु से इस विघ्न को टालने की प्रार्थना करने लगे। देवी सती का भस्म हो जाना और भगवान शिव के गणों को मारकर वहां से भगाए जाने का परिणाम सोचकर सभी देवता और ऋषि विचलित थे। हे नारद! इस प्रकार दक्ष के उस महायज्ञोत्सव में बहुत बड़ा उत्पात मच गया था और सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई थी। सभी भावी परिणाम की आशंका से भयभीत दिखाई दे रहे थे।

इकतीसवां अध्याय

आकाशवाणी

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! जब दक्ष के उस महान यज्ञ में घोर उत्पात मचा हुआ था और सभी डर के कारण भयभीत हो रहे थे तो उस समय वहां पर एक आकाशवाणी हुई।

हे मूर्ख दक्ष! तूने यह बहुत बड़ा अनर्थ कर दिया है। तूने शिव भक्त दधीचि के कथन को प्रामाणिक नहीं माना, जो तेरे लिए परम मंगलकारी और आनंददायक था। तूने उनका भी अपमान किया और वे तुझे शाप देकर तेरी यज्ञशाला से चले गए। तब भी तू कुछ भी नहीं समझा। तूने अपने घर में स्वयं आई, साक्षात मंगल स्वरूपा अपनी पुत्री सती का अपमान किया। तूने सती और शंकर का पूजन भी नहीं किया। अपने को ब्रह्माजी का पुत्र समझकर तुझे बहुत घमंड हो गया था। तूने उस सती देवी का अपमान किया जो सत्पुरुषों की भी आराध्या हैं। वे समस्त पुण्यों का फल देती हैं। वे तीनों लोकों की माता, कल्याणस्वरूपा और भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी हैं। सती देवी प्रसन्न होने पर सुख और सौभाग्य प्रदान करती हैं। वे परम मंगलकारी हैं। देवी सती की पूजा करने से समस्त भयों से छुटकारा मिल जाता है और मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। देवी सभी उपद्रवों को नष्ट कर देती हैं। वे ही पराशक्ति हैं तथा कीर्ति, संपत्ति, भोग और मोक्ष प्रदान करती हैं। वे ही जन्मदात्री हैं अर्थात जन्म देने वाली माता हैं। वे ही इस जगत की रक्षा करने वाली आदि शक्ति हैं और वे ही प्रलयकाल में जगत का संहार करने वाली हैं। सती ही भगवान विष्णु सहित ब्रह्मा, इंद्र, चंद्र, अग्नि, सूर्यदेव आदि सभी देवताओं की जननी हैं। वे साक्षात जगदंबा हैं। वे ही दुष्टों का नाश करने वाली और भक्तों की रक्षा करने वाली हैं। ऐसी उत्तम महिमा और गुणों वाली भगवान शिव की प्राणप्रिया धर्मपत्नी का तूने इस यज्ञ में अपमान किया है।

भगवान शिव तो परमब्रह्म परमेश्वर हैं। वे सबके स्वामी हैं। वे सबका कल्याण करते हैं। सभी मनुष्य प्रभु का दर्शन पाने की अभिलाषा सदैव अपने मन में रखते हैं। दर्शनों की इच्छा लिए घोर तपस्या करते हैं। वे भगवान शिव ही जगत को धारण कर उसका पालन-पोषण करते हैं। वे ही समस्त विद्याओं के ज्ञाता और मंगलों का भी मंगल करने वाले हैं। वे ही समस्त मनोकामनाओं को पूरा करते हैं। हे दुष्ट दक्ष! तूने उन परम शक्तिशाली भगवान शिव की शक्ति की अवहेलना करके बहुत बुरा किया है। इसलिए तेरे इस महायज्ञ के विनाश को कोई नहीं रोक सकता। जिनके चरणों की धूल शेषनाग रोज अपने मस्तक पर धारण करता है, जिनके चरणकमल का ध्यान करने से ब्रह्मा को ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ है, तूने उनका और उनकी पत्नी सती का पूजन न करके बहुत अनिष्ट किया है। भगवान शिव ही इस संपूर्ण जगत के पिता और उनकी पत्नी देवी सती इस जगत की माता हैं। तूने उन माता-पिता का सत्कार न कर उनका घोर अपमान किया है। अब तेरा कल्याण कैसे हो सकता है? तूने स्वयं दुर्भाग्य से अपना नाता जोड़ लिया है। तूने देवी सती और भगवान शिव की भक्तिभाव से

आराधना नहीं की। तेरी यह सोच ही कि कल्याणकारी शिव का पूजन किए बिना भी मैं कल्याण का भागी हो सकता हूं, तुझे ले डूबी है। तेरा सारा घमंड नष्ट हो जाएगा। यहां बैठा कोई भी देवता शिवजी के विरुद्ध होकर तेरी सहायता नहीं कर पाएगा। यदि करना भी चाहेगा तो स्वयं भी नष्ट हो जाएगा। अब तेरा अमंगल निश्चित है। सभी देवता और मुनिगण यज्ञ मण्डप को छोड़कर तुरंत यहां से अपने-अपने धाम को चले जाएं अन्यथा सबका नाश हो जाएगा।

इस प्रकार यज्ञशाला में उपस्थित सभी लोगों को चेतावनी देकर वह आकाशवाणी मौन हो गई।

बत्तीसवां अध्याय

शिवजी का क्रोध

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उस आकाशवाणी को सुनकर सभी देवता और मुनि आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगे। उनके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। वे अत्यंत भयभीत हो गए। उधर, भृगु के मंत्रों से उत्पन्न गणों द्वारा भगाए गए शिवगण, जो कि नष्ट होने से बच गए थे, शिवजी की शरण में चले गए। वहां पहुंचकर उन्होंने प्रभु को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और वहां यज्ञ में जो कुछ भी हुआ था, उसका और सती के शरीर त्यागने का सारा वृत्तांत उन्हें सुनाया।

शिवगण बोले—हे महेश्वर! दक्ष बड़ा ही दुरात्मा और घमंडी है। उसने माता सती का बहुत अपमान किया। वहां उपस्थित देवताओं ने भी उनका आदर-सत्कार नहीं किया। उस घमंडी दक्ष ने यज्ञ में आपका भाग भी नहीं दिया। हे प्रभु! दक्ष ने आपके प्रति बुरे शब्द कहे। आपके विषय में ऐसी बातें सुनकर माता क्रोधित हो गईं और उन्होंने पिता की बहुत निंदा की। जब दक्ष ने उनका भी अपमान किया तो वे शांत होकर सोचने लगीं। फिर उन्होंने वहां उपस्थित सभी देवताओं और मुनियों को फटकारा, जिन्होंने आपका अनादर किया था। उन्होंने कहा कि शिव निंदा सुनकर मैं जीवित नहीं रह सकती। यह कहकर उन्होंने योगाग्नि में जलकर अपना शरीर भस्म कर दिया। यह देखकर बहुत से पार्षदों ने माता के साथ ही अपने शरीर की आहुति दे दी। तब हम सब शिवगण उस यज्ञ को विध्वंस करने के लिए तेजी से आगे बढ़े परंतु भृगु ऋषि ने मंत्रों द्वारा गणों को उत्पन्न कर हम पर आक्रमण कर दिया। हममें से बहुत से गणों को उन भृगु के गणों ने मार डाला। तब वहां आकाशवाणी हुई, जिसने कहा कि दक्ष तुम्हारा अंत अब निश्चित है तथा जो भी देवता एवं मुनि तुम्हारा साथ देंगे वे भी पाप के भागी बनकर मृत्यु को प्राप्त होंगे। यह सुनकर सभी उपस्थित लोग वहां से चले गए और हम यहां आपको इस विषय में बताने के लिए आपके पास चले आए। हे कल्याणकारी भगवान शिव! आप उस महादुष्ट अधर्मी दक्ष को उसके अपराध का कठोर दंड अवश्य दें। यह कहकर सभी गण चुप हो गए।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! अपने पार्षदों की बातें सुनकर भगवान शिव ने उस यज्ञ की सारी बातें और जानकारी जानने के लिए तुम्हारा स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही तुम वहां जा पहुंचे और भक्तिभाव से नमस्कार करके चुपचाप खड़े हो गए। तब महादेव जी ने तुमसे दक्ष के यज्ञ के विषय में पूछा। तब तुमने उत्तम भाव से उस यज्ञशाला में जो-जो हुआ था, वह सब वृत्तांत उन्हें सुना दिया। सारी बातों से अवगत होते ही भगवान शिव अत्यंत क्रोधित हो गए। पराक्रमी शंकर के क्रोध का कोई अंत न रहा। तब लोकसंहारी शंकर ने अपनी जटा का एक बाल उखाड़कर उसे कैलाश पर्वत पर दे मारा। जैसे ही वह बाल जमीन पर गिरा उसके दो टुकड़े हो गए। उस समय वहां बहुत भयंकर गर्जना हुई। बाल के प्रथम भाग से महापराक्रमी,

महाबली वीरभद्र प्रकट हुए, जो समस्त शिवगणों में शिरोमणि हैं। उनका शरीर बहुत बड़ा और विशाल था। उनकी एक हजार भुजाएं थीं। उस जटा के दूसरे भाग से अत्यंत भयंकर और करोड़ों भूतों से घिरी हुई महाकाली उत्पन्न हुईं। उस समय रुद्र देव के क्रोधपूर्वक सांस लेने से सौ प्रकार के ज्वर और अनेक प्रकार के रोग पैदा हो गए। वे सभी शरीरधारी, क्रूर और भयंकर थे। वे अग्नि के समान तेज से प्रज्वलित थे। तब वीरभद्र और महाकाली ने दोनों हाथ जोड़कर भगवान शिव को प्रणाम किया।

वीरभद्र बोले—हे महारुद्र! आपने सोम, सूर्य और अग्नि को अपने तीनों नेत्रों में धारण किया है। हे प्रभु! कृपा कर मुझे आज्ञा दीजिए कि मुझे क्या कार्य करना है? क्या मुझे पृथ्वी के सभी समुद्रों को एक क्षण में सुखाना है या संपूर्ण पर्वतों को पीसकर पल भर में ही मसलकर चूर्ण बनाना है? हे प्रभु! मैं इस ब्रह्माण्ड को भस्म कर दूं या मुनियों को जला दूं। भगवन्, आपका आदेश पाकर मैं समस्त लोकों में उलट-पुलट कर सकता हूं। आपके इशारा करने से ही मैं जगत के समस्त प्राणियों का विनाश कर सकता हूं। आपकी आज्ञा पाकर मैं इस संसार में सभी कार्यों को कर सकता हूं। हे प्रभु! मेरे समान पराक्रमी न तो कोई हुआ है और न ही होगा। भगवन्, आपकी आज्ञा से हर कार्य सिद्ध हो सकता है। मुझे ये सभी शक्तियां आपकी ही कृपा से प्राप्त हुई हैं। बिना आपकी आज्ञा के एक तिनका भी नहीं हिल सकता है। हे करुणानिधान! मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूं। आप अपने कार्य की सिद्धि की जिम्मेदारी मुझे सौंपिए। मैं उसे पूर्ण करने का पूरा प्रयास करूंगा। हे प्रभु! आपके चरणों का मैं हर समय चिंतन करता रहता हूं। आपकी भक्ति परम उत्तम है। आप बिना कहे ही अपने भक्तों की समस्त इच्छाओं को पूरा करके उन्हें मनोवांछित और अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। आप भक्तवत्सल हैं। भगवन्, मुझे कार्य करने का आदेश दें तथा साथ ही उस कार्य की सफलता का भी आशीर्वाद दें।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! वीरभद्र के ये वचन सुनकर शिवजी को बहुत संतोष हुआ तथा उन्होंने वीरभद्र को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। भगवान शिव बोले—पार्षदों में श्रेष्ठ वीरभद्र! तुम्हारी जय हो। ब्रह्माजी का पुत्र दक्ष बड़ा ही दुष्ट है। उसे अपने पर बहुत घमंड है। इस समय वह एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहा है। उसने उस यज्ञ में मेरा बहुत अपमान किया है। मेरी पत्नी ने मेरा अपमान होता हुआ देखकर उसी यज्ञ की अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया है। अब तुम सपरिवार उस यज्ञ में जाओ। वहां यज्ञशाला में जाकर तुम उस यज्ञ को विनष्ट कर दो। यदि देवता, गंधर्व अथवा कोई अन्य तुम्हारा सामना करे और तुम्हें ललकारे तो तुम उसे वहीं भस्म कर देना।

दधीचि की दी हुई चेतावनी के बाद भी जो देवतागण वहां यज्ञ में मौजूद हैं, तुम उन्हें भी भस्म कर देना क्योंकि वे सभी मुझसे बैर रखते हैं। तुम उन सभी को बंधु-बांधवों सहित जलाकर भस्म कर देना। वहां कलशों में भरे हुए जल को पी लेना।

इस प्रकार वैदिक मर्यादा के पालक, भक्तवत्सल करुणानिधान शिव ने क्रोधित होकर वीरभद्र को यज्ञ का विनाश करने का आदेश दिया।

तेंतीसवां अध्याय

वीरभद्र और महाकाली का यज्ञशाला की ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! महेश्वर के आदेश को आदरपूर्वक सुनकर वीरभद्र ने शिवजी को प्रणाम किया। तत्पश्चात उनसे आज्ञा लेकर वीरभद्र यज्ञशाला की ओर चल दिए। शिवजी ने प्रलय की अग्नि के समान और करोड़ों गणों को उनके साथ भेज दिया। वे अत्यंत तेजस्वी थे। वे सभी वीरगण कौतूहल से वीरभद्र के साथ-साथ चल दिए। उसमें हजारों पार्षद वीरभद्र की तरह ही महापराक्रमी और बलशाली थे। बहुत से काल के भी काल भगवान रुद्र के समान थे। वे शिवजी के समान ही शोभा पा रहे थे। तत्पश्चात वीरभद्र शिवजी जैसा वेश धारण कर ऐसे रथ पर चढ़कर चले, जो चार सौ हाथ लंबा था और इस रथ को दस हजार शेर खींच रहे थे और बहुत से हाथी, शार्दूल, मगर, मत्स्य उस रथ की रक्षा के लिए आगे-आगे चल रहे थे। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता और वैष्णवी नामक नव दुर्गाओं ने भी भूतों-पिशाचों के साथ दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिए उस ओर प्रस्थान किया। डाकिनी, शाकिनी, भूत-पिशाच, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल आदि सभी वीरगण भगवान शिव की आज्ञा पाकर दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिए यज्ञशाला की ओर चल दिए। वे भगवान शंकर के चौंसठ हजार करोड़ गणों की सेना लेकर चल दिए। उस समय भेरियों की गंभीर ध्वनि होने लगी। अनेकों प्रकार के शंख चारों दिशाओं में बजने लगे। उस समय जटाहर, मुखों तथा शृंगों के अनेक प्रकार के शब्द हुए। भिन्न-भिन्न प्रकार की सींगे बजने लगीं। महामुनि नारद! उस समय वीरभद्र की उस यात्रा में करोड़ों सैनिक (शिवगण एवं भूत पिशाच) शामिल थे। इसी प्रकार महाकाली की सेना भी शोभा पा रही थी।

इस प्रकार वीरभद्र और महाकाली दोनों की विशाल सेनाएं उस दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिए गाजे-बाजे के साथ आगे बढ़ने लगीं। उस समय अनेक शुभ शगुन होने लगे।

चौंतीसवां अध्याय

यज्ञ-मण्डप में भय और विष्णु से जीवन रक्षा की प्रार्थना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब वीरभद्र और महाकाली की विशाल चतुरंगिणी सेना अत्यंत तीव्र गति से दक्ष के यज्ञ की ओर बढ़ी तो यज्ञोत्सव में अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे। वीरभद्र के चलते ही यज्ञ में विध्वंस की सूचना देने वाला उत्पात होने लगा। दक्ष की बायीं आंख, बायीं भुजा और बायीं जांघ फड़कने लगी। वाम अंगों का फड़कना बहुत अशुभ होता है। उस समय यज्ञशाला में भूकंप आ गया। दक्ष को कम दिखाई देने लगा। भरी दोपहर में उसे आसमान में तारे दिखने लगे। दिशाएं धुंधली हो गईं। सूर्य में काले-काले धब्बे दिखाई देने लगे। ये धब्बे बहुत डरावने लग रहे थे। बिजली और अग्नि के समान सारे नक्षत्र उन्हें टूट-टूटकर गिरते हुए दिखने लगे। वहां यज्ञशाला में हजारों गिद्ध दक्ष के सिर पर मंडराने लगे। उस यज्ञमण्डप को गिद्धों ने पूरा ढक दिया था। वहां एकत्र गीदड़ बड़ी भयानक और डरावनी आवाजें निकाल रहे थे। सभी दिशाएं अंधकारमय हो गई थीं। वहां अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे। फिर उसी समय वहां आकाशवाणी हुई—ओ महामूर्ख, दुष्ट दक्ष! तेरे जन्म को धिक्कार है। तू बहुत बड़ा पापी है। तूने भगवान शिव की बहुत अवहेलना की है। तूने देवी सती, जो कि साक्षात जगदंबा रूप हैं, का भी अनादर किया है। सती ने तेरी ही वजह से अपने शरीर को योगाग्नि में जलाकर भस्म कर दिया है। तुझे तेरे कर्मों का फल जरूर मिलेगा। आज तुझे तेरी करनी का फल अवश्य ही मिलेगा। साथ ही यहां उपस्थित सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों को भी अवश्य ही उनकी करनी का फल मिलेगा। भगवान शिव तुम्हें तुम्हारे पापों का फल जरूर देंगे।

इस प्रकार कहकर वह आकाशवाणी मौन हो गई। उस आकाशवाणी को सुनकर और वहां यज्ञशाला में प्रकट हो रहे अनेक अशुभ लक्षणों को देखकर दक्ष तथा वहां उपस्थित सभी देवतागण भय से कांपने लगे। दक्ष को अपने द्वारा किए गए व्यवहार का स्मरण होने लगा। उसे अपने किए पर बहुत पछतावा होने लगा। तब दक्ष सहित सभी देवता श्रीहरि विष्णु की शरण में गए। वे डरे हुए थे। भय से कांपते हुए वे सभी लक्ष्मीपति विष्णुजी से अपने जीवन की रक्षा की प्रार्थना करने लगे।

पैंतीसवां अध्याय

वीरभद्र का आगमन

दक्ष बोले—हे विष्णु! कृपानिधान! मैं बहुत भयभीत हूं। आपको ही मेरी और मेरे यज्ञ की रक्षा करनी है। प्रभु! आप ही इस यज्ञ के रक्षक हैं। आप साक्षात यज्ञस्वरूप हैं। आप हम सब पर अपनी कृपादृष्टि बनाइए। हम सब आपकी शरण में आए हैं। प्रभु! हमारी रक्षा करें, ताकि यज्ञ का विनाश न हो।

ब्रह्मा जी कहते हैं—हे मुनि नारद! इस प्रकार जब दक्ष ने भगवान विष्णु के चरणों में गिरकर उनसे प्रार्थना की, उस समय दक्ष का मन भय से बहुत अधिक व्याकुल था। तब श्रीहरि ने दक्ष को उठाकर अपने मन में करुणानिधान भगवान शिव का स्मरण किया और शिवतत्व के ज्ञाता श्रीहरि दक्ष को समझाते हुए बोले—दक्ष! तुम्हें तत्व का ज्ञान नहीं है, इसलिए तुमने सबके अधिपति भगवान शंकर की अवहेलना की है। भगवान की स्तुति के बिना कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता। उस कार्य में अनेक परेशानियां आती हैं। जहां पूजनीय व्यक्तियों की पूजा नहीं होती, वहां गरीबी, मृत्यु तथा भय का निवास होता है। इसलिए तुम्हें भगवान शिव का सम्मान करना चाहिए। परंतु तुमने महादेव का सम्मान और आंदर-सत्कार नहीं किया, अपितु तुमने उनका घोर अपमान किया है। इसी के कारण तुम्हारे ऊपर घोर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। मैं तुम पर छाए इस संकट से तुम्हें उबारने में पूर्णतः असमर्थ हूं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान विष्णु का वचन सुनकर दक्ष सोच में डूब गया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया और वे घोर चिंता में पड़ गए। तभी भगवान शिव द्वारा भेजे गए गणों सहित वीरभद्र और महाकाली का उनकी सेनाओं सहित उस यज्ञशाला में प्रवेश हुआ। वे सभी महान पराक्रमी थे। उनकी गणना करना असंभव था। उनके सिंहनाद से सारी दिशाएं गूंज रही थीं। पूरे आसमान में धूल और अंधकार के बादल छाए हुए थे। पूरी पृथ्वी पर्वतों, वनों और काननों सहित कांप रही थी। समुद्रों में ज्वार-भाटा उठ रहा था। उस विशालकाय सेना को देखकर समस्त देवता आश्चर्यचकित थे। उन्हें देखकर दक्ष अपनी पत्नी के साथ भगवान विष्णु के चरणों में गिर पड़े और बोले—हे प्रजापालक विष्णु! आपके बल से ही मैंने इस विशाल यज्ञ का आयोजन किया था। प्रभु! आप कर्मों के साक्षी तथा यज्ञों के प्रतिपालक हैं। आप ही धर्म के रक्षक हैं। अतः प्रभु श्रीहरि! आप ही यज्ञ को विनाश से बचा सकते हैं।

इस प्रकार दक्ष की विनतीपूर्ण बातों को सुनकर श्रीहरि उन्हें समझाते हुए बोले—दक्ष! निश्चय ही मुझे इस यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए परंतु देवताओं के क्षेत्र नैमिषारण्य की उस घटना का स्मरण करो। इस यज्ञ के आयोजन में क्या तुम उस घटना को भूल गए हो? यहां इस यज्ञशाला की और तुम्हारी रक्षा करने में कोई भी देवता समर्थ नहीं है। इस समय जब महादेव जी के गण और उनके सेनापति वीरभद्र तुम्हें भगवान शिव का अपमान करने का

दंड देने आए हैं, उस समय कोई मूर्ख ही तुम्हारी सहायता को आगे आ सकता है। दक्ष! केवल कर्म ही समर्थ नहीं होता, अपितु कर्म को करने में जिसके सहयोग की आवश्यकता होती है, उसका भी उतना ही महत्व है। भगवान शिव ही कर्मों के कल्याण की शक्ति देते हैं। जो शांत मन से भक्तिपूर्वक उनकी पूजा-अर्चना करता है, महादेव जी उसे तत्काल ही उस कर्म का फल देते हैं। जो मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते, वे नरक के भागी होते हैं।

दक्ष! यह वीरभद्र शंकर के गणों का ऐसा सेनापति है, जो शिवजी के शत्रु का तुरंत नाश कर देता है। निःसंदेह यह तुम्हारा तथा यहां पर उपस्थित सभी लोगों का नाश कर देगा। शिवजी की आज्ञा का उल्लंघन करके, मैं तुम्हारे यज्ञ में आया हूं, जिसका दुष्परिणाम मुझे भी भोगना पड़ेगा। अब इस विनाश को रोकने की शक्ति मेरे पास नहीं है। यदि हम यहां से भागकर स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी कहीं भी छिप जाएं, तो भी वीरभद्र के शस्त्र हमें ढूंढ़ लेंगे। शिवजी के सभी गण बहुत शक्तिशाली हैं। विष्णुजी यह कह ही रहे थे कि वीरभद्र अपनी अजय सेना के साथ यज्ञ मण्डप में आ पहुंचा।

छत्तीसवां अध्याय

श्रीहरि और वीरभद्र का युद्ध

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब शिवजी की आज्ञा पाकर वीरभद्र की विशाल सेना ने यज्ञशाला में प्रवेश किया तो वहां उपस्थित सभी देवता अपने प्राणों की रक्षा के लिए शिवगणों से युद्ध करने लगे परंतु शिवगणों की वीरता और पराक्रम के आगे उनकी एक न चली। सारे देवता पराजित होकर वहां से भागने लगे। तब इंद्र आदि लोकपाल युद्ध के लिए आगे आए। उन्होंने गुरुदेव बृहस्पति जी को नमस्कार कर उनसे विजय के विषय में पूछा। उन्होंने कहा—हे गुरुदेव बृहस्पति! हम यह जानना चाहते हैं कि हमारी विजय कैसे होगी?

उनकी यह बात सुनकर बृहस्पति जी बोले—हे इंद्र! समस्त कर्मों का फल देने वाले तो ईश्वर हैं। सभी को अपनी करनी का फल अवश्य भुगतना पड़ता है। जो ईश्वर के अस्तित्व को जानकर और समझकर उनकी शरण में आकर अच्छे कर्म करता है उसी को उसके सत्कर्मों का फल मिलता है परंतु जो ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करता है, वह ईश्वरद्रोही कहलाता है और उसे किसी भी अच्छे फल की प्राप्ति नहीं होती। उन परमपुण्य भगवान शिव के स्वरूप को जानना अत्यंत कठिन है। वे सिर्फ अपने भक्तों के ही अधीन हैं। इसलिए उन्हें भक्तवत्सल भी कहा जाता है। भक्ति और ईश्वर सत्ता में विश्वास न रखने वाले मनुष्य यदि वेदों का दस हजार बार भी अध्ययन कर लें तो भी भगवान शिव के स्वरूप को भली-भांति नहीं जान पाएंगे। भगवान शिव के शांत, निर्विकार एवं उत्तम दृष्टि से ध्यान करने एवं उनकी उपासना करने से ही शिवतत्व की प्राप्ति होती है। तुम उन करुणानिधान भगवान महेश्वर की अवहेलना करने वाले उस मूर्ख दक्ष के निमंत्रण पर यहां इस यज्ञ में भाग लेने आ गए हो। भगवान शिव की पत्नी देवी सती का भी इस यज्ञ में घोर अपमान हुआ है। उन्होंने इसी यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति दे दी है। इसी कारण भगवान शंकर ने रुष्ट होकर इस यज्ञ का विध्वंस करने के लिए वीरभद्र के नेतृत्व में अपने शिवगणों को भेजा है। अब इस यज्ञ के विनाश को रोक पाना किसी के भी वश में नहीं है। अब चाहकर भी तुम लोग कुछ नहीं कर सकते।

बृहस्पति जी के ये वचन सुनकर इंद्र सहित अन्य देवता चिंता में पड़ गए। सभी वीरभद्र और अन्य शिवगण उनके निकट पहुंच गए। वहां वीरभद्र ने उन सभी को बहुत डांटा और फटकारा। गुस्से से वीरभद्र ने इंद्र सहित सभी देवताओं पर अपने तीखे बाणों से प्रहार करना शुरू कर दिया। बाणों से घायल हुए सभी देवताओं में हाहाकार मच गया और वे अपने प्राणों की रक्षा के लिए यज्ञमण्डप से भाग खड़े हुए। यह देखकर वहां उपस्थित सभी ऋषि-मुनि भयभीत होकर श्रीहरि के सम्मुख प्राण रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। तब मैं और विष्णुजी वीरभद्र से युद्ध करने के लिए उनके पास गए। हमें देखकर वीरभद्र जो पहले से ही क्रोधित थे, हम सबको डांटने लगे। उनके कठोर वचनों को सुनकर विष्णुजी मुस्कुराते हुए बोले—हे

शिवभक्त वीरभद्र! मैं भी भगवान शिव का ही भक्त हूं। उनमें मेरी अपार श्रद्धा है। मैं उन्हीं का सेवक हूं परंतु दक्ष अज्ञानी और मूर्ख है। यह सिर्फ कर्मकाण्डों में ही विश्वास रखता है। जिस प्रकार महेश्वर भगवान अपने भक्तों के ही अधीन हैं उसी प्रकार मैं भी अपने भक्तों के ही अधीन हूं। दक्ष मेरा अनन्य भक्त है। उसकी बारंबार प्रार्थना पर मुझे इस यज्ञ में उपस्थित होना पड़ा। हे वीरभद्र! तुम रुद्रदेव के रौद्र रूप अर्थात क्रोध से उत्पन्न हुए हो। तुम्हें भगवान शंकर ने इस यज्ञ का विनाश करने के लिए यहां भेजा है। उनकी आज्ञा तुम्हारे लिए शिरोधार्य है। मैं इस यज्ञ का रक्षक हूं। अतः इसे बचाना मेरा पहला कर्तव्य है। इसलिए तुम भी अपना कर्तव्य निभाओ और मैं भी अपना कर्तव्य निभाता हूं। हम दोनों को ही अपने उत्तरदायित्व की रक्षा के लिए आपस में युद्ध करना पड़ेगा।

भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर, वीरभद्र हंसकर बोला कि आप मेरे परमेश्वर भगवान शिव के भक्त हैं, यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। भगवन्, मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप मेरे लिए भगवान शिव के समान ही पूजनीय हैं। मैं आपका आदर करता हूं परंतु शिव आज्ञा के अनुसार मुझे इस यज्ञ का विनाश करना है। यह मेरा कर्तव्य है। यज्ञ का रक्षक होने के नाते इसे बचाना आपका उत्तरदायित्व है। अतः हम दोनों को ही अपना-अपना कार्य करना है। तब श्रीहरि और वीरभद्र दोनों ही युद्ध के लिए तैयार हो गए। तत्पश्चात दोनों में घोर युद्ध हुआ। अंत में वीरभद्र ने भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र को जड़ कर दिया। उनके धनुष के तीन टुकड़े कर दिए। वीरभद्र विष्णुजी पर भारी पड़ रहे थे। तब उन्होंने वहां से अंतर्धान होने का विचार किया। सभी देवता व ऋषिगण यह समझ चुके थे कि यह जो कुछ हो रहा है, वह देवी सती के प्रति अन्याय और शिवजी के अपमान का ही परिणाम है। इस संकट की घड़ी में कोई भी उनकी रक्षा नहीं कर सकता। तब वे देवता और ऋषिगण शिवजी का स्मरण करते हुए अपने-अपने लोक को चले गए। मैं भी दुखी मन से अपने सत्यलोक को चला आया। उस यज्ञस्थल पर बहुत उपद्रव हुआ। वीरभद्र और महाकाली ने अनेकों मुनियों एवं देवताओं को प्रताड़ित करके उनका वध कर दिया। भृगु, पूषा और भग नामक देवताओं को उनकी करनी का फल देते हुए उन्हें पृथ्वी पर फेंक दिया।

सैंतीसवां अध्याय

दक्ष का सिर काटकर यज्ञ कुंड में डालना

हे नारद! यज्ञशाला में उपस्थित सभी देवताओं को डराकर और मारकर वीरभद्र ने वहां से भगा दिया और जो बाकी बचे उनको भी मार डाला। तब उन्होंने यज्ञ के आयोजक दक्ष को, जो कि भय के मारे अंतर्वेदी में छिपा था, बलपूर्वक पकड़ लिया। वीरभद्र ने दक्ष के शरीर पर अनेकों वार किए। वे दक्ष का सिर तलवार से काटने लगे। परंतु दक्ष के योग के प्रभाव से वह सिर काटने में असफल रहे। वीरभद्र ने दक्ष की छाती पर पैर रखकर दोनों हाथों से उसकी गरदन मरोड़कर तोड़ दी। तत्पश्चात दक्ष के सिर को वीरभद्र ने अग्निकुंड में डाल दिया।

उस महान यज्ञ का संपूर्ण विनाश करने के उपरांत वीरभद्र और सभी गण जीत की खुशी के साथ कैलाश पर्वत पर चले गए और शिवजी को अपनी विजय की सूचना दी। इस समाचार को पाकर महादेव जी बहुत प्रसन्न हुए।

अड़तीसवां अध्याय

दधीचि-क्षुव विवाद

सूत जी कहते हैं—हे महर्षियो! ब्रह्माजी के द्वारा कही हुई कथा को सुनकर नारद जी आश्चर्यचकित हो गए तथा उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा कि भगवान विष्णु शिवजी को छोड़कर अन्य देवताओं के साथ दक्ष के यज्ञ में क्यों चले गए? क्या वे अद्भुत पराक्रम वाले भगवान शिव को नहीं जानते थे? क्यों श्रीहरि ने रुद्रगणों के साथ युद्ध किया? कृपया कर मेरे अंदर उठने वाले इन प्रश्नों के उत्तर देकर मेरी शंकाओं का समाधान कीजिए।

ब्रह्माजी ने नारद जी के प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहा—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! पूर्व काल में राजा क्षुव की सहायता करने वाले श्रीहरि को दधीचि मुनि ने शाप दे दिया था। इसलिए वे भूल गए और दक्ष के यज्ञ में चले गए। प्राचीन काल में दधीचि मुनि महातेजस्वी राजा क्षुव के मित्र थे परंतु बाद में उन दोनों के बीच बहुत विवाद खड़ा हो गया। विवाद का कारण मुनि दधीचि का चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ बताना था परंतु राजा क्षुव, जो कि धन वैभव के अभिमान में डूबे हुए थे, इस बात से पूर्णतः असहमत थे। क्षुव सभी वर्णों में राजा को ही श्रेष्ठ मानते थे। राजा को सर्वश्रेष्ठ और सर्ववेदमय माना जाता है। यह श्रुति भी कहती है। इसलिए ब्राह्मण से ज्यादा राजा श्रेष्ठ है। हे दधीचि! आप मेरे लिए आदरणीय हैं। राजा क्षुव के कथन को सुनकर दधीचि को क्रोध आ गया। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और क्षुव के सिर पर मुक्के का प्रहार कर दिया। दधीचि के इस व्यवहार से मद में चूर क्षुव को और अधिक क्रोध आ गया। उन्होंने वज्र से दधीचि पर प्रहार कर दिया। वज्र से घायल हुए दधीचि मुनि ने पृथ्वी पर गिरते हुए योगी शुक्राचार्य का स्मरण किया। शुक्राचार्य ने तुरंत आकर दधीचि मुनि के शरीर को पूर्ववत कर दिया। शुक्राचार्य ने दधीचि से कहा कि मैं तुम्हें महामृत्युंजय का मंत्र प्रदान करता हूं।

'त्रयम्बकं यजामहे' अर्थात हम तीनों लोकों के पिता भगवान शिव, जो सूर्य, सोम और अग्नि तीनों मण्डलों के पिता हैं, सत्व, रज और तम आदि तीनों गुणों के महेश्वर हैं, जो आत्मतत्व, विद्यातत्व और शिव तत्व, पृथ्वी, जल व तेज सभी के स्रोत हैं। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों आधारभूत देवताओं के भी ईश्वर महादेव हैं, उनकी आराधना करते हैं। 'सुगंधिम् पुष्टिवर्धनम्' अर्थात जिस प्रकार फूलों में खुशबू होती है, उसी प्रकार भगवान शिव भूतों में, गुणों में, सभी कार्यों में इंद्रियों में, अन्य देवताओं में और अपने प्रिय गणों में क्षारभूत आत्मा के रूप में समाए हैं। उनकी सुगंध से ही सबकी ख्याति एवं प्रसिद्धि है। 'पुष्टिवर्धनम्' अर्थात वे भगवान शिव ही प्रकृति का पोषण करते हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु, मुनियों एवं सभी देवताओं का पोषण करते हैं। 'उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्' अर्थात जिस प्रकार खरबूजा पक जाने पर लता से टूटकर अलग हो जाता है उसी प्रकार मैं भी मृत्युरूपी बंधन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करूं। हे रुद्रदेव! आपका स्वरूप अमृत के समान है। जो

पुण्यकर्म, तपस्या, स्वाध्याय, योग और ध्यान से उनकी आराधना करता है, उसे नया जीवन प्राप्त होता है। भगवान शिव अपने भक्त को मृत्यु के बंधनों से मुक्त कर देते हैं और उसे मोक्ष प्रदान करते हैं। जैसे उर्वारुक अर्थात ककड़ी को उसकी बेल अपने बंधन में बांधे रखती है और पक जाने पर स्वयं ही उसे बंधन मुक्त कर देती है। यह महामृत्युंजय मंत्र संजीवनी मंत्र है। तुम नियमपूर्वक भगवान शिव का स्मरण करके इस मंत्र का जाप करो। इस मंत्र से अभिमंत्रित जल को पियो। इस मंत्र का जाप करने से मृत्यु का भय नहीं रहता। इसके विधिवत पूजन करने से भगवान शिव प्रसन्न होते हैं। वे सभी कार्यों की सिद्धि करते हैं तथा सभी बंधनों से मुक्त कर मोक्ष प्रदान करते हैं।

ब्रह्माजी बोले—नारद! दधीचि मुनि को इस प्रकार उपदेश देकर शुक्राचार्य अपने निवास पर चले गए। उनकी बातों का दधीचि मुनि पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे भगवान शिव का स्मरण कर उन्हें प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने वन में चले गए। वन में उन्होंने प्रेमपूर्वक भगवान शिव का चिंतन करते हुए उनकी तपस्या आरंभ कर दी। दीर्घकाल तक वे महामृत्युंजय मंत्र का जाप करते रहे। उनकी इस निःस्वार्थ भक्ति से भक्तवत्सल भगवान शिव प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हो गए। दधीचि ने दोनों हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम किया। उन्होंने महादेव जी की बहुत स्तुति की।

शिव ने कहा—मुनिश्रेष्ठ दधीचि! मैं तुम्हारी इस उत्तम आराधना से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। तुम वर मांगो। मैं तुम्हें मनोवांछित वस्तु प्रदान करूंगा। यह सुनकर दधीचि हाथ जोड़े नतमस्तक होकर कहने लगे—हे देवाधिदेव! करुणानिधान! महादेव जी! अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा कर मुझे तीन वर प्रदान करें। पहला यह कि मेरी अस्थियां वज्र के समान हो जाएं। दूसरा-कोई मेरा वध न कर सके अर्थात मैं हमेशा अवध्य रहूं और तीसरा कि मैं हमेशा अदीन रहूं। कभी दीन न होऊं। शिवजी ने 'तथास्तु' कहकर तीनों वर दधीचि को प्रदान कर दिए। तीनों मनचाहे वरदान मिल जाने पर दधीचि मुनि बहुत प्रसन्न थे। वे आनंदमग्न होकर राजा क्षुव के स्थान की ओर चल दिए। वहां पहुंचकर दधीचि ने क्षुव के सिर पर लात मारी। क्षुव विष्णु जी का परम भक्त था। राजा होने के कारण वह भी अहंकारी था। उसने क्रोधित हो तुरंत दधीचि पर वज्र से प्रहार कर दिया परंतु क्षुव के प्रहार से दधीचि मुनि का बाल भी बांका नहीं हुआ। यह सब महादेव जी के वरदान से ही हुआ था। यह देखकर क्षुव को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने वन में जाकर इंद्र के भाई मुकुंद की आराधना शुरू कर दी। तब विष्णुजी ने प्रसन्न होकर क्षुव को दिव्य दृष्टि प्रदान की। क्षुव ने विष्णुजी को प्रणाम कर उनकी भक्तिभाव से स्तुति की।

तत्पश्चात क्षुव बोले—भगवन्, मुनिश्रेष्ठ दधीचि पहले मेरे मित्र थे परंतु बाद में हम दोनों के बीच में विवाद उत्पन्न हो गया। दधीचि ने परम पूजनीय भगवान शिव की तपस्या महामृत्युंजय मंत्र से कर उन्हें प्रसन्न किया तथा अवध्य रहने का वरदान प्राप्त कर लिया। तब उन्होंने मेरी राजसभा में मेरे समस्त दरबारियों के बीच मेरा घोर अपमान किया। उन्होंने सबके सामने मेरे मस्तक पर अपने पैरों से आघात किया। साथ ही उन्होंने कहा कि मैं किसी से नहीं डरता। भगवन्! मुनि दधीचि को बहुत घमंड हो गया है।

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब श्रीहरि को इस बात का ज्ञान हुआ कि दधीचि मुनि को महादेव जी द्वारा अवध्य होने का आशीर्वाद प्राप्त है, तो वे कहने लगे कि क्षुव महादेव जी के भक्तों को कभी भी किसी प्रकार का भी भय नहीं होता है। यदि मैं इस विषय में कुछ करूं तो दधीचि को बुरा लगेगा और वे शाप भी दे सकते हैं। उन्हीं दधीचि के शाप से दक्ष यज्ञ में मेरी शिवजी से पराजय होगी। इसलिए मैं इस संबंध में कुछ नहीं करना चाहता परंतु ऐसा कुछ जरूर करूंगा, जिससे आपको विजय प्राप्त हो। भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर राजा चुप हो गए।

उन्तालीसवां अध्याय

दधीचि का शाप और क्षुव पर अनुग्रह

ब्रह्माजी बोले—नारद! श्रीहरि विष्णु अपने प्रिय भक्त राजा क्षुव के हितों की रक्षा करने के लिए एक दिन ब्राह्मण का रूप धारण करके दधीचि मुनि के आश्रम में पहुंचे। विष्णुजी भगवान शिव की आराधना में मग्न रहने वाले ब्रह्मर्षि दधीचि से बोले कि हे प्रभु, मैं आपसे एक वर मांगता हूं। दधीचि श्रीविष्णु को पहचानते हुए कहने लगे—मैं सब समझ गया हूं कि आप कौन हैं और क्या चाहते हैं? इसलिए मैं आपसे क्या कहूं। हे श्रीहरि विष्णु! क्षुव का कल्याण करने के लिए आप यह ब्राह्मण का वेश बनाकर आए हैं। आप ब्राह्मण वेश का त्याग कर दें। लज्जित होकर भगवान विष्णु अपने असली रूप में आ गए और महामुनि दधीचि को प्रणाम करके बोले कि महामुनि! आपका कथन पूर्णतया सत्य है। मैं यह भी जानता हूं कि शिवभक्तों को कभी भी, किसी भी प्रकार का कोई भी भय नहीं होता है। परंतु आप सिर्फ मेरे कहने से राजा क्षुव के सामने यह कह दें कि आप राजा क्षुव से डरते हैं। श्रीविष्णु की यह बात सुनकर दधीचि हंसने लगे। हंसते हुए बोले कि भगवान शिव की कृपा से मुझे कोई भी डरा नहीं सकता। जब कोई वाकई मुझे डरा नहीं सकता तो मैं क्यों झूठ बोलकर पाप का भागी बनूं? दधीचि मुनि के इन वचनों को सुनकर विष्णु को बहुत अधिक क्रोध आ गया। उन्होंने मुनि दधीचि को समझाने की बहुत कोशिश की। सभी देवताओं ने श्री विष्णुजी का ही साथ दिया। भगवान विष्णु ने दधीचि मुनि को डराने के लिए अनेक गण उत्पन्न कर दिए परंतु दधीचि ने अपने सत से उनको भस्म कर दिया। तब विष्णुजी ने वहां अपनी मूर्ति प्रकट कर दी। यह देखकर दधीचि मुनि बोले—हे श्रीहरि! अब अपनी माया को त्याग दीजिए। आप अपने क्रोध और अहंकार का त्याग कर दीजिए। आपको मुझमें ही ब्रह्मा, रुद्र सहित संपूर्ण जगत का दर्शन हो जाएगा। मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूं। तब विष्णुजी को दधीचि मुनि ने अपने शरीर में पूरे ब्रह्मांड के दर्शन करा दिए। तब विष्णुजी का क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने चक्र उठा लिया और महर्षि को मारने के लिए आगे बढ़े, परंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी चक्र आगे नहीं चला।

यह देखकर दधीचि हंसते हुए बोले कि हे श्रीहरि! आप भगवान शिव द्वारा प्रदान किए गए इस सुदर्शन चक्र से उनके ही प्रिय भक्त को मारना चाहते हैं, तो भला यह चक्र क्यों चलेगा? शिवजी द्वारा दिए गए अस्त्र से आप उनके भक्तों का विनाश किसी भी तरह नहीं कर सकते परंतु फिर भी यदि आप मुझे मारना चाहते हैं तो ब्रह्मास्त्र आदि का प्रयोग कीजिए। लेकिन दधीचि को साधारण मनुष्य समझकर विष्णुजी ने उन पर अनेक अस्त्र चलाए।

तब दधीचि मुनि ने धरती से मुट्ठी पर कुशा उठा ली और कुछ मंत्रों के उच्चारण के उपरांत उसे देवताओं की ओर उछाल दिया। वे कुशाएं कालाग्नि के रूप में परिवर्तित हो गईं,

जिनमें देवताओं द्वारा छोड़े गए सभी अस्त्र-शस्त्र जलकर भस्म हो गए। यह देखकर वहां पर उपस्थित अन्य देवता वहां से भाग खड़े हुए परंतु श्रीहरि दधीचि से युद्ध करते रहे। उन दोनों के बीच भीषण युद्ध हुआ। तब मैं (ब्रह्मा) राजा क्षुव को साथ लेकर उस स्थान पर आया, जहां उन दोनों के बीच युद्ध हो रहा था। मैंने भगवान विष्णु से कहा कि आपका यह प्रयास निरर्थक है। क्योंकि आप भगवान शिव के परम भक्त दधीचि को हरा नहीं सकते हैं। यह सुनकर विष्णुजी शांत हो गए, उन्होंने दधीचि मुनि को प्रणाम किया। तब राजा क्षुव भी दोनों हाथ जोड़कर मुनि दधीचि को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे, उनसे माफी मांगने लगे और कहने लगे कि प्रभु आप मुझ पर कृपादृष्टि रखिए।

ब्रह्माजी बोले—नारद! इस प्रकार राजा क्षुव द्वारा की गई स्तुति से दधीचि को बहुत संतोष मिला और उन्होंने राजा क्षुव को क्षमा कर दिया परंतु विष्णुजी सहित अन्य देवताओं पर उनका क्रोध कम नहीं हुआ। तब क्रोधित मुनि दधीचि ने इंद्र सहित सभी देवताओं और विष्णुजी को भी भगवान रुद्र की क्रोधाग्नि में नष्ट होने का शाप दे दिया। इसके बाद राजा क्षुव ने दधीचि को पुनः नमस्कार कर उनकी आराधना की और फिर वे अपने राज्य की ओर चल दिए। राजा क्षुव के वहां से चले जाने के पश्चात इंद्र सहित सभी देवगणों ने भी अपने-अपने धाम की ओर प्रस्थान किया। तदोपरांत श्रीहरि विष्णु भी बैकुंठधाम को चले गए। तब से वह पुण्य स्थान 'थानेश्वर' नामक तीर्थ के रूप में विख्यात हुआ। इस तीर्थ के दर्शन से भगवान शिव का स्नेह और कृपा प्राप्त होती है।

हे नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह पूरी अमृत कथा का वर्णन सुनाया। जो मनुष्य क्षुव और दधीचि के विवाद से संबंधित इस प्रसंग को प्रतिदिन सुनता है, वह अपमृत्यु को जीत लेता है तथा मरने के बाद सीधा स्वर्ग को जाता है। इसका पाठ करने से युद्ध में मृत्यु का भय दूर हो जाता है तथा निश्चित रूप से विजयश्री की प्राप्ति होती है।

चालीसवां अध्याय

ब्रह्माजी का कैलाश पर शिवजी से मिलना

नारद जी ने कहा—हे महाभाग्य! हे विधाता! हे महाप्राण! आप शिवतत्व का ज्ञान रखते हैं। आपने मुझ पर बड़ी कृपा की जो इस अमृतमयी कथा का श्रवण मुझे कराया। मैं आपका बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं। हे प्रभु! अब मुझे यह बताइए कि जब वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ का विनाश कर दिया और उनका वध करके कैलाश पर्वत को चले गए तब क्या हुआ?

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! जब भगवान शिव द्वारा भेजी गई उनकी विशाल सेना ने यज्ञ में उपस्थित सभी देवताओं और ऋषियों को पराजित कर दिया और उन्हें पीट-पीटकर वहां से भाग जाने को मजबूर कर दिया तो वे सभी वहां से भागकर मेरे पास आ गए। उन्होंने मुझे प्रणाम करके मेरी स्तुति की तथा वहां का सारा वृत्तांत मुझे सुनाया। तब अपने पुत्र दक्ष की मुझे बहुत चिंता होने लगी और मेरा दिल पुत्र शोक के कारण व्यथित हो गया। तत्पश्चात मैंने श्रीहरि का स्मरण किया और अन्य देवताओं और ऋषि-मुनियों को साथ लेकर बैकुंठलोक गया। वहां उन्हें नमस्कार करके हम सभी ने उनकी भक्तिभाव से स्तुति की। तब मैंने श्रीहरि से विनम्रता से प्रार्थना की कि भगवन् आप कुछ ऐसा करें, जिससे हम सभी का दुख कम हो जाए। देवेश्वर आप कुछ ऐसा करें, जिससे वह यज्ञ पूरा हो जाए तथा उसके यजमान दक्ष पुनः जीवित हो जाएं। अन्य सभी देवता और ऋषि-मुनि भी पूर्व की भांति सुखी हो जाएं।

मेरे इस प्रकार निवेदन करने पर लक्ष्मीपति विष्णुजी, जो अपने मन में शिवजी का चिंतन कर रहे थे, प्रजापति ब्रह्मा और देवताओं को संबोधित करते हुए इस प्रकार बोले—कोई भी अपराध किसी भी स्थिति में कभी भी किसी के लिए भी मंगलकारी नहीं हो सकता। हे विधाता! सभी देवता, परमपिता परमेश्वर भगवान शिव के अपराधी हैं क्योंकि इन्होंने यज्ञ में शिवजी का भाग नहीं दिया। साथ ही वहां उनका अनादर भी किया। उनकी प्रिय पत्नी सती ने भी उनके अपमान के कारण ही अपनी देह का त्याग कर दिया। उनका वियोग होने के कारण भगवन् अत्यंत रुष्ट हो गए हैं। तुम सभी को शीघ्र ही उनके पास जाकर उनसे क्षमा मांगनी चाहिए। भगवान शिव के पैर पकड़कर उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करो क्योंकि उनके कुपित होने से संपूर्ण जगत का विनाश हो सकता है। दक्ष ने शिवजी के लिए अपशब्द कहकर उनके हृदय को विदीर्ण कर दिया है। इसलिए उनसे अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगो। उन्हें शांत करने का यही सर्वोत्तम उपाय है। वे भक्तवत्सल हैं। यदि आप लोग चाहें तो मैं भी आपके साथ चलकर उनसे क्षमा याचना करूंगा।

ऐसा कहकर भगवान श्रीहरि, मैं और अन्य देवता एवं ऋषि-मुनि आदि कैलाश पर्वत की ओर चल दिए। वह पर्वत बहुत ही ऊंचा और विशाल है। उसके पास में ही शिवजी के मित्र कुबेर का निवास स्थल अलकापुरी है। अलकापुरी महा दिव्य एवं रमणीय है। वहां चारों ओर

सुगंध फैली हुई थी। अनेक प्रकार के पेड़-पौधे शोभा पा रहे थे। उसी के बाहरी भाग में परम पावन नंदा और अलकनंदा नामक नदियां बहती हैं। इनका दर्शन करने से मनुष्य को सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है।

हम लोग अलकापुरी से आगे उस विशाल वट वृक्ष के पास पहुंचे, जहां दिव्य योगियों द्वारा पूजित भगवान शिव विराजमान थे। वह वट-वृक्ष सौ योजन ऊंचा था तथा उसकी अनेक शाखाएं पचहत्तर योजन तक फैली हुई थीं। वह परम पावन तीर्थ स्थल है। यहां भगवान शिव अपनी योगाराधना करते हैं। उस वट वृक्ष के नीचे महादेव जी के चारों ओर उनके गण थे और यज्ञों के स्वामी कुबेर भी बैठे थे। तब उनके निकट पहुंचकर विष्णु आदि समस्त देवताओं ने अनेकों बार नमस्कार कर उनकी स्तुति की। उस समय शिवजी ने अपने शरीर पर भस्म लगा रखी थी और वे कुशासन पर बैठे थे और ज्ञान का उपदेश वहां उपस्थित गणों को दे रहे थे। उन्होंने अपना बायां पैर अपनी दायीं जांघ पर रखा था और बाएं हाथ को बाएं पैर पर रख रखा था। उनके दाएं हाथ में रुद्राक्ष की माला थी।

भगवान शिव के साक्षात रूप का दर्शन कर विष्णुजी और सभी देवताओं ने दोनों हाथ जोड़कर और अपने मस्तक को झुकाकर दयासागर परमेश्वर शिव से क्षमा याचना की और कहा कि हे प्रभु! आपकी कृपा के बिना हम नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। अतः प्रभु आप हम सबकी रक्षा करें। भगवन्! हम आपकी शरण में आए हैं। हम पर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखें। इस प्रकार सभी देवता व ऋषि-मुनि भगवान शिव का क्रोध कम करने और उनकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करने लगे।

इकतालीसवां अध्याय

शिव द्वारा दक्ष को जीवित करना

देवताओं ने महादेव जी की बहुत स्तुति की और कहा—भगवन्, आप ही परमब्रह्म हैं और इस जगत में सर्वत्र व्याप्त हैं। आप मृत्युंजय हैं। चंद्रमा, सूर्य और अग्नि आपकी तीन आंखें हैं। आपके तेज से ही पूरा जग प्रकाशित है। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और चंद्र आदि देवता आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आप ही इस संसार का पोषण करते हैं। भगवन् आप करुणामय हैं। आप ही दुष्टों का संहार करते हैं। प्रभु! आपकी आज्ञानुसार अग्नि जलाती है और सूर्य अपनी तपन से झुलसाता है। मृत्यु आपके भय से कांपती है। हे करुणानिधान! जिस प्रकार आज तक आपने हमारी हर विपत्ति से रक्षा की है, उसी प्रकार हमेशा अपनी कृपादृष्टि बनाएं। भगवन्! हम अपनी सभी गलतियों के लिए आपसे क्षमा मांगते हैं। आप प्रसन्न होकर यज्ञ को पूर्ण कीजिए तथा यजमान दक्ष का उद्धार कीजिए। वीरभद्र और महाकाली के प्रहारों से घायल हुए सभी देवताओं व ऋषियों को आरोग्य प्रदान करें। उन सभी की पीड़ा को कम कर दें। हे शिवजी! आप प्रजापति दक्ष के अपूर्ण यज्ञ को पूर्ण कर दें और दक्ष को पुनर्जीवित कर दें। भग ऋषि को उनकी आंखें, पूषा को दांत प्रदान करें। साथ ही जिन देवताओं के अंग नष्ट हो गए हैं, उन्हें ठीक कर दें। आप सभी को आरोग्य प्रदान करें। हम आपको यज्ञ में पूरा-पूरा भाग देंगे। ऐसा कहकर हम सभी देवता त्रिलोकीनाथ महादेव के चरणों में लेट गए।

हमारी स्तुति और अनुनय-विनय से भक्तवत्सल भगवान शिव प्रसन्न हो गए। शिवजी बोले—हे ब्रह्मा! श्रीहरि विष्णु! आपकी बातों को मैं हमेशा मानता हूं। इसलिए आपकी प्रार्थना को मैं नहीं टाल सकता परंतु मैं यह बताना चाहता हूं कि दक्ष के यज्ञ का विध्वंस मैंने नहीं किया है। उसके यज्ञ का विध्वंस इसलिए हुआ क्योंकि वह हमेशा दूसरों का बुरा चाहता है, उनसे द्वेष रखता है। परंतु जो दूसरों का बुरा चाहता है उसका ही बुरा होता है। अतः हमें कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे किसी को कष्ट हो। तुम्हारी प्रार्थना से मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है और तुम्हारी विनती मानकर मैं दक्ष को जीवित कर रहा हूं परंतु दक्ष का मस्तक अग्नि में जल गया है। इसलिए उनके सिर के स्थान पर बकरे का सिर जोड़ना पड़ेगा। भग सूर्य के नेत्र से यज्ञ भाग को देख पाएंगे तथा पूषा के टूटे हुए दांत सही हो जाएंगे। मेरे गणों द्वारा मारे गए देवताओं के टूटे हुए अंग भी ठीक हो जाएंगे। भृगु की दाढ़ी बकरे जैसी हो जाएगी। सभी अध्वर्यु प्रसन्न होंगे।

यह कहकर वेदी के अनुसरणकर्ता, परम दयालु भगवान शंकर चुप हो गए। तत्पश्चात मैंने और विष्णुजी सहित सभी देवताओं ने भगवान शिव का धन्यवाद किया। फिर देवर्षियों सहित शिवजी को उस यज्ञ में आने के लिए आमंत्रित कर, हम लोग यज्ञ के स्थान पर गए, जहां दक्ष ने अपना यज्ञ आरंभ किया था। उस कनखल नामक यज्ञ क्षेत्र में शिवजी भी पधारे। तब उन्होंने वीरभद्र द्वारा किए गए उस विध्वंस को देखा। स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति,

समस्त ऋषि, पितर, अग्नि व यज्ञ, गंधर्व और राक्षस वहां पड़े हुए थे। कितने ही लोग अपने प्राणों से हाथ धो चुके थे। तब भगवान शिव ने अपने परम पराक्रमी सेनापति वीरभद्र का स्मरण किया। याद करते ही वीरभद्र तुरंत वहां प्रकट हो गए और उन्होंने भगवान शिव को नमस्कार किया। तब शिवजी हंसते हुए बोले कि हे वीरभद्र! तुमने तो थोड़ी सी देर में सारा यज्ञ विध्वंस कर दिया और देवताओं को भी दंड दे दिया। हे वीरभद्र! तुम इस यज्ञ का आयोजन करने वाले दक्ष को जल्दी से मेरे सामने ले आओ।

भगवान शिव की आज्ञा पाकर वीरभद्र गए और दक्ष का शरीर वहां लाकर रख दिया परंतु उसमें सिर नहीं था। दक्ष के शरीर को देखकर शिवजी ने वीरभद्र से पूछा कि दक्ष का सिर कहां है? तब वीरभद्र ने बताया कि दक्ष का सिर काटकर उसने यज्ञ की अग्नि में ही डाल दिया था। तब शिवजी के आदेशानुसार बकरे का सिर दक्ष के धड़ में जोड़ दिया गया। जैसे ही शिवजी की कृपादृष्टि दक्ष के शरीर पर पड़ी वह जीवित हो गया। दक्ष के शरीर में प्राण आ गए और वह इस प्रकार उठ बैठा जैसे गहरी नींद से उठा हो। उठते ही उसने अपने सामने महादेव जी को देखा। उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगा। उसके (दक्ष के) हृदय में प्रेम उमड़ आया और उसके प्रसन्नचित्त होते ही उसका कलुषित हृदय निर्मल हो गया। तब दक्ष को अपनी पुत्री का भी स्मरण हो गया और इस कारण दक्ष बहुत लज्जित महसूस करने लगा। तत्पश्चात अपने को संभालते हुए दक्ष ने करुणानिधान भगवान शिव से कहा—हे कल्याणमय महादेव जी! आप ही इस जगत के आदि और अंत हैं। आपने ही इस सृष्टि की रचना का विचार किया है। आपके द्वारा ही हर जीव की उत्पत्ति हुई है। मैंने आपके लिए अपशब्द कहे और आपको यज्ञ में भाग भी नहीं दिया। मेरे बुरे वचनों से आपको बहुत चोट पहुंची है। फिर भी आप मुझ पर कृपा कर यहां मेरा उद्धार करने आ गए। भगवन्! आप ऐश्वर्य से संपन्न हैं। आप ही परमपिता परमेश्वर हैं। प्रभु! आप मुझ पर एवं यहां उपस्थित सभी जनों पर प्रसन्न होइए और हमारी पूजा-अर्चना को स्वीकार कीजिए।

ब्रह्माजी बोले—नारद! इस प्रकार भगवान शिव की स्तुति करने के बाद दक्ष चुप हो गए। तब श्रीहरि विष्णुजी ने भगवान शिव की बहुत स्तुति की। तत्पश्चात मैंने भी महादेव जी की बहुत स्तुति की। भगवन्! आपने मेरे पुत्र दक्ष पर अपनी कृपादृष्टि की और उसका उद्धार किया। देवेश्वर! अब आप प्रसन्न होकर सभी शापों से हमें मुक्ति प्रदान करें।

महामुनि! इस प्रकार महादेव जी की स्तुति करके मैं दोनों हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। हम सभी देवगणों की स्तुति सुनकर भगवान शिव प्रसन्न हो गए और उनका मुख खिल उठा। तब वहां उपस्थित इंद्र सहित अनेक सिद्धों, ऋषियों और प्रजापतियों ने भी भक्तवत्सल करुणानिधान भगवान शिव की अनेकों बार स्तुति की। यज्ञशाला में उपस्थित अनेक उपदेवों, नागों तथा ब्राह्मणों ने भगवान शिव को प्रणाम किया और उनका प्रसन्न मन से स्तवन किया। इस प्रकार सभी देवों के मुख से अपना स्तवन सुनकर भगवान शिव को बहुत संतोष प्राप्त हुआ।

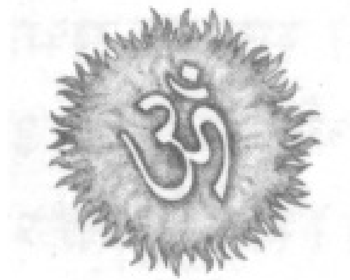

बयालीसवां अध्याय

दक्ष का यज्ञ को पूर्ण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद मुनि! इस प्रकार श्रीहरि, मेरे, देवताओं और ऋषि-मुनियों की स्तुति से भगवान शंकर बहुत प्रसन्न हुए। वे हम सबको कृपादृष्टि से देखते हुए बोले—प्रजापति दक्ष! मैं तुम सभी पर प्रसन्न हूं। मेरा अस्तित्व सबसे अलग है। मैं स्वतंत्र ईश्वर हूं। फिर भी मैं सदैव अपने भक्तों के अधीन ही रहता हूं। चार प्रकार के पुण्यात्मा मनुष्य ही मेरा भजन करते हैं। उनमें पहला आर्त, दूसरा जिज्ञासु, तीसरा अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है। परंतु ज्ञानी को ही मेरा खास सान्निध्य प्राप्त होता है। उसे मेरा ही स्वरूप माना जाता है। वेदों को जानने वाले परम ज्ञानी ही मेरे स्वरूप को जानकर मुझे समझ सकते हैं। जो मनुष्य कर्मों के अधीन रहते हैं, वे मेरे स्वरूप को नहीं पा सकते। इसलिए तुम ज्ञान को जानकर शुद्ध हृदय एवं बुद्धि से मेरा स्मरण कर उत्तम कर्म करो। हे दक्ष! मैं ही ब्रह्मा और विष्णु का रक्षक हूं। मैं ही आत्मा हूं। मैंने ही इस संसार की सृष्टि की है। मैं ही संसार का पालनकर्ता हूं। मैं ही दुष्टों का नाश करने के लिए संहारक बन उनका विनाश करता हूं। बुद्धिहीन मनुष्य, जो कि सदैव सांसारिक बंधनों और मोह-माया में फंसे रहते हैं, कभी भी मेरा साक्षात्कार नहीं कर सकते। मेरे भक्त सदैव मेरे ही स्वरूप का चिंतन और ध्यान करते हैं।

हम तीनों अर्थात ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रदेव एक ही हैं। जो मनुष्य हमें अलग न मानकर हमारा एक ही स्वरूप मानता है, उसे सुख-शांति और समृद्धि की प्राप्ति होती है परंतु जो अज्ञानी मनुष्य हम तीनों को अलग-अलग मानकर हममें भेदभाव करते हैं, वे नरक के भागी होते हैं। हे प्रजापति दक्ष! यदि कोई श्रीहरि का परम भक्त मेरी निंदा या आलोचना करेगा या मेरा भक्त होकर ब्रह्मा और विष्णु का अपमान करेगा, उसे निश्चय ही मेरे कोप का भागी होना पड़ेगा। तुम्हें दिए गए सभी शाप उसको लग जाएंगे।

भगवान शिव के इन वचनों को सुनकर सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों तथा श्रेष्ठ विद्वानों को हर्ष हुआ तथा दक्ष भी प्रभु की आज्ञा मानकर अपने परिवार सहित शिवजी की भक्ति में मग्न हो गया। सब देवता भी महादेव जी का ही गुणगान करने लगे। वे शिवभक्ति में लीन हो गए और उनके भजनों को गाने लगे। इस प्रकार जिसने जिस प्रकार से भगवान शिव की स्तुति और आराधना की, भगवान शिव ने प्रसन्नतापूर्वक उसे ऐसा ही वरदान प्रदान दिया। तत्पश्चात, भक्तवत्सल भगवान शंकर जी से आज्ञा लेकर प्रजापति दक्ष ने अपना यज्ञ पुनः आरंभ किया। उस यज्ञ में उन्होंने सर्वप्रथम शिवजी का भाग दिया। सब देवताओं को भी उचित भाग दिया गया। यज्ञ में उपस्थित सभी ब्राह्मणों को दक्ष ने सामर्थ्य के अनुसार दान दिया। महादेव जी का गुणगान करते हुए दक्ष ने यज्ञ के सभी कर्मों को भक्तिपूर्वक संपन्न किया। इस प्रकार सभी देवताओं, मुनियों और ऋत्विजों के सहयोग से दक्ष का यज्ञ सानंद संपन्न हुआ।

तत्पश्चात सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों ने महादेव जी के यश का गान किया और अपने-अपने निवास की ओर चले गए। वहां उपस्थित अन्य लोगों ने भी शिवजी से आज्ञा मांगकर वहां से प्रस्थान किया। तब मैं और विष्णुजी भी शिव वंदना करते हुए अपने-अपने लोक को चल दिए। दक्ष ने करुणानिधान भगवान शिव की अनेकों बार स्तुति की और शिवजी को बहुत सम्मान दिया। तब वे भी प्रसन्न होकर अपने गणों को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर चल दिए।

कैलाश पर्वत पर पहुंचकर शिवजी को अपनी प्रिय पत्नी देवी सती की याद आने लगी। महादेव जी ने वहां उपस्थित गणों से उनके बारे में अनेक बातें कीं। वे उनको याद करके व्याकुल हो गए। हे नारद! मैंने तुम्हें सती के परम अद्‌भुत और दिव्य चरित्र का वर्णन सुनाया। यह कथा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। यह उत्तम वृत्तांत सभी कामनाओं को अवश्य पूरा करता है। इस प्रकार इस चरित्र को पढ़ने व सुनने वाला ज्ञानी मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। उसे यश, स्वर्ग और आयु की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य भक्तिभाव से इस कथा को पढ़ता है, उसे अपने सभी सत्कर्मों के फलों की प्राप्ति होती है।

।। श्रीरुद्र संहिता (सती खण्ड) संपूर्ण ।।

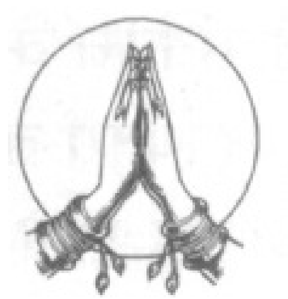

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीरुद्र संहिता

तृतीय खण्ड

पहला अध्याय

हिमालय विवाह

नारद जी ने पूछा—हे पितामह! अपने पिता दक्ष के यज्ञ में अपने शरीर का त्याग करने के बाद जगदंबा सती देवी कैसे हिमालय की पुत्री के रूप में जन्मीं? उन्होंने किस प्रकार महादेव जी को पुनः पति रूप में प्राप्त किया? हे प्रभु! मुझ पर कृपा कर, मेरे इन प्रश्नों के उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा शांत कीजिए। ब्रह्माजी उत्तर देते हुए बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! उत्तर दिशा की ओर हिमवान नामक विशाल पर्वत है। यह पर्वत तेजस्वी और समृद्ध है तथा दो रूपों में प्रसिद्ध है— पहला स्थावर और दूसरा जंगम। उस पर्वत पर रत्नों की खान है। इस पर्वत के पूर्वी और पश्चिमी भाग समुद्र से लगे हुए हैं। हिमवान पर्वत पर अनेक प्रकार के जीव-जंतु निर्भय होकर निवास करते हैं। हिम के विशाल भंडार पर्वत की शोभा बढ़ाते हैं। अनेक देवता, ऋषि-मुनि और सिद्ध पुरुष उस पर्वत पर निवास करते हैं। हिमवान पर्वत पवित्र और पावन है। अनेक ज्ञानियों और साधु-संतों की तपस्या इस स्थान पर सफल हुई है। भगवान शिव को यह पर्वत अत्यंत प्रिय है क्योंकि इस पर प्रकृति का हर रंग देखने को मिलता है।

एक बार की बात है, गिरिवर हिमवान ने अपने कुल की परंपरा को आगे बढ़ाने तथा धर्म की वृद्धि कर अपने पितरों को संतुष्ट करने के लिए विवाह करने के विषय में सोचा। जब हिमवान ने विवाह करने का पूरा मन बना लिया तब वे देवताओं के पास गए और उन देवताओं से बड़े संकोच के साथ अपने विवाह करने की इच्छा बताई। तब देवता प्रसन्न होकर अपने पितरों के पास गए और प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गए। तब पितरों ने देवताओं के आने का कारण पूछा।

इस पर देवताओं ने कहा—हे पितरो! आपकी सबसे बड़ी पुत्री मैना मंगल स्वरूपिणी है। आप मैना का विवाह गिरिराज हिमवान से कर दें। इस विवाह से सभी को लाभ होगा। सबका मंगल होगा तथा साथ ही हमारे कुल में जन्मी इन कन्याओं में से कम से कम एक तो शाप-मुक्त हो जाएगी।

तब पितरों ने थोड़ा विचार करने के बाद इस विवाह की स्वीकृति प्रदान कर दी। पितरों ने प्रसन्नतापूर्वक बहुत बड़ा उत्सव रचाया और अपनी पुत्री मैना के साथ हिमवान का विवाह कर दिया। विवाह उत्सव में श्रीहरि विष्णु सहित सभी देवी-देवता सम्मिलित हुए थे। विवाहोपरांत सभी देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने लोक को चले गए। हिमवान भी मैना के साथ अपने लोक को प्रस्थान कर गए।

दूसरा अध्याय

पूर्व कथा

नारद जी बोले—हे पितामह! अब आप मैना की उत्पत्ति के बारे में बताइए। साथ ही कन्याओं को दिए शाप के बारे में मुझे बताकर, मेरी शंका का समाधान कीजिए।

नारद जी के ये प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी मुस्कुराए और बोले—हे नारद! मेरे पुत्र दक्ष की साठ हजार पुत्रियां हुईं। जिनका विवाह कश्यपादि महर्षियों से हुआ। उनमें स्वधा नाम वाली कन्या का विवाह पितरों के साथ हुआ था। उनकी तीन पुत्रियां हुईं। वे बड़ी सौभाग्यशाली और साक्षात धर्म की मूर्ति थीं। उनमें पहली कन्या का नाम मैना, दूसरी का धन्या और तीसरी का कलावती था। ये तीनों कन्याएं पितरों की मानस पुत्रियां थीं अर्थात उनके मन से प्रकट हुई थीं। इन तीनों का जन्म माता की कोख से नहीं हुआ था। ये संपूर्ण जगत की वंदनीया हैं। इनके नामों का स्मरण और कीर्तन करके मनुष्य को सभी मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। ये तीनों सारे जगत में मनुष्य एवं देवताओं से प्रेरित होती हैं। इनको 'लोकमाताएं' नाम से भी जाना जाता है। मुनिश्वर! एक बार मैना, धन्या और कलावती तीनों बहनें श्वेत द्वीप में विष्णुजी के दर्शन करने के लिए गईं। वहां बहुत से लोग एकत्रित हो गए थे। उस स्थान पर मेरे पुत्र सनकादिक भी आए हुए थे। सबने विष्णुजी की बहुत स्तुति की। सभी सनकादिक को देखकर उनके स्वागत के लिए खड़े हो गए परंतु ये तीनों बहनें उनके स्वागत के लिए खड़ी नहीं हुईं। उन्हें शिवजी की माया ने मोहित कर दिया था। तब इन बहनों के इस बुरे व्यवहार से वे क्रोधित हो गए और उन्होंने इन बहनों को शाप दे दिया। सनकादिक मुनि बोले कि तुम तीनों बहनों ने अभिमानवश खड़े होकर मेरा अभिवादन नहीं किया, इसलिए तुम सदैव स्वर्ग से दूर हो जाओगी और मनुष्य के रूप में ही पृथ्वी पर रहोगी। तुम तीनों मनुष्यों की ही स्त्रियां बनोगी।

तीनों साध्वी बहनों ने चकित होकर ऋषि का वचन सुना। तब अपनी भूल स्वीकार करके वे तीनों सिर झुकाकर सनकादिक मुनि के चरणों में गिर पड़ीं और उनकी अनेकों प्रकार से स्तुति करने लगीं। उन्होंने अनेकों प्रकार से क्षमायाचना की। तीनों कन्याएं, मुनिवर को प्रसन्न करने हेतु उनकी प्रार्थना करने लगीं। वे बोलीं कि हम मूर्ख हैं, जो हमने आपको प्रणाम नहीं किया। अब हम पर कृपा कर हमें स्वर्ग को पुनः प्राप्त करने का कोई उपाय बताइए। तब सनकादिक मुनि बोले—हे पितरो की कन्याओ! हिमालय पर्वत हिम का आधार है। तुममें सबसे बड़ी मैना हिमालय की पत्नी होगी और इसकी कन्या का नाम पार्वती होगा। दूसरी कन्या धन्या, राजा जनक की पत्नी होगी और इसके गर्भ से महालक्ष्मी के साक्षात स्वरूप देवी सीता का जन्म होगा। इसी प्रकार तीसरी पुत्री कलावती राजा वृषभानु को पति रूप में प्राप्त करेगी और राधा की माता होने का गौरव प्राप्त करेगी। तत्पश्चात मैना व हिमालय अपनी पुत्री पार्वती के वरदान से कैलाश पद को प्राप्त करेंगे। धन्या और उनके पति राजा

सीरध्वज जनक देवी सीता के पुण्यस्वरूप के कारण बैकुण्ठधाम को प्राप्त करेंगे। वृषभानु और कलावती अपनी पुत्री राधा के साथ गोलोक में जाएंगे। पुण्यकर्म करने वालों को निश्चय ही सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए सदैव सत्य मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए। तुम पितरों की कन्या होने के कारण स्वर्ग भोगने के योग्य हो परंतु मेरा शाप भी अवश्य फलीभूत होगा। परंतु जब तुमने मुझसे क्षमा मांगी है, तो मैं तुम्हारे शाप के असर को कुछ कम अवश्य कर दूंगा।

धरती पर अवतीर्ण होने के पश्चात तुम साधारण मनुष्यों की भांति ही रहोगी, परंतु विवाह के पश्चात जब तुम्हें संतान की प्राप्ति हो जाएगी और तुम्हारी कन्याओं को यथायोग्य वर मिल जाएंगे और उनका विवाह हो जाएगा अर्थात तुम अपनी सभी जिम्मेदारियों को पूर्ण कर लोगी, तब भगवान श्रीहरि विष्णु के दर्शनों से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। मैना की पुत्री पार्वती कठिन तप के द्वारा शिव की प्राणवल्लभा बनेंगी। धन्या की पुत्री सीता दशरथ नंदन श्रीरामचंद्र जी को पति रूप में प्राप्त करेंगी। कलावती की पुत्री राधा श्रीकृष्ण के स्नेह में बंधकर उनकी प्रिया बनेंगी। यह कहकर मुनि सनकादिक वहां से अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात पितरों की तीनों कन्याएं शाप से मुक्त होकर अपने धाम को चली गईं।

तीसरा अध्याय

देवताओं का हिमालय के पास जाना

नारद जी बोले—हे ब्रह्माजी! हे महामते! आपने अपने श्रीमुख से मैना के पूर्व जन्म की कथा कही, जो कि अद्‌भुत व अलौकिक थी। भगवन्! अब आप मुझे यह बताइए कि पार्वती जी मैना से कैसे उत्पन्न हुईं और उन्होंने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को किस प्रकार पति रूप में प्राप्त किया।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैना और हिमवान के विवाह पर बहुत उत्सव मनाया गया। विवाह के पश्चात वे दोनों अपने घर पहुंचे। तब हिमालय और मैना सुखपूर्वक अपने घर में निवास करने लगे। तब श्रीहरि अन्य देवताओं को अपने साथ लेकर हिमालय के पास गए। सब देवताओं को अपने राजदरबार में आया देखकर हिमालय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सभी देवताओं को प्रणाम कर उनकी स्तुति की। वे भक्तिभाव से उनका आदर-सत्कार करने लगे। वे देवताओं की सेवा करके अपने को धन्य मान रहे थे। मुने! हिमालय दोनों हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गए और बोले—भगवन्! आप सबको एक साथ अपने घर आया देखकर मैं प्रसन्न हूं। सच कहूं तो आज मेरा जीवन सफल हो गया है। आज मैं धन्य हो गया हूं। मेरा राज्य और मेरा पूरा कुल आपके दर्शन मात्र से ही धन्य हो गया। आज मेरा तप, ज्ञान और सभी कार्य सफल हो गए हैं। भगवन्! आप मुझे अपना सेवक समझें और मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूं? मुझे बताइए कि मेरे योग्य क्या सेवा है?

गिरिराज हिमालय के ये वचन सुनकर देवतागण प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे हिमालय! हे गिरिराज! देवी जगदंबा उमा ही प्रजापति दक्ष के यहां उनकी कन्या सती के रूप में प्रकट हुईं। घोर तपस्या करने के बाद उन्होंने शिवजी को पति रूप में प्राप्त किया, परंतु अपने पिता दक्ष के यज्ञ में वे अपने पति का अपमान सह न सकीं और उन्होंने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर दिया। यह सारी कथा तो आप भी जानते ही हैं। अब देवी जगदंबा पुनः धरती पर अवतरित होकर शिवजी की अर्द्धांगिनी बनना चाहती हैं। हे हिमालय! हम सभी यह चाहते हैं कि देवी सती पुनः आपके घर में अवतरित हों।

श्रीविष्णु जी की यह बात सुनकर हिमालय बहुत प्रसन्न हुए और आदरपूर्वक बोले—भगवन्! यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि देवी मेरे घर-आंगन को पवित्र करने के लिए मेरी पुत्री के रूप में प्रकट होंगी। तब हिमालय अपनी पत्नी के साथ और देवताओं को लेकर देवी जगदंबा की शरण में गए। उन्होंने देवी का स्मरण किया और श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—हे जगदंबे! हे उमे! हे शिवलोक में निवास करने वाली देवी। हे दुर्गे! हे महेश्वरी! हम सब आपको भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं। आप परम कल्याणकारी हैं। आप पावन और शांतिस्वरूप आदिशक्ति हैं। आप ही परम ज्ञानमयी शिवप्रिया जगदंबा हैं। आप

इस संसार में हर जगह व्याप्त हैं। सूर्य की तेजस्वी किरण आप ही हैं। आप ही अपने तेज से इस संसार को प्रकाशित करती हैं। आप ही जगत का पालन करती हैं। आप ही गायत्री, सावित्री और सरस्वती हैं। आप धर्मस्वरूपा और वेदों की ज्ञाता हैं। आप ही प्यास और आप ही तृप्ति हैं। आपकी पुण्यभक्ति भक्तों को निर्मल आनंद प्रदान करती है। आप ही पुण्यात्माओं के घर में लक्ष्मी के रूप में और पापियों के घर में दरिद्रता और निर्धनता बनकर निवास करती हैं। आपके दर्शनों से शांति प्राप्त होती है। आप ही प्राणियों का पोषण करती हैं तथा पंचभूतों के सारतत्व से तत्वस्वरूपा हैं। आप ही नीति हैं और सामवेद की गीति हैं। आप ही ऋग्वेद और अथर्वेद की गति हैं। आप ही मनुष्यों के नाक, कान, आंख, मुंह और हृदय में विराजमान होकर उनके घर में सुखों का विस्तार करती हैं। हे देवी जगदंबा! इस संपूर्ण जगत के कल्याण एवं पालन के लिए हमारी पूजा स्वीकार करके आप हम पर प्रसन्न हों।

इस प्रकार जगज्जननी सती-साध्वी देवी जगदंबा उमा की अनेकों बार स्तुति करके सभी देवता उनके साक्षात दर्शनों के लिए दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

चौथा अध्याय

देवी जगदंबा के दिव्य स्वरूप का दर्शन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! देवताओं के द्वारा की गई स्तुति से प्रसन्न होकर दुखों का नाश करने वाली जगदंबा देवी दुर्गा उनके सामने प्रकट हो गईं। वे अपने दिव्य रत्नजड़ित रथ पर बैठी हुई थीं। उनका मुख करोड़ों सूर्य के तेज के समान चमक रहा था। उनका गौर वर्ण दूध के समान उज्ज्वल था। उनका रूप अतुल्य था। रूप में उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती थी। वे सभी गुणों से युक्त थीं। दुष्टों का संहार करने के कारण वे ही चण्डी कहलाती हैं। वे अपने भक्तों के सभी दुखों और पीड़ाओं का निवारण करती हैं। देवी जगदंबा पूरे संसार की माता हैं। वे ही प्रलयकाल में समस्त दुष्टों को उनके बंधु-बांधवों सहित घोर निद्रा में सुला देती हैं। वही देवी उमा इस संसार का उद्धार करती हैं। उनके मुखमण्डल का तेज अद्‌भुत है। इस तेज के कारण उनकी ओर देख पाना भी संभव नहीं है। तब उनके अमृत दर्शनों की इच्छा लेकर श्रीहरि सहित सभी ने स्तुति की। तब उनके अमृतमय स्वरूप को देखा।

उनके अद्‌भुत स्वरूप के दर्शनों से सभी देवता आनंदित होकर बोले—हे महादेवी! हे जगदंबा! हम आपके दास हैं। आपकी शरण में हम बहुत आशा से आए हैं। कृपा करके हमारे आने के उद्‌देश्य को समझकर हमारे मनोरथ को पूर्ण कीजिए। हे देवी! पहले आप प्रजापति दक्ष की कन्या के रूप में प्रकट होकर रुद्रदेव की पत्नी बनीं और ब्रह्माजी व अन्य देवताओं के दुखों को दूर किया। अपने पिता के यज्ञ में अपने पति का अपमान देखकर स्वेच्छा से अपने शरीर का त्याग कर दिया। इससे रुद्रदेव बड़े दुखी हैं। वे अत्यंत शोकाकुल हो गए हैं। साथ ही आपके यहां चले आने से देवताओं की जो इच्छा थी वह भी अधूरी रह गई है। इसलिए हे जगदंबिके! आप पृथ्वीलोक पर पुनः अवतार लेकर रुद्रदेव को पति रूप में पाइए ताकि इस लोक का कल्याण हो सके और सनत्कुमार मुनि का कथन भी पूर्ण हो सके। हे भगवती! आप हम सब पर ऐसी ही कृपा करें ताकि हम सभी प्रसन्न हो जाएं तथा महादेव जी भी पुनः सुखी हो जाएं, क्योंकि आपसे वियोग होने के कारण वे अत्यंत दुखी हैं। कृपा करके हमारे सभी कष्टों और दुखों को दूर करें।

हे नारद! ऐसा कहकर सभी देवता पुनः भगवती की आराधना करने लगे। तत्पश्चात हाथ जोड़कर चुपचाप खड़े हो गए। तब उनकी अनन्य स्तुति से देवी उमा को बहुत प्रसन्नता हुई। तब देवी शिवजी का स्मरण करते हुए बोलीं—हे हरे! हे ब्रह्माजी! तथा समस्त देवताओ और ऋषि-मुनियो! मैं तुम्हारी आराधना से बहुत प्रसन्न हूं। अब तुम सभी अपने-अपने निवास स्थानों पर जाओ और सुखपूर्वक वहां पर निवास करो। मैं निश्चय ही अवतार लेकर हिमालय-मैना की पुत्री के रूप में प्रकट होऊंगी, क्योंकि मैं अच्छे से जानती हूं कि जब से मैंने दक्ष के यज्ञ की अग्नि में अपना शरीर त्यागा है तब से मेरे पति त्रिलोकीनाथ महादेव जी भी निरंतर कालाग्नि में जल रहे हैं। उन्हें हर समय मेरी ही चिंता रहती है। वे हर समय यह सोचते हैं कि

उनके क्रोध के कारण ही मैं उनका अपमान देखकर वापिस नहीं आई और मैंने वहीं अपना शरीर त्याग दिया। यही कारण है कि उन्होंने अलौकिक वेश धारण कर लिया है और सदैव योग में ही लीन रहते हैं। अपनी प्राणप्रिया का वियोग वे सहन नहीं कर सके हैं। इसलिए उनकी भी यही इच्छा है कि मैं पुनः पृथ्वी पर अवतीर्ण हो जाऊं ताकि हमारा मिलन पुनः संभव हो सके। महादेव जी की इच्छा मेरे लिए सदैव सर्वोपरि है। अतः मैं अवश्य ही हिमालय-मैना की पुत्री के रूप में अवतार लूंगी।

इस प्रकार देवताओं को बहुत आश्वासन देकर देवी जगदंबा वहां से अंतर्धान हो गईं। तत्पश्चात श्रीहरि व अन्य देवताओं का मन प्रसन्नता और हर्ष से खिल उठा। वे उस स्थान को, जहां देवी ने दर्शन दिए थे, अनेकों बार नमस्कार कर अपने-अपने धाम को चले गए।

पांचवां अध्याय

मैना-हिमालय का तप व वरदान प्राप्ति

नारद जी ने पूछा—हे विधाता! देवी के अंतर्धान होने के बाद जब सभी देवता अपने-अपने धाम को चले गए तब आगे क्या हुआ? हे भगवन्! कृपा करके मुझे आगे की कथा भी सुनाइए।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! जब देवी जगदंबा वहां सभी देवताओं और हिमालय को आश्वासन देकर अपने लोक को चली गईं, तब श्रीहरि विष्णु ने मैना और हिमालय को देवी जगदंबा को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करने के लिए कहा। साथ ही देवी का भक्तिपूर्वक चिंतन करने और उनकी भक्तिभावना से तपस्या करने का उपदेश देकर सभी देवताओं सहित विष्णुजी भी अपने बैकुण्ठ लोक को चले गए। तत्पश्चात मैना और हिमालय दोनों सदैव देवी जगदंबा के अमृतमयी और कल्याणमयी स्वरूप का चिंतन करते और उनकी आराधना में ही मग्न रहते थे। मैना देवी की कृपादृष्टि पाने के लिए शिवजी सहित उनकी आराधना करती थीं। वे ब्राह्मणों को दान देतीं और उन्हें भोजन कराती थीं। मन में देवी दुर्गा को पुत्री रूप में पाने की इच्छा लिए हिमालय और मैना ने चैत्रमास से आरंभ कर सत्ताईस वर्षों तक देवी की पूजा अर्चना नियमित रूप से की। मैना अष्टमी तिथि व्रत रखकर नवमी को लड्डू, खीर, पीठी, शृंगार और विभिन्न प्रकार के पुष्पों से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास करतीं। उन्होंने गंगा के किनारे दुर्गा देवी की मूर्ति बना रखी थी। वे सदैव उसकी नियम से पूजा करती थीं। मैना देवी की निराहार रहकर पूजा करतीं। कभी जल पीकर, कभी हवा से ही व्रत को पूरा करतीं। सत्ताईस वर्षों तक नियमपूर्वक भक्तिभावना से जगदंबा दुर्गा की आराधना करने के पश्चात वे प्रसन्न हो गईं। तब देवी जगदंबा ने मैना और हिमालय को अपने साक्षात दर्शन दिए।

देवी जगदंबा बोलीं—हे गिरिराज हिमालय और महारानी मैना! मैं तुम दोनों की तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। इसलिए जो तुम्हारी इच्छा हो वह वरदान मांग सकते हो। हे हिमालय प्रिया मैना! तुम्हारी तपस्या और व्रत से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। इसलिए मैं तुम्हें मनोवांछित फल प्रदान करूंगी। सो, जो इच्छा हो कहो। तब मैना देवी दुर्गा को भक्तिभावना से प्रणाम करके बोलीं—देवी जगदंबिके! आपके प्रत्यक्ष दर्शन करके मैं धन्य हो गई। हे देवी। मैं आपके स्वरूप को प्रणाम करती हूं। हे माते! हम पर प्रसन्न होइए।

मैना के वचनों को सुनकर देवी दुर्गा को बहुत संतोष हुआ और उन्होंने मैना को गले से लगा लिया। देवी के गले लगते ही मैना को ज्ञान की प्राप्ति हो गई। तब वे देवी जगदंबा से कहने लगीं—इस जगत को धारण करने वाली! लोकों का पालन करने वाली! तथा मनोवांछित फलों को देने वाली देवी! मैं आपको प्रणाम करती हूं। आप ही इस जगत में आनंद का संचार करती हैं। आप ही माया हैं। आप ही योगनिद्रा हैं। आप अपने भक्तों के

शोक और दुखों को दूर करती हैं। आप ही अपने भक्तों को अज्ञानता के अंधेरों से निकालकर उन्हें ज्ञान रूपी तेज प्रदान करती हैं। भला मैं तुच्छ स्त्री कैसे आपकी महिमा का वर्णन कर सकती हूं। आप आकार रहित तथा अदृश्य हैं। आप शाश्वत शक्ति हैं। आप परम योगिनी हैं और इच्छानुसार नारी रूप में धरती पर अवतार लेती हैं। आप ही पृथ्वीलोक पर चारों ओर फैली प्रकृति हैं। ब्रह्म के स्वरूप को अपने वश में करने वाली विद्या आप ही हैं। हे जगदंबा माता! आप मुझ पर प्रसन्न होइए। आप ही यज्ञ में अग्नि के रूप में प्रज्वलित होती हैं। माता! आप ही सूर्य की किरणों को प्रकाश प्रदान करने वाली शक्ति हैं। चंद्रमा की शीतलता भी आप ही हैं। ऐसी महान और मंगलकारी देवी जगदंबा का मैं स्तवन करती हूं। माते! मैं आपकी वंदना करती हूं। संपूर्ण जगत का पालन करने वाली और जगत का कल्याण करने वाली शक्ति भी आप ही हैं। आप ही श्रीहरि की माया हैं। हे दुर्गा मां! आप ही इच्छानुसार रूप धारण करके इस संसार की रचना, पालन और संहार करती हैं। हे देवी! मैं आपको नमस्कार करती हूं। कृपा करके हम पर प्रसन्न होइए।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैना द्वारा भक्तिभाव से की गई स्तुति को सुनकर देवी बोलीं कि मैना तुम अपना मनोवांछित वर मांग लो। तुम्हारे द्वारा मांगी गई वस्तु मैं अवश्य प्रदान करूंगी। मेरे लिए कोई भी वस्तु अदेय नहीं है।

देवी जगदंबा के इन वचनों को सुनकर मैना बहुत खुश हुईं और बोलीं—हे शिवे! आपकी जय हो। हे जगदंबिके! आप ही ज्ञान प्रदान करती हैं। आप ही सबको मनोवांछित वस्तु प्रदान करती हैं। हे देवी! मैं आपसे वरदान मांगती हूं। हे माते! आप मुझे सौ पुत्र प्रदान करें जो बलशाली और पराक्रमी हों, जिनकी आयु लंबी हो। तत्पश्चात मेरी एक पुत्री हो, जो साक्षात आपका ही रूप हो। हे देवी! आप सारे संसार में पूजित हैं तथा सभी गुणों से संपन्न और आनंद देने वाली हैं। हे माता! आप ही सभी कार्यों की सिद्धि करने वाली हैं। हे भगवती। देवताओं के कार्यों को पूरा करने के लिए आप रुद्रदेव की पत्नी होइए और इस संसार को अपनी कृपा से कृतार्थ करने के लिए मेरी पुत्री बनकर जन्म लीजिए।

मैना के कहे वचनों को सुनकर देवी भगवती मुस्कुराने लगीं। तब सबके मनोरथों को पूर्ण करने वाली देवी मुस्कुराते हुए बोलीं—मैना! मैं तुम्हारी भक्तिभाव से की गई तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हारे द्वारा मांगे गए वरदानों को अवश्य ही पूर्ण करूंगी। सर्वप्रथम मैं तुम्हें सौ बलशाली पुत्रों की माता होने का वर प्रदान करती हूं। उन सौ पुत्रों में से सबसे पहले जन्म लेने वाला पुत्र सबसे अधिक शक्तिशाली और बलशाली होगा। तत्पश्चात मैं स्वयं तुम्हारी पुत्री के रूप में तुम्हारे गर्भ से जन्म लूंगी। तब मैं देवताओं के हित का कल्याण करूंगी।

ऐसा कहकर जगत जननी, परमेश्वरी देवी जगदंबा वहां से अंतर्धान हो गईं। तब महेश्वरी से अपने द्वारा मांगा गया अभीष्ट फल पाकर देवी मैना खुशी से झूम उठीं। तत्पश्चात वे अपने घर चली गईं। घर जाकर मैना ने अपने पति हिमालय को भी अपनी तपस्या की पूर्णता और वरदानों की प्राप्ति के बारे में बताया। जिसे सुनकर हिमालय बहुत प्रसन्न हुए। तब वे दोनों अपने भाग्य की सराहना करने लगे। तत्पश्चात, कुछ समय बाद मैना को गर्भ ठहरा।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होता गया। समय पूर्ण होने पर मैना ने एक पुत्र को जन्म दिया

जिसका नाम मैनाक रखा गया। पुत्र प्राप्ति की सूचना मिलने पर हिमालय हर्ष से उद्वेलित हो गए और उन्होंने अपने नगर में बहुत बड़ा उत्सव किया। इसके बाद हिमालय के यहां निन्यानवे और पुत्रों ने जन्म लिया। सौ पुत्रों में मैनाक सबसे बड़ा और बलशाली था। उसका विवाह नाग कन्याओं से हुआ। जब इंद्र देव पर्वतों पर क्रोध करके उनके पंखों को काटने लगे तो मैनाक समुद्र की शरण में चला गया। उस समय पवनदेव ने इस कार्य में मैनाक की सहायता की। वहां उसकी समुद्र से मित्रता हो गई। मैनाक पर्वत ही अपने बाद प्रकटे सभी पर्वतों में पर्वतराज कहलाता है।

छठा अध्याय

पार्वती जन्म

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! तत्पश्चात हिमालय और मैना देवी भगवती और शिवजी के चिंतन में लीन रहने लगे। उसके बाद जगत की माता जगदंबिका अपना कथन सत्य करने के लिए अपने पूर्ण अंशों द्वारा पर्वतराज हिमालय के हृदय में आकर विराजमान हुईं। उस समय उनके शरीर में अद्‌भुत एवं सुंदर प्रभा उतर आई। वे तेज से प्रकाशित हो गए और आनंदमग्न हो देवी का ध्यान करने लगे। तब उत्तम समय में गिरिराज हिमालय ने अपनी प्रिया मैना के गर्भ में उस अंश को स्थापित कर दिया। मैना ने हिमालय के हृदय में विराजमान देवी के अंश से गर्भ धारण किया। देवी जगदंबा के गर्भ में आने से मैना की शोभा व कांति निखर आई और वे तेज से संपन्न हो गईं। तब उन्हें देखकर हिमालय बहुत प्रसन्न रहने लगे। जब देवताओं सहित श्रीहरि और मुझे इस बात का ज्ञान हुआ तो हमने देवी जगदंबिका की बहुत स्तुति की और सभी अपने-अपने धाम को चले गए। धीरे-धीरे समय बीतता गया। दस माह पूरे हो जाने के पश्चात देवी शिवा ने मैना के गर्भ से जन्म ले लिया। जन्म लेने के पश्चात देवी शिवा ने मैना को अपने साक्षात रूप के दर्शन कराए। देवी के जन्म दिवस वाले दिन बसंत ऋतु के चैत्र माह की नवमी तिथि थी। उस समय आधी रात को मृगशिरा नक्षत्र था। देवी के जन्म से सारे संसार में प्रसन्नता छा गई। मंद-मंद हवा चलने लगी। सारा वातावरण सुगंधित हो गया। आकाश में बादल उमड़ आए और हल्की-हल्की फुहारों के साथ पुष्प वर्षा होने लगी। तब मां जगदंबा के दर्शन हेतु विष्णुजी और मेरे सहित सभी देवी-देवता गिरिराज हिमालय के घर पहुंचे। देवी के दर्शन कर सबने दिव्यरूपा महामाया मंगलमयी जगदंबिका माता की स्तुति की। तत्पश्चात सभी देवता अपने-अपने धाम को चले गए।

स्वयं माता जगदंबा को पुत्री रूप में पाकर हिमालय और मैना धन्य हो गए। वे अत्यंत आनंद का अनुभव करने लगे। देवी के दिव्य रूप के दर्शन से मैना को उत्तम ज्ञान की प्राप्ति हो गई। तब मैना देवी से बोली—हे जगदंबा! हे शिवा! हे महेश्वरी! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, जो अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन मुझे दिए। हे माता! आप तो परम शक्ति हैं। आप तीनों लोकों की जननी हैं और देवताओं द्वारा आराध्य हैं। हे देवी! आप मेरी पुत्री रूप में आकर शिशु रूप धारण कर लीजिए।

मैना की बात सुनकर देवी मुस्कुराते हुए बोलीं—मैना! तुमने मेरी बड़ी सेवा की है। तुम्हारी भक्ति भावना से प्रसन्न होकर ही मैंने तुम्हें वर मांगने के लिए कहा था और तुमने मुझे अपनी पुत्री बनाने का वर मांग लिया था। तब मैंने 'तथास्तु' कहकर तुम्हें अभीष्ट फल प्रदान किया था। तत्पश्चात मैं अपने धाम चली गई थी। उस वरदान के अनुसार आज मैंने तुम्हारे गर्भ से जन्म ले लिया है। तुम्हारी इच्छा का सम्मान करते हुए मैंने तुम्हें अपने दिव्य रूप के दर्शन दिए। अब आप दोनों दंपति मुझे अपनी पुत्री मानकर मेरा लालन-पालन करो और मुझसे

स्नेह रखो। मैं पृथ्वी पर अदभुत लीलाएं करूंगी तथा देवताओं के कार्यों को पूरा करूंगी। बड़ी होकर मैं भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त कर उनकी पत्नी बनकर इस जगत का उद्धार करूंगी।

ऐसा कहकर जगतमाता देवी जगदंबा चुप हो गईं। तब देखते ही देखते देवी भगवती नन्हे शिशु के रूप में परिवर्तित हो गईं।

सातवां अध्याय

पार्वती का नामकरण

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! मैना के सामने जब देवी जगदंबिका ने शिशु रूप धारण किया तो वे सामान्य बच्चे की भांति रोने लगीं। उनका रोना सुनकर सभी स्त्रियां और पुरुष, जो उस समय वहां उपस्थित थे, प्रसन्न हो गए। उस श्यामकांति वाली नीलकमल के समान शोभित उस परम तेजस्वी सुंदर कन्या को देखकर गिरिराज हिमालय बहुत प्रसन्न हुए। तब शुभ मुहूर्त में हिमालय ने अपनी पुत्री का नाम रखने के बारे में सोचा। उस समय मैना और हिमालय बहुत प्रसन्न थे। तब देवी के गुणों और सुशीलता को देखकर उनका नाम 'पार्वती' रखा गया। चंद्रमा की कला की तरह हिमालय पुत्री धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। उसके अंग-प्रत्यंग चंद्रमा की कला एवं बिंब के समान अत्यंत शोभायमान होने लगे। गिरिजा अपनी सहेलियों के साथ खेलती थीं। पार्वती अपनी सखियों के साथ कभी गंगा की रेत से घर बनातीं तो कभी कंदुक क्रीड़ा करतीं। खेलती-खेलती वे बड़ी होने लगीं। जब वे शिक्षा के योग्य हो गईं, तो आचार्यों ने उन्हें विभिन्न धर्मशास्त्रों का उपदेश देना प्रारंभ किया। उससे उन्हें अपने पूर्व जन्म की सभी बातें स्मरण हो आईं। मुने! इस प्रकार मैंने शिवा की लीला का वर्णन तुमसे किया है।

एक समय की बात है तुम शिवलीला से प्रेरित होकर हिमालय के घर गए। हे नारद! तुम शिवतत्व के ज्ञाता हो और उनकी विभिन्न लीलाओं को समझते हो। तुम्हें आया हुआ देखकर हिमालय-मैना ने तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार किया तथा खूब आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती को बुलाया और उससे तुम्हारे चरणों में प्रणाम कराया। फिर स्वयं भी बार-बार नमस्कार करने लगे और बोले—हे मुनियों में श्रेष्ठ नारद। हे ब्रह्मा पुत्र नारद! आप परम ज्ञानी हैं। आप सदैव सबका उपकार करते हैं। आप भूत, भविष्य और वर्तमान जानते हैं। आप परोपकारी और दयालु हैं। कृपया मेरी कन्या का भाग्य बताएं और मुझे यह भी बताएं कि मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवती पत्नी होगी?

नारद! हिमालय के ऐसे प्रश्न सुनकर तुमने पार्वती का हाथ देखा और उसके मुख मंडल को देखकर कहना शुरू किया। हे गिरिराज और मैना! आपकी यह पुत्री चंद्रमा की कला की तरह शोभित हो रही है। यह समस्त शुभ लक्षणों से युक्त है। इसका भाग्य बड़ा प्रबल है। यह अपने पति के लिए सुखदायिनी होगी। साथ ही अपने माता-पिता के यश और कीर्ति को बढ़ाएगी। यह परम साध्वी और संसार की स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ होगी। इसका पति योगी, नग्न, निर्गुण, कामवासना से रहित, माता-पिता हीन, अभिमान से रहित, पवित्र एवं साधु वेषधारी होगा। इस बात को सुनकर मैना और हिमालय दोनों दुखी हो गए। पार्वती देवी सोचने लगीं कि मुनि नारद की बात हमेशा सत्य होती है। जो लक्षण नारद जी ने बताए हैं वे सभी तो शिवजी में विद्यमान हैं। भगवान शिव को अपना भावी पति मानकर पार्वती मन ही मन हर्ष से

खिल उठीं और शिवजी के चरणों का चिंतन करने लगीं। तब हिमालय बड़े दुखी स्वर से बोले कि हे नारद। अपनी पुत्री के भावी पति के विषय में जानकर मैं बहुत दुखी हूं। आप कृपया मेरी पुत्री को बचाने का कोई मार्ग सुझाएं।

गिरिराज हिमालय के ये वचन सुनकर हे नारद तुमने कहा—गिरिराज, मेरी कही बात सर्वथा सच होगी क्योंकि हाथ की रेखाएं ब्रह्माजी द्वारा लिखीं जाती हैं और कभी भी झूठ नहीं हो सकतीं। इस रेखा का फल तो अवश्य मिलेगा किंतु ऐसा होने पर भी पार्वती सुखपूर्वक रहे इस हेतु पार्वती का विवाह भगवान शिव से कर दें। भगवान शिव में ये सभी गुण हैं। महादेव जी में ये अशुभ लक्षण भी शुभ हो जाते हैं। इसलिए गिरिराज, तुम बिना विचार किए अपनी कन्या का विवाह भगवान शिव से कर दो। वे सबके ईश्वर हैं तथा निर्विकार, सामर्थ्यवान और अविनाशी हैं किंतु ऐसा होना इतना सरल नहीं है। पार्वती-शिव विवाह तभी संभव हो सकता है, जब किसी तरह भगवान शिव प्रसन्न हो जाएं। भगवान शंकर को प्रसन्न करने और वश में करने का सबसे सरल और उत्तम साधन है यदि आपकी पुत्री भगवान शिव की अनन्य भक्ति भाव से तपस्या करे तो सब ठीक हो जाएगा। पार्वती भगवान शिव को पति के रूप में प्राप्त करेंगी। वे सदैव भगवान शिव के अनुसार ही कार्य करेंगी क्योंकि वे उत्तम व्रत का पालन करने वाली महासाध्वी हैं। वे अपने माता-पिता के सुख को बढ़ाने वाली हैं।

हे गिरिराज हिमालय! भगवान शिव और शिवा का प्रेम तो अलौकिक है। ऐसा प्रेम न तो किसी का हुआ है और ना ही होगा। भगवान शिव इनके अलावा और किसी स्त्री को अपनी पत्नी नहीं बनाएंगे। हिमालय! शिव-शिवा को एकाकार होकर देवताओं की सिद्धि के लिए अनेक कार्य करने हैं। आपकी पुत्री को पत्नी रूप में प्राप्त करके ही भगवान अर्द्धनारीश्वर होंगे। आपकी पुत्री पार्वती भगवान शिव की तपस्या से उन्हें संतुष्ट कर उनकी अर्द्धांगिनी बन जाएंगी।

मुनि नारद! तुम्हारे इन वचनों को सुनकर हिमालय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! भगवान शिव सभी प्रकार की इच्छाओं का त्याग करके अपने मन को संयम में रखकर नित्य तपस्या करते हैं। उनका ध्यान सदैव परमब्रह्म में लगा रहता है। भला वे अपने मन को कैसे योग से हटाकर मोह-माया के बंधनों में फंसने हेतु विवाह करेंगे। जो भगवान शिव अविनाशी, प्रकृति से परे, निर्गुण, निराकार और दीपक की लौ की तरह प्रकाशित हैं और सदैव परमब्रह्म के प्रकाशपुंज को तलाशते हैं, वे कैसे मेरी पुत्री से विवाह करने पर राजी होंगे। मेरी जानकारी के अनुसार भगवान शिव ने बहुत पहले अपनी पत्नी सती के सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे उनके अलावा किसी और को पत्नी रूप में कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। अब जब सती ने अपने शरीर को त्याग दिया है, तो वे किसी और स्त्री को कैसे ग्रहण करेंगे? यह सुनकर आपने कहा, गिरिराज! आपको इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। तुम्हारी कन्या ही पूर्व जन्म में दक्ष की पुत्री सती थी और शिवजी की प्राणप्रिया थी। अपने पिता दक्ष द्वारा अपने पति का अनादर देखकर लज्जित होकर सती ने योगाग्नि में अपने को भस्म कर दिया था। अब वही देवी जगदंबा, जो पहले सती के रूप में अवतरित हुई थीं, अब पार्वती के रूप में तुम्हारी पुत्री

बनी हैं। इसलिए तुम्हें पार्वती के विषय में चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। देवी पार्वती ही भगवान शिव की पत्नी होंगी।

तुम्हारी बातें सुनकर गिरिराज हिमालय और उनकी पत्नी मैना व उनके पुत्रों को बहुत संतोष हुआ और उनके सभी संदेह और शंकाएं पूर्णतः दूर हो गए। पास ही बैठी पार्वती ने भी अपने पूर्व जन्म की कथा के विषय में सुना। भगवान शिव को अपना पति जानकर देवी पार्वती लज्जा से सिर झुकाकर बैठ गईं। मैना और हिमालय ने उनके सिर पर हाथ फेरकर उन्हें अनेक आशीर्वाद दिए। तत्पश्चात पार्वती को तपस्या के विषय में बताकर नारद आप वहां से अंतर्धान हो गए। आपके जाने के बाद मैना और हिमालय बहुत प्रसन्न हुए।

आठवां अध्याय

मैना और हिमालय की बातचीत

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तुम्हारे स्वर्गलोक जाने के पश्चात कुछ समय तक सबकुछ ऐसे ही चलता रहा। एक दिन मैना अपने पति हिमालय के पास गई और उन्हें प्रणाम कर उनसे कहने लगी—

हे प्राणनाथ! उस दिन जब देवर्षि नारद हमारे यहां पधारे थे और पार्वती का हाथ देखकर उसके विषय में अनेक बातें बता गए थे, तब मैंने उनकी बातों पर ध्यान दिया था। अब पार्वती बड़ी हो रही है। मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप उसके विवाह के लिए सुयोग्य व सुंदर वर की खोज शुरू कर दें। जिसके साथ हमारी पुत्री पार्वती सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सके। वह शुभ लक्षणों वाला तथा कुलीन होना चाहिए क्योंकि मुझे अपनी पुत्री अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी है। मैं सिर्फ पुत्री का सुख चाहती हूं।

यह कहकर मैना की आंखों में आंसू आ गए और वे अपने पति के चरणों में गिर पड़ीं। तत्पश्चात हिमालय ने पत्नी मैना को प्रेमपूर्वक उठाया और उन्हें समझाने लगे। वे बोले—हे देवी! तुम व्यर्थ की चिंता त्याग दो। मुनि नारद की बात कभी झूठ नहीं हो सकती। यदि तुम पार्वती को सुखी देखना चाहती हो तो उसे भगवान शिव की तपस्या के लिए प्रेरित करो। यदि शिवजी प्रसन्न हो गए तो वे स्वयं ही पार्वती का पाणिग्रहण कर लेंगे। तब सबकुछ शुभ ही होगा। सभी अनिष्ट और अशुभ लक्षणों का नाश होगा। भगवान शंकर सदा मंगलकारी हैं। इसलिए तुम पार्वती को शिवजी की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए तपस्या करने की शिक्षा दो।

हिमालय की बात सुनकर मैना प्रसन्नतापूर्वक अपनी पुत्री पार्वती को तपस्या के लिए कहने उनके पास चली गई।

नवां अध्याय

पार्वती का स्वप्न

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! जब मैना पार्वती के पास पहुंचीं तो उन्हें देखकर सोचने लगीं कि मेरी पुत्री तो कोमल और नाजुक है। यह सदैव राजसी ठाठ-बाट में रही है। दुख और कष्टों को सहना तो दूर की बात है इनके बारे में भी यह सर्वथा अनजान है। पार्वती को उन्होंने बड़े ही लाड़ और प्यार से पाला है। तब कैसे मैं अपनी प्रिय पुत्री को कठोर तपस्या करने के लिए प्रेरित कर सकती हूं? यही सब सोचकर मैना अपनी पुत्री से तपस्या के लिए कुछ नहीं बोल सकीं। तब अपनी माता के चिंतित चेहरे को देखकर साक्षात जगदंबा का अवतार धारण करने वाली देवी पार्वती यह जान गईं कि उनकी माताजी क्या कहना चाहती हैं? तब सबकुछ जानने वाली देवी भगवती का साक्षात स्वरूप पार्वती बोलीं—हे माता! आप यहां कब आईं? आप बैठिए। माता, पिछली रात्रि के ब्रह्ममुहूर्त में मैंने एक स्वप्न देखा है। उसके विषय में मैं आपको बताती हूं। मेरे सपने में एक दयालु और तपस्वी ब्राह्मण आए। जब मैंने उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया तो वे मुस्कुराते हुए बोले कि तुम अवश्य ही भगवान शिव शंकर की प्राणवल्लभा बनोगी। इसलिए उन्हें प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रेमपूर्वक तपस्या करो।

यह सुनकर मैना ने अपनी पुत्री के सिर पर प्रेम से हाथ फेरा और अपने पति हिमालय को वहां बुलाया। हिमालय के आने पर मैना ने पार्वती के सपने के बारे में उनको बताया। तब उनके मुख से पुत्री के सपने के विषय में जानकर हिमालय बहुत प्रसन्न हुए। तब वे अपनी पत्नी से बोले—प्रिय मैना! मैंने भी पिछली रात को एक सपना देखा था। मैंने अपने सपने में एक बड़े उत्तम तपस्वी को देखा। वे नारद मुनि द्वारा बताए गए सभी लक्षणों से युक्त थे। वे उत्तम तपस्वी मेरे नगर में तपस्या करने के लिए आए थे। उन्हें देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैं अपनी पुत्री पार्वती को साथ लेकर उनके दर्शनों के लिए उनके पास पहुंचा। तब मुझे ज्ञात हुआ कि वे नारद जी के बताए हुए वर भगवान शिव ही हैं। तब मैंने पार्वती को उनकी सेवा करने का उपदेश दिया परंतु उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। तभी वहां सांख्य और वेदांत पर विवाद छिड़ गया। तत्पश्चात उनकी आज्ञा पाकर पार्वती वहीं रहकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगीं। हे प्रिये! यही मेरा सपना था जिसे देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई। मैं सोचता हूं कि हमें कुछ समय तक इस सपने के सच होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। ऐसा कहकर हिमालय और मैना उस उत्तम सपने के सच होने की प्रतीक्षा करने लगे।

दसवां अध्याय

भौम-जन्म

ब्रह्माजी बोले—नारद! भगवान शिव का यश परम पावन, मंगलकारी, भक्तिवर्द्धक और उत्तम है। दक्ष-यज्ञ से वे अपने निवास कैलाश पर्वत पर वापस आ गए थे। वहां आकर भगवान शिव अपनी पत्नी सती के वियोग से बहुत दुखी थे। उनका मन देवी सती का स्मरण कर रहा था और वे उन्हें याद करके व्याकुल हो रहे थे। तब उन्होंने अपने सभी गणों को वहां पर बुलाया और उनसे देवी सती के गुणों और उनकी सुशीलता का वर्णन करने लगे। फिर गृहस्थ धर्म को त्यागकर वे कुछ समय तक सभी लोकों में सती को खोजते हुए घूमते रहे। इसके बाद वापस कैलाश पर्वत पर आ गए क्योंकि उन्हें कहीं भी सती का दर्शन नहीं हो सका था। तब अपने मन को एकाग्र करके वे समाधि में बैठ गए। भगवान शिव इसी प्रकार बहुत लंबे समय तक समाधि लगाकर बैठे रहे। असंख्य वर्ष बीत गए। समाधि के परिश्रम के कारण उनके मस्तक से पसीने की बूंद पृथ्वी पर गिरी और वह बूंद एक शिशु में परिवर्तित हो गई। उस बालक का रंग लाल था। उसकी चार भुजाएं थीं। उसका रूप मनोहर था। वह बालक दिव्य तेज से संपन्न अनोखी शोभा पा रहा था। वह प्रकट होते ही रोने लगा। उसे देखकर संसारी मनुष्यों की भांति शिवजी उसके पालन-पोषण का विचार करके व्याकुल हो गए। उसी समय डरी हुई एक सुंदर स्त्री वहां आई। उसने उस बालक को अपनी गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगीं। तब उन्होंने उसे दूध पिलाकर उस बालक के रोने को शांत किया। फिर वह उसे खिलाने लगी। वह स्त्री और कोई नहीं स्वयं पृथ्वी माता थीं।

संसार की सृष्टि करने वाले, सबकुछ जानने वाले महादेव जी यह देखकर हंसने लगे। वह पृथ्वी को पहचान चुके थे। वे पृथ्वी से बोले—हे धरिणी! तुम इस पुत्र का प्रेमपूर्वक पालन करो। यह शिशु मेरे पसीने की बूंद से प्रकट हुआ है। हे वसुधा! यद्यपि यह बालक मेरे पसीने से उत्पन्न हुआ है परंतु इस जगत में यह तुम्हारे ही पुत्र के रूप में जाना जाएगा। यह परम गुणवान और भूमि देने वाला होगा। यह मुझे भी सुख देने वाला होगा। हे देवी! तुम इसका धारण करो।

नारद! यह कहकर भगवान शिव चुप हो गए। उनका दुखी हृदय थोड़ा शांत हो गया था। उधर शिवजी की आज्ञा का पालन करते हुए पृथ्वी अपने पुत्र को साथ लेकर अपने निवास स्थान पर चली गईं। बड़ा होकर यह बालक ‘भौम’ नाम से प्रसिद्ध हुआ। युवा होने पर भौम काशी गया। वहां उसने बहुत लंबे समय तक भगवान शिव की सेवा-आराधना की। तब भगवान शंकर की कृपादृष्टि पाकर भूमि पुत्र भौम दिव्यलोक को चले गए।

ग्यारहवां अध्याय

भगवान शिव की गंगावतरण तीर्थ में तपस्या

ब्रह्माजी बोले—नारद! गिरिराज हिमालय की पुत्री पार्वती, जो साक्षात जगदंबा का अवतार थीं, जब आठ वर्ष की हो गईं तब भगवान शिव को उनके जन्म का समाचार मिला। तब उस अद्भुत बालिका को हृदय में रखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने अपने मन को एकाग्र कर तपस्या करने के विषय में सोचा। तत्पश्चात नंदी एवं कुछ और गणों को अपने साथ लेकर महादेव जी हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर गंगोत्री नामक तीर्थ पर चले गए। इसी स्थान पर पतित पावनी गंगा ब्रह्मलोक से गिर रही हैं। भगवान शिव ने उसी स्थान को तपस्या करने के लिए चुना। शिवजी अपने मन को एकाग्रचित्त कर आत्मभूत, ज्ञानमयी, नित्य ज्योतिर्मय चिदानंद स्वरूप परम ब्रह्म परमात्मा का चिंतन करने लगे। अपने स्वामी को ध्यान में मग्न पाकर नंदी एवं अन्य शिवगण भी समाधि लगाकर बैठ गए। कुछ गण शिवजी की सेवा करते तथा कुछ उस स्थान की सुरक्षा हेतु कार्य करते।

जब गिरिराज हिमालय को शिवजी के आगमन का यह शुभ समाचार प्राप्त हुआ तब वे प्रेमपूर्वक मन में आदर का भाव लिए अपने सेवकों सहित उस स्थान पर आए जहां वे तपस्या कर रहे थे। हिमालय ने दोनों हाथ जोड़कर रुद्रदेव को प्रणाम किया। तत्पश्चात उनकी भक्तिभाव से पूजा-आराधना करने लगे। हाथ जोड़कर हिमालय बोले—भगवन्! आप यहां पधारे, यह मेरा सौभाग्य है। प्रभु! आप भक्तवत्सल हैं। आज आपके साक्षात दर्शन पाकर मेरा जन्म सफल हो गया है। आप मुझे अपना सेवक समझें और मुझे अपनी सेवा करने की आज्ञा प्रदान करें। हे प्रभो। आपकी सेवा करके मेरा मन अत्यधिक आनंद का अनुभव करेगा।

गिरिराज हिमालय के वचन सुनकर महादेव जी ने अपनी आंखें खोलीं और वहां हिमालय और उनके सेवकों को खड़े देखा। उन्हें देखकर महादेव जी मुस्कुराते हुए बोले—हे गिरिराज! मैं तुम्हारे शिखर पर एकांत में तपस्या करने के लिए आया हूं। हिमालय तुम तपस्या के धाम हो, देवताओ, मुनियों और राक्षसों को भी तुम आश्रय प्रदान करते हो। गंगा, जो कि सबके पापों को धो देती है, तुम्हारे ऊपर से होकर ही निकलती है। इसलिए तुम सदा के लिए पवित्र हो गए हो। मैं इस परम पावन स्थल, जो कि गंगा का उद्गम स्थल है, पर तपस्या करने के लिए आया हूं। मैं यह चाहता हूं कि मेरी तपस्या बिना किसी विघ्न-बाधा के पूरी हो जाए। इसलिए तुम ऐसी व्यवस्था करो कि कोई भी मेरे निकट न आ सके। अब तुम अपने घर जाओ और इसका उचित प्रबंध करो।

ऐसा कहकर भगवान शिव चुप हो गए। तब हिमालय बोले—हे परमेश्वर! आप मेरे निवास के क्षेत्र में पधारे, यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। मैं आपका स्वागत करता हूं। भगवन् अनेकों मनुष्य आपकी अनन्य भाव से तपस्या और प्रार्थना करने पर भी आपके दर्शनों के

लिए तरसते हैं। ऐसे महादेव ने मुझ दीन को अपने अमृत दर्शनों से कृतार्थ किया है। भगवन्, आप यहां पर तपस्या के लिए पधारे हैं। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूं। आज मैं स्वयं को देवराज इंद्र से भी अधिक भाग्यशाली मानता हूं। आप यहां बिना किसी विघ्न-बाधा के एकाग्रचित्त हो तपस्या कर सकते हैं। यहां आपको किसी भी तरह की कोई परेशानी नहीं होगी, ऐसा मैं आपको विश्वास दिलाता हूं।

ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय अपने घर लौट गए। घर पहुंचकर उन्होंने अपनी पत्नी मैना को शिवजी से हुई सारी बातों का वृत्तांत कह सुनाया। तब उन्होंने अपने सेवकों को बुलाया और समझाते हुए कहने लगे कि आज से कोई भी गंगावतरण अर्थात गंगोत्री नामक स्थान पर नहीं जाएगा। वहां जाने वाले को मैं दंड दूंगा। इस प्रकार हिमालय ने अपने गणों को शिवजी की तपस्या के स्थान पर न जाने का आदेश दे दिया।

बारहवां अध्याय

पार्वती को सेवा में रखने के लिए हिमालय का शिव को मनाना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनि नारद! तत्पश्चात हिमालय अपनी पुत्री पार्वती को साथ लेकर शिवजी के पास गए। वहां जाकर उन्होंने योग साधना में डूबे त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया तथा इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—भगवन्, मेरी पुत्री पार्वती आपकी सेवा करने की बहुत उत्सुक है। इसलिए आपकी आराधना करने के लिए मैं इसे अपने साथ यहां लाया हूं। हे प्रभु! यह अपनी दो सखियों के साथ आपकी सेवा में रहेगी। आप मुझ पर कृपा करके इसे अपनी सेवा का अवसर प्रदान करिए। तब भगवान शिव ने उस परम सुंदरी हिमालय कन्या पार्वती को देखकर अपनी आखें बंद कर लीं और पुनः परमब्रह्म के स्वरूप का ध्यान करने में निमग्न हो गए। उस समय सर्वेश्वर एवं सर्वव्यापी शिवजी तपस्या करने लगे। यह देखकर हिमालय इस सोच में डूब गए कि भगवान शंकर उनकी तपस्या स्वीकार करेंगे या नहीं? तब एक बार पुनः हिमालय ने दोनों हाथ जोड़कर शिवजी के चरणों में प्रणाम किया और बोले—हे देवाधिदेव महादेव! हे भोलेनाथ! शिवशंकर! मैं दोनों हाथ जोड़े आपकी शरण में आया हूं। कृपया आंखें खोलकर मेरी ओर देखिए। भगवन्! आप सभी विपत्तियों को दूर करते हैं। हे भक्तवत्सल! मैं रोज अपनी पुत्री के साथ आपके दर्शनों के लिए यहां आऊंगा। कृपया मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए।

हिमालय के वचनों को सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने अपने नेत्र खोल दिए और बोले—हे गिरिराज हिमालय! आप अपनी कन्या को घर पर ही छोड़कर मेरे दर्शनों को आ सकते हैं, नहीं तो आपको मेरा भी दर्शन नहीं होगा। महेश्वर की ऐसी बात सुनकर हिमालय ने अपना मस्तक झुका दिया और शिवजी से बोले—हे प्रभु! हे महादेव जी! कृपया यह बताइए कि मैं अपनी पुत्री के साथ आपके दर्शनों के लिए क्यों नहीं आ सकता? क्या मेरी पुत्री आपकी सेवा के योग्य नहीं है? फिर इसे न लेकर आने का कारण मुझे समझ में नहीं आता।

हिमालय की बात सुनकर शिवजी हंसने लगे और बोले—हे गिरिराज! आपकी पुत्री सुंदर, चंद्रमुखी और अनेक शुभ लक्षणों से संपन्न है। इसलिए आपको इसे मेरे पास नहीं लाना चाहिए क्योंकि विद्वानों ने नारी को माया रूपिणी कहा है। युवतियां ही तपस्वियों की तपस्या में विघ्न डालती हैं। मैं योगी हूं। सदैव तपस्या में लीन रहता हूं और माया-मोह से दूर रहता हूं। इसलिए मुझे स्त्री से दूर ही रहना चाहिए। हे हिमालय। आप धर्म के ज्ञानी और वेदों की रीतियां जानते हैं। स्त्री की निकटता से मन में विषय वासना उत्पन्न हो जाती है और वैराग्य नष्ट हो जाता है जिससे तपस्वी और योगी का ध्यान नष्ट हो जाता है। इसलिए तपस्वी को स्त्रियों का साथ नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार कहकर भगवान शिव चुप हो गए। हिमालय शिवजी के ऐसे वचनों को सुनकर चकित और व्याकुल हो गए। उन्हें चुप देखकर पार्वती देवी असमंजस में पड़ गईं।

तेरहवां अध्याय

पार्वती-शिव का दार्शनिक संवाद

भगवान शंकर के वचन सुनकर पार्वती जी बोलीं—योगीराज! आपने जो कुछ भी मेरे पिताश्री गिरिराज हिमालय से कहा उसका उत्तर मैं देती हूं। अंतर्यामी। आपने महान तप करने का निश्चय किया है। ऐसा करने का निश्चय आपने शक्ति के कारण ही लिया है। सभी कर्मों को करने की यह शक्ति ही प्रकृति है। प्रकृति ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार करती है। प्रभु! आप थोड़ा विचार करें, प्रकृति क्या है? और आप कौन हैं? यदि प्रकृति न हो तो शरीर तथा स्वरूप किस प्रकार हों? आप सदा प्राणियों के लिए वंदनीय और चिंतनीय हैं। यह सब प्रकृति के ही कारण है।

पार्वती जी के वचनों को सुनकर उत्तम लीला करने वाले भगवान शिव हंसते हुए बोले—मैं अपने कठोर तप द्वारा प्रकृति का नाश कर चुका हूं। अब मैं तत्व रूप में स्थित हूं। साधु पुरुषों को प्रकृति का संग्रह नहीं करना चाहिए। भगवान शिव के इस प्रकार के वचनों को सुनकर पार्वती हंसती हुई बोलीं—हे करुणानिधान! कल्याणकारी योगीराज! आपने जो कहा, क्या वह प्रकृति नहीं है, तो फिर आप उससे अलग कैसे हो सकते हैं? बोलना या कुछ भी करना अर्थात हमारे द्वारा किया गया हर क्रियाकलाप ही प्रकृति है। हम सदा ही प्रकृति के ही वश में हैं। यदि आप प्रकृति से अलग हैं तो न आपको बोलना चाहिए और न ही कुछ और करना चाहिए क्योंकि ये कार्य तो प्रकृति के हैं अर्थात प्राकृत हैं। भगवन्! आप हंसते, सुनते, खाते देखते और करते हैं वह सब भी तो प्रकृति का ही कार्य है। इसलिए व्यर्थ के वाद-विवाद से कोई लाभ नहीं है। यदि आप वाकई प्रकृति से अलग हैं तो इस समय यहां तपस्या क्यों कर रहे हैं? सच तो यह है कि आप प्रकृति के वश में हैं और इस समय अपने स्वरूप को खोजने के लिए ही तपस्या में लीन रहना चाहते हैं। योगीराज! आप किस प्रकार की बात कर रहे हैं, थोड़ा विचार कर कहें। यदि आपने प्रकृति का नाश कर डाला है तो आप किस प्रकार विद्यमान रहेंगे, क्योंकि संसार तो सदा से ही प्रकृति से बंधा हुआ है। क्या आप प्रकृति का यह तत्व नहीं जान रहे हैं कि मैं ही प्रकृति हूं। आप पुरुष हैं। यह पूर्णतया सच है। मेरे ही कारण आप सगुण और साकार माने जाते हैं। भगवन्, आप जितेंद्रिय होने पर भी प्रकृति के अनुसार ही कर्म करते हैं। हे महादेव! यदि आप यही मानते हैं कि आप प्रकृति से अलग हैं तो आपको मेरी किसी भी सेवा से और किसी भी प्रकार से डरना नहीं चाहिए।

पार्वती के मुख से निकले सांख्य-शास्त्र में डूबे हुए वचन सुनकर भगवान शिव निरुत्तर हो गए। तब उन्होंने पार्वती जी को अपने दर्शन और सेवा करने की आज्ञा प्रसन्नतापूर्वक प्रदान कर दी। तत्पश्चात भगवान शिव पर्वतराज हिमालय से बोले—हे गिरिराज हिमालय! मैं तुम्हारे इस शिखर पर तपस्या करना चाहता हूं। कृपया मुझे इसकी आज्ञा प्रदान करें।

देवाधिदेव भगवान शिव के इस प्रकार के वचनों को सुनकर गिरिराज हिमालय दोनों हाथ

जोड़कर बोले—हे महादेव! यह पूरा संसार आपका ही है। सभी देवता, असुर और मनुष्य सदैव आपका ही पूजन और चिंतन करते हैं। मैं आपके सामने एक तुच्छ मनुष्य हूं, भला मैं आपको किस प्रकार आज्ञा दे सकता हूं? प्रभु! यह आपकी इच्छा है, आप जब तक यहां निवास करना चाहें, कर सकते हैं। गिरिराज के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव मुस्कुराने लगे और आदरपूर्वक हिमालय से बोले—अब आप जाइए। अब हमारी तप करने की इच्छा है। तुम्हारी कन्या नित्य आकर मेरे दर्शन कर सकती है और मेरी सेवा करने की भी मैं उसे आज्ञा देता हूं।

लोक कल्याणकारी भगवान शिव के इन उत्तम वचनों को सुनकर हिमालय और पार्वती जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को नमस्कार किया और अपने घर लौट गए। उसी दिन से पार्वती जी प्रतिदिन भगवान शिव के दर्शनों के लिए वहां आतीं। उस समय उनके साथ उनकी दो सखियां भी वहां जातीं और भक्तिपूर्वक शिवजी की सेवा करतीं। वे महादेव के चरणों को धोकर उस चरणामृत को पीती थीं। तत्पश्चात उनके चरणों को पोंछतीं। फिर उनका षोडशोपचार अर्थात सोलह उपचारों से विधिवत पूजन करने के पश्चात अपने घर वापस लौट आतीं। इस प्रकार प्रतिदिन शिवजी का पूजन करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। कभी-कभी पार्वतीजी अपनी सखियों के साथ वहां भक्तिपूर्वक उनके भजनों को भी गाती थीं। एक दिन सदाशिव ने पार्वती जी को इस प्रकार अपनी सेवा में तत्पर देखकर विचार किया कि जब इनके हृदय में उपजे अभिमान के बीज के अंकुर का नाश हो जाएगा, तभी मैं इनका पाणिग्रहण करूंगा।

ऐसा सोचकर लीलाधारी भगवान शिव पुनः ध्यान में मग्न हो गए। तब उनका मन चिंतामुक्त हो गया। तब देवी पार्वती भगवान शिव के रूप का चिंतन करती हुई भक्तिभाव से उनकी सेवा करती रहतीं। भगवान शंकर भी शुद्ध भाव से पार्वती को प्रतिदिन दर्शन देते थे।

इसी बीच इंद्र और अन्य देवता व मुनि ब्रह्माजी के पास पहुंचे। ब्रह्माजी की आज्ञा से कामदेव हिमालय पर्वत पर गए। सभी देवताओं के कार्य की सिद्धि हेतु काम की प्रेरणा से वे पार्वती-शिव का संयोग कराना चाहते थे। इसका कारण यह था कि महापराक्रमी तारकासुर ने ऋषि-मुनियों और देवताओं की नाक में दम कर रखा था। उसका वध करने के लिए उन्हें भगवान शिव जैसे महापराक्रमी और बलवान पुत्र की आवश्यकता थी।

कामदेव ने हिमालय के शिखर पर पहुंचकर अनेक यत्न किए परंतु भगवान शिव काम की माया से मोहित न हो सके। उन्होंने क्रोध से कामदेव को भस्म कर दिया। अब शक्ति में ही सामर्थ्य थी कि शिव को मोहित कर वे देवताओं की इच्छा को साकार करतीं। इसीलिए काम के अनंग होने के बाद जनकल्याण के लिए तथा अपने व्रत को पूरा करने के लिए पार्वती ने मन ही मन शिवजी को पति रूप में पाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। कठोर तपस्या करके देवी पार्वती ने शिवजी के हृदय को जीत लिया। तब वे दोनों अत्यंत प्रेम से प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे और उन्होंने देवताओं के महान कार्य को सिद्ध किया।

चौदहवां अध्याय

वज्रांग का जन्म एवं पुत्र प्राप्ति का वर मांगना

नारद जी कहने लगे—ब्रह्माजी! तारकासुर कौन था? जिसने देवताओं को भी पीड़ित किया। उन्हें स्वर्ग से निष्कासित कर दिया और स्वर्ग पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। कृपया मुझे इसके विषय में बताइए।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनि नारद! मरीचि के पुत्र कश्यप मुनि थे। उनकी तेरह स्त्रियां थीं, जिसमें सबसे बड़ी दिति थीं। उससे हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र हुए। हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष को श्रीहरि विष्णु ने वाराह तथा नृसिंह का रूप धारण करके मार दिया था। तब अपने पुत्रों के मर जाने से दुखी होकर दिति ने कश्यप से प्रार्थना की तथा उनकी बहुत सेवा की। उनकी कृपा से दिति पुनः गर्भवती हुई। जब इंद्र को इस बात का पता चला तो उन्होंने दिति के गर्भ में ही उनके बच्चे के छोटे-छोटे टुकड़े कर दिए परंतु दिति के व्रत एवं अन्य भक्तिभाव से बालक को मारने में वे सफल न हुए। समय पूरा होने पर उसके गर्भ से उनचास बालक उत्पन्न हुए। ये सभी भगवान शिव के गण हुए तथा शीघ्र ही स्वर्ग में चले गए। तत्पश्चात दिति पुनः अपने पति कश्यप मुनि के पास गई और उनसे पुनः मां बनने के विषय में कहने लगीं। तब कश्यप मुनि ने कहा—हे प्रिय दिति! अपना तन-मन शुद्ध कर भक्ति भाव से तपस्या करो। दस हजार वर्ष बीतने के पश्चात तुम्हें तुम्हारी इच्छा के अनुरूप पुत्र की प्राप्ति होगी। यह सुनकर दिति ने श्रद्धापूर्वक दस हजार वर्षों तक कठोर तपस्या की। तपस्या के उपरांत पुनः वे अपने घर लौट आईं। तब कश्यप मुनि की कृपा से दिति गर्भवती हुई। इस बार उन्होंने एक अत्यंत पराक्रमी और बलवान पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम वज्रांग था। वज्रांग दिति की इच्छा के अनुरूप ही था। दिति इंद्र द्वारा किए गए छल-कपट से बहुत दुखी थी और उनसे बदला लेने के लिए अपने पुत्र वज्रांग को देवताओं से युद्ध करने की आज्ञा दी।

वज्रांग और सभी देवताओं का बहुत भयानक युद्ध हुआ। तत्पश्चात वीर और पराक्रमी वज्रांग ने अपनी माता के आशीर्वाद से सभी देवताओं को परास्त कर दिया और स्वर्ग का राज्य हथिया कर वहां का राजा बन गया। सभी देवता उसके अधीन हो गए। तब यह देखकर दिति को बहुत प्रसन्नता हुई। एक दिन कश्यप मुनि के साथ मैं स्वयं वज्रांग के पास गया। मैंने वज्रांग से अनुरोध किया कि वह देवताओं को इंद्र की गलती की सजा न दे तथा इंद्र सहित सभी देवताओं को क्षमा कर दे। मेरे इस प्रकार कहने पर वज्रांग बोला—हे ब्रह्मन्! मुझे राज्य का कोई लोभ नहीं है। मैंने इंद्र की दुष्टता के कारण ही ऐसा किया है। इंद्र ने मेरी माता के गर्भ में घुसकर मेरे भाइयों को मारने का प्रयत्न किया था। तभी मैंने इंद्र के राज्य को जीतकर उसे स्वर्ग से निष्कासित कर दिया है। भगवन्! मुझे भोग-विलास की भी कोई इच्छा नहीं है। इंद्र सहित सभी देवता अपने-अपने कर्मों का फल भोग चुके हैं। अब मैं स्वर्ग का राज्य इंद्र को

वापस सौंप सकता हूं। मैंने अपनी माता की आज्ञा मानकर यह सब किया है। प्रभो! आप मुझे सार तत्व का उपदेश दें, जिससे मुझे सुख की प्राप्ति हो।

वज्रांग के उद्देश्य को उत्तम जानकर मैंने उसे सात्विक तत्व के बारे में समझाया। फिर मैंने एक सुंदर व गुणी स्त्री उत्पन्न की और उसका विवाह वज्रांग से करा दिया। वज्रांग ने अपने सभी बुरे विचारों को त्याग दिया परंतु उसकी पत्नी के हृदय में बुरे विचारों का ही मानो साम्राज्य था। उसकी पत्नी ने उसकी बहुत सेवा की। तब प्रसन्न होकर वज्रांग ने कहा—हे प्राणप्रिया! तुम क्या चाहती हो? मुझे बताओ। मैं तुम्हारी इच्छाएं अवश्य पूरी करूंगा। यह सुनकर वह परम सुंदरी बोली—पतिदेव! यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हैं तो कृपया मुझे इस त्रिलोकी को जीतने वाला महापराक्रमी और बलवान पुत्र प्रदान करिए। जो ऐसा बलवान हो कि समस्त देवता उससे भयभीत रहें। अपनी पत्नी के ऐसे वचन सुनकर वज्रांग सोच में डूब गया क्योंकि वह स्वयं देवताओं से किसी प्रकार का कोई बैर नहीं रखना चाहता था परंतु उसकी पत्नी देवताओं के साथ शत्रुता बढ़ाना चाहती थी। वज्रांग सोचने लगा कि यदि सिर्फ अपनी पत्नी की इच्छा को सर्वोपरि मानकर उसे पूरा कर दिया तो सारे संसार सहित देवताओं एवं मुनियों को दुख उठाना पड़ेगा और यदि पत्नी की इच्छा को पूरा नहीं किया तो मैं नरक का भागी बनूंगा। तब इस धर्म संकट में पड़ने के बाद उसने अपनी पत्नी की अभिलाषा को पूरा किया। अपनी पत्नी की इच्छानुसार पुत्र प्राप्त करने हेतु वज्रांग ने बहुत वर्षों तक कठोर तपस्या की। मुझसे वर प्राप्त कर अत्यंत हर्षित होता हुआ वज्रांग अपनी पत्नी को पुत्र प्रदान करने हेतु अपने लोक में चला गया।

पंद्रहवां अध्याय

तारकासुर का जन्म व उसका तप

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! कुछ समय बाद वज्रांग की पत्नी गर्भवती हो गई। समय पूर्ण होने पर उसकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह बालक बहुत लंबा-चौड़ा था। उसका शरीर बहुत अधिक विशाल था। वह अत्यंत शक्तिशाली और पराक्रमी था। उसके जन्म के समय सारे संसार में कोहराम मच गया। चारों ओर उपद्रव होने लगे। आकाश में भयानक बिजलियां चमकने लगीं तथा चारों दिशाओं में भयंकर गर्जनाएं होने लगीं। धरती पर भूकंप आ गया। पहाड़ कांपने लगे। नदी, सरोवर का जल जोर-जोर से उछलने लगा। चारों ओर आंधियां चलने लगीं। सूर्य को राहु ने निगल लिया और चारों ओर अंधकार छा गया। उसके जन्म के समय के ऐसे अशुभ लक्षणों को देखते हुए कश्यप मुनि ने उसका नाम तारक रखा। तारक का जन्म हो जाने पर वज्रांग के घर ही उसका लालन-पालन होने लगा। थोड़े ही समय में तारक का शरीर और बड़ा हो गया। वह पर्वत के समान विशाल और विकराल होता जा रहा था। कुछ समय पश्चात तारक ने अपनी माता और पिता वज्रांग से तपस्या करने की आज्ञा मांगी। तब उसके माता-पिता ने प्रसन्नतापूर्वक उसको आज्ञा प्रदान कर दी। साथ ही उसकी माता ने उसे यह आदेश दिया कि वह देवताओं को अवश्य जीते और उन पर अपना आधिपत्य कर स्वर्ग पर अधिकार कर ले।

अपनी माता की आज्ञा पाकर वज्रांग का पुत्र तारक तपस्या करने के लिए मधुवन चला गया। वहां तारक ने मुझे प्रसन्न करने के लिए कठोर तप करना आरंभ कर दिया। उसने अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर ऊंचा कर लिया और ऊपर की ओर देखने लगा तथा एक पैर पर खड़े होकर एकाग्र मन से सौ वर्ष तक तपस्या करता रहा। उस समय वह केवल जल और वायु से ही अपना जीवन यापन कर रहा था। तत्पश्चात उसने सौ वर्ष जल में, सौ वर्ष थल में, सौ वर्ष अग्नि में रहकर कठिन तप करके मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। फिर सौ वर्ष पृथ्वी पर हथेली धारण करके, सौ वर्ष वृक्ष की शाखा को पकड़कर तथा अनेकों प्रकार के दुख सह-सहकर वह तप करता रहा। इस तपस्या के प्रभाव से उसके शरीर से तेज निकलने लगा। जिससे देव लोक जलने लगा। यह देखकर सभी देवता घबरा गए। फिर मैं स्वयं तारकासुर के पास वरदान देने के लिए गया। मैंने तारकासुर से कहा—तारक! मैं तुम्हारी इस दुस्सह तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। तुमने इस प्रकार कठोर तप करके मुझे प्रसन्न किया है। तुम्हारा इसके पीछे क्या प्रयोजन है, निस्संकोच मुझे बताओ। मैं तुम्हें तुम्हारा मनोवांछित फल अवश्य प्रदान करूंगा। तुम अपनी इच्छानुसार वर मांगो।

ब्रह्माजी के इन वचनों को सुनकर तारकासुर उनकी स्तुति करने लगा। तत्पश्चात वह बोला —हे विधाता! हे ब्रह्माजी! अगर आप मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहते हैं तो प्रभु मुझे पहला वर यह दें कि आपके द्वारा बनाई गई इस सृष्टि में, मेरे समान कोई भी

तेजवान और बलवान न हो। दूसरा वर यह दें कि मैं अमर हो जाऊं अर्थात कभी भी मृत्यु को प्राप्त न होऊं। तब मैंने कहा कि इस संसार में कोई भी अमर नहीं है। इसलिए तुम इच्छानुसार मृत्यु का वर मांगो। तारक ने अहंकार भरी विनम्रता से निवेदन किया—भगवन्! मेरी मृत्यु भगवान शंकर के वीर्य से उत्पन्न बालक के चलाए हुए शस्त्र से ही हो और कोई मेरा वध न कर पाए।

मैंने तारक को उसके मांगे हुए वर प्रदान कर दिए तथा अपने लोक में लौट आया। वर पाकर तारक बहुत खुश था। वह भी वर प्राप्ति का समाचार देने के लिए अपने घर को चला गया। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने तारक को असुरों का राजा बना दिया। अब तारक तारकासुर नाम से प्रसिद्ध हो गया। वह तीनों लोकों पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था इसलिए सबको पीड़ित कर, उनसे युद्ध कर, उन्हें हराकर सबके राज्यों पर अपना अधिकार करता जा रहा था। स्वर्ग के राजा इंद्र ने भी डरकर अपना वाहन ऐरावत हाथी, अपना खजाना और नौ सफेद रंग के घोड़े उसे दे दिए। ऋषियों ने डर के मारे कामधेनु गाय तारकासुर को दे दी। इसी प्रकार अन्य देवताओं ने भी अपनी-अपनी प्रिय वस्तुएं तारकासुर को अर्पित कर दीं। अन्य लोगों के पास भी जो उत्तम-उत्तम वस्तुएं थीं उन्हें भी दैत्यराज तारक ने अपने अधिकार में कर लिया। इतना ही नहीं समुद्रों ने भी भयभीत होकर अपने अंदर छिपे सभी अमूल्य रत्न निकालकर तारकासुर को सौंप दिए। तारकासुर के भय से पूरा जगत कांपने लगा था। उसका आतंक दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा था। पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा, वायु, अग्नि सभी तारकासुर के डर के कारण अपने सभी कार्य सुचारु रूप से कर रहे थे। दैत्यराज तारकासुर ने देवताओं और पितरों के भागों पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। उसने इंद्र को युद्ध में हराकर स्वर्ग का सिंहासन भी हासिल कर लिया था। उसने स्वर्ग के सभी देवताओं को वहां से निष्कासित कर दिया, जो अपनी प्राण रक्षा के लिए इधर-उधर भटक रहे थे।

सोलहवां अध्याय

तारक का स्वर्ग त्याग

ब्रह्माजी बोले—नारद जी! सभी देवता तारकासुर के डर के कारण मारे-मारे इधर-उधर भटक रहे थे। इंद्र ने सभी देवताओं को मेरे पास आने की सलाह दी। सभी मेरे पास आए। सभी देवताओं ने मुझे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मेरी अनेकों प्रकार से स्तुति करने लगे। अपना दुख-दर्द बताते हुए देवता कहने लगे—हे विधाता! हे ब्रह्माजी! आपने ही तारकासुर को अभय का वरदान दिया है। तभी से तारक त्रिलोकों को जीतकर अभिमानी होता जा रहा है। उसने लोगों को डरा-धमकाकर उन्हें अपने अधीन कर लिया है। तारक ने स्वर्ग पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया है और हम सभी को स्वर्ग से निकाल दिया है। उसने इंद्र के सिंहासन पर भी अपना अधिकार कर लिया है। अब उसके आदेश से उसके असुर हमारे प्राणों के प्यासे बनकर हमें ही ढूंढ़ रहे हैं। तभी हम अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपकी शरण में आए हैं। हे प्रभु! हमारे दुखों को दूर कीजिए।

देवताओं के कष्टों को सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ। मैंने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा—मैं इस संबंध में कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि तारकासुर के घोर तप से प्रसन्न होकर ही मैंने उसे अतुल्य बलशाली होने का वर प्रदान किया था, परंतु उसने मदांध होकर सभी देवताओं और मनुष्यों को प्रताड़ित किया है और उनकी संपत्तियों पर जबरदस्ती अपना अधिकार कर लिया है, इसलिए अब आप सभी इस बात से निश्चिंत रहिए कि एक दिन तारकासुर का विनाश अवश्य ही होगा। उसकी मृत्यु जरूर होगी पर इस समय हम विवश हैं। इस समय तारक को मैं, विष्णुजी और शिवजी इन तीनों में से कोई भी नहीं मार सकता क्योंकि उसने मुझसे वर पाया है कि उसका वध शिवजी के वीर्य से उत्पन्न उनके पुत्र के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए तुम सबको शिवजी के विवाह के पश्चात उनके पिता बनने तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी। प्रतीक्षा के अलावा अन्य कोई भी उपाय संभव नहीं है।

यह सुनकर इंद्र सहित सभी देवता असमंजस में पड़ गए तथा पूछने लगे कि प्रभु महादेव जी की प्रिय पत्नी सती ने तो अपना शरीर योगाग्नि में नष्ट कर दिया है। अब वे कैसे और किससे विवाह करेंगे और यह कैसे संभव हो सकेगा? तब मैंने उन्हें बताया कि प्रजापति दक्ष की पुत्री और त्रिलोकीनाथ शिवजी की प्राणवल्लभा सती हिमालय पत्नी मैना के गर्भ से जन्म लेकर बड़ी हो गई हैं। उनका नाम पार्वती है। पार्वती ही भगवान शिव की पत्नी बनने का गौरव प्राप्त करेंगी। अतः अब तुम भगवान शिव के पास जाकर उन्हें विवाह के लिए राजी करने की कोशिश करो। शिव-पार्वती का पुत्र ही तुम्हें तारकासुर के भय से मुक्त करा सकता है। अतएव तुम भगवान शिव से प्रार्थना करो कि वे पार्वती के साथ विवाह करने के लिए राजी हो जाएं। इस बात को अच्छे से जान लो कि शिवपुत्र ही तुम्हारा उद्धार कर सकता है। अब मैं तारकासुर को समझाता हूं कि वह व्यर्थ में देवताओं को तंग करना बंद कर दे और

उन्हें उनका भाग वापिस दे दे और स्वयं भी शांति से जीवन यापन करे। यह कहकर मैंने इंद्र व अन्य देवताओं को वहां से विदा किया। तत्पश्चात मैं स्वयं तारकासुर को समझाने के लिए उसके पास गया। तारकासुर ने मुझे प्रणाम किया और मेरी स्तुति एवं वंदना करने लगा।

मैंने तारकासुर से कहा—हे पुत्र तारक! मैंने तुम्हारी भक्तिभाव से की गई तपस्या से प्रसन्न होकर तुम्हें मनोवांछित वर प्रदान किए थे। वे वरदान मैंने खुशी से तुम्हारी बेहतरी के लिए दिए थे परंतु तुम उन वरदानों का गलत उपयोग कर रहे हो। वर प्राप्त करने के उपरांत तुम अपनी सीमाओं को भूल गए हो। अनावश्यक अभिमान के नशे में चूर होकर तुम्हें यह भी याद नहीं रहा कि देवता सर्वथा पूजनीय और वंदनीय होते हैं। तुमने उन्हें भी कष्ट पहुंचाया है। साथ ही उन्हें स्वर्ग से निकालकर बेघर कर दिया है। तुम्हारे सशस्त्र सैनिक अभी भी देवताओं को मारने के लिए ढूंढ़ रहे हैं। तारकासुर, स्वर्ग पर सिर्फ देवताओं का ही अधिकार है। वहां से उन्हें निकालने की तुम्हारी कैसे हिम्मत हुई? स्वर्ग का राज्य छोड़कर वापिस पृथ्वी पर लौट जाओ और वहीं पर शासन करो। यह मेरी आज्ञा है।

तारकासुर को यह आदेश देकर मैं वहां से लौट आया। तत्पश्चात तारकासुर ने मेरी बात का सम्मान करते हुए स्वर्ग का राज्य छोड़ दिया। वह पृथ्वी पर आकर शोणित नामक नगर पर शासन करने लगा। मेरी आज्ञा पाकर देवताओं सहित देवेंद्र स्वर्गलोक को चले गए और पूर्व की भांति पुनः स्वर्ग का शासन करने लगे।

सत्रहवां अध्याय

कामदेव का शिव को मोहने के लिए प्रस्थान

ब्रह्माजी बोले—नारद! स्वर्ग में सब देवता मिलकर सलाह करने लगे कि किस प्रकार से भगवान रुद्र काम से सम्मोहित हो सकते हैं? शिवजी किस प्रकार पार्वती जी का पाणिग्रहण करेंगे? यह सब सोचकर देवराज इंद्र ने कामदेव को याद किया। कामदेव तुरंत ही वहां पहुंच गए। तब इंद्र ने कामदेव से कहा—हे मित्र! मुझ पर बहुत बड़ा दुख आ गया है। उस दुख का निवारण सिर्फ तुम्हीं कर सकते हो। हे काम। जिस प्रकार वीर की परीक्षा रणभूमि में, स्त्रियों के कुल की परीक्षा पति के असमर्थ हो जाने पर होती है, उसी प्रकार सच्चे मित्र की परीक्षा विपत्ति काल में ही होती है। इस समय मैं भी बहुत बड़ी मुसीबत में फंसा हुआ हूं और इस विपत्ति से आप ही मुझे बचा सकते हैं। यह कार्य देव हित के लिए है। इसमें कोई संशय नहीं है।

देवराज इंद्र की बातें सुनकर कामदेव मुस्कुराए और बोले—हे देवराज! इस संसार में कौन मित्र है और कौन शत्रु, यह तो वाकई देखने की वस्तु है। इसे कहकर कोई लाभ नहीं है। देवराज, मैं आपका मित्र हूं और आपकी सहायता करने की पूरी कोशिश अवश्य ही करूंगा। इंद्रदेव, जिसने आपके पद और राज्य को छीनकर आपको परेशान किया है मैं उसे दण्ड देने के लिए आपकी हर संभव मदद अवश्य करूंगा। अतः जो कार्य मेरे योग्य है, मुझे अवश्य बताइए।

कामदेव के इस कथन को सुनकर इंद्रदेव बड़े प्रसन्न हुए और उनसे बोले—हे तात! मैं जो कार्य करना चाहता हूं उसे सिर्फ आप ही पूरा कर सकते हैं। आपके अतिरिक्त कोई भी उस कार्य को करने के विषय में सोच भी नहीं सकता। तारक नाम का एक प्रसिद्ध दैत्य है। तारक ने ब्रह्माजी की घोर तपस्या करके वरदान प्राप्त किया है। तारक अजेय हो गया है। अब वह पूर्णतः निश्चिंत होकर पूरे संसार को कष्ट दे रहा है। वह धर्म का नाश करने को आतुर है। उसने सभी देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों को दुखी कर रखा है। हम देवताओं ने उससे युद्ध किया परंतु उस पर अस्त्र-शस्त्रों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यही नहीं, स्वयं श्रीहरि का सुदर्शन चक्र भी तारक का कुछ नहीं बिगाड़ सका। मित्र, भगवान शिव के वीर्य से उत्पन्न हुआ बालक ही तारकासुर का वध कर सकता है। अतः तुम्हें भगवान शिव के हृदय में आसक्ति पैदा करनी है।

भगवान शंकर इस समय हिमालय पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं और देवी पार्वती अपनी सखियों के साथ मिलकर महादेव जी की सेवा कर रही हैं। ऐसा करने के पीछे देवी पार्वती का उद्देश्य प्रभु शिव को पति रूप में प्राप्त करना है परंतु भगवान शिव तो परम योगी हैं। उनका मन सदैव ही उनके वश में है। हे कामदेव! आप कुछ ऐसा उपाय करें कि भगवान शंकर के हृदय में पार्वती का निवास हो जाए और वे उन्हें अपनी प्राणवल्लभा बना उनका

पाणिग्रहण कर लें। आप कुछ ऐसा कार्य करें जिससे देवताओं के सभी कष्ट दूर हो जाएं और हम सभी को तारकासुर नामक दैत्य से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाए। यदि कामदेव आप ऐसा करने में सफल हो जाएंगे तो हम सभी आपके सदैव आभारी रहेंगे। ब्रह्माजी बोले —नारद! देवराज इंद्र के कथन को सुनकर कामदेव का मुख प्रसन्नता से खिल गया। तब कामदेव देवराज से कहने लगे कि मैं इस कार्य को अवश्य करूंगा। इंद्रदेव को कार्य करने का आश्वासन देकर कामदेव अपनी पत्नी रति और वसंत को अपने साथ लेकर हिमालय पर्वत पर चल दिए, जहां शिवजी तपस्या कर रहे थे।

अठारहवां अध्याय

कामदेव का भस्म होना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनि नारद! कामदेव अपनी पत्नी रति और वसंत ऋतु को अपने साथ लेकर हिमालय पर्वत पर पहुंचे जहां त्रिलोकीनाथ भगवान शिव शंकर तपस्या में मग्न बैठे थे। कामदेव ने शिवजी पर अपने बाण चलाए। इन बाणों के प्रभाव से शिवजी के हृदय में देवी पार्वती के प्रति आकर्षण होने लगा तथा उनका ध्यान तपस्या से हटने लगा। ऐसी स्थिति देख महायोगी शिव अत्यंत आश्चर्यचकित हुए और मन में सोचने लगे कि मैं क्यों अपना ध्यान एकाग्रचित्त नहीं कर पा रहा हूं? मेरी तपस्या में यह कैसा विघ्न आ रहा है?

अपने मन में यह सोचकर भगवान शिव इधर-उधर चारों ओर देखने लगे। जब महादेव जी की दृष्टि दिशाओं पर पड़ी तो वे भी डर के मारे कांपने लगीं। तभी भगवान शिव की दृष्टि सामने छिपे हुए कामदेव पर पड़ी। उस समय काम पुनः बाण छोड़ने वाले थे। उन्हें देखते ही शिवजी को बहुत क्रोध आ गया। इतने में काम ने अपना बाण छोड़ दिया परंतु क्रोधित हुए शिवजी पर उसका कोई प्रभाव नहीं हो सका। वह बाण शिवजी के पास आते ही शांत हो गया। तब अपने बाण को बेकार हुआ देख कामदेव डर से कांपने लगे और इंद्र आदि देवताओं को याद करने लगे। सभी देवतागण वहां आ पहुंचे और महादेव जी को प्रणाम करके उनकी भक्तिभाव से स्तुति करने लगे।

जब देवतागण उनकी स्तुति कर ही रहे थे तभी भगवान शिव के मस्तक के बीचोंबीच स्थित तीसरा नेत्र खुला और उसमें से आग निकलने लगी। वह आग आकाश में ऊपर उड़ी और अगले ही पल पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर चारों ओर गोले में घूमने लगी। इससे पूर्व कि इंद्रदेव या अन्य देवता भगवान शिव से क्षमायाचना कर पाते, उस आग ने वहां खड़े कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया। कामदेव के मर जाने से देवताओं को बड़ी निराशा व दुख हुआ। वे यह देखकर बड़े व्याकुल हो गए कि काम उनकी वजह से ही शिवजी के क्रोध का भागी बना।

कामदेव के अग्नि में जलने का दृश्य देखकर वहां उपस्थित देवी पार्वती और उनकी सखियां भी अत्यंत भयभीत हो गईं। उनका शरीर जड़ हो गया, जैसे शरीर का खून सफेद हो गया हो। पार्वती अपनी सखियों के साथ तुरंत अपने घर की ओर चली गईं। कामदेव की पत्नी रति तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। मूर्च्छा टूटने पर वह जोर-जोर से विलाप करने लगी—अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं? देवताओं ने मेरे साथ बहुत बुरा किया, जो मेरे पति को यहां भेजकर शिवजी के क्रोध की अग्नि में भस्म करा दिया। हे स्वामी! हे प्राणप्रिय! ये आपको क्या हो गया? इस प्रकार देवी रति रोती-बिलखती हुई अपने सिर के बालों को जोरों से नोचने लगी। उनके करुण क्रंदन को सुनकर समस्त चराचर जीव भी अत्यंत दुखी हो गए। तत्पश्चात इंद्र आदि देवता वहां देवी रति को धैर्य देते हुए उन्हें समझाने लगे।

देवता बोले—हे देवी! आप अपने पति कामदेव के शरीर की भस्म का थोड़ा सा अंश अपने पास रख लो और अनावश्यक भय से मुक्त हो जाओ। त्रिलोकीनाथ करुणानिधान शिवजी अवश्य ही कामदेव को पुनः जीवित कर देंगे। तब तुम्हें पुनः कामदेव की प्राप्ति हो जाएगी। वैसे भी संसार में सबकुछ पूर्व निश्चित कर्मों के अनुसार ही होता है। अतः आप दुख को त्याग दें। भगवान शिव अवश्य ही कृपा करेंगे।

इस प्रकार देवी रति को अनेक आश्वासन देकर सभी देवता शिवजी के पास गए और उन्हें प्रणाम करते हुए कहने लगे—हे भक्तवत्सल! हे त्रिलोकीनाथ। भगवान आप कामदेव के ऊपर किए अपने क्रोध पर पुनः विचार अवश्य करिए। कामदेव यह कार्य अपने लिए नहीं कर रहे थे। इसमें उनका निजी स्वार्थ कतई नहीं था। हे भगवन्! हम सभी तारकासुर के सताए हुए थे। उसने हमारा राज्य छीनकर हमें स्वर्ग से निष्कासित कर दिया था। इसलिए तारकासुर का विनाश करने के लिए ही कामदेव ने यह कार्य किया था। आप कृपा करके अपने क्रोध को शांत करें और रोती-बिलखती कामदेव की पत्नी रति को समझाने की कृपा करें। उसे सांत्वना दें। अन्यथा हम यही समझेंगे कि आप हम सभी देवताओं और मनुष्यों का संहार करना चाहते हैं। हे प्रभु! कृपा कर रति का शोक दूर करें।

तब सदाशिव बोले—हे देवगणो! हे ऋषियो! मेरे क्रोध के कारण मैंने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया है। जो कुछ हो गया है उसको अब बदला नहीं जा सकता, परंतु कामदेव का पुनर्जन्म अवश्य होगा। जब विष्णु भगवान श्रीकृष्ण का अवतार लेंगे और रुक्मणी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकारेंगे, तब देवी रुक्मणी के गर्भ से श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में कामदेव जन्म लेंगे। उस समय कामदेव प्रद्युम्न नाम से जाने जाएंगे। प्रद्युम्न के जन्म के तुरंत बाद ही शंबर नाम का असुर उसका अपहरण कर लेगा और उसे समुद्र में फेंक देगा। रति तब तक तुम्हें शंबर के नगर में ही निवास करना होगा। वहीं पर तुम्हें अपने पति कामदेव की प्रद्युम्न के रूप में प्राप्ति होगी। वहीं पर प्रद्युम्न के द्वारा शंबरासुर का वध होगा।

भगवान शिव की बात सुनकर देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और बोले—हे देवाधिदेव महादेव! करुणानिधान! आप कामदेव को जीवन दान दें और कामदेव के पुनर्जन्म तक देवी रति के प्राणों की रक्षा करें।

देवताओं की यह बात सुनकर करुणानिधान भगवान शिव ने कहा कि मैं कामदेव को अवश्य ही जीवित कर दूंगा। वह मेरा गण होकर आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करेगा। अब तुम सब निश्चिंत होकर अपने-अपने धाम को जाओ। ऐसा कहकर महादेवजी भी वहां से अंतर्धान हो गए। उनके कहे वचनों से देवताओं की सभी शंकाएं दूर हो गईं। तत्पश्चात देवताओं ने कामदेव की पत्नी रति को अनेकों आश्वासन दिए और फिर अपने धाम को चले गए। देवी रति भी शिव आज्ञा के अनुसार शंबर नगर को चली गई और वहां पहुंचकर अपने प्रियतम के प्रकट होने की प्रतीक्षा करने लगीं।

उन्नीसवां अध्याय

शिव क्रोधाग्नि की शांति

ब्रह्माजी बोले—हे नारद जी! जब भगवान शंकर ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर उसकी अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया तो इस त्रिलोक के सभी चराचर जीव डर के मारे कांपने लगे और भयमुक्ति और महादेवजी के क्रोध को शांत कराने के लिए मेरे पास बड़ी आशा के साथ आए। उन्होंने मुझे अपने कष्टों और दुखों से अवगत कराया। तब सबकुछ जानकर मैं भगवान शंकर के पास पहुंचा। वहां पहुंचकर मैंने देखा कि भगवान शंकर का क्रोध सातवें आसमान पर था। वे भयंकर क्रोध की अग्नि में जल रहे थे। मैंने उस धधकती अग्नि को शिवजी की कृपा से अपने हाथ में पकड़ लिया और समुद्र के पास जा पहुंचा। मुझे अपने पास आया देखकर समुद्र ने पुरुष रूप धारण किया और मेरे पास आ गए और बोले—हे विधाता! हे ब्रह्माजी! मैं आपकी क्या सेवा करूं?

यह सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे—हे सागर! भगवान शिव शंकर ने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया है। इस क्रोधाग्नि से पूरा संसार जलकर राख हो सकता है। इसी कारण मैं इस क्रोधाग्नि को रोककर आपके पास ले आया हूं। हे सिंधुराज! मेरी आपसे यह विनम्र प्रार्थना है कि सृष्टि के प्रलयकाल तक आप इसे अपने अंदर धारण कर लें। जब मैं आपसे इसे मुक्त करने के लिए कहूं तभी आप इस शिव-क्रोधाग्नि का त्याग करना। आपको ही इसे भोजन और जल प्रतिदिन देना होगा तथा इसे अपने पास धरोहर के रूप में सुरक्षित रखना होगा।

इस प्रकार मेरे कहे अनुसार समुद्र ने क्रोधाग्नि को अपने अंदर धारण कर लिया। उसके समुद्र में प्रविष्ट होते समय पवन के साथ बड़े-बड़े आग के गोलों के रूप में क्रोधाग्नि समुद्र के पास धरोहर के रूप में सुरक्षित हो गई। तत्पश्चात मैं अपने लोक वापिस लौट आया।

बीसवां अध्याय

शिवजी के बिछोह से पार्वती का शोक

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब भगवान शिव ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर उसकी अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया तब मैंने उस क्रोधाग्नि से भयभीत देवताओं सहित सभी प्राणियों को भय से मुक्त कराने के लिए उस अग्नि को शिव की आज्ञा से पकड़ लिया और उसे लेकर मैं समुद्र तट की ओर चल पड़ा। समुद्र को उस क्रोधाग्नि को सौंपकर मैं वापस अपने धाम लौट गया। तब पूरा जगत भयमुक्त होकर पहले की भांति प्रसन्न हो गया।

नारद जी ने ब्रह्माजी से पूछा—हे दयानिधे! आप मुझे यह बताइए कि कामदेव के भस्म हो जाने पर पार्वती देवी ने क्या किया? वे अपनी सखियों के साथ कहां गईं? हे प्रभु! कृपया मुझे इस बारे में भी बताइए।

नारद जी के यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—भगवान शंकर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि ने जब कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया तब पूरा आकाश गूंजने लगा। यह दृश्य देखकर देवी पार्वती और उनकी सखियां डरकर अपने घर को चली गईं। वहां पहुंचकर पार्वती जी ने सारा हाल अपने माता-पिता को बताया, जिसे सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपनी पुत्री को विह्वल देखकर हिमालय को बहुत दुख हुआ। हिमालय ने पार्वती के आंसुओं को पोंछकर कहा—पार्वती! डरो मत और रोओ मत। तब हिमालय ने अपनी पुत्री को अनेकों प्रकार से सांत्वना दी।

कामदेव को भस्म करने के उपरांत शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए। तब शिवजी को वहां न पाकर पार्वती अत्यंत व्याकुल हो गईं। उनकी नींद और चैन जाते रहे। वे दुखी और बेचैन रहने लगीं। उन्हें कहीं भी सुख-शांति का अनुभव नहीं होता था। तब उन्हें अपने रूप के प्रति भी शंका होती थी। पार्वती सोचतीं कि क्यों मैंने अपनी सखियों द्वारा समझाने पर भी कभी ध्यान नहीं दिया। देवी पार्वती सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और अपनी सखियों के साथ होते हुए भी सिर्फ महादेव जी का ही ध्यान और चिंतन करती थीं। इस प्रकार उनका मन शिवजी के बिछोह की वेदना सहन नहीं कर पा रहा था। वे शारीरिक रूप से अपने पिता के घर और हृदय से भगवान शंकर के पास रहती थीं। शोक में डूबी पार्वती बार-बार मूर्च्छित हो जातीं थीं। इससे गिरिराज हिमालय और उनकी पत्नी मैना बहुत दुखी रहती थीं। वे पार्वती को समझाने की बहुत कोशिश करते थे परंतु पार्वती का ध्यान शिवजी की ओर से जरा भी नहीं हटता था।

हे देवर्षि नारद! एक दिन देवराज इंद्र की इच्छा से आप घूमते हुए हिमालय पर्वत पर आए। तब शैलराज हिमालय ने आपका बहुत आदर-सत्कार किया और आपका कुशल-मंगल पूछा। आपको उत्तम आसन पर बिठाकर हिमालय ने सारा वृत्तांत सुनाया। हिमालय ने बताया कि किस प्रकार पार्वती जी ने महादेवजी की सेवा आरंभ की। इसके बाद अपनी पुत्री

के शिव पूजन से लेकर कामदेव के भस्म होने तक की सारी कथा आपको सुनाई। यह सब सुनकर आपने गिरिराज हिमालय से कहा कि आप भगवान शिव का भजन करें। तत्पश्चात हिमालय से विदा लेकर आप एकांत में गुम-सुम बैठी देवी पार्वती के पास आ गए। तब उनका हित करने की इच्छा से आपने उन्हें इस प्रकार सत्य वचन कहे।

आपने कहा—हे पार्वती! तुम मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुनो। तुम्हारी यह दशा देखकर ही मैं तुमसे यह बात कह रहा हूं। तुमने हिमालय पर्वत पर पधारे महादेवजी की सेवा की, परंतु तुम्हारे मन में कहीं न कहीं अहंकार का वास हो गया था। शिव भक्तवत्सल हैं। वे अपने भक्तों पर सदैव अपनी कृपादृष्टि बनाए रखते हैं। वे विरक्त और महायोगी हैं। तुम्हारे अंदर उत्पन्न हुए अभिमान को तोड़ने के लिए ही सदाशिव ने ऐसा किया है। अतः तुम उन्हें तपस्या द्वारा प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। तुम चिरकाल तक उत्तम भक्ति भाव से उनकी तपस्या करो। तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर महादेवजी निश्चय ही तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनाना स्वीकार करेंगे यही शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।

हे नारद! आपकी यह बात सुनकर देवी शिवा हर्षित होते हुए इस प्रकार बोलीं—हे मुनिश्रेष्ठ! आप सबकुछ जानने वाले तथा इस जगत का उपकार करने वाले हैं। अतः आप शिवजी की आराधना के लिए मुझे कोई मंत्र प्रदान करें। तब आपने पार्वती को पंचाक्षर शिव मंत्र 'ॐ नमः शिवाय'का विधिपूर्वक उपदेश दिया। इसके प्रभाव का वर्णन करते हुए आपने कहा—यह मंत्र सब मंत्रों का राजा है और सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है। यह मंत्र भगवान शिव को बहुत प्रिय है। यह साधक को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। इस पंचाक्षर मंत्र का विधिपूर्वक व नियमपूर्वक जाप करने से शिवजी के साक्षात दर्शन होते हैं। देवी! इस मंत्र का विधिपूर्वक जाप करने से तुम्हारे आराध्य देव करुणानिधान भगवान शिव शीघ्र ही तुम्हारे समक्ष प्रकट हो जाएंगे। अतः तुम शुद्ध हृदय से शिवजी के चरणों का चिंतन करती हुई इस महामंत्र का जाप करो। इससे तुम्हारे आराध्य देव संतुष्ट होकर तुम्हें दर्शन देंगे। अब देवी पार्वती तुम इस मंत्र को जपते हुए शिवजी की तपस्या करो। इससे महादेव जी वश में हो जाते हैं। उत्तम भाव से की गई तपस्या से ही मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है।

ब्रह्माजी बोले—नारद! तुम भगवान शिव के प्रिय भक्त हो। तुम अपनी इच्छानुसार जगत में भ्रमण करते हो। तुमने देवी पार्वती को सभी कुछ समझाकर देवताओं के हित का कार्य किया। तत्पश्चात तुम स्वर्गलोक को चले गए। तुम्हारी बात सुनकर देवी पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं।

इक्कीसवां अध्याय

पार्वती की तपस्या

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षि नारद! जब तुम पंचाक्षर मंत्र का उपदेश देकर उनके घर से चले आए तो देवी पार्वती मन ही मन बहुत प्रसन्न हुईं क्योंकि उन्हें महादेव जी को पति रूप में प्राप्त करने का साधन मिला गया था। वे जान गई थीं कि त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को सिर्फ उनकी तपस्या करके ही जीता जा सकता है। तब मन ही मन तपस्या करने का निश्चय करके पार्वती अपने पिता हिमराज और माता मैना से बोलीं कि मैं शिवजी की तपस्या करना चाहती हूं। तप के द्वारा ही मेरे शरीर, स्वरूप, जन्म एवं वंश आदि की कृतकृत्यता होगी। इसलिए आप मुझे तप करने की आज्ञा प्रदान करें। उनकी तप करने की बात सुनकर पिता हिमालय ने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी परंतु माता मैना ने उन्हें घर से दूर वनों में जाकर तपस्या करने से रोका। पार्वती को रोकते हुए मैना के मुंह से 'उ' 'मा' शब्द निकले तभी से उनका नाम 'उमा' हो गया। पार्वती के हठ के सामने मैना कुछ न कर सकीं। तब खुशी से उन्होंने पार्वती को तपस्या करने की आज्ञा प्रदान कर दी। तत्पश्चात माता-पिता की आज्ञा पाकर देवी पार्वती खुशी से मन में शिवजी का स्मरण करते हुए अपनी सखियों को साथ लेकर तपस्या करने के लिए चली गईं। रास्ते में पार्वती ने सुंदर वस्त्रों को त्याग दिया तथा वल्कल और मृग चर्म को धारण कर लिया। उत्तम वस्त्रों का त्याग करने के उपरांत देवी गंगोत्री नामक तीर्थ की ओर चल दीं।

जिस स्थान पर भगवान शंकर ने घोर तपस्या की थी और जहां शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया था, वह स्थान गंगावतरण तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। वहीं पर देवी पार्वती ने तप करने का निश्चय किया। गौरी के यहां तपस्या करने से ही यह पर्वत 'गौरी शिखर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। उस स्थान पर पार्वती ने अनेक फलों के वृक्ष लगाए। तत्पश्चात पृथ्वी को शुद्ध करके वेदी बनाकर अपनी इंद्रियों को वश में करके मन को एकाग्र कर कठिन तपस्या करनी आरंभ कर दी। ऐसी तपस्या ऋषि-मुनियों के लिए भी दुष्कर थी। भयंकर गरमी के दिनों में पार्वती अपने चारों ओर अग्नि जलाकर बीच में बैठकर 'ॐ नमः शिवाय' का जाप करती थीं। वर्षा ऋतु में वे किसी चट्टान पर अथवा वेदी पर बैठकर निरंतर जलधारा से भीगती हुई शांत भाव से मंत्र जपती रहती थीं। सर्दियों में बिना कुछ खाए ठंडे जल में बैठकर पंचाक्षर मंत्र का जाप करती थीं। कभी-कभी तो वे पूरी रात बर्फ की चट्टान पर बैठकर ध्यान करती थीं। सबकुछ भूलकर वे भगवान शिव के ध्यान में मग्न होकर उनका ध्यान करती रहती थीं। समय मिलने पर अपने द्वारा लगाए गए वृक्षों को पानी देती थीं।

शुद्ध हृदय वाली पार्वती आंधी-तूफान, कड़ाके की सर्दी, मूसलाधार वर्षा तथा तेज धूप की परवाह किए बगैर निरंतर मनोवांछित फलों के दाता भगवान शिव का ध्यान करती रहती थीं। उन पर अनेक प्रकार के कष्ट आए परंतु उनका मन शिवजी के चरणों में ही लगा रहा।

तपस्या के पहले वर्ष में उन्होंने केवल फलाहार किया। दूसरे वर्ष में वे केवल पेड़ के पत्तों को ही खाती थीं। इस प्रकार तपस्या करते-करते अनेकानेक वर्ष बीतते गए। देवी पार्वती ने सबकुछ खाना-पीना छोड़ दिया था। अब वे केवल निराहार रहकर ही शिवजी की आराधना करती थीं। तब भोजन हेतु पर्ण का भी त्याग कर देने के कारण देवताओं ने उन्हें 'अपर्णा' नाम दिया। तत्पश्चात देवी पार्वती एक पैर पर खड़ी होकर 'ॐ नमः शिवाय' का जाप करने लगीं। उनके शरीर पर वल्कल वस्त्र थे तथा मस्तक पर जटाएं थीं। इस प्रकार उस तपोवन में भगवान शिव की तपस्या करते-करते तीन हजार वर्ष बीत गए।

तीन हजार वर्ष बीत जाने पर देवी पार्वती को चिंता सताने लगी। वे सोचने लगीं कि क्या इस समय महादेव जी यह नहीं जानते कि मैं उनके लिए ही तपस्या कर रही हूं? फिर क्या कारण है कि वे मेरे पास अभी तक नहीं आए। वेदों की महिमा तो यही कहती है कि भगवान शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा, सबकुछ जानने वाले, सभी ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले, सबके मन की बातों को सुनने वाले, मनोवांछित वस्तु प्रदान करने वाले तथा समस्त दुखों को दूर करने वाले हैं। तब क्यों वे अपनी कृपादृष्टि से मुझ दीन को कृतार्थ नहीं करते? मैंने अपनी सभी इच्छाओं और कामनाओं को त्यागकर अपना ध्यान भगवान शिव में लगाया है। भगवन् यदि मैंने पंचाक्षर मंत्र का भक्तिपूर्वक जाप किया हो तो महादेवजी आप मुझ पर प्रसन्न हों।

इस प्रकार हर समय पार्वती शिवजी के चरणों के ध्यान में ही मग्न रहती थीं। जगदंबा मां का साक्षात अवतार देवी पार्वती की वह तपस्या परम आश्चर्यजनक थी। उनकी तपस्या सभी को मुग्ध कर देने वाली थी। उनके तप की महिमा के फलस्वरूप प्राणी और जानवर उनके ध्यान में बाधा नहीं बनते थे। उनकी तपस्या के परिणामस्वरूप वहां का वातावरण बड़ा मनोरम हो गया था। वृक्ष सदा फलों से लदे रहते थे। विभिन्न प्रकार के सुंदर सुगंधित फूल हर समय वहां खिले रहते थे। वह स्थान कैलाश पर्वत की सी शोभा पा रहा था तथा पार्वती की तपस्या की सिद्धि का साकार रूप बन गया था।

बाईसवां अध्याय

देवताओं का शिवजी के पास जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्वर! भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती को तपस्या करते-करते अनेक वर्ष बीत गए। परंतु भगवान शिव ने उन्हें वरदान तो दूर अपने दर्शन तक न दिए। तब पार्वती के पिता हिमाचल, उनकी माता मैना और मेरु एवं मंदराचल ने आकर पार्वती को बहुत समझाया तथा उनसे वापस घर लौट चलने का अनुरोध किया।

तब उन सबकी बात सुनकर देवी पार्वती ने विनम्रतापूर्वक कहा—हे पिताजी और माताजी! क्या आप लोगों ने मेरे द्वारा की गई प्रतिज्ञा को भुला दिया है? मैं भगवान शिव को अवश्य ही अपनी तपस्या द्वारा प्राप्त करूंगी। आप निश्चिंत होकर अपने घर लौट जाएं। इसी स्थान पर महादेव जी ने क्रोधित होकर कामदेव को भस्म कर दिया था और वनों को अपनी क्रोधाग्नि में भस्म कर दिया था। उन त्रिलोकीनाथ भगवान शंकर को मैं अपनी तपस्या द्वारा यहां बुलाऊंगी। आप सभी यह जानते हैं कि भक्तवत्सल भगवान शिव को केवल भक्ति से ही वश में किया जा सकता है। अपने पिता, माता और भाइयों से ये वचन कहकर देवी पार्वती चुप हो गईं। उन्हें समझाने आए उनके सभी परिजन उनकी प्रशंसा करते हुए वापस अपने घर लौट गए। अपने माता-पिता के लौटने के पश्चात देवी पार्वती दुगुने उत्साह के साथ पुनः तपस्या करने में लीन हो गईं। उनकी अद्‌भुत तपस्या को देखकर सभी देवता, असुर, मनुष्य, मुनि आदि सभी चराचर प्राणियों सहित पूरा त्रिलोक संतृप्त हो उठा।

देवता समझ नहीं पा रहे थे कि पूरी प्रकृति क्यों उद्विग्न और अशांत है। यह जानने के लिए इंद्र व सब देवता गुरु बृहस्पति के पास गए। तत्पश्चात वे सभी मुझ विधाता की शरण में सुमेरु पर्वत पर पहुंचे। वहां पहुंचकर उन्होंने मुझे हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा मेरी स्तुति की। तब वे मुझसे पूछने लगे कि प्रभु! इस जगत के संतृप्त होने का क्या कारण है? उनका यह प्रश्न सुनकर मैंने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के चरणों का ध्यान करते हुए यह जान लिया कि जगत में उत्पन्न हुआ दाह देवी पार्वती द्वारा की गई तपस्या का ही परिणाम है। अतः सबकुछ जान लेने के उपरांत मैं इस बात को श्रीहरि विष्णु को बताने के लिए देवताओं के साथ क्षीरसागर को गया। वहां श्रीहरि सुखद आसन पर विराजमान थे। मुझ सहित सभी देवताओं ने विष्णुजी को प्रणाम कर उनकी स्तुति करना आरंभ कर दिया। तत्पश्चात मैंने श्रीहरि से कहा—हे हरि! देवी पार्वती के उग्र तप से संतृप्त होकर हम सभी आपकी शरण में आए हैं। हम सबकी रक्षा कीजिए। भगवन् हमें बचाइए।

हमारी करुण पुकार सुनकर शेषशय्या पर बैठे श्रीहरि बोले—आज मैंने देवी पार्वती की इस घोर तपस्या का रहस्य जान लिया है परंतु उनकी इच्छा को पूरा करना हमारे वश की बात नहीं है। अतः हम सब मिलकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के पास चलते हैं। केवल वे ही हैं जो हमें इस विकट स्थिति से उबार सकते हैं। देवी पार्वती तपस्या के माध्यम से भगवान शिव

को पति रूप में प्राप्त करना चाहती हैं। इसलिए भगवान शिव से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वे देवी पार्वती से विधिवत विवाह कर लें। हम सभी को इस विश्व का कल्याण करने के लिए भगवान शिव से पार्वती का पाणिग्रहण करने का अनुरोध करना चाहिए।

भगवान विष्णु की बात सुनकर सभी देवता भयभीत होते हुए बोले—भगवन्! भगवान शिव बहुत क्रोधी और हठी हैं। उनके नेत्र काल की अग्नि के समान दीप्त हैं। हम भूलकर भी भगवान शंकर के पास नहीं जाएंगे। उनका क्रोध सहा नहीं जाएगा। उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया था। हमें डर है कि कहीं क्रोध में वे हमें भी भस्म न कर दें।

हे नारद! इंद्रादि देवताओं की बात सुनकर लक्ष्मीपति श्रीहरि बोले—तुम सब मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो! भगवान शिव समस्त देवताओं के स्वामी और भयों का नाश करने वाले हैं। तुम सबको मिलकर कल्याणकारी भगवान शिव की शरण में जाना चाहिए। भगवान शंकर पुराण पुरुष, सर्वेश्वर और परम तपस्वी हैं। हमें उनकी शरण में जाना ही चाहिए। भगवान विष्णु के इन वचनों को सुनकर सब देवता त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का दर्शन करने के लिए उस स्थान की ओर चल पड़े, जहां महादेव जी तपस्या कर रहे थे।

उस मार्ग में ही देवी पार्वती उत्तम तपस्या में लीन थीं। उनके तप को देखकर सभी देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। तत्पश्चात उनके तप की प्रशंसा करते हुए मैं, श्रीहरि विष्णु और अन्य देवता भगवान शिव के दर्शनार्थ चल दिए। वहां पहुंचकर हम सभी देवता कुछ दूरी पर खड़े हो गए और हमने तुम्हें भगवान शिव के करीब यह देखने के लिए भेजा कि वे कुपित हैं या प्रसन्न। नारद! तुम भगवान शिव के परमभक्त हो तथा उनकी कृपा से सदा निर्भय रहते हो। इसलिए तुम भगवान शिव के निकट गए तथा तुमने उन्हें प्रसन्न देखा। फिर तुम वापस लौटकर हम सभी के पास आए तथा उनकी प्रसन्नता के बारे में हमें बताया। तब हम सब भगवान शिव के करीब गए। भगवान शिव सुखपूर्वक प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए थे। भक्तवत्सल भगवान शिव चारों ओर से अपने गणों से घिरे हुए थे और तपस्वी का रूप धारण करके योगपट्ट पर आसीन थे। मैंने, श्रीहरि और अन्य देवताओं ने भगवान शिव शंकर को प्रणाम करके वेदों और उपनिषदों द्वारा ज्ञात विधि से उनकी स्तुति की।

तेईसवां अध्याय

शिव से विवाह करने का उनुरोध

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! देवताओं ने वहां पहुंचकर भगवान शिव को प्रणाम करके उनकी स्तुति की। वहां उपस्थित नंदीश्वर भगवान शिव से बोले—प्रभु! देवता और मुनि संकट में पड़कर आपकी शरण में आए हैं। सर्वेश्वर आप उनका उद्धार करें। दयालु नंदी के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव ने धीरे-धीरे आंखें खोल दीं। समाधि से विरत होकर परमज्ञानी परमात्मा भगवान शंकर देवताओं से बोले—हे ब्रह्माजी! हे श्रीहरि विष्णु! एवं अन्य देवताओ, आप सब यहां एक साथ क्यों आए हैं? आपके आने का क्या प्रयोजन है? आप सभी को साथ देखकर लगता है कि अवश्य ही कोई महत्वपूर्ण बात है। अतः आप मुझे उस बात से अवगत कराएं।

भगवान शंकर के ये वचन सुनकर सभी देवताओं का भय पूर्णतः दूर हो गया और वे प्रसन्न होकर भगवान विष्णु को देखने लगे। तब श्रीहरि विष्णु सभी देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हुए भगवान शिव से बोले—भगवान शंकर! तारकासुर नामक दानव ने हम सभी देवताओं को बहुत दुखी कर रखा है। उसने हमें अपने-अपने स्थानों से भी निकाल दिया है। यही सब बताने के लिए हम सब देवता आपके पास आए हैं। भगवन्! ब्रह्माजी द्वारा प्राप्त वरदान के फलस्वरूप उस तारकासुर की मृत्यु आपके पुत्र के द्वारा निश्चित है। हे स्वामी! आप उस दुष्ट का नाश कर हम सबकी रक्षा करें। हम सबका उद्धार कीजिए। प्रभो! आप हिमालय पुत्री पार्वती का पाणिग्रहण कीजिए। आपका विवाह ही हमारे कष्टों को दूर कर सकता है। आप भक्तवत्सल हैं। अपने भक्तों के दुखों को दूर करने के लिए आप देवी पार्वती से शीघ्र विवाह कर लीजिए।

विष्णुजी के ये वचन सुनकर भगवान शिव बोले—देवताओ! यदि मैं आपके कहे अनुसार परम सुंदरी देवी पार्वती से विवाह कर लूं तो इस धरती पर सभी मनुष्य देवता और ऋषि-मुनि कामी हो जाएंगे। तब वे परमार्थ पद पर नहीं चल सकेंगे। देवी दुर्गा अपने विवाह से कामदेव को पुनः जीवित कर देंगी। मैंने कामदेव को भस्म करके देवताओं के हित का ही कार्य किया था। सभी देव निष्काम भाव से उत्तम तपस्या कर रहे थे, ताकि विशिष्ट प्रयोजन को पूर्ण कर सकें। कामदेव के न होने से सभी देवता निर्विकार होकर शांत भाव से समाधि में ध्यानमग्न होकर बैठ सकेंगे। काम से क्रोध होता है। क्रोध से मोह हो जाता है और मोह के फलस्वरूप तपस्या नष्ट हो जाती है। इसलिए मैं तो आप सबसे भी यही कहता हूं कि आप भी काम और क्रोध को त्यागकर तपस्या करें।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर हम सभी हत्प्रभ से उन्हें देखते रहे और वे हम सब देवताओं और मुनियों को निष्काम होने का उपदेश देकर चुप हो गए और पुनः पहले की भांति सुस्थिर होकर ध्यान में लीन हो

गए। भगवान शिव ब्रह्म स्वरूप आत्मचिंतन में लग गए। श्रीहरि विष्णु सहित अन्य देवताओं ने जब परमेश्वर शिव को ध्यान में मग्न देखा तब सब देवता नंदीश्वर से कहने लगे—नंदीश्वर जी! हम अब क्या करें? हमें भगवान शिव को प्रसन्न करने का कोई मार्ग सुझाइए। तब नंदीश्वर सभी देवताओं को संबोधित करते हुए बोले—आप भक्तवत्सल भगवान शिव की प्रार्थना करते रहो। वे सदैव ही अपने भक्तों के वश में रहते हैं। तब नंदीश्वर की बात सुनकर देवता पुनः भगवान शिव की स्तुति करने लगे। वे बोले—हे देवाधिदेव! महादेव! करुणानिधान! भगवान शिव शंकर! हम दोनों हाथ जोड़कर आपकी शरण में आए हैं। आप हम सबके सभी दुखों और कष्टों को दूर कीजिए और हम सबका उद्धार कीजिए।

इस प्रकार देवताओं ने भगवान शिव की अनेकों बार स्तुति की। इसके बाद भी जब भगवान ने आंखें नहीं खोलीं तो सब देवता उनकी करुण स्वर में स्तुति करते हुए रोने लगे। तब श्रीहरि विष्णु मन ही मन भगवान शिव का स्मरण करने लगे और करुण स्वर में अपना निवेदन करने लगे।

देवताओ, मेरे और श्रीहरि विष्णु के बार-बार निवेदन करने पर भगवान शिव की तंद्रा टूटी और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी आंखें खोल दीं। तब भगवान शिव बोले—तुम सब एक साथ यहां किसलिए आए हो? मुझे इससे अवगत कराओ।

श्रीहरि विष्णु बोले—हे देवेश्वर! हे शिव शंकर! आप सर्वज्ञ हैं। सबके अंतर्यामी ईश्वर हैं। आप तो सबकुछ जानते हैं। भगवन्, आप हमारे मन की बात भी अवश्य ही जानते होंगे। फिर भी यदि आप हमारे मुख से सुनना चाहते हैं तो सुनें। तारक नामक असुर आजकल बड़ा बलशाली हो गया है। वह देवताओं को अनेकों प्रकार के कष्ट देता है। इसलिए हम सभी देवताओं ने देवी जगदंबा से प्रार्थना कर उन्हें गिरिराज हिमालय की पुत्री पार्वती के रूप में अवतार ग्रहण कराया है। इसलिए ही हम बार-बार आपकी प्रार्थना कर रहे हैं कि आप देवी पार्वती को पत्नी रूप में प्राप्त करें। ब्रह्माजी के वरदान के अनुसार भगवान शिव और देवी पार्वती का पुत्र ही तारकासुर का वध कर हमें उसके आतंक से मुक्त करा सकता है। मुनिश्रेष्ठ नारद के उपदेश के अनुसार देवी पार्वती कठोर तपस्या कर रही हैं। उनकी तपस्या के तेज के प्रभाव से समस्त चराचर जगत संतप्त हो गया है। इसलिए हे भगवन्! आप पार्वती को वरदान देने के लिए जाइए। हे प्रभु! देवताओं पर आए इस संकट और उनके दुखों को मिटाने के लिए आप देवी पार्वती पर अपनी कृपादृष्टि कीजिए। आपका विवाह-उत्सव देखने के लिए हम सभी बहुत उत्साहित हैं। अतः प्रभु, आप शीघ्र ही विवाह बंधन में बंधकर हमारी इस इच्छा को भी पूरा करें। भगवन्! आपने रति को जो वरदान प्रदान किया था, उसके पूरा होने का भी अवसर आ गया है। अतः महेश्वर! आप अपनी प्रतिज्ञा को शीघ्र ही पूरा करें।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर और प्रणाम करके विष्णुजी और अन्य देवताओं ने पुनः शिवजी की स्तुति की। तत्पश्चात वे सब हाथ जोड़कर खड़े हो गए। तब उन्हें देखकर वेद मर्यादाओं के रक्षक भगवान शिव हंसकर बोले—'हे हरे! हे विधे! और हे देवताओ! मेरे अनुसार विवाह करना उचित कार्य नहीं है क्योंकि विवाह मनुष्य को बांधकर रखने वाली बेड़ी है। जगत में अनेक कुरीतियां हैं। स्त्री का साथ उनमें से एक है। मनुष्य सभी प्रकार के बंधनों

से मुक्त हो सकता है परंतु स्त्री के बंधन से वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। एक बार को लोहे और लकड़ी की बनी जंजीरों से मुक्ति मिल सकती है परंतु विवाह एक ऐसी कैद है, जिससे छुटकारा पाना असंभव है। विवाह मन को विषयों के वशीभूत कर देता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति असंभव हो जाती है। मनुष्य यदि सुख की इच्छा रखता है तो उसे इन विषयों को त्याग देना चाहिए। विषयों को विष के समान माना जाता है। इन सब बातों का ज्ञान होते हुए भी, मैं आप सबकी प्रार्थना को सफल करूंगा क्योंकि मैं सदैव ही अपने भक्तों के अधीन रहता हूं। मैंने अपने भक्तों की रक्षा के लिए अनेक कष्ट सहे हैं।

हे हरे! और हे विधे! आप तो सबकुछ जानते ही हैं। मेरे भक्तों पर जब-जब विपत्ति आती है, तब-तब मैं उनके सभी कष्टों को दूर करता हूं। भक्तों के अधीन होने के कारण मैं उनके हित में अनुचित कार्य भी कर बैठता हूं। भक्तों के दुखों को मैं हमेशा दूर करता हूं। तारकासुर ने तुम्हें जो दुख दिए हैं, उन्हें मैं भलीभांति जानता हूं। उनको मैं अवश्य ही दूर करूंगा। जैसा कि आप सभी जानते हैं, मेरे मन में विवाह करने की कोई इच्छा नहीं है फिर भी पुत्र प्राप्ति हेतु मैं देवी पार्वती का पाणिग्रहण अवश्य करूंगा। अब तुम सब देवता निर्भय और निडर होकर अपने-अपने धाम को लौट जाओ। मैं तुम्हारे कार्य की सिद्धि अवश्य करूंगा। इसलिए अपनी सभी चिंताओं को त्यागकर सभी सहर्ष अपने घर जाओ।

ऐसा कहकर भगवान शिव शंकर पुनः मौन हो गए और समाधि में बैठकर ध्यान में मग्न हो गए। तत्पश्चात, विष्णुजी और मैं देवराज इंद्र सहित सभी देवता अपने-अपने धामों को खुशी से लौट आए।

चौबीसवां अध्याय

सप्तऋषियों द्वारा पार्वती की परीक्षा

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओं के अपने-अपने निवास पर लौट जाने के उपरांत भगवान शिव पार्वती की तपस्या की परीक्षा लेने के विषय में सोचने लगे। वे अपने परात्पर, माया रहित स्वरूप का चिंतन करने लगे। वैसे तो वे सर्वेश्वर और सर्वज्ञ हैं। वे ही सब के रचनाकार और परमेश्वर हैं।

उस समय देवी पार्वती बहुत कठोर तप कर रही थीं। उस तपस्या को देखकर स्वयं भगवान शिव भी आश्चर्यचकित हो गए। उनकी अटूट भक्ति ने शिवजी को विचलित कर दिया। तब भगवान शिव ने सप्तऋषियों का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही सातों ऋषि वहां आ गए। वे अत्यंत प्रसन्न थे और अपने सौभाग्य की सराहना कर रहे थे। उन्हें देखकर शिवजी हंसते हुए बोले—आप सभी परम हितकारी व सभी वस्तुओं का ज्ञान रखने वाले हैं। गिरिराज हिमालय की पुत्री पार्वती इस समय सुस्थिर होकर शुद्ध हृदय से गौरी शिखर पर्वत पर घोर तपस्या कर रही हैं। उनकी इस तपस्या का एकमात्र उद्देश्य मुझे पति रूप में प्राप्त करना है। उन्होंने अपनी सभी कामनाओं को त्याग दिया है। मुनिवरो, आप सब मेरी इच्छा से देवी पार्वती के पास जाएं और उनकी दृढ़ता की परीक्षा लें।

भगवान शिव की आज्ञा पाकर सातों ऋषि देवी पार्वती के तपस्या वाले स्थान पर चले गए। वहां देवी पार्वती तपस्या में लीन थीं। उनका मुख तपपुंज से प्रकाशित था। उन उत्तम व्रतधारी सप्तऋषियों ने हाथ जोड़कर मन ही मन देवी पार्वती को प्रणाम किया। तत्पश्चात ऋषि बोले—हे देवी! गिरिराज नंदिनी! हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि आप किसलिए यह तपस्या कर रही हैं? आप इस तप के द्वारा किस देवता को प्रसन्न करना चाहती हैं? और आपको किस फल की इच्छा है?

उन सप्तऋषियों के इस प्रकार पूछने पर गिरिराजकुमारी देवी पार्वती बोलीं—मुनीश्वरो! आप लोगों को मेरी बातें अवश्य ही असंभव लगेंगी। साथ ही मुझे इस बात की भी आशंका है कि आप लोग मेरा परिहास उड़ाएंगे परंतु फिर भी जब आपने मुझसे कुछ पूछा है तो मैं आपको इसका उत्तर अवश्य दूंगी। मेरा मन एक बहुत उत्तम कार्य के लिए तपस्या कर रहा है। वैसे तो यह कार्य होना बहुत मुश्किल है, तथापि मैं इसकी सिद्धि हेतु पूरे मनोयोग से कार्य कर रही हूं। देवर्षि नारद द्वारा दिए गए उपदेश के अनुसार मैं भगवान शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए उनकी तपस्या कर रही हूं। मेरा मन सर्वथा उन्हीं के ध्यान में मग्न रहता है तथा मैं उन्हीं के चरणारविंदों का चिंतन करती रहती हूं।

देवी पार्वती का यह वचन सुनकर सप्तर्षि हंसने लगे और पार्वती को तपस्या मार्ग से निवृत्त करने के उद्देश्य से मिथ्या वचन बोलने लगे। उन्होंने कहा—'हे हिमालय पुत्री पार्वती! देवर्षि नारद तो व्यर्थ ही अपने को महान पंडित मानते हैं। उनके मन में क्रूरता भरी रहती है।

आप तो बहुत समझदार दिखाई देती हैं। क्या आप उनको समझ नहीं पाईं? नारद सदैव छल-कपट की बातें करते हैं। वे दूसरों को मोह-माया में डालते रहते हैं। उनकी बातें मानने से सिर्फ हानि ही होती है। प्रजापति दक्ष के पुत्रों को उन्होंने ऐसा उपदेश दिया कि वे हमेशा के लिए अपना घर छोड़कर चले गए। दक्ष के ही अन्य पुत्रों को भी उन्होंने बेघर कर दिया और वे भिखारी बन गए। विद्याधर चित्रकेतु का नारद ने घर उजाड़ दिया। प्रह्लाद को भक्ति मार्ग पर चलवाकर और उन्हें अपना शिष्य बनाकर उन्होंने हिरण्यकशिपु से प्रह्लाद पर बहुत से अत्याचार करवाए। मुनि नारद सदैव लोगों को अपनी मीठी-मीठी वाणी द्वारा मोहित करते हैं। फिर अपनी इच्छानुसार सबसे कार्य करवाते हैं। वे केवल शरीर से ही शुद्ध दिखाई देते हैं जबकि उनका मन मलिन और क्लेशयुक्त रहता है। वे सदैव हमारे साथ रहते हैं। इसलिए हम उन्हें भली-भांति जानते और पहचानते हैं। हे देवी! आप तो अत्यंत विद्वान और परम ज्ञानी जान पड़ती हैं। भला आप कैसे नारद के द्वारा मूर्ख बन गईं?

देवी! आप जिनके लिए इतनी कठोर तपस्या कर रही हैं, वे भगवान शिव तो बहुत उदासीन और निर्विकार हैं। वे सदैव काम के शत्रु हैं। हे पार्वती! आप थोड़ा विचार करके देखो कि आप किस प्रकार का पति चाहती हैं? आप मुनि नारद के बहकावे में न आएं। भगवान शिव तो महा निर्लज्ज, अमंगल रूप, काम के परम शत्रु, निर्विकारी, उदासीन, कुल से हीन, भूतों व प्रेतों के साथ रहने वाले हैं। भला इस प्रकार का पति पाकर आपको किस प्रकार का सुख मिल सकता है? नारद मुनि ने अपनी माया से तुम्हारे ज्ञान और विवेक को पूर्णतया नष्ट कर दिया है और तुम्हें अपनी छल-कपट-प्रपंच वाली बातों से छला है। देवी! कृपया आप यह सोचें कि इन्हीं शिव शंकर ने परम गुणवती सुंदर दक्ष पुत्री सती के साथ विवाह किया था। उस बेचारी को भी उनके साथ अत्यंत दुख उठाने पड़े। भगवान शिव सती को त्यागकर पुनः अपने ध्यान में निमग्न हो गए। वे सदा अकेले और शांत रहने वाले हैं। वे किसी स्त्री के साथ निर्वाह नहीं कर सकते। तभी तो देवी सती ने इसी दुख के कारण अपने पिता के घर जाकर अपने शरीर को योगाग्नि में जलाकर भस्म कर दिया था।

हे देवी! इन सब बातों को यदि आप शांत मन से ध्यान लगाकर सोचें तो पूर्णतया सही पाएंगी। इसलिए हम आपसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप यह तपस्या कर शिवजी को प्रसन्न करने का हठ छोड़ दें और वापिस अपने पिता हिमालय के घर चली जाएं। जहां तक आपके विवाह का प्रश्न है हम आपका विवाह योग्य वर से अवश्य करा देंगे। इस समय आपके लिए त्रिलोकी में सबसे योग्य पुरुष बैकुण्ठ के स्वामी, लक्ष्मीपति श्रीहरि विष्णु हैं। वे तुम्हारे अनुरूप ही सुंदर एवं मंगलकारी हैं। उन्हें पति के रूप में प्राप्त करके आप सुखी हो जाएंगी। अतः देवी आप भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त करने के इस हठ को त्याग दें।

सप्तऋषियों की ऐसी बातें सुनकर साक्षात जगदंबा का अवतार देवी पार्वती हंसने लगीं और उन परम ज्ञानी सप्तऋषियों से बोलीं—हे मुनीश्वरो, आप अपनी समझ के अनुसार सही कह रहे हैं परंतु मैं अपने दृढ़ विश्वास को त्याग नहीं सकती। मैं गिरिराज हिमालय की पुत्री हूं। पर्वत पुत्री होने के कारण मैं स्वाभाविक रूप से कठोर हूं। मैं तपस्या से घबरा नहीं सकती। इसलिए हे मुनिगणो, आप मुझे रोकने की चेष्टा न करें। मैं जानती हूं कि देवर्षि नारद ने जो

उपदेश मुझे दिया है और शिवजी की प्राप्ति का साधन जो मुझे बताया है, वह असत्य नहीं है। मैं उसका पालन अवश्य करूंगी। यह तो सर्वविदित है कि गुरुजनों का वचन सदैव हित के लिए ही होता है। इसलिए मैं अपने गुरु नारद जी के वचनों का सर्वथा पालन करूंगी। इससे ही मुझे दुखों से छुटकारा मिलेगा और सुख की प्राप्ति होगी। जो गुरु के वचनों को मिथ्या जानकर उन पर नहीं चलते, उन्हें इस लोक और परलोक में दुख ही मिलता है। इसलिए गुरु के वचनों को पत्थर की लकीर मानकर उनका पालन करना चाहिए। अतः मेरा घर बसे या न बसे, मैं तपस्या का यह पथ नहीं छोड़ूंगी।

हे मुनिश्वरो! आपका कथन भी सही है। भगवान विष्णु सद्‌गुणों से युक्त हैं तथा नित नई लीलाएं रचते हैं परंतु भगवान शिव साक्षात परब्रह्म हैं। वे परम आनंदमय हैं। माया-मोह में फंसे लोगों को ही प्रपंचों की आवश्यकता होती है। ईश्वर को इन सबकी न तो कोई आवश्यकता होती है और न ही रुचि। भगवान शिव सिर्फ भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। वे धर्म या जाति विशेष पर कृपा नहीं करते। ऋषियो! यदि भगवान शिव मुझे पत्नी रूप में नहीं स्वीकारेंगे, तो मैं आजीवन कुंवारी ही रहूंगी और किसी अन्य का वरण कदापि नहीं करूंगी। यदि सूर्य पूर्व की जगह पश्चिम से निकलने लगे, पर्वत अपना स्थान छोड़ दें और अग्नि शीतलता अपना ले, चट्टानों पर फूल खिलने लगें, तो भी मैं अपना हठ नहीं छोड़ूंगी।

ऐसा कहकर देवी पार्वती ने सप्तऋषियों को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा भक्तिभाव से शिव चरणों का स्मरण करते हुए पुनः तपस्या में लीन हो गईं। तब पार्वती के श्रीमुख से उनका दृढ़ निश्चय सुनकर सप्तऋषि बहुत प्रसन्न हुए और उनकी जय-जयकार करने लगे। उन्होंने पार्वती को तपस्या में सफल होकर भगवान शिव से मनोवांछित वरदान प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात देवी पार्वती की तपस्या की परीक्षा लेने गए सप्तर्षि उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न मुद्रा में भगवान शिव को वहां हुई सभी बातों का ज्ञान कराने के लिए शीघ्र उनके धाम की ओर चल दिए। तब भगवान शिव शंकर के पास पहुंचकर सप्तऋषियों ने उनके समीप जाकर दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। तत्पश्चात सप्तऋषियों ने महादेव जी को सारा वृत्तांत बताया। फिर प्रभु शिव की आज्ञा पाकर सप्तऋषि स्वर्गलोक चले गए।

पच्चीसवां अध्याय

शिवजी द्वारा पार्वती जी की तपस्या की परीक्षा करना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! सप्तऋषियों ने पार्वती जी के आश्रम से आकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को वहां का सारा वृत्तांत सुनाया। सप्तऋषियों के अपने लोक चले जाने के पश्चात शिवजी ने देवी पार्वती की तपस्या की स्वयं परीक्षा लेने के बारे में सोचा। परीक्षा लेने के लिए महादेव जी ने एक तपस्वी का रूप धारण किया और उस स्थान की ओर चल दिए जहां पार्वती तपस्यारत थीं। आश्रम में पहुंचकर उन्होंने देखा देवी पार्वती वेदी पर बैठी हुई थीं और उनका मुखमंडल चंद्रमा की कला के समान तेजोद्दीप्त था। भगवान शिव ब्राह्मण देवता का रूप धारण करके उनके सम्मुख पहुंचे। ब्राह्मण देवता को आया देखकर पार्वती ने भक्तिपूर्वक उनका फल-फूलों से पूजन सत्कार किया। पूजन के बाद देवी पार्वती ने ब्राह्मण देवता से पूछा—हे ब्राह्मणदेव! आप कौन हैं और कहां से पधारे हैं? मुनिश्वर! आपके परम तेज से यह पूरा वन प्रकाशित हो रहा है। कृपा कर मुझे अपने यहां आने का कारण बताइए।

तब ब्राह्मण रूप धारण किए हुए महादेव जी बोले—मैं इच्छानुसार विचरने वाला ब्राह्मण हूं। मेरा मन प्रभु के चरणों का ही ध्यान करता है। मेरी बुद्धि सदैव उन्हीं का स्मरण करती है। मैं दूसरों को सुखी करके खुश होता हूं। देवी, मैं एक तपस्वी हूं। पर आप कौन हैं? आप किसकी पुत्री हैं? और इस समय इस निर्जन वन में क्या कर रही हैं? हे देवी! आप इस दुर्लभ और कठिन तपस्या से किसे प्रसन्न करना चाहती हैं? तपस्या या तो ऋषि-मुनि करते हैं या फिर भगवान के चरणों में ध्यान लगाना वृद्धों का काम है। भला इस तरुणावस्था में आप क्यों घर के ऐशो आराम को त्यागकर ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई तपस्विनी का जीवन जी रही हैं? आप किस तपस्वी की धर्मपत्नी हैं और पति के समान तप कर रही हैं? हे देवी! अपने बारे में मुझे जानकारी दीजिए कि आपका क्या नाम है? और आपके पिता का क्या नाम है? किस प्रकार आप तप के प्रति आसक्त हो गईं? क्या आप वेदमाता गायत्री हैं? लक्ष्मी हैं अथवा सरस्वती हैं?

देवी पार्वती बोलीं—हे मुनिश्रेष्ठ! न तो मैं वेदमाता गायत्री हूं, न लक्ष्मी और न ही सरस्वती हूं। मैं गिरिराज हिमालय की पुत्री पार्वती हूं। पूर्व जन्म में मैं प्रजापति दक्ष की पुत्री सती थी परंतु मेरे पिता दक्ष द्वारा मेरे पति भगवान शिव का अपमान देखकर मैंने योगाग्नि द्वारा अपने शरीर को जलाकर भस्म कर दिया था। इस जन्म में भी प्रभु शिवशंकर की सेवा करने का मुझे अवसर मिला था। मैं नियमपूर्वक उनकी सेवा में व्यस्त थी परंतु दुर्भाग्य से कामदेव के चलाए गए बाण के फलस्वरूप शिवजी को क्रोध आ गया और उन्होंने कामदेव को अपने क्रोध की अग्नि से भस्म कर दिया और वहां से उठकर चले गए। उनके इस प्रकार चले जाने से मैं पीड़ित होकर उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करने हेतु तपस्या करने गंगा के तट पर चली

आई हूं। यहां मैं बहुत लंबे समय से कठोर तपस्या कर रही हूं ताकि मैं शिवजी को पुनः पति रूप में प्राप्त कर सकूं परंतु मैं ऐसा करने में सफल नहीं हो सकी हूं। मैं अभी अग्नि में प्रवेश करने ही वाली थी कि आपको आया देखकर ठहर गई। अब आप जाइए, मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी क्योंकि भगवान शिव ने मुझे स्वीकार नहीं किया है।

ऐसा कहकर देवी पार्वती उन ब्राह्मण देवता के सामने ही अग्नि में समा गईं। ब्राह्मण देव ने उन्हें ऐसा करने से बहुत रोका परंतु देवी पार्वती ने उनकी एक भी बात नहीं सुनी और अग्नि में प्रवेश कर लिया परंतु देवी पार्वती की तपस्या के प्रभाव के फलस्वरूप वह धधकती हुई अग्नि एकदम ठंडी हो गई। सहसा पार्वती आकाश में ऊपर की ओर उठने लगीं। तब ब्राह्मण रूप धारण किए हुए भगवान शिव हंसते हुए बोले—हे देवी! तुम्हारे शरीर पर अग्नि का कोई प्रभाव न पड़ना तुम्हारी तपस्या की सफलता का ही सूचक है। परंतु तुम्हारी मनोवांछित इच्छा का पूरा न होना तुम्हारी असफलता को दर्शाता है। अतः देवी तुम मुझ ब्राह्मण से अपनी तपस्या के मनोरथ को बताओ।

शिवजी के इस प्रकार पूछने पर उत्तम व्रत का पालन करने वाली देवी पार्वती ने अपनी सखी को उत्तर देने के लिए कहा। उनकी सखी बोलीं—हे साधु महाराज! मेरी सखी गिरिराज हिमालय की पुत्री पार्वती हैं। पार्वती का अभी तक विवाह नहीं हुआ है। ये भगवान शिव को ही पति रूप में प्राप्त करना चाहती हैं। इसी के लिए वे तीन हजार वर्षों से कठोर तपस्या कर रही हैं। मेरी सखी पार्वती ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इंद्र को छोड़कर पिनाकपाणि भगवान शंकर को ही पति रूप में प्राप्त करना चाहती हैं। इसलिए ये मुनि नारद की आज्ञानुसार कठोर तपस्या कर रही हैं।

देवी पार्वती की सखी की बातें सुनकर जटाधारी तपस्वी का वेष धारण किए हुए भगवान शिव हंसते हुए बोले—देवी! आपकी सखी ने जो कुछ मुझे बताया है, मुझे परिहास जैसा लगता है। यदि फिर भी यही सत्य है तो पार्वती आप स्वयं इस बात को स्वीकार करें और मुझसे इस बात को कहें।

छब्बीसवां अध्याय

पार्वती को शिवजी से दूर रहने का आदेश

पार्वती बोलीं—हे जटाधारी मुनि! मेरी सखी ने जो कुछ भी आपको बताया है, वह बिलकुल सत्य है। मैंने मन, वाणी और क्रिया से भगवान शिव को ही पति रूप में वरण किया है। मैं जानती हूं कि महादेव जी को पति रूप में प्राप्त करना बहुत ही दुर्लभ कार्य है। फिर भी मेरे हृदय में और मेरे ध्यान में सदैव वे ही निवास करते हैं। अतः उन्हीं की प्राप्ति के लिए ही मैंने इस तपस्या के कठिन मार्ग को चुना है। यह सब ब्राह्मण को बताकर देवी पार्वती चुप हो गईं। उनकी बातों को सुनकर ब्राह्मण देवता बोले—हे देवी! अभी कुछ समय पूर्व तक मेरे मन में यह जानने की प्रबल इच्छा थी कि क्यों आप कठोर तपस्या कर रही हैं परंतु देवी आपके मुख से यह सब सुनकर मेरी जिज्ञासा पूरी तरह शांत हो गई है। देवी आपके किए गए कार्य के अनुरूप ही इसका परिणाम होगा परंतु यदि यह तुम्हें सुख देता है तो यही करो। यह कहकर ब्राह्मण जैसे ही जाने के लिए उठे वैसे ही देवी पार्वती उन्हें प्रणाम करके बोली—हे विप्रवर! आप कहां जा रहे हैं? कृपया यहां कुछ देर और ठहरिए और मेरे हित की बात कहिए।

देवी पार्वती के ये वचन सुनकर साधु का वेश धारण किए हुए भगवान शिव वहीं ठहर गए और बोले—हे देवी! यदि आप वाकई मुझे यहां रोककर मुझसे अपने हित की बात सुनना चाहती हैं तो मैं आपको अवश्य ही समझाऊंगा, जिससे आपको अपने हित का स्वयं ज्ञान हो जाएगा। देवी! मैं स्वयं भी महादेव जी का भक्त हूं। इसलिए उन्हें अच्छी प्रकार से जानता हूं। जिन भगवान शिव को आप अपना पति बनाना चाहती हैं वे प्रभु शिव शंकर सदैव अपने शरीर पर भस्म धारण किए रहते हैं। उनके सिर पर जटाएं हैं। शरीर पर वस्त्रों के स्थान पर वे बाघ की खाल पहनते हैं और चादर के स्थान पर वे हाथी की खाल ओढ़ते हैं। हाथ में भीख मांगने के लिए कटोरे के स्थान पर खोपड़ी का प्रयोग करते हैं। सांपों के अनेक झुंड उनके शरीर पर सदा लिपटे रहते हैं। जहर को वे पानी की भांति पीते हैं। उनके नेत्र लाल रंग के और अत्यंत डरावने लगते हैं। उनका जन्म कब, कहां और किससे हुआ, यह आज तक भी कोई नहीं जानता। वे घर-गृहस्थी के बंधनों से सदा ही दूर रहते हैं। उनकी दस भुजाएं हैं। देवी! मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि शिवजी को अपना पति क्यों बनाना चाहती हो। आपका विवेक कहां चला गया है? प्रजापति दक्ष ने अपनी पुत्री सती को सिर्फ इसीलिए ही अपने यज्ञ में नहीं बुलाया, क्योंकि वे कपालधारी भिक्षुक की भार्या हैं। उन्होंने अपने यज्ञ में शिव के अतिरिक्त सभी देवताओं को भाग दिया। इसी अपमान से क्रोधित होकर सती ने अपने प्राणों को त्याग दिया था।

देवी आप अत्यंत सुंदर एवं स्त्रियों में रत्न स्वरूप हैं। आपके पिता गिरिराज हिमालय समस्त पर्वतों के राजा हैं। फिर क्यों आप इस उग्र तपस्या द्वारा भगवान शिव को पति रूप में

पाने का प्रयास कर रही हैं। क्यों आप सोने की मुद्रा के बदले कांच को खरीदना चाहती हैं? सुगंधित चंदन को छोड़कर अपने शरीर पर कीचड़ क्यों मलना चाहती हैं? सूर्य के तेज को छोड़कर क्यों जुगनू की चमक पाना चाहती हैं? सुंदर, मुलायम वस्त्रों को त्यागकर क्यों चमड़े से अपने शरीर को ढंकना चाहती हैं? क्यों राजमहल को छोड़कर वनों और जंगलों में भटकना चाहती हैं? आपकी बुद्धि को क्या हो गया है जो आप देवराज इंद्र एवं अन्य देवताओं को, जो कि रत्नों के भंडार के समान हैं, छोड़कर लोहे को अर्थात शिवजी को पाने की इच्छा करती हैं। सच तो यह है कि इस समय मुझे आपके साथ शिवजी का संबंध परस्पर विरुद्ध दिखाई दे रहा है। कहां आप और कहां महादेव जी? आप चंद्रमुखी हैं तो शिवजी पंचमुखी, आपके नेत्र कमलदल के समान हैं तो शिवजी के तीन नेत्र सदैव क्रोधित दृष्टि ही डालते हैं। आपके केश अत्यंत सुंदर हैं, जो कि काली घटाओं के समान प्रतीत होते हैं वहीं भगवान शिव के सिर के जटाजूट के विषय में सभी जानते हैं। आप सुंदर कोमल साड़ी धारण करती हैं तो शिवजी कठोर हाथी की खाल का उपयोग करते हैं। आप अपने शरीर पर चंदन का लेप करती हैं तो वे हमेशा अपने शरीर पर चिता की भस्म लगाए रखते हैं। आप अपनी शोभा बढ़ाने हेतु दिव्य आभूषण धारण करती हैं, तो शिवजी के शरीर पर सदैव सर्प लिपटे रहते हैं। कहां मृदंग की मधुर ध्वनि, कहां डमरू की डमडम? देवी पार्वती! महादेव जी सदा भूतों की दी हुई बलि को स्वीकार करते हैं। उनका यह रूप इस योग्य नहीं है कि उन्हें अपना सर्वांग सौंपा जा सके। देवी! आप परम सुंदरी हैं। आपका यह अद्भुत और उत्तम रूप शिवजी के योग्य नहीं हैं। आप ही सोचें—यदि उनके पास धन होता तो क्या वे इस तरह नंगे रहते? सवारी के नाम पर उनके पास एक पुराना बैल है। कन्या के लिए योग्य वर ढूंढ़ते समय वर की जिन-जिन विशेषताओं और गुणों को देखा-परखा जाता है, शिवजी में वह कोई भी गुण मौजूद नहीं है। और तो और आपके प्रिय कामदेव जी को भी उन्होंने अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर दिया था। साथ ही उस समय आपको छोड़कर चले जाना आपका अनादर करना ही था। हे देवी! उनकी जात-पात, ज्ञान और विद्या के बारे में सभी अनजान हैं। पिशाच ही उनके सहायक हैं। उनके गले में विष दिखाई देता है। वे सदैव सबसे अलग-थलग रहते हैं।

इसलिए आपको भगवान शिव के साथ अपने मन को कदापि नहीं जोड़ना चाहिए। आपके और उनके रूप और सभी गुण अलग-अलग हैं, जो कि परस्पर एक-दूसरे के विरोधी जान पड़ते हैं। इसी कारण मुझे आपका और महादेव जी का संबंध रुचिकर नहीं लगता है। फिर भी जो आपकी इच्छा हो, वैसा ही करो। वैसे मैं तो यह चाहता हूं कि आप असत की ओर से अपना मन हटा लें। यदि यह सब नहीं करना चाहती हैं तो आपकी इच्छा। जो चाहो करो। अब मुझे और कुछ नहीं कहना है।

उन ब्राह्मण मुनि की बातों को सुनकर देवी पार्वती बहुत दुखी हुईं। अपने प्राणप्रिय त्रिलोकीनाथ शिव के विषय में कठोर शब्दों को सुनकर उन्हें बहुत बुरा लगा। वे मन ही मन क्रोधित हो गईं। लेकिन मन ही मन यह भी सोच रही थीं कि शिव के सौंदर्य को स्थूलदृष्टि से देखने-परखने का प्रयास करने वाले कैसे जान सकते हैं। संसारी व्यक्ति मंगल-अमंगल को अपने सुख के साथ जोड़कर देखता है, वह सत्य को कहां देख पाता है। इस तरह विवेक

द्वारा अपने मन को समझा-बुझाकर अपने को संयत करते हुए देवी पार्वती कहने लगीं।

सत्ताईसवां अध्याय

पार्वती जी का क्रोध से ब्राह्मण को फटकारना

पार्वती बोलीं—हे ब्राह्मण देवता! मैं तो आपको परमज्ञानी महात्मा समझ रही थी परंतु आपका भेद मेरे सामने पूर्णतः खुल चुका है। आपने शिवजी के विषय में मुझे जो कुछ भी बताया है वह मुझे पहले से ही ज्ञात है पर यह सब बातें सर्वथा झूठ हैं। इनमें सत्य कुछ भी नहीं है। आपने तो कहा था कि आप शिवजी को अच्छी प्रकार से जानते हैं। आपकी बातें सुनकर लगता है कि आप झूठ बोल रहे हैं क्योंकि ज्ञानी मनुष्य कभी भी त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के विषय में कोई भी अप्रिय बात नहीं कहते हैं। यह सही है कि लीलावश शिवजी कभी-कभी अद्भुत वेष धारण कर लेते हैं परंतु सच्चाई तो यह है कि वे साक्षात परम ब्रह्म हैं। वे ही परमात्मा हैं। उन्होंने स्वेच्छा से ऐसा वेष धारण किया है। हे ब्राह्मण! आप कौन हैं? जो ब्राह्मण का रूप धरकर मुझे छलने के लिए यहां आए हैं। आप ऐसी अनुचित व असंगत बातें करके एवं तर्क-वितर्क करके क्या साबित करना चाहते हैं? मैं भगवान शिव के स्वरूप को भली-भांति जानती हूं। वास्तव में शिवजी निर्गुण ब्रह्म हैं। समस्त गुण ही जिनका स्वरूप हों, भला उनकी जाति कैसे हो सकती है? शिवजी तो सभी विद्याओं का आधार हैं। भला, फिर उनको विद्या से क्या काम हो सकता है? पूर्वकाल में भगवान शिव ने ही श्रीहरि विष्णु को संपूर्ण वेद प्रदान किए थे। जो चराचर जगत के पिता हैं, उनके भक्तजन मृत्यु को भी जीत लेते हैं। जिनके द्वारा इस प्रकृति की उत्पत्ति हुई है, जो सभी तत्वों के आरंभ के विषय में जानते हैं, उनकी आयु का माप कैसे किया जा सकता है? भक्तवत्सल शिवजी सदा ही अपने भक्तों के वश में ही रहते हैं। वे अपने भक्तों को प्रसन्न होने पर प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मंत्रशक्ति नामक अक्षय शक्तियां प्रदान करते हैं। उनके परम चरणों का ध्यान करके ही मृत्यु को जीता जा सकता है। इसलिए शिवजी को 'मृत्युंजय' नाम से जाना जाता है।

भगवान शिव की कृपा प्राप्त करके ही विष्णुजी को विष्णुत्व, ब्रह्माजी को ब्रह्मत्व और अन्य देवताओं को देवत्व की प्राप्ति हुई है। भगवान शिव महाप्रभु हैं। ऐसे कल्याणमयी भगवान शिव की आराधना करने से ऐसा कौन-सा मनोरथ है जो सिद्ध नहीं हो सकता? उनकी सेवा न करने से मनुष्य सात जन्मों तक दरिद्र होता है। वहीं दूसरी ओर उनका भक्तिपूर्वक पूजन करने से सदैव के लिए लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। भगवान शिव के समक्ष आठों सिद्धियां सिर झुकाकर इसलिए नृत्य करती हैं कि भगवान उनसे सदा संतुष्ट रहें। भला ऐसे भगवान शिव के लिए कोई भी वस्तु कैसे दुर्लभ हो सकती है? भगवान शिव का स्मरण करने से ही सबका मंगल होता है। इनकी पूजा के प्रभाव से ही उपासक की सभी कामनाएं सिद्ध हो जाती हैं। ऐसे निर्विकारी भगवान शिव में भला विकार कहां से और कैसे आ सकता है? जिस मनुष्य के मुख में सदैव 'शिव' का मंगलकारी नाम रहता है, उसके दर्शन मात्र से ही

सब पवित्र हो जाते हैं। आपने कहा था कि वे अपने शरीर पर चिता की भस्म लगाते हैं। यह पूर्णतया सत्य है, परंतु उनके शरीर पर लगी हुई यह भस्म, जब जमीन पर गिरकर झड़ती है तो क्यों सभी देवता उस भस्म को अपने मस्तक पर लगाकर अपने को धन्य समझते हैं। अर्थात उनके स्पर्श मात्र से ही अपवित्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है। भगवान शिव ही इस जगत के पालनकर्ता, सृष्टिकर्ता और संहारक हैं। भला उन्हें कैसे साधारण बुद्धि द्वारा जाना जा सकता है? उनके निर्गुण रूप को आप जैसे लोग कैसे जान सकते हैं? दुराचारी और पापी मनुष्य भगवान शिव के स्वरूप को नहीं समझ सकते। जो मनुष्य अपने अहंकार और अज्ञानता के कारण शिवतत्व की निंदा करते हैं उसके जन्म का सारा पुण्य भस्म हो जाता है। हे ब्राह्मण! आपको ज्ञानी महात्मा जानकर मैंने आपकी पूजा की है परंतु आपने शिवजी की निंदा करके अपने साथ-साथ मुझे भी पाप का भागी बना दिया है। आप घोर शिवद्रोही हैं। शास्त्रों में बताया गया है कि शिवद्रोही का दर्शन हो जाने पर शुद्धिकरण हेतु स्नान करना चाहिए तथा प्रायश्चित करना चाहिए।

यह कहकर देवी पार्वती का क्रोध और बढ़ गया और वे बोलीं—अरे दुष्ट! तुम तो कह रहे थे कि तुम शंकर को जानते हो, परंतु सच तो यह है कि तुम उन सनातन शिवजी को नहीं जानते हो। भगवान शिव परम ज्ञानी, सत्पुरुषों के प्रियतम व सदैव निर्विकार रहने वाले हैं। वे मेरे अभीष्ट देव हैं। ब्रह्मा और विष्णु भी सदा महादेव जी को नमन करते हैं। सारे देवताओं द्वारा शिवजी को आराध्य माना जाता है। काल भी सदा उनके अधीन रहता है। वे भक्तवत्सल शिवशंकर ही सर्वेश्वर हैं और हम सबके परमेश्वर हैं। वे दीन-दुखियों पर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखते हैं। उन्हीं महादेव जी को पति के रूप में प्राप्त करने हेतु ही मैं शुद्ध हृदय से इस वन में घोर तपस्या कर रही हूं कि वे मुझे अपनी कृपादृष्टि से कृतार्थ कर मेरे मन की इच्छा पूरी करें।

ऐसा कहकर देवी पार्वती चुप हो गईं और निर्विकार होकर पुनः शांत मन से शिवजी का ध्यान करने लगीं। उनकी बातों को सुन ब्राह्मण देवता ने जैसे ही कुछ कहना चाहा, पार्वती ने मुंह फेर लिया और अपनी सखी विजया से बोलीं—'सखी! इस अधम ब्राह्मण को रोको। यह बहुत देर से मेरे आराध्य प्रभु शिव की निंदा कर रहा है। अब पुनः उनके ही विषय में कुछ बुरा-भला कहना चाहता है। शिव निंदा करने वाले के साथ-साथ शिव निंदा सुनने वाला भी पाप का भागी बन जाता है। अतः भगवान शिव के उपासकों को शिव निंदा करने वाले का वध कर देना चाहिए। यदि शिव-निंदा करने वाला कोई ब्राह्मण हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए तथा उस स्थान से दूर चले जाना चाहिए। यह दुष्ट ब्राह्मण है, अतः हम इसका वध नहीं कर सकते। इसलिए हमें इसका तुरंत त्याग कर देना चाहिए। हमें इसका मुंह भी नहीं देखना चाहिए। हम सब आज इसी समय इस स्थान को छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर चले जाते हैं, ताकि इस अज्ञानी ब्राह्मण से पुनः हमारी भेंट न हो।

इस प्रकार कहकर देवी पार्वती ने जैसे ही कहीं और चले जाने के उद्देश्य से अपना पैर आगे बढ़ाया वैसे ही भगवान शिव अपने साक्षात रूप में उनके सामने प्रकट हो गए। देवी पार्वती ने अपने ध्यान के दौरान शिव के जिस स्वरूप का स्मरण किया था। शिवजी ने उन्हें

उसी रूप के साक्षात दर्शन करा दिए। साक्षात भगवान शिव शंकर को इस तरह अनायास ही अपने सामने पाकर गिरिजानंदिनी पार्वती का सिर शर्म से झुक गया।

तब भगवान शिव देवी पार्वती से बोले—हे प्रिये! आप मुझे यहां अकेला छोड़कर कहां जा रही हैं? देवी! मैं आपकी इस कठोर तपस्या से अत्यंत प्रसन्न हुआ हूं। मैंने सभी देवताओं एवं ऋषि-मुनियों से आपकी तपस्या और दृढ़ निश्चय की प्रशंसा सुनी है। इसलिए आपकी परीक्षा लेने की ठानकर मैं आपके सामने चला आया हूं। अब आप मुझसे कुछ भी मांग सकती हैं क्योंकि मैं जान चुका हूं आप अप्रतिम सौंदर्य की प्रतिमा होने के साथ-साथ ज्ञान, बुद्धि और विवेक का अनूठा संगम हैं। आज आपने अपने उत्तम भक्ति भाव से मुझे अपना खरीदा हुआ दास बना दिया है। सुस्थिर चित्त वाली देवी गिरिजा मैं जान गया हूं कि आप ही मेरी सनातन पत्नी हैं। मैंने अनेकों प्रकार से बार-बार आपकी परीक्षा ली है। हे देवी! मेरे इस अपराध को आप क्षमा कर दें। हे शिवे! इन तीनों लोकों में आपके समान अनुरागिणी कोई न है, न थी और न ही कभी हो सकती है। मैं आपके अधीन हूं। देवी! आपने मुझे पति बनाने का उद्देश्य मन में लेकर ही यह कठिन तपस्या की है। अतः आपकी इस इच्छा को पूरा करना मेरा धर्म है। देवी मैं शीघ्र ही आपका पाणिग्रहण कर आपको अपने साथ कैलाश पर्वत पर ले जाऊंगा।

देवाधिदेव महादेव जी के इन वचनों को सुनकर गिरिजानंदिनी पार्वती के आनंद की कोई सीमा नहीं रही। वे अत्यंत प्रसन्न हुईं। हर्षातिरेक से उनका तपस्या करते हुए सारा कष्ट पल में ही दूर हो गया। उनकी सारी थकावट तुरंत ही दूर हो गई। पार्वती अपनी तपस्या की सफलता और त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल महादेव जी के साक्षात दर्शन पाकर कृतार्थ हो गईं और उनके सभी दुख क्लेश पल भर में ही दूर हो गए।

अट्ठाईसवां अध्याय

शिव-पार्वती संवाद

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! परमेश्वर भगवान शिव की बातें सुनकर और उनके साक्षात स्वरूप का दर्शन पाकर देवी पार्वती को बहुत हर्ष हुआ। उनका मुख मंडल प्रसन्नता के कारण कमल दल के समान खिल उठा। उस समय वे बहुत सुख का अनुभव करने लगीं। अपने सम्मुख खड़े महादेव जी से वे इस प्रकार बोलीं—हे देवेश्वर! आप सबके स्वामी हैं। हे प्रभो! पूर्वकाल में आपने जिस प्रिया के कारण प्रजापति दक्ष के संपूर्ण यज्ञ का पलों में विनाश कर दिया था, भला उसे ऐसे ही क्यों भुला दिया? हे सर्वेश्वर! हम दोनों का साथ तो जन्म-जन्मांतर का है। प्रभु! इस समय मैं समस्त देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उनको तारकासुर के दुखों से मुक्ति दिलाने के लिए पर्वतों के राजा हिमालय की पत्नी देवी मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई हूं। आपको ज्ञात ही है कि आपको पुनः पति रूप में प्राप्त करने हेतु ही मैंने यह कठोर तपस्या की है। इसलिए देवेश! आप मुझसे विवाह कर मुझे मेरी इच्छानुसार अपनी पत्नी बना लें। भगवन् आप तो अनेक लीलाएं रचते हैं। अब आप मेरे पिता शैलराज हिमालय और मेरी माता मैना के समक्ष चलकर उनसे मेरा हाथ मांग लीजिए।

भगवन्! जब आप इन सब बातों से मेरे पिता को अवगत कराएंगे, तब वे निश्चय ही मेरा हाथ प्रसन्नतापूर्वक आपको सौंप देंगे। पूर्व जन्म में जब मैं प्रजापति दक्ष की पुत्री सती थी, उस समय मेरा और आपका विवाह हुआ था। तब मेरे पिता दक्ष ने ग्रहों की पूजा नहीं की थी। उस विवाह में ग्रहपूजन से संबंधित बहुत बड़ी त्रुटि रह गई थी। मैं यह चाहती हूं कि इस बार शास्त्रोक्त विधि से हमारा विवाह संपन्न हो। हमें विवाह से संबंधित सभी रीति-रिवाजों और रस्मों का भली-भांति पालन करना चाहिए ताकि इस बार हमारा विवाह सफल हो सके। देवेश्वर! आप मेरे पिता हिमालय को इस संबंध में बताएं ताकि उन्हें अपनी पुत्री की तपस्या के विषय में ज्ञात हो सके।

देवी पार्वती के प्रेम और निष्ठा भरे इन शब्दों को सुनकर भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए और हंसते हुए बोले—हे देवी! महेश्वरी! इस संसार में हमारे आस-पास जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब ही नाशवान अर्थात नश्वर है। मैं निर्गुण परमात्मा हूं। मैं अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होता हूं। मेरा अस्तित्व स्वतंत्र है। देवी आप समस्त कर्मों को करने वाली प्रकृति हैं। आप ही महामाया हैं। आपने ही मुझे इस माया-मोह के बंधनों में फंसाया है। मैंने इन सभी को धारण कर रखा है। कौन मुख्य ग्रह है? कौन ऋतु समूह हैं? हे देवी! आप और मैं दोनों ही सदैव अपने भक्तों को सुख देने के लिए ही अवतार ग्रहण करते हैं। आप सगुण और निर्गुण प्रकृति हैं। हे गिरिजे! मैं आपके पिता के पास आपका हाथ मांगने के लिए नहीं जा सकता। फिर भी आपकी इच्छा को पूरा करना मेरा कर्तव्य है। अतः आप जैसा कहेंगी मैं अवश्य करूंगा।

महादेव जी के ऐसा कहने पर देवी पार्वती अति हर्ष का अनुभव करने लगीं और शिवजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बोलीं—हे नाथ! आप परमात्मा हैं और मैं प्रकृति हूं। हम दोनों का अस्तित्व स्वतंत्र एवं सगुण है, फिर भी अपने भक्तों की इच्छा पूरा करना हमारा कर्तव्य है। भगवन्! मेरे पिता हिमालय से मेरा हाथ मांगकर उन्हें दाता होने का सौभाग्य प्रदान करें। हे प्रभु! आप तो जगत में भक्तवत्सल नाम से विख्यात हैं। मैं भी तो आपकी परम भक्त हूं। क्या मेरी इच्छा को पूरा करना आपके लिए महत्वपूर्ण नहीं है? नाथ! हम दोनों जन्म-जन्म से एक-दूसरे के ही हैं। हमारा अस्तित्व एक साथ है। तभी तो आपका अर्द्धनारीश्वर रूप सभी मनुष्यों, ऋषि-मुनियों एवं देवताओं द्वारा पूज्य है। मैं आपकी पत्नी हूं। मैं जानती हूं कि आप निर्गुण, निराकार और परमब्रह्म परमेश्वर हैं। आप सदा अपने भक्तों का हित करने वाले हैं। आप अनेकों प्रकार की लीलाएं रचते हैं। भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं। मुझ दीन पर भी अपनी कृपादृष्टि करिए और अनोखी लीला रचकर इस कार्य की सिद्धि कीजिए।

नारद! ऐसा कहकर देवी पार्वती दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर खड़ी हो गईं। अपनी प्राणवल्लभा पार्वती की इच्छा का सम्मान करते हुए महादेवजी ने हिमालय से उनका हाथ मांगने हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। तत्पश्चात त्रिलोकीनाथ महादेव जी उस स्थान से अंतर्धान होकर अपने निवास कैलाश पर्वत पर चले गए। कैलाश पर्वत पर पहुंचकर शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक सारा वृत्तांत नंदीश्वर सहित अपने सभी गणों को सुनाया। यह जानकर सभी गण बहुत खुश हुए और नाचने-गाने लगे। उस समय वहां महान उत्सव होने लगा। उस समय सभी खुश थे और आनंद का वातावरण था।

उनतीसवां अध्याय

शिवजी द्वारा हिमालय से पार्वती को मांगना

ब्रह्माजी बोले—हे महामुनि नारद! भगवान शिव के वहां से अंतर्धान हो जाने के उपरांत देवी पार्वती भी अपनी सखियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता के घर की ओर चल दीं। उनके आने का शुभ समाचार सुनकर देवी मैना और हिमालय बहुत प्रसन्न हुए और तुरंत सिंहासन से उठकर देवी पार्वती से मिलने के लिए चल दिए। उनके सभी भाई भी उनकी जय-जयकार करते हुए उनसे मिलने के लिए आगे चले गए। देवी पार्वती अपने नगर के निकट पहुंचीं। वहां उन्होंने अपने माता-पिता और भाइयों को नगर के मुख्य द्वार पर अपना इंतजार करते पाया। वे अत्यंत हर्ष से विभोर होकर उनका स्वागत करने के लिए खड़े थे। पार्वती ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। हिमालय और मैना ने अपनी पुत्री को अनेकानेक आशीर्वाद देकर गले से लगा लिया। भाव विह्वल होकर उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे। सभी उपस्थित लोगों ने उनकी मुक्त हृदय से प्रशंसा की। वे कहने लगे कि पार्वती ने उनके कुल का उद्धार किया है और अपने मनोवांछित कार्य की सिद्धि की है। इस प्रकार सभी प्रसन्न थे और उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं थक रहे थे। लोगों ने सुगंधित पुष्पों, चंदन एवं अन्य सामग्रियों से देवी पार्वती का पूजन किया। इस शुभ बेला में उन पर स्वर्ग से देवताओं ने भी पुष्प वर्षा की तथा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात बहुत आदर सहित उन्हें घर की ओर ले जाया गया और विधि-विधान से उनका गृह-प्रवेश कराया गया। ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों, देवताओं और प्रजाजनों ने उन्हें अनेकों शुभ व उत्तम आशीर्वाद प्रदान किए।

इस शुभ अवसर पर शैलराज हिमालय ने ब्राह्मणों एवं दीन-दुखियों को दान दिया। उन्होंने ब्राह्मणों से मंगल पाठ भी कराया। उन्होंने पधारे हुए सभी ऋषि-मुनियों, देवताओं और स्त्री-पुरुषों का आदर सत्कार किया। तत्पश्चात हिमालय अपनी पत्नी मैना को साथ लेकर गंगा स्नान को चलने लगे, तभी भगवान शिव नाचने वाले नट का वेश धारण करके उनके समीप पहुंचे। उनके बाएं हाथ में सींग और दाहिने हाथ में डमरू था और पीठ पर कथरी रखी थी। उन्होंने सुंदर, लाल वस्त्र पहने थे। नाचने-गाने में वे पूर्णतः मग्न थे। नट रूप धारण किए हुए शिवजी ने बहुत सुंदर नृत्य किया और अनेक प्रकार के गीत गा-गाकर सभी का मन मोह लिया। नृत्य करते समय वे बीच-बीच में शंख और डमरू भी बजा रहे थे और मनोरम लीलाएं कर रहे थे। उनकी इस प्रकार की मन को हरने वाली लीलाएं देखने के लिए पूरे नगर के स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, वहां आ गए। नटरूपी भगवान शिव को नृत्य करते हुए देखकर और उनका गाना सुनकर सभी मंत्र मुग्ध हो गए। परंतु देवी पार्वती से भला यह कब तक छिपता? उन्होंने मन ही मन अपने प्रिय महादेव जी के साक्षात दर्शन कर लिए। शिवजी का रूप ही अलौकिक है। उन्होंने पूरे शरीर पर विभूति मल रखी थी तथा उनके शरीर पर त्रिशूल बना हुआ था। गले में हड्डियों की माला पहन रखी थी। उनका मुख सूर्य के तेज के समान शोभा पा रहा था।

उनके गले में यज्ञोपवीत के समान नाग लटका हुआ था। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के इस सुंदर, मनोहारी स्वरूप का हृदय में दर्शन कर लेने मात्र से ही देवी पार्वती हर्षातिरेक से बेहोश हो गईं। वे जैसे उनके स्वप्न में कह रहे थे कि देवी 'अपना मनोवांछित वर मांगो।' हृदय में विराजमान इस अनोखे स्वरूप को मन ही मन प्रणाम करके पार्वती ने कहा कि भगवन्! मेरे पति बन जाइए। तब देवेश्वर ने मुस्कुराते हुए 'तथास्तु' कहा और उनके स्वप्न से अंतर्धान हो गए। जब उनकी आंखें खुलीं तो उन्होंने शिवजी को नट रूप धारण किए वहां नाचते-गाते देखा।

नट के रूप में स्वयं भक्तवत्सल भगवान शिव के नाच-गाने से प्रसन्न होकर पार्वती की माता मैना सोने की थाली में रत्न, माणिक, हीरे और सोना लेकर उन्हें भिक्षा देने के लिए आईं। उनका ऐश्वर्य देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए परंतु उन्होंने उन सुंदर रत्नों और आभूषणों को लेने से इनकार कर दिया। वे बोले—देवी! भला मुझे रत्नों और आभूषणों से क्या लेना-देना। यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहती हैं तो अपनी कन्या का दान दे दीजिए। यह कहकर वे पुनः नृत्य करने लगे। उनकी बातें सुनकर देवी मैना क्रोध से उफन उठीं। वे उन्हें उसी समय वहां से निकालना चाहती थीं कि तभी गिरिराज हिमालय भी गंगा स्नान करके वापिस लौट आए। जब उनकी पत्नी मैना ने उन्हें सभी बातें बताईं तो वे भी जल्द से जल्द नट को वहां से निकालने को तैयार हो गए। उन्होंने अपने सेवकों को नट को बाहर निकालने की आज्ञा दी। परंतु यह असंभव था। वे साक्षात शिव भले ही नट का रूप धारण किए हुए थे परंतु उनका शरीर अद्भुत तेज से संपन्न था और वे परम तेजस्वी दिखाई दे रहे थे। उन्हें उठाकर निकाल फेंकना तो दूर की बात थी, उन्हें तो छूना भी कठिन था। तब उन्होंने मैना-हिमालय को अनेक प्रकार की लीलाएं रचकर दिखाईं। नट ने तुरंत ही श्रीहरि विष्णु का रूप धारण कर लिया। उनके माथे पर किरीट, कानों में कुण्डल और शरीर पर पीले वस्त्र अनोखी शोभा पा रहे थे। उनकी चार भुजाएं थीं। पूजा करते समय हिमालय और मैना ने जो पुष्प, गंध एवं अन्य वस्तुएं अर्पित की थीं वे सभी उनके शरीर और मस्तक पर शोभा पा रही थीं। यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। तत्पश्चात नट ने जगत की रचना करने वाले ब्रह्माजी का चतुर्मुख रूप धारण कर लिया। उनका शरीर लाल रंग का था और वे वैदिक मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे। उन सभी ने उस नट भक्तवत्सल भगवान शिव के उत्तम रूप को देखा। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। वे रुद्र रूप में मुस्कुरा रहे थे। उनका वह स्वरूप अत्यंत सुंदर एवं मनोहारी था। उनकी ये सुंदर लीलाएं देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गए थे और परम आनंद का अनुभव कर रहे थे। तत्पश्चात पुनः एक बार नट रूपी शिवजी ने मैना-हिमालय से उनकी पुत्री का हाथ मांगा तथा अन्य भिक्षा ग्रहण करने से इनकार कर दिया परंतु शिवजी की माया से मोहित हुए गिरिराज हिमालय ने उन्हें अपनी पुत्री सौंपने से मना कर दिया। बिना कुछ भी लिए वह नट वहां से अंतर्धान हो गया। वे सोचने लगे कि शायद वे स्वयं भगवान शिव ही थे, जो स्वयं यहां पधार कर हमारी कन्या का हाथ मांग रहे थे और हमें अपनी माया से छलकर अपने निवास कैलाश पर वापिस चले गए हैं। यह सोचकर हिमालय और मैना दोनों ही एक पल को बहुत प्रसन्न हुए परंतु अगले ही पल यह सोचकर उदास हो

गए कि हमने स्वयं साक्षात शिवजी को, बिना कुछ दिए और उनका आदर-सम्मान किए बिना ही खाली हाथ अपने द्वार से लौटा दिया। वे अत्यंत व्याकुल हो उठे।

तीसवां अध्याय

ब्राह्मण वेष में पार्वती के घर जाना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! गिरिराज हिमालय और देवी मैना के मन में भगवान शिव के प्रति भक्ति भाव देखकर सभी देवता आपस में विचार-विमर्श करने लगे। तब देवताओं के गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर सभी भगवान शिव के पास कैलाश पर्वत पर गए। वहां पहुंचकर उन्होंने हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम किया और उनकी अनेकानेक बार स्तुति की।

तत्पश्चात देवता बोले—हे देवाधिदेव! महादेव! भगवान शंकर! हम दोनों हाथ जोड़कर आपकी शरण में आए हैं। हम पर प्रसन्न होइए और हम पर अपनी कृपादृष्टि बनाइए। प्रभो! आप तो भक्तवत्सल हैं और अपने भक्तों की प्रसन्नता के लिए कार्य करते हैं। आप दीन-दुखियों का उद्धार करते हैं। आप दया और करुणा के अथाह सागर हैं। आप ही अपने भक्तों को संकटों से दूर करते हैं तथा उनकी सभी विपत्तियों का विनाश करते हैं।

इस प्रकार महादेव जी की अनेकों बार स्तुति करने के बाद देवताओं ने भगवान शिव को गिरिराज हिमालय और उनकी पत्नी मैना की भक्ति से अवगत कराया और आदर सहित सभी बातें उन्हें बता दीं। तत्पश्चात भगवान शिव ने हंसते हुए उनकी सभी प्रार्थनाओं को स्वीकार कर लिया। तब अपने कार्य को सिद्ध हुआ समझकर सभी देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धाम लौट गए। जैसा कि सभी जानते हैं कि भगवान शिव को लीलाधारी कहा जाता है। वे माया के स्वामी हैं। पुनः वे शैलराज हिमालय के घर गए।

उस समय राजा हिमालय अपनी पुत्री पार्वती सहित सभा भवन में बैठे हुए थे। उन्होंने ऐसा रूप धारण किया कि वे कोई ब्राह्मण अथवा साधु-संत जान पड़ते थे। उनके हाथ में दण्ड व छत्र था। शरीर पर दिव्य वस्त्र तथा माथे पर तिलक शोभा पा रहा था। उनके गले में शालग्राम तथा हाथ में स्फटिक की माला थी। वे मुक्त कंठ से हरिनाम जप रहे थे। उन्हें आया देखकर पर्वतों के राजा हिमालय तुरंत उठकर खड़े हो गए और उन्होंने ब्राह्मण को भक्तिभाव से साष्टांग प्रणाम किया। देवी पार्वती अपने प्राणेश्वर भगवान शिव को तुरंत पहचान गईं। उन्होंने उत्तम भक्तिभाव से सिर झुकाकर उनकी स्तुति की। वे मन ही मन बहुत प्रसन्न हुईं। तब ब्राह्मण रूप में पधारे भगवान शिव ने सभी को आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात हिमालय ने उन ब्राह्मण देवता की पूजा-आराधना की और उन्हें मधुपर्क आदि पूजन सामग्री भेंट की, जिसे शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। तत्पश्चात पार्वती के पिता हिमालय ने उनका कुशल समाचार पूछा और बोले—हे विप्रवर! आप कौन हैं?

यह प्रश्न सुनकर वे ब्राह्मण देवता बोले—हे गिरिश्रेष्ठ! मैं वैष्णव ब्राह्मण हूं और भूतल पर भ्रमण करता रहता हूं। मेरी गति मन के समान है। एक पल में यहां तो दूसरे पल में वहां। मैं सर्वज्ञ, परोपकारी, शुद्धात्मा हूं। मैं ज्योतिषी हूं और भाग्य की सभी बातें जानता हूं। क्या

हुआ है? क्या होने वाला है? यह सबकुछ मैं जानता हूं। मुझे ज्ञात हुआ है कि आप अपनी दिव्य सुलक्षणा पुत्री पार्वती को, जो कि सुंदर एवं लक्ष्मी के समान है, आश्रय विहीन, कुरूप और गुणहीन महेश्वर शिव को सौंपना चाहते हैं। वे शिवजी तो मरघट में रहते हैं। उनके शरीर पर हर समय सांप लिपटे रहते हैं और वे अधिक समय योग और ध्यान में ही बिताते हैं। वे नंग-धड़ंग होकर ही इधर-उधर भटकते फिरते हैं। उनके पास पहनने के लिए वस्त्र भी नहीं हैं। आज कोई उनके कुल के विषय में भी नहीं जानता है। वे स्वभाव से बहुत ही उग्र हैं। बात-बात पर उन्हें क्रोध आ जाता है। वे अपने शरीर पर सदा भस्म लगाए रहते हैं। सिर पर उन्होंने जटा-जूट धारण कर रखा है। ऐसे अयोग्य वर को, जिसमें अच्छा और रुचिकर कहने लायक कुछ भी नहीं है, आप क्यों अपनी पुत्री का जीवन साथी बनाना चाहते हैं? आपका यह सोचना कि शिव ही आपकी पुत्री के योग्य हैं, सर्वथा गलत है। आप तो महान ज्ञानी हैं। आप नारायण कुल में उत्पन्न हुए हैं। भला आपकी सुंदर पुत्री को वरों की क्या कमी हो सकती है? उस परम सुंदरी से विवाह करने को अनेकों देशों के महान वीर, बलशाली, सुंदर, स्वस्थ राजा और राजकुमार सहर्ष तैयार हो जाएंगे। आप तो समृद्धिशाली हैं। आपके घर में भला किस वस्तु की कमी हो सकती है? परंतु शैलराज जहां आप अपनी पुत्री को ब्याहना चाह रहे हैं, वे बहुत निर्धन हैं। यहां तक कि उनके भाई-बंधु भी नहीं हैं। वे सर्वथा अकेले हैं। गिरिराज हिमालय! आपके पास अभी समय है। अतः आप अपने भाई-बंधुओं, पुत्रों व अपनी प्रिय पत्नी देवी मैना से इस विषय में सलाह कर लें परंतु अपनी पुत्री पार्वती से इस विषय में कोई सलाह न लें क्योंकि वे शिव के गुण-दोषों के बारे में कुछ भी नहीं जानती हैं।

ऐसा कहकर ब्राह्मण देवता, जो वास्तव में साक्षात भगवान शिव ही थे, हिमालय का आदर-सत्कार ग्रहण करके आनंदपूर्वक वहां से अपने धाम को चले गए।

इकत्तीसवां अध्याय

सप्तऋषियों का आगमन और हिमालय को समझाना

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मण के रूप में पधारे स्वयं भगवान शिव की बातों का देवी मैना पर बहुत प्रभाव पड़ा और वे बहुत दुखी हो गईं। वे अपने पति हिमालय से कहने लगीं कि इस ब्राह्मण ने शिवजी की निंदा की है, उसे सुनकर मेरा मन बहुत खिन्न हो गया है। जब भगवान शिव का रूप और शील सभी कुत्सित हैं तथा सभी उनके विषय में बुरा ही सोचते हैं और उन्हें मेरी पुत्री के सर्वथा अयोग्य मानते हैं, तो मैं अपनी प्रिय पुत्री का हाथ कदापि उनके हाथ में नहीं दूंगी। मुझे अपनी पुत्री अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। यदि आपने मेरी बात नहीं मानी तो मैं इसी समय विष खा लूंगी और अपने प्राण त्याग दूंगी। साथ ही अपनी बेटी पार्वती को लेकर इस घर से चली जाऊंगी। मैं पार्वती के गले में फांसी लगा दूंगी, उसे वनों में ले जाऊंगी अथवा किसी सागर में डुबो दूंगी परंतु किसी भी हालत में उसका ब्याह पिनाकधारी शिव के साथ नहीं होने दूंगी।

यह कहकर देवी मैना रोती हुई तुरंत कोप भवन में चली गईं और उन्होंने कीमती वस्त्रों-आभूषणों का त्याग कर दिया और जमीन पर लेट गईं। जब इस विषय में भगवान शिव को जानकारी हुई तो उन्होंने सप्तऋषियों को याद किया। वे तुरंत ही वहां आ गए। तब त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने सप्तऋषियों को देवी मैना को समझाने की आज्ञा देकर उनके घर भेजा।

त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का आदेश मिलने पर सप्तऋषि उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके आकाश मार्ग से पर्वतों के राजा हिमालय के राज्य की ओर चल दिए। सप्तऋषि जब हिमालय के नगर के निकट पहुंचे तो वहां का ऐश्वर्य देखकर उसकी प्रशंसा करने लगे। वे सातों ऋषि आकाश में सूर्य के समान चमकते हुए जान पड़ते थे। उन्हें आकाश मार्ग से आता देखकर हिमालय को बहुत आश्चर्य हुआ। शैलराज सोचने लगे कि इन तेजस्वी सप्तऋषियों के आगमन से आज मेरा संपूर्ण राज्य धन्य हो गया।

तभी सूर्यतुल्य तपस्वी सप्तऋषि आकाश से उतरकर पृथ्वी पर खड़े हो गए। गिरिराज हिमालय ने दोनों हाथ जोड़कर और अपना मस्तक झुकाकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और उनका पूजन तथा स्तुति की। तत्पश्चात गिरिराज हिमालय ने कहा कि आज मेरा घर आपके चरणों की रज पाकर पवित्र हो गया है। मेरा जीवन आपके दर्शनों से धन्य हो गया है। फिर आदरपूर्वक हिमालय ने सप्तऋषियों को आसनों पर बैठाया। हिमालय बोले—आज मेरा जीवन सफल हो गया है। आज मेरा सम्मान इस संसार में बहुत बढ़ गया है। जिस प्रकार अनेक तीर्थों के दर्शनों को पुण्य कमाने का स्रोत माना जाता है उसी प्रकार आज मैं भी पवित्र तीर्थों के समान वंदनीय हो गया हूं। हे ऋषिगणो! आप साक्षात भगवान विष्णु के समान हैं। आपने हम दीनों के घरों की शोभा बढ़ा दी है। आज मैं स्वयं को संसार का सबसे महत्वपूर्ण

व्यक्ति मान रहा हूं। यद्यपि मैं एक तुच्छ अदना-सा मनुष्य हूं, फिर भी मेरे योग्य कोई सेवा हो तो मुझे अवश्य बताएं। आपका कार्य करके मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।

सप्तऋषि कहने लगे—हे शैलराज! भगवान शिव इस संपूर्ण जगत के पिता हैं। वे निर्गुण और निराकार हैं। वे सर्वज्ञ हैं। वे ही परम ब्रह्म परमात्मा हैं और वे ही सर्वेश्वर हैं। वे ही इस जगत का आदि और अंत हैं। आप भली-भांति त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के विषय में सबकुछ जानते ही हैं। वे भक्तवत्सल हैं और सदा ही अपने भक्तों के अधीन हैं। तुम्हारी परम प्रिय पुत्री देवी पार्वती ने भगवान शिव को अपनी कठोर तपस्या से प्रसन्न करके अपना मनोवांछित वर प्राप्त कर लिया है। उन्होंने प्रभु शिव को पति रूप में पाने का वर प्राप्त किया है। जिस प्रकार भगवान शिव को इस जगत का पिता माना जाता है, उसी प्रकार शिवा जगत माता कही जाती हैं। अतः आप अपनी कन्या पार्वती का विवाह महात्मा शिव शंकर से कर दीजिए। ऐसा करके आपका जन्म सफल हो जाएगा और आप गुरुओं के भी गुरु बन जाएंगे।

सप्तऋषियों के ऐसे वचन सुनकर हिमालय बोले—हे महर्षियो! मेरे अहोभाग्य हैं, जो आपने मुझे इस योग्य समझकर मुझसे यह बात कही। सच कहूं तो मेरी हार्दिक इच्छा भी यही है कि मेरी पुत्री का विवाह भगवान शिव के साथ ही हो परंतु एक परेशानी यह है कि कुछ दिनों पूर्व एक ब्राह्मणदेव हमारे घर पधारे थे। उन्होंने भक्तवत्सल भगवान शिव के विषय में अनेक उल्टी-सीधी बातें कीं। उस वैष्णव ब्राह्मण ने शिवजी की घोर निंदा की। उन्हें अमंगलकारी बताया। ये सब बातें सुनकर मेरी पत्नी देवी मैना की बुद्धि पलट गई है। उनका समस्त ज्ञान भ्रष्ट हो गया है। अब वे अपनी पुत्री पार्वती का विवाह परम योगी रुद्रदेव से कदापि नहीं करना चाहती हैं। हे सप्तऋषियो, वे जिद करके बैठीं हैं कि वे अपनी पुत्री पार्वती का विवाह भगवान शिव से नहीं करेंगी। इसलिए वे लड़-झगड़कर, सभी आभूषणों तथा राजसी वस्त्रों को त्यागकर कोप-भवन में जाकर लेट गई हैं। मेरे बहुत समझाने पर भी वे कुछ नहीं समझ रही हैं। आपसे सच-सच अपने दिल की इच्छा कहूं तो उन वैष्णव ब्राह्मण की बातें सुनकर अब मैं भी नहीं चाहता कि मेरी पुत्री का विवाह शिवजी से हो।

नारद! इस प्रकार भगवान शिव की माया से मोहित होकर गिरिराज हिमालय ने ये सब बातें कहीं और यह कहकर चुप हो गए। तब सप्तऋषियों ने कोप भवन में लेटी हुई देवी मैना को समझाने के लिए देवी अरुंधती को भेजा। अपने पति की आज्ञा पाकर देवी अरुंधती उस कोप भवन में पहुंचीं, जहां देवी मैना रुष्ट होकर पृथ्वी पर लेटी हुई थीं और पार्वती उनके पास ही बैठकर उन्हें समझा रही थीं। साध्वी अरुंधती बड़े ही मधुर स्वर में बोलीं—देवी मैना! उठिए मैं अरुंधती और सप्तऋषि तुम्हारे घर पधारे हैं। देवी अरुंधती को वहां अपने कक्ष में देखकर देवी मैना उठकर बैठ गईं और साक्षात लक्ष्मी के समान उन परम तेजस्विनी को देख उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोलीं—आज हमारे घर में ब्रह्माजी की पुत्रवधू और महर्षि वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती सहित सप्तऋषियों ने पधार कर हमें किस पुण्य का फल दिया है? आपके आने से हमारा कुल धन्य हो गया है। मैं आपसे यह जानना चाहती हूं कि आपके इस तरह यहां आने का क्या उद्देश्य है? देवी मैना के ऐसा कहने पर देवी अरुंधती

मुस्कुराईं और उन्हें समझाकर कोपभवन से बाहर उस स्थान पर ले गईं जहां सप्तऋषियों सहित गिरिराज हिमालय बैठे हुए थे। तब देवी मैना को वहां आया देखकर श्रेष्ठ और परम ज्ञानी सप्तर्षि भगवान शिव को मन में स्मरण कर समझाने लगे।

सप्तऋषि बोले—हे शैलराज! तुम अपनी पुत्री पार्वती का विवाह त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल भगवान शिव से कर दो। वे तो सर्वेश्वर हैं, वे कभी भी किसी से याचना नहीं करते। जगत की रचना के स्रोत ब्रह्माजी ने तारकासुर को यह वरदान दिया है कि केवल शिव पुत्र के हाथों ही उसका वध होगा। इस समय तारकासुर के कारण तीनों लोकों में हाहाकार मचा हुआ है। उसने देवराज इंद्र सहित सभी देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है। साथ ही वह निर्दोष लोगों का भी शत्रु बन बैठा है। साधुओं और ऋषि-मुनियों को यज्ञ नहीं करने देता तथा उनकी पूजा-उपासना को तारकासुर के सैनिक समय-समय पर नष्ट कर देते हैं। उन्होंने सभी के जीवन को कष्टकारी बना रखा है। इस संसार में व्याप्त बुराइयों और दुष्प्रवृत्तियों के विनाश के लिए संहारक रुद्रदेव का पुत्र ही सबसे उपयुक्त है। उस वीर और बलवान पुत्र की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि भगवान शिव विवाह कर लें। इसलिए ब्रह्माजी ने भगवान शिव से विवाह करने की प्रार्थना की है। यह सर्वविदित है कि भगवान शिव परम योगी हैं और विवाह के लिए उत्सुक नहीं हैं। तुम्हारी पुत्री पार्वती ने भगवान शिव की कठोर तपस्या करके शिव को अपना पति बनाने के लिए वर प्राप्त किया था। यही कारण है कि महादेवजी देवी पार्वती का पाणिग्रहण करना चाहते हैं।

सप्तऋषियों की यह बात सुनकर हिमालय विनयपूर्वक बोले—हे ऋषिगण! आपकी बातें सहीं हैं। परंतु जहां तक मैं जानता हूं शिवजी के पास न तो रहने के लिए घर है, न ही कोई नाते-रिश्तेदार हैं और न ही बंधु-बांधव हैं। उनके पास कोई राजपाट भी नहीं है और न ही वे ऐश्वर्य और विलासिता का जीवन ही जीते हैं। आप वेद विधाता ब्रह्माजी के पुत्र हैं। इसलिए मैं आपका आदर और सम्मान करता हूं। आप परम ज्ञानी हैं और यह जानते हैं कि जो पिता काम, मोह, भय अथवा लोभ के कारण अपनी कन्या का विवाह अयोग्य वर से कर देते हैं वे मरने के बाद नरक के भागी होते हैं। इसलिए मैं कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता, जिससे मैं नरक का भागी बनूं। मैं अपनी प्रिय पुत्री पार्वती का विवाह स्वेच्छा से कभी भी शूलपाणि शिव के साथ नहीं करूंगा। यही मेरा और मेरी पत्नी मैना दोनों का फैसला है। हे महर्षियो। आप परम ज्ञानी और समझदार हैं। इसलिए हमारे लिए उचित विधान को बताकर हमें कृतार्थ करें।

बत्तीसवां अध्याय

वशिष्ठ मुनि का उपदेश

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हिमालय के कहे वचनों को सुनकर महर्षि वशिष्ठ बोले—हे शैलराज! भगवान शंकर इस संपूर्ण जगत के पिता हैं और देवी पार्वती इस जगत की जननी हैं। शास्त्रों की जानकारी रखने वाला उत्तम मनुष्य वेदों में बताए गए तीन प्रकार के वचनों को जानता है। पहला वचन सुनते ही बड़ा प्रिय लगता है परंतु वास्तविकता में वह असत्य व अहितकारी होता है। इस प्रकार का कथन हमारा शत्रु ही कह सकता है। दूसरा वचन सुनने में अच्छा नहीं लगता परंतु उसका परिणाम सुखकारी होता है। तीसरा वचन सुनने में अमृत के समान लगता है तथा वह परिणामतः हित करने वाला होता है। इस प्रकार नीति शास्त्र में किसी बात को कहने के तीन प्रकार बताए गए हैं। आप इन तीनों प्रकार में किस तरह का वचन सुनना चाहते हैं? मैं आपकी इच्छानुसार ही बात करूंगा। भगवान शंकर सभी देवताओं के स्वामी हैं, उनके पास दिखावटी संपत्ति नहीं है। वे महान योगी हैं और सदैव ज्ञान के महासागर में डूबे रहते हैं। वे ही सबके ईश्वर हैं। गृहस्थ पुरुष राज्य और संपत्ति के स्वामी मनुष्य को ही अपनी पुत्री का वर चुनता है। ऐसा न करके यदि वह किसी दीन-हीन को अपनी कन्या ब्याह दे तो उसे कन्या के वध का पाप लगता है।

शैलराज! आप शिव स्वरूप को जानते ही नहीं हैं। धनपति कुबेर आपका सेवक है। कुबेर को यहां धन की कौन-सी कमी है? जो स्वयं सारे संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, उन्हें भोजन की भला क्या कमी हो सकती है? ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रदेव सभी भगवान शिव का ही रूप हैं। शिवजी से प्रकट हुई प्रकृति अपने अंश से तीन प्रकार की मूर्तियों को धारण करती है। उन्होंने मुख से सरस्वती, वक्ष स्थल से लक्ष्मी एवं अपने तेज से पार्वती को प्रकट किया है। भला उन्हें दुख कैसे हो सकता है? तुम्हारी कन्या तो कल्प-कल्प में उनकी पत्नी होती रही है एवं होती रहेगी। अपनी कन्या सदाशिव को अर्पण कर दो। तुम्हारी कन्या के तपस्या करते समय देवताओं की प्रार्थना पर सदाशिव तुम्हारी कन्या के समीप पहुंचकर, उन्हें उनका मनोवांछित वर प्रदान कर चुके हैं। तुम्हारी पुत्री पार्वती के कहे अनुसार शिवजी तुमसे तुम्हारी कन्या का हाथ मांगने के लिए तुम्हारे घर दो बार पधारे थे पर तुम उन्हें नहीं पहचान सके। वे नटराज और ब्राह्मण वेशधारी शिव ही थे जो तुम्हारी कन्या का हाथ मांगने आए थे पर तुमने मना कर दिया। यह तुम्हारा दुर्भाग्य नहीं है तो क्या है?

अब यदि तुमने प्रेम से शिवजी को अपनी कन्या का दान न किया तो भगवान शंकर बलपूर्वक ही तुम्हारी कन्या से विवाह कर लेंगे। शैलेंद्र! यह बात अगर आप ठीक से नहीं समझेंगे तो आपका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। आपको शायद ज्ञात नहीं है कि पूर्व में देवी शिवा ने ही प्रजापति दक्ष की पत्नी के गर्भ से जन्म लिया था और सती के नाम से प्रसिद्ध हुई थीं। उन्होंने कठोर तपस्या करके भक्तवत्सल भगवान शिव को वरदान स्वरूप

पति के रूप में प्राप्त किया था परंतु अपने पिता दक्ष द्वारा आयोजित महान यज्ञ में अपने पति त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की अवहेलना एवं निंदा होते देखकर उन्होंने स्वेच्छा से अपने शरीर को त्याग दिया था। वही साक्षात जगदंबा इस समय आपकी पत्नी मैना के गर्भ से प्रकट हुई हैं और कल्याणमयी भगवान शिव को जन्म-जन्मांतर की भांति पति रूप में पाना चाहती हैं। अतः गिरिराज हिमालय, आप स्वयं अपनी इच्छा से अपनी पुत्री का हाथ महादेव जी के हाथों में सौंप दीजिए। इन दोनों का साथ इस जगत के लिए मंगलकारी है।

शैलराज! यदि आप स्वेच्छा से शिवजी व देवी पार्वती का विवाह नहीं करेंगे तो पार्वती स्वयं अपने आराध्य भगवान शिव के धाम कैलाश पर्वत चली जाएंगी। आपकी प्रिय पुत्री पार्वती की इच्छा का सम्मान करते हुए ही भगवान शिव स्वयं आपसे पार्वती का हाथ मांगने के लिए वेश बदलकर आपके घर आए थे परंतु आपने उनको नहीं पहचाना और अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया। आपके शिखर पर तपस्या के लिए पधारे भगवान शिव की देवी पार्वती ने जब सेवा की थी तो आप भी उनके इस निर्णय में उनके साथ थे। आपकी आज्ञा प्राप्त करके ही देवी पार्वती भगवान शिव को पति रूप में पाने की इच्छा लेकर तपस्या करने हेतु वन में गई थीं। उनके इस प्रण और कार्य को आपने सराहा था। फिर आज ऐसा क्या हो गया कि आप अपने ही वचनों से पीछे हट रहे हैं।

भगवान शिव ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके हम सप्तऋषियों को और देवी अरुंधती को आपके पास भेजा है। इसलिए हम आपको यह समझाने आए हैं कि आप पार्वती जी का हाथ भगवान शिव के हाथों में दे दें। ऐसा करके आपको बहुत आनंद मिलेगा। भगवान शिव ने तपस्या के पश्चात प्रसन्न होकर देवी पार्वती को यह वरदान दिया है कि वे उनकी पत्नी हों। भगवान शिव परमेश्वर हैं। उनकी वाणी कदापि असत्य नहीं हो सकती। उनका वरदान अवश्य सत्य सिद्ध होगा। इसलिए हम सप्तऋषि आपसे यह अनुरोध कर रहे हैं कि आप इस विवाह हेतु प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति प्रदान करें। ऐसा करके आप अपने परिवार का ही नहीं समस्त मानवों और देवताओं का कल्याण करेंगे।

तेंतीसवां अध्याय

अनरण्य राजा की कथा

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! कुल की रक्षा करने के लिए किसी एक का त्याग कर देना ही नीति शास्त्र कहलाता है। जिस प्रकार राजा अनरण्य ने अपने राज-पाट, संपत्ति और अपने परिवार की रक्षा के लिए अपनी पुत्री का विवाह एक ब्राह्मण से कर दिया था। इसी प्रकार लोक कल्याण के लिए आपको भी स्वीकृति दे ही देनी चाहिए। राजा अनरण्य के बारे में सुनकर शैलराज हिमालय ने पूछा—हे महर्षि! मैं राजा अनरण्य की कथा सुनना चाहता हूं। गिरिराज हिमालय के ऐसे वचन सुनकर मुनि वशिष्ठ बोले—

हे पर्वतराज! महाराजा मनु की चौदहवीं संतान इंद्रासावर्णि के वंश में ही राजा अनरण्य का जन्म हुआ था। वे भगवान शिव के परम भक्त थे। सातों द्वीपों पर उनका राज था। राजा अनरण्य ने भृगु मुनि को अपना आचार्य बनाकर सौ यज्ञ पूर्ण कराए थे। राजा अनरण्य की पांच रानियां, सौ पुत्र व एक साक्षात लक्ष्मीस्वरूपा परम सुंदरी कन्या थी, जिसका नाम पद्मा था। पद्मा इकलौती पुत्री होने के कारण बहुत लाडली थी। राजा अनरण्य और उनकी पांचों रानियां पद्मा को बहुत प्यार करते थे। राजा बहुत ही सरल, न्यायप्रिय व उदार थे। देवताओं द्वारा स्वर्ग का सिंहासन दिए जाने पर उन्होंने उसे ग्रहण करने से इनकार कर दिया था।

जब राजा अनरण्य की प्रिय पुत्री पद्मा विवाह के योग्य हुई तो राजा अनरण्य को उसके विवाह की चिंता सताने लगी। पद्मा के लिए योग्य वर की खोज शुरू हो गई। चारों दिशाओं में सुयोग्य वर की तलाश की जा रही थी। अनेकों राजाओं को पत्र लिखे गए। एक दिन संयोगवश देवी पद्मा वन में विहार के लिए अपनी सखियों के साथ गई हुई थी। वहां तपस्या करके लौट रहे ऋषि पिप्पलाद की दृष्टि पद्मा नाम की उस सुंदरी पर पड़ गई, वे उसकी सुंदरता पर मोहित हो गए। वे उस सुंदरी को मन में बसाए हुए ही अपनी कुटिया पर पहुंच गए। सुंदरी का सौंदर्य पिप्पलाद के मन-मस्तिष्क में धंस गया था। एक दिन ऋषि पिप्पलाद पुष्पा भद्रा नामक नदी में स्नान करने गए। संयोगवश राजा अनरण्य की परम सुंदरी पुत्री पद्मा भी वहां उपस्थित थी। उसे पुनः देखकर ऋषि पिप्पलाद के मन की इच्छा पूरी हो गई। उन्होंने पद्मा की सखियों और सैनिकों से उसका परिचय प्राप्त कर लिया। वहीं कुछ मनुष्यों ने ऋषि की हंसी उड़ाते हुए कहा कि ऋषि जी आपका मन देवी पद्मा पर मुग्ध हो गया है तो आप महाराज से उन्हें मांग क्यों नहीं लेते? इस प्रकार के वचन सुनकर पिप्पलाद लज्जित तो हुए परंतु उनके दिल में सुंदरी पद्मा को पाने की इच्छा कम न होकर और बलवती हो गई।

स्नान, नित्यकर्म और शिव पूजन आदि से निवृत्त होकर मुनि पिप्पलाद राजा अनरण्य की सभा में चले गए। अपने दरबार में मुनि को पधारा देखकर राजा अनरण्य ने चरण छूकर उनका अभिवादन किया तथा विधिवत पूजन करने के पश्चात उन्हें आसन पर बैठाया तथा पूछा कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं? इस पर ऋषि पिप्पलाद बोले, राजा आप

अपनी कन्या पद्मा को मुझे सौंप दीजिए। यह सुनकर राजा चुप हो गए। इस पर पिप्पलाद मुनि कहने लगे कि राजा यदि शीघ्र ही तुमने अपनी कन्या मुझे नहीं दी तो मैं क्षण भर में ही तुम्हें और तुम्हारे कुल को भस्म कर दूंगा। यह बात सुनकर राजा, उनकी रानियां, नौकर-चाकर, दासियां सभी रोने लगे। राजा अनरण्य यह सोच अत्यंत व्याकुल हो उठे कि कैसे वे अपनी फूलों से भी कोमल पुत्री का हाथ एक बूढ़े ऋषि को दें। राजा इसी चिंता में डूबे हुए थे कि वे क्या करें कि तभी वहां उनके पुरोहित और राजगुरु आ पहुंचे। राजा ने सारा वृत्तांत उन्हें सुनाया। इस पर राजगुरु बोले कि राजन, आपको अपनी कन्या का विवाह किसी से तो करना ही है, तो क्यों न उसका विवाह ऋषि पिप्पलाद से ही कर दिया जाए। इससे आपके कुल की भी रक्षा हो जाएगी। यह ब्राह्मण इस कुल का विनाश कर दे इससे तो अच्छा है कि पद्मा का विवाह इन्हीं से हो जाए।

इस प्रकार अपने राजपुरोहित और राजगुरु के वचन सुनकर राजा अनरण्य ने अपने कुल की रक्षा करने के लिए अपनी कन्या को वस्त्र, आभूषणों से अलंकृत करा उसे ऋषि पिप्पलाद को अर्पित कर दिया। तत्पश्चात देवी पद्मा और ऋषि पिप्पलाद का वैदिक रीति से परिणयोत्सव संपन्न हुआ तथा राजा ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पुत्री को विदा कर दिया। राजा अनरण्य से विदा लेकर ऋषि पिप्पलाद अपनी पत्नी पद्मा को साथ लेकर अपने आश्रम पर पहुंचे। इस शोक में कि हमने अपनी पुत्री को एक वनवासी बूढ़े को सौंप दिया है, राजा अनरण्य राजपाट छोड़कर वन में चले गए। अपने पति और पुत्री की याद में रो-रोकर रानी ने अपने प्राण त्याग दिए। उनके घर-परिवार में चारों ओर दुख ही दुख था। राजा अनरण्य ने शिव कृपा से शिवलोक को प्राप्त किया। तत्पश्चात उनके पुत्र कीर्तिमान ने राज्य किया और उनके कुल का नाम चारों ओर फैला। इसलिए हे हिमालय राज! आप अपनी पुत्री को भगवान शिव को अर्पण करके अपने राज्य, कुल और धन की रक्षा करके सभी देवताओं को अपने अधीन कर लीजिए।

चौंतीसवां अध्याय

पद्मा-पिप्पलाद की कथा

ब्रह्माजी बोले—नारद जी! शैलराज हिमालय राजा अनरण्य की कथा सुनकर बोले कि हे मुनि वशिष्ठ! आपने मुझे बहुत ही उत्तम कथा सुनाई है। अब मुझ पर कृपा करके मुझे ऋषि पिप्पलाद और देवी पदमा के विवाह से आगे की भी कथा सुनाइए। पदमा को पत्नी बनाकर ऋषि कहां गए और उन्होंने क्या किया?

शैलराज हिमालय के इस प्रकार कहे प्रश्नों को सुनकर मुनि वशिष्ठ बोले—पर्वतराज! ऋषि पिप्पलाद अत्यंत वृद्ध थे, उनकी कमर झुकी हुई थी तथा वे कांप-कांप कर आगे चल पाते थे। इस प्रकार बूढ़े ऋषि की पत्नी बनकर देवी पद्मा उनके साथ उनकी कुटिया में आ गई। पद्मा रूपवती होने के साथ-साथ गुणवती भी थी। वह साक्षात लक्ष्मी का रूप थी। अपने पति को वह साक्षात विष्णु समझकर उनकी सेवा करती थी। एक दिन की बात है देवी पद्मा स्वर्णदा नामक नदी में स्नान करने गई, तभी धर्मराज वहां आ पहुंचे और उनके मन में पद्मा की परीक्षा लेने की बात आई। धर्मराज ने राजसी वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण किया और रथ में बैठ गए। रथ में बैठे वे साक्षात कामदेव प्रतीत हो रहे थे। देवी पद्मा को मार्ग में ही रोककर उन्होंने कहा—

देवी! आप तो परम सुंदरी हैं। आपकी सुंदरता को देखकर तो चांद भी शरमा जाए। आप तो राजरानी बनने योग्य हैं। आप इस भयानक जंगल में उस बूढ़े पिप्पलाद के साथ क्या कर रही हैं? वह बूढ़ा तो मृत्यु के बहुत पास है? देवी! आप उसको त्यागकर मेरे साथ चलें। मैं आपको अपने हृदय में स्थान दूंगा। आप मेरी रानी बनकर राज करेंगी। आपकी सेवा करने के लिए हजारों दासियां होंगी, जो आपकी हर आज्ञा को शिरोधार्य करेंगी। मैं स्वयं आपका दास बनकर रहूंगा।

यह कहकर धर्मराज रथ से नीचे उतरकर देवी पद्मा का हाथ पकड़ने हेतु आगे बढ़े। यह देखकर पद्मा क्रोधित हो गईं और पीछे हटकर जोर से बोलीं—अरे मूर्ख! अज्ञानी! अधर्मी! पापी! दूर हट जा। यदि तूने मुझे स्पर्श भी किया तो तू नष्ट हो जाएगा। तू काम में अंधा होकर मेरे पतिव्रत धर्म को भ्रष्ट करना चाहता है। तू क्या सोचता है कि तेरा यह राजसी रूप और धन देखकर मैं अपने परम पूज्य महातेजस्वी ऋषि पिप्पलाद को त्याग दूंगी? नहीं, कदापि नहीं। याद रख, यदि तू मुझे बुरी नजर से देखेगा तो भस्म हो जाएगा।

देवी पद्मा के शाप को सुनकर धर्मराज भयभीत हो गए। उन्होंने तुरंत राजा का वेश त्याग दिया और अपने असली रूप में आकर बोले—माता! मैं धर्म हूं। मैं ज्ञानियों का गुरु हूं और हर स्त्री को सदैव अपनी माता मानता हूं। मैंने यह सब आपकी परीक्षा लेने के लिए ही किया है। मेरा जन्म ही इसलिए हुआ है कि मैं धर्मात्मा मनुष्यों की धर्म संबंधी परीक्षा लेकर उन्हें धर्म में दृढ़ करूं परंतु देवी आपने मुझे शाप दे दिया है, अब मेरा क्या होगा? यह कहकर

धर्मराज चुपचाप खड़े हो गए।

तब देवी पद्मा ने कहा—हे धर्मराज! आप तो इस संसार के सभी जीवों के कर्मों के साक्षी हैं। फिर मेरी परीक्षा लेने के लिए आपको यह सब ढोंग करने की क्या आवश्यकता थी? अब तो शब्द मेरे मुंह से निकल चुके हैं। जिस प्रकार कमान से निकला तीर कमान में वापिस नहीं जा सकता, उसी प्रकार मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। धर्म आपके चार पाद हैं। सतयुग में तुम्हारे चारों पाद होंगे, त्रेता युग में तीन पाद होंगे और द्वापर युग में दो पाद होंगे। कलियुग में एक भी पाद नहीं होगा परंतु जब पुनः सतयुग शुरू होगा तो तुम्हारे चारों पाद पूर्व की भांति वापिस आ जाएंगे।

पद्मा के वचनों को सुनकर धर्मराज प्रसन्न हो गए और कहने लगे—देवी! आप धन्य हैं। आप अति पतिव्रता हैं। आपका अपने पति से अटूट प्रेम है। आप सदा ही उनके चरणों से प्रेम करोगी। मैं आपके पतिव्रत धर्म से प्रसन्न होकर आपको वरदान देता हूं कि आपके पति जवान हो जाएं तथा उनकी जवानी स्थिर रहे। वे मार्कण्डेय के समान दीर्घायु हों, कुबेर के समान धनवान तथा इंद्र के समान सुंदर एवं वैभव संपन्न हों। देवी! आपको शीघ्र ही दस पुत्रों की प्राप्ति होगी, जो कि गुणवान व दीर्घायु होंगे।

यह कहकर धर्म अंतर्धान हो गए और देवी पद्मा अपने घर वापिस आ गई। उसने घर पहुंचकर देखा तो उसके पति धर्म के वरदान के अनुसार जवान हो गए थे। उनके घर में सुख-विलास की सभी वस्तुएं मौजूद थीं। इस प्रकार पिप्पलाद और पद्मा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय पश्चात देवी पद्मा को दस पुत्रों की प्राप्ति हुई, जिन्हें पाकर दंपति का जीवन खुशियों से भर गया।

पैंतीसवां अध्याय

हिमालय का शिवजी के साथ पार्वती के विवाह का निश्चय करना

ब्रह्माजी बोले—नारद! महर्षि वशिष्ठ ने, राजा अनरण्य की पुत्री पद्मा और ऋषि पिप्पलाद के विवाह तथा धर्मराज द्वारा पद्मा को प्रदान किए गए वरदान की कथा सुनाकर कि पिप्पलाद स्थिर रहने वाले यौवन के स्वामी होंगे, इंद्र के समान सुंदर व वैभव से संपन्न होंगे और दस सर्वगुण संपन्न पुत्रों की उन्हें प्राप्ति होगी, शैलराज हिमालय से कहा कि राजन! मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आपके और आपकी पत्नी मैना के मन में, जो भी नाराजगी है, उसे भूलकर आप अपनी पुत्री पार्वती का विवाह त्रिलोकीनाथ महादेव जी के साथ कर दें। आज से एक सप्ताह बाद का मुहूर्त जब रोहिणी नक्षत्र में चंद्रमा अपने पुत्र बुध के साथ लग्न में स्थित होंगे, अत्यंत शुभ है। मार्गशीर्ष माह के सोमवार को लग्न में सभी शुभ ग्रहों की दृष्टि होगी। उस समय बृहस्पति भी सौभाग्य के वश में होंगे। ऐसे शुभ मुहूर्त में अपनी पुत्री पार्वती, जो कि साक्षात जगदंबा का अवतार हैं, का पाणिग्रहण भक्तवत्सल भगवान शिव से कर देने पर आप अपने आपको धन्य समझेंगे।

यह कहकर ज्ञान शिरोमणि मुनि वशिष्ठ चुप हो गए। उनकी बात सुनकर मैना और हिमालय आश्चर्यचकित रह गए और अन्य पर्वतों से बोले—गिरिराज मेरु! मंदराचल, मैनाक, गंधमादन, सह्य, विंध्य आप सभी ने मुनिराज वशिष्ठ के वचनों को सुना है। कृपया आप सब मुझे यह बताइए कि इन परिस्थितियों में मुझे क्या करना चाहिए? आप सभी इस संबंध में मुझे अपने विचारों से अवगत कराइए।

शैलराज हिमालय के कहे इन वचनों को सुनकर सभी पर्वतों ने आपस में विचार-विमर्श किया और बोले—हे गिरिराज हिमालय! इस समय ज्यादा सोच-विचार करने से कुछ नहीं होगा। अच्छा यही है कि हम सप्तऋषियों द्वारा कही गई बात को मानकर देवी पार्वती का विवाह शिवजी से करा दें। क्योंकि वास्तव में पार्वती का जन्म ही देवताओं के कार्यों को पूरा करने के लिए हुआ है। अतः हमें शीघ्र ही उनकी अमानत उनके हाथों में सौंपकर अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाना चाहिए।

तब सुमेरु तथा अन्य पर्वतों की बात सुनकर हिमालय प्रसन्न हुए और देवी पार्वती भी मन ही मन मुस्कुराने लगीं। देवी अरुंधती ने भी विविध प्रकार की कथाओं को सुनाकर पार्वती की माता मैना को समझाने का प्रयत्न किया। मैना जब समझ गई तो बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने सभी को उत्तम भोजन कराया। उनके मन का सारा संदेह और भय दूर हो गया। शैलराज हिमालय ने दोनों हाथ जोड़कर उन सप्तऋषियों से कहा कि आपकी बातों को सुनकर मेरे मन का सारा शक दूर हो गया है। मैं भली-भांति जान गया हूं कि शिवजी ही ईश्वरों के भी ईश्वर अर्थात सर्वेश्वर हैं। वे इस जगत के कण-कण में व्याप्त हैं। वे अतुलनीय हैं। इस संसार की हर वस्तु एवं हर प्राणी उन्हीं का है। यह कहकर हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती का हाथ

पकड़कर उसे सप्तऋषियों के पास खड़ा कर दिया और बोले कि आज से मेरी पुत्री शिवजी की अमानत है। वे जब चाहें इसे यहां से ले जा सकते हैं।

ऋषिगण शैलराज की बातें सुनकर प्रसन्न हुए और बोले—भगवान शिवजी आपकी पुत्री को स्वयं मांगकर आपको सौभाग्य प्रदान कर रहे हैं। यह कहकर वे ऋषिगण पार्वती को आशीर्वाद देने लगे और बोले—देवी! आपका कल्याण हो तथा आपके गुणों में निरंतर वृद्धि हो। आप शिवजी की अर्द्धांगिनी बनकर उनका जीवन खुशियों से भर दें। सप्तऋषियों ने सुविचार करके चार दिनों के बाद का शुभ मुहूर्त विवाह के लिए निकाला। तब शैलराज हिमालय और देवी मैना से आज्ञा लेकर वे सप्तऋषि देवी अरुंधती सहित वहां से भगवान शिव के पास चले गए।

छत्तीसवां अध्याय

सप्तऋषियों का शिव के पास आगमन

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! शैलराज हिमालय और मैना से विदा लेकर सप्तऋषि भगवान शिव के निवास स्थल कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां पहुंचकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम किया और उनकी भक्तिभाव से स्तुति की। तत्पश्चात उन्होंने कहना आरंभ किया। हे देवाधिदेव! महादेव! परमेश्वर! महाप्रभो! महेश्वर! हमने गिरिराज हिमालय और मैना को समझा दिया है। वे इस संबंध को स्वीकार कर चुके हैं। उन्होंने पार्वती का वाग्दान कर दिया है। हे प्रभु! अब आप अपने पार्षदों तथा देवताओं के साथ बारात लेकर हिमालय के यहां जाइए और देवी पार्वती का पाणिग्रहण संस्कार करिए। भगवन्, आप वेदोक्त रीति से पार्वती को अपनी पत्नी बना लीजिए।

सप्तऋषियों का यह वचन सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए और बोले—हे ऋषिगण! मैं विवाह के रीति-रिवाजों के संबंध में कुछ नहीं जानता। आप लोगों ने पूर्व में विवाह की जो रीति देखी हो अथवा इस विषय में आप जो कुछ जानते हो कृपया मुझे बताएं।

भगवान शिव के इस शुभ वचन को सुनकर सप्तऋषि बोले—भगवन्! आप सर्वप्रथम श्रीहरि विष्णु एवं सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी को उनके पुत्रों एवं पार्षदों सहित यहां बुला लीजिए। सभी ऋषि-मुनियों, यक्ष, गंधर्वों, किन्नरों, सिद्धगणों एवं देवराज इंद्र सहित सभी देवताओं और अप्सराओं को अपने विवाह में आमंत्रित करें। वे सब मिलकर इस विवाह का सफल आयोजन करेंगे।

ऐसा कहकर सप्तऋषि भगवान शिव से आज्ञा लेकर उनकी भक्तिभाव से स्तुति करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने धाम को चले गए।

सैंतीसवां अध्याय

हिमालय का लग्न पत्रिका भेजना

नारद जी ने पूछा—हे तात! महाप्राज्ञ! कृपा कर अब आप मुझे यह बताइए कि सप्तऋषियों के वहां से चले जाने पर हिमालय ने क्या किया?

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब वे सप्तऋषि हिमालय से विदा लेकर कैलाश पर्वत पर चले गए तो हिमालय ने अपने सगे-संबंधियों एवं भाई-बंधुओं को आमंत्रित किया। जब सभी वहां एकत्रित हो गए तब ऋषियों की आज्ञा के अनुसार हिमालय ने अपने राजपुरोहित श्री गर्गजी से लग्न पत्रिका लिखवाई। उसका पूजन अनेकों सामग्रियों से करने के पश्चात उन्होंने लग्न पत्रिका भगवान शंकर के पास भिजवा दी। गिरिराज हिमालय के बहुत से नाते-रिश्तेदार लग्न-पत्रिका को लेकर कैलाश पर्वत पर गए। वहां पहुंचकर उन्होंने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के मस्तक पर तिलक लगाया और उन्हें लग्न पत्रिका दे दी। शिवजी ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात वे सभी वापिस लौट आए।

शैलराज हिमालय ने देश के विविध स्थानों पर रहने वाले अपने सभी भाई-बंधुओं को इस शुभ अवसर पर आमंत्रित किया। सबको निमंत्रण भेजने के पश्चात हिमालय ने अनेकों प्रकार के रत्नों, वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणों तथा विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य देने योग्य वस्तुओं को संगृहीत किया। तत्पश्चात उन्होंने विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री—चावल, आटा, गुड़, शक्कर, दूध, दही, घी, मक्खन, मिठाइयां तथा पकवान आदि एकत्र किए ताकि बारात का उत्तम रीति से आदर-सत्कार किया जा सके। सभी खाद्य वस्तुओं को बनाने के लिए अनेकों हलवाई लगा दिए गए। चारों ओर उत्तम वातावरण था।

शुभमुहूर्त में गिरिराज हिमालय ने मांगलिक कार्यों का शुभारंभ किया। घर की स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं। हर जगह उत्सव होने लगे। देवी पार्वती का संस्कार कराने के पश्चात वहां उपस्थित नारियों ने उनका शृंगार किया। विभिन्न प्रकार के सुंदर वस्त्रों एवं आभूषणों से विभूषित पार्वती देवी साक्षात जगदंबा जान पड़ती थीं। उस समय अनेक मंगल उत्सव और अनुष्ठान होने लगे। अनेकों प्रकार के साज-शृंगार से सुशोभित होकर स्त्रियां इकट्ठी हो गईं। शैलराज हिमालय भी प्रसन्नतापूर्वक निमंत्रित बंधु-बांधवों की प्रतीक्षा करने लगे और उनके पधारने पर उनका यथोचित आदर-सत्कार करने लगे।

लोकोचार रीतियां होने लगीं। गिरिराज हिमालय द्वारा निमंत्रित सभी बंधु-बांधव उनके निवास पर पधारने लगे। गिरिराज सुमेरु अपने साथ विभिन्न प्रकार की मणियां और महारत्नों को उपहार के रूप में लेकर आए। मंदराचल, अस्ताचल, मलयाचल, उदयाचल, निषद, दर्दुर, करवीर, गंधमादन, महेंद्र, पारियात्र, नील, त्रिकूट, चित्रकूट, कोंज, पुरुषोत्तम, सनील, वेंकट, श्री शैल, गोकामुख, नारद, विंध्य, कालजंर, कैलाश तथा अन्य पर्वत दिव्य रूप धारण करके अपने-अपने परिवारों को साथ लेकर इस शुभ अवसर पर पधारे। सभी देवी पार्वती और

शिवजी को भेंट करने के लिए उत्तम वस्तुएं लेकर आए।

इस विवाह को लेकर सभी बहुत उत्साहित थे। इस मंगलकारी अवसर पर शौण, भद्रा, नर्मदा, गोदावरी, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, विपासा, चंद्रभागा, भागीरथी, गंगा आदि नदियां भी नर-नारी का रूप धारण करके अनेक प्रकार के आभूषणों एवं सुंदर वस्त्रों से सज-धजकर शिव-पार्वती का विवाह देखने के लिए आईं। शैलराज हिमालय ने उनका खूब आदर-सत्कार किया तथा सुंदर, उत्तम स्थानों पर उनके ठहरने का प्रबंध किया। इस प्रकार शैलराज की पूरी नगरी, जो शोभा से संपन्न थी, पूरी तरह भर गई। विभिन्न प्रकार के बंदनवारों एवं ध्वज-पताकाओं से यह नगर सजा हुआ था। चारों ओर चंदोवे लगे हुए थे। विभिन्न प्रकार की नीली-पीली, रंग-बिरंगी प्रभा नगर की शोभा को और भी बढ़ा रही थी।

अड़तीसवां अध्याय

विश्वकर्मा द्वारा दिव्य मंडप की रचना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! शैलराज हिमालय ने अपने नगर को बारात के स्वागत के लिए विभिन्न प्रकार से सजाना शुरू कर दिया। हर जगह की सफाई का विशेष ध्यान रखा गया। सड़कों को साफ कराया गया और उन पर छिड़काव कराया गया। तत्पश्चात उन्हें बहुमूल्य साधनों से सुसज्जित एवं शोभित किया गया। प्रत्येक घर के दरवाजे पर केले का मांगलिक पेड़ लगाया गया। आम के पत्तों को रेशम के धागे से बांधकर सुंदर बंदनवारें बनाई गईं। विभिन्न प्रकार के सुगंधित फूलों से हर स्थान को सजाया गया। सुंदर तोरणों से घर को शोभायमान किया गया। चारों ओर का वातावरण अत्यंत सुगंधित था। वहां का दृश्य दिव्य और अलौकिक था।

विश्वकर्मा को गिरिराज हिमालय ने आदरपूर्वक बुलवाया और उन्हें एक दिव्य मंडप की रचना करने को कहा। वह मंडप दस हजार योजन लंबा और चौड़ा था। वह दिव्य मंडप चालीस हजार कोस के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। विश्वकर्मा, जो कि देवताओं के शिल्पी कहे जाते हैं, ने इस उत्तम मंडप की रचना करके अपनी कुशलता एवं निपुणता का परिचय दिया। यह मंडप अद्‌भुत जान पड़ता था। उस मंडप में अनेकों प्रकार के स्थावर, जंगम पुष्प तथा स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां बनाई गई थीं जो कि इतनी सुंदर थीं कि यह निश्चय कर पाना कठिन था कि कौन ज्यादा सुंदर एवं मनोरम है? वहां जल में थल तथा थल में जल दिखाई दे रहा था। कोई भी मनुष्य इस कलाकृति को देखकर यह नहीं जान पा रहा था कि यहां जल है या थल। विभिन्न प्रकार के जानवरों की कलाकृतियां जीवंत बनाई गई थीं। अपनी सुंदरता से जड़ हृदयों को मोहित करते सारस कहीं सरोवर में पानी पीते दिखाई देते थे तो कहीं जंगलों में सिंह ऐसे लग रहे थे मानो अभी दहाड़ना शुरू कर देंगे। नृत्य करने की मुद्रा में बनाई गई स्त्री-पुरुषों की मूर्तियों को देखकर ऐसा लगता था मानो वाकई नर-नारी नृत्य कर रहे हों। द्वार पर खड़े द्वारपाल हाथों में धनुष बाण लेकर ऐसे खड़े थे जैसे सचमुच अभी बाणों की वर्षा शुरू कर देंगे। इस प्रकार सभी कृत्रिम वस्तुएं बहुत ही सुंदर एवं मनोहर थीं, जो कि बिलकुल जीवंत लगती थीं।

द्वार के मध्य में देवी महालक्ष्मी की सुंदर मूर्ति की स्थापना की गई थी, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो क्षीरसागर से निकलकर साक्षात लक्ष्मी देवी वहां आ गई हों। वे सभी शुभ लक्षणों से युक्त दिखाई दे रहीं थीं। मंडप में विभिन्न स्थानों पर हाथियों की कलाकृतियां भी बनाई गई थीं। कई स्थानों पर घोड़े घुड़सवारों सहित खड़े थे तो कहीं सुंदर अद्‌भुत दिव्य रथ जिन पर सफेद अश्व जुते हुए थे। मंडप के मुख्य द्वार पर नंदीश्वर, जो कि शिवजी की सवारी हैं, की मूर्ति बनाई गई थी, जो कि स्फटिक मणि के समान चमक रही थी। उसके ऊपर दिव्य पुष्पक विमान की रचना की गई थी, जिसे पल्लवों और सफेद चामरों से सजाया गया

था। विश्वकर्मा द्वारा समस्त देवताओं की भी प्रतिमूर्ति की रचना की गई थी जो कि हू-ब-हू वास्तविक देवताओं से मिलती थी।

क्षीरसागर में निवास करने वाले श्रीहरि विष्णु एवं उनके वाहन गरुड़ की रचना भी उस मंडप में की गई थी, जिसका स्वरूप साक्षात विष्णुजी जैसा ही था। इसी प्रकार विश्वकर्मा द्वारा जगत के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी की भी प्रतिमा उनके पुत्रों और वेदों सहित बनाई गई थी। साथ ही वह प्रतिमा वैदिक सूक्तों का पाठ करती हुई दिखाई देती थी। स्वर्ग के राजा देवेंद्र अर्थात इंद्र एवं उनके वाहन ऐरावत हाथी की मूर्तियां भी जीवंत थीं।

इस प्रकार विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई सभी कलाकृतियां कला का अद्भुत नमूना थीं जो कि दिव्य एव मनोरम थीं। जिन्हें देखकर यह जान पाना अत्यंत मुश्किल ही नहीं नामुमकिन था कि वे असली हैं या फिर नकली। देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा रचित यह दिव्य मंडप आश्चर्यों से युक्त एवं सभी को मोहित कर लेने वाला था। तत्पश्चात शैलराज हिमालय की आज्ञा के अनुसार विश्वकर्मा ने देवताओं के रहने के लिए कृत्रिम लोकों का निर्माण किया जो कि अद्भुत थे। साथ ही उनके बैठने के लिए दिव्य सिंहासनों की भी रचना की गई। ब्रह्माजी के रहने के लिए विश्वकर्मा ने सत्यलोक की रचना की जो दीप्ति से प्रकाशित हो रहा था। तत्पश्चात श्रीहरि विष्णु के लिए बैकुंठ का निर्माण किया गया। देवराज इंद्र के लिए समस्त ऐश्वर्यों से संपन्न दिव्य स्वर्गलोक की रचना की गई। अन्य देवताओं के लिए भी उन्होंने सुंदर एवं अद्भुत भवनों की रचना की। देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने पलक झपकते ही इस अद्भुत कार्य को मूर्त रूप दे दिया। सभी देवताओं के रहने हेतु उनके दिव्य लोकों जैसे कृत्रिम लोकों का निर्माण करने के पश्चात विश्वकर्मा ने भक्तवत्सल भगवान शिव के ठहरने हेतु एक सुंदर, मनोरम एवं अद्भुत घर का निर्माण किया। यह भवन भगवान शिव के कैलाश स्थित धाम के अनुरूप ही था। यहां शिव चिह्न शोभा पाता था। यह भवन परम उज्ज्वल, दिव्य प्रभापुंज से सुभासित, उत्तम और अद्भुत था। इस भवन की सभी ने बहुत प्रशंसा की। यहां तक कि स्वयं भगवान शिव भी उसे देखकर आश्चर्यचकित हो गए और विश्वकर्मा की इन रचनाओं को उन्होंने बहुत सराहा। विश्वकर्मा की यह रचना अद्भुत थी। इस प्रकार जब सुंदर एवं दिव्य मनोरम मंडप की रचना हो गई और सभी देवताओं के ठहरने के लिए यथायोग्य लोकों का भी निर्माण कर दिया गया तो शैलराज हिमालय ने विश्वकर्मा को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। तत्पश्चात हिमालय प्रसन्नतापूर्वक भगवान शिव के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगे।

हे नारद! इस प्रकार मैंने वहां का सारा वृत्तांत तुम्हें सुना दिया है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?

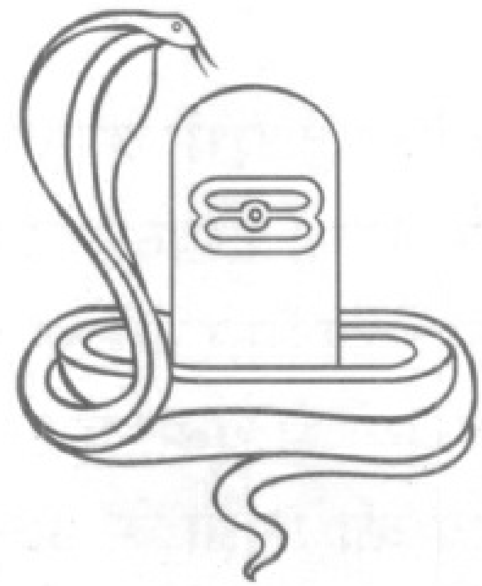

उन्तालीसवां अध्याय

शिवजी का देवताओं को निमंत्रण

नारद जी बोले—हे महाप्रज्ञ! हे विधाता! आपको नमस्कार है। आपने अपने श्रीमुख से मुझे अमृत के समान दिव्य और अलौकिक कथा को सुनाया है। अब मैं भगवान चंद्रमौली के मंगलमय वैवाहिक जीवन का सार सुनना चाहता हूं, जो कि समस्त पापों का नाश करने वाला है। भगवन् कृपा कर मुझे यह बताइए कि जब शैलराज हिमालय द्वारा भेजी गई लग्न पत्रिका महादेव जी को प्राप्त हो गई तो महादेव जी ने क्या किया? प्रभो! इस अमृत कथा को सुनाने की कृपा कीजिए।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! लग्न पत्रिका को पाकर भगवान शिव ने मन में बहुत हर्ष का अनुभव किया। लग्न पत्रिका लेकर आए शैलराज के बंधु-बांधवों का उन्होंने यथायोग्य आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात उन्होंने उस लग्न पत्रिका को पढ़कर स्वीकार किया तथा पत्रिका लेकर आए हुए लोगों को आदर-सम्मान से विदा किया। तब शिवजी प्रसन्नतापूर्वक सप्तऋषियों से बोले कि हे मुनियो! आपने मेरे लिए इस शुभ कार्य का संपादन किया है और मैंने इस विवाह हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है। अतः आप सभी मेरे विवाह में सादर आमंत्रित हैं।

भगवान शिव के शुभ वचन सुनकर ऋषिगण बहुत प्रसन्न हुए और उनको आदरपूर्वक प्रणाम करके अपने धाम को चले गए। जब ऋषिगण कैलाश पर्वत से चले गए तब भक्तवत्सल भगवान शिव ने तुम्हारा स्मरण किया। तुम अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए तुरंत उनसे मिलने उनके धाम पहुंच गए। शिवजी के श्रीचरणों में तुमने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और वहां हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

भगवान शिव बोले—हे नारद! तुम्हारे दिए गए उपदेश से प्रभावित होकर ही देवी पार्वती ने घोर तपस्या की और उससे प्रसन्न होकर मैंने उन्हें अपनी पत्नी बनाने का वरदान दे दिया है। पार्वती की भक्ति ने मुझे वश में कर लिया है। अब मैं उनके साथ विवाह करूंगा। सप्तऋषियों ने शैलराज हिमालय को संतुष्ट कर इस विवाह की स्वीकृति प्राप्त कर ली है और हिमालय की ओर से लग्न पत्रिका भी आ चुकी है। आज से सातवें दिन मेरे विवाह का दिन सुनिश्चित हुआ है। इस अवसर पर महान उत्सव होगा। अतः तुम श्रीहरि, ब्रह्मा, सब देवताओं, मुनियों और सिद्धों को मेरी ओर से निमंत्रण भेजो और उनसे कहो कि वे लोग उत्साह और प्रसन्नतापूर्वक सज-धजकर अपने-अपने परिवार के साथ सादर मेरे विवाह में पधारें।

नारद! भगवान शिव की आज्ञा पाकर, आपने हर जगह जाकर आदरपूर्वक सबको इस विवाह में पधारने का निमंत्रण दे दिया। तत्पश्चात भगवान शिव के पास आकर उन्हें सारी जानकारी दे दी। तब भगवान शिव भी आदरपूर्वक सब देवताओं के पधारने की प्रतीक्षा करने लगे। भगवान शिव के सभी गण संपूर्ण दिशाओं में नाचने-गाने लगे। सभी ओर उत्सव होने

लगा। निमंत्रण पाकर अति प्रसन्नता से सज-धजकर भगवान श्रीहरि विष्णु भी श्री लक्ष्मी और अपने दलबल को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर जा पहुंचे। वहां पधारकर उन्होंने भक्तिभाव से भगवान शिव को प्रणाम किया और प्रभु की आज्ञा लेकर अपना स्थान ग्रहण किया। तत्पश्चात मैं भी सपत्नीक अपने पुत्रों सहित भगवान शिव के विवाह में सम्मिलित होने के लिए पहुंचा। भगवान शिव को प्रणाम करके मैंने भी वहां आसन ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार सब देवता, देवराज इंद्र आदि भी अपने-अपने गणों एवं परिवारों के साथ सुंदर वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणों से शोभायमान होकर वहां पहुंच गए।

सिद्ध, चारण, गंधर्व, ऋषि, मुनि सब सहर्ष विवाह में सम्मिलित होने के लिए कैलाश पर पहुंच गए। अप्सराएं नृत्य करने लगीं और देव नारियां गीत गाने लगीं। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने स्वयं आगे बढ़कर सभी अतिथियों का सहर्ष आदर-सत्कार किया। उस समय कैलाश पर्वत पर बहुत अनोखा और महान उत्सव होने लगा। सभी देवगण हर कार्य को कुशलता के साथ संपन्न कर रहे थे मानो उनका अपना ही कार्य हो। प्रसन्नतापूर्वक सातों मातृकाएं शिवजी को आभूषण पहनाने लगीं। लोकोचार रीतियां करके भगवान शिव की आज्ञा से श्रीविष्णु आदि सभी देवता, वरयात्रा अर्थात बारात ले जाने की तैयारी करने लगे।

सातों माताओं ने भगवान शिव का शृंगार किया। उनके मस्तक पर तीसरा नेत्र मुकुट बन गया। चंद्रकला का तिलक लगाया गया। उनके गले में पड़े दोनों सांपों को उन्होंने और ऊंचा कर लिया और वे इस प्रकार प्रतीत होने लगे मानो सुंदर कुण्डल हों। इसी प्रकार सभी अंगों पर सांप लिपट गए जो आभूषण की सी शोभा देने लगे। सारे अंगों पर चिता की भस्म रमा दी गई, वह चंदन के समान चमक उठी। वस्त्र के स्थान पर सिंह तथा हाथी की खाल को उन्होंने ओढ़ लिया। इस प्रकार शृंगार से सुशोभित होकर भगवान शिव दूल्हा बनकर तैयार हो गए। उनके मुखमंडल पर जो आभा सुशोभित हो रही थी, उसका वर्णन करना कठिन है। वे साक्षात ईश्वर हैं। तत्पश्चात समस्त देवता, यज्ञ, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षिगण मिलकर भगवान शिव के पास गए और प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे महादेव, महेश्वर जी! अब आप देवी पार्वती को ब्याह लेने के लिए हम लोगों के साथ चलिए और हम पर कृपा कीजिए। तत्पश्चात क्षीरसागर के स्वामी श्रीहरि विष्णु भगवान शिव को आदरपूर्वक नमस्कार कर बोले—हे देवाधिदेव! महादेव! भक्तवत्सल! आप सदैव ही अपने भक्तों के कार्यों को सिद्ध करते हैं। हे प्रभु! आप गिरिजानंदनी देवी पार्वती के साथ वेदोक्त रीति से विवाह करिए। आपके द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली विवाह रीति ही जगत में विवाह-रीति के रूप में विख्यात होगी। भगवन्! आप कुलधर्म के अनुसार मण्डप की स्थापना करके इस लोक में अपने यश का विस्तार कीजिए।

भगवान विष्णु के ऐसा कहने पर महादेव जी ने विधिपूर्वक सब कार्य करने के लिए मुझ (ब्रह्मा) से कहा। तब मैंने श्रेष्ठ मुनियों कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, भागुरि गुरु, कण्व, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स तथा शिष्यों सहित व्यास आदि उपस्थित ऋषियों को बुलाकर भगवान शिव की प्रेरणा से

विधिपूर्वक आभ्युदयिक कर्म कराए। सबने मिलकर भगवान शंकर की रक्षा विधान करके ऋग्वेद, यजुर्वेद द्वारा स्वस्तिवाचन किया। फिर सभी ऋषियों ने सहर्ष मंगल कार्य संपन्न कराए। तत्पश्चात ग्रहों एवं विघ्नों की शांति हेतु पूजन कराया। इन सब वैदिक और अलौकिक कर्मों को विधिपूर्वक संपन्न हुआ देखकर भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए। तब भगवान शिव हर्षपूर्वक देवताओं और ब्राह्मणों को साथ लेकर अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत से बाहर आए। उस समय शिवजी ने सब देवताओं और ब्राह्मणों को आदरपूर्वक हाथ जोड़कर नमस्कार किया। चारों ओर गाजे-बाजे बजने लगे, सभी मंत्रमुग्ध होकर नृत्य करने लगे। वहां बहुत बड़ा उत्सव होने लगा।

चालीसवां अध्याय

भगवान शिव की बारात का हिमालयपुरी की ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! भगवान शिव ने कुछ गणों को वहीं रुकने का आदेश देते हुए नंदीश्वर सहित सभी गणों को हिमालयपुरी चलने की आज्ञा दी। उसी समय गणों के स्वामी शंखकर्ण करोड़ों गण साथ लेकर चल दिए। फिर भगवान शिव की आज्ञा पाकर गणेश्वर, शंखकर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, पारिजात, विकृतानन, दुंदुभ, कपाल, संदारक, कंदुक, कुण्डक, विष्टंभ, पिप्पल, सनादक, आवेशन, कुण्ड, पर्वतक, चंद्रतापन, काल, कालक, महाकाल, अग्निक, अग्निमुख, आदित्यमूर्द्धा, घनावह, संनाह, कुमुद, अमोघ, कोकिल, सुमंत्र, काकपादोदर, संतानक, मधुपिंग, कोकिल, पूर्णभद्र, नील, चतुर्वक्त्र, करण, अहिरोमक, यज्ज्वाक्ष, शतमन्यु, मेघमन्यु, काष्ठागूढ, विरूपाक्ष, सुकेश, वृषभ, सनातन, तालकेतु, षण्मुख, चैत्र, स्वयंप्रभु, लकुलीश, लोकांतक, दीप्तात्मा, दैन्यांतक, भृंगिरिटि, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक, प्रमथ तथा वीरभद्र अपने असंख्य गणों को साथ लेकर चल पड़े। नंदीश्वर एवं गणराज भी अपने-अपने गणों को ले क्षेत्रपाल और भैरव के साथ उत्साहपूर्वक चल दिए।

उन सभी गणों के सिर पर जटा, मस्तक पर चंद्रमा और गले में नील चिह्न था। शिवजी ने रुद्राक्ष के आभूषण धारण किए हुए थे। शरीर पर भस्म शोभायमान थी। सभी गणों ने हार, कुंडल, केयूर तथा मुकुट पहने हुए थे। इस प्रकार त्रिलोकीनाथ महादेव अपने लाखों-करोड़ों शिवगणों तथा मुझे, श्रीहरि और अन्य सभी देवताओं को साथ लेकर धूमधाम से हिमालय नगरी की ओर चल दिए।

शिवजी के आभूषणों के रूप में अनेक सर्प उनकी शोभा बढ़ा रहे थे और वे अपने नंदी बैल पर सवार होकर पार्वती जी को ब्याहने के लिए चल दिए। इस समय चंडी देवी महादेव जी की बहन बनकर खूब नृत्य करती हुई उस बारात के साथ हो चलीं। चंडी देवी ने सांपों को आभूषणों की तरह पहना हुआ था और वे प्रेत पर बैठी हुई थीं तथा उनके मस्तक पर सोने से भरा कलश था, जो कि दिव्य प्रभापुंज-सा प्रकाशित हो रहा था। उनकी यह मुद्रा देखकर शत्रु डर के मारे कांप रहे थे। करोड़ों भूत-प्रेत उस बारात की शोभा बढ़ा रहे थे। चारों दिशाओं में डमरुओं, भेरियों और शंखों के स्वर गूंज रहे थे। उनकी ध्वनि मंगलकारी थी जो विघ्नों को दूर करने वाली थी।

श्रीहरि विष्णु सभी देवताओं और शिवगणों के बीच में अपने वाहन गरुड़ पर बैठकर चल रहे थे। उनके सिर के ऊपर सोने का छत्र था। चमर ढुलाए जा रहे थे। मैं भी वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों, सनकादि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों तथा अन्यान्य परिजनों के साथ शोभायमान होकर चल रहा था। स्वर्ग के राजा इंद्र भी ऐरावत हाथी पर आभूषणों से सज-धजकर बारात की शोभा में चार चांद लगा रहे थे। भक्तवत्सल भगवान शिव की बारात में

अनेक ऋषि-मुनि और साधु-संत भी अपने दिव्य तेज से प्रकाशित होकर चल रहे थे।

देवाधिदेव महादेव जी का शुभ विवाह देखने के लिए शाकिनी, यातुधान, बैताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ आदि गण, तुम्बुरु, नारद, हा हा और हू हू आदि श्रेष्ठ गंधर्व तथा किन्नर भी प्रसन्न मन से नाचते-गाते उनके साथ हो लिए। इस विवाह में शामिल होने में स्त्रियां भी पीछे न थीं। सभी जगत्माताएं, देवकन्याएं, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी और सभी देवांगनाएं और देवपत्नियां तथा देवमाताएं भी खुशी-खुशी शंकर जी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए बारात के साथ हो लीं। वेद, शास्त्र, सिद्ध और महर्षि जिसे धर्म का स्वरूप मानते हैं, जो स्फटिक के समान श्वेत व उज्ज्वल है, वह सुंदर बैल नंदी भगवान शिव का वाहन है।

शिवजी नंदी पर आरूढ़ होकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। भगवान शिव की यह छवि बड़ी मनोहारी थी। वे सज-धजकर समस्त देवताओं, ऋषि-मुनियों, शिवगणों, भूत-प्रेतों, माताओं के सान्निध्य में अपनी विशाल बारात के साथ अपनी प्राणवल्लभा देवी पार्वती का पाणिग्रहण करने के लिए सानंद होकर अपने ससुर गिरिराज हिमालय की नगरी की ओर पग बढ़ा रहे थे। वे सब मदमस्त होकर नाचते-गाते हुए हिमालय के भवन की तरफ बढ़े जा रहे थे। हिमालय की तरफ बढ़ते समय उनके ऊपर आकाश से पुष्पों की वर्षा हो रही थी। बारात का वह दृश्य बहुत ही मनोहारी लग रहा था। चारों दिशाओं में शहनाइयां बज रही थीं और मंगल गान गूंज रहे थे। उस बारात का अनुपम दृश्य सभी पापों का नाश करने वाला तथा सच्ची आत्मिक शांति प्रदान करने वाला था।

इकतालीसवां अध्याय

मंडप वर्णन व देवताओं का भय

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! तुम भी भगवान शिव की बारात में सहर्ष शामिल हुए थे। भगवान शिव ने श्रीहरि विष्णु से सलाह करके सबसे पहले तुमको हिमालय के पास भेजा, वहां पहुंचकर तुमने विश्वकर्मा के बनाए दिव्य और अनोखे मंडप को देखा तो बहुत आश्चर्यचकित रह गए। विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई विष्णु, ब्रह्मा, समस्त देवताओं की मूर्तियों को देखकर यह कह पाना कठिन था कि ये असली हैं या नकली। वहां रत्नों से जड़े हुए लाखों कलश रखे थे। बड़े-बड़े केलों के खंभों से मण्डप सजा हुआ था।

तुम्हें वहां आया देखकर शैलराज हिमालय ने तुमसे पूछा कि देवर्षि क्या भगवान शिव बारात के साथ आ गए हैं? तब तुम्हें साथ लेकर हिमालय के पुत्र मैनाक आदि तुम्हारे साथ बारात की अगवानी के लिए आए। तब मैंने और विष्णुजी ने भी तुमसे वहां के समाचार के बारे में पूछा। हमने तुमसे यह भी पूछा कि शैलराज हिमालय अपनी पुत्री पार्वती का विवाह भगवान शिव से करने के इच्छुक हैं या नहीं? कहीं उन्होंने अपना इरादा बदल तो नहीं दिया है। यह प्रश्न सुनकर आप मुझे विष्णुजी और देवराज इंद्र को एकांत स्थान पर ले गए और वहां जाकर तुमने वहां के बारे में बताना शुरू किया। तुमने कहा कि हे देवताओ। शैलराज हिमालय ने शिल्पी विश्वकर्मा से एक ऐसे मंडप की रचना करवाई है जिसमें आप सब देवताओं के जीते-जागते चित्र लगे हुए हैं। उन्हें देखकर मैं तो अपनी सुध-बुध ही खो बैठा था। इसे देखकर मुझे यह लगता है कि गिरिराज आप सब लोगों को मोहित करना चाहते हैं। यह सुनकर देवराज इंद्र भय के मारे कापंने लगे और बोले—हे लक्ष्मीपति विष्णुजी! मैंने त्वष्टा के पुत्र को मार दिया था। कहीं उसी का बदला लेने के लिए मुझ पर विपत्ति न आ जाए। मुझे संदेह हो रहा है कि कहीं मैं वहां जाकर मारा न जाऊं। तब इंद्र के वचन सुनकर श्रीहरि विष्णु बोले कि—

इंद्र! मुझे भी यही लगता है कि वह मूर्ख हिमालय हमसे बदला लेना चाहता है क्योंकि मेरी आज्ञा से ही तुमने पर्वतों के पंखों को काट दिया था। शायद यह बात आज तक उन्हें याद है और वे हम सब पर विजय पाना चाहते हैं, परंतु हमें डरना नहीं चाहिए। हमारे साथ तो स्वयं महादेव जी हैं, भला फिर हमें कैसा भय? हमें इस प्रकार गुप-चुप बातें करते देखकर भगवान शिव ने लौकिक गति से हमसे बात की और पूछा—हे देवताओ! क्या बात है? मुझे स्पष्ट बता दो। शैलराज हिमालय मुझसे अपनी पुत्री पार्वती का विवाह करना चाहते हैं या नहीं? इस प्रकार यहां व्यर्थ बातें करते रहने से भला क्या लाभ?

भगवान शिव के इन वचनों को सुनकर नारद तुम बोले—हे देवाधिदेव! शिवजी। गिरिजानंदिनी पार्वती से आपका विवाह तो निश्चित है। उसमें भला कोई विघ्न-बाधा कैसे आ सकती है? तभी तो शैलराज हिमालय ने अपने पुत्रों मैनाक आदि को मेरे साथ बारात की

अगवानी के लिए यहां भेजा है। मेरी चिंता का कारण दूसरा है। प्रभु! आपने मुझे हिमालय के यहां बारात के आगमन की सूचना देने के लिए भेजा था। जब मैं वहां पहुंचा तो मैंने विश्वकर्मा द्वारा बनाए गए मंडप को देखा। शैलराज हिमालय ने देवताओं को मोहित करने के लिए एक अद्भुत और दिव्य मंडप की रचना कराई है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे सब इतने जीवंत हैं कि कोई भी उन्हें देखकर मोहित हुए बगैर नहीं रह सकता। उन चित्रों को देखकर ऐसा महसूस होता है कि वे अभी बोल पड़ेंगे। प्रभु! उस मंडप में श्रीहरि, ब्रह्माजी, देवराज इंद्र सहित सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों सहित अनेक जानवरों और पशु-पक्षियों के सुंदर व लुभावने चित्र बनाए गए हैं। यही नहीं, मंडप में आपकी और मेरी भी प्रतिमूर्ति बनी है, जिन्हें देखकर मुझे यह लगा कि आप सब लोग यहां न होकर वहीं हिमालय नगरी में पहुंच गए हैं। नारद! तुम्हारी बातें सुनकर भगवान शिव मुस्कुराए और देवताओं से बोले—आप सभी को भय की कोई आवश्यकता नहीं है। शैलराज हिमालय अपनी प्रिय पुत्री पार्वती हमें समर्पित कर रहे हैं। इसलिए उनकी माया हमारा क्या बिगाड़ सकती है? आप अपने भय को त्यागकर हिमालय नगरी की ओर प्रस्थान कीजिए। भगवान शिव की आज्ञा पाकर सभी बाराती भयमुक्त होकर उत्साह और प्रसन्नता के साथ पुनः नाचते-गाते शिव-बारात में चल दिए। शैलराज हिमालय के पुत्र मैनाक आगे-आगे चल रहे थे और बाकी सभी उनका अनुसरण कर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इस प्रकार बारात हिमालयपुरी जा पहुंची।

बयालीसवां अध्याय

बारात की अगवानी और अभिनंदन

ब्रह्माजी बोले—भगवान शिव अपनी विशाल बारात के साथ हिमालय पुत्रों के पीछे चलकर हिमालय नगरी पहुंच गए। जब गिरिराज हिमालय ने उनके आगमन का समाचार सुना तो वे प्रसन्नतापूर्वक, भक्ति से ओत-प्रोत होकर भगवान शिव के दर्शनों के लिए स्वयं आए। हिमालय का हृदय प्रेम की अधिकता के कारण द्रवित हो उठा था और वे अपने भाग्य को सराह रहे थे। हिमालय अपने साथी पर्वतों को साथ लेकर बारात की अगवानी के लिए पहुंचे। भगवान शंकर की बारात देखकर शैलराज हिमालय आश्चर्यचकित रह गए। तत्पश्चात देवता और पर्वत प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार एक-दूसरे के गले लगे मानो पूर्व और पश्चिम के समुद्रों का मिलन हो रहा हो। सभी अपने को धन्य मान रहे थे। इसके बाद शैलराज महादेव जी के पास पहुंचे और दोनों हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। सभी पर्वतों और ब्राह्मणों ने भी शिवजी की वंदना की। शिवजी अपने वाहन बैल पर बैठे थे।

भगवान शिव आभूषणों से विभूषित थे तथा दिव्य प्रकाश से आलोकित थे। उनके लावण्य से सारी दिशाएं प्रकाशित हो रही थीं। भगवान शिव के मस्तक पर रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट शोभा पा रहा था। उनके गले और अन्य अंगों पर लिपटे सर्प उनके स्वरूप को अद्भुत और शोभनीय बना रहे थे। उनकी अंगकांति दिव्य और अलौकिक थी। अनेक शिवगण हाथ में चंवर लेकर उनकी सेवा कर रहे थे। उनके बाएं भाग में भगवान श्रीहरि विष्णु और दाएं भाग में स्वयं मैं था। समस्त देवता भगवान शिव की स्तुति कर रहे थे।

नारद! जैसा तुम जानते ही हो भगवान शिव परमब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही सबके ईश्वर हैं। वे इस जगत का कल्याण करते हैं और अपने भक्तों की सभी इच्छाओं को पूरा कर उन्हें मनवांछित फल प्रदान करते हैं। वे सदा ही अपने भक्तों के अधीन रहते हैं। वे सच्चिदानंद स्वरूप हैं और सर्वेश्वर हैं। उनके बाएं भाग में श्रीहरि विष्णु गरुड़ पर बैठे थे तो दाएं भाग में मैं (ब्रह्मा) स्थित था। हम तीनों के स्वरूप का एक साथ दर्शन कर गिरिराज आनंदमग्न हो गए।

तत्पश्चात शैलराज ने शिवजी के पीछे तथा उनके आस-पास खड़े सभी देवताओं के सामने अपना मस्तक झुकाया और सभी को बारंबार प्रणाम किया। फिर भगवान शिव की आज्ञा लेकर, शैलराज हिमालय अपने निवास की ओर चल दिए और वहां जाकर उन्होंने सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों एवं अन्य बारातियों के ठहरने की उत्तम व्यवस्था की। हिमालय ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि तुम सभी भगवान शिव के पास जाकर उनसे प्रार्थना करो कि वे स्वयं अतिशीघ्र यहां पधारें। मैं उन्हें अपने भाई-बंधुओं से मिलवाना चाहता हूं। तुम वहां जाकर कहो कि मैं उनकी यहां प्रतीक्षा कर रहा हूं। अपने पिता गिरिराज हिमालय की आज्ञा पाकर उनके पुत्र उस ओर चल दिए जहां बारात के ठहरने की व्यवस्था

की गई थी। वहां वे भगवान शिव के पास पहुंचे। प्रणाम करके उन्होंने अपने पिता द्वारा कही हुई सभी बातों से शिवजी को अवगत करा दिया। तब भगवान शंकर ने कहा कि तुम जाकर अपने पिता से कहो कि हम शीघ्र ही वहां पहुंच रहे हैं। शिवजी से आज्ञा लेकर हिमालय के पुत्र वापिस चले गए। तत्पश्चात देवताओं ने तैयार होकर गिरिराज हिमालय के घर की ओर प्रस्थान किया। महादेव जी के साथ भगवान विष्णु और मैं (ब्रह्मा) शीघ्रतापूर्वक चलने लगे। तभी देवी पार्वती की माता देवी मैना के मन में त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को देखने की इच्छा हुई। इसलिए देवी मैना ने तुमको संदेशा भेजकर अपने पास बुलवा लिया। भगवान शिव से प्रेरित होकर देवी मैना की हार्दिक इच्छा को पूरा करने के लिए आप वहां गए।

तेंतालीसवां अध्याय

शिवजी की अनुपम लीला

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तुमको अपने सामने देखकर देवी मैना बहुत प्रसन्न हुईं और तुम्हें प्रणाम करके बोलीं—हे मुनिश्रेष्ठ नारद जी! मैं भगवान शिव के इसी समय दर्शन करना चाहती हूं। मैं देखना चाहती हूं, जिन शिवजी को पाने के लिए मेरी बेटी पार्वती ने घोर तपस्या की तथा अनेक कष्टों को भोगा उन शिवजी का रूप कैसा है? वे कैसे दिखते हैं? यह कहकर तुमको साथ लेकर देवी मैना चंद्रशाला की ओर चल पड़ीं। इधर भगवान शिव भी मैना के इस अभिमान को समझ गए और मुझसे व विष्णुजी से बोले कि तुम सब देवताओं को अपने साथ लेकर गिरिराज हिमालय के घर पहुंचो। मैं भी अपने गणों के साथ पीछे-पीछे आ रहा हूं।

भगवान विष्णु ने इसे भगवान शिव की आज्ञा माना और सब देवताओं को बुलाकर उनकी आज्ञा का पालन करते हुए शैलराज के घर की ओर प्रस्थान किया। देवी मैना तुम्हारे साथ अपने भवन के सबसे ऊंचे स्थान पर जाकर खड़ी हो गईं। तब देवताओं की सजी-सजाई सेना को देखकर मैना बहुत प्रसन्न हुई। बारात में सबसे आगे सुंदर वस्त्रों एवं आभूषणों से सजे हुए गंधर्व गण अपने वाहनों पर सवार होकर बाजे बजाते और नृत्य करते हुए आ रहे थे। इनके गण अपने हाथों में ध्वज की पताका लेकर उसे फहरा रहे थे। साथ में स्वर्ग की सुंदर अप्सराएं मुग्ध होकर नृत्य कर रही थीं। उनके पीछे वसु आ रहे थे। फिर मणिग्रीवादि यक्ष, यमराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, देवराज इंद्र, चंद्रमा, सूर्य, भृगु आदि देव व मुनीश्वर एक से एक सुंदर और मनोहारी रूप के स्वामी थे और सर्वगुण संपन्न जान पड़ते थे। उन्हें देखकर नारद वह तुमसे यही प्रश्न करती कि क्या ये ही शिव हैं? तब तुम मुस्कुराकर यह उत्तर देते कि नहीं ये भगवान शिव के सेवक हैं। देवी मैना यह सुनकर हर्ष से विभोर हो जातीं कि जब उनके सेवक इतने सुंदर और वैभवशाली हैं तो वे स्वयं कितने रूपवान और ऐश्वर्य संपन्न होंगे।

उधर, दूसरी ओर भगवान शिव, जो कि सर्वेश्वर हैं, उनसे भला जगत की कोई बात कैसे छिप सकती है? वे देवी मैना के हृदय की बात तुरंत जान गए और मन ही मन उन्होंने उनके मन में उत्पन्न अहंकार का नाश करने का निश्चय कर लिया। तभी वहां से, जहां मैना और नारद तुम खड़े हुए थे, श्रीहरि विष्णु पधारे। उनकी कांति के सामने चंद्रमा की कांति भी फीकी पड़ जाती है। वे जलंधर के समान श्याम तथा चार भुजाधारी थे और उन्होंने पीले वस्त्र पहन रखे थे। उनके नेत्र कमल दल के समान सुंदर व प्रकाशित हो रहे थे। वे गरुड़ पर विराजमान थे। शंख, चक्र आदि उनकी शोभा में वृद्धि कर रहे थे। उनके सिर पर मुकुट जगमगा रहा था और वक्ष स्थल में श्रीवत्स का चिन्ह था। उनका सौंदर्य अप्रतिम तथा देखने वाले को मंत्रमुग्ध करने वाला था। उन्हें देखकर देवी मैना के हर्ष की कोई सीमा न रही और वे

तुमसे बोलीं कि जरूर ये ही मेरी पार्वती के पति भगवान शिव होंगे।

नारद जी! देवी मैना के वचनों को सुनकर आप मुस्कुराए और उनसे बोले कि देवी, ये आपकी पुत्री पार्वती के होने वाले पति भगवान शिव नहीं, बल्कि क्षीरसागर के स्वामी और जगत के पालक श्रीहरि विष्णु हैं। ये भगवान शिव के प्रिय हैं और उनके कार्यों के अधिकारी भी हैं। हे देवी! गिरिजा के पति भगवान शिव तो संपूर्ण ब्रह्माण्ड के अधिकारी हैं। वे सर्वेश्वर हैं और वही परम ब्रह्म परमात्मा हैं। वे विष्णुजी से भी बढ़कर हैं।

तुम्हारी ये बातें सुनकर मैना शिवजी के बारे में बहुत कुछ सोचने लगीं कि मेरी पुत्री बहुत भाग्यशाली और सौभाग्यवती है, जिसे धन-वैभव और सर्वशक्ति संपन्न वर मिला है। यह सोचकर उनका हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो रहा था। वे शिवजी को दामाद के रूप में पाकर अपने कुल का भाग्योदय मान रही थीं। वे कह रही थीं कि पार्वती को जन्म देकर मैं धन्य हो गई। मेरे पति गिरिराज हिमालय भी धन्य हो गए। मैंने अनेक तेजस्वी देवताओं के दर्शन किए, इन सभी के द्वारा पूज्य और इन सबके अधिपति मेरी पुत्री पार्वती के पति हैं फिर तो मेरा भाग्य सर्वथा सराहने योग्य है।

इस प्रकार मैना अभिमान में आकर जब यह सब कह रही थी उसी समय उसका अभिमान दूर करने के लिए अपने अद्‌भुत रूप वाले गणों को आगे करके शिवजी भी आगे बढ़ने लगे। भगवान शिव के सभी गण मैना के अहंकार और अभिमान का नाश करने वाले थे। भूत, प्रेत, पिशाच आदि अत्यंत कुरूपगणों की सेना सामने से आ रही थी। उनमें से कई बवंडर का रूप धारण किए थे, किसी की टेढ़ी सूंड थी, किसी के होंठ लंबे थे, किसी के चेहरे पर सिर्फ दाढ़ी-मूंछें ही दिखाई देती थीं, किसी के सिर पर बाल नहीं थे तो किसी के सिर पर बालों का घना जंगल था। किसी की आंखें नहीं थीं, कोई अंधा था तो कोई काणा। किसी की तो नाक ही नहीं थी। कोई हाथों में बड़े भारी-भारी मुद्‌गर लिए था, तो कोई औंधा होकर चल रहा था। कोई वाहन पर उल्टा होकर बैठा हुआ था। उनमें कितने ही लंगड़े थे। किसी ने दण्ड और पाश ले रखे थे। सभी शिवगण अत्यंत कुरूप और विकराल दिखाई देते थे। कोई सींग बजा रहा था, कोई डमरू तो कोई गोमुख को बजाता हुआ आगे बढ़ रहा था। उनमें किसी का सिर नहीं था तो किसी के धड़ का पता नहीं चल रहा था तो किसी के अनेकों मुख थे। किसी के चेहरे पर अनगिनत आंखें लगी थीं तो किसी के अनेकों पैर थे। किसी के हाथ नहीं थे तो किसी के अनेकों कान थे, तो किसी के अनेकों सिर थे। सभी शिवगणों ने अचंभित करने वाली वेश-भूषा धारण की हुई थी। कोई आकार में बहुत बड़ा था तो कोई बहुत छोटा था। वे देखने में बहुत ही भयंकर लग रहे थे। उनकी लंबी-चौड़ी विशाल सेना मदमस्त होकर नाचते-गाते हुए आगे बढ़ रही थी। तभी तुमने अंगुली के इशारे से शिवगणों को दिखाते हुए देवी मैना से कहा—देवी! पहले आप भगवान शिव के गणों को देख लें, तत्पश्चात महादेव जी के दर्शन करना।

भूत-प्रेतों की इतनी बड़ी सेना को देखकर देवी मैना भय से कांपने लगीं। इसी सेना के बीच में पांच मुख वाले, तीन नेत्रों, दस भुजाओं वाले, शरीर पर भस्म लगाए, गले में मुण्डों की माला पहने, गले में सर्पों को डाले, बाघ की खाल को ओढ़े, पिनाक धनुष हाथ में उठाए,

त्रिशूल कंधे पर रखकर बड़े कुरूप और बूढ़े बैल पर चढ़े हुए भगवान शंकर देवी मैना को दिखाई दिए। उनके सिर पर जटाजूट थी और आंखें भयंकर लाल थीं।

नारद! तभी तुमने मैना को बताया कि वे ही भगवान शिव हैं। तुम्हारी यह बात सुनकर देवी मैना अत्यंत व्याकुल होकर तेज वायु के झकोरे लगने से टूटी लता के समान धरती पर धड़ाम से गिरकर मूर्छित हो गईं। उनके मुख से सिर्फ यही शब्द निकले कि सबने मिलकर मुझे छल-कपट से राजी किया है। मैं सबके आग्रह को मानकर बरबाद हो गई। मैना के इस प्रकार बेहोश हो जाने पर उनकी अनेकों दासियां वहां भागती हुई आ गईं। अनेकों प्रकार के उपाय करने के पश्चात धीरे-धीरे मैना होश में आईं।

चवालीसवां अध्याय

मैना का विलाप एवं हठ

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब हिमालय पत्नी मैना को होश आया तब वे बड़ी दुखी थीं और रोए जा रही थीं। उनका जोर-जोर से दहाड़ें मार-मारकर रोना रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। वे रोते हुए अपने पुत्रों, पुत्री तथा अपने पति गिरिराज हिमालय सहित देवर्षि नारद व सप्तऋषियों की निंदा करते हुए उन्हें कोस रही थीं।

मैना बोलीं—हे नारद मुनि! आपने ही हमारे घर आकर यह कहा था कि शिवा शिव का वरण करेंगी। तुम्हारी बातों को मानकर हम सबने अपनी पुत्री पार्वती को भगवान शिव की तपस्या करने के लिए वनों में भेज दिया। मेरी बेटी ने अपने तप के द्वारा सभी को प्रसन्न कर दिया। उसने ऐसी तपस्या की जो कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के लिए भी कठिन है। परंतु उसकी इतनी पूजा-आराधना का यह फल उसे मिला, जो कि देखने में भी दुख देने वाला है। इसे देखकर हमें अत्यंत दुख और भय प्राप्त हुआ है। हे भगवान! मैं क्या करूं? कहां जाऊं? भला कौन मुझे इस असह्य दुख से छुटकारा दिला सकता है? मैं तो किसी को भी अपना मुंह दिखाने योग्य नहीं रही। भला, कोई देखो वे दिव्य सप्तऋषि और उनकी वो धूर्त पत्नी अरुंधती कहां चली गईं, जो मुझे समझाने आई थीं। जिसने मुझे झूठ-सच कह-कहकर जबरदस्ती इस विवाह के लिए मेरी स्वीकृति ले ली थी। यदि वे मेरे सामने आ जाएं तो मैं उन ऋषियों की दाढ़ी-मूंछ नोच लूं। हाय! मेरा तो सबकुछ लुट गया। मैं तो पूरी तरह से बरबाद हो गई हूं।

यह कहकर देवी मैना अपनी पुत्री पार्वती से बोलीं—तूने हमसे कौन से जन्म का बदला लिया है? तूने यह क्या कार्य कर दिया, जो तेरे माता-पिता के लिए अत्यंत दुख का कारण बन गया है। इस प्रकार मैना पार्वती को खूब खरी-खोटी सुनाने लगीं। वे कहने लगीं कि नासमझ तूने सोने के बदले कांच खरीद लिया है। सुंदर सुगंधित चंदन को छोड़कर अपने शरीर पर कीचड़ का लेप कर लिया है। यह मूर्खा तो यह भी नहीं समझती कि इसने हंस को उड़ाकर उसके स्थान पर कौए को पाल लिया है। गंगाजल, जिसे सबसे पवित्र समझा जाता है, उसको फेंककर कुएं के जल को पी लिया है। उजाले को पाने की चाह लेकर उसके स्रोत सूर्य को छोड़कर जुगनू को पकड़ने के लिए दौड़ रही है। चावल के भूसे को रखकर अच्छे चावलों को फेंक रही है। बेटी, तूने हमारे कुल के यश का सर्वनाश करने की इच्छा कर ली है। तभी तो, मंगलमयी विभूति को फेंककर घर में चिता की अमंगलमयी राख को लाना चाहती है। जानवरों के सिरमौर सिंह को त्याग कर सियार के पीछे पड़ी है।

पार्वती! तूने बड़ी भारी मूर्खता कर दी है, जो सूर्य, चंद्रमा, श्रीहरि विष्णु और देवराज इंद्र जैसे सुंदर, सर्वगुण संपन्न, परम ऐश्वर्य और वैभव के स्वामियों को छोड़कर दुष्ट नारद की बातों में आकर एक महा-कुरूप शिव के लिए रात-दिन वनों की खाक छानती रही और घोर

तपस्या करती रही। तुझे, तेरी बुद्धि, तेरे रूप तथा तेरी सहायता करने वाले प्रत्येक उस मनुष्य को धिक्कार है, जिसने तुझे गलत राह पर चलने में मदद की। हमको भी धिक्कार है जो मैंने और तेरे पिता ने तुझे जन्म दिया। सुबुद्धि देने वाले उन सप्तऋषियों को भी मैं धिक्कारती हूं, जिन्होंने गलत उपदेश देकर मुझे गलत रास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया। उन्होंने तो मेरा घर जलाने का पूरा प्रबंध कर दिया है। मेरे कुल को सर्वनाश की कगार पर ले आए हैं। पार्वती! मैंने तुझे कितना समझाया, पर तू अपनी जिद पर अड़ी रही। पर अब और नहीं, अब मैं तेरी एक भी नहीं सुनूंगी। मैं तो अभी तुझे मार डालूंगी, तुझे जीवित रखने का अब कोई प्रयोजन नहीं है। तुझे मारकर खुद की जीवन लीला भी समाप्त कर दूंगी। भले ही मुझे नरक का भागी क्यों न होना पड़े। मेरा दिल करता है कि मैं तेरा सिर काट दूं, तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूं। तुझे छोड़कर कहीं चली जाऊं।

यह कहकर देवी मैना मूर्छित होकर फर्श पर गिर पड़ीं। तब उस समय उनकी ऐसी हालत देखकर सभी देवता उन्हें समझाने के लिए उनके पास गए। सबसे पहले मैं (ब्रह्मा) उनके पास पहुंचा। तब मुझे वहां देखकर नारद तुमने कहा—‘देवी! आपको इस बात का ज्ञान नहीं है कि शिवजी बहुत सुंदर हैं। अभी तुमने उनका सही स्वरूप देखा ही कहां है? अभी जो कुछ तुमने देखा है, वह उनकी लीला मात्र है। देवी! आप अपने क्रोध को त्याग दें और स्वस्थ होकर शुद्ध हृदय से विवाह का कार्य आरंभ करें। इतना सुनना था कि मैना के क्रोध की अग्नि भभक उठी, वे बोलीं दुष्ट नारद! यहां से इसी समय चला जा। तू दुष्टों का भी दुष्ट और नीच है। तू मेरे सामने भूलकर भी मत आना। इसी समय यहां से निकल जा। मैं तेरी सूरत तक देखना नहीं चाहती।

मैना के ये वचन सुनकर इंद्रादि देवता दौड़कर वहां चले आए और बोले—हे पितरों की कन्या मैना! भगवान शिव तो इस समस्त चराचर जगत के स्वामी हैं। वे तो सबको सुख देने वाले तथा सबको मनोवांछित वर देने वाले सर्वेश्वर हैं। वे तो भक्तवत्सल हैं और सदा ही अपने भक्तों के अधीन रहते हैं। आपकी पुत्री पार्वती ने कठिन तप करके भगवान शिव को प्रसन्न किया है तथा वरदान के रूप में उनको अपना पति होने का वर प्राप्त किया है। तभी तो आज वे अपने दिए वरदान को पूरा करने के लिए उनका पाणिग्रहण करने के लिए यहां पधारे हैं।

यह सुनकर मैना और अधिक रोने लगीं और बोलीं—शिव तो बहुत भयंकर हैं। मैं अपनी पुत्री पार्वती कदापि उन्हें नहीं दूंगी। आप सब देवता क्यों ये षडयंत्र रच रहे हैं? आप मेरी प्राणप्रिय, फूलों के समान कोमल पुत्री को क्यों इन भूत-प्रेतों के हवाले करना चाहते हैं? इस प्रकार देवी मैना सब देवताओं पर क्रोधित होकर उन्हें फटकारने लगीं।

जब वशिष्ठ आदि सप्तऋषियों ने देवी मैना के इस प्रकार के वचन सुने तो वे भी मैना को समझाने के लिए उनके निकट आ गए। तब वे बोले—हे पितरों की कन्या मैना! हम तो तुम्हारा कार्य सिद्ध करने के लिए यहां आए हैं। भगवान शिव का दर्शन तो सभी पापों का नाश करने वाला है और यहां तो वे स्वयं आपके घर पधारे हैं। इस बात को सुनकर भी देवी मैना को कोई संतोष नहीं हुआ। उनका क्रोध यथावत रहा तथा उन्होंने फिर कहा कि मैं पार्वती के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगी परंतु उसको शिव के साथ नहीं भेजूंगी। दूसरी ओर देवी मैना

के इस व्यवहार से चारों ओर हाहाकार मच गया। जब शैलराज हिमालय को मैना के इस व्यवहार की सूचना मिली तो वे फौरन दौड़ते हुए अपनी पत्नी के पास आए और बोले—हे प्रिये! तुम इतनी क्रोधित क्यों हो रही हो? देखो, हमारे घर में कौन-कौन से महात्मा पधारे हैं और तुम इनका अपमान कर रही हो। तुम भगवान शंकर के भयानक रूप को देखकर भयभीत हो गई हो। देवी! वे तो सर्वेश्वर हैं। भय करना छोड़कर उनके मंगलमय रूप का दर्शन करो। विवाह के शुभ कार्यों का शुभारंभ करो। अपने हठ को छोड़ो और क्रोध का त्याग कर शिव-पार्वती विवाह के मंगलमय कार्यों को संपन्न करो। देवी! तुम जानती हो कि भगवान शिव अनुपम लीलाएं करते हैं। यह भी उनकी लीला का एक भाग ही है। अतः तुम अपने मन के डर को दूर करके यथाशीघ्र पूर्ववत कार्य करो।

शैलराज हिमालय के ये वचन सुनकर उनकी पत्नी मैना अत्यंत क्रोधित हो गईं और बोलीं—हे स्वामी! आप ऐसा करिए कि पार्वती के गले में रस्सी बांधकर उसे पर्वत से नीचे गिरा दीजिए या फिर उसे समुद्र में डुबो दीजिए। चाहे कुछ भी करके उसकी जीवन लीला समाप्त कर दीजिए। मैं आपको कुछ नहीं कहूंगी, परंतु मैं पार्वती का हाथ किसी भी परिस्थिति में शिव को नहीं सौपूंगी। यदि फिर भी आपने हठपूर्वक पार्वती का विवाह शिव से करने की ठान ली है, तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूंगी।

अपनी माता मैना के ऐसे वचन सुनकर पार्वती उनके करीब आकर बोलीं—माता! आप तो ज्ञान की प्रतिमूर्ति हैं। आप सदा ही धर्म के पथ का अनुसरण करने वाली हैं। भला आज ऐसा क्या हो गया है, जो आप धर्म के मार्ग से विमुख हो रही हैं। हे माता। महादेवजी तो देवों के देव हैं। वे निर्गुण निराकार हैं। वे तो परब्रह्म परमात्मा हैं और सबके सर्वेश्वर हैं। वे तो इस संसार की उत्पत्ति के आधार हैं। भगवान शिव भक्तवत्सल हैं एवं अपने भक्तों को सदैव सुख प्रदान करने वाले हैं। भगवान शिव सब अनुष्ठानों के अधिष्ठाता हैं। वे ही सबके कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं। ब्रह्मा, विष्णु भी सदा उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं। हे माता। आपको तो इस बात का गर्व होना चाहिए कि आपकी पुत्री का हाथ मांगने के लिए देवता भी याचक की भांति आपके दरवाजे पर पधारे हैं। अतः आप बेकार की बातों को छोड़कर उत्तम कार्य करो। मुझे भगवान शिव के हाथों में सौंपकर अपने जीवन को सफल कर लो। माता! मेरी छोटी-सी विनती स्वीकार कर लो और मुझे भगवान शिव के चरणों में उनकी सेवा के लिए समर्पित कर दो। मां! मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा भगवान शिव को अपना पति मान लिया है। अब मैं किसी और का वरण नहीं कर सकती। मैं सिर्फ महादेवजी का ही स्मरण करती हूं। उन्हें पति रूप में पाने की इच्छा लेकर ही मैंने अपने जिंदगी के इतने वर्ष बिताए हैं। भला, आज मैं कैसे अपने वचन से पीछे हट जाऊं।

पार्वती जी के कहे वचनों को सुनकर मैना क्रोध के आधिक्य से उद्वेलित हो गईं और उसे डांटने तथा बुरे वचन कहने लगीं। मैना रोती जा रही थीं। मैंने और वहां उपस्थित सभी महानतम सिद्धों ने देवी मैना को समझाने का बहुत प्रयत्न किया परंतु सब निरर्थक सिद्ध हुआ। वे किसी भी स्थिति में समझने को तैयार नहीं थीं। तभी उनके हठ की बातें सुनकर परम शिव भक्त भगवान श्रीविष्णु वहां आ पहुंचे और बोले—हे पितरों की मानसी पुत्री एवं

शैलराज हिमालय की पत्नी मैना! आप ब्रह्माजी के कुल से संबंधित हैं। इसी कारण आपका सीधा संबंध धर्म से है। आप धर्म की आधारशिला हैं। फिर भला कैसे धर्म का त्याग कर सकती हैं? इस प्रकार हठ करना आपको शोभा नहीं देता। स्वयं सोचिए, भला सभी देवता, ऋषि-मुनि और स्वयं ब्रह्माजी और मैं आपसे असत्य वचन क्यों कहेंगे। भगवान शिव निर्गुण और सगुण दोनों ही हैं। वे कुरूप हैं, तो सुरूप भी हैं। सभी उनका पूजन करते हैं। वे ही सज्जनों की गति हैं। मूल प्रकृति रूपी देवी एवं पुरुषोत्तम का निर्माण भगवान शिव ने ही किया है। मेरी और ब्रह्माजी की उत्पत्ति भी भगवान शिव के द्वारा ही हुई है। उसके बाद सारे लोकों का हित करने के लिए उन्होंने स्वयं भी रुद्र का अवतार धारण कर लिया है। तत्पश्चात वेद, देवता तथा इस जल एवं थल में जो भी चराचर वस्तु या प्राणी दिखाई देता है, उस सारे जगत की रचना भगवान शिव ने ही की है। हे देवी! कोई भी उनके रूप को नहीं जानता है और न ही जान सकता है। यहां तक कि मैं और ब्रह्माजी भी उनकी समस्त लीलाओं को आज तक नहीं जान पाए हैं। इस संसार में जो कुछ भी विद्यमान है, वह भगवान शिव का ही स्वरूप है। यह तो भगवान शिव की ही माया है, जो वे स्वयं आपको अपना रूप इस प्रकार दिखा रहे हैं। हे देवी! आप सबकुछ भूलकर, सच्चे मन से शिवजी का स्मरण करके उनके चरणों में अपना ध्यान लगाए आपके सारे दुख और क्लेश मिट जाएंगे और आपको परम सुख की प्राप्ति होगी। श्रीहरि विष्णु द्वारा जब मैना को इस प्रकार समझाया गया तो देवी मैना का क्रोध कुछ कम हुआ। वस्तुतः शिवजी की माया से मोहित होने के कारण ही वे यह सब कर रही थीं। कुछ शांत होने पर उन्होंने कुछ देर मन में विचार किया। तत्पश्चात मैना श्रीहरि विष्णुजी से बोली—प्रभु! मैं आपकी हर बात समझ गई हूं। मैं यह भी जानती हूं कि भगवान शिव सर्वेश्वर हैं और इस जगत के कण-कण में व्याप्त हैं। मैं आपकी इच्छानुसार भगवान शिव को अपनी पुत्री सौंप सकती हूं, पर मेरी एक शर्त है। तब विष्णुजी के आग्रह करने पर देवी मैना ने कहा, यदि महादेव जी सुंदर शरीर धारण कर लें, तो मैं सहर्ष अपनी पुत्री पार्वती का विवाह उनसे कर दूंगी।

ऐसा कहकर देवी मैना चुप हो गईं। धन्य हैं भक्तवत्सल त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की माया, जो सबको मोह में डालने वाली है।

पैंतालीसवां अध्याय

शिव का सुंदर व दिव्य स्वरूप दर्शन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उस समय जब देवी मैना ने विष्णुजी के सामने इस प्रकार की शर्त रखी, तब मैंने तुमको भगवान शिव के पास जाने का आदेश दिया। तुमने वहां जाकर उनकी स्तुति की और उन्हें संतुष्ट किया। तब तुम्हारी बात मानकर तथा देवताओं का कार्य सिद्ध करने की इच्छा से भगवान शिव ने प्रसन्नतापर्वूक अद्‌भुत, उत्तम और दिव्य रूप धारण कर लिया। उस समय भगवान शिव कामदेव से अधिक रूपवान लग रहे थे। उनके सुंदर रूप-लावण्य को देखकर तुम प्रसन्न होते हुए तुरंत देवी मैना के पास उन्हें यह शुभ समाचार देने के लिए चले गए। वहां पहुंचकर, जहां देवी मैना बैठी थीं उन्हें देखकर, तुम बोले—हे शैलराज की पत्नी और पार्वती की माता मैना! आप चलकर स्वयं भगवान शिव के सुंदर और मनोहारी रूप का दर्शन करें।

यह समाचार पाकर देवी मैना की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। वे आपको अपने साथ लेकर भगवान शिव के दर्शन करने के लिए गईं। वहां पहुंचकर मैना ने भगवान शिव के परम आनंददायक सुंदर रूप के दर्शन किए। शिवजी का मुखारविंद करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी, सुंदर एवं दिव्य था। उनके विशाल मस्तक पर चंद्रमा सुशोभित था। सूर्य ने उनके सिर पर छत्र धारण कर रखा था। भगवान शिव प्रसन्न मुद्रा में थे। वे ललित लावण्य से युक्त मनोहर, गौरवर्ण, चंद्रलेखा से अलंकृत होकर बिजली की भांति चमक रहे थे। विष्णु सहित सभी देवता एवं ऋषि-मुनि उनकी प्रेमपूर्वक सेवा कर रहे थे। उनके शरीर पर दिव्य अलौकिक सुंदर वस्त्र व आभूषण शोभा पा रहे थे। गंगा और यमुना चंवर झुला रही थीं और अणिमा आदि आठों सिद्धियां मुग्ध होकर नाच-गा रही थीं। इस प्रकार भगवान शंकर सुंदर व दिव्य रूप धारण करके बारात लेकर हिमालय के घर की ओर आ रहे थे। उनके साथ-साथ मैं, विष्णुजी तथा देवराज इंद्र भी विभूषित होकर चल रहे थे। उनके पीछे-पीछे सुंदर एवं अनेकों रूपों वाले गण, सिद्ध मुनि व समस्त देवता जय-जयकार करते हुए चल रहे थे। समस्त देवता इस विवाह को देखने के लिए बड़े ही उत्कंठित थे और अपने परिवार के साथ शिवजी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए आए थे। विश्ववसु आदि गंधर्व व सुंदर अप्सराएं भगवान शिव के यश का गान करते हुए चल रहे थे।

भगवान शिव के गिरिराज हिमालय के द्वार पर पधारते ही वहां महान उत्सव होने लगा। उस समय महादेव जी की शोभा अद्‌भुत व निराली थी। उनका सुंदर विलक्षण रूप देखकर पल भर के लिए मैना चित्रलिखित-सी होकर रह गई। फिर प्रसन्नतापूर्वक बोली—हे देवाधिदेव! महेश्वर! शिवजी! मेरी पुत्री पार्वती धन्य है जिसने घोर तपस्या करके आपको प्रसन्न किया। मेरा सौभाग्य है कि परम कल्याणकारी भगवान सदाशिव आज मेरे घर पधारे हैं। भगवन्! मैं अक्षम्य अपराध कर बैठी हूं। मैंने आपकी बहुत निंदा की है। प्रभु! मैं आपसे

दोनों हाथ जोड़कर क्षमा याचना करती हूं। कृपा कर मेरी भूल क्षमा करें और मुझ पर प्रसन्न हो जाएं।

इस प्रकार चंद्रमौली भगवान शिव की स्तुति करती हुई शैलप्रिया मैना लज्जित होते हुए नतमस्तक हो गई। उस समय पुरवासिनी स्त्रियां सभी घर के कामों को छोड़कर, बाहर आकर भगवान शिव के दर्शन की लालसा लेकर उन्हें देखने का प्रयत्न करने लगीं। चक्की पीसने वाली ने चक्की छोड़ दी, पति की सेवा में लगी हुई पत्नी पति की सेवा छोड़कर भाग गई। कोई-कोई तो दूध पीते हुए बच्चे को छोड़कर भाग आई। इस प्रकार सभी अपने-अपने आवश्यक कार्यों को छोड़कर भगवान शिव के दर्शन के लिए दौड़ आई थीं। भगवान शिव के मनोहर रूप के दर्शन करके सब मोहित हो गईं। तब सहर्ष शिवजी की सुंदर मूर्ति को अपने मन मंदिर में धारण करके वे बोलीं—सखियो! हम सबके अहोभाग्य हैं। हिमालय नगरी में रहने वाले नर-नारियों के नेत्र आज भगवान शिव के दिव्य स्वरूप का दर्शन करके सफल हो गए हैं। आज निश्चय ही हमने संसार की हर विषय-वस्तु को पा लिया है। शिव स्वरूप का दर्शन करने मात्र से ही हमारे सारे पाप नष्ट हो गए हैं। उनकी छवि सर्वथा सब क्लेशों व दुखों का नाश करने वाली है। आज उन्हें साक्षात सामने देखकर हमारा जीवन सफल हो गया है। पार्वती ने उत्तम तपस्या द्वारा भगवान शिव को पाकर अपने साथ-साथ हम सबका भी जीवन सार्थक कर दिया है। हे पार्वती। तुम निश्चय ही धन्य हो। तुम परब्रह्म परमेश्वर भगवान शिव की अर्द्धांगिनी बनकर इस जगत को सुशोभित करोगी। यदि विधाता पार्वती-शिव का इस प्रकार मेल न कराते तो निश्चय ही उनका सारा परिश्रम निष्फल हो जाता। आज शिव-शिवा की इस युगल जोड़ी को साथ देखकर हमारे सारे कार्य सार्थक हो गए हैं। आज वाकई हम सब इनके उत्तम दर्शनों से धन्य हो गए हैं।

इस प्रकार कहकर वे पुरवासिनी स्त्रियां अक्षत, कुमकुम और चंदन से शिवजी का पूजन करने लगीं तथा प्रसन्नतापूर्वक उन पर खीलों की वर्षा करने लगीं। वे स्त्रियां देवी मैना के पास खड़ी होकर उनके भाग्य और कुल की सराहना करने लगीं। उनके मुख से इस प्रकार शुभ व मंगलकारी बातें सुनकर सभी देवताओं को बहुत प्रसन्नता हुई।

छियालीसवां अध्याय

शिव का परिछन व पार्वती का सुंदर रूप देख प्रसन्न होना

ब्रह्माजी बोले—नारद! भगवान शिव सबको आनंदित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने गणों, देवताओं, सिद्ध मुनियों तथा अन्य लोगों के साथ गिरिराज हिमालय के धाम में गए। हिमालय की पत्नी मैना भी अंदर से शिवजी की आरती उतारने के लिए सुंदर दीपकों से सजी हुई थाली लेकर बाहर आईं। उस समय उनके साथ ऋषि पत्नियां तथा अन्य स्त्रियां भी मौजूद थीं। भगवान शिव का मनोहर रूप चारों ओर अपनी कांति बिखेर रहा था। उनकी शोभा करोड़ों कामदेवों के समान थी। उनके प्रसन्न मुखारबिंद पर तीन नेत्र थे। अंगकांति चंपा के समान थी। शरीर पर सुंदर वस्त्र और आभूषण उनके व्यक्तित्व में चार चांद लगा रहे थे। उनके मस्तक पर सुंदर चंद्रमुकुट लगा था, गले में हार तथा हाथों में कड़े तथा बाजूबंद उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। चंदन, कस्तूरी, कुमकुम और अक्षत से उनका शरीर विभूषित था। उनका रूप दिव्य और अलौकिक था, जो अनायास ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उनका मुख अनेकों चंद्रमाओं की चांदनी के समान उज्ज्वल और शीतल था। ऐसे परम सुंदर और मनोहर रूप वाले दामाद को पाकर हिमालय पत्नी मैना की सभी चिंताएं दूर हो गईं। वे आनंदमग्न होकर अपने भाग्य की सराहना करने लगीं। शिवजी को दामाद बनाकर स्वयं को कृतार्थ मानने लगीं और अपनी पुत्री पार्वती, अपने पति हिमालय तथा अपने कुल को धन्य मानने लगीं। उस समय प्रसन्नतापूर्वक वे शिवजी की आरती उतारने लगीं। आरती उतारते हुए देवी मैना सोच रही थीं कि जैसा पार्वती ने महादेव जी के बारे में बताया था, ये उससे भी अधिक सुंदर हैं। इनका रूप लावण्य तो चित्त को प्रसन्नता देने वाला तथा समस्त पापों और दुखों का नाश करने वाला है। विधिपूर्वक आरती पूरी करने के पश्चात मैना अंदर चली गईं।

उस समय उस विवाह में पधारी युवतियों ने वर के रूप में पधारे परमेश्वर शिव के सुंदर, कल्याणकारी और मनोहारी रूप की बहुत प्रशंसा की। वे आपस में हंसी-ठिठोली कर रही थीं। साथ ही साथ अपनी सखी पार्वती के भाग्य की भी सराहना कर रही थीं कि उसे शिवजी जैसे वर की प्राप्ति हुई है। वे मैना से कहने लगीं कि हमने तो इतना सुंदर वर किसी के विवाह में भी नहीं देखा है। पार्वती धन्य हैं जो उसे ऐसा पति प्राप्त हो रहा है। भगवान शिव के सुंदर मनोहारी रूप के दर्शन करके सब देवताओं सहित ऋषि-मुनि बहुत प्रसन्न हुए। गंधर्व भगवान शिव के यश का गान करने लगे तथा अप्सराएं प्रसन्न होकर नृत्य करने लगीं। उस समय गिरिराज हिमालय के यहां आनंद ही आनंद था। हिमालय ने आदरपूर्वक मंगलाचार किया और मैना सहित वहां उपस्थित सभी नारियों ने वर का परिछन किया तथा घर के भीतर चली गईं। तत्पश्चात महादेव जी व उनके साथ बारात में पधारे हुए सभी महानुभाव जनवासे में चले गए।

तत्पश्चात साक्षात दुर्गा का अवतार देवी पार्वती कुलदेवी की पूजा करने के लिए अपने

कुल की स्त्रियों सहित अपने अंतःपुर से बाहर आईं। वहां जिसकी दृष्टि भी पार्वती पर पड़ी, वह उन्हें देखता ही रह गया। पार्वती की अंगकांति नील अंजन के समान थी। उनके लंबे, घने और काले केश सुंदर चोटी में गुंथे हुए थे। मस्तक पर कस्तूरी की बेदी के साथ सिंदूरी बिंदी उनके रूप लावण्य को बढ़ा रही थी। उनके गले में अनेक सुंदर रत्नों से जड़े हार शोभा पा रहे थे। सुंदर रत्नों से बने केयूर, वलय और कंकण उनकी भुजाओं को विभूषित कर रहे थे। रत्नों से जड़े कानों के कुंडल दमकती शोभा से उनके गालों पर अनुपम छवि बना रहे थे। उनके मोती के समान सुंदर एवं सफेद दांत अनार के दानों की भांति चमक रहे थे। उनके होंठ मधु से भरे बिंबफल की तरह लाल थे। महावर पैरों की शोभा में वृद्धि कर रही थी। उनके अंगों में चंदन, अगर, कस्तूरी और कुमकुम का अंगराग लगा हुआ था। पैरों में पड़ी पायजेब से निकली घुंघरुओं की रुन-झुन रुन-झुन की आवाज कानों में मधुर संगीत घोल रही थी। उनकी इस मंत्रमुग्ध छवि को देखकर सभी देवता उनके सामने नतमस्तक होकर जगत जननी पार्वती को भक्तिभाव से प्रणाम कर रहे थे। उस समय भगवान शिव भी उनके इस अनुपम सौंदर्य को कनखियों से देखकर हर्ष का अनुभव कर रहे थे। पार्वती के अनुपम रूप को देखकर शिवजी ने अपनी विरह की वेदना को त्याग दिया। पार्वती के रूप ने उनको मोहित कर दिया था।

इधर पार्वती ने कुलदेवताओं की प्रसन्नता के लिए उनका विधि-विधान से पूजन किया। तत्पश्चात वे अपनी सखियों और ब्राह्मण पत्नियों के साथ पुनः महल में लौट गईं। उधर मैं, विष्णुजी व भगवान शिव भी अपने-अपने स्थान पर ठहर गए।

सैंतालीसवां अध्याय

वर-वधू द्वारा एक-दूसरे का पूजन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! गिरिराज हिमालय ने उत्साहपूर्वक वेद मंत्रों द्वारा पार्वती और शिवजी को उपस्नान करवाया। तत्पश्चात वैदिक और लौकिक आचार रीति का पालन करते हुए भगवान शिव द्वारा लाए गए वस्त्रों एवं आभूषणों से गिरिजानंदिनी देवी पार्वती को सजाया गया। पार्वती की सखियों और वहां उपस्थित ब्राह्मण पत्नियों ने पार्वती को उन सुंदर वस्त्रों एवं सुंदर रत्नजड़ित आभूषणों से अलंकृत किया। शृंगार करने के उपरांत तीनों लोकों की जननी महाशैलपुत्री देवी शिवा अपने हृदय में महादेव जी का ही ध्यान कर रही थीं। उस समय उनका मुखमंडल चंद्रमा की चांदनी के समान सुंदर व दिव्य लग रहा था। हिमालयनगरी में चारों ओर महोत्सव होने लगा। लोगों की प्रसन्नता और उल्लास देखते ही बनता था। उस समय वहां हिमालय ने शास्त्रोक्त रीति से लोगों को बहुत दान दिया और अन्य वस्तुएं भी बांटीं।

गिरिराज हिमालय के राजपुरोहित मुनि गर्ग जी ने हिमालय से कहा कि हे पर्वतराज। लग्न का समय हो रहा है। आप भगवान शिव तथा अन्य सभी बारातियों को यथाशीघ्र यहां बुला लें। तब शैलराज के मंत्री सब देवताओं सहित भगवान शिव को बुलाने के लिए जनवासे में गए और उन्हें जल्दी विवाह मंडप में पधारने का निमंत्रण दिया। उन्होंने शिवजी से कहा कि प्रभु! कन्यादान का समय नजदीक आ गया है। वर और कन्या को पंडित जी बुला रहे हैं। तब भगवान सुंदर वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने वाहन नंदी पर बैठकर सब देवताओं और ऋषि-मुनियों के साथ मण्डप की ओर चल दिए। साथ में उनके गण भी अपने स्वामी भगवान शिव की जय-जयकार करते हुए नाचते-गाते चलने लगे। शिवजी के मस्तक पर छत्र था और चारों ओर चंवर डुलाया जा रहा था। महान उत्सव हो रहा था। शंख, भेरी, पटह, आनक, गोमुख बाजे बज रहे थे। अप्सराएं नृत्य कर रही थीं। चारों दिशाओं से देवगण उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। इस प्रकार महादेव जी सुशोभित होकर यज्ञ के मंडप पर पहुंचे।

मंडप के द्वार पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे पर्वतों ने आदरपूर्वक उन्हें नंदी पर से उतारा और भीतर ले गए। शैलराज हिमालय ने भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और विधि-विधान के अनुसार उनकी आरती उतारी। उन्होंने भगवान श्रीहरि विष्णु, मुझे तथा सदाशिव को पाद्य अर्घ्य दिया और सुंदर उत्तम आसनों पर हमें बैठाया। तत्पश्चात शैलराज प्रिया देवी मैना ब्राह्मण स्त्रियों व पुरवासिनों के साथ वहां पधारीं। उन्होंने अपने दामाद भगवान शिव की आरती उतारी और उनका मधुपर्क से पूजन किया तथा सारे मंगलमय कार्य संपन्न किए।

तत्पश्चात शैलराज हिमालय, मुझे, विष्णुजी व भगवान शिव को साथ लेकर उस स्थान पर गए जहां देवी पार्वती वेदी पर बैठी हुई थीं। तब वहां बैठे सभी ऋषि-मुनि, समस्त देवता व

अन्य शिवगण उत्सुकता से शिव-पार्वती के लग्न की प्रतीक्षा करने लगे। हिमालय के कुलगुरु श्री गर्ग जी ने पार्वती जी की अंजलि में चावल भरकर शिवजी के ऊपर अक्षत डाले। तत्पश्चात पार्वती जी ने दही, अक्षत, कुश और जल से आदरपूर्वक भगवान शिव का पूजन किया। पूजन करते समय प्रसन्नतापूर्वक पार्वती भगवान शिव के दिव्य स्वरूप को निहार रही थीं। पार्वती जी के अपने वर शिवजी का पूजन कर लेने के पश्चात गर्ग मुनि के कथनानुसार त्रिलोकीनाथ महादेव जी ने अपनी वधू होने जा रही देवी पार्वती का पूजन किया। इस प्रकार एक-दूसरे का पूजन करने के पश्चात वर-वधू शिव व पार्वती वहीं वेदी पर बैठ गए। उनकी छवि अत्यंत उज्ज्वल और मनोहर थी। दोनों वहां बहुत शोभा पा रहे थे। तब लक्ष्मी आदि सभी देवियों ने उनकी आरती उतारी।

अड़तालीसवां अध्याय

शिव-पार्वती का विवाह आरंभ

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! गर्ग मुनि की आज्ञा के अनुसार शैलराज हिमालय ने कन्यादान की रस्मों को निभाना शुरू किया। शैलराज प्रिया मैना जी सुंदर वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित होकर हाथों में सोने का कलश लेकर अपने पति हिमालय के दाहिने भाग में बैठी हुई थीं। शैलराज हिमालय ने भगवान शिव का पाद्य से पूजन करने के पश्चात सुंदर वस्त्रों, आभूषणों एवं चंदन से उन्हें अलंकृत किया तथा ब्राह्मणों से बोले कि हे ब्राह्मणो! अब आप कन्यादान हेतु संकल्प कराइए। तब श्रेष्ठ मुनिगण सहर्ष संकल्प पढ़ने लगे। तब गिरिश्रेष्ठ हिमालय ने आदरपूर्वक वर रूप में विराजमान भगवान शिव से पूछा—हे शिव शंकर! विधि-विधान से पार्वती का पाणिग्रहण करने हेतु आप अपने कुल का परिचय दें। आप अपना गोत्र, प्रवर, कुल नाम, वेद शाखा सबकुछ ब्राह्मणों को बता दें।

गिरिराज का यह प्रश्न सुनकर भगवान शंकर गंभीर होकर कुछ सोचने लगे। सब देवताओं, ऋषि-मुनियों ने जब भगवान शिव को इस प्रकार चुप देखा तो वे इस संबंध में कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे थे और शांत थे। तब यह देखकर कन्या पक्ष के कुछ लोग उन पर हंसने लगे। नारद! यह देखकर तुम तत्काल पार्वती के पिता शैलराज के पास पहुंचे और बोले—हे पर्वतराज! आप भगवान शिव से उनका गोत्र पूछकर बहुत बड़ी मूर्खता कर रहे हैं। उनका कुल, गोत्र आदि तो ब्रह्मा, विष्णु आदि भी नहीं जानते तो और भला कोई कैसे जान सकता है? भगवान शिव तो निर्गुण और निराकार हैं। वे परमब्रह्म परमेश्वर हैं। वे निर्विकार, मायाधारी एवं परात्पर हैं। वे तो स्वतंत्र परमेश्वर हैं, जिनका कुल, गोत्र आदि से कुछ भी लेना-देना नहीं है। ये सब तो मनुष्यों के द्वारा निर्मित आडंबर मात्र हैं। शिवजी तो अपनी इच्छा के अनुसार रूप और अवतार धारण करने वाले हैं। यह तो पार्वती के द्वारा किए हुए उग्र तप का प्रभाव है जिसके कारण आप शिवजी के साक्षात स्वरूप के दर्शन कर पा रहे हैं। शैलराज! भगवान शिव गोत्रहीन होकर भी श्रेष्ठ गोत्र वाले हैं और कुलहीन होने पर भी कुलीन हैं। इनकी विविध लीलाएं इस चराचर संसार को मोहित करने वाली हैं।

हे गिरिश्रेष्ठ हिमालय! नाना प्रकार की लीला करने वाले इन भगवान शिव का गोत्र और कुल नाद है। शिव नादमय हैं और नाद शिवमय है। नाद और शिव में कहीं कोई अंतर नहीं है। जब भगवान शिव ने सृष्टि की रचना का विचार किया था तब सबसे पहले शिवजी ने नाद को ही प्रकट किया था। इसलिए अब आप व्यर्थ की बातों को त्यागकर अपनी पुत्री पार्वती का विवाह यथाशीघ्र शिवजी के साथ संपन्न करा दो।

नारद! तुम्हारी बात सुनकर शैलराज हिमालय के मन में उत्पन्न हुई शंका समाप्त हो गई। तब हम सभी देवताओं ने तुम्हें धन्यवाद दिया कि तुमने इस विषम परिस्थिति को चतुराई से संभाल लिया। यह सब जानकर वहां उपस्थित सभी विद्वान प्रसन्नतापूर्वक बोले कि हमारे

अहोभाग्य हैं, जो आज हमने इस जगत को प्रकट करने वाले, आत्मबोध स्वरूप स्वतंत्र परमेश्वर, नित्य नई लीलाएं रचने वाले त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के दर्शन कर लिए हैं। आपके दर्शनों से समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार सब मिलकर भगवान शिव की जय-जयकार करने लगे। तब वहां उपस्थित मेरु आदि अनेक पर्वतों ने शैलराज हिमालय से कहा कि हे पर्वतराज! अब आप व्यर्थ का विलंब क्यों कर रहे हैं? जल्दी से अपनी कन्या पार्वती का दान क्यों नहीं करते?

तब हिमालय-मैना ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पुत्री पार्वती का कन्यादान कर दिया। कन्यादान करते समय पर्वतराज बोले—हे परमेश्वर करुणानिधान भगवान शिव! मैं अपनी कन्या पार्वती आज आपको देता हूं। आप इसे अपनी पत्नी बनाकर मुझे और मेरे कुल को कृतार्थ करें।

इस प्रकार शैलराज हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती का हाथ व जल भगवान शिव के हाथों में दे दिया। तब सदाशिव ने वेद मंत्रों के वचनों के अनुसार मंत्रों को बोलते हुए देवी पार्वती का हाथ लेकर पृथ्वी का स्पर्श करते हुए लौकिक रीति से उनका पाणिग्रहण स्वीकार किया। इस प्रकार गिरिराज के कन्यादान करते ही चारों ओर शिव-पार्वती की जय-जयकार की ध्वनि गूंजने लगी। गंधर्व प्रसन्नतापूर्वक उत्तम गीत गाने लगे और सुंदर अप्सराएं मगन होकर नाचने लगीं। सभी इस मंगलमय विवाह के संपन्न होने पर मन में बहुत प्रसन्न थे। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि सभी देवता भी बहुत प्रसन्न हुए। उसके बाद शैलराज हिमालय ने भगवान शिव को अनेकों वस्तुएं प्रदान कीं। रत्नों से जड़े हुए सुंदर स्वर्ण के आभूषण, पात्र एवं दूध देने वाली सवा लाख गौएं, एक लाख सुसज्जित अश्व, एक करोड़ हाथी तथा एक करोड़ सोने जवाहरातों से जड़े रथ आदि वस्तुएं सादर भेंट कीं। उन्होंने अपनी पुत्री पार्वती की सेवा में लगे रहने के लिए एक लाख दासियां भी दीं। तत्पश्चात विवाह में पधारे अनेक पर्वतों ने भी अपनी इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार उत्तम वस्तुएं शिव-पार्वती को उपहार स्वरूप भेंट कीं। इस विवाह से सभी प्रसन्न थे। सारी दिशाएं शहनाइयों की मधुर ध्वनि से गुंजायमान थीं। आकाश से भगवान शिव और उनकी प्रिया पार्वती पर पुष्प वर्षा हो रही थी। कल्याणमयी और भक्तवत्सल भगवान शिव को अपनी प्रिय पुत्री पार्वती को समर्पित करने के बाद शैलराज हिमालय और उनकी प्रिय पत्नी मैना हर्ष से प्रफुल्लित हो रहे थे। शैलराज हिमालय ने यजुर्वेद की माध्यंदिनी में लिखे हुए स्तोत्रों द्वारा शुद्ध हृदय और भक्तिभाव से भगवान शिव की अनेकानेक बार स्तुति की। तत्पश्चात वहां उपस्थित श्रेष्ठ मुनिजनों ने उत्साहपूर्वक भगवान शिव और देवी पार्वती के सिर का अभिषेक किया। उस समय हिमालय नगरी में महान उत्सव हो रहा था। सभी नर-नारी प्रसन्नता से नाच-गा रहे थे।

उनचासवां अध्याय

ब्रह्माजी का मोहित होना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उसके उपरांत मेरी आज्ञा पाकर महादेव जी ने अग्नि की स्थापना कराई तथा अपनी प्राणवल्लभा पत्नी पार्वती को अपने आगे बैठाकर चारों वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद के मंत्रों द्वारा हवन कराकर उसमें आहुतियां दीं। उस समय पार्वती के भाई मैनाक ने उनके हाथों में खीलें दीं फिर लोक मर्यादा के अनुसार भगवान शिव और देवी पार्वती अग्नि के फेरे लेने लगे।

उस समय मैं शिवजी की माया से मोहित हो गया। मेरी दृष्टि जैसे ही परम सुंदर दिव्यांगना देवी पार्वती के शुभ चरणों पर पड़ी मैं काम से पीड़ित हो गया। मुझे मन में बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ। किसी की दृष्टि मेरे इन भावों पर पड़ जाए इस हेतु मैंने अपने मन के भावों को दबा लिया परंतु भगवान शिव तो सर्वव्यापी और सर्वेश्वर हैं। भला उनसे कुछ कैसे छिप सकता है। उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ गई और उन्हें मेरे मन में उत्पन्न हुए बुरे विचार की जानकारी हो गई। भगवान शिव के क्रोध की कोई सीमा न रही। कुपित होकर शिवजी मुझे मारने हेतु आगे बढ़ने लगे। उन्हें क्रोधित देखकर मैं भय से कांपने लगा तथा वहां उपस्थित अन्य देवता भी डर गए।

भगवान शिव के क्रोध की शांति के लिए सभी देवता एक स्वर में शिवजी से बोले—हे सदाशिव! आप दयालु और करुणानिधान हैं। आप तो सदा ही अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर उन्हें उनकी इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं। भगवन्, आप तो सत्‌चित्‌ और आनंद स्वरूप हैं। प्रसन्न होकर मुक्ति पाने की इच्छा से मुनिजन आपके चरण कमलों का आश्रय ग्रहण करते हैं। हे परमेश्वर! भला आपके तत्व को कौन जान सकता है। भगवन्, अपनी गलती के लिए ब्रह्माजी क्षमाप्रार्थी हैं। आप तो भक्तों के सदा वश में है। हम सब भक्तजन आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप ब्रह्माजी की इस भूल को क्षमा कर दें और उन्हें निर्भय कर दें।

इस प्रकार देवताओं द्वारा की गई स्तुति और क्षमा प्रार्थना के फलस्वरूप भगवान शिव ने ब्रह्माजी को निर्भय कर दिया। नारद, तब मैंने अपने उन भावों को सख्ती के साथ मन में ही दबा दिया। फिर भी उन भावों के जन्म से हजारों बालखिल्य ऋषियों की उत्पत्ति हो गई, जो बड़े तेजस्वी थे। यह जानकर कि कहीं उन ऋषियों को देख शिवजी क्रोधित न हो जाएं, तुमने उन्हें गंधमादन पर्वत पर जाने का आदेश दे दिया। बालखिल्य ऋषियों को तुमने सूर्य भगवान की आराधना और तपस्या करने का आदेश प्रदान किया। तब वे बालखिल्य ऋषि तुरंत मुझे और भगवान शिव को प्रणाम करके गंधमादन पर्वत पर चले गए।

पचासवां अध्याय

विवाह संपन्न और शिवजी से विनोद

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उसके बाद मैंने भगवान शिव की आज्ञा पाकर शिव-पार्वती विवाह के शेष कार्यों को पूरा कराया। सर्वप्रथम शिवजी व पार्वती जी के मस्तक का अभिषेक हुआ। तत्पश्चात वहां उपस्थित ब्राह्मणों ने दोनों को ध्रुव का दर्शन कराया और उसके बाद हृदय छूना और स्वस्ति पाठ आदि कार्यों को पूरा कराया। यह सब कार्य पूरे होने के बाद भगवान शिव ने देवी पार्वती की मांग में सौभाग्य और सुहाग की निशानी माने जाने वाला सिंदूर भरा। मांग में सिंदूर भरते ही देवी पार्वती का रूप लाखों कमलदलों के समान खिल उठा। उनकी शोभा देखते ही बनती थी। सिंदूर से उनके सौंदर्य में अभिवृद्धि हो गई थी। इसके पश्चात शिव-पार्वती को एक साथ एक सुयोग्य आसन पर बिठाया गया और वहां उन्होंने अन्नप्राशन किया।

इस प्रकार इस उत्तम विवाह के सभी कार्य विधि-विधान से संपन्न हो गए। तब भगवान शिव ने प्रसन्न होकर, इस विवाह को सानंद संपन्न कराने हेतु मुझ ब्रह्मा को आचार्य मानकर पूर्णपात्र दान किया। फिर गर्ग मुनि को गोदान किया तथा वैवाहिक कार्य पूरा करने में सहयोग करने वाले सब ऋषि-मुनियों को सौ-सौ स्वर्ण मुद्राएं और अनेक बहुमूल्य रत्न दान में दिए। तब सब ओर आनंद का वातावरण था। सभी बहुत प्रसन्न थे और शिव-पार्वती की जय-जयकार कर रहे थे। तब मैं श्रीहरि और अन्य ऋषि-मुनि सभी देवताओं सहित शैलराज की आज्ञा लेकर जनवासे में वापिस आ गए।

हिमालय नगर की स्त्रियां, पुरनारियां और पार्वती की सखियां भगवान शिव और पार्वती को लेकर कोहबर में गईं और वहां उनसे लोकोचार रीतियां कराने के उपरांत उन्हें कौतुकागार में ले जाकर अन्य रीति-रिवाजों और रस्मों को सानंद संपन्न कराया। उसके पश्चात उन दोनों को उत्साहपूर्वक केलिग्रह में ले जाया गया। केलिग्रह में भगवान शिव और पार्वती के गंठबंधन को खोला गया। उस समय शिव-पार्वती की शोभा देखने योग्य थी। उस समय उनकी अनुपम मनोहारी छवि देखने के लिए सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गंगा, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुंधती, अहिल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, पृथ्वी, संज्ञा, शतरूपा तथा रति नाम की सोलह दिव्य देवांगनाएं, देवकन्याएं, नागकन्याएं और मुनि कन्याएं वहां पधारीं और भगवान शिव से हास्य-विनोद करने लगीं।

सरस्वती बोलीं—भगवान शिव! अब तो आपने चंद्रमुखी पार्वती को पत्नी रूप में प्राप्त कर लिया है। अब इनके चंद्रमुख को देख-देखकर अपने हृदय को शीतल करो। लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवों के देव! अब लज्जा किसलिए? अपनी प्राणवल्लभा पत्नी को अपने हृदय से लगाओ। जिसके बिछड़ने के कारण आप दुखी होकर इधर-उधर भटकते रहे। उस प्राणप्रिया के मिल जाने पर कैसी लज्जा? तो उधर सावित्री बोलीं—अब तो पार्वती जी को भोजन

कराकर ही भोजन होगा और पार्वती को कपूर सुगंधयुक्त तांबूल भी अर्पित करना होगा। तब जान्हवी बोलीं कि—हे त्रिलोक के स्वामी! स्वर्ण के समान सुंदर पार्वती जी के केश धोना एवं शृंगार करना भी आपका कर्तव्य है। इस पर शची कहने लगीं कि—हे सदाशिव! जिन पार्वती को पाने के लिए आप सदा आतुर थे तथा जिनके वियोग के दिन आपने विलाप कर-कर बिताए हैं, आज वही पार्वती जब आपकी पत्नी बनकर आपके साथ विराजमान हैं, तो फिर काहे का संकोच? क्यों आप पार्वती को अपने हृदय से नहीं लगा रहे हैं? देवी अरुंधती बोलीं—इस सती सुंदरी को मैंने आपको दिया है। अब आप इसे अपने पास रखें और उसके सुख-दुख का खयाल करें।

देवी अहिल्या बोलीं—भगवन्! आप तो सबके ईश्वर हो। इस पूरे संसार के स्वामी हो। आपके परमब्रह्म स्वरूप को कोई नकार नहीं सकता। आप निर्गुण निराकार हैं परंतु आज सब देवताओं ने मिलकर आपको भी दास बना दिया है। प्रभो! अब आप भी अपनी प्राणवल्लभा पार्वती के अधीन हो गए हैं। यह सुनकर वहां खड़ी तुलसी कहने लगीं—आपने तो कामदेव को भस्म करके पार्वती का त्याग कर दिया था, फिर आपने क्यों आज उनसे विवाह कर लिया है? इस प्रकार उन देवांगनाओं की हंसी-मजाक चल रही थी और वे भगवान शिव से ऐसी ही बातें करके बीच-बीच में जोर-जोर से हंसती तो कभी खिलखिलाकर रह जातीं।

इस पर स्वाहा ने कहा कि—हे सदाशिव! इस प्रकार हम सबकी हंसी-ठिठोली सुनकर क्रोधित मत हो जाइएगा। विवाह के समय तो कन्याएं व स्त्रियां ऐसा ही हंसी-मजाक करती हैं। तब वसुंधरा ने कहा—हे देवाधिदेव! आप तो भावों के ज्ञाता हैं। आप तो जानते ही हैं कि काम से पीड़ित स्त्रियां भोग के बिना प्रसन्न नहीं होतीं। प्रभु! अब तो पार्वती की प्रसन्नता के लिए कार्य करो। अब तो पार्वती आपकी पत्नी हो गई हैं। उन्हें खुश रखना आपका परम कर्तव्य है।

इस प्रकार स्त्रियों के विनोदपूर्ण वचन सुनते हुए भगवान शिव चुप थे परंतु जब स्त्रियां चुप न हुईं और इसी प्रकार उन्हें लक्ष्य बनाकर तरह-तरह की हंसी की बातें करती रहीं, तब भगवान शिव ने कहा—हे देवियो! आप लोग तो जगत की माताएं हैं। माता होते हुए पुत्र के सामने इस प्रकार के चंचल तथा निर्लज्ज वचन क्यों कह रही हैं? तब भगवान शिव के ये वचन सुनकर सभी स्त्रियां शरमा कर वहां से भाग गईं।

इक्यानवां अध्याय

रति की प्रार्थना पर कामदेव को जीवनदान

ब्रह्माजी बोले—हे नारद जी! उस समय अनुकूल समय देखकर देवी रति भगवान शिव के निकट आकर बोलीं—हे दीनवत्सल भगवान शिव! आपको मैं प्रणाम करती हूं। देवी पार्वती का पाणिग्रहण करके आपने निश्चय ही लोकहित का कार्य किया है। देवी पार्वती को प्राणवल्लभा बनाने से आपके सौभाग्य में निश्चय ही वृद्धि हुई है। आपने तो पार्वती का वरण कर लिया है परंतु भगवन् मेरे पति कामदेव की क्या गलती थी? उन्होंने तो लोककल्याण वश सभी देवताओं की प्रार्थना मानकर आपके हृदय में पार्वती के प्रति आसक्ति पैदा करने हेतु ही कामबाणों का उपयोग किया था। उनका यह कार्य तो इस संसार को तारकासुर नामक भयानक और दुष्ट असुर से मुक्ति दिलाने के लिए प्रेरित करना था। वे तो स्वार्थ से दूर थे? फिर क्यों आपने उन्हें अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर दिया?

हे देवाधिदेव महादेव जी! हे करुणानिधान! भक्तवत्सल! अपने मन में काम को जगाकर मेरे पति कामदेव को पुनर्जीवित कर मेरे वियोग के कष्ट को दूर करें। आप तो सब की पीड़ा जानते हैं। मेरी पीड़ा को समझकर मेरे दुख को दूर करने में मेरी मदद कीजिए। भगवन्, आज जब सबके हृदय में प्रसन्नता है तो मेरा मन क्यों दुखी हो? मैं अपने पति के बिना कब तक ऐसे ही रहूं? भगवन्, आप तो दीनों के दुख दूर करने वाले हैं। अब आप अपनी कही बात को सच कर दीजिए। भगवन् इस त्रिलोक में आप ही मेरे इस कष्ट और दुख को दूर कर सकते हैं। प्रभो! मुझ पर दया कीजिए और मुझे भी सुखी करके आनंद प्रदान कीजिए। भगवन्! अपने विवाह के शुभ अवसर पर मुझे भी मेरे पति से हमेशा के लिए मिलाकर मेरी विरह-वेदना को कम कीजिए। महादेव जी! मेरे पति कामदेव को जीवित कर मुझ दीन-दासी को कृतार्थ कीजिए।

ऐसा कहकर देवी रति ने अपने दुपट्टे की गांठ में बंधी अपने पति कामदेव के शरीर की भस्म को भगवान शिव के सामने रख दिया और जोर-जोर से रोते-रोते भगवान शिव शंकर से कामदेव को जीवित करने की प्रार्थना करने लगी। देवी रति को इस प्रकार रोते हुए देखकर वहां उपस्थित सरस्वती आदि देवियां भी रोने लगीं और सब भगवान शिव से कामदेव को जीवनदान देने की प्रार्थना करने लगीं।

इस प्रकार देवी रति के बार-बार प्रार्थना करने और स्तुति करने पर भगवान शिव प्रसन्न हो गए और उन्होंने रति के कष्टों को दूर करने का निश्चय कर लिया। शूलपाणि भगवान शिव की अमृतमयी दिव्य दृष्टि पड़ते ही उस भस्म में से सुंदर पहले जैसा वेष और रूप धारण किए कामदेव प्रकट हो गए। अपने प्रिय पति कामदेव को पहले की भांति सुंदर और स्वस्थ पाकर देवी रति की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। वे कामदेव को देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर भगवान शिव को नमस्कार किया और उनकी स्तुति करने लगीं।

दोनों पति-पत्नी कामदेव और रति बार-बार भगवान शिव के चरणों में गिरकर उनका धन्यवाद करके उनकी स्तुति करने लगे। उनकी इस प्रकार की गई स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शिव बोले—हे काम और रति! तुम्हारी इस स्तुति से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुम जो चाहो मनोवांछित वस्तु मांग सकते हो। भगवान शिव के ये वचन सुनकर कामदेव को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर कहा—हे भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पूर्व में मेरे द्वारा किए गए अपराध को क्षमा कर दीजिए और मुझे वरदान दीजिए कि आपके भक्तों से मेरा प्रेम हो और आपके चरणों में मेरी भक्ति हो।

कामदेव के वचन सुनकर भगवान शंकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले 'तथास्तु' जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम अपने मन से भय निकाल दो। अब तुम भगवान श्रीहरि विष्णु के पास जाओ। तत्पश्चात कामदेव ने भगवान शिव को नमस्कार किया और वहां से बाहर चले गए। उन्हें जीवित देखकर सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि कामदेव आप धन्य हैं। महादेव जी ने आपको जीवनदान दे दिया।

तब कामदेव को आशीर्वाद देकर विष्णु पुनः अपने स्थान पर बैठ गए। उधर, भगवान शिव ने अपने पास बैठी देवी पार्वती के साथ भोजन किया और अपने हाथों से उनका मुंह मीठा किया। तत्पश्चात शैलराज की आज्ञा लेकर शिवजी पुनः जनवासे में चले गए। जनवासे में पहुंचकर शिवजी ने मुझे, विष्णुजी और वहां उपस्थित सभी मुनिगणों को प्रणाम किया। तब सब देवता शिवजी की वंदना और अर्चना करने लगे। फिर मैंने, विष्णुजी और इंद्रादि ने शिव स्तुति की। सब ओर भगवान शिव की जय-जयकार होने लगी और मंगलमय वेद ध्वनि बजने लगीं। भगवान शिव की स्तुति करने के पश्चात उनसे विदा लेकर सभी देवता और ऋषि-मुनि अपने-अपने विश्राम स्थल की ओर चले गए।

बावनवां अध्याय

भगवान शिव का आवासगृह में शयन

ब्रह्माजी बोले—नारद! शैलराज हिमालय ने सभी बारातियों के भोजन की व्यवस्था करने हेतु सर्वप्रथम अपने घर के आंगन को साफ कराकर सुंदर ढंग से सजाया। तत्पश्चात गिरिराज हिमालय ने अपने पुत्रों मैनाक आदि को जनवासे में भेजकर भोजन करने हेतु सभी देवी-देवताओं, साधु-संतों, ऋषि-मुनियों, शिवगणों, देवगणों सहित विष्णु और भक्तवत्सल भगवान शिव को भोजन के लिए आमंत्रित किया। तब सभी देवताओं को साथ लेकर सदाशिव भोजन करने के लिए पधारे। हिमालय ने पधारे हुए सभी देवताओं एवं भगवान शिव का बहुत आदर-सत्कार किया और उन्हें उत्तम आसनों पर बैठाया। अनेकों प्रकार के भोजन परोसे गए तथा गिरिराज ने सबसे भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना की। सभी बारातियों ने तृप्ति के साथ भोजन किया तथा आचमन करके सब देवता विश्राम के लिए अपने-अपने विश्रामस्थल पर चले गए।

तब हिमालय प्रिया देवी की आज्ञा लेकर, नगर की स्त्रियों ने भगवान शिव को सुंदर सुसज्जित वासभवन में रत्नजड़ित सिंहासन पर सादर बैठाया। वहां उस भवन में सैकड़ों रत्नों के दीपक जल रहे थे। उनकी अद्‌भुत जगमगाहट से पूरा भवन आलोकित हो रहा था।

उस वास भवन को अनेकों प्रकार की सामग्रियों से सजाया और संवारा गया था। मोती, मणियों एवं श्वेत चंवरों से पूरे भवन को सजाया गया था। मुक्ता-मणियों की सुंदर बंदनवारें द्वार की शोभा बढ़ा रही थीं। उस समय वह वासभवन अत्यंत दिव्य, मनोहर और मन को उमंग-तरंग से आलोकित करने वाला लग रहा था। फर्श पर सुंदर बेल-बूटे बने थे। भवन को सुगंधित करने हेतु सुवासित द्रव्यों का प्रयोग किया गया था। जिसमें चंदन और अगर का प्रयोग प्रमुख रूप से था। उस वासभवन में देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा बनाए गए कृत्रिम बैकुण्ठलोक, ब्रह्मलोक, इंद्रलोक तथा शिवलोक सभी के दर्शन एक साथ हो रहे थे, इन्हें देखकर भगवान शिव को बहुत प्रसन्नता हुई। वासभवन में बीचोंबीच एक सुंदर रत्नों से जड़ा अद्‌भुत पलंग था। उस पर महादेव जी ने सोकर रात बिताई। दूसरी ओर हिमालय ने अपने बंधु-बांधवों को भोजन कराने के उपरांत बचे हुए सारे कार्य पूर्ण किए।

प्रातःकाल चारों ओर पुनः शिव-विवाह का अनोखा उत्सव होने लगा। अनेकों प्रकार के सुरीले वाद्य यंत्र बजने लगे। मंगल-ध्वनि होने लगी। सभी देवता अपने-अपने वाहनों को तैयार करने लगे। सभी की तैयारियां पूर्ण हो जाने के पश्चात भगवान श्रीहरि विष्णु ने धर्म को भगवान शिव के पास भेजा। तब धर्म सहर्ष भगवान शिव के पास वासभवन में गए। उस समय करुणानिधान भगवान शिव सोए हुए थे। यह देखकर योगशक्ति संपन्न धर्म ने भगवान शिव को प्रणाम करके उनकी स्तुति की और बोले—हे महेश्वर! हे महादेव! मैं भगवान श्रीहरि विष्णु की आज्ञा से यहां आया हूं। हे भगवन्! उठिए और जनवासे में पधारिए। वहां सभी

देवता और ऋषि-मुनि आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रभु वहां पधारकर हम सबको कृतार्थ करिए।

धर्म के वचन सुनकर सदाशिव बोले—हे धर्मदेव! आप जनवासे में वापस जाइए। मैं अतिशीघ्र जनवासे में आ रहा हूं। भगवान शिव के ये वचन सुनकर धर्म ने भगवान शिव को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर पुनः जनवासे की ओर चले गए। उनके जाने के पश्चात भगवान शिव तैयार होकर जैसे ही चलने लगे, हिमालय नगरी की स्त्रियां उनके चरणों के दर्शन हेतु आ गईं और मंगलगान करने लगीं। तब महादेव जी ने गिरिराज हिमालय और मैना से आज्ञा ली और जनवासे की ओर चल दिए। वहां पहुंचकर महादेव जी ने मुझे और विष्णुजी सहित सभी ऋषि-मुनियों को प्रणाम किया। तब सब देवताओं सहित मैंने और विष्णुजी ने शिवजी की वंदना और स्तुति की।

तिरेपनवां अध्याय

बारात का ठहरना और हिमालय का बारात को विदा करना

ब्रह्माजी बोले—जब करुणानिधान भगवान शिव जनवासे में पधार गए तो हम सब मिलकर कैलाश लौट चलने की बातें करने लगे। तभी वहां पर पर्वतराज हिमालय पधारे और सभी को भोजन का निमंत्रण देकर वहां से चले गए। तब सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों और अन्य बारातियों को साथ लेकर भगवान शिव, मैं और श्रीहरि विष्णु भोजन ग्रहण करने हेतु नियत स्थान पर पहुंचे। वहां द्वार पर स्वयं शैलराज खड़े थे। उन्होंने सर्वप्रथम महादेव जी के चरणों को धोया और उन्हें अंदर सुंदर आसन पर बैठाया। तत्पश्चात शैलराज ने मेरे, श्रीहरि, देवराज इंद्र सहित सभी मुनियों के चरण धोए और यथायोग्य आसनों पर हम सबको आदरपूर्वक बैठाया। वहां शैलराज हिमालय अपने पुत्रों एवं बंधु-बांधवों सहित कार्य में लगे हुए थे। उन्होंने हमारे सामने अनेक स्वादिष्ट व्यंजन परोसे और हमसे ग्रहण करने के लिए कहा। तब सभी ने आनंदपूर्वक आचमन और भोजन किया। तब गिरिराज बोले—हे देवेश्वर! आपके दर्शनों से हम आनंदित हुए हैं। आपसे एक प्रार्थना करते हैं कि आप बारातियों के साथ कुछ दिन और निवास करें। इस प्रकार शैलराज भगवान शिव से कुछ दिन और रुकने का आग्रह करने लगे। उनकी यह बात सुनकर भगवान शिव बोले—हे शैलेंद्र! आप धन्य हैं। आपकी कीर्ति महान है। आप धर्म की साक्षात मूर्ति हैं। इस त्रिलोक में आपके समान कोई और नहीं है। तब देवताओं ने कहा—हे पर्वतराज! आपके दरवाजे पर परब्रह्म परमात्मा भगवान शिव स्वयं अपने दासों के साथ पधारे हैं और आपने उन्हें सब प्रकार से पूजकर प्रसन्न किया है।

तब शैलराज हिमालय ने दोनों हाथ जोड़कर भगवान शिव से प्रार्थना करके कहा कि भगवन्, मुझ पर कृपा करके आप कुछ दिन और यहां रुककर मेरा आतिथ्य ग्रहण करें। गिरिराज के बहुत कहने पर भगवान शिव ने वहां ठहरने के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। तब सब हिमालय से आज्ञा लेकर अपने-अपने ठहरने के स्थान पर चले गए। तीसरे दिन, गिरिराज हिमालय ने सबको आदरपूर्वक दान दिया और उनका सत्कार किया। चौथे दिन, विधिपूर्वक चतुर्थी कर्म किया गया क्योंकि इसके बिना विवाह को पूर्ण नहीं माना जाता। जैसे ही विधि अनुसार चतुर्थी कर्म पूरा हुआ, चारों ओर मंगल ध्वनि बजने लगी। महान उत्सव होने लगा। नगर की स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं। कुछ तो प्रसन्न होकर नाचने भी लगीं।

पांचवें दिन सब देवताओं ने गिरिराज हिमालय से कहा कि हे पर्वतराज! आपने हमारा बहुत आदर सत्कार किया है। हम सब भगवान शिव के विवाह के लिए यहां पधारे थे। आपके सहयोग से शिव-पार्वती का विवाह आनंदपूर्वक, हर्षोल्लास के साथ संपन्न हो गया है। अतः अब आप हमें यहां से जाने की आज्ञा प्रदान करें परंतु गिरिराज हिमालय स्नेहपूर्वक बोले—हे भगवान शिव! ब्रह्माजी! श्रीहरि विष्णु, देवराज इंद्र! अपनी प्रिय पुत्री पार्वती के

कठिन तप के कारण ही आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि जगत के कर्ता, पालक, संहारक सहित सभी देवता और महान ऋषि-मुनि एक साथ मेरे घर की शोभा बढ़ाने आए हैं। आप सबकी एक साथ सेवा करने का जो शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है, उसका पूरा आनंद आप मुझे उठाने दीजिए। हे देवाधिदेव! अपने इस तुच्छ भक्त पर इतनी सी कृपा और कर दीजिए।

इस प्रकार पर्वतों के राजा हिमालय ने अनेकानेक तरीके से सब देवताओं सहित शिवजी की बहुत अनुनय-विनय की और इस प्रकार उन्हें हठपूर्वक कुछ दिन और रोक लिया। हिमालय ने सबका बहुत सेवा-सत्कार किया। उन्होंने सभी का विशेष खयाल रखा। सभी की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा जाता। शैलराज ने देवताओं के लिए हर संभव सुविधा उपलब्ध कराई। इस प्रकार खूब आदर-सत्कार करके सबका मन जीत लिया।

जब बहुत दिन बीत गए तब देवताओं ने शैलराज हिमालय के पास सप्तऋषियों को भेजा ताकि वे देवी मैना और उनके पति पर्वतराज हिमालय को बारात विदा करने के लिए तैयार करें। तब वे सप्तऋषि प्रसन्न हृदय से शैलराज हिमालय के पास पहुंचे और उनके भाग्य की सराहना करने लगे कि आपके अहोभाग्य हैं, जो स्वयं भगवान शिव आपके दामाद बने। पर्वतराज! आपने अपनी पुत्री पार्वती को शास्त्रों एवं वेदों के अनुसार भगवान शिव की पत्नी बनाकर उन्हें सौंप दिया है। कन्यादान तभी पूर्ण माना जाता है, जब कन्या को बारात के साथ विदा कर दिया जाता है। इसलिए आप भी सहर्ष देवी पार्वती को भगवान शिव के साथ सादर विदा कर दीजिए तभी कन्यादान की रस्म पूरी होगी। तब मैना और उनके पति गिरिराज हिमालय बारात को विदा करने के लिए राजी हो गए।

जब भगवान शिव और सभी देवता और ऋषि-मुनि विदा लेकर कैलाश पर्वत की ओर चलने लगे तब देवी मैना जोर-जोर से रोने लगीं और बोलीं—हे कृपानिधान भगवान शिव! मेरी पुत्री पार्वती का ध्यान रखिएगा। मेरी पुत्री आपकी परम भक्त है। सोते-जागते वह सिर्फ आपके चरणों का ही ध्यान करती है। आप सदा उसके हृदय में विराजमान रहते हैं। आपके गुणगान करते वह नहीं थकती और आपकी निंदा कतई सुन नहीं सकती। यदि मेरी बच्ची से जाने-अनजाने में कोई अपराध हो जाए तो उसे क्षमा कर दीजिएगा। आप तो भक्तवत्सल हैं, करुणानिधान हैं। मेरी पुत्री पर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखिएगा। ऐसा कहकर मैना ने अपनी पुत्री भगवान शिव को सौंप दी। कितने आश्चर्य की बात है कि प्रत्येक माता-पिता इस बात को जानते हैं कि बेटियां धान के पौधे की तरह होती हैं, वे जहां जन्मती हैं, वहां वृद्धि को प्राप्त नहीं होती हैं, फिर भी उसकी विदाई के समय वे दुखी होते हैं, अनजाने ही अपनी आंखों से आंसुओं की झड़ी कैसे लग जाती है।

अपनी प्रिय पुत्री पार्वती के वियोग को सोचते ही वे मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ीं। तब उनके मुंह पर जल की बूंदें डालकर उन्हें होश में लाया गया। तब सदाशिव ने देवी मैना को अनेकों प्रकार से समझाया ताकि वे अपना दुख भूल जाएं। फिर कुछ समय के लिए मैना और पार्वती को अकेला छोड़कर भगवान शिव सब देवताओं व अपने गणों के साथ हिमालय से आज्ञा लेकर चल दिए। हिमालय नगरी के एक सुंदर बगीचे में बैठकर वे सब प्रसन्नतापूर्वक

भगवान शिव की प्राणवल्लभा पत्नी देवी पार्वती के आगमन की बांट संजोए उनकी प्रतीक्षा करने लगे। वे शिवगण प्रसन्नतापूर्वक प्रभु महादेव जी की जय-जयकार कर रहे थे।

चौवनवां अध्याय

पार्वती को पतिव्रत धर्म का उपदेश

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! जब शैलराज हिमालय और देवी मैना से आज्ञा लेकर भगवान शिव सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों सहित अन्य देवगणों व शिवगणों को साथ लेकर उस स्थान से बाहर चले गए, तब सप्तऋषियों ने कहा कि हे शैलराज! अपनी पुत्री को शीघ्र ही भगवान शिव के साथ भेजने की कृपा करें। यह सुनकर हिमालय बहुत व्याकुल हो गए। उन्होंने देवी मैना से पार्वती को भेजने के लिए कहा। देवी मैना ने वैदिक रीति का पालन करते हुए अपनी पुत्री का सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से शृंगार किया। उस समय मैना ने एक ब्राह्मण पत्नी को बुलाकर पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने के लिए कहा।

ब्राह्मण पत्नी ने वहां आकर पार्वती को शिक्षा देते हुए कहा—हे पार्वती! इस सुंदर संसार में नारी विशेष पूजनीय मानी जाती है। जो स्त्रियां पतिव्रत का पालन करती हैं, वे धन्य हैं। वे दोनों कुलों को पवित्र करती हैं। उनके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पति को साक्षात ईश्वर मानकर उसकी सेवा-सुश्रूषा करती हैं, वे स्त्रियां इस लोक में आनंद प्राप्त कर सद्गति को प्राप्त करती हैं और अपने दोनों कुलों को तार देती हैं। सावित्री, लोपामुद्रा, अरुंधती, शांडिली, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वंधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मैना और स्वाहा आदि नारियां साध्वी कहलाती हैं। वे अपने पातिव्रत्य धर्म के कारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव की भी पूजनीय हैं। इसलिए स्त्री को सदैव अपने पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए। पतिव्रता स्त्री पति के भोजन कर लेने के बाद ही भोजन करे। जब तक वह खड़ा हो खुद भी न बैठे। पति के सो जाने के बाद ही सोए और उसके उठने से पहले उठ जाए। क्रोधित होने पर या अत्यधिक प्रसन्नता होने पर भी अपने पति का नाम न लें। पति के बुलाने पर सभी कामों को छोड़कर पति के पास चली जाएं। उसकी हर आज्ञा को अपना धर्म मानकर उसका पालन करे। कभी वह प्रवेश द्वार पर खड़ी न हो। बिना किसी कार्य के किसी के घर न जाए और जाने पर बिना कहे कदापि न बैठे। अपने घर की वस्तुएं किसी को न दे। पतिव्रता स्त्री को वस्त्रों और आभूषणों से विभूषित होकर ही अपना मुख पति को दिखाना चाहिए। जब पति घर से बाहर या परदेश गया हो तो उन दिनों में पतिव्रता स्त्री को सजना-संवरना नहीं चाहिए। पति के सेवन की चीजें ठीक समय पर जब उसे आवश्यकता हो, तुरंत दे दे। अपना हर कार्य चतुराई और होशियारी से करे। अपने पति की हर आज्ञा का पालन करना ही पतिव्रता स्त्री का परम धर्म होता है। पति की आज्ञा लिए बिना पत्नी को कहीं भी नहीं जाना चाहिए, यहां तक कि तीर्थस्थान जैसे पुण्यस्थलों पर भी नहीं। पति के चरणों को धोकर उसको पीने से ही पत्नी का तीर्थ स्नान पूरा हो जाता है। पति द्वारा छोड़े गए जूठे भोजन को पत्नी को प्रसाद समझकर खाना चाहिए।

देवता, पितरों, अतिथियों या भिखारियों को भोजन का भाग देकर ही भोजन करना

चाहिए। व्रत तथा उपवास रखने से पूर्व पति की आज्ञा अवश्य लें अन्यथा व्रत का पुण्य नहीं मिलता। किसी चीज को पाने के लिए अपने पति से झगड़ा कदापि न करें। सुख से आरामपूर्वक बैठे हुए या सोते समय पति को कभी भी न उठाएं। यदि पति किसी बात के कारण दुखी हो, धनहीन हो, बीमार हो या वृद्ध हो गया हो तो भी उसका परित्याग न करे। रजस्वला होने पर तीन दिन तक अपने पति के सामने न जाए। उसे अपना मुख न दिखाए। जब तक स्नान करके शुद्ध न हो जाए, तब तक पति से कोई बात न करे। शुद्ध होकर सर्वप्रथम अपने पति का ही दर्शन करे।

उत्तम पतिव्रत का पालन करने वाली स्त्री को सुहाग का प्रतीक मानी जाने वाली वस्तुओं-जैसे सिंदूर, हल्दी, रोली, काजल, चूड़ियां, मंगलसूत्र, पायल, बिछुए, नाक की लौंग, कान के कुंडलों को सदैव धारण करना चाहिए। जो स्त्रियां सुहाग की निशानी मानी जाने वाली इन वस्तुओं को हर वक्त धारण किए रहती हैं, उनके पति की आयु में वृद्धि होती है। पतिव्रता स्त्री को कभी भी छिनाल, कुलटा आदि भाग्यहीन स्त्रियों के साथ नहीं रहना चाहिए अर्थात उनसे मित्रता नहीं करनी चाहिए। पति से लड़ने वाली एवं उससे वैर भाव रखने वाली स्त्री को सहेली न बनाएं। कभी भी अकेली न रहें। वस्त्रहीन होकर स्नान न करें। सदा पति के कहे अनुसार चलें। पति की इच्छा होने पर ही रमण करें। उसकी हर इच्छा को ही अपनी इच्छा समझें। पति के हंसने पर हंसे और उसके दुखी होने पर दुखी हों।

पतिव्रता स्त्री के लिए उसका पति ही उसका आराध्य होना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से अधिक उसे अपने पति को महत्व देना चाहिए। अपने पति को शिव स्वरूप मानकर उसे पूजना चाहिए। पति के साथ लड़ने वाली स्त्री कुतिया या सियारिन के रूप में जन्म लेती है। पति जिस स्थान पर बैठा हो, उससे ऊंचे स्थान पर न बैठे। किसी की भी निंदा न करे। सबसे मीठे वचन बोले। पति स्त्री की जिंदगी में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसलिए उसका सदैव पूजन करे। नारी को अपने पति को ही देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ एवं व्रत समझकर उसकी आराधना करनी चाहिए। पति से कभी दुर्वचन न कहे। सास, ससुर, जेठ, जिठानी, गुरुओं सहित सभी बड़ों का आदर करे। उनके सामने कभी ऊंचा न बोले और न ही हंसे। बाहर से पति के आने पर आदरपूर्वक उसके चरण धोए।

जो मूढ़ बुद्धि नारियां अपने पति को त्यागकर व्यभिचार करती हैं अथवा दुष्ट पुरुषों के सान्निध्य में रहती हैं वे उल्लू का जन्म लेती हैं। पति से हीन नारी सदा के लिए अपवित्र हो जाती है। तीर्थ स्नान करने पर भी वह अपवित्र रहती है। जिस घर में पतिव्रता नारी का वास होता है, उसके पति, पिता और माता तीनों के कुल तर जाते हैं। वे सीधे स्वर्गलोक की शोभा बढ़ाते हैं। इसके विपरीत जो स्त्रियां पर पुरुषों की ओर आकर्षित होकर अपने मार्ग से भटक जाती हैं वे अपने साथ-साथ अपने कुल का भी नाश करती हैं। पतिव्रता नारी के स्पर्श होने मात्र से ही वहां की भूमि पावन और पापों का नाश करने वाली हो जाती है। सूर्य, चंद्रमा तथा वायुदेव भी पवित्रता हेतु नारी का स्पर्श करते हैं, ताकि वे दूसरों को पवित्र कर सकें। पतिव्रता पत्नी ही गृहस्थ आश्रम की नींव है, सुखों का भंडार है, वही धर्म को पाने का एकमात्र रास्ता है तथा वही परिवार की वंश बेल को आगे बढ़ाने वाली है।

भगवान विश्वनाथ में अटूट भक्तिभाव रखने वाले शिव भक्तों को ही पतिव्रता नारियों की प्राप्ति होती है। पत्नी से ही पति का अस्तित्व होता है। एक-दूसरे के बिना दोनों का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। पत्नी के बिना पति देवयज्ञ, पितृ यज्ञ और अतिथि यज्ञ आदि कोई भी यज्ञ अकेले संपन्न नहीं कर सकता। पतिव्रता नारियों को पवित्र पावनी गंगा के समान पवित्र माना जाता है। उसके दर्शनों से ही सबकुछ पवित्र हो जाता है। पति-पत्नी का संबंध अटूट है। पति प्रणव है और पत्नी वेद की ऋचा, एक तप है तो एक क्षमा। पत्नी द्वारा किए अच्छे कर्मों का फल है पति।

हे गिरिजानंदिनी! शास्त्रों में पतिव्रता नारियों को चार प्रकार का बताया गया है। उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और अतिनिकृष्टा। ये पतिव्रता स्त्रियों के भेद हैं। जो स्त्रियां स्वप्न में भी सिर्फ अपने पति का ही स्मरण करती हैं, ऐसी स्त्रियां 'उत्तमा' पतिव्रता कहलाती हैं। जो स्त्रियां प्रत्येक पुरुष को पिता भाई एवं पुत्र के रूप में देखती हैं, वह 'मध्यमा' पतिव्रता कहलाती हैं। जिसके मन में धर्म और लोकलाज का भय रहता है और इस कारण वह सदैव धर्म का पालन करती है, वह 'निकृष्टा' पतिव्रता कहलाती हैं। जो स्त्री अपने पति से डरकर या कुल के बदनाम होने के डर से व्यभिचार से दूर रहती है वह स्त्री 'अतिनिकृष्टा' पतिव्रता कहलाती है। ये चारों प्रकार की पतिव्रता स्त्रियां पावन, पवित्र और समस्त पापों का नाश करने वाली कही जाती हैं। मुनि अत्रि की पत्नी अनसूया ने अपने पतिव्रत के प्रभाव से त्रिदेवों ब्रह्मा, विष्णु और शिव को शिशु बना दिया था। यही नहीं उन्होंने मरे हुए एक ब्राह्मण को अपने सतीत्व के बल से जीवित कर दिया था।

हे गिरिजानंदिनी! मैंने पतिव्रता स्त्री की सभी विशेषताएं और गुण तुम्हें बता दिए हैं। अब आप इसी के अनुरूप ही आचरण किया करें। अपने पति की हर आज्ञा को सर्वोपरि मानकर उसका पालन करें। पति को खुश रखने से ही सभी मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। आप तो जगदंबा का रूप हैं और आपके पति तो साक्षात भगवान शिव हैं। आपको यह सब बताकर कोई लाभ नहीं, क्योंकि आप तो यह सब जानती ही हैं और इसका उत्तम पालन भी करेंगी। आपके विषय में तो सोचकर ही स्त्रियां पवित्र एवं पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली हो जाती हैं। इसलिए मुझे अधिक कुछ कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे विश्वास है कि आप उत्तम पतिव्रत धर्म का पालन करके संसार की अन्य स्त्रियों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करेंगी।

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण पत्नी चुप हो गई। उनसे पतिव्रत धर्म का उपदेश सुनकर देवी पार्वती ने बहुत हर्ष का अनुभव किया। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मण पत्नी को नमस्कार किया तथा उत्तम धर्म के विषय में ज्ञान देने के लिए उनका धन्यवाद दिया। देवी पार्वती ने अपने आचरण से सभी उपस्थित परिजनों को शिक्षा दी कि भले ही कोई कितना भी जानकार क्यों न हो, उसे अपनी परंपराओं का आदरपूर्वक पालन करना चाहिए। जो अहंकार के कारण लोकधर्म का परित्याग करता है, उसका अपयश होता है तथा वह अपनी संतानों को पथभ्रष्ट करता है।

पचपनवां अध्याय

बारात का विदा होना तथा शिव-पार्वती का कैलाश पर निवास

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार ब्राह्मणी ने देवी पार्वती को पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने के उपरांत महारानी मैना से कहा कि हे महारानी! आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने आपकी पुत्री को पतिव्रत धर्म एवं उसके पालन के विषय में बता दिया। अब आप इसकी विदा की तैयारी कीजिए। देवी मैना ने पार्वती को अपने हृदय से लगा लिया और जोर-जोर से रोने लगीं। अपनी माता को इस प्रकार रोते देख पार्वती की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। पार्वती और मैना को रोता देख सभी देवताओं की पत्नियां एवं वहां उपस्थित सभी नारियां भावविह्वल हो उठीं। तभी पर्वतराज हिमालय अपने पुत्रों मैनाक, मंत्रियों के साथ वहां आए और मोह के कारण अपनी पुत्री पार्वती को गले से लगाकर रोने लगे। गिरिजा की मां, भाभियां तथा वहां उपस्थित सभी स्त्रियां रो रही थीं। तब तत्वज्ञानियों और मुनियों तथा पुरोहितों ने अध्यात्म ज्ञान द्वारा सबको समझाया तथा यह भी बताया कि उपस्थित शुभमुहूर्त में ही बारात विदा करनी चाहिए।

ऋषि-मुनियों के समझाने से भावनाओं का सागर थमा। तब पार्वती ने भक्ति-भाव से अपने माता-पिता, भाइयों एवं गुरुजनों के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया तथा पुनः रोने लगीं। तब सबने प्रेमपूर्वक उन्हें चुप कराया।

शैलराज हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती के बैठने के लिए एक सुंदर रत्नों से जड़ी हुई पालकी मंगवाई। ब्राह्मण पत्नियों ने उन्हें उस पालकी में बैठाया। सभी ने उन्हें ढेरों आशीष और शुभकामनाएं दीं। शैलराज हिमालय और मैना ने उन्हें अनेक दुर्लभ वस्तुएं उपहार स्वरूप भेंट कीं। देवी पार्वती ने हाथ जोड़कर सबको विनम्रतापूर्वक नमस्कार किया और उनकी पालकी वहां से चल दी। प्रेम के वशीभूत होकर उनके पिता हिमालय और भाई भी उनकी पालकी के साथ-साथ चल दिए। कुछ देर बाद वे उस स्थान पर पहुंचे जहां शिवजी अन्य बारातियों के साथ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। हिमालय ने नम्रतापूर्वक वहां उपस्थित भगवान शिव, ब्रह्मा, विष्णु सहित सभी श्रेष्ठजनों को नमस्कार किया और अपनी पुत्री को शिवजी को सौंप दिया। तत्पश्चात हम सबसे विदा लेकर वे हिमालयपुरी लौट गए।

जब शैलराज हिमालय अपने नगर को लौट गए। तब हम सब भी कैलाश पर्वत की ओर चल दिए। भगवान शिव और पार्वती के विवाह हो जाने पर सभी की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। सभी उत्साहपूर्वक चलने लगे। महादेवजी के शिवगण नाचते-कूदते, गाते-बजाते अपने स्वामी के परम पावन निवास की ओर बढ़ रहे थे। मैं और श्रीहरि विष्णुजी भी शिवजी के विवाह होने से प्रसन्न थे। उधर, देवराज इंद्र के हर्ष की कोई सीमा नहीं थी। वह सोच रहे थे कि शिव-पार्वती के विवाह से उनके कष्टों और दुखों में अवश्य कमी होगी। उन्हें इस बात का

यकीन हो गया था कि अब जल्द ही उन्हें और सब देवताओं को तारकासुर नामक भयंकर दैत्य से मुक्ति अवश्य मिलेगी। भगवान शिव भी हर्ष का अनुभव कर रहे थे, उन्हें उनके जन्म-जन्म की प्रेयसी पार्वती पुनः पत्नी रूप में प्राप्त हो गई थी। इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक आनंद में मगन होकर सभी कैलाश पर्वत की ओर जा रहे थे। उस समय सभी दिशाओं से पुष्प वर्षा हो रही थी, मंगल ध्वनि बज रही थी और मंगल गान गाए जा रहे थे।

इस प्रकार यात्रा करते हुए सभी कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां पहुंचकर भगवान शिव ने पार्वती से कहा—हे देवेश्वरी! आप सदा से ही मेरी प्रिया हैं। आप पूर्व जन्म में मुझसे बिछुड़ गई थीं। सब देवताओं की कृपा से आज हम पुनः एक हो गए हैं। आज आपको पुनः अपने पास विराजमान पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। हम दोनों का साथ तो जन्म-जन्मांतरों से है। शिव-शिवा के बिना और शिवा शिव के बिना अधूरी हैं। आज मुझे पुनः अपनी प्राणवल्लभा मिल गई हैं।

प्रभु शिव की इन प्यारी बातों को सुनकर देवी पार्वती का मुख लज्जा से लाल हो गया। उनके बड़े-बड़े सुंदर नेत्र झुक गए और वे धीरे से बोलीं—हे नाथ! आपकी हर एक बात मुझे स्मरण है। मेरे जीवन में सबकुछ आप ही हैं। आज आपने अपनी इस दासी को अपने चरणों में जगह देकर बहुत बड़ा उपकार किया है। मैं आपको पति के रूप में पाकर धन्य हो गई हूं।

देवी पार्वती के उत्तम मधुर वचनों को सुनकर भगवान शिव मुस्कुरा दिए। तत्पश्चात भगवान शिव ने सभी देवताओं को स्वादिष्ट भोजन कराया एवं उन्हें सुंदर उपहार भेंट स्वरूप दिए। भोजन करने के बाद सभी देवता एवं ऋषि-मुनि भगवान शिव के पास आए और उन्हें प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे और शिव-पार्वती से आज्ञा लेकर अपने-अपने धाम चले गए। तब मैंने और श्रीहरि ने भी चलने के लिए आज्ञा मांगी तो शिवजी ने हमें प्रणाम किया। तब मैंने और विष्णुजी ने हृदय से लगाकर उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर हम भी अपने-अपने लोकों को चले गए।

हम सबके कैलाश पर्वत से चले जाने के बाद भगवान शिव अपनी प्राणवल्लभा पार्वती के साथ आनंदपूर्वक वहां निवास करने लगे। भगवान शिव के गण शिव-पार्वती की भक्तिपूर्वक आराधना करने लगे। नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें भगवान शिव-पार्वती के विवाह का पूर्ण विवरण सुनाया। यह उत्तम कथा शोक का नाश करने वाली, आनंद, धन और आयु की वृद्धि करने वाली है। जो मनुष्य सच्चे मन से प्रतिदिन इस प्रसंग को पढ़ता अथवा सुनता है, वह शिवलोक को प्राप्त कर लेता है। इस कथा से समस्त रोगों का नाश होता है तथा सभी विघ्न-बाधाएं दूर हो जाती हैं। यह कथा यश, पुत्र, पौत्र आदि मनोवांछित वस्तु प्रदान करने वाली तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है। सभी शुभ अवसरों और मंगल कार्यों के समय इस कथा का पठन अथवा श्रवण करने से समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। इसमें कोई संशय नहीं है। यह सर्वथा सत्य है।

।। श्रीरुद्र संहिता (पार्वती खंड) संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीरुद्र संहिता

चतुर्थ खंड

पहला अध्याय

शिव-पार्वती विहार

जिनका मन वंदना करने से प्रसन्न होता है, जो प्रेम प्रिय हैं और जो प्रेम प्रदान करने वाले हैं, जो पूर्णानंद हैं और अपने भक्तों की इच्छाओं को सदा पूरा करने वाले हैं, जो ऐश्वर्य संपन्न और कल्याणकारी हैं, जो साक्षात सत्य के स्वामी हैं, सत्यप्रिय और सत्य के प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी सदा स्तुति करते हैं, जो अपनी इच्छा के अनुरूप शरीर को धारण करते हैं, उन परम आदरमयी भगवान शिव की मैं चरण वंदना करता हूं।

मुनिश्रेष्ठ नारद जी ने ब्रह्माजी से पूछा—हे ब्रह्मन्! आप समस्त देवताओं और प्राणियों का मंगल करने वाले हैं। हे भगवन्, आप मुझ पर कृपा करके यह बताइए कि देवाधिदेव करुणानिधान भगवान शिव तो अत्यंत शक्तिशाली और समर्थ हैं। फिर भी जिस अभीष्ट फल की सिद्धि के लिए उन्होंने गिरिजानंदिनी पार्वती से विवाह रचाया था, क्या वह पूर्ण हुआ? उन्हें पुत्र की प्राप्ति कब और कैसे हुई? तारकासुर का वध किस प्रकार हुआ? प्रभु! कृपया कर मेरी इन जिज्ञासाओं की शांति हेतु मुझे इनके बारे में विस्तृत रूप में बताइए।

सूत जी कहते हैं कि जब नारद जी ने यह पूछा तब ब्रह्माजी ने प्रसन्नतापूर्वक भगवान शिव का स्मरण करते हुए कहा—नारद! जब भगवान शिव देवी पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर पधारे तब वहां सबने मंगल उत्सव किया। सभी खुशी में मगन होकर नृत्य कर रहे थे। तब भगवान शिव ने सभी को उत्तम भोजन कराया। तब सब देवताओं और मुनिगणों ने उनसे विदा लेकर अपने-अपने धाम की ओर प्रस्थान किया। सब देवताओं के कैलाश पर्वत से चले जाने के पश्चात भगवान शिव अपनी प्रिया पार्वती को साथ लेकर अत्यंत मनोहर, दिव्य और निर्जन स्थान पर चले गए और वहीं सहस्रों वर्षों तक पार्वती जी के साथ विहार करते रहे। इस प्रकार भगवान शिव ने इतने अधिक समय को क्षण भर के समान व्यतीत कर दिया।

इस प्रकार समय तीव्र गति से व्यतीत होता जा रहा था परंतु भगवान शिव का पुत्र अब तक उत्पन्न नहीं हुआ था। यह जानकर सभी देवताओं को मन ही मन चिंता सताने लगी। तब देवराज इंद्र ने एक सभा करने का विचार किया और उन्होंने सभी देवताओं को सुमेरु पर्वत पर आमंत्रित किया। उस सभा में सब देवता इस बात पर विचार करने लगे कि इतना समय व्यतीत हो जाने पर भी अब तक शिवजी ने पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किया? वे सोचने लगे कि शिवजी अब क्यों विलंब कर रहे हैं? उस समय मुझ ब्रह्मा को लेकर सब देवता भगवान श्रीहरि विष्णु के पास गए और कहने लगे कि हे हरे! भगवान शिव हजारों वर्षों से रति क्रीड़ा कर रहे हैं। उनका पार्वती जी के साथ विहार अब भी जारी है परंतु अब तक किसी शुभ समाचार की प्राप्ति नहीं हुई है। तब भगवान श्रीहरि विष्णु मुस्कुराए और बोले—हे देवताओ! आप इस विषय में इतनी चिंता मत कीजिए। शिवजी स्वयं अपनी इच्छानुसार इस स्थिति से

विरत हो जाएंगे। वैसे भी हमारे शास्त्रों में इस बात का उल्लेख है कि जो व्यक्ति स्त्री-पुरुष का वियोग कराता है उसे हर जन्म में इस वियोग को स्वयं भी भोगना पड़ता है। अतः अभी कुछ भी नहीं करना चाहिए। कुछ समय और व्यतीत हो जाने दो। अभी हमें सिर्फ प्रतीक्षा करनी होगी। कुछ देर सोचने के पश्चात श्रीहरि ने पुनः कहा, एक हजार वर्ष बीत जाने पर आप सब लोक शिवजी के पास जाना तथा कोई युक्ति लगाकर ऐसा उपाय करना कि उनका शक्तिपात किसी भी प्रकार से हो जाए। उसी शक्ति से हमें उनके पुत्र की प्राप्ति हो सकती है परंतु इस समय आप सब देवता अपने-अपने धाम को चले जाएं। भगवान शिव को अपनी पत्नी पार्वती के साथ आनंदपूर्वक विहार करने दें।

सब देवताओं को समझाकर श्रीहरि बैकुण्ठधाम को चले गए। श्रीहरि के चले जाने के उपरांत सब देवताओं ने अपनी चिंता त्याग दी और प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धाम चले गए। समय अपनी गति से बीतता गया परंतु शिवजी का पुत्र नहीं हुआ। तारकासुर का भय और आतंक का साया दिन पर दिन और बढ़ने लगा। देवताओं सहित ऋषि-मुनियों और साधारण मनुष्यों का जीवन उसने दूभर कर दिया था। तारकासुर के डर से पृथ्वी कांप उठी तब श्रीविष्णु जी ने सब देवताओं को बुलाया और भगवान शिव के पास चलने के लिए कहा। तब सब देवताओं को साथ लेकर भगवान श्रीहरि और मैं भगवान शिव से भेंट करने के लिए कैलाश पर्वत पर पहुंचे परंतु भगवान शिव कैलाश पर्वत पर नहीं थे। उनके गणों से जब हमने महादेव जी के विषय में पूछा तो उन्होंने बताया कि भगवान शिव माता पार्वती के पास उनके मंदिर में गए हैं। तब श्रीहरि ने शिवगणों से उनका पता पूछा।

तत्पश्चात हम सब उस स्थान पर पहुंचे जहां त्रिलोकीनाथ भगवान शिव अपनी प्रिया के साथ निवास कर रहे थे। तब वहां उनके निवास के द्वार पर पहुंचकर सब देवताओं ने भगवान शिव का स्मरण कर उन्हें मन में प्रणाम कर उनकी स्तुति आरंभ कर दी।

दूसरा अध्याय

स्वामी कार्तिकेय का जन्म

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! भगवान शिव तो सर्वेश्वर हैं। हर विषय के ज्ञाता हैं। भला उनसे कोई बात किस प्रकार छुप सकती है? भगवान शिव तो महान योगी हैं और सबकुछ जानने वाले हैं। इसलिए उन्होंने अपने योग बल से यह जान लिया कि मैं, विष्णुजी सभी देवताओं को साथ लेकर उनके द्वार पर आए हैं। तब वे बड़े हर्षित हुए और हम सबसे मिलने के लिए द्वार पर पधारे और हमारी स्तुति को स्वीकारते हुए बोले—आप सब एक साथ यहां क्यों पधारे हैं? तब हमने अपने आने का प्रयोजन बताते हुए कहा कि हे देवाधिदेव! करुणानिधान भगवान! तारकासुर के अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। प्रभु, अब तो उपाय कीजिए कि हमें उसके आतंक से मुक्ति मिल जाए।

देवताओं के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव दुखी हो गए और कुछ देर तक चुपचाप कुछ सोचने के बाद बोले—हे देवताओ! आपके दुखों को मैं समझ रहा हूं परंतु मेरे लिए एक कठिन समस्या है कि मेरे द्वारा किए गए शक्तिपात को कौन धारण कर सकता है? ऐसा कहकर उन्होंने अपना शक्तिपात धरती पर गिरा दिया। तब सब देवताओं ने अग्निदेव से प्रार्थना की कि वे भगवान शिव की उस शक्ति को कपोत बनकर धारण कर लें। सब देवताओं का आग्रह स्वीकार करके अग्निदेव ने कपोत रूप धारण कर उस शक्ति को अपने अंदर समाहित कर लिया।

जब बहुत देर तक भगवान शिव देवी पार्वती के पास वापस नहीं पहुंचे तो परेशान होकर देवी स्वयं उन्हें देखने बाहर चली आईं। वहां जब उन्होंने अग्निदेव को उस शक्ति का भक्षण करते हुए देखा तो वे क्रोधित हो गईं। उस समय उनकी आंखें गुस्से के कारण लाल हो गई थीं। तब देवी पार्वती ने अग्निदेव से कहा—हे दुष्ट अग्निदेव! आपने मेरे पति त्रिलोकीनाथ की शक्ति का भक्षण किया है, इसलिए आज मैं तुम्हें शाप देती हूं कि तुम सर्वभक्षी होगे। जो भी तुम्हारे संपर्क में आएगा वह तत्काल नष्ट हो जाएगा। तुम सर्वथा इस आग में स्वयं भी जलते रहोगे। अग्निदेव को क्रोध में यह शाप देकर देवी पार्वती वहां से चली गईं। उनके साथ शिवजी भी वहां से चले गए। इधर समस्त देवताओं द्वारा अग्नि में होम करने से और अन्न आदि के सेवन द्वारा वह शक्ति सब देवताओं के शरीर में पहुंच गई। उस शक्ति की गरमी से सभी देवता दुखी हो गए थे। तब सब पुनः भगवान शिव की शरण में पहुंचे और उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि भगवन्! हमें इस जलन से मुक्ति दिलाएं। हम सबकी पीड़ा अनुभव कर उन्होंने हमसे कहा कि इस शक्ति के ताप और जलन को बंद करने के लिए उसे हमें अपने शरीर से वमन के द्वारा बाहर निकालना होगा।

भगवान शिव की आज्ञा मानकर हम सभी देवताओं ने वमन द्वारा शिवजी की उस शक्ति को अपने शरीर से निकाल दिया। उसके निकलते ही सबने संतोष की सांस ली और महादेव

जी की स्तुति करके उन्हें धन्यवाद दिया परंतु अग्नि देव की पीड़ा किसी भी प्रकार कम नहीं हो रही थी। उनका हृदय जल रहा था। तब मैंने अग्निदेव को भगवान शिव की शरण में जाने की सलाह दी। मेरी बात मानकर अग्नि देवता ने भक्तवत्सल भगवान शिव की बहुत स्तुति की तब शिवजी प्रसन्न हुए और बोले—कहिए अग्निदेव, आप क्या कहना चाहते हैं? तब अग्निदेव ने हाथ जोड़कर भगवान को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। तत्पश्चात वे बोले—हे देवाधिदेव! कृपा करके मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए। मैं बहुत बड़ा मूर्ख हूं जो मैंने आपकी शक्ति का भक्षण कर लिया। आप मुझे क्षमा करें और मुझ पर प्रसन्न हों। भगवन्, मुझ पर कृपा कर इस शक्ति के ताप को कम करके मुझे मुक्ति दिलाएं।

यह सुनकर भगवान प्रसन्नतापूर्वक अग्निदेव से बोले—हे अग्निदेव! आपने उस शक्ति का सेवन करके बहुत बड़ी भूल की है। अपने किए का दंड आप काफी समय से भोग रहे हैं इसलिए मैं आपको क्षमा करता हूं। तुम मेरी इस शक्ति को किसी नारी शरीर में स्थिर कर दो। ऐसा करने से तुम्हारे सभी कष्ट दूर हो जाएंगे। यह सुनकर अग्नि ने दुबारा प्रश्न किया कि भगवन् आपका तेज धारण करने की क्षमता तो किसी में भी नहीं है। तभी नारद तुम भी वहां आ गए और अग्निदेव से बोले कि जैसा भगवान शिव की आज्ञा है, वैसा ही करो। ऐसा करने से तुम्हारे कष्ट दूर हो जाएंगे।

तब तुमने अग्निदेव से कहा कि माघ महीने में जो भी स्त्री सबसे पहले प्रयाग में स्नान करे उसके शरीर में आप इस शक्ति को स्थित कर देना। माघ का महीना आने पर सुबह ब्रह्म मुहूर्त में सर्वप्रथम सप्तऋषियों की पत्नियां प्रयाग में स्नान करने पहुंचीं। स्नान करने के उपरांत जब उन्होंने अत्यधिक ठंड का अनुभव किया तो उनमें से छः स्त्रियां अग्नि के पास जाकर आग तापने लगीं। उसी समय उनके रोमों के द्वारा शिवजी की शक्ति के कण अग्नि से निकलकर उनके शरीर में पहुंच गए। तब अग्निदेव को जलन की पीड़ा से मुक्ति मिल गई।

समयानुसार वे छः ऋषि पत्नियां गर्भवती हो गईं। उनके पतियों ने उन्हें व्यभिचारी समझकर उनका त्याग कर दिया। तब वे सब हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगीं। वहीं उस पर्वत पर उन्होंने कई भागों में मानव अंगों को जन्म दिया, परंतु वह पर्वत उनके भार को सहन नहीं कर सका और उसने उन्हें गंगाजी में गिरा दिया। गंगाजी ने उन्हें जोड़ दिया पर वे उस बालक के तेज को सहन नहीं कर सकीं और उसे अपनी तरंगों में बहाकर सरकंडे के वन के निकट छोड़ दिया। वह तेजस्वी बालक मार्गशीर्ष में शुक्ल षष्ठी के दिन पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ। उसके पृथ्वी पर आते ही सभी को आनंद की अनुभूति हुई। आकाश में दुदुभियां बजने लगीं और फूलों की वर्षा होने लगी।

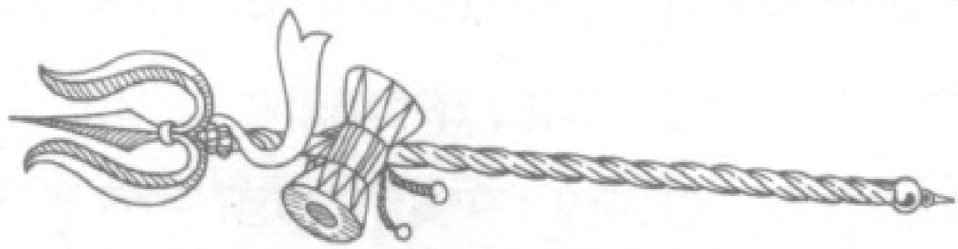

तीसरा अध्याय

स्वामी कार्तिकेय और विश्वामित्र

नारद जी बोले—हे ब्रह्माजी! जब वह बालक पृथ्वी पर अवतरित हो गया, तब वहां क्या और कैसे हुआ? तब नारद जी का प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब गंगाजी द्वारा उस तेजस्वी बालक को लहरों द्वारा बहाकर सरकंडे के वन के पास छोड़ दिया गया, तभी वहां मुनि विश्वामित्र पधारे।

उस बालक का देदीप्यमान मुख देखकर विश्वामित्र दंग रह गए। वह बालक दिव्य तेज से प्रकाशित हो रहा था। उसे बड़ा प्रतापी और बलशाली जानकर मुनि विश्वामित्र ने उसे नमस्कार किया और उसकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात मुनि बोले कि भगवान शिव की इच्छा से ही तुम यहां प्रकट हुए हो। शिव तो सर्वेश्वर हैं। वे ही परम ब्रह्म परमात्मा हैं। इस संसार का हर प्राणी, हर जीव उनकी आज्ञा का ही पालन करता है। तब मुनि विश्वामित्र के ऐसे वचन सुनकर वह बालक बोला—हे महाज्ञानी, प्रकांड पंडित, मुनि विश्वामित्र! मेरे इस स्थान पर आने के बाद सर्वप्रथम आप ही यहां पधारे हैं। निश्चय ही आपका यहां आना भगवान शिव की प्रेरणा से ही प्रेरित है। इसलिए आप ही विधि-विधान के अनुसार मेरा नामकरण संस्कार कीजिए। आज से आप ही मेरे पुरोहित हैं और मेरे द्वारा पूज्य हैं। मेरे द्वारा पूज्य होने के कारण आप इस जगत में विख्यात और पूज्य होंगे।

उस बालक के ऐसे वचन सुनकर मुनि विश्वामित्र आश्चर्यचकित होकर उस बालक से पूछने लगे कि हे बालक! आप कौन हैं? अपने विषय में मुझे बताइए। तब उनकी बात सुनकर वह बालक बोला—हे विश्वामित्र! अब आप ब्रह्मर्षि हो गए हैं। मेरे विषय में जानने से पूर्व आप मेरा संस्कार कीजिए। तब मुनि विश्वामित्र ने उस अद्‌भुत बालक का नामकरण संस्कार किया और उसका नाम कार्तिकेय रखा। गुरु दक्षिणा के रूप में उसने मुनि को दिव्य ज्ञान प्रदान किया। तब मैंने स्वयं वहां जाकर उस बालक को गोद में लिया और उसे चूमा। तत्पश्चात मैंने उसे शक्तियां और शस्त्र प्रदान किए। उन अद्‌भुत शक्तियों को प्राप्त कर वह बालक बहुत प्रसन्न हुआ और तुरंत ही पहाड़ पर चढ़ गया। पहाड़ पर चढ़कर वह उसके शिखरों को गिराने लगा तथा वहां की संपदा नष्ट करने लगा। यह देखकर उस स्थान पर निवास करने वाले राक्षस उस बालक को मारने के लिए दौड़े। उन भयंकर राक्षसों से बिना भयभीत हुए उसने उन सबको भगा दिया। उनके भयंकर युद्ध से पूरा त्रिलोक कांपने लगा।

त्रिलोक को भयभीत होता देखकर सब देवता वहां पहुंचे। देवराज इंद्र ने क्रोध में आकर उस बालक पर प्रहार किया। इस प्रहार के फलस्वरूप उस बालक के शरीर से विशाख नाम का दूसरा पुरुष पैदा हो गया। उन्होंने उस बालक पर एक और प्रहार किया तो नेगम नाम का एक और महाबली पुरुष पैदा हो गया। इस प्रकार इंद्र के प्रहारों से चार स्कंध पैदा हुए, जो बहुत वीर और बलवान थे। तब क्रोधित होकर ये चारों स्कंध एक साथ मिलकर स्वर्ग के राजा

इंद्र को मारने के लिए दौड़े। यह देखकर इंद्र घबराकर अपनी जान बचाने के लिए कहीं दूर जाकर छिप गए। उनको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह बालक उनके धाम स्वर्ग में पहुंच गया।

उस समय जब वह बालक स्वर्ग पहुंचकर देवराज इंद्र को ढूंढ़ रहा था। एक सुंदर सरोवर में छः कृत्तिकाएं स्नान कर रही थीं। उस सुंदर-सलोने बालक को देखकर वह उसे प्यार करने और गोद में खिलाने के लिए दौड़ीं और उसे पकड़कर ले आईं। तब उन कृत्तिकाओं ने उस नन्हे बालक को बहुत प्यार किया और तब वे आपस में उसे दूध पिलाने के लिए लड़ने लगीं। तब उस बालक ने छः मुख धारण करके सब माताओं का स्तनपान किया। तब वे प्रसन्नतापूर्वक उस बालक को अपने साथ अपने लोक में ले गईं और उसका लालन-पालन करने लगीं।

चौथा अध्याय

कार्तिकेय की खोज

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उस दिव्य बालक को लेकर वे कृत्तिकाएं अपने लोक में चली गईं। वहां जाकर उन्होंने उस बालक को सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत किया और बड़े लाड़-प्यार से उस बच्चे को पालने लगीं। जब बहुत समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन पार्वती जी ने अपने पति शिवजी से पूछा—हे प्रभु! आप तो सबके ईश्वर हैं, सब प्राणियों के वंदनीय हैं। सब आपका ही ध्यान करते हैं। भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूं। तब त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने मुस्कुराकर कहा—देवी पूछो, क्या पूछना चाहती हो? तब देवी पार्वती ने कहा प्रभु! आपकी शक्ति जो पृथ्वी पर गिरी थी, वह कहां गई?

देवी पार्वती के इन वचनों को सुनकर शिवजी ने विष्णुजी, मेरा और सब देवताओं और मुनियों का स्मरण किया। यह ज्ञात होते ही कि भगवान शिव ने हमें बुलाया है, हम सभी तुरंत कैलाश पर्वत पर चले गए। वहां पहुंचकर हमने महादेव जी और देवी पार्वती को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और उनकी स्तुति की। तब भगवान शिव बोले—हे देवताओ, मुझे यह बताइए कि मेरी वह अमोघ शक्ति कहां है? शीघ्र बताओ, अन्यथा मैं तुम्हें इसके लिए दंड दूंगा।

भगवान शिव के ये वचन सुनकर सभी देवता भय से कांपने लगे। तब उन्होंने जैसे-जैसे वह शक्ति जहां-जहां गई थी, वह सभी बातें शिव-पार्वती को विस्तार सहित बताईं। तब उन्होंने यह भी बताया कि उस बालक को छः कृत्तिकाएं अपने साथ अपने लोक को ले गई हैं और उसको पाल रही हैं। यह सुनकर शिवजी व देवी पार्वती को बहुत प्रसन्नता हुई। वे दोनों अपने उस पुत्र को देखने के लिए बहुत उत्सुक थे। तब शिवजी ने अपने गणों को उस बालक को कृतिकाओं के पास से वापस ले आने की आज्ञा दी।

भगवान शिव की आज्ञा पाकर उनके वीर बलशाली गण, क्षेत्रपाल और भूत-प्रेत गण लाखों की संख्या में शिवजी के पुत्र की खोज में निकल पड़े। तब उन सबने वहां पहुंचकर कृत्तिकाओं के घर को घेर लिया। यह देखकर कृत्तिकाएं भय से व्याकुल हो गईं। तब कृत्तिकाओं ने अपने पुत्र कार्तिकेय से कहा कि हमें चारों ओरसे असंख्य सेनाओं ने घेर लिया है। अब हमें बचने का मार्ग खोजना होगा।

यह सुनकर स्वामी कार्तिकेय मुस्कुराए और बोले—हे माताओ! आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका यह पुत्र आपके साथ है। मेरे रहते कोई भी शत्रु इस घर में प्रवेश नहीं कर सकता। माता! मेरे बालरूप को देखकर आप मुझे अयोग्य न समझें। मैं इन सभी को हराने में सक्षम हूं। इससे पूर्व कि कार्तिकेय उन गणों की सेनाओं को नुकसान पहुंचाते नंदीश्वर उनके सामने आकर खड़े हो गए और बोले—हे माताओ! हे भ्राता! मुझे संसार के संहारकर्ता भगवान शिव ने यहां भेजा है। मेरे यहां आने का उद्देश्य किसी को

नुकसान पहुंचाना नही है। मैं तो सिर्फ आपको अपने साथ ले जाने आया हूं। इस समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव त्रिदेव आपकी कैलाश पर्वत पर प्रतीक्षा कर रहे हैं तथा आपके लिए चिंतित हैं। आप शीघ्र ही हमारे साथ पृथ्वी पर चलें। आप अभी तक अपने जन्म के उद्देश्य से सर्वथा अनजान हैं। आपका जन्म दैत्यराज तारकासुर का वध करने के लिए ही हुआ है। अतः आप हमारे साथ चलें। वहां पृथ्वी लोक पर सब देवताओं सहित स्वयं भगवान शिव आपका अभिषेक करेंगे तथा सब देवता अपनी-अपनी दिव्य शक्तियां और अस्त्र-शस्त्र आपको प्रदान करेंगे।

यह सुनकर कार्तिकेय बोले—यदि आपको भगवान शिव ने यहां मेरे पास भेजा है तो मैं अवश्य ही उनके दर्शनों के लिए आपके साथ चलूंगा। हे तात! ये ज्ञानयोगिनियां प्रकृति की कला हैं। इन्हें कृत्तिका नाम से जाना जाता है। इन्होंने ही अब तक मेरा पालन-पोषण किया है। इसलिए ये मेरी माताएं हैं और मैं इनका पौष्य पुत्र हूं। तब स्वामी कार्तिकेय ने हाथ जोड़कर कृत्तिकाओं से नंदीश्वर के साथ जाने की आज्ञा मांगी। माताओं ने अपना आशीर्वाद देकर उन्हें वहां से जाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

पांचवां अध्याय

कुमार का अभिषेक

ब्रह्माजी बोले—जब कार्तिकेय अपनी माताओं कृत्तिकाओं से आज्ञा लेकर भगवान शिव के पास जाने के लिए वहां से निकले तो द्वार पर देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया सुंदर रथ उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह रथ दिव्य था और द्रुत गति से चलने वाला था। उस रथ को उनकी माता पार्वती ने उनके लिए भेजा था। उनके पार्षद उस रथ के पास खड़े हुए थे। कार्तिकेय दुखी मन से उस रथ पर चढ़ने लगे। तभी उनकी माताएं दौड़कर रोते हुए उनसे लिपट गईं और कहने लगीं कि पुत्र हम तुम्हारे बिना क्या करें? पुत्र हम तुमसे बहुत प्यार करती हैं, तुम्हारे बिना यहां रहना हमारे लिए संभव नहीं है। तुम शीघ्र ही वापिस लौट आना। यह कहकर उन्होंने कार्तिकेय को हृदय से लगा लिया और भारी मन से कार्तिकेय को रोते-रोते जाने की आज्ञा दी। तब कार्तिकेय ने कृत्तिकाओं को अध्यात्म ज्ञान प्रदान किया। तत्पश्चात कार्तिकेय उस दिव्य मनोहर रथ पर बैठ गए और वह उन्हें ले उड़ा। आकाशीय मार्ग से तीव्र गति से चलता हुआ वह रथ कैलाश पर्वत पर आकर रुका। तब शिवगणों ने भगवान शिव और माता पार्वती के पास जाकर, कार्तिकेय के आगमन की शुभ सूचना उन्हें दी। उनके आगमन के बारे में सुनकर भगवान शिव और देवी पार्वती बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात भगवान शिव, मुझे, विष्णुजी, देवी पार्वती और अन्य देवताओं को साथ लेकर उस स्थान पर पहुंचे जहां कार्तिकेय का रथ रुका हुआ था। सबके मन में गंगाजी से उत्पन्न उस बालक को देखने की बड़ी इच्छा थी।

जब सब देवता कार्तिकेय से मिलने के लिए आ रहे थे उस समय चारों दिशाओं में शंख और भेरी बजने लगीं। सभी शिवगण नाचते-गाते और उनकी जय-जयकार करते हुए अपने आराध्य भगवान शिव के पुत्र को देखने के लिए चल दिए। वहां पहुंचकर सब बहुत प्रसन्न हुए। भगवान शिव ने प्रेमपूर्वक उस बालक को गोद में बैठा लिया। तब देवी पार्वती ने भी उस बालक को बहुत प्यार किया। भगवान शिव ने उस बालक के लिए एक सुंदर रत्नों से जड़ा हुआ सिंहासन मंगाया और उस सिंहासन पर बालक को बैठाया। तत्पश्चात भगवान शिव ने सब तीर्थ स्थानों से मंगाए गए जल को वेद मंत्रों से पवित्र करके उससे बालक को स्नान कराया। छः कृत्तिकाओं द्वारा पोषित होने के कारण उस दिव्य बालक को 'कार्तिकेय' के नाम से जाना गया।

तीर्थों के पवित्र जल से स्नान कराने के उपरांत सभी देवताओं ने कार्तिकेय को तरह-तरह की अमूल्य वस्तुएं, विद्याएं और अद्भुत शक्तियां प्रदान कीं। तब सर्वप्रथम देवी पार्वती ने अपने पुत्र को हृदय से लगाकर उसे चिरंजीव होने का आशीर्वाद प्रदान किया। माता लक्ष्मी ने दिव्य मनोहर हार उस बालक को पहनाया तो देवी सावित्री ने सारी सिद्धि विधाएं उन्हें प्रदान कीं। फिर श्रीविष्णुजी ने रत्नों से निर्मित, किरीट मुकुट, बाजूबंद, वैजयंतीमाला और अपना

सुदर्शन चक्र उन्हें प्रदान किया। भगवान शिव ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्र कार्तिकेय को शूल, पिनाक, फरसा, शक्ति, पाशुपास्त्र, बाण, संहारास्त्र आदि परम दिव्य वस्तुएं प्रदान कीं। फिर मुझ ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत, वेद माता गायत्री ने कमंडल, ब्रह्मास्त्र तथा शत्रुओं का नाश करने वाली विद्या प्रदान की। देवराज इंद्र ने अपना वाहन ऐरावत हाथी और वज्र प्रदान किया। वायु देव वरुण ने श्वेत छत्र और रत्नों की मालाएं प्रदान कीं। सूर्यदेव ने मन की तरह तीव्र गति से चलने वाला द्रुतगामी रथ और शरीर की रक्षा करने वाला कवच भी प्रदान किया। यमराज द्वारा दंड और समुद्र देव द्वारा उन्हें अमृत भेंट किया गया। धन के अकूत भंडार के स्वामी कुबेर ने गदा दी।

इस प्रकार सब देवताओं ने भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय को अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और उपहार प्रदान किए। सभी देवताओं और शिवगणों ने उनका अभिवादन किया। इस समय वहां पर बहुत बड़ा उत्सव होने लगा। चारों ओर हर्ष की लहर दौड़ रही थी।

छठवां अध्याय

कार्तिकेय का अद्भुत चरित्र

ब्रह्माजी बोले—नारद! इस प्रकार सभी अभीष्ट देवताओं से आशीर्वाद प्राप्त करके कुमार कार्तिकेय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सभी देवताओं का धन्यवाद व्यक्त किया। तत्पश्चात वे अपने सिंहासन पर जा बैठे। तभी वहां एक ब्राह्मण दौड़ता हुआ आया। उस ब्राह्मण ने आकर कार्तिकेय को प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ लिए और बोला—हे स्वामी! मैं आपकी शरण में आया हूं। मुझ पर कृपा करके मेरे कष्ट को दूर करें। तब कार्तिकेय ने उस ब्राह्मण को उठाया और आदरपूर्वक अपने पास बैठाकर उसके दुखी होने का कारण पूछा।

तब वह ब्राह्मण बोला—हे भगवन्! मैं अश्वमेध यज्ञ कर रहा हूं परंतु आज मेरा घोड़ा अपने बंधनों को तोड़कर कहीं चला गया है। हे प्रभु! मुझ पर कृपा करें और मेरे घोड़े को यथाशीघ्र ढूंढ़ दें, अन्यथा मेरा यज्ञ भंग हो जाएगा। यह कहकर वह ब्राह्मण पुनः कार्तिकेय के चरणों को पकड़कर रोने-गिड़गिड़ाने लगा। वह रोते-रोते बोला—आप पूरे ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। आप सबकी सेवा करने को सदा तत्पर रहते हैं। आप सब देवताओं के स्वामी हैं और त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के पुत्र हैं।

इस प्रकार उस ब्राह्मण द्वारा की गई स्तुति को सुनकर कुमार कार्तिकेय बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने अपने वीर बलशाली प्रमुख गण वीरबाहु को बुलाकर उस घोड़े को जल्दी से जल्दी ढूंढ़ लाने की आज्ञा प्रदान की तथा यज्ञ को विधि-विधान के अनुसार पूर्ण कराने के लिए कहा। तब वीरबाहु ने कार्तिकेय को प्रणाम किया और ब्राह्मण के घोड़े को ढूंढ़ने के लिए निकल पड़ा। उसने पृथ्वीलोक पर हर जगह उस घोड़े को ढूंढ़ा। जिस व्यक्ति ने जो भी जानकारी दी उसके अनुसार वीरबाहु ने हर जगह उसकी तलाश की, परंतु वह असफल रहा। तब वह उस घोड़े की तलाश करने के लिए भगवान श्रीहरि विष्णु के लोक बैकुंठधाम गया। वहां जाकर वीरबाहु ने देखा कि एक घोड़े ने विष्णुलोक में बहुत आतंक मचा रखा था। विष्णुलोक में वह घोड़ा खूब उपद्रव कर रहा था। कुमार कार्तिकेय के उस गण वीरबाहु ने तुरंत उस घोड़े को बंधक बना लिया और उसे पकड़कर अपने स्वामी कार्तिकेय के पास ले आया। तब स्वामी कार्तिकेय पूरे संसार का भार लेकर उस घोड़े पर चढ़कर बैठ गए और उस घोड़े को पूरे त्रिलोक की परिक्रमा करने का आदेश प्रदान किया। वह अद्भुत घोड़ा एक ही पल में तीनों लोकों की परिक्रमा करके लौट आया। तब कुमार कार्तिकेय उस घोड़े से उतरकर पुनः अपने आसन पर बैठ गए।

तब वह ब्राह्मण हाथ जोड़कर कार्तिकेय का धन्यवाद करने लगा और उनसे बोला कि प्रभु! आप यह घोड़ा मुझे सौंप दीजिए ताकि मैं अपना यज्ञ पूर्ण कर सकूं। तब कार्तिकेय मुस्कुराए और बोले—हे ब्राह्मण! यह घोड़ा उत्तम है और यह वध के योग्य नहीं है। इसलिए आप इसे अपने साथ ले जाने के लिए न कहें। मैं आपके यज्ञ को पूर्ण होने का वरदान देता

हूं। मेरे आशीर्वाद से आपका यज्ञ अवश्य सफल होगा।

सातवां अध्याय

भगवान शिव द्वारा कार्तिकेय को सौंपना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! अपने पुत्र कार्तिकेय का अद्भुत पराक्रम देखकर भगवान शिव और देवी पार्वती बहुत प्रसन्न हुए। तब सब देवताओं सहित श्रीहरि विष्णु और देवराज इंद्र और मैं भी बहुत हर्षित हुए और भगवान शिव से बोले—हे देवाधिदेव! भगवन्! आप तो सर्वेश्वर हैं, सर्वज्ञाता हैं। संसार की सब घटनाएं आपकी इच्छा से ही घटती हैं। आप तो जानते ही हैं कि ब्रह्माजी द्वारा असुरराज तारक को दिए गए वर के अनुसार शिव पुत्र ही उसका वध करने में सक्षम होगा। इसलिए ही कुमार कार्तिकेय का जन्म हुआ है। प्रभु! हम लोगों के कष्टों को दूर करके हमारे जीवन को सुखी करने के लिए आप अपने पुत्र कार्तिकेय को आज्ञा दीजिए कि वह तारकासुर का वध करे।

यह कहकर सब देवता भगवान शिव की स्तुति करने लगे। तब भगवान शिव का हृदय हम सबकी प्रार्थना से द्रवित हो उठा। उन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अपने पुत्र कुमार कार्तिकेय को देवताओं को सौंप दिया। तब भगवान शिव ने अपने पुत्र कार्तिकेय को यह आज्ञा दी कि देवताओं की विशाल सेना का नेतृत्व करें और देवताओं के दुखों और संकटों को दूर करने के लिए तारकासुर का वध करें। अपने पिता भगवान शिव की यह आज्ञा पाकर स्वामी कार्तिकेय बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हाथ जोड़कर अपनी माता पार्वती और पिता महादेव जी को प्रणाम किया और कहा कि हे माता! हे पिता! आप मुझे विजयी होने का आशीर्वाद प्रदान करें। यह सुनकर भगवान शिव मुस्कुराए और बोले—कुमार! निश्चय ही तुम अपने इस प्रथम युद्ध में अपने घोर शत्रु तारकासुर का वध करके विजयी होगे। हमारा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है।

इधर देवी पार्वती के हृदय में अपने प्रिय पुत्र के युद्ध में जाने की बात सुनकर ही पीड़ा होने लगी। वात्सल्य के कारण उनकी आंखों में आंसू आ गए थे। वे बहुत दुखी हुईं और कहने लगीं—हे नाथ! हे देवाधिदेव! मेरा पुत्र कार्तिकेय अभी बहुत छोटा है और वह तारकासुर महाबलशाली और शक्तिशाली है। उस दुष्ट ने अपनी दुष्टता से सभी देवताओं को भी परास्त कर दिया है। जब इतनी शक्तियों के स्वामी देवता उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके तो मेरा यह नन्हा-सा पुत्र भला कैसे उसको हरा सकता है। मेरा दिल मुझे कार्तिकेय को युद्ध में भेजने की आज्ञा नहीं देता है। मैं अपने पुत्र को अपने साथ रखना चाहती हूं। यह वचन सुनकर सभी देवताओं सहित भगवान शिव भी चिंतित हो गए। तब महादेव जी देवी पार्वती को समझाते हुए बोले—हे देवी! हे शिवा! आप सामान्य स्त्रियों की तरह क्यों व्यवहार कर रही हैं? यह मेरा और आपका पुत्र होने के कारण महाशक्तिशाली और वीर योद्धा है। देवताओं ने इसे अपनी अभीष्ट शक्तियां प्रदान की हैं। कार्तिकेय की जीत निश्चित है। कार्तिकेय का उत्पन्न होना तारकासुर के वध का प्रतीक है। आप व्यर्थ में चिंतित न हों और अपने पुत्र को खुशी-

खुशी तारक के वध के लिए भेजें। भगवान शिव के ऐसे वचन सुनकर देवी पार्वती को बहुत संतोष हुआ और उन्होंने कार्तिकेय को युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी। तब सब देवताओं का भय दूर हुआ और उनमें प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

आठवां अध्याय

युद्ध का आरंभ

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब देवी पार्वती और भगवान शिव ने कुमार कार्तिकेय को युद्ध का नेतृत्व करने की आज्ञा प्रदान की, तो सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए और एकत्र होकर उस पर्वत की ओर चल दिए। सिंहनाद करते हुए वे आगे बढ़ने लगे। उस समय कार्तिकेय सेना का नेतृत्व करते हुए सबसे आगे चल रहे थे। सब देवता मन में यही सोच रहे थे कि अब उन्हें तारकासुर नाम की मुसीबत से छुटकारा मिल जाएगा। जब तारकासुर को इस बात का पता चला कि देवताओं ने युद्ध की तैयारी पूरी कर ली है, तो तारकासुर ने भी तुरंत युद्ध की घोषणा कर दी। अपनी विशाल चतुरंगिणी सेना को लेकर तारक भी सिंहनाद करता हुआ देवताओं की ओर बढ़ने लगा। राक्षसों की सेना देखकर एक पल के लिए देवता घबरा गए। उसी समय आकाशवाणी हुई—हे देवगणो! तुम लोग भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय के नेतृत्व में युद्ध करने जा रहे हो। इसलिए तुम जरूर जीतोगे। तारकासुर कार्तिकेय के हाथों अवश्य मारा जाएगा।

उस आकाशवाणी को सुनकर सभी देवताओं का उत्साह बढ़ गया और उनका डर दूर हो गया। उस समय 'दुंदुभी' और अनेक प्रकार के बाजों की ध्वनि आकाश में गूंजने लगी। तब देवता और राक्षस युद्ध करने के लिए पृथ्वी और सागर के संगम पर पहुंचे। दोनों पक्षों में बड़ा भयानक युद्ध छिड़ गया। युद्ध की भयंकर गर्जना से पृथ्वी भी डोलने लगी। देवताओं की सेना का नेतृत्व शिवपुत्र कार्तिकेय कर रहे थे। उनके पीछे-पीछे देवराज इंद्र सहित देवताओं की विशाल सेना थी। कार्तिकेय उस समय इंद्रदेव के ऐरावत हाथी पर विराजमान थे। तब उन्होंने उस हाथी को छोड़दिया और रत्नों से जड़े सुंदर यान पर बैठ गए। उस सुंदर विमान पर प्रचेता ने सुंदर छत्र रखा। उस सुंदर विमान में बैठकर कार्तिकेय बहुत निराले और शोभा संपन्न लग रहे थे।

उसी समय देवताओं और असुरों में भयानक युद्ध प्रारंभ हो गया। पृथ्वी कांपने लगी और फल भर में खण्ड-मुण्डों में बदलने लगी। हजारों सैनिक, जो पराक्रम से लड़ रहे थे, कट-कटकर और घायल होकर धरती पर गिरने लगे। चारों तरफ खून की नदियां बहने लगी थीं। ऐसा भयानक दृश्य देखकर बहुत से भूत-प्रेत और गीदड़-गीदड़ी उस मांस को खाने और खून पीने के लिए वहां आ गए। तभी महाबली तारकासुर ने विशाल सेना सहित देवताओं पर आक्रमण किया। देवराज इंद्र सहित अनेक देवताओं ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया परंतु असफल रहे और तारकासुर भयानक गर्जना करता हुआ आगे बढ़ता गया। चारों ओर भयानक शोर मचा हुआ था। आक्रमण करते समय सैनिक बड़े जोर-जोर से अपने मुंह से आवाज निकालते हुए आगे बढ़ रहे थे। देवताओं और राक्षसों का युद्ध बड़ा वीभत्स रूप ले चुका था। वहां भारी कोलाहल मचा हुआ था। तत्पश्चात देवताओं और असुरराज तारक के

राक्षसगण आपस में द्वंद्व युद्ध करने लगे थे। एक-दूसरे को मारकर वे अपने को बहुत बलशाली समझ रहे थे। वे पूरे बल के साथ एक-दूसरे पर प्रहार करते। कोई किसी के हाथ तोड़ देता तो कोई पैर। दोनों सेनाएं अपने को पराक्रमी समझ रही थीं।

नवां अध्याय

तारकासुर की वीरता

ब्रह्माजी बोले—नारद! इस प्रकार देवताओं और दानवों में बड़ा विनाशकारी युद्ध होने लगा। तारकासुर ने अपनी विशेष शक्ति चलाकर इंद्रदेव को घायल कर दिया। इसी प्रकार दानवों की सेना के वीर और बलवान राक्षसों ने देवताओं की सेना को बहुत नुकसान पहुंचाया। उन्होंने कई लोकपालों को युद्ध में हरा दिया और देवगणों को मार-मारकर भगाने लगे। असुर सैनिकों को देवताओं पर हावी होते देखकर असुर खुशी में झूम उठे और भयंकर गर्जना करने लगे। तब देवताओं की ओर से लड़ रहे वीरभद्र क्रोधित होकर तारकासुर के निकट पहुंचे। असुरों ने वीरभद्र को चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने परस्पर पाश, खड्ग, फरसा और पट्टिश आदि आयुधों का प्रयोग किया। देवता और असुर आपस में गुत्थम—गुत्था होकर लड़ने लगे।

तभी देवताओं की ओर से वीरभद्र तारकासुर से लड़ने लगे। वीरभद्र ने पूरी शक्ति से तारकासुर पर आक्रमण किया और उसको त्रिशूल के प्रहार से घायल कर दिया। घायल होकर तारक जमीन पर गिर पड़ा परंतु अगले ही पल उसने स्वयं को संभाल लिया और पुनः खड़े होकर वीरभद्र से युद्ध करने लगा। महाकौतुकी तारक ने भीषण मार से वीरभद्र को घायल करके वहां से भगा दिया। तत्पश्चात उसने वहां युद्ध कर रहे देवताओं को अपने क्रोध का निशाना बनाया। तारक देवताओं पर अपने बाणों की बरसात करने लगा। तारकासुर के इस अनायास बाणों की वर्षा से देवता भयभीत हो गए। तब स्वयं श्रीहरि विष्णु तारकासुर से लड़ने के लिए आगे आए। श्रीहरि ने गदा से तारकासुर पर ज्यों ही प्रहार किया उसने विशित्व बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। तब क्रोधित होकर विष्णुजी ने शारंग धनुष उठाया और तारक को मारने के लिए बढ़े। तभी तारक ने प्रहार करके उन्हें गिरा दिया तो श्रीविष्णु ने गुस्से से सुदर्शन चक्र चला दिया।

नारद! तब मैंने कुमार कार्तिकेय के पास जाकर उनसे कहा कि मेरे दिए हुए वरदान के अनुसार तारकासुर का वध आपके श्रीहाथों से ही होगा। इसलिए कोई भी देवता तारक का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। यह सुनकर कार्तिकेय रथ से नीचे उतर गए और पैदल ही तारक को मारने के लिए दौड़े। उनके हाथ में उनकी शक्ति थी, जो लपटों के समान चमकती हुई उल्का की तरह लग रही थी। छः मुख वाले कुमार कार्तिकेय को देखकर तारकासुर बोला—देवताओ! क्या यही बालक है तुम्हारा वीर, पराक्रमी कुमार, जो शत्रुओं का पल में विनाश कर देता है? यह कहकर तारकासुर जोर से अट्टहास करने लगा और बोला कि इस बालक के साथ तुम सभी को मार दूंगा। तुम इस बालक की मेरे हाथों हत्या कराओगे। ऐसा बोलते हुए भयानक गर्जना करता हुआ वह कुमार कार्तिकेय की ओर पलटा और बोला कि हे बालक! ये मूर्ख देवता तो व्यर्थ में तुझे बलि का बकरा बनाना चाहते हैं। पर मैं इतना कठोर नहीं हूं कि

बिना किसी अपराध के एक मासूम बालक पर वार करूं। इसलिए जा तू भाग जा। मैं तेरे प्राणों को छोड़ देता हूं।

देवराज इंद्र और भगवान श्रीहरि विष्णु की निंदा करने से तारक द्वारा कमाया गया तपस्या का सारा पुण्य नष्ट हो गया था। तभी इंद्र ने उस पर वज्र का प्रहार किया, जिससे वह धरती पर गिर पड़ा। तब कुछ ही देर में तारकासुर पूरे उत्साह के साथ पुनः उठ खड़ा हुआ और अपने भीषण प्रहार से उसने देवराज इंद्र को घायल कर दिया और उन पर अपने पैर का प्रहार किया। यह देखकर देवता भयभीत हो गए और इधर-उधर भागने लगे। तभी श्रीहरि विष्णु ने इस स्थिति को संभालने के लिए तारकासुर पर अपना सुदर्शन चक्र चला दिया। चक्र ने तारकासुर को धराशायी कर दिया परंतु तारकासुर इतनी आसानी से हार मानने वाला नहीं था। वह अपनी पूरी शक्ति के साथ पुनः उठकर खड़ा हो गया। तब उसने अपनी प्रचंड शक्ति हाथ में लेकर भगवान विष्णु को ललकारा और उन्हें अपने भीषण प्रहार से घायल कर दिया। विष्णुजी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

वहां का यह दृश्य देखकर सभी देवताओं में कोहराम मच गया। सब अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए इधर-उधर भागने लगे। सारी सेना तितर-बितर होने लगी। यह देख वीरभद्र ने तारकासुर पर आक्रमण किया। उसने त्रिशूल उठाया और तारकासुर पर वार किया, जिससे तारकासुर भूमि पर गिर पड़ा, किंतु उसी क्षण उठकर उसने वीरभद्र को अपनी शक्ति से घायल करके मूर्छित कर दिया और जोर-जोर से हंसने लगा।

दसवां अध्याय

तारकासुर-वध

ब्रह्माजी बोले—नारद! यह सब देखकर कुमार कार्तिकेय को तारकासुर पर बड़ा क्रोध आया और वे अपने पिता भगवान शिव के श्रीचरणों का स्मरण कर अपने असंख्य गणों को साथ लेकर तारकासुर को मारने के लिए आगे बढ़े। यह देखकर सभी देवताओं में उत्साह की एक लहर दौड़ गई और वे प्रसन्न मन से कार्तिकेय की जय-जयकार का उद्घोष करने लगे। ऋषि-मुनियों ने अपनी वाणी से कुमार कार्तिकेय की स्तुति की। तत्पश्चात तारकासुर और कार्तिकेय का बड़ा भयानक, दुस्सह युद्ध हुआ। दोनों परमवीर और बलशाली एक-दूसरे पर भीषण प्रहार करने लगे। दोनों अनेक प्रकार के दांवपेचों का प्रयोग कर रहे थे। कार्तिकेय और तारकासुर के बीच मंत्रों से भी युद्ध हो रहा था। दोनों अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग एक-दूसरे को मारने के लिए कर रहे थे। इस भयानक युद्ध में दोनों ही घायल हो रहे थे। युद्ध भयानक रूप लेता जा रहा था। उस भीषण युद्ध को सब देवता, गंधर्व बैठकर देखने लगे। वह अद्भुत युद्ध अनायास ही सबके आकर्षण का केंद्र बन गया। हवा चलना भूल गई। सूर्य की किरणें ठहर गईं। यहां तक कि सभी पर्वत इस युद्ध को देखकर अत्यंत भयभीत हो उठे। वे शिव-पार्वती के इस पुत्र की रक्षा करने के लिए तुरंत उधर आ गए।

यह देखकर कार्तिकेय बोले—हे पर्वतो! आप कोई चिंता न करें। आज इस महापापी को मैं सबके सामने मौत के घाट उतारकर भय से मुक्ति दिलाऊंगा। जब कार्तिकेय पर्वतों से बात करने में निमग्न थे, उसी समय तारक ने अपनी शक्ति हाथ में लेकर उन पर धावा बोल दिया। उस शक्ति के प्रहार के आघात से शिवपुत्र कार्तिकेय भूमि पर गिर पड़े परंतु अगले ही क्षण वे अपनी पूरी शक्ति के साथ पुनः उठ खड़े हुए और लड़ने के लिए तैयार हो गए। कार्तिकेय ने अपने मन में अपने माता-पिता पार्वती जी व भगवान शिव को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया और अपनी प्रबल शक्ति से तारकासुर की छाती पर आघात किया। उसकी चोट से तारकासुर का शरीर विदीर्ण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सबके देखते ही देखते वह महाबली असुर पल भर में ढेर हो गया।

महाबली तारकासुर के मारे जाते ही चारों ओर कार्तिकेय की जय-जयकार गूंज उठी। तारकासुर के वध से सभी देवता बहुत प्रसन्न थे। तब अपने महाराज तारकासुर को मरा जानकर असुरों की विशाल सेना में भयानक कोलाहल मच गया। अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए सभी असुर इधर-उधर भाग रहे थे। देवताओं ने मिलकर सभी असुरों को मार गिराया। कुछ असुर डरकर मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए थे। तो बहुत से दैत्य और राक्षस हाथ जोड़कर कुमार कार्तिकेय की शरण में आ गए और उनसे क्षमा मांगने लगे। तब कुमार ने प्रेमपूर्वक उन्हें क्षमा कर दिया और उन दानवों को आदेश दिया कि वे सदैव के लिए पाताल में चले जाएं।

इस प्रकार तारकासुर के मारे जाने पर उसकी सारी सेना पल भर में नष्ट हो गई। यह देखकर देवराज इंद्र के साथ-साथ समस्त देवताओं और संसार के प्राणियों में खुशी की लहर दौड़ पड़ी। पूरा त्रिलोक आनंद में डूब गया। जैसे ही कुमार कार्तिकेय की विजय का समाचार भगवान शिव-पार्वती के पास पहुंचा वे तुरंत अपने गणों को साथ लेकर युद्ध स्थल पर पधारे। श्री पार्वती जी ने अपने प्राणप्रिय पुत्र को अपने हृदय से लगा लिया और अपनी गोद में बिठाकर बहुत देर तक उसे चूमती रहीं। तभी वहां पर पर्वतराज हिमालय भी पहुंच गए और उन्होंने अपनी पुत्री पार्वती, भगवान शिव और कार्तिकेय की स्तुति की। चारों दिशाओं से उन पर फूलों की वर्षा होने लगी। मंगल ध्वनि हर ओर गूंजने लगी। हर तरफ उनकी ही जय-जयकार हो रही थी। देवताओं के स्वामी देवराज इंद्र ने अपने साथी देवताओं के साथ कुमार कार्तिकेय की हाथ जोड़कर स्तुति की। तत्पश्चात भगवान शिव अपनी पत्नी पार्वती को साथ लेकर शिवगणों सहित कैलाश पर्वत पर लौट गए।

ग्यारहवां अध्याय

बाणासुर और दैत्य प्रलंब का वध

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब तारकासुर कुमार कार्तिकेय के द्वारा मारा गया तब यह देखकर सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों सहित जन साधारण में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सभी खुश थे। सभी देवताओं ने मिलकर भक्तिभाव से कार्तिकेय की स्तुति की। तभी क्रौंच नामक एक पर्वत दुखी होकर कार्तिकेय के पास आया। वह क्रौंच बाणासुर नामक दैत्य द्वारा सताया गया था। वह कुमार के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और भक्तिभाव से स्वामी कार्तिकेय की स्तुति करने लगा। तत्पश्चात बोला—हे प्रभो! बाणासुर मुझे बहुत कष्ट दे रहा है, आप उससे मेरी रक्षा कीजिए। तब कार्तिकेय ने पर्वतराज क्रौंच की स्तुति से प्रसन्न होकर क्रौंच को सांत्वना दी।

जब पर्वतराज क्रौंच शांत हो गए तब कुमार कार्तिकेय ने उन्हें उनके दुखों और कष्टों से छुटकारा दिलाने हेतु भगवान शिव का स्मरण करके वहीं से अपनी अद्‌भुत शक्ति का परिचय देते हुए एक अनोखी शक्ति छोड़ी। इस शक्ति का प्रयोग कुमार कार्तिकेय ने उस दुष्ट राक्षस बाणासुर पर किया था। तब वह शक्ति दैत्यराज बाणासुर को भस्म करके शीघ्र ही कार्तिकेय के पास वापिस लौट आई। यह शक्ति जब उनके पास वापस पहुंच गई तब वे क्रौंच से बोले —हे पर्वतराज क्रौंच! अब आपको बाणासुर नामक दैत्य से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने बाणासुर को मारकर तुम्हारी इस परेशानी को सदा-सदा के लिए हल कर दिया है। अतः अब तुम अपने भय को छोड़कर हमेशा के लिए निर्भय हो जाओ। अब तुम प्रसन्नतापूर्वक अपने घर की ओर प्रस्थान करो।

बाणासुर के भय से मुक्ति का समाचार पाकर पर्वतराज क्रौंच बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भक्तिभाव से कार्तिकेय की स्तुति की। तत्पश्चात वह उनसे विदा लेकर अपने गृह स्थान की ओर चल दिया। वहां पहुंचकर क्रौंच ने अपने स्वामी कार्तिकेय की प्रसन्नता के लिए भगवान शिव के तीन शिवलिंगों की स्थापना की। प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर नामक ये तीन शिवलिंग विश्व विख्यात हैं और लोगों की आस्था और भक्ति का जीता-जागता उदाहरण हैं। ये शिवलिंग सिद्धिदायक हैं और सोलह महान ज्योर्तिलिंगों में सम्मिलित हैं।

पर्वतराज क्रौंच के अपने स्थान पर वापिस लौट जाने के उपरांत देवताओं के गुरु बृहस्पति ने कुमार कार्तिकेय से कहा कि कुमार! देवताओं द्वारा आपको शिव-पार्वती की आज्ञा से यहां महाबली तारकासुर का वध करने के लिए लाया गया था। इस अभीष्ट कार्य की पूर्ति हो चुकी है। अतः अब आपको कैलाश पर्वत पर लौट जाना चाहिए। गुरु बृहस्पति की बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि तभी प्रलंबासुर नामक दैत्य ने बहुत उपद्रव मचाना शुरू कर दिया और लोगों को कष्ट देना आरंभ कर दिया। तब शेष जी के पुत्र कुमुद दुखी अवस्था में कुमार कार्तिकेय के पास आए। वहां आकर कुमुद ने कार्तिकेय की स्तुति की और कहा—हे प्रभु! मैं

आपकी शरण में आया हूं। हे गिरिजापुत्र! मुझे प्रलंबासुर की प्रताड़ना से मुक्ति दिलाइए।

तब कुमार कार्तिकेय ने प्रसन्नतापूर्वक कुमुद को प्रलंबासुर द्वारा दिए गए कष्टों से मुक्ति दिलाने हेतु अपनी शक्ति द्वारा उसका भी संहार कर दिया। उस प्रलंबासुर को उसके साथियों सहित मरा जानकर उसके शेष पुत्र कुमुद ने कार्तिकेय की बहुत स्तुति की और अपने निवास स्थान पाताल को चला गया।

बारहवां अध्याय

कार्तिकेय का कैलाश-गमन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार जब कार्तिकेय द्वारा दैत्यराज बाणासुर और प्रलंबासुर को भस्म कर दिया गया तब सभी देवताओं ने सहर्ष कुमार कार्तिकेय का स्तवन किया। देवता बोले—हे देव! हम राक्षसराज तारक का वध करने वाले आपको नमस्कार करते हैं।

हे शंकर नंदन! हे गिरिजापुत्र! आपने बाणासुर और प्रलंबासुर नामक राक्षसों को मारकर इस त्रिलोक के संकटों को दूर किया है। आपकी भक्ति पवित्र है तथा आपका स्वरूप विघ्नों का नाश कर अभय प्रदान करने वाला है। हम सब स्वच्छ मन से आपकी स्तुति करते हैं। आप हमारी इस स्तुति को स्वीकार करें। कुमार! हम आशा करते हैं कि आप इसी प्रकार सदैव हमारे कष्टों और संकटों को दूर करने में हमारी सहायता करेंगे।

देवताओं द्वारा की गई इस अनन्य स्तुति को सुनकर कुमार कार्तिकेय का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने सभी देवताओं को सहर्ष उत्तम वरदान प्रदान किए तथा भविष्य में सदैव सहायता करने का उन्हें वचन दिया। पर्वतों द्वारा की गई स्तुति से प्रसन्न होकर कार्तिकेय बोले—हे भूधरो! आप सदा से उत्तम और श्रेष्ठ हैं। आज से आप सभी साधु-संतों और तपस्या में लीन रहने वाले साधकों द्वारा पूजनीय होंगे। पर्वतों में श्रेष्ठ मेरे नाना हिमालय इन ज्ञानियों और तपस्वियों के लिए फलदाता सिद्ध होंगे।

श्रीहरि विष्णु बोले—हे कुमार! महाबली तारक का वध करके आपने इस चराचर जगत को सुखी कर दिया है। अब आप अपना पुत्र होने का कर्तव्य भी निभाएं। अब आपको अपने माता-पिता भगवान शिव और पार्वती की प्रसन्नता के लिए उनके पास कैलाश पर्वत पर जाना चाहिए।

तत्पश्चात कुमार सभी देवताओं के साथ दिव्य विमान में बैठकर अपने माता-पिता के पास कैलाश पर्वत की ओर चल दिए। वे सब आनंद ध्वनि करते हुए भगवान शिव के पास पहुंचे। विष्णुजी सहित सभी देवताओं ने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को प्रणाम करके उनकी स्तुति की। कुमार कार्तिकेय ने भी अपने माता-पिता को सेवा भाव से प्रणाम किया। भगवान शिव ने प्रसन्नता से अपने पुत्र का मुंह चूम लिया और बहुत स्नेह किया। देवी पार्वती ने कुमार को अपनी गोद में बिठाकर खूब चूमा। यह देखकर सभी देवता आनंद में मगन होकर शिव-पार्वती और कार्तिकेय की जय-जयकार करने लगे।

तत्पश्चात सभी देवताओं सहित श्रीहरि विष्णु और मैंने देवाधिदेव शिवजी से जाने की आज्ञा मांगी और अपने-अपने लोक को चले गए। तब भगवान शिव अपनी प्राणप्रिया देवी पार्वती और पुत्र कार्तिकेय के साथ आनंदपूर्वक कैलाश पर निवास करने लगे।

तेरहवां अध्याय

पार्वती द्वारा गणेश की उत्पत्ति

सूत जी कहते हैं—कुमार कार्तिकेय के उत्तम चरित को सुनकर नारद जी बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्माजी से बोले—हे विधाता! आप ज्ञान के अथाह सागर हैं तथा करुणानिधान भगवान शिव के विषय में सबकुछ जानते हैं। आपने शिवपुत्र स्वामी कार्तिकेय के अमृतमय चरित को सुनाकर मुझ पर बड़ी कृपा की है। भगवन्! अब मैं विघ्न विनाशक श्रीगणेश के विषय में जानना चाहता हूं। उनके दिव्य चरित, उनकी उत्पत्ति के विषय में, सबकुछ सविस्तार बताकर मुझे कृतार्थ कीजिए।

मुनिश्रेष्ठ नारद के ये उत्तम वचन सुनकर ब्रह्माजी हर्षपूर्वक बोले—नारद! तुम गणेश उत्पत्ति की कथा सुनना चाहते हो। अतएव तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें उनके जन्म के विषय में बताता हूं। एक बार की बात है। देवी पार्वती की दो सखियां जया और विजया, जो सदा से ही उनके पास रहती थीं, उनके पास आईं और बोलीं—हे सखी! यहां कैलाश पर्वत पर भगवान शिव के असंख्य गण हैं। वे सदा भगवान शिव की आज्ञा का प्रसन्नता से पालन करते हैं। वे सदा भगवान शिव की आज्ञा को ही सर्वोपरि मानते हैं। इसलिए आपको भी अपने लिए किसी एक विशेष ऐसे गण की रचना करनी चाहिए, जिसके लिए आपकी ही आज्ञा सर्वोच्च हो और वह किसी अन्य के सामने न झुके। अपनी सखियों की बात यद्यपि पार्वती को एक बार को अच्छी लगी परंतु अगले ही पल वे बोलीं कि भला मुझमें और मेरे पति में क्या भेद है? हम दोनों एक ही हैं और सभी शिवगण मुझमें और सदाशिव में कोई अंतर नहीं समझते। वे हम दोनों की ही आज्ञाओं का सदा पालन करते हैं।

पार्वती जी के ये वचन सुनकर उनकी सखियां आगे कुछ नहीं बोलीं और वहां से चली गईं। एक दिन की बात है, देवी पार्वती अपने कक्ष में स्नान कर रही थीं। वे नंदी को द्वारपाल बनाकर द्वार पर बैठाकर गई थीं। तभी कक्ष में भगवान शिव का प्रवेश हो गया क्योंकि नंदी अपने आराध्य शिव को अंदर आने से रोक न पाए। देवी पार्वती को उस समय बड़ी लज्जा महसूस हुई। इस घटना के उपरांत पार्वती को अपनी सखियों द्वारा दिए गए सुझाव का स्मरण हुआ।

तब उन्होंने सोचा कि मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिए जो कार्यकुशल हो और मेरी आज्ञा का सदैव पालन करे। अपने कर्तव्य से कभी भी विचलित न हो। ऐसा विचार करके उन्होंने अपने शरीर के मैल से शुभ लक्षणों से युक्त उत्तम बालक की रचना की। वह बालक शोभा संपन्न, महाबली, पराक्रमी और सुंदर था। पार्वती जी ने उसे सुंदर वस्त्र और आभूषणों से विभूषित करके उसे अनेक आशीर्वाद दिए। पार्वती ने कहा कि तुम मेरे पुत्र हो। तुम्हारा नाम गणेश है।

पार्वती जी के ये वचन सुनकर वह तेजस्वी बालक गणेश बोला—हे माता! हे जननी!

आज आपने मुझे इस जगत में उत्पन्न किया है। आज से मैं आपका पुत्र हूं। मैं आपको बारंबार नमस्कार करता हूं। मेरे लिए अब क्या कार्य है? बताइए, मैं उसे अवश्य पूरा करूंगा।

तब देवी पार्वती बोलीं—हे पुत्र गणेश! आज से तुम मेरे द्वारपाल बन जाओ। मेरी यह आज्ञा है कि मेरे महल में कोई मेरी अनुमति के बिना प्रविष्ट न हो। कोई कितना भी हठ क्यों न करे, तुम उसे अंदर नहीं आने देना। यह कहकर पार्वती ने एक छड़ी गणेश के हाथ में पकड़ा दी और प्रेमपूर्वक उनका मुख चूमकर अंदर स्नान करने के लिए चली गईं।

गणेश सजगता से हाथ में छड़ी लेकर महल के द्वार पर पहरा देने लगे। उसी समय भगवान शिव देवी पार्वती से मिलने की इच्छा लेकर महल में आ गए। जब वे द्वार पर पहुंचे तो गणेश ने उनसे कहा—हे देव! इस समय मेरी माता अंदर स्नान कर रही हैं। अतः आप यहां से चले जाएं तथा बाद में आएं। यह कहकर उन्होंने भगवान शिव के सामने छड़ी अड़ा दी। चूंकि गणेश जी ने भगवान शिव को पहले कभी नहीं देखा था इसलिए उन्हें वे नहीं पहचान सके।

यह देखकर भगवान शिव को क्रोध आ गया और वे बोले—ओ मूर्ख! तू मुझको अंदर जाने से रोक रहा है। तू नहीं जानता कि मैं कौन हूं? मैं शिव हूं। मैं ही पार्वती का पति हूं और अपने ही घर में जा रहा हूं। यह कहकर जैसे ही भगवान शिव आगे बढ़े, गणेश जी ने उन पर छड़ी से प्रहार कर दिया। यह देखकर भगवान शिव को क्रोध आ गया। उन्होंने अपने गणों को गणेश को वहां से हटाने की आज्ञा दी और स्वयं बाहर खड़े हो गए।

चौदहवां अध्याय

शिवगणों का गणेश से विवाद

ब्रह्माजी बोले—नारद! शिवगण अपने प्रभु भगवान शिव की आज्ञा पाकर द्वार पर पहुंचे और द्वारपाल बने श्रीगणेश को वहां से हट जाने के लिए कहा। परंतु जब गणेश ने हटने से साफ इनकार कर दिया और शिवगणों को डांटा-फटकारा तो वे भी गणेश से लड़ने लगे और बोले—ओ मूर्ख बालक! अगर तू अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता है तो अभी और इसी वक्त महल के द्वार को छोड़कर यहां से चला जा अन्यथा दंड पाने के लिए तैयार हो जा।

यह देखकर गणेश को क्रोध आ गया और वे कठोरतापूर्वक शिवगणों से बोले कि तुम इसी समय यहां से दूर चले जाओ वरना मेरे क्रोध को भुगतने के लिए तैयार हो जाओ। गणेश की बातें सुनकर शिवगण हंसने लगे, फिर द्वारपाल श्री गणेश को डांटते हुए बोले—मूर्ख हम भगवान शिव के गण हैं और उनकी आज्ञा से ही तुम्हें यहां से हटने के लिए कह रहे हैं। अब तक तुम्हें बालक समझकर हम छोड़ रहे थे, परंतु तुम तो बहुत ही हठी बालक हो, जो मानने को बिलकुल भी तैयार नहीं हो। अभी भी कहते हैं कि शीघ्र ही यहां से हट जाओ अन्यथा मार दिए जाओगे। शिवगणों के इन वाक्यों को सुनकर गणेश जी अत्यंत क्रोधित हो गए। उन्होंने शिवगणों को डांटा और धमकाकर वहां से भगा दिया। उनके इस प्रकार डांटने से शिवगण भयभीत होकर वहां से भागकर भगवान शिव के पास वापस आ गए। वहां जाकर उन शिवगणों ने अपने स्वामी भगवान शिव को जाकर सारी बातें बता दीं। यह सुनकर भगवान शिव ने क्रोधित होकर श्री गणेश को द्वार से हटाने का आदेश अपने गणों को दिया।

शिवगण पुनः द्वार पर पहुंचे और गणेश को हटने के लिए कहने लगे परंतु गणेश ने वहां से हटने से साफ इनकार कर दिया। गणेश निर्भय होकर उन गणों से बोले कि मैं पार्वती का पुत्र हूं और तुम भगवान शिव के गण हो। हम दोनों ही अपनी-अपनी जगह अपने-अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। तुम शिवजी की आज्ञा मानकर मुझे द्वार से हटाना चाहते हो, परंतु मैं अपनी माता की आज्ञा मानते हुए उनकी बिना आज्ञा प्राप्त किए किसी को भी इस द्वार से प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दे सकता। अतः मुझसे बार-बार द्वार से हटने के लिए न कहो और जाकर अपने आराध्य स्वामी को इसकी सूचना दे दो। तब शिवगण भगवान शिव के पास गए और उन्हें सब बातों से अवगत करा दिया। भगवान शिव तो महान लीलाधारी हैं। उनकी बातों को समझ पाना अत्यंत कठिन है। यह सुनकर उन्होंने अपने गणों से कहा कि वह छोटा-सा बालक अकेला तुम्हें डरा रहा है और तुम इतनी अधिक संख्या में होकर भी उससे डर रहे हो। जाओ, जाकर उससे युद्ध करो और उसे बंदी बनाकर द्वार के सामने से हटाकर ही मेरे सामने आना।

पंद्रहवां अध्याय

शिवगणों से गणेश का युद्ध

ब्रह्माजी बोले—नारद! जब भगवान शिव ने इस प्रकार अपने गणों को आज्ञा दी कि वे द्वार पर खड़े उस गण को किसी भी प्रकार से हटा दें, तब शिवगण निर्भय होकर पुनः महल के द्वार पर आ खड़े हुए। उन्हें देखकर गणेश जी हंसने लगे और बोले कि तुम फिर से आ गए। तुम्हें मैंने अभी समझाया था कि मैं यहां से हटने वाला नहीं हूं। मेरी माता पार्वती ने मुझे इसीलिए ही उत्पन्न किया है ताकि मैं उनकी हर आज्ञा का पालन कर सकूं। मेरे लिए उनकी आज्ञा ही सर्वश्रेष्ठ है। उनकी अवज्ञा मेरे वश में नहीं है। तुम ऐसे ही बार-बार मुझे परेशान करने के लिए यहां अउा रहे हो।

तब शिवगण बोले—अरे मूर्ख! अबकी बार हम तुमसे विनम्रता से कहने नहीं आए हैं क्योंकि लातों के भूत बातों से नहीं मानते। अब हम तुम्हें तुम्हारी धृष्टता के लिए दंड देने आए हैं। यह कहकर सभी शिवगण, जो कि विभिन्न प्रकार के आयुधों से विभूषित थे, गणेश पर टूट पड़े। गणेश और शिवगणों में बहुत भयानक युद्ध होने लगा परंतु गणेश के साहस और पराक्रम को देखकर सभी शिवगणों के होश उड़ गए। शिवजी का कोई भी गण गणेश को परास्त नहीं कर सका। गणेश ने अकेले ही अनेकों शिवगणों को मार-मारकर घायल कर दिया और वहां से भागने को विवश कर दिया। तत्पश्चात पुनः महल के द्वार पर डटकर खड़े हो गए। तब सब शिवगण घायल अवस्था में शिवजी के पास पहुंचे और उन्हें सारी बातें कह सुनाईं।

हे नारद! तभी मैं और श्रीहरि भी भगवान शिव के दर्शनों के लिए कैलाश पर पहुंचे। वहां हमने भगवान शिव को इस प्रकार चिंतित देखकर उनकी परेशानी का कारण पूछा। तब शिवजी ने कहा—हे विधाता! हे विष्णो! मेरे महल के द्वार पर एक बालक हाथ में छड़ी लेकर खड़ा है और वह मुझे महल के भीतर नहीं जाने दे रहा है। अतः मैं यहां खड़ा हूं। उसने मेरे गणों को भी मार-पीटकर वहां से भगा दिया है। ब्रह्माजी! आप जाकर उस बालक को समझाएं। तब मैं भगवान शिव की आज्ञा से गणेश को समझाने के लिए गया। मुझे वहां आया देखकर गणेश जी का क्रोध और बढ़ गया और वे मुझे मारने के लिए दौड़े। उन्होंने मेरी दाढ़ी-मूंछें नोच डालीं और मेरे साथ गए गणों को प्रताड़ित करने लगे। यह देखकर मैं वहां से लौट आया।

भगवान शिव को मैंने सारी घटना बता दी। यह सुनकर उन्हें बहुत क्रोध आया। तब शिवजी ने इंद्र सहित सभी देवताओं, भूतों-प्रेतों को गणेश जी को द्वार से हटाने के लिए भेजा परंतु यह सब व्यर्थ हो गया। गणेश ने सबको मार-पीटकर वहां से भगा दिया। उस छोटे से बालक ने देवताओं की विशाल सेना के छक्के छुड़ाकर रख दिए। जब इस बात की सूचना महादेव जी को मिली तो वे बहुत क्रोधित हुए और स्वयं ही गणेश को दंडित करने के लिए

चल दिए।

सोलहवां अध्याय

गणेशजी का शिरोच्छेदन

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार जब सभी शिवगण, देवता और भूत-प्रेत उस बालक द्वारा परास्त हो गए तो स्वयं भगवान शिव उस बालक को दंड देने के लिए चल दिए। वहां गणेश ने अपनी माता के चरणों का स्मरण करके भगवान शिव से युद्ध करना आरंभ किया। एक छोटे से बालक को इस प्रकार निर्भयतापूर्वक युद्ध करते देखकर भगवान शिव आश्चर्यचकित रह गए। इतना वीर, पराक्रमी और साहसी बालक देखकर शिवजी को एक पल अच्छा लगा, परंतु तभी अगले पल उन्हें उस बालक की धृष्टता का स्मरण हो आया। उस बालक ने उनके प्रिय भक्तों और गणों सहित देवराज इंद्र व मुझे भी प्रताड़ित किया था। भगवान शिव क्रोध के वशीभूत होकर गणेश से युद्ध करने लगे।

उन्होंने अपने हाथ में धनुष उठा लिया। भगवान शिव को इस प्रकार अपने निकट आते देखकर गणेश ने अपनी माता पार्वती का स्मरण करके भगवान शिव पर अपनी शक्ति से प्रहार कर दिया। गणेश के प्रहार से शिवजी के हाथ का धनुष टूटकर गिर गया। तब उन्होंने पिनाक उठा लिया परंतु गणेश ने उसे भी गिरा दिया। यह देखकर शिवजी का क्रोध सातवें आसमान पर पहुंच गया। उन्होंने त्रिशूल उठा लिया। अब तो गणेश और त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के बीच अत्यंत भयानक युद्ध छिड़ गया।

भगवान शिव तो सर्वेश्वर हैं। सब देवताओं में श्रेष्ठ और लीलाधारी हैं। उनकी माया को समझ पाना हर किसी के वश की बात नहीं है। वे महान वीर और पराक्रमी हैं। उनकी शक्ति को ललकारना स्वयं अपनी मृत्यु को बुलावा देने जैसा है परंतु गणेश भी यह न समझ सके। अपनी माता का आशीर्वाद पाकर गणेश ने अपने को अजेय जानकर पूरे पराक्रम से युद्ध किया। दोनों में भीषण युद्ध चलता रहा। सभी देवताओं और शिवगणों के साथ मैं भी उनका वह युद्ध विस्मित होकर देखता रहा। जब गणेश किसी भी तरह से अपने हठ से पीछे हटने को तैयार न हुए, तो भगवान शिव के क्रोध की सारी सीमाएं टूट गईं और उन्होंने अपने त्रिशूल से श्री गणेश का सिर काट दिया।

सत्रहवां अध्याय

पार्वती का क्रोध एवं गणेश को जीवनदान

नारद जी बोले—हे ब्रह्माजी! जब भगवान शिव ने क्रोधित होकर देवी पार्वती के प्रिय पुत्र गणेश का सिर काट दिया, तब फिर क्या हुआ? जब देवी पार्वती को गणेश की मृत्यु की सूचना मिली तो उन्होंने क्या किया? भगवन्! मुझ पर कृपा कर मुझे आगे के वृत्तांत के बारे में बताइए।

नारद जी के इस प्रकार प्रश्न करने पर ब्रह्माजी मुस्कुराए और बोले—नारद! जैसे ही भगवान शिव ने क्रोधवश उस बालक का सिर काटकर उसे मौत के घाट उतारा, वैसे ही वहां खड़े सभी शिवगणों की प्रसन्नता देखते ही बनती थी। उन सभी ने खुश होकर गाजे-बाजे बजाए और वहां बहुत बड़ा उत्सव होने लगा। सब मस्त होकर नाचने लगे। भगवान शिव की चारों ओर जय-जयकार होने लगी।

दूसरी ओर जब पार्वती स्नान कर चुकीं तो उन्होंने अपनी सखी को बाहर भेजा कि वह गणेश को अंदर बुला ले। और जब वह बाहर गई तो उसने वहां का जो हाल देखा उसे देखकर भयभीत हो गई। गणेश का सिर कटा हुआ अलग पड़ा था और धड़ अलग। सब देवता और शिवगण प्रसन्न होकर नृत्य कर रहे थे। यह दृश्य देखकर पार्वती की वह सखी भागी-भागी भीतर गई और जाकर पार्वती को इन सब बातों से अवगत कराया।

अपने पुत्र गणेश की मृत्यु का समाचार पाते ही देवी पार्वती अत्यंत क्रोधित हो गईं। उन्होंने रोना आरंभ कर दिया। रोते-बिलखते वे कहतीं—हाय मैं क्या करूं? कहां जाऊं? मैं तो अपने पुत्र की रक्षा भी न कर सकी। सब देवताओं और शिवगणों ने मिलकर मेरे प्यारे पुत्र को मौत के घाट उतार दिया। अब मैं भी अपने पुत्र का संहार करने वालों का विनाश करके रहूंगी। मैं प्रलय मचा दूंगी। यह कहकर उन्होंने सौ हजार शक्तियों की रचना कर दी और देखते ही देखते वहां मां जगदंबा की विशाल सेना इकट्ठी हो गई। वे शक्तियां प्रकट होते ही हाथ जोड़कर पार्वती को प्रणाम करते हुए बोलीं—हे माता! हे देवी! हम सबको इस प्रकार प्रकट करने का क्या कारण है? हमें आज्ञा दीजिए कि हम क्या करें?

तब क्रोध से तमतमाती देवी पार्वती बोलीं—तुम सब जाकर मेरे पुत्र का वध करने वालों का नाश कर दो। तुम देवसेना में प्रलय मचा दो। आज्ञा पाते ही देवी पार्वती की वह शक्तिशाली सेना वहां से चली गई। बाहर जाकर उसने देवताओं और शिवगणों पर आक्रमण कर दिया। वे क्रोधित देवियां किन्हीं देवताओं को पकड़-पकड़कर अपने मुंह में डाल लेतीं तो किसी पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करतीं। इस प्रकार उन्होंने वहां बहुत आतंक मचाया। वहां चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। लोग अपनी जान बचाने के लिए जहां-तहां भागने लगे।

यह नजारा देखकर भगवान शिव, मैं और श्रीहरि विष्णु बहुत चिंतित हुए। हमने सोचा कि अगर इन दैवीय शक्तियों को न रोका गया तो पल भर में ही देवताओं की समाप्ति हो जाएगी।

इस धरा पर प्रलय आ जाएगी। सब सोचने लगे कि इस विनाशलीला को कैसे रोका जा सकता है? नारद, उसी समय तुम आकर कहने लगे कि इस संहार को देवी पार्वती ही रोक सकती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया जाए और किसी भी तरह उनके क्रोध को शांत किया जाए। सभी देवताओं को तुम्हारा यह विचार बहुत पसंद आया परंतु देवी पार्वती के गुस्से से सभी घबरा रहे थे। उनके सामने जाने का साहस किसी में भी नहीं था। सबने तुम्हें आगे कर दिया। हम सब महल के भीतर पार्वती के पास गए। सब देवता मिलकर देवी की स्तुति करने लगे और बोले—हे जगदंबे! हे चण्डिके! हम सब आपको प्रणाम करते हैं। आप आदिशक्ति हैं। आप परम शक्तिशाली हैं। आपने ही इस जगत की रचना की है। आप ही प्रकृति हैं। आप प्रसन्न होने पर मनोवांछित फलों को देती हैं जबकि क्रोधित होने पर सबकुछ छीन लेती हैं। हे देवी! हम सब अपने अपराध के लिए आपसे क्षमायाचना करते हैं। हम सबके अपराध को क्षमा कर दो और अपने क्रोध को शांत करो। हे महामाई! हम तुम्हारे चरणों में अपना शीश झुकाते हैं। हे माता! हम पर अपनी कृपादृष्टि करो। हे परमेश्वरी! सबकुछ भूलकर प्रसन्न हो जाओ और भयानक रक्तपात को रोक दो।

इस प्रकार देवताओं की स्तुति सुनकर देवी चुप रहीं। कुछ समय सोचकर बोलीं—हे देवताओ! वैसे तो तुम्हारा अपराध सर्वथा अक्षम्य है। फिर भी तुम्हारी क्षमा याचना को मैं सिर्फ एक शर्त पर स्वीकार कर सकती हूं। यदि मेरा पुत्र गणेश पहले की भांति जीवित हो जाए तो मैं तुम सबको क्षमा कर दूंगी। यह सुनकर सब देवता चुप हो गए क्योंकि यह तो असंभव कार्य था। फिर सभी देवता हाथ जोड़कर करुण अवस्था में भगवान शिव के सामने खड़े हो गए और बोले—भगवन्! अब आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। जिस प्रकार आपने गणेश का सिर काटकर उसे मारा है, उसी प्रकार अब उसे जीवित कर दीजिए। देवताओं को प्रार्थना सुनकर भगवान शिव बोले कि देवताओ, तुम परेशान मत होओ। मैं वही कार्य करूंगा, जिससे तुम्हारा मंगल हो।

भगवान शिव ने देवताओं को आदेश दिया कि उत्तर दिशा में जाएं और जो भी पहला प्राणी मिले उसका सिर काटकर ले आएं। तब उसका सिर हम गणेश के धड़ से जोड़कर उसे जीवित कर देंगे। देवता उत्तर दिशा की ओर चल दिए। वहां सर्वप्रथम उन्हें एक दांत वाला हाथी मिला, वे उसका सिर काटकर ले आए। वहां महल के द्वार पर वापस आकर उन्होंने गणेश के धड़ को धो-पोंछकर साफ किया और उसकी पूजा की तब उसमें हाथी का सिर लगा दिया। तत्पश्चात श्रीहरि विष्णु ने भगवान शिव के चरणों का ध्यान करते हुए मंत्रों से अभिमंत्रित जल गणेश के मृत शरीर पर छिड़का। जल के छींटे पड़ते ही भगवान शिव की कृपा से वह बालक ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे अभी-अभी नींद से जागा हो। वह बालक अब हाथी का मुख लग जाने से गजमुखी हो गया था परंतु फिर भी बहुत सुंदर और दिव्य लग रहा था। रक्तवर्ण का वह बालक अद्‌भुत शोभा से आलोकित हो रहा था।

जब भगवान शिव की कृपा से पार्वती पुत्र गणेश जीवित हो गया तो सभी देवता और शिवगण अत्यंत प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे। उनका सारा दुख पल भर में ही दूर हो गया।

देवी पार्वती अपने प्रिय पुत्र गणेश को जीवित देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। उनका क्रोध भी शांत हो गया था।

अट्ठारहवां अध्याय

गणेश गौरव

नारद जी बोले—हे विधाता! जब भगवान शिव की कृपा से पार्वती पुत्र गणेश पुनः जीवित हो गए, तब वहां क्या हुआ? जीवित होकर उन्होंने क्या कहा? नारद जी का यह प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब श्रीहरि विष्णु ने हाथी का मस्तक गणेश के धड़ से जोड़कर उसे जीवित कर दिया तब यह देखकर देवी पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने गणेश को बांहों में भरकर गले से लगा लिया और उसे चूमने लगीं। फिर उन्होंने गणेश को सुंदर व मनोहर वस्त्रों एवं रत्नजड़ित आभूषणों से सजाया। अनेक सिद्धियों एवं मंत्रों से विधिपूर्वक अपने पुत्र का पूजन करने के बाद कल्याणमयी पार्वती ने गणेश के सिर पर हाथ रखकर वरदान देते हुए कहा—ऐ मेरे प्यारे पुत्र गणेश! तुझे तेरी माता की आज्ञा से बहुत कष्ट सहना पड़ा परंतु आज के बाद तुझे कभी भी किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होगा। सभी देवता तुझे पूजेंगे। पुत्र! तुम्हारे मस्तक पर सिंदूरी रंग की आभा है, इसलिए तुम्हारा पूजन सदैव सिंदूर से किया जाएगा। जो भी सिद्धियों और अभीष्ट फलों को प्राप्त करने के लिए तुम्हारा पूजन सिंदूर से करेगा, उसके काम में आने वाली सभी बाधाएं और विघ्न दूर हो जाएंगे।

इस प्रकार जब देवी पार्वती ने गणेश पर अपने आशीर्वादों की कृपा की, तब भगवान शिव भी प्रसन्नतापूर्वक गणेश के सिर पर हाथ फेरने लगे। माता पार्वती ने प्रसन्नतापूर्वक पहले भगवान शिव को देखा, फिर श्रीगणेश को संबोधित करती हुई बोलीं—पुत्र! ये ही तुम्हारे पिता भगवान शिव हैं। तब गणेशजी तुरंत उठ खड़े हुए और भगवान शिव के चरणों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे। गणेश ने कहा—हे पिताजी! मैं अज्ञानतावश आपको पहचान नहीं सका, इसी कारण मैंने आपको घर के भीतर नहीं जाने दिया था। हे प्रभु, आप मेरी इस मूर्खता को कृपा करके क्षमा कर दें।

अपने पुत्र गणेश को इस प्रकार क्षमायाचना करते देखकर भगवान शिव ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें क्षमा कर दिया। तब मैं, विष्णुजी और शिवजी त्रिदेवों ने कहा—जिस प्रकार इस संसार में हम तीनों देवों की पूजा होती है उसी प्रकार गणेश भी सभी के द्वारा पूज्य होंगे। किसी भी मांगलिक कार्य में सर्वप्रथम गणेश का पूजन किया जाएगा, तत्पश्चात हम सबका। यदि ऐसा न किया गया तो पूजा सफल नहीं मानी जाएगी तथा पूजा का फल भी नहीं मिलेगा। तब शिवजी ने सभी मांगलिक पूजन वस्तुएं मंगाकर गणेश का पूजन किया। उसके बाद मैंने, विष्णुजी, पार्वती और अन्य देवताओं ने भी उनकी विधि-विधान से पूजा की। उसके उपरांत सभी देवताओं ने उन्हें यथायोग्य वरदान प्रदान किए। उसी दिन से गणेशजी को अग्रपूजा का आशीर्वाद मिला।

उन्नीसवां अध्याय

गणेश चतुर्थी व्रत का वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार गणेश जी के जीवित होने पर सब ओर आनंद छा गया। सभी बहुत प्रसन्न थे। सभी देवता उन्हें विभिन्न प्रकार के वरदान प्रदान कर रहे थे। तब ईश्वरों के ईश्वर महादेव जी भी गणेश पर अपनी विशेष कृपादृष्टि बनाकर बोले—हे गिरिजानंदन! तुम मेरे दूसरे पुत्र हो। तुम्हें न पहचानने के कारण तुम्हारा यहां अपमान हुआ है। इसलिए मेरे भक्तों ने तुम पर आक्रमण किया परंतु आज से कोई भी तुम्हारा विरोध नहीं करेगा। तुम सभी के पूजनीय और वंदनीय होगे। तुम साक्षात् जगदंबा के तेज से उत्पन्न होने के कारण परम तेजस्वी और पराक्रमी हो। तुम्हारी वीरता और साहस का लोहा इस संसार में हर प्राणी मानेगा। आज से तुम मेरे सभी शिवगणों के अध्यक्ष हो। ये सभी तुम्हारे आदेशों का ही पालन करेंगे। आज से तुम गणपति नाम से भी जाने जाओगे। यह कहकर सर्वेश्वर भगवान शिव दो पल के लिए मौन हुए फिर बोले—हे गणपति! तुम्हारा जन्म भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि को देवी पार्वती के निर्मल हृदय से चंद्रमा के उदय के समय हुआ है। इसलिए आज से इस दिन जो भी पूरी भक्तिभावना से तुम्हारा स्मरण करके व्रत करेगा उसे समस्त सुखों की प्राप्ति होगी। मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष की चतुर्थी के दिन सुबह स्नान करके व्रत रखें। धातु, मूंगे या मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करें। तत्पश्चात मूर्ति की दिव्य गंधों, चंदन एवं सुगंधित फूलों से पूजा करें। रात्रि में बारह अंगुल लंबी तीन गांठ वाली एक सौ एक दूर्वाओं से पूजन करना चाहिए। उसके बाद धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, अर्घ्य देकर गणेशजी की पूजा करें। बाद में बाल चंद्रमा का पूजन करें। फिर ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराएं। स्वयं बिना नमक का ही खाना खाएं। इस प्रकार इस उत्तम गणेश चतुर्थी व्रत को करें।

जब व्रत करते-करते एक वर्ष पूरा हो जाए तब भक्तिभावना से इस व्रत का उद्यापन करना चाहिए। उद्यापन में बारह ब्राह्मणों को भोजन कराएं। व्रत का उद्यापन करते समय पहले से स्थापित कलश के ऊपर गणेश की मूर्ति रखें। वेदी तैयार कर उस पर अष्टदल कमल बनाकर हवन करें। तत्पश्चात मूर्ति के सामने दो स्त्रियों व दो बालकों को बिठाकर उनकी विधि-विधान से पूजा करें। फिर उन्हें आदरपूर्वक भोजन कराएं। पूरी रात उनका भक्तिभाव से जागरण करें। सुबह होने पर गणेशजी का पुनः पूजन करें। पूजन करने के पश्चात उनका विसर्जन कर दें। फिर बालकों से का आशीर्वाद लेकर उनसे स्वस्ति वाचन कराएं और व्रत को पूर्ण करने हेतु श्रीगणेश को पुष्प अर्पित करें। तत्पश्चात भक्तिभाव से दोनों हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करें।

हे गणेश! इस प्रकार जो श्रद्धापूर्वक उत्तम भक्तिभाव के साथ तुम्हारी शरण में आएगा और तुम्हें रोज पूजेगा, उसके सभी कार्य सफल हो जाएंगे तथा उसे सभी अभीष्ट फलों की

प्राप्ति होगी। गणेश का पूजन सच्चे मन से सिंदूर, चंदन, चावल और केतकी के फूलों से करने वाले के सभी विघ्नों और क्लेशों का नाश हो जाएगा। उस मनुष्य के अभीष्ट कार्य अवश्य ही सिद्ध होंगे। यह गणेश चतुर्थी व्रत सभी स्त्री एवं पुरुषों के लिए श्रेष्ठ है। विशेषतः जो मनुष्य अभ्युदय की इच्छा रखते हैं, उन्हें उत्तम भक्तिभावना से इस व्रत को अवश्य करना चाहिए क्योंकि गणेश चतुर्थी का व्रत करने वाले मनुष्य की सभी इच्छाएं और कामनाएं पूरी होती हैं। इसलिए सभी मनुष्यों को इस श्रेष्ठ व्रत को पूरा करना चाहिए तथा सदैव तुम्हारी भक्तिभाव से आराधना करनी चाहिए। इस प्रकार त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने अपने पुत्र गणेश को सभी मनुष्यों तथा देवताओं द्वारा पूजित होने का उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। सभी देवता और ऋषि-मुनि भगवान शिव के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उनके आनंद की कोई सीमा न रही। वे सभी भक्ति रस में डूबकर शिव-पार्वती पुत्र गणपति की आराधना करने लगे। यह देखकर देवी पार्वती की खुशी की कोई सीमा न रही। वे देवताओं को अपने पुत्र गणेश का पूजन करते देख मन ही मन भगवान शिव के चरणों का ध्यान करते हुए उनका धन्यवाद करने लगीं। उनका सारा क्रोध पल भर में ही शांत हो गया था। उस समय सभी दिशाओं में सुमधुर दुंदुभियां बजने लगीं। अप्सराएं सहर्ष नृत्य करने लगीं। सुंदर, मंगल गान होने लगे तथा श्रीगणेश जी पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। अपने पुत्र को गणाधीश बनाए जाने पर माता पार्वती फूली नहीं समा रही थीं। उस समय चारों ओर उत्सव होने लगा।

तत्पश्चात उस समय वहां उपस्थित समस्त देवता और ऋषि-मुनि उस स्थान के निकट गए जहां भगवान शिव और देवी पार्वती अपने पुत्र गणेश के साथ विराजमान थे। देवताओं और ऋषियों ने भक्तिभावना से उन्हें नमस्कार किया और उनकी स्तुति करने लगे। फिर शिवजी से विदा लेकर सब अपने-अपने धामों को चले गए। फिर मैं और श्रीहरि भी उनसे विदा लेकर अपने लोकों को लौट गए। जो मनुष्य शुद्ध हृदय से सावधान होकर इस परम मंगलकारी कथा को सुनता है, वह सभी मंगलों का भागीदार हो जाता है। यह गणेश चतुर्थी व्रत की उत्तम कथा पुत्रहीनों को पुत्र, निर्धनों को धन, रोगियों को आरोग्य, अभागों को सौभाग्य प्रदान करती है। जिस स्त्री का पति उसे छोड़कर चला गया हो, गणेश की आराधना के प्रभाव से पुनः उसके पास लौट आता है। दुखों और शोकों में डूबा मनुष्य इस उत्तम कथा को सुनकर शोक रहित होकर सुखी हो जाता है। जिस मनुष्य के घर में श्रीगणेश की महिमा का वर्णन करने वाले उत्तम ग्रंथ रहते हैं, उस घर में सदा मंगल होता है। श्रीगणेश की कृपा अपने भक्तों पर सदा रहती है और वे अपने भक्तों के कार्य में आने वाले सभी विघ्नों का विनाश कर उसकी सभी मनोकामनाओं को पूरा करते हैं।

बीसवां अध्याय

पृथ्वी परिक्रमा का आदेश, गणेश विवाह व कार्तिकेय का रुष्ट होना

नारद जी ने पूछा—हे विधाता! आपने मुझे श्रीगणेश के जन्म एवं उनके अद्भुत पराक्रम और साहस के साथ माता पार्वती के द्वार की रक्षा करने का उत्तम वृत्तांत सुनाया। अब मुझे यह बताइए कि जब भगवान शिव ने गणेश को पुनर्जीवित करके अनेक आशीर्वाद प्रदान किए, तब उसके पश्चात वहां क्या हुआ?

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! तत्पश्चात भगवान शिव-पार्वती अपने दोनों पुत्रों गणेश और कार्तिकेय के साथ आनंदपूर्वक अपने निवास कैलाश पर्वत पर रहने लगे। शिव-पार्वती अपने पुत्रों गणेश और कार्तिकेय की बाल लीलाओं को देखकर बहुत प्रसन्न होते और बहुत लाड़-प्यार करते। वे दोनों अपने माता-पिता की भक्तिभावना से पूजा-अर्चना करते थे, जिससे शिव-पार्वती बहुत प्रसन्न होते। धीरे-धीरे ऐसी ही लीलाओं के बीच समय बीतता गया और गणेश व कार्तिकेय युवा हो गए।

तब एक दिन शिव-पार्वती साथ-साथ बैठे हुए आपस में बातचीत कर रहे थे। देवी पार्वती ने भगवान शिव से कहा कि प्रभु हमारे दोनों ही पुत्र विवाह के योग्य हो गए हैं। अतः हमें अब दोनों पुत्रों का विवाह कर देना चाहिए। तब दोनों ये विचार करने लगे कि पहले गणेश का विवाह किया जाए या कार्तिकेय का। जब माता-पिता ने अपनी इच्छा पुत्रों को बताई तो उनके मन में भी विवाह की इच्छा जाग उठी। दोनों पुत्र विवाह के लिए सहर्ष तैयार हो गए। तब भगवान शिव अपने पुत्रों से बोले—हे पुत्रो! तुम दोनों ही हमारे लिए प्रिय हो परंतु हम इस असमंजस में हैं कि तुम दोनों में से पहले किसका विवाह किया जाए? इसलिए हमने एक युक्ति निकाली है। तुम दोनों में से जो भी पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले लौट आएगा, उसका विवाह पहले किया जाएगा। अपने पिता के ये वचन सुनकर कुमार कार्तिकेय तुरंत अपने वाहन पर सवार होकर यथाशीघ्र पृथ्वी की परिक्रमा करने हेतु माता-पिता की आज्ञा लेकर निकल पड़े परंतु श्री गणेश वहीं यथावत खड़े होकर कुछ सोचने लगे। तत्पश्चात उन्होंने घर के अंदर जाकर स्नान किया और पुनः माता-पिता के पास आए और बोले—आप दोनों मेरे द्वारा लगाए गए इन आसनों को ग्रहण कीजिए। मैं आप दोनों की परिक्रमा करना चाहता हूं। तब भगवान शिव और देवी पार्वती ने हर्षपूर्वक आसन ग्रहण कर लिया। शिव-पार्वती के आसन पर बैठ जाने के पश्चात गणेश ने उन्हें हाथ जोड़कर बारंबार प्रणाम किया और उनकी विधि-विधान से पूजा-अर्चना की। पूजा करने के बाद उन्होंने भक्तिभाव से उनकी सात बार परिक्रमा की।

माता-पिता की सात बार परिक्रमा करने के पश्चात गणेश हाथ जोड़कर प्रभु के सामने खड़े हो गए और उनकी स्तुति करते हुए बोले—आपकी आज्ञा को मैंने पूरा किया। अब आप

यथाशीघ्र मेरा विवाह संपन्न कराएं। यह सुनकर शिव-पार्वती ने गणेश से पृथ्वी की परिक्रमा कर आने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार कार्तिकेय पृथ्वी की परिक्रमा करने गए हैं, तुम भी जाओ और उनसे पहले लौट आओ तभी तुम्हारा विवाह पहले हो सकता है।

शिव-शिवा के ये वचन सुनकर गणेश बोले—आप दोनों तो महा बुद्धिमान हैं। आपके ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। आप धर्म और शास्त्रों में पारंगत हैं। मैं तो आपकी आज्ञा के अनुरूप पृथ्वी की परिक्रमा एक बार नहीं बल्कि सात बार कर आया हूं। यह सुनकर शिव-पार्वती बड़े आश्चर्यचकित होकर बोले कि हे पुत्र! तुम इतनी विशाल सात द्वीप वाली समुद्र, पर्वत और काननों से युक्त पृथ्वी की परिक्रमा कब कर आए? तुम तो यहां से कहीं गए भी नहीं।

भगवान शिव और देवी पार्वती के इस प्रकार किए गए प्रश्न को सुनकर बुद्धिमान गणेश जी बोले—मैंने आप दोनों की पूजा करके आपकी सात बार परिक्रमा कर ली है। इस प्रकार मेरे द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा पूरी हो गई। वेदों में इस बात का वर्णन है कि अपने माता-पिता की श्रद्धाभाव से पूजा करने के पश्चात उनकी परिक्रमा करने से पृथ्वी की परिक्रमा का पुण्य फल प्राप्त होता है। माता-पिता के चरणों की धूल ही पुत्र के लिए महान तीर्थ है। वेद शास्त्र इसको प्रमाणित करते हैं। फिर आप क्यों इस बात को मानने से इनकार कर रहे हैं? हे पिताश्री! आप तो सर्वेश्वर हैं। निर्गुण, निराकार, परब्रह्म ईश्वर हैं। भला आप कैसे मेरे वचनों को झुठला सकते हैं? कृपा कर बताइए कि शास्त्रों के अनुसार क्या मैं गलत हूं?

इस प्रकार गणेश जी के वचन सुनकर शिव-पार्वती अत्यंत आश्चर्यचकित हुए। अपने पुत्र गणेश को वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता जानकर उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। तब मुस्कुराते हुए भगवान शिव-पार्वती बोले—हे प्रिय पुत्र! तुम बलवान और साहसी होने के साथ-साथ परम बुद्धिमान भी हो। यह सत्य है कि जिसके पास बुद्धिबल है, वही बलशाली भी है। बिना बुद्धि के बल का प्रयोग भी संभव नहीं होता। बुद्धिहीन मनुष्य संकट में फंस जाने पर बलशाली होने के बावजूद भी, मुक्त नहीं हो पाता। वेद-शास्त्र और पुराण यही बताते हैं कि मां-बाप का स्थान सबसे ऊपर होता है। उनके चरणों में ही स्वर्ग है। अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना ही पुत्र का एकमात्र धर्म है। उनकी परिक्रमा पृथ्वी की परिक्रमा से भी बढ़कर है। अतः तुम्हारी बात सर्वथा सत्य है। तुमने कार्तिकेय से पहले ही पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर ली है। अतः हमें तुम्हारा विवाह सबसे पहले और शीघ्र ही करना है।

जब भगवान शिव और पार्वती ने गणेश की बात का समर्थन कर उसे स्वीकार कर लिया तब गिरिजानंदन प्रसन्न हो गए और अपने माता-पिता को प्रणाम करके वहां से चले गए। महादेव जी अपनी प्रिया पार्वती जी के साथ बैठकर इस चिंता में डूब गए कि हम विवाह के लिए वधू की खोज कहां करें? जब वे इस प्रकार विचार कर रहे थे तभी प्रजापति विश्वरूप कैलाश पर्वत पर पधारे और उन्होंने भक्तिभाव से शिव-शिवा को नमस्कार कर उनकी स्तुति की। जब महादेव जी ने उनसे कैलाश आगमन का कारण जानना चाहा तब प्रसन्न हृदय से विश्वरूप जी ने कहा—हे भगवन्! मैं आपके पास अपनी दो पुत्रियों सिद्धि और बुद्धि के विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हूं। प्रभु! सिद्धि और बुद्धि सुंदर और सर्वगुण संपन्न हैं। मैं उनका विवाह आपके पुत्र से करना चाहता हूं।

प्रजापति विश्वरूप के वचन सुनकर भगवान शिव और देवी पार्वती बहुत हर्षित हुए और उन्होंने उनका विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। भगवान शिव-शिवा ने अपने प्रिय पुत्र गणेश का शुभ विवाह सिद्धि-बुद्धि के साथ आनंदपूर्वक संपन्न कराया। इस शुभ अवसर पर सब देवता हर्षपूर्वक सम्मिलित हुए। उन्होंने गणेश को सपत्नीक ढेरों आशीर्वाद और शुभाशीष प्रदान किए और अपने-अपने स्थान पर लौट गए। तत्पश्चात श्रीगणेश अपनी दोनों पत्नियों के साथ आनंदपूर्वक विहार करने लगे। काफी समय व्यतीत हो जाने के पश्चात उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। सिद्धि से उत्पन्न पुत्र का नाम 'शुभ' तथा बुद्धि से प्राप्त पुत्र का नाम 'लाभ' रखा गया। इस प्रकार श्रीगणेश अपनी दोनों पत्नियों और पुत्रों के साथ आनंदपूर्वक रहने लगे।

जब श्रीगणेश को सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हुए काफी समय बीत गया, तब कुमार कार्तिकेय पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करके लौट आए। वे घर पहुंचने ही वाले थे कि रास्ते में ही उनकी भेंट नारद तुमसे हो गई। तब तुमने कार्तिकेय से कहा कि तुम्हारे माता-पिता ने तुमसे सौतेला व्यवहार किया है। तुम्हें पृथ्वी की परिक्रमा पर भेजकर तुम्हारे भाई गणेश का दो सुंदर कन्याओं से विवाह कर दिया है। अब तो उनके दो पुत्र भी हो चुके हैं और वे आनंदपूर्वक अपना जीवन सुख से बिता रहे हैं। यह तुम्हारे माता-पिता ने अच्छा नहीं किया है। नारद! तुम्हारी ऐसी बातें सुनकर कार्तिकेय क्रोध में भर गए। वे अत्यंत व्याकुल होकर अतिशीघ्र घर पहुंचे। क्रोध के कारण उनका मुख लाल हो गया था। कैलाश पर्वत पर पहुंचकर उन्होंने अपने माता-पिता को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात उन्होंने अपने माता-पिता से इस विषय पर अपनी नाराजगी प्रकट की। कार्तिकेय ने कहा कि आप दोनों ने अपने ही पुत्र को धोखे से यहां से भगा दिया और अपने प्रिय पुत्र गणेश का चुपचाप विवाह रचा दिया। आप दोनों ने मेरे साथ सौतेले पुत्र जैसा व्यवहार किया है। यदि आप गणेश का ही विवाह पहले करना चाहते थे, तो मुझसे एक बार कहते, मैं स्वयं अपने भाई गणेश का विवाह उत्साहपूर्वक आनंद के साथ कराता परंतु आपने छल-कपट का सहारा लिया। आप सिर्फ एक पुत्र से ही प्यार करते हैं। मेरे होने न होने का आपको कोई फर्क ही नहीं पड़ता। अतः मैं यहां से हमेशा-हमेशा के लिए जा रहा हूं। अब मैं क्रौंच पर्वत पर जाकर सदैव तपस्या करूंगा। यह कहकर कुमार कार्तिकेय वहां से चले गए। भगवान शिव और पार्वती ने उन्हें समझाना चाहा, पर उन्होंने उनकी बात अनसुनी कर दी।

नारद! उस दिन से स्वामी कार्तिकेय कुमार नाम से प्रसिद्ध हो गए। तब से इन तीनों लोकों में उनका नाम कुमार कार्तिकेय विख्यात हो गया। कार्तिकेय का नाम पापहारी, शुभकारी, पुण्यमयी एवं ब्रह्मचर्य की शक्ति प्रदान करने वाला है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन कृति नक्षत्र में, जो भी मनुष्य स्वामी कार्तिकेय के दर्शन अथवा पूजन करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है। सभी देवता और ऋषिगण भी इस दिन कार्तिकेय के दर्शनों को जाते हैं। उधर कुमार कार्तिकेय के इस प्रकार नाराज होकर चले जाने के कारण उनकी माता पार्वती बहुत दुखी थीं। वे शिवजी को साथ लेकर क्रौंच पर्वत पर गईं। उन्हें देखकर कार्तिकेय पहले ही वहां से चले गए। तब भगवान शिव उस उत्तम स्थान

पर, जहां उनके पुत्र कार्तिकेय ने तप किया था, मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थापित हो गए और आज भी देवी पार्वती के साथ विराजमान हैं। उस दिन से शिव-शिवा दोनों अपने पुत्र कार्तिकेय को ढूंढने के लिए अमावस्या को शिव और पूर्णिमा के दिन पार्वती जी क्रौंच पर्वत पर जाते हैं।

नारद! मैंने तुम्हें समस्त पापों का नाश करने वाले श्रीगणेश और कार्तिकेय के चरित्र को सुनाया है। जो भी मनुष्य भक्तिभाव से इसे पढ़ता, सुनता अथवा सुनाता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। यह कथा पापनाशक, सुख देने वाली, मोक्ष दिलाने वाली एवं कल्याणकारी है। इसलिए निष्काम भक्तों को इसको अवश्य सुनना और पढ़ना चाहिए।

।। श्रीरुद्र संहिता (कुमारखण्ड) संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीरुद्र संहिता

पंचम खंड

पहला अध्याय

तारकपुत्रों की तपस्या एवं वरदान प्राप्ति

नारद जी बोले—हे प्रभो! आपने मुझे कुमार कार्तिकेय और श्रीगणेश के उत्तम तथा पापों को नाश करने वाले चरित्र को सुनाया। अब आप कृपा करके मुझे भगवान शिव के उस चरित्र को सुनाइए, जिसमें उन्होंने देवताओं और इस पृथ्वीलोक के शत्रुओं, दुष्ट दानवों और राक्षसों को लोकहितार्थ मार गिराया। साथ ही महादेव जी द्वारा एक ही बाण से तीन नगरों को एक साथ भस्म करने की कथा का भी वर्णन कीजिए।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ नारद! बहुत समय पूर्व, एक बार व्यास जी ने सनत्कुमार से इस विषय में पूछा था। उस समय जो कथा उन्होंने बताई थी वही आज मैं तुम्हें बताता हूं। जब देवताओं की रक्षार्थ भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध कर दिया गया, तब उसके तीनों पुत्रों तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष को बहुत दुख हुआ। वे तीनों ही महान बलशाली, जितेंद्रिय, सत्यवादी, संयमी, वीर और साहसी थे परंतु अपने पिता तारकासुर का वध देवताओं द्वारा होने के कारण उनके मन में देवताओं के लिए रोष उत्पन्न हो गया। तब उन तीनों ने अपना राज-पाट त्यागकर मेरु पर्वत की एक गुफा में जाकर उत्तम तपस्या करनी शुरू कर दी। उन्होंने अपनी कठिन और उग्र तपस्या से मुझ ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया। मैं उन तीनों असुरों को वरदान देने के लिए मेरु पर्वत गया।

वहां पहुंचकर मैंने तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष से कहा कि हे महावीर दैत्यो! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं। मांगो, मुझसे क्या मांगना चाहते हो। तुम्हारी मनोकामना मैं अवश्य पूरी करूंगा। मुझे बताओ कि किस वरदान की प्राप्ति हेतु तुम लोगों ने इतना कठोर तप किया है?

ब्रह्माजी के ये वचन सुनकर उन तीनों तारक पुत्रों को बड़ा संतोष हुआ। तब उन्होंने मेरे चरणों में पड़कर प्रणाम किया और मेरा स्तवन करने लगे। तत्पश्चात वे बोले—हे देवेश! हे विधाता! यदि आप वाकई हम पर प्रसन्न हैं तो हमें अवध्य होने का वरदान प्रदान कीजिए। कोई भी प्राणी हमारा वध करने में सक्षम न हो और हम अजर-अमर हों। हम चाहें तो किसी का भी वध कर सकें। प्रभो! हमें यही वरदान दीजिए कि हम अपने शत्रुओं को मौत के घाट उतार सकें और निभर्यतापूर्वक इस त्रिलोक में आनंद का अनुभव करते हुए विचरें। कोई हमारा बाल भी बांका न कर सके।

तारक पुत्रों के ऐसे वचन सुनकर मैं ब्रह्मा त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल भगवान शिव के चरणों का स्मरण करते हुए बोला—हे असुरो! निःसंदेह ही तुम्हारी इस उत्तम तपस्या ने मुझे बहुत प्रसन्न किया है परंतु अमरत्व की प्राप्ति सभी को नहीं हो सकती है। यह प्रकृति का नियम है। जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। अतः इसके अतिरिक्त कोई अन्य वर मांगो। मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छित मृत्यु का वरदान दे सकता हूं। तुम जिस प्रकार अपनी मृत्यु चाहोगे, उसी

प्रकार तुम्हारी मृत्यु होगी।

मेरे इस प्रकार के वचन सुनकर तीनों तारक पुत्र कुछ देर के लिए सोच में डूब गए। तत्पश्चात वे बोले—भगवन्! यद्यपि हम तीनों ही महान बलशाली हैं। फिर भी हमारे पास रहने का कोई ऐसा स्थान नहीं है, जो पूर्णतया सुरक्षित हो और जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकें। प्रभु! आप हम तीनों भाइयों के लिए तीन ऐसे नगरों का निर्माण करें, जो पूर्णतया सुरक्षित हों। ये तीनों अद्भुत नगर संपूर्ण धन-संपत्ति और वैभव से शोभित हों तथा अस्त्र-शस्त्रों की सभी सामग्रियां भी वहां उपस्थित हों और उसे कोई भी नष्ट न कर सके। तब तारकाक्ष ने अपने लिए सोने का, कमलाक्ष ने चांदी का तथा विद्युन्माली ने कठोर लोहे का बना नगर वरदान में मांगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ये तीनों पुर दोपहर अभिजित मुहूर्त में चंद्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर एक साथ मिला करेंगे। ये तीनों ही महल आकाश में नीले बादलों में एक के ऊपर एक रहेंगे तथा जनसाधारण सहित किसी को भी नहीं दिखाई देंगे। एक सहस्र वर्षों बाद जब पुष्करावर्त नामक काले बादल बरस रहे हों, उस समय जब तीनों महल आपस में मिले, तब हम सबके वंदनीय भगवान शिव असंभव रथ पर बैठकर एक ही बाण से हमारे नगरों सहित हमारा भी वध करें।

इस प्रकार तारकासुर के पुत्रों के मांगे वरदान को सुनकर मैं मुस्कुराया और 'तथास्तु' कहकर उनका इच्छित वर उन्हें प्रदान कर दिया। फिर मय दानव को बुलाकर ऐसे तीन लोकों को बनाने की आज्ञा देकर मैं वहां से अपने लोक को लौट आया। मय ने मेहनत से तारकाक्ष के लिए सोने का, कमलाक्ष के लिए चांदी का और विद्युन्माली के लिए लोहे के उत्तम लोकों का निर्माण किया। ये तीनों ही लोक सभी साधनों और सुविधाओं से संपन्न थे। इन तीनों लोकों का निर्माण होने के उपरांत वे तीनों अपने-अपने लोकों में चले गए और मय ने उन्हें एक के ऊपर एक करके, एक को आकाश में, एक को स्वर्ग के ऊपर और तीसरे को पृथ्वी लोक में स्थिर कर दिया। तत्पश्चात तीनों असुरों की आज्ञानुसार मय भी वहीं पर निवास करने लगा। तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली तीनों ही सदैव शिव-भक्ति में लीन रहा करते थे। इस प्रकार वे तीनों ही असुर अब आनंदपूर्वक अपने-अपने लोकों में सुखों को भोगने लगे।

दूसरा अध्याय

देवताओं की प्रार्थना

नारद जी बोले—हे पिताश्री! जब तारकासुर के तीनों पुत्र तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली आनंदपूर्वक अपने-अपने लोकों में निवास करने लगे, तब फिर आगे क्या हुआ? ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तारकपुत्रों के तीनों लोकों के अद्‌भुत तेज से दग्ध होकर सभी देवतागण देवराज इंद्र के साथ दुखी अवस्था में ब्रह्मलोक में मेरी शरण में आए। वहां मुझे नमस्कार करने के पश्चात देवताओं ने अपना दुख बताना शुरू किया। वे बोले—हे विधाता! त्रिपुरों के स्वामी, तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों तारकपुत्रों ने हम सभी देवताओं को संतप्त कर दिया है। भगवन्! अपनी रक्षा के लिए हम सभी आपकी शरण में आए हैं। प्रभु आप हमें उनके वध का कोई उपाय बताइए, ताकि हम अपने दुखों को दूर करके पुनः पहले की भांति अपने लोक में सुख से रह सकें।

यह सुनकर मैंने उनसे कहा—हे देवताओ! तुम्हें इस प्रकार उन तारकपुत्रों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं तुम्हें उनके वध का उपाय बताता हूं। उन तीनों ही असुरों को मैंने वरदान प्रदान किया है। अतः मैं उनका वध नहीं कर सकता। इसलिए तुम सब भगवान शिव की शरण में जाओ वे ही तुम्हारी इस दुख की घड़ी में सहायता करेंगे। तुम उनके पास जाकर उन्हें प्रसन्न करो।

मुझ ब्रह्मा के ये वचन सुनकर सभी देवता अपने स्वामी देवराज इंद्र के नेतृत्व में भगवान शिव के पास कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां सबने भक्तिभाव से भगवान शिव को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात देवता बोले—हे महादेव जी! तारकासुर के तीनों पुत्रों ने हमें परास्त कर दिया है। यही नहीं उन्होंने सभी ऋषि-मुनियों को भी बंदी बना लिया है। वे उन्हें यज्ञ नहीं करने देते हैं। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। उन्होंने इस त्रिलोक को अपने वश में कर लिया है और पूरे संसार को नष्ट करने में लगे हुए हैं। ब्रह्माजी द्वारा इन तीनों को अवध्य होने का वरदान मिला है। इसी कारण वे तीनों बलशाली दानव मदांध हो चुके हैं और मनुष्यों और देवताओं को तरह-तरह से प्रताड़ित कर रहे हैं। हे भक्तवत्सल! हे करुणानिधान! हम सब देवता परेशान होकर आपकी शरण में इस आशा के साथ आए हैं कि आप हम सबकी उन तीनों असुरों से रक्षा करेंगे तथा इस पृथ्वी और स्वर्ग को उनके आतंकों से मुक्ति दिलाएंगे। भगवन्! इससे पहले कि वे इस जगत का ही विनाश कर दें आप उनसे हम सबकी रक्षा करें।

तीसरा अध्याय

भगवान शिव का देवताओं को विष्णु के पास भेजना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार सब देवताओं ने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को उन तीनों तारकपुत्रों के आतंक के विषय में सब कुछबता दिया। तब सारी बातें सुनकर भगवान शिव बोले—हे देवताओ! मैंने तुम्हारे कष्टों को जान लिया है। मैं जानता हूं कि तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ने तुम्हें बहुत परेशान किया हुआ है परंतु फिर भी वे तीनों पुण्य कार्यों में लगे हुए हैं। वे तीनों मेरे भक्त हैं और सदा मेरे ध्यान में निमग्न रहते हैं। भला मैं अपने भक्तों को कैसे मार सकता हूं। वे तीनों तारकपुत्र पुण्य संपन्न हैं। वे प्रबल होने के साथ-साथ भक्तिभावना भी रखते हैं। जब तक उनका पुण्य संचित है और वे मेरी आराधना करते रहेंगे, मेरे लिए उन्हें मारना असंभव है क्योंकि स्वयं ब्रह्माजी के अनुसार मित्रद्रोह से बढ़कर कोई भी पाप नहीं है। जब वे तीनों असुर नियमपूर्वक मेरी पूजा-आराधना करते हैं, तो मैं क्यों बिना किसी ठोस कारण से उनका वध करूं? हे देवताओ। इस समय मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। अतः तुम सब श्रीहरि विष्णु की शरण में जाओ। अब वे ही तुम्हारा उद्धार करेंगे।

भगवान शिव की आज्ञा पाकर सभी देवताओं ने उन्हें पुनः हाथ जोड़कर प्रणाम किया और श्रीहरि विष्णु से मिलने के लिए उनके निवास बैकुंठ लोक की ओर चल दिए। उन्होंने अपने साथ मुझ ब्रह्मा को भी ले लिया। बैकुंठ लोक पहुंचकर सब देवताओं ने भक्तिपूर्वक श्रीहरि को प्रणाम किया और उन्हें भगवान शिव द्वारा कही गई सब बातों से अवगत कराया।

देवताओं की बातें सुनकर भगवान विष्णु बोले—हे देवताओ! यह बात सत्य है कि जहां सनातन धर्म और भक्तिभावना हो, वहां ऐसा करना उचित नहीं होता। तब देवता पूछने लगे कि प्रभु हम क्या करें? हमारा दुख कैसे दूर होगा? प्रभु! आप शीघ्र ही उन तारकपुत्रों के वध का कोई उपाय कीजिए अन्यथा हम सभी देवता अकाल ही मृत्यु का ग्रास बन जाएंगे। भगवन्! आप ऐसा उपाय कीजिए, जिससे वे तीनों असुर सनातन धर्म से विमुख होकर अनाचार का रास्ता अपना लें। उनके वैदिक धर्म का नाश हो जाए और वे अपनी इंद्रियों के वश में हो जाएं। वे दुराचारी हो जाएं तथा उनके सभी शुभ आचरण समाप्त हो जाएं।

तब देवताओं की इस प्रार्थना को सुनकर भगवान श्रीहरि विष्णु एक पल को सोच में डूब गए। तत्पश्चात बोले—तारकपुत्र तो स्वयं भगवान शिव के भक्त हैं परंतु फिर भी जब तुम सब मेरी शरण में आए हो तो मैं तुम्हें निराश नहीं करूंगा। तुम्हारी सहायता अवश्य ही करूंगा।

तब श्रीहरि विष्णु ने मन ही मन यज्ञों का स्मरण किया। उनका स्मरण होते ही यज्ञगण तुरंत वहां उपस्थित हो गए। वहां श्रीहरि को नमस्कार करके उन्होंने पूछा कि प्रभु! आपने हमें यहां क्यों बुलाया है? तब श्रीहरि मुस्कुराए और बोले कि हमें तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। इसलिए हमने तुम्हारा स्मरण किया है। तब वे देवराज इंद्र से बोले कि हे

देवराज! आप त्रिलोक की विभूति के लिए यज्ञ करें। यज्ञ के द्वारा ही तारकपुत्रों के तीनों पुरों (नगरों) का विनाश संभव है।

भगवान श्रीहरि विष्णु के ये वचन सुनकर सभी देवताओं ने आदरपूर्वक विष्णुजी का धन्यवाद किया और उन्हें प्रणाम करने के पश्चात यज्ञ के ईश्वर की स्तुति करने लगे। तत्पश्चात उन्होंने बहुत विशाल यज्ञ का आयोजन किया। सविधि उन्होंने उत्तम यज्ञ भक्ति भावना से आरंभ किया। यज्ञ अग्नि प्रज्वलित हुई। यज्ञ पूर्ण होने पर उस यज्ञ कुंड से शूल शक्तिधारी विशालकाय हजारों भूतों का समुदाय निकल पड़ा। तत्पश्चात अनेक रूपों से युक्त नाना वेषधारी, कालाग्नि रुद्र के समान तथा काल सूर्य के समान प्रकट हुए उन भूतों ने भगवान विष्णु को नमस्कार किया। उन भूतगणों को आज्ञा देते हुए विष्णुजी बोले—

हे भूतगणो! देवकार्य को पूरा करने के लिए तुम जाकर त्रिपुरों को नष्ट करो। विष्णुजी की आज्ञा सुनकर वे भूतगण दैत्यों के उस महासुंदर नगर त्रिपुर की ओर चल दिए। जब उन्होंने त्रिपुर नगरी में घुसना चाहा तो वहां के तेज से वे भस्म हो गए। जो भूतगण बचे वे लौटकर भगवान विष्णु के पास वापस आ गए तथा उन्होंने श्रीहरि को इस बात की सूचना दी।

जब भगवान विष्णु को इस प्रकार भूतगणों के नगरी के तेज से जलने की जानकारी हुई तो वे अत्यंत चिंतित हो गए। तब उन्होंने देवताओं को समझाया कि वे अपनी चिंता त्यागकर अपने-अपने लोकों को जाएं। मैं इस संबंध में विचार करके आपके लाभ के लिए यथासंभव कार्य करूंगा। मैं तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों असुरों को शिवभक्ति से विमुख करने का प्रयास करता हूं, तभी उन पर विजय पाना संभव होगा। तब श्रीहरि को प्रणाम करके सभी देवता अपने-अपने लोकों को वापस लौट गए।

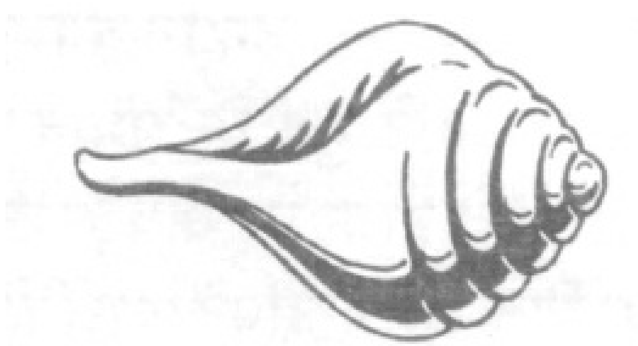

चौथा अध्याय

नास्तिक शास्त्र का प्रादुर्भाव

ब्रह्माजी नारद से बोले—तब भगवान श्रीहरि विष्णु ने अपनी आत्मा के तेज से अत्यंत तेजस्वी एक मायावीर पुरुष प्रकट किया। उसका सिर मुंडा हुआ था। उसने अत्यंत गंदे वस्त्र पहने हुए थे। उसके एक हाथ में लकड़ी का एक कटोरा तथा दूसरे हाथ में झाड़ू थी। उसने अपने मुख पर वस्त्र लपेट रखा था। व्याकुल वाणी में उसने श्रीहरि को प्रणाम किया और पूछा—हे प्रभु! मेरी उत्पत्ति का क्या प्रयोजन है? भगवन् मैं कौन हूं?

तब श्रीहरि विष्णु ने उत्तर दिया—हे वत्स! तुम मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुए हो। इसलिए तुम 'अरिह' नाम से जाने जाओगे। तुम्हें मैंने एक विशेष कार्य के लिए उत्पन्न किया है। तुम बड़े मायावी हो। तुम्हें एक ऐसे शास्त्र की रचना करनी है जिसमें सोलह हजार श्लोक होंगे। जिसमें वर्णाश्रम धर्म की जानकारी होगी तथा जिसमें अपभ्रंश शब्दों व कर्म-विवाह की भी व्याख्या की गई होगी।

विष्णुजी के इन वचनों को सुनकर अरिह ने उन्हें प्रणाम किया और बोला कि मेरे लिए अब क्या आज्ञा है? तब श्रीहरि ने उसे माया से रचित वह अद्भुत शास्त्र पढ़ाया जिसका मूल यह था कि स्वर्ग और नरक सब यहीं हैं। उनका अलग से कोई भी अस्तित्व नहीं है। तब विष्णु ने अरिह को आज्ञा दी कि वह सब दैत्यों को जाकर शास्त्र पढ़ाए और उनकी बुद्धि का नाश करे। इस प्रकार यह शास्त्र पढ़कर त्रिपुरों में तमोगुण की वृद्धि होगी, जो उनके विनाश का कारण सिद्ध होगी। मेरी कृपा से तुम्हारे इस धर्म का विस्तार होगा। तत्पश्चात तुम मरुस्थल में निवास करना। तुम्हारा कार्य कलयुग आने पर ही पुनः आरंभ होगा।

ऐसा कहकर श्रीहरि विष्णु अंतर्धान हो गए। तब अरिह ने भगवान विष्णु की आज्ञा के अनुसार अपने अनेक शिष्य बनाए और उन्हें उसी मायामय शास्त्र की शिक्षा दी। विशेष रूप से उनके चार शिष्य बने जिनको उन्होंने कृषि, पत्ति, कीर्य और उपाध्याय नाम प्रदान किया। वे चारों शिष्य अपने गुरु के समान ही आचरण करने वाले थे। उनका एक ही धर्म था—पाखंड। वे नाक पर कपड़ा लपेटे गंदे वस्त्र धारण करके इधर-उधर घूमते रहते थे। एक दिन अरिह अपने चारों शिष्यों को अपने साथ लेकर त्रिपुर नगर में चल दिए। वहां पहुंचकर उन्होंने अपनी माया फैलानी आरंभ की, परंतु भगवान शिव की कृपा से उस त्रिपुरी में उनकी माया का प्रभाव नहीं हो रहा था। तब उन्होंने व्याकुल होकर भगवान विष्णु का स्मरण किया। भगवान विष्णु ने अलौकिक गति से सभी बातें जान लीं।

भगवान शिव का ध्यान करते हुए विष्णुजी ने हे नारद तब तुम्हारा स्मरण किया। अपने स्वामी के स्मरण करते ही तुम तत्काल उनकी सेवा में उपस्थित हो गए। उन्हें प्रणाम करके तुमने याद करने का कारण पूछा। तब श्रीहरि ने तुम्हें आज्ञा प्रदान की कि तुम अरिह और उसके शिष्यों को साथ लेकर त्रिपुर नगरी में प्रवेश करो और वहां के निवासियों को मोहित

करके उन्हें माया से ओत-प्रोत उस शास्त्र की शिक्षा प्रदान करो। अपने आराध्य भगवान श्रीहरि की आज्ञा शिरोधार्य कर तुम उन पाखण्डी ब्राह्मणों को साथ लेकर त्रिपुर नगरी की ओर चल दिए। वहां जाकर तुम तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक त्रिपुर स्वामियों से मिले तथा उनसे उस मायामय शास्त्र की प्रशंसा करने लगे। तुमने उन्हें बताया कि तुम इसी शास्त्र से शिक्षा ग्रहण करते हो। यह बात जानकर उन त्रिपुर स्वामियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उस मायामय शास्त्र की माया से मोहित होने लगे। तब उन्होंने 'अरिह' को अपना गुरु बना लिया और उनसे दीक्षा लेने लगे। यह देखकर त्रिपुरों के अन्य निवासी भी उन मायावी शिष्यों एवं उनके गुरु से शिक्षा ग्रहण करने लगे।

पांचवा अध्याय

नास्तिक मत से त्रिपुर का मोहित होना

नारद जी ने पूछा—हे ब्रह्मदेव! उन तीनों महा बलशाली दैत्यराजों के उन मायावी और पाखंडी अरिह और उनके शिष्यों द्वारा शिक्षा ग्रहण होने पर वहां क्या हुआ? उन मायावी पुरुषों ने क्या किया? कृपया मुझे बताइए।

नारद जी का प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब त्रिपुर के राजा ही उस मायामय शास्त्र द्वारा दीक्षित हो गए तो वहां की जनता क्यों नहीं होती? अरिहन ने कहा—मेरा ज्ञान वेदांत का सार है। यह अनादिकाल से चला आ रहा है। इसमें कर्ता कर्म नहीं है। आत्मा के देह अर्थात शरीर से जितने भी बंधन हैं, वे सब ईश्वर के ही हैं। ईश्वर के समान कोई भी न तो शक्तिशाली है और न ही सामर्थ्यवान। ब्रह्मा, विष्णु और महेश सब अरिहन ही कहे जाते हैं। समय आने पर ये तीनों ही लीन हो जाते हैं। आत्मा एक है। मृत्यु सभी के लिए सत्य है। मृत्यु शाश्वत है और सबके लिए निश्चित है। इसलिए हमें कभी भी हिंसा नहीं करनी चाहिए और सदा ही अहिंसा के मार्ग पर चलना चाहिए। अहिंसा ही परम धर्म है। किसी को दुख पहुंचाना महापाप है। इसलिए हमें कभी भी कमजोर और निर्बलों को नहीं सताना चाहिए। दूसरों को क्षमा करना ही सबसे बड़ा गुण है। इसलिए सदा अहिंसा का मार्ग अपनाना चाहिए।

हिंसा और लड़ाई झगड़े का मार्ग हमें नरक की ओर ले जाता है। इसलिए किसी को डराओ-धमकाओ मत। सदैव विनम्रता का आचरण करो। भूखों को भोजन दो। रोगियों को औषधि और छात्रों को विद्या का दान करो। भक्ति के साथ उपासना करो। आडंबरों की कोई आवश्यकता नहीं होती। मन को शुद्ध रखो तथा बारह स्थानों की पूजा करो, जिनमें पांच कर्मेंद्रिया, पांच ज्ञानेंद्रियां तथा मन व बुद्धि सम्मिलित हैं। इसी धरा पर ही स्वर्ग और नरक दोनों स्थित हैं। अतः अनावश्यक रूप से उनकी कामना मन में लेकर अपनों को कष्ट देना पूर्णतः गलत है। शांति और सुखपूर्वक मरना ही मोक्ष की प्राप्ति है।

स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा मन में लेकर हवन की अग्नि में तिल, घी और पशु की बलि देना कहां की मानवता है। इस प्रकार उन असुर राजाओं को अपना जीवन-दर्शन सुनाकर अरिह उस पुर के निवासियों से बोले कि मनुष्य को सुखपूर्वक निवास करना चाहिए। आनंद ही ब्रह्म है और परम ब्रह्म की प्राप्ति सिर्फ एक कल्पना है। तभी कहता हूं कि जब तक आपका शरीर स्वस्थ और समर्थ है, अपने सुख का मार्ग ढूंढ़कर उसका अनुसरण करो। अन्यथा शीघ्र ही तुम पर बुढ़ापा आ जाएगा और तुम्हारा शरीर नष्ट हो जाएगा। इसलिए ज्ञानियों को स्वयं अपने सुख की खोज करनी चाहिए। मेरी इस बात का समर्थन वेद भी करते हैं। मनुष्य को जाति-पांति के बंधनों में फंसकर कभी किसी को कम नहीं समझना चाहिए।

सृष्टि के आरंभ में ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। उनके दक्ष और मरीचि नामक दो पुत्र हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप जी ने दक्ष की तेरह कन्याओं का धर्म से विवाह कराया। फिर प्रजापति

के मुख, बाहु, उरु, जंघा और चरण से वर्ण उत्पन्न हुए। ऐसा कहा जाता है, परंतु ये सभी बातें गलत जान पड़ती हैं, क्योंकि एक ही शरीर से जन्म लेने वाले सभी पुत्र भिन्न-भिन्न रूप वाले कैसे हो सकते हैं? इसलिए वर्ण भेद को अनुचित मानना चाहिए।

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उन अरिह नामक धर्मात्मा ने अपने भाषण द्वारा तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों असुरों के निवासियों को वेद मार्ग से विमुख कर दिया। साथ ही उन्होंने पतिव्रता स्त्रियों के पतिव्रता धर्म और पुरुषों के जितेंद्रिय धर्म को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने धर्म, यज्ञ, तीर्थ, श्रद्धा और धर्मशास्त्रों का भी खंडन किया। विशेषरूप से उन्होंने भगवान शिव की पूजा न करने के लिए सभी को प्रोत्साहित किया और सब देवताओं के पूजन और आराधना को व्यर्थ बताया। इस प्रकार उन अरिह ने पुर के वासियों को अपने झूठे धर्म और पाखंड से मोहित कर दिया। इस प्रकार वहां अधर्म फैल गया। तत्पश्चात भगवान श्रीहरि विष्णु की माया से देवी महालक्ष्मी भी उन त्रिपुरों में अपना अनादर देख उस स्थान को त्यागकर चली गईं।

छठवां अध्याय

त्रिपुर सहित उनके स्वामियों के वध की प्रार्थना

व्यास जी ने पूछा—हे सनत्कुमार जी! जब उन त्रिपुर स्वामियों की बुद्धि उनकी प्रजा सहित मोहित हो गई तब क्या हुआ? कौन-सी घटना घटी? प्रभो! कृपा कर इस विषय में मेरे ज्ञान को बढ़ाइए। तब व्यास जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षि! जब उन तीनों पुरों का मुख पूर्व दिशा की ओर हो गया और तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक दैत्यों ने भगवान शिव का पूजन और अर्चन छोड़ दिया, तब उनके राज्य में चारों ओर दुराचार फैल गया। उस समय भगवान विष्णु और ब्रह्माजी सभी देवताओं के साथ भगवान शिव की स्तुति करने कैलाश पर्वत पर गए। वहां पहुंचकर उन्होंने शिवजी को साष्टांग प्रणाम किया।

तत्पश्चात देवता बोले—हे देवाधिदेव! हे करुणानिधान! आप सभी जीवों के आत्मस्वरूप, कल्याण करने वाले और अपने भक्तों की पीड़ा हरने वाले हैं। गले में नीला चिन्ह होने के कारण आप नीलकंठ कहलाते हैं। हम हाथ जोड़कर आपको प्रणाम करते हैं। आप सब प्राणियों एवं देवताओं के लिए वंदनीय हैं तथा सबकी बाधाओं और विपत्तियों को दूर करते हैं। भगवन्! आप ही रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण के आश्रय से ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अवतार धरकर जगत की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आप ही अपने भक्तों को इस भवसागर से पार कराने वाले हैं। वेद आपके परब्रह्म स्वरूप और तत्वरूप का वर्णन करते हैं। आप सर्वव्यापी, सर्वात्मा और इन तीनों लोकों के अधिपति हैं। आप सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और दीप्तिमान हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप ही इस प्रकृति के प्रवर्तक हैं तथा सब प्राणियों के शरीर में रहते हैं। ऐसे परमेश्वर को हम प्रणाम करते हैं। हे शिव शंभो। तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक त्रिपुर स्वामियों ने हम देवताओं को अनेकों प्रकार से परेशान कर प्रताड़ित किया है। वे देवताओं का विनाश करने के लिए उन्मुख हैं।

हे प्रभो! हम आपकी शरण में आए हैं। भगवन्! उन असुरों का विनाश करके हमारी रक्षा कीजिए। इस समय तीनों असुरों ने धर्म मार्ग को छोड़ दिया है और नास्तिक शास्त्र का पालन कर रहे हैं। आपकी इच्छा के अनुरूप तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली तीनों धर्म-कर्म से विमुख हो गए हैं। अतः अब आप उनका वध कर देवताओं को मुक्ति दिलाइए। इस प्रकार कहकर सभी देवता चुप हो मस्तक झुकाकर खड़े हो गए। तब भगवान शिव बोले—हे देवताओ! तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली तीनों ही यद्यपि धर्म से विमुख होकर धन, वैभव और ऐश्वर्य रूप में डूबकर सबकुछ भूल गए हैं, परंतु फिर भी वे मेरे असीम भक्त रहे हैं। जब भगवान विष्णु ने उन त्रिपुर स्वामियों को वहां की प्रजा के साथ मोहित कर धर्म-कर्म से विमुख कर ही दिया है तो वे स्वयं ही उनका वध क्यों नहीं कर देते?

शिवजी के ये वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे परमेश्वर! आप भक्तवत्सल हैं। पाप आपसे

कोसों दूर भागता है। प्रभु! आपकी आज्ञा के बिना इस जगत में पत्ता तक नहीं हिलता। भगवन्! आपकी इच्छा के अनुरूप ही विष्णुजी ने उन सबको मोहित कर पथभ्रष्ट किया है। अब आप उन त्रिपुर स्वामियों का वध करके इस जगत का उद्धार कीजिए। प्रभु! आप तो इस जगत का आधार हैं। हम सब आपके सेवक हैं और आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य को पूरा करते हैं। आप सम्राट और हम आपकी प्रजा हैं। ब्रह्माजी के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव प्रसन्न होकर बोले—हे ब्रह्मन्! आप मुझे देवताओं का सम्राट कह रहे हैं। पर आप ऐसा कैसे कह सकते हैं, जबकि आप जानते हैं कि मेरे पास न तो कोई दिव्य रथ है और न ही कोई सारथी है। फिर भला मैं कैसे उन सर्व सुविधा संपन्न त्रिपुर स्वामियों को युद्ध में परास्त कर पाऊंगा? मेरे पास तो धनुष भी नहीं है जिससे मैं उन दैत्यों का वध कर सकूं।

भगवान शिव के यह कहते ही सब देवता प्रसन्न हो गए। उन्होंने कहा कि प्रभु! यदि आप उनका वध करने के लिए तैयार हैं तो हम सभी आपके लिए रथ तथा अन्य शस्त्र सामग्री का प्रबंध कर देंगे।

सातवां अध्याय

देवताओं द्वारा शिव-स्तवन

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! जैसे ही शरणागत भक्तवत्सल भगवान शिव ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली का वध करने का मन बनाया, उसी समय देवी पार्वती अपने पुत्र को गोद में लेकर वहां आईं। तब जगज्जननी मां जगदंबा को आता देखकर ब्रह्मा, विष्णु सहित अन्य देवताओं ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। अपने पुत्रों को देख भगवान शिव उन्हें प्यार करने लगे। तब देवी पार्वती भगवान शिव को अपने साथ लेकर अपने भवन के भीतर चली गईं। भगवान शिव के इस प्रकार बिना कुछ कहे अपने भवन में चले जाने के कारण सब देवता बहुत दुखी हो गए परंतु उन्होंने वहीं खड़े रहकर भगवान शिव की प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया। उस समय वे दैत्यों के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। वे सब देवता वहीं शिवजी के भवन के द्वार पर खड़े थे। तभी भगवान शिव के गण ने अपने स्वामी के द्वार के सामने भीड़ जमा देखकर उन पर आक्रमण कर दिया। देवता इस अनजान खतरे से संभल न सके और अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर दौड़ने लगे। कई साधु और ऋषिगण गिर पड़े। चारों ओर हाहाकार मच गया। तब भयभीत होकर सब देवता भगवान श्रीहरि विष्णु की शरण में गए। देवताओं को समझाते हुए श्रीहरि विष्णु ने कहा, देवताओ तथा मुनिगणो! आप लोग क्यों इतना दुखी हो रहे हैं? महान पुरुषों की आराधना करने में दुख तो आते ही हैं। इन कष्टों को झेलकर ही भक्त की दृढ़ता बढ़ती है और तब वह अपने आराध्य देवों को प्रसन्न कर पाता है। भगवान शिव तो समस्त गणों के अध्यक्ष तथा परमेश्वर हैं। आप सब मिलकर भगवान आशुतोष की प्रसन्नता के लिए 'ॐ नमः शिवाय। शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ' मंत्र का एक करोड़ बार जाप करो। वे इससे अवश्य ही प्रसन्न होंगे और हमारा कार्य पूरा करेंगे।

भगवान श्रीहरि विष्णु के इन वचनों को सुनकर सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए और सहर्ष भगवान शिव की आराधना करने लगे। अपने कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने एक करोड़ बार विष्णुजी द्वारा बताए गए मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया। जैसे ही उनकी यह आराधना संपन्न हुई, भगवान शिव उनके सामने प्रकट हो गए।

भगवान शिव बोले—मैं आपकी इस उत्तम आराधना से बहुत प्रसन्न हूं। आप अपना इच्छित वर मांगें। प्रभु के ये वचन सुनकर देवता बोले—हे देवाधिदेव! हे जगदीश्वर! आप सबके कल्याणकर्ता हैं। भगवन्, हम पर कृपा कर हमारी रक्षा कीजिए। आप त्रिपुर स्वामियों का वध करके हमें भय से मुक्ति दिलाएं। तब भगवान शिव देवताओं की प्रार्थना सुनकर पुनः बोले—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवगण तथा मुनियो! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा। मैं अवश्य ही आपकी आराधना सफल करूंगा। हे विष्णो! आप इस जगत के पालनकर्ता हैं। इसलिए त्रिपुर विनाश के लिए आप मेरी सहायता करें। मेरे लिए दिव्य रथ, सारथी और धनुष

सहित आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करें।

सनत्कुमार जी बोले—मुने! भगवान शिव की इच्छा जानकर सब देवता बहुत प्रसन्न हुए तथा शिवजी की आज्ञानुसार समस्त युद्ध सामग्री की व्यवस्था करने लगे। मुने! देवताओं द्वारा शिवजी को प्रसन्न करने के लिए एक करोड़ बार जपा गया यह मंत्र महान पुण्यदायी है। यह शिवजी को तुरंत प्रसन्न करने वाला तथा भक्ति-मुक्ति के मार्ग पर ले जाने वाला है। यह मंत्र शिवभक्तों की सभी कामनाओं और इच्छाओं को पूरा करता है। इस मंत्र से धन, यश की प्राप्ति होती है और आयु में वृद्धि होती है। यह निष्काम मनुष्यों के लिए मोक्ष प्राप्ति का साधन है। जो मनुष्य भक्तिभाव और शुद्ध हृदय से इस मंत्र को जपता है, उसकी सभी अभिलाषाएं भक्तवत्सल कल्याणकारी भगवान शिव अवश्य ही पूरी करते हैं।

आठवां अध्याय

दिव्य रथ का निर्माण

व्यास जी ने सनत्कुमार जी से पूछा—हे स्ननत्कुमार जी! आप अत्यंत बुद्धिमान और सर्वज्ञ हैं। आपने मुझे अद्भुत शिव कथा सुनाने की कृपा की है। मुनि! जब भगवान शिव ने देवताओं के अभीष्ट कार्यों को पूरा करने के लिए त्रिपुर स्वामियों का वध करने हेतु विष्णुजी से दिव्य रथ का निर्माण करने के लिए कहा तब विष्णुजी ने क्या किया? दिव्य रथ का निर्माण किसने और कैसे किया?

सूत जी बोले—हे मुने! व्यास जी की यह बात सुनकर सनत्कुमार जी ने भगवान शिव के चरणों का ध्यान करके कहा—भगवान शिव के लिए दिव्य रथ के निर्माण करने के लिए देवताओं ने अपने शिल्पी विश्वकर्मा को बुलाकर उन्हें कार्य सौंपा। तब भगवान शिव के अनुरूप ही विश्वकर्मा ने उनके लिए रथ का निर्माण किया। उस रथ के समान कोई दूसरा रथ नहीं था। वह दिव्य रथ सोने का बना हुआ था। उस रथ के दाएं पहिए में सूर्य और बाएं पहिए में चंद्रमा लगे हुए थे। सूर्य के पहिए में बारह अर्रे लगे हुए थे जो कि बारह महीनों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। चंद्रमा के पहिए में लगे सोलह अर्रे चंद्रमा की सोलह कलाओं का प्रदर्शन कर रहे थे। ब्रह्मांड में विद्यमान अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र उस रथ के पीछे के भाग की शोभा बढ़ा रहे थे। छहों ऋतु सूर्य और चंद्रमा के बने पहियों की धुरी बनीं। अंतरिक्ष रथ के आगे का भाग और मंदराचल पर्वत उस रथ में बैठने का स्थान बना तथा संवत्सर रथ का वेग बनकर उसे गति प्रदान करने लगा। इंद्रियां उस दिव्य रथ को चारों ओर से सुसज्जित किए थीं तथा श्रद्धा रथ की चाल बनी। वेदों के अंग रथ के भूषण तथा पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र आदि रथ की शोभा बढ़ाने लगे। महान तीर्थ पुष्कर दिव्य रथ की ध्वज पताका बनकर फहराने लगा। विशाल समुद्रों ने रथ के बाहरी भाग का निर्माण किया। गंगा-यमुना आदि पवित्र नदियां स्त्री रूप धारण कर रथ में चंवर डुलाने लगीं।

स्वयं ब्रह्माजी उस दिव्य रथ में सारथी बनकर भगवान शिव की सेवा में उपस्थित हुए तथा ॐकार उनके रथ का चाबुक बना। अकार विशाल छत्र बनकर रथ को शोभित करने लगे। भगवान शिव के धनुष का निर्माण करने हेतु शैलराज हिमालय स्वयं धनुष बने तो नागराज उस धनुष के लिए प्रत्यंचा बने। देवी सरस्वती धनुष की घंटा और भगवान श्रीहरि बाण बने और अग्निदेव ने बाण की नोक में अपनी शक्ति डाली। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद उस दिव्य रथ में घोड़े बनकर जुत गए। वायुदेव बाजा बजाने लगे। उस दिव्य रथ में इस ब्रह्मांड की हर वस्तु उपयोगिता बढ़ा रही थी। इस प्रकार देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने उस उत्तम दिव्य रथ का निर्माण किया।

नवां अध्याय

भगवान शिव की यात्रा

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षि! भगवान शिव के लिए बनाया गया वह दिव्य रथ अनेकानेक आश्चर्यों से युक्त था। विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया वह रथ ब्रह्माजी ने भगवान शिव को समर्पित कर दिया। तत्पश्चात श्रीहरि विष्णु, ब्रह्माजी और सभी देवता एवं ऋषि-मुनि कल्याणकारी भगवान शिव की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने भगवान शिव को दिव्य रथ पर आरूढ़ किया। स्वयं ब्रह्माजी उस रथ के सारथी बने। भगवान शिव के रथ पर आरूढ़ होते ही चारों दिशाओं में मंगल गान होने लगे, पुष्प वर्षा होने लगी। ब्रह्माजी ने सर्वेश्वर शिव की आज्ञा लेकर रथ को आगे बढ़ाया। वह उत्तम दिव्य रथ भगवान शिव को लेकर विद्युत की गति से आकाश में उड़ने लगा।

जब भगवान शिव का वह दिव्य रथ तेजी से आकाश मार्ग से होता हुआ उन त्रिपुरों की ओर जा रहा था तो बीच मार्ग में ही कल्याणकारी देवाधिदेव भगवान शिव ब्रह्माजी से बोले—हे विधाता! तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक परम बलशाली राक्षसों का वध करने के लिए मुझे उनके समान ही शक्ति चाहिए। वे तीनों असुर पहले मेरे परम भक्त थे परंतु श्रीहरि की माया से मोहित होकर उन्होंने भक्ति मार्ग को त्याग दिया है। अब उन त्रिपुर स्वामियों में तामसिक प्रवृत्ति बढ़ गई है, पशुत्व बढ़ गया है। अतः उन तीनों दैत्यों का संहार करने के लिए मुझे भी पशुओं की सी शक्ति की आवश्यकता होगी। अतः आप सब देवता पशुत्व की वृद्धि करने हेतु पशुओं का आधिपत्य मुझे प्रदान करें। तभी उन असुरों का वध हो पाएगा।

भगवान शिव के इस प्रकार के वचन सुनकर सभी देवता चिंतित हो गए और सोच में डूब गए। पशुत्व की बात सुनकर उनका मन अप्रसन्न हो गया। देवताओं को सोच में देखकर भक्तवत्सल भगवान शिव को स्थिति समझते देर न लगी। वे देवताओं की चिंता तुरंत समझ गए।

देवताओं से भगवान शिव ने कहा—देवताओ! इस प्रकार दुखी मत हो। मैं तुम्हारे दुख का कारण समझ गया हूं। तुम लोग यह कदापि मत सोचो कि पशुत्व से तुम्हारा पतन हो जाएगा। मैं तुम्हें पशुत्व से मुक्ति का मार्ग बताता हूं। हे देवताओ! जो भी पवित्र मन और स्वच्छ निर्मल हृदय एवं उत्तम भक्ति भावना से दिव्य पाशुपत-व्रत को पूरा करेंगे, वे सदा-सदा के लिए पशुत्व से मुक्त हो जाएंगे। तुम्हारे अतिरिक्त जो मनुष्य भी पाशुपत-व्रत का पालन करेंगे, उन्हें भी पशुत्व से मुक्ति मिल जाएगी। हे देवताओ! नित्य ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए बारह, छः अथवा तीन वर्षों तक पाशुपत-व्रत का पालन करने से सभी मनुष्यों एवं देवताओं को पशुत्व से हमेशा के लिए मुक्ति मिल जाएगी तथा मोक्ष की प्राप्ति होगी। उसका कल्याण होगा, क्योंकि पाशुपत-व्रत परम कल्याणकारी है।

भगवान शिव के इन वचनों को सुनकर ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु एवं सभी देवी-देवता बहुत प्रसन्न हुए और देवाधिदेव भक्तवत्सल भगवान शिव की जय-जयकार करने लगे। तब सब देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए पशु बन गए। तभी से सदाशिव 'पशुपति' नाम से जगत में विख्यात हुए। उनका पशुपति नाम अत्यंत कल्याणकारी एवं अभीष्ट की सिद्धि देने वाला है। उस समय भगवान शिव के स्वरूप को देखकर सभी देवता एवं ऋषिगण बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात भगवान शिव ने अन्य देवताओं के साथ त्रिपुरों की ओर प्रस्थान किया। उस समय सारे देवता अपने हाथों में हल, मूसल, भुशुंडि और अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करके हाथी, घोड़े, सिंह, रथ और बैलों पर सवार होकर चल दिए। भगवान शिव की जय-जयकार करते हुए वे आगे बढ़ते जा रहे थे। आकाश से उन पर फूलों की वर्षा हो रही थी। कल्याणकारी भगवान शिव के साथ उनके केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेक्षणक, सूर्याक्ष, सूरिनामा, सुर, सुंदर, प्रस्कंद, कुंदर, चंड, कंपन, अतिकंपन, इंद्र, इंद्रजय, यंता, हिमकर, शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, सतीजहु, शतास्य, रंक, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अंहकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र, अर्द्धवक्त्र आदि महावीर बलशाली गणाध्यक्ष उनको घेरकर चल रहे थे।

इस प्रकार देवाधिदेव भगवान शिवशंकर के साथ ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु, देवराज इंद्र सहित अनेकों देवता, ऋषि-मुनि, साधु-संत भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर त्रिपुरों के स्वामियों व त्रिपुरों का संहार देखने हेतु उनके साथ-साथ चल दिए।

दसवां अध्याय

त्रिपुरासुर-वध

सनत्कुमार जी बोले—जब युद्ध की सामग्रियों को साथ में लेकर भगवान सदाशिव अपने दिव्य रथ में बैठकर आकाश मार्ग से उन त्रिपुरों के निकट पहुंच गए तब उन्होंने उन त्रिपुरों का उनके स्वामियों के साथ विनाश करने के लिए रथ के शीर्ष स्थान पर चढ़कर अपने परम दिव्य धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई परंतु उनका बाण धनुष से नहीं निकला और वे उसी प्रकार उस स्थान पर स्थित हो गए। वे इसी प्रकार अनेक वर्षों तक वहीं खड़े रहे क्योंकि गणेशजी उनके अंगूठे के अग्रभाग में खड़े होकर उनके कार्य में विघ्न डाल रहे थे। इसलिए ही तीनों पुरों का नाश नहीं हो पा रहा था।

इस प्रकार जब भगवान शिव का बाण बहुत समय तक नहीं चला और वे एक ही स्थान पर स्थिर हो गए तो सभी देवता चिंतित हो गए कि ऐसा क्यों हो रहा है? तभी वहां आकाशवाणी हुई—हे ऐश्वर्यशाली! देवाधिदेव! सर्वेश्वर कल्याणकारी शिव-शंकर जब तक आप गणेश जी का पूजन नहीं करेंगे, तब तक त्रिपुरों का संहार नहीं कर पाएंगे। आकाशवाणी के वचनों को सुनकर सभी को बड़ा संतोष हुआ। तब अपने कार्यों को यथाशीघ्र पूरा करने के लिए भगवान शिव ने भद्रकाली को बुलाया। विधि-विधान से सबने मिलकर अग्रपूज्य भगवान गणेश का पूजन संपन्न किया।

पूजन संपन्न होते ही विघ्न विनाशक गणपति प्रसन्न होकर उनके मार्ग से हट गए और उन्होंने कार्य में आने वाले सभी विघ्नों को दूर कर दिया। उनके हटते ही भगवान शिव को तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली के तीनों नगर सामने नजर आने लगे। तीनों पुर कालवश शीघ्र ही एकता को प्राप्त हुए अर्थात मिल गए। ब्रह्माजी द्वारा प्रदान किए गए वरदान के अनुसार उनके अंत का यही समय था, जब त्रिपुर आपस में मिल जाएं। त्रिपुरों को मिला देख सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए। वे प्रसन्न होकर भगवान शिव की जय-जयकार के नारे लगाने लगे। तब ब्रह्मा और विष्णुजी ने महेश्वर से कहा कि हे देवाधिदेव! तारकासुर के इन तीनों दैत्य पुत्रों के वध का समय आ गया है। तभी ये तीनों पुर मिलकर परस्पर एक हो गए हैं। इससे पहले कि ये तीनों पुर फिर से अलग हो जाएं, आप इन्हें भस्म कर दीजिए और हमारे कार्य को पूर्ण कीजिए।

तब भगवान शिव ने ब्रह्माजी और श्रीहरि की प्रार्थना स्वीकार करके अपने दिव्य धनुष पर पाशुपतास्त्र नामक बाण चढ़ाया। उस समय अभिजित मुहूर्त था। विशाल धनुष की टंकार से पूरा ब्रह्मांड गूंज उठा। तब भगवान शिव ने तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली को ललकारकर उन पर करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान पाशुपतास्त्र छोड़ दिया। उस बाण की नोक पर स्वयं अग्निदेव विराजमान थे। उन विष्णुमय अग्नि बाणों ने त्रिपुरवासियों को दग्ध कर दिया, जिससे देखते ही देखते वे तीनों पुर एक साथ ही समुद्रों से घिरी भूमि पर गिर पड़े।

सैकड़ों असुर उस अग्निबाण से जलकर भस्म हो गए। चारों ओर हाहाकार मच गया। जब तारकाक्ष अपने भाइयों सहित जलने लगा तब उसे यह एहसास हुआ कि यह सब भगवान शिव की भक्ति से विमुख होने का परिणाम है। तब उसने मन ही मन अपने आराध्य भगवान शिव का स्मरण किया और रोने लगा।

तारकाक्ष बोला—हे भक्तवत्सल! कृपानिधान! करुणानिधान भगवान शिव! यह तो हम जानते ही हैं कि आप हमें भस्म किए बिना नहीं छोड़ेंगे। फिर भी प्रभु हम आपकी कृपा चाहते हैं। अतः आप हम पर प्रसन्न होइए। भगवन्! जो मृत्यु असुरों के लिए दुर्लभ है, वह हमें आपकी कृपा से प्राप्त हुई है। प्रभु! बस अब हमारी आपसे सिर्फ एक ही प्रार्थना है कि हमारी बुद्धि जन्म-जन्मांतर तक आप में ही लगी रहे। यह कहकर वे सभी दानव उस भीषण अग्नि में जलकर भस्म हो गए। भगवान शिव की आज्ञा से उन पुरों के बालक, वृद्ध, स्त्रियां-पुरुष, पेड़-पौधे आदि सभी जीव-जंतु भी अग्नि की भेंट चढ़ गए। उस भीषण अग्नि ने स्थावर-जंगम आदि सभी को पल भर में ही राख के ढेर में बदल दिया।

पाशुपतास्त्र से प्रज्वलित अग्नि में सभी जलकर भस्म हो गए परंतु भगवान शिव का भक्त मय नामक दैत्य, जो असुरों का विश्वकर्मा था और जो देवों का विरोधी भी नहीं था, भगवान शिव के तेज से सुरक्षित बच गया। इस प्रकार जिन दैत्यों या प्राणियों का किसी भी स्थिति में मन धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होता है, उनका पतन किसी भी स्थिति में, किसी के द्वारा नहीं होता है। इसलिए सज्जन पुरुषों को सदैव अच्छे कर्म ही करने चाहिए। दूसरों की निंदा करने वालों का सदा ही विनाश होता है। अतः हम सभी को परनिंदा से बचना चाहिए और अपने बंधु-बांधवों के साथ इस जगत के स्वामी भगवान शिव की आराधना में तन्मय होकर लगे रहना चाहिए।

ग्यारहवां अध्याय

भगवान शिव द्वारा देवताओं को वरदान

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार जी! आप परम शिवभक्त हैं और ब्रह्माजी के पुत्र हैं। आप मुझे अब यह बताइए कि जब त्रिपुर नष्ट हो गए तब देवताओं ने क्या किया? मय कहां चला गया? भगवन्! इन बातों के बारे में सविस्तार मुझे बताइए।

व्यास जी का प्रश्न सुनकर सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! जब भगवान शिव ने त्रिपुरों को उनके स्वामियों के साथ जलाकर भस्म कर दिया तब सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्हें अपने संकट और भय से मुक्ति मिल गई थी। परंतु जब सब देवताओं ने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की ओर देखा तो अत्यंत भयभीत हो गए। उस समय भगवान शिव ने रौद्र रूप धारण कर रखा था। वे करोड़ों सूर्यों के तेज के समान प्रकाशित हो रहे थे। उनके दिव्य तेज से सारी दिशाएं आलोकित हो रही थीं। भगवान के इस रौद्र और प्रलयंकारी रूप को देखकर कोई भी उनसे कुछ कहने का साहस नहीं जुटा पाया। सब नत-मस्तक खड़े हो गए। यहां तक कि श्रीहरि और ब्रह्माजी भी शिवजी के इस रूप को देखकर आतंकित हो गए थे। कोई भी भगवान शिव के सम्मुख मुंह नहीं खोल पाया।

देव सेना को इस प्रकार भयग्रस्त देखकर ऋषियों ने हाथ जोड़कर भगवान शिव को प्रणाम किया। ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु, देवराज इंद्र सहित सभी देवता और ऋषि-मुनि भक्तवत्सल कल्याणकारी भगवान शिव की स्तुति करने लगे। इस प्रकार सबको अपनी स्तुति में मग्न देखकर भगवान शिव का क्रोध शांत हो गया और वे पहले की भांति अपने सरल, सौम्य रूप में आ गए और बोले—हे ब्रह्माजी! हे विष्णो और सभी देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुति से बहुत प्रसन्न हूं। तुम अपनी इच्छानुसार वर मांगो। मैं तुम्हारी इच्छाओं को अवश्य ही पूरा करूंगा।

भगवान शिव के इन वचनों को सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और बोले—हे देवाधिदेव करुणानिधान भगवान शिव! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं और हमें कोई वर प्रदान करना चाहते हैं तो प्रभु हमें यह वर दीजिए कि जब-जब हम पर कोई भी संकट आएगा आप हमारी सहायता करेंगे।

जब ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णुजी और देवताओं ने भगवान शिव से यह प्रार्थना की तब शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—तथास्तु अर्थात ऐसा ही होगा। ऐसा कहकर भगवान शिव ने देवताओं के अभीष्ट फल को उन्हें प्रदान कर दिया।

बारहवां अध्याय

वर पाकर मय दानव का वितल लोक जाना

व्यास जी ने पूछा—हे महाबुद्धिमान सनत्कुमार जी! जब ब्रह्मा, श्रीहरि विष्णु एवं सभी देवताओं ने भगवान शिव की स्तुति की तब वे प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओं को विपत्ति के समय उनकी सहायता करने का वचन दिया। उसी समय भगवान शिव को प्रसन्न देखकर मय नामक दानव, जो कि त्रिपुर की अग्नि में भस्म होने से बच गया था, उनके सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तत्पश्चात मय ने निर्मल, स्वच्छ हृदय से करुणानिधान भगवान शिव की स्तुति करनी आरंभ कर दी। उसने भगवान शिव के चरण पकड़ लिए।

मय ने भगवान शिव से कहा—हे करुणानिधान! भक्तवत्सल भगवान शिव! मैं आपकी शरण में आया हूं। अतएव आप मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार मय ने प्रभु की बहुत स्तुति की। उसकी ऐसी भक्तिमयी स्तुति को देखकर भगवान शिव प्रसन्न हो गए और बोले—हे दानवश्रेष्ठ मय! तुम अपनी परेशानियां भूल जाओ और अपने कष्टों का त्याग कर दो। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम्हारी जो इच्छा हो मांग लो। मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करूंगा।

भगवान शिव के ये वचन सुनकर मय दानव की सभी चिंताएं दूर हो गईं और उसके चेहरे पर जो भय था, वह भी दूर हो गया। तब वह बोला—हे देवाधिदेव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे कुछ वरदान देना चाहते हैं तो मुझे अपनी शाश्वत भक्ति प्रदान कीजिए। मैं आपके मित्रों से सदैव मित्रता रखूं और आपके शत्रु मेरे भी शत्रु हों। मैं सभी प्राणियों से प्रेम और दया से मिलूं। मुझमें सदैव विनम्रता विद्यमान रहे। मुझमें कभी भी आसुरी प्रवृत्ति का उदय न हो। मैं सदैव आपके चरणों का ध्यान करता रहूं, कोई भी मुझे मेरे भक्ति मार्ग से हटा न सके।

मय दानव की इस प्रकार की प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल भगवान शिव प्रसन्न होकर बोले—मय! तुम मेरे भक्त हो, इसलिए तुममें कभी कोई विकार नहीं आएगा। तुमने जो कुछ मांगा है वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। तुम सदैव मेरे अनन्य भक्त बने रहोगे तथा मेरी विशेष कृपा तुम पर रहेगी। अब मैं तुम्हें वितल लोक जाने की आज्ञा प्रदान करता हूं। तुम वहीं पर निर्भय होकर मेरी भक्ति में मगन रहो।

भगवान शिव की आज्ञा मानकर मय दानव वहां से सब देवताओं व अपने आराध्य भगवान शिव को प्रणाम कर वितल लोक चला गया। तत्पश्चात देवाधिदेव भगवान शिव भी देवी पार्वती सहित वहां से अंतर्धान हो गए। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के वहां से अंतर्धान होते ही उनके अभीष्ट कार्यों को पूरा करने के लिए उपलब्ध कराए गए साधन—जैसे उनके धनुष, बाण, रथ आदि भी वहां से अदृश्य हो गए। तब वहां उपस्थित ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु, देवराज इंद्र व अन्य सभी देवता व ऋषि-मुनि भी हर्षपूर्वक अपने आराध्य भगवान शिव का गुणगान करते अपने-अपने लोकों को चले गए।

भगवान शिव के इस रुद्ररूप का स्मरण करने से शत्रुओं का विनाश होता है। महर्षे! जीव के सबसे भारी शत्रु और कोई नहीं, उसके मनोविकार ही तो हैं। इनके वशीभूत होकर जीव अपने लक्ष्य से भटककर नष्ट हो जाता है। ऐसा करके वह अपने इहलोक के साथ-साथ परलोक को भी बिगाड़ता है। भगवान शिव आशुतोष हैं। उनकी लीलाओं को सुनने से समस्त पापों का नाश होता है और सभी अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

महर्षे! इस प्रकार मैंने तुम्हें तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों महा असुरों का संहार करने वाली भगवान शशिमौली शिव शंकर जी की लीलामय कथा सुनाई है।

तेरहवां अध्याय

इंद्र को जीवनदान व बृहस्पति को 'जीव' नाम देना

व्यासजी बोले—हे ब्राह्मण! आपने मुझ पर कृपा करके मुझे भगवान शिव के अनेक चरित्रों को बताया है। अब मैं आपसे एक और कथा जानना चाहता हूं। मैंने पूर्व में सुना था कि भगवान शिव ने जलंधर का वध किया था। कृपा कर मुझे इस कथा के बारे में भी बताएं।

सूत जी बोले कि जब व्यास जी ने महामुनि से इस प्रकार पूछा तो सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! एक बार की बात है कि देवगुरु बृहस्पति और देवराज इंद्र भगवान शिव के दर्शन करने के लिए कैलाश पर्वत पर गए। तब भगवान शिव ने अपने भक्तों की परीक्षा लेने के विषय में सोचा। उन्होंने मार्ग में उन्हें रोक लिया। कैलाश पर्वत के रास्ते में ही वे अपना रूप बदलकर तपस्वी का वेश धारण करके बैठ गए। जैसे ही देवराज इंद्र वहां से निकले, उन्होंने तपस्वी से पूछा कि भगवान शिव अपने स्थान पर ही हैं या कहीं और गए हैं? यह पूछकर उन्होंने तपस्वी से उनके नाम आदि के विषय में भी जानना चाहा परंतु तपस्वी रूप में शिवजी चुप रहे और कुछ न बोले।

उन तपस्वी को इस प्रकार अपने प्रश्न के उत्तर में चुप देखकर देवराज इंद्र बहुत क्रोधित हुए। वे बोले—अरे, मैं तुमसे पूछ रहा हूं और तू है कि उत्तर ही नहीं दे रहा है। जब तपस्वी ने पलटकर पुनः उत्तर नहीं दिया तब इंद्र ने हाथ में बज्र लेकर तपस्वी रूप धारण किए भगवान शिव पर आक्रमण कर दिया परंतु शिवजी ने तुरंत पलटवार करते हुए इंद्र के हाथ को पीछे धकेल दिया। तब क्रोध के कारण शिवजी का रूप प्रज्वलित हो उठा और उस तेज को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि यह तेज सबकुछ जलाकर भस्म कर देगा। इंद्र की भुजा को झटकने से इंद्र का क्रोध भी बढ़ गया परंतु गुरु बृहस्पति उस तेज से भगवान शिव को पहचान गए।

देवगुरु बृहस्पति ने तुरंत हाथ जोड़कर देवाधिदेव भगवान शिव को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। बृहस्पति जी ने देवराज इंद्र को भी शिव चरणों में झुका दिया और क्षमा याचना करने लगे। वे बोले कि हे प्रभु! अज्ञानतावश हम आपको पहचान नहीं पाए। भूलवश आपकी अवहेलना करने का अपराध देवराज इंद्र से हो गया है। हे भगवन्! आप तो करुणानिधान हैं। भक्तवत्सल होने के कारण आप सदा अपने भक्तों के ही वश में रहते हैं। प्रभु! कृपा करके इंद्रदेव को क्षमा कर दीजिए।

बृहस्पति जी के ऐसे वचन सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव बोले कि मैं अपने नेत्रों की ज्वाला नहीं रोक सकता। तब बृहस्पति जी बोले कि प्रभु आप इंद्र देव पर दया कीजिए और अपने क्रोध की अग्नि को कहीं और स्थापित कर देवराज का अपराध क्षमा कीजिए। तब भगवान शिव बोले—हे बृहस्पति! मैं तुम्हारे चातुर्य से प्रसन्न हूं। आज तुमने इंद्र को जीवनदान दिलाया है इसलिए तुम्हें 'जीव' नाम से प्रसिद्धि मिलेगी। यह कहकर उन्होंने अपने क्रोध की

ज्वाला को समुद्र में फेंक दिया। तब इंद्र देव और देवगुरु बृहस्पति ने भगवान शिव को धन्यवाद दिया और उन्हें प्रणाम करके स्वर्ग लोक चले गए।

चौदहवां अध्याय

जलंधर की उत्पत्ति

व्यासजी बोले—सनत्कुमार जी! जब भगवान शिव ने अपने क्रोध की ज्वाला समुद्र में प्रवाहित कर दी, तब क्या हुआ?

सनत्कुमार जी बोले—हे मुने! जब भगवान शिव ने अपना क्रोध समुद्र में डाल दिया तो क्रोध की वह ज्वाला बालक का रूप लेकर जोर-जोर से रोने लगी। उस बालक के रोने की आवाज से सारा संसार भयभीत हो गया। पूरा संसार उसकी आवाज से व्याकुल था। तब सभी चिंतित होकर ब्रह्माजी की शरण में गए। तब सब देवताओं ने सादर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात बोले—हे ब्रह्माजी! इस समय हम सभी पर बड़ा भारी संकट आन पड़ा है। प्रभु! आप तो सबकुछ जानते ही हैं। उस बालक ने, जो समुद्र से उत्पन्न हुआ है, अपने भयंकर रुदन द्वारा पूरे संसार को आहत किया है। सभी भय से आतुर हैं। हे महायोगिन्! आप उस बालक का संहार करके हमें भयमुक्त कराएं।

देवताओं की इस प्रकार की प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी अपने लोक से पृथ्वीलोक पर उतरकर उस समुद्र पर पहुंचे जहां वह बालक विद्यमान था। ब्रह्माजी को अपने पास आता देखकर समुद्र ने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और उस बालक को ब्रह्माजी को सौंप दिया। तब ब्रह्माजी ने आश्चर्यचकित होकर समुद्र देव से प्रश्न किया कि यह बालक किसका है? ब्रह्माजी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए समुद्र देव बोले कि हे भगवन्! यह बालक गंगा सागर की उत्पत्ति स्थल पर प्रकट हुआ है परंतु मैं इस बालक के विषय में और कुछ नहीं जानता।

इस प्रकार जब ब्रह्माजी समुद्र से बातें कर रहे थे, तब उस समय उस बालक ने ब्रह्माजी के गले में हाथ डाल दिया और उनका गला जोर से दबा दिया। जिसकी पीड़ा स्वरूप उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। तब ब्रह्माजी ने यत्नपूर्वक उस बालक की पकड़ से अपने को मुक्त कराया और समुद्र से बोले कि तुम्हारे इस जातक पुत्र ने मेरे नेत्रों से जल निकाला है। अतः यह बालक 'जलंधर' नाम से प्रसिद्ध होगा। उत्पन्न होते ही युवा हो जाने के कारण यह बालक महापराक्रमी, महाधीर जवान, महायोद्धा और रण-दुर्मद होगा। यह बालक युद्ध में सदैव विजयी होगा। यहां तक कि यह भगवान श्रीहरि विष्णु को भी जीत लेगा। यह बालक दैत्यों का अधिपति होगा। कोई भी मनुष्य या देवता इसका चाहकर भी कुछ नहीं बिगाड़ पाएंगे। इसका संहार केवल त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के द्वारा ही संभव है। यह कहकर ब्रह्माजी ने असुरों के गुरु शुक्राचार्य को बुलाया और उनके हाथों से उस बालक को दैत्यों का राजा स्वीकार करते हुए उसका राज्याभिषेक कराया। तत्पश्चात ब्रह्माजी स्वयं वहां से अंतर्धान हो गए।

अपने जातक पुत्र के विषय में जानकर समुद्र देव बहुत प्रसन्न हुए और वे उसे अपने निवास स्थान पर ले गए। कुछ समय पश्चात उन्होंने जलंधर का विवाह कालनेमि नामक

असुर की परम सुंदर पुत्री वृंदा से संपन्न करा दिया। जलंधर आनंदपूर्वक अपनी पत्नी के साथ निवास करने लगा और असुरों के राज्य को बड़ी चतुराई और कर्तव्यपरायणता के साथ चलाने लगा। उसकी पत्नी वृंदा महान पतिव्रता नारी थी।

पंद्रहवां अध्याय

देव-जलंधर युद्ध

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षि! एक दिन की बात है असुरराज जलंधर अपने दरबारियों एवं मंत्रियों के साथ अपनी राजसभा में विराजमान था। तभी वहां असुरों के महान गुरु शुक्राचार्य पधारे।

वे परम कांतिमान थे और उनके तेज से सब दिशाएं प्रकाशित हो रही थीं। शुक्राचार्य को वहां आया देखकर जलंधर राजसिंहासन से उठा और आदरपूर्वक अपने गुरु को नमस्कार करने लगा। तत्पश्चात उन्हें सुयोग्य दिव्य आसन पर बिठाया। फिर उसने भी अपना आसन ग्रहण किया। अपने गुरु की यथायोग्य सेवा करने के उपरांत जलंधर ने शुक्राचार्य से प्रश्न किया कि गुरुजी! राहु का सिर किसने काटा था? इसके बारे में आप मुझे सविस्तार बताइए।

शुक्राचार्य ने अपने शिष्य सागर-पुत्र जलंधर के प्रश्न का उत्तर देना आरंभ किया। वे बोले—एक बार देवताओं और असुरों ने मिलकर सागर के गर्भ में छुपे अनमोल रत्नों को निकालने के लिए सागर मंथन करने के विषय में सोचा। इस प्रकार दोनों (असुरों व देवताओं) में यह तय हुआ कि जो कुछ भी समुद्र मंथन से प्राप्त होगा उसे देवताओं और असुरों में आधा-आधा बांट लिया जाएगा। तब दोनों ओर से देवता और असुर प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य को पूरा करने में लग गए। समुद्र मंथन में बहुत से बहुमूल्य रत्न आदि प्राप्त हुए, जिसे देवताओं और असुरों ने आपस में बांट लिया परंतु जब समुद्र मंथन द्वारा अमृत का कलश निकला तो राहु ने देवता का रूप धर कर अमृत पी लिया। यह जानते ही कि राहु ने अमृत पी लिया है, देवताओं के पक्षधर भगवान विष्णु ने राहु का सिर अपने सुदर्शन चक्र से काट दिया। यह सब उन्होंने देवराज इंद्र के बहकावे में आकर किया था। यह सुनते ही जलंधर के नेत्र क्रोध से लाल हो गए। उसने घस्मर नामक राक्षस का स्मरण किया, जो पलभर में ही वहां उपस्थित हो गया। जलंधर ने पूरा वृत्तांत घस्मर को बताते हुए इंद्र को बंदी बनाकर लाने का आदेश दे दिया। घस्मर जलंधर का वीर और पराक्रमी दूत था। वह आज्ञा पाते ही इंद्र देव को लाने के लिए वहां से चला गया।

देवराज इंद्र की सभा में पहुंचकर जलंधर के दूत ने अपने स्वामी का संदेश इंद्र को सुना दिया। वह बोला कि तुमने मेरे स्वामी जलंधर के पिता समुद्र देव का मंथन करके उनके सभी रत्नों को ले लिया है। तुम वह सभी रत्न लेकर और अपने अधीनस्थों के साथ मेरे स्वामी की शरण में चलो। घस्मर के वचन सुनकर देवराज इंद्र अत्यंत क्रोधित हो गए और बोले कि उस सागर ने मुझसे डरकर अपने अंदर सभी रत्नों को छुपा लिया था। उसने मेरे शत्रु असुरों की भी मदद की है और उनकी रक्षा की है। इसलिए मैंने समुद्र के कोष पर अपना अधिकार किया है। मैं किसी से नहीं डरता हूं। जाकर अपने स्वामी को बता दो कि हिम्मत है तो इंद्र के सामने आकर दिखाओ।

देवराज इंद्र के ऐसे वचन सुनकर जलंधर का घस्मर नामक दूत वापिस लौट गया। उसने अपने स्वामी जलंधर को इंद्र के कथन से अवगत कराया। यह सुनकर जलंधर के क्रोध की कोई सीमा न रही और उसने देवलोक पर तुरंत चढ़ाई कर दी। अपनी वीर पराक्रमी असुर सेना के साथ उसने देवराज इंद्र पर आक्रमण कर दिया। उनके युद्धों के बिगुल से पूरा इंद्रलोक गूंज उठा। चारों ओर भयानक युद्ध चल रहा था। मार-काट मची हुई थी। मृत सैनिकों को देवताओं के गुरु बृहस्पति और दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य मृत संजीवनी से पुनः जीवित कर रहे थे।

जब किसी भी प्रकार से उन्हें युद्ध में विजय नहीं मिल रही थी तो जलंधर ने अपने गुरु शुक्राचार्य से प्रश्न किया कि हे गुरुदेव! मैं रोज युद्ध में देवताओं के अनेक सैनिकों को मार गिराता हूं, फिर भी देवसेना किसी भी तरह कम नहीं हो रही है। मेरे द्वारा मारे गए सारे देवगण अगले दिन फिर से युद्ध करते हुए दिखते हैं। गुरुदेव! मृतों को जीवन देने वाली विद्या तो आपके पास है, फिर देवता कैसे जीवित हो जाते हैं? तब शुक्राचार्य ने जलंधर को बताया कि द्रोणगिरी पर्वत पर अनमोल औषधि है, जो देवताओं की रक्षा कर रही है। यदि तुम उन्हें हराना चाहते हो तो द्रोणगिरी को उखाड़ कर समुद्र में फेंक दो। अपने गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा लेकर जलंधर द्रोण पर्वत की ओर चल दिया। वहां पहुंचकर उसने अपनी महापराक्रमी भुजाओं से द्रोण पर्वत को उठाकर समुद्र में फेंक दिया और पुनः जाकर देवसेना से युद्ध करने लगा।

जलंधर ने अनेक देवताओं को अपने प्रहारों से घायल कर दिया और हजारों देवगणों को पलक झपकते ही मौत के घाट उतार दिया। जब देवगुरु बृहस्पति देवताओं के लिए औषधि लेने द्रोणगिरी पहुंचे तो पर्वत को अपने स्थान पर न देखकर बहुत आश्चर्यचकित हुए। वापस आकर उन्होंने देवराज इंद्र को इस विषय में बताया और आज्ञा दी कि यह युद्ध तुरंत रोक दिया जाए, क्योंकि अब तुम असुरराज जलंधर को नहीं जीत सकोगे। ऐसी स्थिति में प्राणों की रक्षा करना ही बुद्धिमत्ता है।

सोलहवां अध्याय

श्रीविष्णु का लक्ष्मी को जलंधर का वध न करने का वचन देना

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! इस प्रकार जब देवगुरु बृहस्पति ने देवताओं को युद्ध रोक देने के विषय में कहा तो सभी ने गुरु की आज्ञा का पालन किया और युद्ध रुक गया परंतु जलंधर का क्रोध शांत नहीं हुआ। वह इंद्र को ढूंढ़ता-ढूंढ़ता स्वर्ग लोक आ पहुंचा। जलंधर को वहां आता देखकर इंद्र व अन्य देवता अपने प्राणों की रक्षा करने हेतु वहां से भागकर भगवान श्रीहरि विष्णु की शरण में बैकुण्ठ लोक जा पहुंचे। वहां पहुंचकर उन्होंने भगवान विष्णु को प्रणाम किया और उनकी भक्ति भाव से स्तुति की। तत्पश्चात उन्होंने भगवान विष्णु से कहा—हे कृपानिधान! हम आपकी शरण में आए हैं, हमारी रक्षा कीजिए। तब देवताओं ने विष्णुजी को जलंधर के विषय में सबकुछ बता दिया।

समस्त वृत्तांत सुनकर श्रीहरि विष्णु ने देवताओं से कहा कि वे अपने भय का त्याग कर दें। उन्होंने उनकी प्राण रक्षा करने का आश्वासन दिया और कहा कि मैं जलंधर का वध कर तुम्हें उससे मुक्ति दिलाऊंगा। यह कहकर भगवान विष्णु अपने वाहन गरुड़ पर सवार होकर चलने लगे। यह देखकर देवी लक्ष्मी के नेत्रों में आंसू आ गए और वे बोलीं—हे स्वामी! जलंधर समुद्र देव का जातक पुत्र होने के कारण मेरा भाई है। आप मेरे स्वामी होकर मेरे भाई को क्यों मारना चाहते हैं? यदि मैं आपको प्रिय हूं तो आप मेरे भाई का वध नहीं करेंगे।

अपनी प्राणवल्लभा लक्ष्मी जी के वचन सुनकर विष्णुजी बोले—हे देवी! यदि तुम ऐसा चाहती हो तो ऐसा ही होगा परंतु तुम तो जानती ही हो कि पापी का नाश अवश्य होता है। तुम्हारा भाई जलंधर अधर्म के मार्ग पर चल रहा है और देवताओं को कष्ट पहुंचा रहा है। फिर भी मैं उसका वध अपने हाथों से नहीं करूंगा परंतु इस समय तो मुझे युद्ध में जाना होगा। यह कहकर भगवान विष्णु युद्धस्थल की ओर चल दिए।

भगवान विष्णु उस स्थान पर पहुंचे, जहां असुरराज जलंधर था। भगवान विष्णु को आया देखकर देवताओं में हर्ष और ऊर्जा का संचार हुआ। देवसेना अत्यंत रोमांचित हो गई। सभी देवताओं ने हाथ जोड़कर श्रीहरि को प्रणाम किया। भगवान विष्णु का मुखमंडल अद्भुत आभा से प्रकाशित हो रहा था। उनके दिव्य तेज के सामने दैत्य और दानवों का खड़े रह पाना मुश्किल हो रहा था। श्रीहरि विष्णु के वाहन गरुड़ के पंखों से निकलने वाली प्रबल वायु ने वहां पर आंधी-सी ला दी थी। इस आंधी में दैत्य इस प्रकार घूमने लगे, जिस प्रकार आसमान में बादल घूमते हैं। अपनी सेना को ऐसी विकट परिस्थिति में देखकर जलंधर अत्यंत क्रोधित हो उठा।

सत्रहवां अध्याय

श्रीविष्णु-जलंधर युद्ध

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! दैत्यों के तेज प्रहारों से व्याकुल देवता बचने के लिए जब इधर-उधर भाग रहे थे, तब भगवान विष्णु के युद्धस्थल में आने से देवताओं को थोड़ा साहस बंधा। उनके वाहन गरुड़ के पंखों के फड़फड़ाने से आए तूफान में दैत्य अपनी सुध-बुध खोकर इधर-उधर उड़ने लगे। पर जल्दी ही उन्होंने अपने को संभाल लिया। जलंधर ने जब अपनी दैत्य सेना को इस प्रकार तितर-बितर होते देखा तो क्रोधित होकर उसने भगवान श्रीहरि विष्णु पर आक्रमण कर दिया। श्रीहरि विष्णु ने अपने आपको उसके प्रहार से बचा लिया।

जब भगवान श्रीहरि ने देखा कि देव सेना पुनः आतंकित हो रही है और उनके सेनापति देवराज इंद्र भी भयग्रस्त हैं। तब विष्णुजी ने अपना शार्ङ्ग नामक धनुष उठा लिया और बड़े जोर से धनुष से टंकार की। फिर उन्होंने देखते ही देखते पल भर में हजारों दैत्यों के सिर काट दिए। यह देखकर दैत्यराज जलंधर क्रोधावेश में उन पर झपटा।

तब श्रीहरि ने उसकी ध्वजा, छत्र और बाण काट दिए तथा उसे अपनी गदा से उठाकर गरुड़ के सिर पर दे मारा। गरुड़ से टकराकर नीचे गिरते ही जलंधर के होंठ फड़कने लगे। तब दोनों ही अपने-अपने वाहनों से भीषण बाणों की वर्षा करने लगे। विष्णुजी ने जलंधर की गदा अपने बाणों से काट दी। फिर उसे बाणों से बांधना शुरू कर दिया परंतु जलंधर भी महावीर और पराक्रमी था। वह भी कहां मानने वाला था। उसने भी भीषण बाणवर्षा शुरू कर दी और विष्णुजी के धनुष को तोड़ दिया। तब उन्होंने गदा उठा ली और उससे जलंधर पर प्रहार किया परंतु उसका महादैत्य जलंधर पर कोई असर नहीं हुआ। तब उसने अग्नि के समान धधकते त्रिशूल को विष्णुजी पर छोड़ दिया। उस त्रिशूल से बचने के लिए विष्णुजी ने भगवान शिव का स्मरण करते हुए नंदक त्रिशूल चलाकर जलंधर के वार को काट दिया।

तत्पश्चात विष्णु भगवान और जलंधर दोनों धरती पर कूद पड़े और फिर उनके बीच मल्ल युद्ध होने लगा। जलंधर ने भगवान विष्णु की छाती पर बड़े जोर का मुक्का मारा। तब विष्णुजी ने भी पलटकर उस पर मुक्के का प्रहार किया। इस प्रकार दोनों में बाहुयुद्ध होने लगा। उन दोनों के बीच बहुत देर तक युद्ध चलता रहा। दोनों ही वीर और बलशाली थे। न भगवान विष्णु कम थे और न ही जलंधर। सभी देवता और दानव उनके बीच के युद्ध को आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। युद्ध समाप्त न होते देख भगवान विष्णु ने कहा—

हे दैत्यराज जलंधर! तुम निश्चय ही महावीर हो। तुम्हारा पराक्रम प्रशंसनीय है। तुम इतने भयानक आयुधों से भी भयभीत नहीं हुए और निरंतर युद्ध कर रहे हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम जो चाहे वरदान मांग सकते हो। मैं निश्चय ही तुम्हारी मनोकामना पूरी करूंगा।

भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर जलंधर बहुत हर्षित हुआ और बोला—हे विष्णो! आप

मेरी बहन लक्ष्मी के पति हैं। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपनी पत्नी और कुटुंब के लोगों के साथ पधारकर मेरे घर को पवित्र कीजिए। तब भगवान श्रीहरि ने 'तथास्तु' कहकर उसे उसका इच्छित वर प्रदान किया।

अपने दिए गए वर के अनुसार श्रीहरि विष्णु देवी लक्ष्मी व अन्य देवताओं को अपने साथ लेकर जलंधर का आतिथ्य ग्रहण करने के लिए उसके घर पहुंचे। जलंधर उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सब देवताओं का बहुत आदर-सत्कार किया और उनकी वहीं पर स्थापना कर दी। विष्णु परिवार के स्थापित हो जाने के बाद जलंधर निर्भय होकर श्रीविष्णु के अनुग्रह से त्रिभुवन पर शासन करने लगा। उसके राज्य में सभी सुखी थे और धर्म-कर्म का पालन करते थे।

अठारहवां अध्याय

नारद जी का कपट जाल

सनत्कुमार जी बोले—हे मुनिश्वर! जब जलंधर इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य कर रहा था तो देवता बड़े दुखी थे। उन्होंने अपने मन में देवाधिदेव भगवान शिव का स्मरण करना शुरू कर दिया और उनकी स्तुति करने लगे। एक दिन नारद जी भगवान शिव की प्रेरणा से इंद्रलोक पहुंचे। नारद जी को वहां आया देखकर सभी देवताओं सहित देवराज ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। तब नारद जी को उन्होंने सभी बातों से अवगत कराया और उनसे प्रार्थना की कि वे उनके दुखों को दूर करने में मदद करें। यह प्रार्थना सुनकर नारद जी बोले कि देवराज मैं सबकुछ जान गया हूं। मैं अवश्य ही तुम्हारे कार्य को पूर्ण करने का प्रयास करूंगा। अभी तो मैं दैत्यराज जलंधर से मिलना चाहता हूं। इसलिए उसके राजमहल में जा रहा हूं। यह कहकर नारद जी जलंधर के राज्य की ओर चल दिए। वहां पहुंचकर नारद जी ने जलंधर की राजसभा में प्रवेश किया। उन्हें देखकर दैत्यों के स्वामी जलंधर ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया, उनके चरणों को धोया और पूछा—हे ब्रह्मन्! आप कहां से आ रहे हैं? मैं धन्य हुआ जो आपने मेरे घर को पवित्र किया है। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूं?

दैत्यराज जलंधर के ऐसे वचन सुनकर नारद जी बोले—हे दैत्यराज जलंधर! आप धन्य हैं। निश्चय ही आप पर सभी की कृपा है। इस लोक में आप सब सुखों को भोग रहे हैं। जलंधर! अभी कुछ समय पूर्व मैं ऐसे ही घूमते हुए कैलाश पर्वत पर गया था। वहां कैलाश पर मैंने सैकड़ों कामधेनुओं को हजारों योजन में फैले कल्पतरु के वन में घूमते हुए देखा। वह कल्पतरु वन दिव्य, अद्भुत और सोने के समान है। वहीं पर मैंने भगवान शिव और उनकी प्राणवल्लभा देवी पार्वती को भी देखा। भगवान शिव सर्वांग सुंदर, गौरवर्णी तीन नेत्रों वाले हैं और अपने मस्तक पर चंद्रमा धारण किए हुए हैं। असुरराज! इस पूरे त्रिलोक में उनके समान कोई भी नहीं है। उनके समान समृद्धिशाली और ऐश्वर्य संपन्न कोई भी नहीं है। तभी मुझे तुम्हारी धन-संपत्ति का भी ध्यान आया। इसलिए मैं तुम्हारे पास आ गया।

नारद जी के वचनों को सुनकर जलंधर अत्यंत गर्वित महसूस करने लगा और उसने महर्षि नारद को अपने धन के खजाने और सभी संचित अमूल्य निधियां दिखा दीं। जलंधर की धन संपदा देखकर नारद जी जलंधर की प्रशंसा करते हुए बोले—'हे दैत्येंद्र! आप अवश्य ही इस त्रिलोक के स्वामी होने के योग्य हैं। आपके पास ऐरावत हाथी है, उच्चैःश्रवा घोड़ा भी आपके पास है। कल्प वृक्ष, धन के देवता कुबेर के खजाने, रत्नों, हीरों, मणियों के अंबार आपके पास हैं। ब्रह्माजी का दिव्य विमान भी आपने ले लिया है। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल की सभी ऐश्वर्यपूर्ण वस्तुएं और अनमोल खजानों का आपके पास अंबार है। आपका धन-वैभव देखकर सभी आपसे ईर्ष्या कर सकते हैं परंतु दैत्यराज आपके पास अभी भी स्त्री-रत्न की

कमी है। बिना दिव्य स्त्री के पुरुष अधूरा है। उसका स्वरूप तभी पूर्ण होता है, जब वह किसी स्त्री को ग्रहण करता है। इसलिए असुरराज आप कोई परम सुंदरी ग्रहण कर, इस कमी को यथाशीघ्र पूरा करें।

देवर्षि नारद की चालभरी बातों से भला कोई कैसे बच सकता है। उन्होंने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। जलंधर ने नारद जी के सम्मुख हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि महर्षि आपके द्वारा वर्णित ऐसी सुंदर दिव्य स्त्री मुझे कहां मिलेगी, जो रत्नों से भी श्रेष्ठ हो। यदि आप इस प्रकार के स्त्री-रत्न के बारे में मुझे बता दें, तो मैं उस रत्न को अवश्य ही लाकर अपने राजभवन की शोभा बढ़ाऊंगा।

जलंधर की बातें सुनकर देवर्षि नारद ने कहा—हे दैत्येंद्र! ऐसा अनमोल स्त्री रत्न तो त्रिलोकीनाथ महान योगी भगवान शिव के पास है। वह है उनकी परम सुंदर पत्नी देवी पार्वती। वे सर्वांग सुंदर होने के साथ-साथ सर्वगुण संपन्न भी हैं। संसार की कोई भी स्त्री उनकी बराबरी नहीं कर सकती। उनका मनोहारी रूप पलभर में सबको मोहित कर सकता है। वास्तव में उनके समान कोई नहीं है। यह कहकर देवर्षि नारद ने जलंधर से आज्ञा ली और आकाश मार्ग से वापस लौट गए।

उन्नीसवां अध्याय

दूत-संवाद

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी! जब देवर्षि नारद इस प्रकार दैत्यराज जलंधर को देवी पार्वती की सुंदरता और भगवान शिव के परम ऐश्वर्य और समृद्धि के बारे में बता आए तब वहां क्या हुआ? दैत्यराज ने क्या किया?

व्यास जी के ऐसे प्रश्न सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि! नारद जी के वहां से चले जाने पर असुरराज जलंधर ने अपने राहू नामक दूत को बुलाया और उसे भगवान शिव के निवास स्थान कैलाश पर्वत पर जाने की आज्ञा दी। जलंधर ने कहा—राहू, उस पर्वत पर एक योगी रहता है। उस जटाधारी योगी की पत्नी सर्वांग सुंदरी है। तुम्हें मेरे लिए उसकी पत्नी को लाना है। अपने स्वामी जलंधर की आज्ञा पाकर वह दूत भगवान शिव के स्थान कैलाश पर्वत पर गया। वहां नंदी ने उस राहू नामक दूत को अंदर जाने से रोका परंतु वह सीधा अंदर चला गया। वहां कैलाशपति भगवान शिव के सामने उसने अपने स्वामी दैत्यराज जलंधर का संदेश शिवजी को सुना दिया। जैसे ही असुरराज जलंधर के दूत राहू ने यह संदेश त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को सुनाया, उसी समय शिवजी के सामने की धरती फट गई और उसमें से एक बड़ा भयानक गर्जना करता हुआ पुरुष प्रकट हुआ। वह पुरुष अत्यंत बलशाली और वीर जान पड़ता था। उसका मुख सिंह के समान था और ऐसा लगता था कि सिंह मानव का रूप लेकर साक्षात सामने आकर खड़ा हो गया है। वह नृसिंह रूपी पुरुष तुरंत राहू को खाने के लिए झपटा। यह देखकर राहू अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए दौड़ा परंतु असफल रहा। उसने राहू को कस कर पकड़ लिया।

जब राहू ने देखा कि अब बचने का कोई रास्ता नहीं बचा है, तब राहू भगवान शिव से यह प्रार्थना करने लगा कि वे उसके प्राणों की रक्षा करें। वह बोला भगवन्! मैं तो असुरराज जलंधर का दूत हूं। मैंने तो सिर्फ वही कहा है, जो मेरे स्वामी की आज्ञा थी। हे कृपानिधान! मेरी भूल के लिए मुझे क्षमा करें। राहू के वचन सुनकर करुणानिधान भगवान शिव ने नृसिंह रूपी पुरुष को आज्ञा दी कि वह राहू को छोड़ दे। अपने प्रभु की आज्ञा पाकर उसने राहू को छोड़ दिया।

जब उसने राहू को छोड़ दिया तब वह शिवजी से बोला कि भगवन्! आपकी आज्ञा मानकर मैंने इस दुष्ट को छोड़ दिया है परंतु हे प्रभु! मैं बहुत भूखा हूं। अब मैं क्या करूं? क्या खाकर अपनी भूख शांत करूं? तब भगवान शिव ने उससे कहा कि अपने हाथ-पैरों के मांस को खाकर अपनी भूख शांत करो। शिवजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसने अपने हाथों और पैरों का मांस खा लिया। अब सिर्फ उसका सिर ही बचा था। यह देखकर भगवान शिव उस पर प्रसन्न हो गए और बोले, तुमने मेरी आज्ञा का पालन करके मुझे प्रसन्न किया है। तुम वाकई मेरे प्रिय हो। आज से तुम मेरे भक्तों द्वारा भी पूज्य होगे। जो भी मनुष्य मेरी पूजा

करेगा वह तुम्हारी भी आराधना अवश्य करेगा। जो तुम्हारी पूजा नहीं करेगा उस भक्त पर मेरी कृपादृष्टि नहीं होगी। उस दिन से वह कैलाश पर्वत पर भगवान शिव का प्रिय गण बनकर रहने लगा और संसार में ‘स्वकीर्तिमुख’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बीसवां अध्याय

शिवगणों का असुरों से युद्ध

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी! असुरराज जलंधर के राहू नामक दूत का क्या हुआ? जब भगवान शिव ने राहू को अभयदान दे दिया, फिर राहू कैलाश पर्वत से कहां गया और उसने क्या किया? इस विषय में मुझे बताइए।

महर्षि व्यास के इन वचनों को सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षि! जब राहू नामक दूत को शिवजी ने उस पुरुष के हाथों से मुक्त करा दिया, तब राहू वहां से तुरंत भागकर अपने स्वामी दैत्यराज जलंधर के पास गया और वहां उसने अपने स्वामी को सभी बातें बता दीं, जो वहां हुई थीं। उन सारी बातों को जानकर असुरराज जलंधर का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ गया।

जलंधर ने अपने सेनापति और अन्य अधिकारियों को बुलाकर अपनी दैत्य सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा प्रदान की। अपने स्वामी की आज्ञा पाकर कालनेमि, शुंभ-निशुंभ आदि महावीर पराक्रमी दैत्य युद्ध के लिए तैयारी करने लगे। जलंधर की विशाल चतुरंगिणी दैत्य सेना भगवान शिव से युद्ध करने के लिए निकल पड़ी। उस सेना के साथ ही दैत्यगुरु शुक्राचार्य और राहू भी थे।

इधर, जब देवताओं को ज्ञात हुआ कि जलंधर अपनी सेना को साथ लेकर भगवान शिव से युद्ध करने के लिए निकल पड़ा है तो देवराज इंद्र शिवजी को अवगत कराने के लिए कैलाश पर्वत पर गए और वहां उन्होंने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को सारी बातें बता दीं। इंद्र ने भगवान विष्णु के विषय में भी उन्हें बताया कि भगवान विष्णु भी अपनी पत्नी देवी लक्ष्मी के साथ असुरराज जलंधर के वश में हैं और उसके घर में निवास करते हैं। इसी कारण हम सब देवता विवश हैं। हमें न चाहते हुए भी जलंधर के अधीन होना पड़ा है। भगवन्! आप भक्तवत्सल हैं। आप अपने भक्तों की रक्षा कर हमें जलंधर से मुक्ति दिलाएं। उसे मारकर हमारे प्राणों की रक्षा करें।

सारी बातें ज्ञात हो जाने पर भगवान शिव ने सर्वप्रथम भगवान श्रीहरि विष्णु का स्मरण किया। प्रभु के स्मरण करते ही विष्णुजी वहां तुरंत प्रकट हो गए। उन्हें देखकर शिवजी ने उनसे पूछा—हे विष्णो! तुम्हें मैंने दैत्येंद्र जलंधर का वध करने के लिए भेजा था, फिर तुमने उसका वध क्यों नहीं किया? आप उसके घर में क्यों निवास कर रहे हैं?

अपने आराध्य भगवान शिव के ये वचन सुनकर भगवान श्रीहरि विष्णु ने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए और विनम्रतापूर्वक बोले—हे करुणानिधान भगवान शिव! मैं जानता हूं कि आपने मुझे दैत्यराज जलंधर का संहार करने की आज्ञा दी थी, परंतु मैं उसे नहीं मार सका। इसलिए आपसे क्षमा याचना करता हूं। मेरी गलती क्षमा करें। प्रभु! मैंने जलंधर का वध इसलिए नहीं किया, क्योंकि जलंधर मेरी प्राणवल्लभा देवी लक्ष्मी का भ्राता है और उसमें आपका अंश भी

विद्यमान है। इसलिए उस दैत्य की वीरता से प्रसन्न होकर मैं उसके घर में निवास करता हूं।

भगवान विष्णु के वचनों को सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव हंसने लगे। फिर बोले— देवताओ! तुम सभी सोच और चिंताओं को त्याग दो। तुम्हारी रक्षा के लिए मैं अवश्य ही जलंधर का संहार करूंगा। यह सुनकर सभी देवता निश्चिंत हो गए।

इसी समय जलंधर अपनी विशाल सेना साथ लेकर कैलाश पर्वत के निकट पहुंच गया। उसने कैलाश पर्वत को चारों ओर से घेर लिया। उस समय बड़ा कोलाहल होने लगा। यह शोर सुनकर भगवान शिव को क्रोध आ गया। तब उन्होंने अपने गणों को आज्ञा दी कि वे जाकर राक्षसों से युद्ध करें। अपने आराध्य भगवान शिव की आज्ञा पाकर उनके गण युद्ध करने चले गए। शिवगणों और जलंधर की दैत्यसेना में बड़ा भीषण युद्ध होने लगा। शिवगण बड़ी वीरता से दैत्यों से भिड़ गए। उन्होंने कई दैत्यों को पल भर में ही मौत के घाट उतार दिया और सैकड़ों को घायल कर दिया। परंतु दैत्यगुरु शुक्राचार्य अपनी मृत संजीवनी विद्या से सभी मृत दानवों को पुनः जीवन दान दे रहे थे और वे उठकर पुनः युद्ध करने लगते थे।

जब दैत्यसेना किसी भी प्रकार कम होने का नाम ही नहीं ले रही थी, तब शिवगण व्याकुल होने लगे। तब शिवगणों ने भगवान शिव के पास जाकर उन्हें इसकी सूचना दी। जब शिवजी को यह बात ज्ञात हुई कि यह सब शुक्राचार्य कर रहे हैं तो वे क्रोधित हो उठे। उस समय भगवान शिव के मुख से एक भयंकर ज्वाला कृत्या के रूप में प्रकट हुई। उसका रूप अत्यंत रौद्र और भयानक था। वह वहां से सीधे युद्ध भूमि में गई और दैत्यों को पकड़-पकड़कर खाने लगी। इसी प्रकार भ्रमण करते हुए कृत्या शुक्राचार्य के निकट पहुंची और उन्हें वहां से गायब कर दिया। जब अपने परम सहायक गुरु शुक्राचार्य उन्हें वहां न दिखाई दिए तथा हजारों वीर मारे गए या घायल हो गए, तब दैत्य सेना का मनोबल टूटने लगा। दैत्य सेना युद्धभूमि छोड़कर भागने लगी। जलंधर के कालनेमी, शुंभ, निशुंभ आदि वीर दैत्य फिर भी पूरी ताकत से युद्ध करते रहे। इधर, भगवान शिव की सेना का प्रतिनिधित्व करने वाले स्वामी कार्तिकेय और गणेश जी भी पूरे मनोयोग से दैत्य सेना को पछाड़ने के लिए युद्ध कर रहे थे।

इक्कीसवां अध्याय

द्वंद्व-युद्ध

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! भगवान शिव के गण व उनके दोनों पुत्र गणेश और कार्तिकेय बहुत बलवान, वीर और साहसी थे। उन्होंने अपने पराक्रम से दैत्येंद्र जलंधर के परम वीरों कालनेमि, शुंभ और निशुंभ को पराजित कर दिया। असुर सेना डरकर इधर-उधर छिप गई। सब दैत्य अपने प्राणों की रक्षा हेतु भागने लगे। यह देखकर असुरराज जलंधर अपने रथ पर बैठकर युद्धभूमि में आगे की ओर बढ़ने लगा और बड़ी भयानक गर्जना करने लगा। उसकी ललकार सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के गण भी बढ़-चढ़कर युद्ध करने लगे। असुर सेना और देवताओं की सेनाओं के रथों, हाथी, घोड़े, शंख तथा भेरी से युद्धभूमि गुंजायमान हो रही थी।

दैत्यराज जलंधर ने तब ऐसा एक बाण छोड़ा, जिससे चारों ओर कोहरा फैल गया। धरती से आकाश तक सिर्फ एक धुंध ही दिखाई दे रही थी। फिर उसने नंदीश्वर, गणेश, वीरभद्र को एक साथ कई बाण मारकर घायल कर दिया। यह देखकर स्वामी कार्तिकेय को बहुत क्रोध आ गया और उन्होंने असुरराज जलंधर पर अपनी शक्ति चला दी। कार्तिकेय की चलाई गई शक्ति के फलस्वरूप जलंधर धरती पर गिर पड़ा परंतु गिरते ही वह उठकर खड़ा हो गया और पूरी शक्ति के साथ पुनः युद्ध करने लगा। उसने सबसे पहला प्रहार कार्तिकेय पर ही किया। जलंधर ने अपनी गदा उठा ली और पूरे बल के साथ कार्तिकेय को मारी जिससे कार्तिकेय अपनी चेतना खो बैठे और बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। यह दृश्य देखकर गणेश और नंदी भी चिंतित हो उठे। तब जलंधर ने उन पर भी गदा से प्रहार किया। गदा के प्रहार से वे दोनों भी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गए।

तब वीरभद्र जलंधर से युद्ध करने के लिए आगे आए। जलंधर ने उन पर भी अपनी गदा से प्रहार किया, जिससे वीरभद्र का सिर फट गया और रक्त बहने लगा। यह देखकर सभी शिवगण व्याकुल हो गए और डरकर युद्ध-भूमि को छोड़कर इधर-उधर भागने लगे।

बाईसवां उध्याय

शिव-जलंधर युद्ध

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! जब युद्धभूमि में देवसेना का प्रतिनिधित्व करने वाले सभी वीर साहसी घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, तब यह देखकर सभी शिवगण भयभीत होकर शिव की शरण में चले गए। जब भगवान शिव को युद्धस्थल का सब समाचार मिल गया, तब वे स्वयं दैत्यराज जलंधर को सबक सिखाने के लिए युद्धस्थल की ओर चल पड़े। अपने आराध्य भगवान शिव को युद्ध का नेतृत्व करते देखकर सभी शिवगण, जो पहले डरकर भाग गए थे पुनः लौट आए। शिवगणों ने पहले जैसे जोश के साथ युद्ध करना प्रारंभ कर दिया।

भगवान शिव के रौद्र रूप को देखकर भयानक दैत्य भी भयभीत होने लगे और युद्ध छोड़कर भागने लगे। यह देखकर असुरों के स्वामी जलंधर को क्रोध आ गया। वह तीव्र गति से शिवजी की ओर दौड़ा। इस कार्य में शुंभ-निशुंभ नामक सेनापतियों ने अपने स्वामी का साथ दिया। यह देखकर भगवान शिव ने प्रतिउत्तर देते हुए जलंधर के बाणों को काट दिया। वे अपने धनुष से बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने कई दैत्यों को फरसे से काट दिया। बलाहक और धस्मर जैसे भयानक राक्षसों को पल भर में मार गिराया। शिवजी का वाहन बैल भी अपने सींगों के प्रहारों से सबको घायल करने लगा। तब यह देखकर जलंधर अपने सैनिकों को समझाने लगा कि वे न डरें और युद्ध करते रहें। पर दैत्य सेना भगवान शिव से युद्ध करने को तैयार ही नहीं हो रही थी। क्रोधित जलंधर उन्हें ललकारने लगा। जलंधर ने अनेकों बाणों को एक साथ चलाकर उसमें भगवान शिव को बांधने का प्रयास किया, लेकिन वह सफल न हो सका। भगवान शिव ने उसके सभी बाणों को काट दिया और उसके रथ की ध्वजा को भी नीचे गिरा दिया।

असुरराज जलंधर के सभी बाणों को काटने के पश्चात भगवान शिव ने एक बाण मारकर जलंधर को घायल कर दिया और उसके धनुष को काट दिया। यह देखकर जलंधर ने युद्ध करने के लिए गदा उठा ली। तब शिवजी ने अपने बाण से उसकी गदा के भी दो टुकड़े कर दिए। यह सब देखकर दैत्येंद्र जलंधर यह जान गया कि त्रिलोकीनाथ भगवान शिव उससे अधिक बलवान हैं और उन्हें युद्ध में पराजित कर पाना उसके लिए मुश्किल है। तब जलंधर ने जीतने के लिए गंधर्व माया उत्पन्न की। वहां उस युद्धस्थल पर हजारों की संख्या में गंधर्व और अप्सराओं के गण उत्पन्न हो गए और वहां नृत्य करने लगे। वहां मधुर संगीत बजने लगा। यह सब देखकर सभी देव सेना के सैनिक मोहित हो गए और युद्ध को भूलकर नृत्य और गाना-बजाना देखने में मग्न हो गए। इधर, देवाधिदेव भगवान शिव भी गंधर्व माया से मोहित होकर नृत्य देखने लगे।

जब दैत्यराज जलंधर ने देखा कि सभी देवताओं सहित देवाधिदेव भगवान शिव भी उस

गंधर्व माया के द्वारा मोहित होकर अप्सराओं के नृत्य को देख रहे हैं, तब वह वहां से चुपके से भाग खड़ा हुआ। असुरराज जलंधर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का रूप धारण कर बैल पर बैठकर देवी पार्वती के पास कैलाश पर्वत पर पहुंचा। वहां कैलाश पर देवी पार्वती अपनी सखियों के साथ व्यस्त थीं। जब उन्होंने अपने पति भगवान शिव को आता देखा, तब उन्होंने अपनी सखियों को वहां से भेज दिया और स्वयं भगवान शिव के समीप आ गईं।

देवी पार्वती के अप्रतिम सौंदर्य को देखकर जलंधर का मन विचलित हो उठा और वह उन्हें अपलक निहारने लगा। जलंधर के इस प्रकार के व्यवहार को देख पार्वती को यह समझते हुए देर नहीं लगी कि वह कोई बहुरूपिया है, जो भगवान शिव का रूप धारण कर उन्हें ठगने आया है। यह विचार मन में आते ही देवी पार्वती वहां से अंतर्धान हो गईं। तब वे एक अन्य स्थान पर पहुंची और उन्होंने भगवान श्रीहरि विष्णु का स्मरण करके उन्हें वहां बुलाया। विष्णुजी ने वहां पहुंचकर देवी को नमस्कार किया और उनसे प्रश्न किया कि क्या आप जलंधर के इस कार्य को जानते हैं?

देवी पार्वती के इस प्रश्न को सुनकर श्रीविष्णु ने हाथ जोड़ लिए और बोले—हे माता! आपकी क्या आज्ञा है? मैं उस दुष्ट को किस प्रकार का दंड दूं? तब देवी ने कहा कि आप जो उचित समझें वह करें। तब श्रीविष्णु जलंधर को छलने के लिए उसके नगर की ओर चल दिए।

तेईसवां अध्याय

वृंदा का पतिव्रत भंग

व्यास जी बोले—सनत्कुमार जी! जब माता पार्वती की आज्ञा पाकर भगवान विष्णु सागरपुत्र जलंधर की नगरी को चले गए, तब फिर आगे क्या हुआ? उन्होंने वहां जाकर क्या किया?

व्यास जी का प्रश्न सुनकर सनत्कुमार जी मुस्कुराए और बोले—हे महर्षे! दैत्यराज जलंधर की नगरी में पहुंचकर श्रीहरि विष्णु सोच में पड़ गए कि वे क्या करें परंतु अगले ही पल उन्हें समझ में आ गया कि जैसे को तैसा। उन्होंने सोचा कि जिस प्रकार जलंधर ने छद्म शिव रूप धारण करके देवी पार्वती को छलने की कोशिश की थी, वे भी वहां जाकर उसकी पत्नी वृंदा का पतिव्रत धर्म भंग करेंगे। वे जानते थे कि जलंधर अपनी पत्नी के पतिव्रत धर्म से ही अभी तक बचा हुआ है। इसलिए उसका पतिव्रत धर्म नष्ट करना जरूरी है। मन में यह विचार आते ही वे नगर के राज उद्यान में जाकर ठहर गए।

दूसरी ओर दैत्यराज जलंधर की पतिव्रता पत्नी वृंदा अपने कक्ष में सो रही थी। भगवान श्रीहरि विष्णु की माया के फलस्वरूप उन्होंने रात्रि में एक सपना देखा। उसने देखा कि उसका पति निर्वस्त्र होकर सिर पर तेल लगाकर और गले में काले रंग के फूलों की माला पहनकर भैंसे पर बैठा है और उसके चारों ओर हिंसक जीव-जंतु उसको घेरे खड़े हैं। उस समय चारों ओर घोर अंधकार फैला हुआ था और वह दक्षिण दिशा की ओर बढ़ता जा रहा था। ऐसा सपना देखकर वह डर गई और उसकी आंख खुल गई। तभी उसने देखा कि सूर्य उदय हो रहा है परंतु वह सूर्य अत्यंत कांतिहीन था और उसे सूर्य में एक छेद भी दिखाई दे रहा था। यह सब देखकर वृंदा का मन बहुत व्याकुल हो उठा और वह इधर-उधर टहलने लगी। कभी छज्जे और अटारी पर चढ़ती तो कभी जमीन पर बैठ जाती परंतु उसे चैन नहीं था?

जब इस प्रकार वृंदा का मन शांत नहीं हुआ तो वह मन की शांति प्राप्त करने हेतु उद्यान की ओर चल दी परंतु उस निर्जन उद्यान में उसके पीछे सिंह के समान दो भयंकर राक्षस पड़ गए। वृंदा उन्हें देखकर बहुत डर गई और अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए वहां से भागने लगी। भागते हुए उसे सामने से आते हुए एक तपस्वी दिखाई दिए। भयभीत वृंदा उन मुनि से अपने जीवन की रक्षा करने के लिए प्रार्थना करने लगी। उन तपस्वी ने अपने कमण्डल से जल निकालकर उन राक्षसों को ललकारते हुए उन पर जल छिड़क दिया। जल छिड़कते ही दोनों राक्षस वहां से भाग खड़े हुए। तब वृंदा ने दोनों हाथ जोड़कर उन तपस्वी को प्रणाम किया तथा उनका धन्यवाद व्यक्त किया। तत्पश्चात उनको अत्यंत दिव्य और शक्तिशाली जानकर वृंदा ने उन मुनि से अपने पति दैत्यराज जलंधर के विषय में पूछा। मुनि ने उत्तर दिया कि देवी तुम्हारा पति तो युद्ध में मारा गया है। यह कहकर उन्होंने कुछ इशारा किया,

जिसके फलस्वरूप दो वानर उनके सामने प्रकट हो गए। अगले ही पल उन तपस्वी का संकेत पाकर वे वानर आकाश मार्ग से उड़कर चले गए और कुछ समय पश्चात दैत्यराज जलंधर का कटा हुआ सिर और उसके अन्य सामान को लेकर लौट आए।

अपने पति जलंधर का कटा हुआ सिर देखकर वृंदा बेहोश होकर गिर पड़ी। कुछ समय पश्चात होश में आने पर रोते हुए वृंदा उन मुनि से प्रार्थना करने लगी कि वे उसके पति को पुनः जीवित कर दें। यह कहकर वह बहुत जोर-जोर से रोने लगी और बोली कि यदि आप मेरे पति को जीवनदान नहीं दे सकते तो मुझे भी मृत्यु दे दें।

वृंदा के इस प्रकार के वचन सुनकर मुनि बोले—हे देवी! तुम्हारे पति का वध त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के द्वारा हुआ है। अतः उसको जीवित करना देवाधिदेव भगवान शिव का विरोध करना है परंतु अपनी शरण में आए हुए मनुष्य की रक्षा करना मेरा भी धर्म है। इसलिए मैं तुम्हारे पति को पुनः जीवित अवश्य करूंगा। यह कहकर उन्होंने अपने कमण्डल से जल निकाला और मंत्रोच्चारण करते हुए जलंधर पर छिड़का, जिसके फलस्वरूप वह जीवित हो गया। जलंधर को जीवन दान देकर वे तपस्वी वहां से अंतर्धान हो गए। वस्तुतः उस तपस्वी ने ही सूक्ष्म रूप से जलंधर की काया में प्रवेश कर लिया था। दरअसल, तपस्वी का रूप धारण करने वाले वे मुनि और कोई नहीं स्वयं श्रीहरि विष्णु थे। अपने पति को अपने पास पाकर देवी वृंदा बहुत खुश हुई और तुरंत अपने पति के गले लग गई। उसने उन सब बातों को भयानक स्वप्न समझकर भुला दिया फिर बहुत समय तक उस छद्म वेशधारी जलंधर के साथ वन में ही रमण करती रही परंतु मायावी की माया भला कब तक छिप सकती थी? एक दिन वृंदा को ज्ञात हो गया कि उसके साथ विहार करने वाला पुरुष और कोई नहीं स्वयं श्रीहरि विष्णु हैं, जो कि उसके पति का रूप धारण करके उसे छल रहे हैं।

यह सारी सच्चाई जानकर देवी वृंदा बहुत दुखी हुई। तब वह श्रीहरि विष्णु से बोली—तुमने एक पराई स्त्री का उसका पति बनकर उपभोग किया है। तुम्हें धिक्कार है। मैं किस प्रकार अपने पति का सामना कर सकती हूं? अब मुझे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है पर तुम्हें तुम्हारी करनी की सजा अवश्य ही मिलेगी। तुमने मुझे अबला जानकर मेरा इस्तेमाल किया है। मैं तुम्हें शाप देती हूं कि जिन राक्षसों से तुमने मुझे डराकर मेरा विश्वास जीता था, वे ही राक्षस तुम्हारी पत्नी का भी हरण करेंगे और तुम उसके वियोग में हर ओर भटकोगे। तब यही वानर तुम्हारी सहायता करेंगे। मेरा अगला जन्म तुलसी के रूप में होगा और मेरी संजीवनी-शक्ति ही मेरी पवित्रता का प्रमाण होगी।

भगवान श्रीहरि विष्णु को इस प्रकार शाप देकर असुरश्रेष्ठ जलंधर की पत्नी वृंदा ने अग्नि में प्रवेश कर लिया और उसमें अपने प्राणों की आहुति दे दी। उस अग्नि में से एक तेज प्रकट हुआ और वह जाकर देवी पार्वती में समा गया।

चौबीसवां अध्याय

जलंधर का वध

व्यास जी बोले—हे तात! उधर, जब असुरराज जलंधर द्वारा फैलाई गई गंधर्व माया से मोहित होकर सभी देवताओं सहित भगवान शिव भी युद्ध को भूलकर अप्सराओं का नृत्य-गान देखने में व्यस्त हो गए तब क्या हुआ? उधर, जब जलंधर को पहचानकर देवी पार्वती कैलाश पर्वत से अंतर्धान हो गईं तब वहां क्या हुआ? भगवान शिव ने क्या किया?

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! जब जलंधर को अपने सामने भगवान शिव के रूप में देखकर देवी पार्वती ने यह जान लिया कि वह कोई बहुरूपिया है तो वे तुरंत वहां से अंतर्धान हो गईं।

उनके अंतर्धान होते ही सारी माया वहां से गायब हो गई। माया के गायब होते ही सभी देवता अपने-अपने होश में आ गए। उधर, देवाधिदेव भगवान शिव की चेतना भी वापस लौट आई और जलंधर की माया को जानकर उन्हें अत्यधिक क्रोध आ गया। तब जलंधर भी देवी पार्वती के अचानक वहां से गायब हो जाने के कारण तुरंत ही युद्धभूमि में लौट आया।

तत्पश्चात भगवान शिव और असुरराज जलंधर में बड़ा भयानक युद्ध होने लगा। परंतु त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की वीरता और बल के सामने वह तुच्छ असुर कहां टिक पाता? यह बात जल्द ही उसे समझ आ गई कि सर्वेश्वर शिव को जीत पाना आसान नहीं है बल्कि असंभव है। तब असुरराज जलंधर ने भगवान शिव को जीतने के लिए माया का सहारा लिया। उसने तुरंत अपनी माया द्वारा पार्वती को प्रकट किया और उन्हें अपने रथ पर बांध लिया। जलंधर के दो सेनापति शुंभ और निशुंभ अपने हाथों में भयानक अस्त्र लेकर देवी पार्वती को मारने के लिए उन पर झपट रहे थे और देवी पार्वती रोते हुए अपनी सहायता के लिए अपने आराध्य भगवान शिव को पुकार रही थीं।

यह दृश्य देखकर भगवान शिव भी अत्यंत चिंतित हो गए। अपनी प्राणवल्लभा देवी पार्वती को इस प्रकार कष्ट में देखकर वे व्याकुल हो उठे। तब अपनी प्रिया पार्वती को दैत्येंद्र जलंधर से मुक्ति दिलाने के लिए उन्होंने बड़ा भयानक रूप धारण कर लिया। उनका वह रौद्र रूप देखकर राक्षसी सेना भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी और छिपने का प्रयास करने लगी। उधर, दैत्य सेना के प्रधान शुंभ और निशुंभ भी डर गए और युद्ध से बचने की कोशिश करने लगे। उनके भयभीत होते ही जलंधर की माया समाप्त हो गई। युद्धभूमि में हाहाकार मच गया। सब इधर-उधर दौड़ रहे थे। जब शुंभ-निशुंभ भी अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए भाग रहे थे, तब भगवान शिव ने उन्हें ललकारा परंतु वे फिर भी युद्ध के लिए तत्पर न हुए। भगवान शिव बोले—तुम तो देवी पार्वती को मारने बढ़ रहे थे, अब क्यों डरकर भाग रहे हो? आओ और मेरे साथ युद्ध करके अपनी वीरता का परिचय दो।

भगवान शिव के वचनों का उन दोनों पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा और वे भागते रहे। तब

क्रोधवश भगवान शिव ने शुंभ-निशुंभ को शाप देते हुए कहा—हे दुष्ट असुरो! युद्ध में कभी भी पीठ दिखाने वाले पर वार नहीं करना चाहिए। इसलिए मैं तुम दोनों को छोड़ रहा हूं परंतु जिनको तुम मारने का प्रयत्न कर रहे थे, वे ही देवी पार्वती तुम दोनों का एक दिन वध करेंगी। भगवान शिव के इन वचनों को सुनकर क्रोध से भरा जलंधर उन पर झपटा। उसने भयानक बाण चलाकर पूरी पृथ्वी पर अंधकार कर दिया। इससे भगवान शिव का क्रोध अत्यधिक बढ़ गया और उन्होंने अपने चरणांगुष्ट से बने हुए सुदर्शन चक्र को चला दिया। उस चक्र ने तुरंत जलंधर के सिर को उसके धड़ से अलग कर दिया।

जब चक्र ने असुरराज जलंधर का सिर काटा तो बहुत भयानक ध्वनि हुई और महादानव जलंधर पल भर में ही ढेर हो गया। जिस प्रकार अंजन (काजल) का विशाल पर्वत दो टुकड़ो में विभक्त हो गया था, उसी प्रकार जलंधर का शरीर भी दो टुकड़ों में बंट गया। सारे युद्ध-भूमि में उसका रक्त फैल गया। भगवान शिव की आज्ञा से जलंधर का रक्त और मांस महारौरव में जाकर रक्त का कुंड बन गया। दैत्यराज जलंधर के शरीर से निकला अद्‌भुत तेज उस समय भगवान शिव के शरीर में प्रवेश कर गया। जलंधर का वध होते ही चारों ओर हर्ष की लहर दौड़ गई। सभी देवता ऋषि-मुनि बहुत प्रसन्न हुए। अप्सराएं और गंधर्व मंगल गान गाने लगे। सारी दिशाओं से भगवान शिव पर फूलों की वर्षा होने लगी।

पच्चीसवां अध्याय

देवताओं द्वारा शिव-स्तुति

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! इस प्रकार दैत्यराज जलंधर का देवाधिदेव भगवान शिव के हाथों से वध देखकर सब ओर प्रसन्नता छा गई। सभी देवताओं सहित ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु भी हर्षित हुए। तब वे करुणानिधान भगवान शिव को धन्यवाद देने लगे और उनकी स्तुति करने लगे और बोले—हे करुणानिधान! हे कृपानिधान देवाधिदेव भगवान शिव! आप प्रकृति से परे हैं। भगवन्! आप ही परमब्रह्म परमेश्वर हैं। प्रभो! हम सब देवता आपके दास हैं और आपकी आज्ञा की पूर्ति करने हेतु कार्य करते हैं। हे देवेश! आप हम पर प्रसन्न हों। हे प्रभु! जब भी देवताओं पर कोई विपत्ति पड़ी है, आपने हमारी सहायता की है और हमें अनेक दैत्यों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाई है। हम सदा ही आपके चरणों की वंदना करते हैं और आपके अनोखे दिव्य स्वरूप का ही स्मरण करते हैं। आपके ही कारण हमारा भी अस्तित्व है। आपके बिना हम कुछ भी नहीं हैं। आप भक्तवत्सल हैं और सदा ही अपने भक्तों का हित करते हैं।

इस प्रकार भगवान शिव की वंदना करके सभी देवता चुप हो गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। तब भगवान शिव बोले—हे देवताओ! मैं तुम्हारी आराधना से बहुत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें वरदान देता हूं कि मैं हमेशा तुम्हारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि करूंगा। तुम्हारे दुखों को मैं सदा दूर करूंगा। इसके अतिरिक्त तुम और कुछ भी चाहो तो मुझसे मांग सकते हो। परंतु उन्होंने उनकी कृपादृष्टि बनाए रखने के अतिरिक्त उनसे कुछ नहीं मांगा।

तब उन देवताओं को आवश्यकता पड़ने पर उनकी मदद करने का आश्वासन देकर देवाधिदेव भगवान शिव वहां से अंतर्धान हो गए।

इस प्रकार जब त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल शिव ने देवताओं को उनकी सहायता का आश्वासन दिया तो सभी देवता हर्ष से फूले नहीं समाए और भगवान शिव की महिमा का गुणगान और जय-जयकार करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धाम को वापस चले गए।

छब्बीसवां अध्याय

धात्री, मालती और तुलसी का आविर्भाव

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! जब भगवान श्रीहरि विष्णु की माया से मोहित होकर जलंधर पत्नी वृंदा छद्म भेष धारण किए विष्णुजी को अपना पति मानकर उनके साथ रमण करने लगी तब श्रीहरि की भी उनसे प्रीति जुड़ गई। सच्चाई जान लेने के बाद कि जलंधर के रूप में भगवान श्रीहरि ने उसके साथ छल किया है, उसने अग्नि में जलकर अपने प्राणों की आहुति दे दी। तब फिर आगे क्या हुआ? भगवान विष्णु कहां गए और उन्होंने क्या किया? तुलसी के रूप में वृंदा का जन्म कैसे और कब हुआ? कृपया वह कथा मुझे बताइए।

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! मैं आपके सभी प्रश्नों का उत्तर देता हूं। मेरी कथा सुनिए, आपकी सभी जिज्ञासाएं दूर हो जाएंगी। जब वृंदा ने विष्णुजी द्वारा ठगे जाने पर अपने शरीर का त्याग कर दिया तो भगवान विष्णु को बहुत दुख हुआ और वे वृंदा की चिता की राख को अपने शरीर पर लपेट कर इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे।

इधर, जब देवताओं को भगवान श्रीहरि विष्णु की इस हालत के बारे में पता चला तो वे सब बहुत चिंतित हुए। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें? जगत के पालनकर्ता भगवान विष्णु को इस तरह दर-दर भटकना शोभा नहीं देता। जब देवताओं को इस समस्या का कोई हल नहीं सूझा तब वे देवाधिदेव भगवान शिव की शरण में गए। ब्रह्माजी को साथ लेकर देवराज इंद्र देवताओं सहित कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां उन्होंने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात शिव के पूछने पर देवताओं ने वहां आने का प्रयोजन शिवजी को बताया। देवताओं ने कहा—हे देवाधिदेव! करुणानिधान! भक्तवत्सल शिव! आप तो सर्वेश्वर हैं, सर्वज्ञाता हैं। इस संसार की कोई बात आपसे छिपी नहीं है। भगवन्! भगवान श्रीहरि विष्णु ने दैत्यराज जलंधर की पत्नी वृंदा को जलंधर का रूप लेकर ठगा परंतु उसके साथ-साथ रहते श्रीविष्णु की उनमें प्रीति हो गई और अब वे उनका वियोग सह नहीं पा रहे हैं। वे अपने शरीर पर वृंदा की चिता की आग लपेटकर जोगी बनकर इधर-उधर घूम रहे हैं। प्रभो! आप उन्हें समझाइए कि वे ऐसा न करें। भगवन्! यह जगत आपके अधीन है और आपको ही इस समय उनकी मदद करनी है, ताकि वे पहले की भांति होकर अपने कार्यों को पूरा करें।

देवताओं की इस प्रकार की प्रार्थना सुनकर भगवान शिव बोले—हे ब्रह्माजी! हे देवराज इंद्र व अन्य देवताओ! यह सारा जगत माया के अधीन है परंतु इस जगत की जननी मूल प्रकृति परम मनोहर महादेवी पार्वती इस माया के वशीभूत नहीं हैं। उन पर इस माया जाल का कोई असर नहीं पड़ता। इसलिए आप भगवान श्रीहरि विष्णु के इस मोहमाया के जाल को दूर करने के लिए आदि देवी प्रकृति की आधारभूत देवी पार्वती की शरण में जाइए। यदि

आपके द्वारा वे प्रसन्न हो गईं तो आपकी हर एक समस्या का समाधान हो जाएगा और वे आपके कार्यों को पूर्ण करेंगी।

देवाधिदेव महादेव भगवान शिव के इन वचनों को सुनकर सभी देवताओं को अत्यंत प्रसन्नता हुई और वे भगवान शिव से आज्ञा लेकर मूल प्रकृति की शरण में चले गए। इस प्रकार जब देवता प्रकृति देवी की शरण में जा रहे थे, उस समय वहां आकाशवाणी हुई—हे देवताओ! मैं ही तीन प्रकार से तीनों प्रकार के गुणों से अलग होकर निवास करती हूं। मैं सत्यगुण में गौरा बनकर, रजोगुण में लक्ष्मी और तमोगुण में ज्योति बनकर इस जगत को आलोकित करती हूं। इसलिए आप अपनी इच्छापूर्ति हेतु देवी जगदंबा की शरण में जाओ। वे अवश्य ही तुम्हारी मनोकामना पूरी करेंगी।

यह आकाशवाणी सुनते ही सभी देवता गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती को हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे और मन में उनका वंदन और स्तुति करने लगे। इस प्रकार जब देवताओं ने शुद्ध हृदय से तीनों देवियों का स्मरण किया। तब वे तीनों देवियां वहां प्रकट हो गईं। देवियों को साक्षात अपने सामने पाकर देवता बहुत हर्षित हुए और गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती की वंदना और पूजन-अर्चन करने लगे। तब तीनों देवियों ने मुस्कराकर कहा—हे देवताओ! हम तीनों देवियां तुम्हारी स्तुति से बहुत प्रसन्न हैं। तुम जो कुछ चाहते हो, हमें बताओ। हम तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण करेंगी।

देवियों के इस कथन को सुनकर देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हुए देवराज इंद्र ने भगवान श्रीहरि विष्णु के बारे में सबकुछ गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती देवी को बता दिया। तब उन्होंने कुछ बीज देवताओं को दिए और कहा कि ये बीज ले जाकर तुम देवी वृंदा की चिता की राख में बो दो। ऐसा करने से तुम्हारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि होगी। उन बीजों को लेकर देवताओं ने तीनों देवियों का धन्यवाद व्यक्त किया। तब देवियां वहां से अंतर्धान हो गईं। तत्पश्चात ब्रह्माजी सहित सभी देवता उस स्थान पर पहुंचे, जहां देवी वृंदा ने अपने प्राणों की आहुति अग्नि में दी थी। वहां पहुंचकर उन्होंने देवी द्वारा दिए गए उन बीजों को वृंदा की चिता की राख में डाल दिया। तब उन बीजों में से कुछ दिन पश्चात धात्री, मालती और तुलसी नामक वनस्पतियां पैदा हुईं। देवी सरस्वती द्वारा दिए गए बीजों से धात्री, देवी महालक्ष्मी के बीजों से मालती और देवी गौरी के बीजों से तुलसी का आविर्भाव हुआ। जैसे ही धात्री, मालती और तुलसी नामक ये स्त्री रूपी वनस्पतियां उत्पन्न हुईं और भगवान श्रीहरि विष्णु ने उन्हें देखा तो उन पर से माया का परदा हट गया और वे पहले की भांति हो गए। वे उन वनस्पतियों पर अपनी कृपादृष्टि रखने लगे और तभी से धात्री, मालती और तुलसी नामक इन वनस्पतियों को भी विष्णुजी से विशेष अनुराग हो गया। तब भगवान श्रीहरि विष्णु पुनः बैकुण्ठ लोक को चले गए।

सत्ताईसवां अध्याय

शंखचूर्ण की उत्पत्ति

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! शंखचूर्ण नाम का एक दैत्य था। जिसका वध भगवान शिव ने स्वयं अपने हाथों से त्रिशूल मारकर किया था। अब मैं आपको उस शंखचूर्ण नामक दैत्य के विषय में बताता हूं।

हे मुने! आप यह जानते ही हैं कि विधाता के पुत्र मरीचि हुए हैं और उनके पुत्र महर्षि कश्यप हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप मुनि बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के संत थे। वे बड़े ही धर्मात्मा थे और इस सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्माजी की हर आज्ञा को शिरोधार्य मानकर उसका पालन किया करते थे। प्रजापति दक्ष ने उनके व्यवहार और गुणों से प्रसन्न होकर अपनी तेरह कन्याओं का विवाह महर्षि कश्यप से कर दिया था। इन्हीं की संतानों से यह पूरा संसार भर गया। कश्यप मुनि की तेरह पत्नियों में से एक पत्नी का नाम दनु था। दनु रूपवती, गुणवती होने के साथ-साथ परम सौभाग्यवती थी। वह एक अत्यंत शांत साध्वी भी थी। उन्हीं दनु के अनेकों पुत्र हुए। उनका विप्रचित नाम का पुत्र बहुत ही बलशाली और पराक्रमी था। उसका भी दंभ नाम का एक पुत्र हुआ। दंभ भी अपने पिता की तरह धार्मिक विचारों को मानने वाला था। दंभ भगवान विष्णु का अनन्य भक्त था। इतना धार्मिक होने के पश्चात भी उसके कोई संतान नहीं हुई। तब वह बड़ा निराश हो गया और उसने शुक्राचार्य को अपना गुरु बनाया। उसने उनसे कृष्ण मंत्र ग्रहण किया। तत्पश्चात दंभ पुष्कर नामक तीर्थ में चला गया और वहां एक लाख वर्ष तक कठोर तपस्या करता रहा। उसकी इस कठोर तपस्या को देखकर सभी देवता ब्रह्माजी को अपने साथ लेकर भगवान विष्णु के पास गए।

भगवान विष्णु के पास पहुंचकर सभी देवताओं ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और दंभ के भीषण तप के बारे में भी बताया। तब सारी बातें जानकर भगवान श्रीहरि बोले—हे देवताओ! मैं जानता हूं कि दंभ मेरा अनन्य भक्त है। वह अपने मन में पुत्र प्राप्ति की कामना लेकर पिछले एक लाख वर्षों से मेरी कठोर तपस्या कर रहा है। मैं अवश्य ही अपने प्रिय भक्त दंभ की इच्छापूर्ति करूंगा। आप निश्चिंत होकर अपने स्थान पर चले जाइए।

भगवान श्रीहरि के इन वचनों को सुनकर ब्रह्माजी और देवराज इंद्र तथा सभी देवता उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने लोकों को चले गए। तब भगवान विष्णु भी अपने भक्त दंभ को उसकी तपस्या का फल देने के लिए पुष्कर गए। वहां उन्हें अपने सामने पाकर दंभ बहुत प्रसन्न हुआ और उनके चरणों में लेटकर उन्हें प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा। तब श्रीविष्णु बोले—हे दंभ! मैं तुम्हारी इस कठोर तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। तुम अपना अभीष्ट वर मांग सकते हो। आज मैं तुम्हारी हर मनोकामना पूर्ण करूंगा।

भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर दंभ हाथ जोड़कर बोला—हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने जैसा वीर और पराक्रमी पुत्र प्रदान कीजिए। तब श्रीहरि विष्णु

‘तथास्तु’ कहकर वहां से अंतर्धान हो गए। इसके बाद दंभ भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आया। कुछ समय पश्चात दंभ की पत्नी गर्भवती हुई। तब दंभ के घर में एक अलौकिक तेज विद्यमान था। समय आने पर दंभ की पत्नी के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। मुनियों ने उसका नामकरण-संस्कार करके उसका नाम शंखचूड़ रखा।

अट्ठाईसवां अध्याय

शंखचूड़ का विवाह

सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! भगवान श्रीहरि विष्णु के वरदान के फलस्वरूप दंभ को एक वीर पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम शंखचूड़ रखा गया। शंखचूड़ भी धार्मिक था। अपने परम पूज्य गुरु के अमृत वचनों का शंखचूड़ के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह पुष्कर नामक तीर्थ में जाकर एकाग्र मन से तपस्या करने लगा। उसने अपनी इंद्रियों को अपने वश में कर लिया और अनेकानेक मंत्रों द्वारा ब्रह्माजी की साधना करने लगा। उसकी भक्तिभाव से की गई आराधना से शीघ्र ही ब्रह्माजी प्रसन्न हो गए।

एक दिन जब शंखचूड़ प्रतिदिन की भांति तपस्या में मग्न था, ब्रह्माजी उसके सामने प्रकट हो गए। अपने आराध्य को एकाएक अपने सामने इस प्रकार खड़ा देखकर शंखचूड़ की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। वह ब्रह्माजी के चरणों में लेट गया और उनके पैरों पर अपना सिर रखकर उनकी स्तुति करने लगा। ब्रह्माजी ने शंखचूड़ को ऊपर उठाया और उससे कहा—हे वत्स! मैं तुम्हारी आराधना से बहुत प्रसन्न हूं। तुम जो चाहो मुझसे वरदान मांग सकते हो। मैं तुम्हारी सभी कामनाएं पूरी करूंगा।

अपने आराध्य ब्रह्माजी के ये वचन सुनकर शंखचूड़ बोला—हे ब्रह्माजी! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिए कि मुझे कोई भी जीत न सके। शंखचूड़ के इस वर को सुनकर ब्रह्माजी बोले—ऐसा ही होगा और फिर उसे भगवान श्रीकृष्ण का अक्षय कवच देते हुए वे कहने लगे कि शंखचूड़ अब तुम बद्रिकाश्रम चले जाओ। वहां सकामा तुलसी तपस्या कर रही है। तुम वहां जाकर धर्मराज की कन्या तुलसी से विवाह कर लो। यह कहकर ब्रह्माजी वहां से अंतर्धान हो गए। ब्रह्माजी के अंतर्धान होने पर शंखचूड़ बद्रिकाश्रम की ओर चल दिया। वहां जाकर वह तुलसी के पास पहुंचा। शंखचूड़ को अपने सामने खड़ा देखकर वह बोली—मैं धर्मराज की पुत्री तुलसी हूं। आप कौन हैं और यहां किसलिए आए हैं। कृपया आप यहां से चले जाएं। आप शायद नहीं जानते कि स्त्री जाति मोहिनी होती है।

तुलसी के वचन सुनकर शंखचूड़ बोला—हे देवी! आपके वचन सत्य हैं परंतु यहां मैं अपने आराध्य भगवान ब्रह्माजी की आज्ञा से आया हूं। मैं दनु का वंशज, दानव दंभ का पुत्र शंखचूड़ हूं। पूर्व में राधिका के दिए शाप के कारण मैं दानव कुल में जन्मा हूं। यह सब कहकर शंखचूड़ चुप हो गया।

तब तुलसी बोली—यह सत्य है कि इस संसार में वही पुरुष श्रेष्ठ है जो स्त्री से पराजित हो जाते हैं परंतु आज मैं भी तुम्हारी स्पष्टवादिता से अत्यंत प्रभावित हुई हूं। जब इस प्रकार शंखचूड़ और तुलसी आपस में बातें कर रहे थे तभी वहां ब्रह्माजी प्रकट हो गए। उन्हें देखकर, तुलसी और शंखचूड़ दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। तुम दोनों यहां अभी तक बातें ही कर रहे हो? शंखचूड़! मैंने तुम्हें यहां तुलसी का पाणिग्रहण करने के लिए भेजा था। तुम

निश्चय ही पुरुषों में श्रेष्ठ हो और तुलसी निःसंदेह ही स्त्रियों में रत्न है। तुम दोनों एक-दूसरे के लिए ही बने हो। इसलिए तुम्हें शीघ्र ही एक-दूसरे का हो जाना चाहिए।

शंखचूड़ और तुलसी को विवाह करने के लिए कहकर ब्रह्माजी वहां से चले गए। ब्रह्माजी का आदेश मानते हुए तुलसी और शंखचूड़ ने गंधर्व रीति से विवाह कर लिया। तत्पश्चात वे दोनों अनेक सुंदर मनोरम स्थानों पर अनेकों वर्षों तक विहार करते रहे। एक-दूसरे का साथ पाकर वे बहुत प्रसन्न थे।

उन्तीसवां अध्याय

शंखचूड़ के राज्य की प्रशंसा

व्यास जी बोले—हे ब्रह्माजी के पुत्र सनत्कुमार जी! जब संसार के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी की आज्ञा से तुलसी और शंखचूड़ ने गंधर्व रीति से विवाह कर लिया, तब फिर क्या हुआ? उन दोनों ने क्या किया?

व्यास जी के इस प्रकार के प्रश्न सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! शंखचूड़ और देवी तुलसी ने ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह कर लिया और वह उसे अपने साथ लेकर अपने घर वापिस आ गया। जब दानवों को इस बात की सूचना मिली कि शंखचूड़ को ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त हुआ है तो वे सभी बहुत प्रसन्न हुए। दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने स्वयं वहां आकर शंखचूड़ को ढेरों आशीर्वाद प्रदान किए। तत्पश्चात उन्होंने शंखचूड़ को असुरों का आधिपत्य देते हुए उसका राज्याभिषेक कराया। राजसिंहासन संभालने के पश्चात शंखचूड़ बहुत प्रसन्न था। तब शुक्राचार्य बोले—हे असुरराज! शंखचूड़! तुम निःसंदेह ही वीर और पराक्रमी हो। तुम्हें आज असुरों का राज्य सौंपकर मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। अब इस राज्य का विस्तार करना और असुरों की रक्षा करने का दायित्व तुम्हारा है। मुझे तुम्हारी प्रतिभा पर पूरा विश्वास है।

यह कहकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य वहां से चले गए। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर शंखचूड़ राज्य करने लगा। उसने अपने राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से अपनी विशाल सेना को इंद्रलोक पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। वह स्वयं भी उस युद्ध में जा खड़ा हुआ। असुरों और देवताओं में बड़ा भयानक युद्ध शुरू हो गया। देवताओं ने अनेक असुरों को मार गिराया, अनेकों को घायल कर दिया। यह देखकर असुर सेना विचलित होकर इधर-उधर भागने लगी। इसे देखकर असुरराज शंखचूड़ का क्रोध सातवें आसमान पर जा पहुंचा। अपनी पूरी शक्ति से युद्ध करते हुए उसने देव सेना को खदेड़ दिया।

दैत्यराज शंखचूड़ से डरकर देव सेना तितर-बितर हो गई और अपने प्राणों की रक्षा के लिए गुफाओं और कंदराओं में जाकर छुप गई। महाबली, वीर प्रतापी शंखचूड़ ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया और स्वर्ग के सिंहासन पर विराजमान हो गया। सूर्य, अग्नि, चंद्रमा, कुबेर, यम, वायु आदि सभी देवता शंखचूड़ के अधीन हो गए। अनेक देवता शंखचूड़ के डर से भाग निकले। जो देवता वहां से भाग निकले थे वे अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। जब उन्हें यह समझ नहीं आया कि अब वे क्या करें और कहां जाएं, तब वे सब देवता मिलकर ऋषि-मुनियों को साथ लेकर ब्रह्माजी की शरण में गए।

ब्रह्माजी के पास पहुंचकर देवताओं ने उन्हें प्रणाम कर उनकी स्तुति की। तत्पश्चात उन्होंने शंखचूड़ के आक्रमण और स्वर्ग पर उसके आधिपत्य के बारे में सबकुछ ब्रह्माजी को बता दिया। ब्रह्माजी ने आश्वासन देते हुए कहा कि इस विषय में भगवान विष्णु ही हमें कोई सही

मार्ग बता सकते हैं। अतः हम सभी को उनके पास चलना चाहिए। यह कहकर वे सब श्रीहरि से मिलने के लिए बैकुण्ठलोक को चल दिए।

बैकुण्ठलोक पहुंचकर देवराज इंद्र और ब्रह्माजी सहित सभी देवताओं ने लक्ष्मीपति विष्णुजी की स्तुति की और उन्हें सारी बातों से अवगत कराया। देवताओं का दुख सुनकर विष्णुजी ने उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए कहा—हे देवताओ! आप इस प्रकार दुखी न हों। मैं शंखचूड़ के बारे में सभी कुछ जानता हूं। पहले वह मेरा अनन्य भक्त था। इस बारे में हमें देवाधिदेव महादेव जी से विचार-विमर्श करना चाहिए क्योंकि वे ही इस समस्या का सही समाधान बता सकते हैं। यह कहकर वे ब्रह्माजी और अन्य देवताओं को अपने साथ लेकर शिवलोक की ओर चल दिए।

तीसवां अध्याय

देवताओं का शिवजी के पास जाना

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! इस प्रकार ब्रह्माजी और अन्य देवताओं को अपने साथ लेकर विष्णुजी भगवान शिव से मिलने के लिए शिवलोक पहुंचे। वहां शिवलोक में भगवान शिव के सभी गण उन्हें घेरकर खड़े हुए थे। भगवान शिव अपनी प्रिय देवी पार्वती के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे। भगवान शिव ने अपने शरीर पर भस्म धारण की हुई थी। उनके गले में रुद्राक्ष की माला थी। त्रिनेत्रधारी भगवान शिव-शंकर देवी पार्वती के साथ बैठे वहां अद्भुत शोभा पा रहे थे।

उनका वह अद्भुत और दिव्य रूप देखकर भगवान विष्णु, ब्रह्माजी, देवराज इंद्र सहित अन्य सभी देवताओं को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने देवाधिदेव, कृपानिधान भगवान शिव को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करनी आरंभ कर दी।

देवता बोले—हे करुणानिधान! हे भक्तवत्सल भगवान शिव! आप सर्वेश्वर हैं। आप परम ज्ञानी हैं। आप सबकुछ जानने वाले हैं। प्रभु! आपकी आज्ञा से ही इस संसार में हर कार्य होता है। आपकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। भगवन्! आप तो सबकुछ जानते हैं। हे भक्तवत्सल! आप सदा ही अपने भक्तों की रक्षा करते हैं और उनकी सभी इच्छाओं को पूरा कर उनके अभीष्ट कार्यों को पूरा करते हैं। भगवन्! हम इस समय बड़े दुखी होकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपकी शरण में आए हैं। दानवराज दंभ के पुत्र शंखचूड़ ने बलपूर्वक हमारे राज्य पर अपना अधिकार कर लिया है। उसने अनेक देवताओं को अपना बंदी बना लिया है और देवसेना को घायल कर कइयों को मौत के घाट उतार दिया है। किसी तरह हम अपनी जान बचाकर वहां से भाग निकले हैं। भगवन्! आप अपने भक्तों के रक्षक हैं। हम आपकी शरण में आए हैं। आप हम दुखियों के दुखों को दूर कीजिए। उस शंखचूड़ नामक दैत्य ने हमारा जीना मुश्किल कर दिया है। आप उसको दण्ड देकर हमें मुक्त कराइए और हमारा उद्धार कीजिए। यह कहकर सब देवता चुप होकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

इकत्तीसवां अध्याय

शिवजी द्वारा देवताओं को आश्वासन

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! इस प्रकार देवताओं की करुण प्रार्थना और अनुनय-विनय सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव बोले—हे श्रीहरि! हे ब्रह्माजी और अन्य सभी देवताओ! मैं दैत्यराज शंखचूड़ के विषय में सबकुछ जानता हूं। असुरराज शंखचूड़ भले ही देवताओं का शत्रु एवं प्रबल विरोधी हो गया हो परंतु वह अभी भी धार्मिक है और सच्चे हृदय से धर्म का पालन करता है परंतु फिर भी तुम लोग मेरे पास मेरी शरण में आए हो और शरणागत की रक्षा करना सभी का कर्तव्य है। इसलिए मैं तुम्हारी रक्षा करने का वचन देता हूं। तुम अपनी व्यर्थ की चिंताएं त्याग दो और प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान पर लौट जाओ। मैं निश्चय ही शंखचूड़ का संहार करके उसके द्वारा दिए गए कष्टों से तुम्हें मुक्ति दिलाकर तुम्हारा स्वर्ग का राज्य तुम्हें वापस दिलाऊंगा। भगवान शिव जब इस प्रकार से देवताओं को शंखचूड़ के वध का आश्वासन दे ही रहे थे, तभी उनसे मिलने के लिए राधा के साथ श्रीकृष्ण वहां पधारे। भगवान शिव को प्रणाम करके वे प्रभु की आज्ञा से उनके पास ही बैठ गए। श्रीकृष्ण और राधा ने महादेव जी की मन में बहुत स्तुति की। जब भगवान शिव ने उनसे उनके आने का कारण पूछा, तब श्रीकृष्ण बोले—हे कृपानिधान! दयानिधि! आप तो सबकुछ जानते हैं। आप ही इस जगत में सनाथ हैं। आप तो जानते ही हैं कि मैं और मेरी पत्नी दोनों ही शाप भोग रहे हैं। मेरा पार्षद सुदामा भी शाप के कारण दानव की योनि में अपना जीवन जी रहा है। आप भक्तवत्सल हैं। प्रभु! हम आपकी शरण में आए हैं। हम पर अपनी कृपादृष्टि करिए और हमें हमारे दुखों से मुक्ति दिलाइए। भगवन्! अब हमें इस शाप से मुक्ति दिलाइए।

भगवान श्रीकृष्ण की इस प्रार्थना को सुनकर देवाधिदेव महादेव जी बोले—हे कृष्णा! आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। निश्चय ही आपका कल्याण होगा। आप शाप के अनुसार बारह कल्प तक इस शाप को भोगने के पश्चात ही राधा सहित अपने निवास बैकुण्ठलोक को प्राप्त होओगे। आपका सुदामा नामक पार्षद इस समय दानव योनि में शंखचूड़ के रूप में सभी को दुख दे रहा है। इस समय वह देवताओं का प्रबल विरोधी और शत्रु है। देवताओं को उसने बहुत कष्ट दिया है। उनका राज्य छीनकर उन्हें बंदी बना लिया है। तब भगवान शिव बोले कि मैं आपके दुखों और कष्टों को समझता हूं। अब आपको चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः सबकुछ भुला दो। तब उन्होंने ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु को आदेश दिया कि वे वहां से जाकर अन्य देवताओं को समझाएं कि वे निश्चिंत हो जाएं। मैं उनकी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा और उन्हें शंखचूड़ के भय से मुक्त कराऊंगा।

भगवान शिव के ये अमृत वचन सुनकर श्रीकृष्ण राधा, ब्रह्माजी सहित श्रीहरि विष्णु को बहुत संतोष हुआ। तब वे उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे। तत्पश्चात भगवान शिव से

आज्ञा लेकर सभी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थान को चले गए।

बत्तीसवां अध्याय

पुष्पदंत-शंखचूड़ वार्ता

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! जब देवाधिदेव महादेव जी ने ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इंद्र सहित श्रीकृष्ण को शंखचूड़ के वध का आश्वासन दिया, तब सब देवता प्रसन्न होकर उनसे विदा लेकर अपने-अपने धाम को चले गए। तब आगे क्या हुआ? भगवान शिव ने क्या किया?

व्यास जी का प्रश्न सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! भगवान शिव के आश्वासन देने पर कि वे असुरराज शंखचूड़ का वध करेंगे, सभी देवता अपने-अपने स्थान को चले गए। तब भगवान शिव ने विचार किया कि क्या किया जाना चाहिए? तत्पश्चात उन्होंने गंधर्वराज चित्ररथ पुष्पदंत को स्मरण किया। स्मरण करते ही पुष्पदंत तुरंत वहां शिवजी के सामने उपस्थित हो गए। पुष्पदंत ने हाथ जोड़कर महादेव जी को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की।

तत्पश्चात पुष्पदंत हाथ जोड़कर बोले—हे देवाधिदेव! कृपानिधान! करुणानिधान! मेरे लिए क्या आज्ञा है। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर उसे यथाशीघ्र ही पूरा करूंगा। यह सुनकर भगवान शिव ने पुष्पदंत को अपना दूत बनाकर शंखचूड़ के पास भेजा। अपने आराध्य भगवान शिव की आज्ञा पाकर पुष्पदंत तुरंत ही वहां से असुरराज शंखचूड़ के नगर की ओर चल दिया।

पुष्पदंत शंखचूड़ के नगर पहुंचकर उनसे मिला और बोला—हे असुरराज! मैं त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का दूत बनकर उनका संदेश लेकर आपके पास आया हूं। उन्होंने कहा है कि आप यथाशीघ्र देवताओं को उनका राज्य वापस सौंप दें अन्यथा भगवान शिव के साथ युद्ध करें। युद्ध में उनके हाथों आपका वध निश्चित है। मैंने भगवान शिव के सभी वचन आपसे कह दिए हैं। आप जो संदेश उन्हें देना चाहें, मुझे बता दें। मैं आपका संदेश भगवान शिव तक पहुंचा दूंगा।

पुष्पदंत नामक दूत की बातें सुनकर असुरराज शंखचूड़ बोला—हे मूर्ख दूत! क्या तुम मुझे बेवकूफ समझते हो? जाकर अपने स्वामी से कह दो कि मैं देवताओं को उनका राज्य वापस नहीं दूंगा। मैं वीर हूं, युद्ध से नहीं डरता। अब शिव और मेरा सामना युद्ध-भूमि में ही होगा।

असुरराज शंखचूड़ के ऐसे वचन सुनकर पुष्पदंत मन ही मन क्रोध की सारी सीमाएं पार कर गया। परंतु अपने स्वामी की आज्ञा के बिना वह कुछ नहीं करना चाहता था, इसलिए चुपचाप वापस शिवजी के पास लौट गया।

तेंतीसवां अध्याय

भगवान शिव की युद्ध यात्रा

ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! जब भगवान शिव का पुष्पदंत नामक दूत शंखचूड़ की नगरी से वापस आया तो उसने कैलाश पर्वत पर पहुंचकर भगवान शिव को असुरराज शंखचूड़ द्वारा कही गई सभी बातें बता दीं। तब दूत के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव को बहुत क्रोध आया। भगवान शिव ने अपने वीर साहसी गणों और अपने दोनों पुत्रों कार्तिकेय और गणेश को बुलाया। उन्होंने भद्रकाली सहित अपनी पूरी गण सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा प्रदान की।

भगवान शिव की आज्ञा के अनुसार उनके वीर गणों और पुत्रों ने युद्ध की सभी तैयारियां अतिशीघ्र पूरी कीं और आकर इस बात से भगवान शिव को अवगत कराया। तब त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने अपनी देव सेना और गणों के साथ दैत्यराज शंखचूड़ की नगरी की ओर प्रस्थान किया। पूरी शिवसेना प्रसन्न मन से भगवान शिव की जय-जयकार करती हुई आगे बढ़ रही थी। उनके प्रिय पुत्र गणेश और कार्तिकेय सेना के अधिपति के रूप में अपनी सेना का नेतृत्व कर रहे थे। भगवान शिव की सेना में आठों भैरव, आठों वसु, एकादश रुद्र और द्वादश सूर्य भी सम्मिलित थे।

अग्नि, चंद्रमा, विश्वकर्मा, अश्विनी कुमार, कुबेर, यम, नैर्ऋति, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध और मांगलिक ग्रह-नक्षत्र भी भगवान शिव की सेना की शोभा बढ़ा रहे थे। उनकी सेना में देवी भद्रकाली, जिनकी सौ भुजाएं थीं, अपने पार्षदों के साथ युद्धभूमि की ओर प्रस्थान कर रही थीं। भद्रकाली देवी की जीभ एक योजन लंबी और चलायमान थी। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुष-बाण आदि अनेकों वस्तुएं थीं। भद्रकाली देवी के एक हाथ में एक योजन का गोल खप्पर, एक में आकाश को स्पर्श करने वाला लंबा त्रिशूल तथा अनेक शक्तियां विद्यमान थीं। देवी भद्रकाली का अनुसरण करते हुए उनके साथ तीन करोड़ योगिनी, तीन करोड़ डाकिनियां भी थीं, जो अपनी सेना को साथ लेकर शंखचूड़ की असुर सेना को मजा चखाने के लिए पूरे जोरों-शोरों से चल रही थीं।

इस प्रकार त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की विशाल देव सेना, जिसमें हजारों वीर, बलशाली गण विद्यमान थे, पूरे मनोयोग के साथ युद्धस्थल की ओर बढ़ रही थी। तब भगवान शिव ने अपनी सेना को एक वट-वृक्ष के नीचे कुछ देर विश्राम करने के लिए कहा और स्वयं भी उसी वट-वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गए।

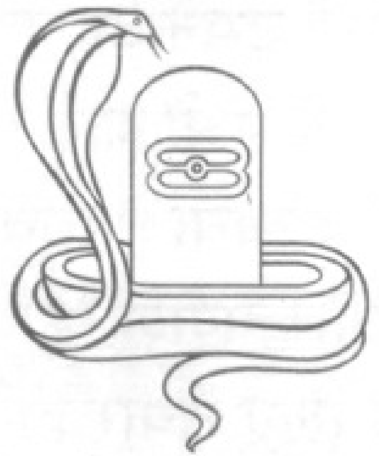

चौंतीसवां अध्याय

शंखचूड़ की युद्ध यात्रा

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! उधर दूसरी ओर जब भगवान शिव का दूत पुष्पदंत असुरराज शंखचूड़ के पास से वापस लौट गया, तब असुरराज शंखचूड़ भी अपने मन में युद्ध करने का निश्चय करके अपनी प्रिय पत्नी देवी तुलसी के पास पहुंचा। वहां उसने तुलसी को बताया कि हे देवी, अब मुझे कल सुबह युद्ध के लिए प्रस्थान करना होगा। यह सुनकर देवी तुलसी रोने लगीं। शंखचूड़ ने उन्हें ढाढ़स बंधाया और कहा कि वीरों की पत्नियां रोकर नहीं, बल्कि हंसकर उन्हें विदा करती हैं।

यह सुनकर तुलसी ने अपनी आंखों के आंसू पोंछ लिए। प्रातःकाल जागकर असुरराज शंखचूड़ ने अपने राजदरबार का उत्तरदायित्व अपने पुत्र को सौंप दिया तथा देवी तुलसी से पुत्र की सहायता करने के लिए कहा। फिर दैत्यराज शंखचूड़ ने अपनी विशाल दैत्य सेना का युद्ध के लिए आह्वान किया। अपने स्वामी दैत्यराज शंखचूड़ के बुलाने पर विशाल दैत्य सेना पल भर में संगठित हो गई। उस असुर सेना में अनेक वीर और पराक्रमी योद्धा थे। वे युद्ध करने के लिए सुसज्जित होकर आए थे। दैत्य सेना का मनोबल बहुत ऊंचा था। वे अत्यंत गर्वित थे और सोच रहे थे कि इस युद्ध में वे अवश्य ही जीतेंगे। मौर्य, कालिक और कालिकेय नामक तीन वीर असुर सेनापति के रूप में दैत्य सेना का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उस विशाल, तीन लाख अक्षौहिणी सेना को देखकर बड़े-बड़े वीर पल भर में भयभीत हो जाते थे। असुरराज शंखचूड़ अपनी विशाल दैत्य सेना को देखकर बहुत खुश हो रहा था।

तब युद्ध के लिए प्रस्थान करती हुई उस सेना का नेतृत्व स्वयं असुरराज शंखचूड़ ने आगे आकर किया। उनके पीछे वाले रथ में दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य उनका मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। इस प्रकार अपने स्वामी शंखचूड़ की जय-जयकार का उद्घोष करती हुई वह राक्षस सेना तीव्र गति से आगे बढ़ी चली जा रही थी। चलते-चलते काफी समय बीत गया। आखिर पुष्पभद्रा नामक नदी के किनारे एक अक्षय वट वृक्ष के नीचे दैत्य सेना ने अपना डेरा लगाया। वहीं से कुछ दूरी पर देव सेना ने भी अपना डेरा डाला हुआ था।

पैंतीसवां अध्याय

शंखचूड़ के दूत और शिवजी की वार्ता

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! जब इस प्रकार देवताओं की सेना लेकर भगवान शिव और राक्षसों की सेना के साथ असुरराज शंखचूड़ अपने-अपने निवासों को छोड़कर युद्ध करने के लिए यात्रा करते-करते रास्ते में रुक गए और दोनों सेनाएं कुछ ही दूर पर रुकी थीं, तब दैत्यराज शंखचूड़ ने अपने एक दूत को संदेश देकर भगवान शिव के पास भेजा।

दैत्यराज शंखचूड़ का वह दूत भगवान शिव के पास पहुंचा और बोला—हे शिव! मैं दैत्यराज शंखचूड़ का दूत हूं और उनका संदेश लेकर आपके पास आया हूं। मेरे स्वामी ने कहलवाया है कि वे यहां आ गए हैं। अब आपकी क्या इच्छा है? तब दैत्यराज के उस दूत से शिवजी बोले—दूत! तुम जाकर अपने स्वामी शंखचूड़ से कहो कि देवताओं के साथ शत्रुता छोड़कर उनसे मित्रता कर लो। उनका हड़पा हुआ राज्य उन्हें वापस कर दो और तुम सुखपूर्वक अपने राज्य पर शासन करो। दैत्यराज से कहना कि वे शुद्धकर्मी महर्षि कश्यप की संतान हैं। उन्हें ऐसा करना शोभा नहीं देता। इसलिए वे समय रहते मेरी समझाई हुई बात को समझ जाएं, अन्यथा इसके परिणाम दानवों के लिए बहुत घातक हो सकते हैं।

भगवान शिव के इस प्रकार के वचन सुनकर वह दूत पुनः बोला—हे देवाधिदेव! हालांकि आपकी बातों में कुछ सच्चाई है, परंतु क्या हमेशा हर बात में असुर ही गलत होते हैं, देवता हमेशा सही होते हैं? उनकी कभी कोई गलती नहीं होती। आपके अनुसार सारे दोष असुरों में हैं। जबकि वास्तविकता में ऐसा बिलकुल भी नहीं है। दोष केवल असुरों में ही नहीं, देवताओं में भी हैं। मैं उनका पक्ष लेने वाले आपसे पूछता हूं कि मधु और कैटभ नामक दैत्यों के सिरों को किसने काटा? त्रिपुरों को युद्ध करने के पश्चात क्यों भस्म कर दिया गया? आप सदा से ही देवताओं और दानवों में पक्षपात करते आए हैं। आप देवताओं का ही कल्याण करते हैं। जबकि ईश्वर होने के नाते आप देवताओं और असुरों दोनों के लिए ही आराध्य हैं। इसलिए आपको किसी एक के संबंध में नहीं, बल्कि दोनों के हितों को ध्यान में रखना चाहिए।

शंखचूड़ के दूत के वचनों को सुनकर कल्याणकारी शिव बोले—दूत! तुम्हारी यह बात पूर्णतः गलत है। मैं देवताओं और दानवों में कभी कोई भेद नहीं करता। मैं तो सदा से ही अपने भक्तों के अधीन हूं। मैं सदैव अपने भक्तों का कल्याण करता हूं और उनके अभीष्ट कार्यों की सिद्धि करता हूं। मुझे देवताओं पर आए संकट को दूर करना है, इसलिए मुझे असुरों से युद्ध करना ही होगा। तुम जाकर इस बात को असुरराज शंखचूड़ को बता दो। यह कहकर भगवान शिव चुप हो गए और वह दूत अपने स्वामी शंखचूड़ के पास चला गया।

छत्तीसवां अध्याय

देव-दानव युद्ध

व्यास जी ने सनत्कुमार जी से पूछा—हे ब्रह्मापुत्र! जब भगवान शिव का संदेश लेकर दैत्यराज शंखचूड़ का वह दूत वापस अपने स्वामी शंखचूड़ के पास चला गया, तब क्या हुआ? उस दूत ने शंखचूड़ से क्या कहा और उस दूत से सारी बातें जानने के पश्चात दैत्यराज शंखचूड़ ने क्या कहा? हे महर्षे! कृपा करके इस संबंध में मुझे सविस्तार बताइए।

व्यास जी के प्रश्न को सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! उस दूत ने अपने स्वामी शंखचूड़ के पास जाकर उसे भगवान शिव से हुई सारी बातें बता दीं। शिवजी की कही बातें सुनकर शंखचूड़ और अधिक क्रोधित हो उठा और उसने अपनी विशाल दैत्य सेना को तुरंत युद्ध के लिए चलने की आज्ञा प्रदान की। दूसरी ओर भगवान शिव ने भी अपने गणों और देवताओं को युद्ध भूमि की ओर प्रस्थान करने के लिए कहा। देवताओं और दानवों दोनों की सेनाएं पूरे जोश और साहस के साथ लड़ने हेतु तत्पर होकर आगे बढ़ने लगीं। दानवों की सेना में सबसे आगे शंखचूड़ था और दूसरी ओर देवसेना में त्रिलोकीनाथ भगवान शिव सबसे आगे चल रहे थे। दोनों सेनाएं अपने स्वामियों के जयघोष के साथ आगे बढ़ रही थीं। उस समय चारों ओर रणभेरियां बजने लगी थीं। कुछ ही समय पश्चात देवता और दैत्य आमने-सामने थे। एक-दूसरे को अपना घोर शत्रु समझकर दोनों एक-दूसरे पर टूट पड़े। भयानक युद्ध होने लगा। हर ओर मार-काट, चीख-पुकार मची हुई थी। युद्ध का दृश्य अत्यंत हृदय विदारक था। भगवान श्रीहरि विष्णु के साथ दंभ, कलासुर के साथ कालका, गोकर्ण के साथ हुताशन तो कालंबिक के साथ वरुण देव का युद्ध होने लगा।

सब युद्ध करने में मग्न थे परंतु भगवान शिव तथा देवी भद्रकाली अभी तक ऐसे ही बैठे थे। उन्होंने युद्ध करना शुरू नहीं किया था। उधर, दैत्यराज शंखचूड़ भी युद्ध का दृश्य देख रहा था। उस समय युद्ध अपने चरम पर था। दोनों सेनाएं घमासान युद्ध कर रही थीं। सभी बड़ी वीरता से लड़ रहे थे और युद्ध में अनेक प्रकार के आयुधों का प्रयोग कर रहे थे। कुछ ही देर में पृथ्वी कटे-मरे और घायल योद्धाओं से पट गई।

सैंतीसवां अध्याय

शंखचूड़ युद्ध

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! इस प्रकार देवताओं और दानवों में बड़ा भयानक विनाशकारी युद्ध चल रहा था। धीरे-धीरे दानव देवताओं पर भारी पड़ने लगे। तब देवता अत्यंत भयभीत होकर अपनी रक्षा हेतु इधर-उधर भागने लगे। कुछ देवता भागकर देवाधिदेव भगवान शिव की शरण में आए। तब वे देवता बोले—प्रभु! हमारी रक्षा करें। असुर सेना परास्त होने के बजाय हम पर हावी होती जा रही है। यदि शीघ्र ही कुछ नहीं किया गया, तो हम अवश्य हार जाएंगे।

देवताओं के ये वचन सुनकर भगवान शिव को बहुत क्रोध आया। वह उठकर खड़े हो गए और स्वयं युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। युद्ध स्थल में पहुंचते ही उन्होंने असुरों की अक्षौहिणी सेना का नाश कर दिया। देवी भद्रकाली भी अनेक दैत्यों को मार-मारकर उनका रक्त पीने लगी। इस प्रकार असुरों को युद्ध में कमजोर पड़ता देखकर देवताओं में एक नई जान आ गई। जो देवता इधर-उधर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भाग गए थे, वे भी आकर पुनः युद्ध करने लगे। उधर, भद्रकाली देवी क्रोध से भरकर दैत्यों को पकड़-पकड़कर अपने मुख में डालने लगी। स्कंद ने अपने बाणों से करोड़ों दानवों को मौत के घाट उतार दिया। यह देखकर असुर सेना भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करने हेतु इधर-उधर भागने लगी। असुर सेना को इस प्रकार तितर-बितर होता देखकर दानवराज शंखचूड़ क्रोधित होकर स्वयं युद्ध में कूद पड़ा। उसने अपने हाथों में धनुष बाण उठाया और भयानक बाणों की वर्षा करनी प्रारंभ कर दी। देखते ही देखते शंखचूड़ ने देवसेना के अनेकों सैनिकों का संहार कर दिया। यह देखकर स्कंद देव आगे बढ़े और शंखचूड़ को ललकारने लगे। शंखचूड़ ने क्रोधित होकर स्कंद पर पलटकर वार किया। उसने स्कंद का धनुष काट दिया और पूरी शक्ति से स्कंद की छाती पर प्रहार किया। फलस्वरूप स्कंद मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

कुछ ही देर बाद स्कंद उठकर खड़े हो गए और उन्होंने अपने बाण से शंखचूड़ के रथ में छेद कर दिया। यही नहीं, स्कंद ने शंखचूड़ का कवच, किरीट आदि कुण्डल भी गिरा दिया। तत्पश्चात उसने एक भयानक विष बुझी शक्ति से शंखचूड़ पर प्रहार किया। इस प्रहार से शंखचूड़ मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ा और काफी समय तक ऐसे ही पड़ा रहा। कुछ समय पश्चात वह ठीक होकर पुनः युद्ध करने लगा। इस बार उसने भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय को अपना निशाना बनाया और उस पर भयानक शक्ति का प्रहार किया, जिससे कार्तिकेय बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े।

तब कार्तिकेय को इस प्रकार धरती पर बेहोश पड़ा हुआ देखकर देवी भद्रकाली उन्हें गोद में उठा लाईं। उनकी दशा देखकर शिवजी ने उन पर अपने कमण्डल का जल छड़का। जल छिड़कते ही कार्तिकेय फौरन उठ बैठे और पुनः युद्ध करने के लिए चल दिए। दूसरी ओर

वीरभद्र और शंखचूड़ का भयानक युद्ध चल रहा था। यह कह पाना कठिन था कि दोनों में से कौन अधिक वीर और बलशाली है। एक-दूसरे पर वे बड़े शक्तिशाली ढंग से प्रहार कर रहे थे। देवी भद्रकाली भी पुनः युद्ध में आकर दानवों का भक्षण करने लगीं।

अड़तीसवां अध्याय

भद्रकाली-शंखचूड़ युद्ध

सनत्कुमारजी बोले—हे व्यास जी! देवी भद्रकाली ने युद्धभूमि में जाकर भयंकर सिंहनाद किया, जिससे डरकर अनेकों दानव मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। भद्रकाली ने अपने तेज और नुकीले दांतों से दानवों का रक्त चूसना शुरू कर दिया। यह देखकर युद्धरत दानव भय से आतंकित हो उठे। वे डरकर इधर-उधर भागने लगे। यह देखकर दानवराज शंखचूड़ दौड़कर देवी भद्रकाली से युद्ध करने के लिए आगे आया।

शंखचूड़ को सामने खड़ा देखकर भद्रकाली ने प्रलय अग्नि के समान भयंकर बाणों की वर्षा करनी शुरू कर दी परंतु शंखचूड़ ने वैष्णव नामक अस्त्र से उस वर्षा को शांत कर दिया। देवी भद्रकाली ने उसके जवाब में नारायण अस्त्र चलाया परंतु शंखचूड़ हाथ जोड़कर उस अस्त्र को प्रणाम करने लगा, जिससे वह नारायण अस्त्र वहीं पर शांत हो गया। दैत्यराज शंखचूड़ अपने भयानक बाणों से देवी पर प्रहार करता और देवी उन असंख्य बाणों को अपनी विकराल दाढ़ों से चबा जातीं। इस प्रकार देवी और शंखचूड़ में भयानक संग्राम होने लगा। तभी क्रोधित भद्रकाली ने पाशुपात नामक ब्रह्मास्त्र उठा लिया परंतु तभी आकाशवाणी हुई कि अभी दैत्येंद्र की मृत्यु का समय नहीं आया है और इसकी मृत्यु आपके हाथों से नहीं लिखी है।

तब देवी ने पाशुपात अस्त्र को वापस कर दिया और उसे काटने के लिए दौड़ीं। यह देखकर असुरराज ने रौद्रास्त्र चलाकर उनकी गति को कम किया। तब भद्रकाली ने असुरराज द्वारा प्रयोग की गई सारी शक्तियों को तहस-नहस कर दिया और आगे बढ़कर शंखचूड़ की छाती पर अपने मुक्के का जोरदार प्रहार किया। इस प्रहार से शंखचूड़ बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा। लेकिन कुछ ही देर पश्चात पुनः उठकर वह भद्रकाली देवी से युद्ध करने लगा।

तब देवी ने उसे कसकर पकड़ लिया और चारों ओर घुमाकर धरती पर फेंक दिया। शंखचूड़ कुछ समय तक ऐसे ही पड़ा रहा। तब देवी ने अन्य दानवों का वध करना शुरू कर दिया। शंखचूड़ चुपचाप उठा और जाकर अपने रथ पर धीरे से बैठ गया।

उन्तालीसवां अध्याय

शंखचूड़ की सेना का संहार

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! जब देवी भद्रकाली द्वारा युद्ध में घायल होकर शंखचूड़ पुनः अपने रथ पर जाकर बैठ गया, तब क्या हुआ? भगवान शिव ने, जो उस युद्ध में असुरराज शंखचूड़ का वध करने के लिए ही आए थे, क्या किया? कृपा कर मुझे इस कथा को सविस्तार सुनाइए।

व्यास जी की इस जिज्ञासा को शांत करते हुए सनत्कुमार जी ने कहना आरंभ किया। वे बोले—हे महामुने! जब देवी भद्रकाली ने असुरराज शंखचूड़ को उठाकर बलपूर्वक जमीन पर पटक दिया तो कुछ समय तक शंखचूड़ इस प्रकार से धरती पर पड़ा रहा मानो मूर्च्छित हो गया हो। तब देवी जाकर दानवों पर प्रलय की भांति टूट पड़ीं। दूसरी ओर कुछ देवताओं ने भगवान शिव के पास जाकर उन्हें भद्रकाली और शंखचूड़ के इस भयानक युद्ध के बारे में बताया। ये सारी बातें सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव स्वयं युद्ध करने के लिए आगे बढ़े।

जब कल्याणकारी सर्वेश्वर देवाधिदेव भगवान शिव अपने वाहन नंदीश्वर पर चढ़कर आरूढ़ होकर युद्ध स्थल में पधारे तो उन्हें देखकर असुरराज शंखचूड़ ने उनका अभिवादन किया। तत्पश्चात शंखचूड़ अपने विमान पर चढ़ गया और भगवान शिव से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। उसने अपना रक्षा कवच पहना और युद्ध करने के लिए अपने हाथ में धनुष-बाण उठा लिया। वह पूरे उत्साह के साथ भगवान शिव पर दिव्यास्त्रों का प्रहार कर रहा था।

इस प्रकार त्रिलोकीनाथ भगवान शिव और असुरराज शंखचूड़ का भयानक युद्ध सौ वर्षों तक निरंतर चलता रहा। महावीर और पराक्रमी शंखचूड़ ने अनेक शक्तिशाली बाणों और असंख्य मायावी अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग शिवजी पर किया परंतु परमेश्वर शिव ने उन सबको पल भर में काट दिया। भगवान शिव ने क्रोधित होकर उस पर पुनः प्रहार किया। यह देखकर शंखचूड़ ने चतुराई से काम लेते हुए मन में सोचा कि यदि मैं भगवान शिव के वाहन को ही नुकसान पहुंचा दूं तो वे पल भर में ही जमीन पर आ गिरेंगे और इस प्रकार मैं उन पर झपटकर उन्हें अपने वश में कर लूंगा। यह विचार मन में आते ही शंखचूड़ ने शिवजी के वाहन नंदीश्वर के सिर पर तलवार से वार किया परंतु देवाधिदेव ने क्षणमात्र में ही उस तलवार के दो टुकड़े कर दिए।

अपने प्रिय नंदीश्वर को युद्ध में निशाना बनता देखकर उनके सब्र का बांध टूट गया और उन्होंने अपने तेज बाणों से दैत्यराज की ढाल को भी काट दिया। जब तलवार और ढाल दोनों ही खराब हो गईं, तब शंखचूड़ ने अपनी गदा से युद्ध लड़ना आरंभ कर दिया परंतु गदा का भी हाल वही हुआ जो तलवार और ढाल का हुआ था। तभी देवी भद्रकाली वहां पहुंचकर राक्षसों को मारने-काटने लगीं। देखते ही देखते उन्होंने अनेकों वीर दैत्यों का संहार कर दिया।

कई का रक्त चूस लिया और बहुतों को अपने मुख में डालकर जिंदा ही निगल लिया।

अपनी विशाल दैत्य सेना का इस प्रकार सर्वनाश होता देखकर शंखचूड़ को अत्यधिक पीड़ा हुई। उसका दर्द तब और भी बढ़ गया जब उसने अपने साहसी वीर राक्षसों को प्राण बचाने के लिए जहां-तहां भागते हुए देखा।

चालीसवां अध्याय

शिवजी द्वारा शंखचूड़ वध

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! अपनी विशाल सेना का इस प्रकार संहार होता देखकर असुरराज शंखचूड़ अत्यंत क्रोधित होकर निरंतर उन पर अस्त्रों का प्रहार करने लगा। तत्पश्चात उसने अपनी माया का प्रयोग करते हुए सभी देवताओं सहित देवाधिदेव महादेव को भयभीत करने का प्रयास किया परंतु इस जगत के स्वामी को इस प्रकार भला कोई डरा सकता है क्या? देवाधिदेव महादेव जी उसकी माया से तनिक भी भयभीत नहीं हुए और उन्होंने शंखचूड़ पर अनेक दिव्य शक्तियों से प्रहार किया। जिनके फलस्वरूप शंखचूड़ की माया पल भर में ही विलुप्त हो गई।

क्रोधित महादेव जी ने दैत्येंद्र का वध करने के लिए अपने हाथ में त्रिशूल उठा लिया। जैसे ही वे त्रिशूल का प्रहार करने आगे बढ़े, तभी उन्हें एक आकाशवाणी सुनाई दी जो कि सिर्फ शिवजी के लिए ही थी। आकाशवाणी बोली—हे कल्याणकारी शिव! आप तो सर्वेश्वर हैं। इस जगत के स्वामी हैं। आपकी आज्ञा के बिना तो इस जगत में कुछ हो ही नहीं सकता। भगवन्! आप इस तुच्छ राक्षस का वध करने के लिए त्रिशूल का प्रयोग क्यों कर रहे हैं? इसे मारना आपके लिए बहुत ही आसान है। भगवन्! आप तो सब वेदों के परम ज्ञाता हैं तथा सबकुछ जानते हैं। जब तक शंखचूड़ के पास भगवान विष्णु का कवच और पतिव्रता स्त्री है, तब तक शास्त्रानुसार यह अवध्य है।

आकाशवाणी सुनते ही भगवान शिव ने अपने त्रिशूल को तुरंत ही रोक दिया और मन में श्रीहरि विष्णु का स्मरण किया। श्रीहरि अगले ही क्षण हाथ जोड़े उनके सामने उपस्थित हो गए। तब शिवजी ने विष्णुजी को इस संकट को दूर करने का आदेश दिया। भगवान विष्णु ने तुरंत एक ब्राह्मण का वेश धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए दैत्यराज शंखचूड़ के पास पहुंच गए। वहां पहुंचकर विष्णुजी ने भिक्षा मांगी। तब शंखचूड़ ने पूछा—हे ब्राह्मण देव! आपको क्या चाहिए? मैं अवश्य ही दूंगा। परंतु पहले यह बताइए तो सही कि आप क्या चाहते हैं? तब ब्राह्मण का रूप धारण किए हुए विष्णुजी बोले कि पहले प्रतिज्ञा करो कि मैं जो मांगूंगा, तुम मुझे दोगे।

इस प्रकार जब शंखचूड़ ने ब्राह्मण को उसकी इच्छित वस्तु देने का वचन दे दिया, तब विष्णुजी ने उससे उसका कवच मांग लिया। कवच लेने के पश्चात वे ब्राह्मण के रूप में ही दैत्यराज की पत्नी देवी तुलसी के पास गए। मायावी विष्णुजी देवताओं के कार्य को पूरा करने के लिए देवी तुलसी के साथ भक्तिपर्वूक विहार करने लगे।

दूसरी ओर, जब भगवान शिव को अपनी दिव्य अलौकिक शक्ति द्वारा इस बात का ज्ञान हुआ कि शंखचूड़ की रक्षा करने वाला कवच और उसकी पतिव्रता स्त्री की शक्ति, अब उसके साथ नहीं रही, तो तुरंत ही उन्होंने अपना विजय नामक त्रिशूल उठा लिया और पूरी शक्ति से

उस त्रिशूल का प्रहार दैत्यराज पर किया। उस दिव्य त्रिशूल के प्रहार से पल भर में ही शंखचूड़ के प्राण पखेरू उड़ गए।

दैत्यराज शंखचूड़ के मरते ही आकाश में दुंदुभियां बजने लगीं। चारों दिशाओं में मंगल गान होने लगा और भगवान शिव पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। वहां उपस्थित सभी देवता भगवान शिव की स्तुति करने लगे और उनको धन्यवाद कहने लगे। असुरराज शंखचूड़ भी भगवान शिव के हाथों मृत्यु को प्राप्त होकर अपने शाप से मुक्त हो गया। उसकी हड्डियों से एक विशेष शंख की जाति बनी। उस शंख में रखा गया जल अत्यंत शुद्ध माना जाता है और उसका प्रयोग देवताओं पर जल चढ़ाने के लिए तथा घरों को शुद्ध करने के लिए किया जाता है। वह जल देवी लक्ष्मी और श्रीहरि विष्णु को बहुत प्रिय है परंतु इस जल को भगवान शिव की पूजा में प्रयोग नहीं किया जाता।

इस प्रकार दैत्यराज शंखचूड़ के वध के पश्चात कल्याणकारी भगवान शिव प्रसन्नतापूर्वक नंदीश्वर पर आरूढ़ होकर देवी भद्रकाली, कुमार कार्तिकेय और गणेश सहित अपने अनेकों गणों को साथ लेकर पुनः अपने निवास कैलाश पर्वत की ओर चल दिए। तत्पश्चात अन्य देवता भी प्रसन्न हृदय से अपने लोकों को चले गए।

इकतालीसवां अध्याय

तुलसी द्वारा विष्णुजी को शाप

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी! भगवान विष्णु ने पतिव्रता तुलसी को किस प्रकार अपने अधीन कर लिया? किस प्रकार पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली देवी तुलसी एकाएक धर्म से विमुख होकर अधर्म का आचरण करने लगीं? कृपा कर इस कथा को मुझे बताइए।

व्यास जी के प्रश्न को सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! देवताओं के हित का सदा ध्यान रखने वाले भगवान विष्णु ने अपने आराध्य भगवान शिव की आज्ञा पाकर उनके द्वारा बताए गए कार्यों को पूर्ण करना अपना ध्येय माना। तब तुरंत वे ब्राह्मण का वेश धरकर शंखचूड़ से उसका कवच ले आए। तत्पश्चात वे अतिशीघ्र दैत्यराज शंखचूड़ के नगर की ओर चल दिए। भगवान विष्णु ने दैत्येंद्र के नगर के समीप पहुंचने से पहले ही अपना रूप बदल लिया। उन्होंने शंखचूड़ का रूप धारण कर लिया। फिर वे देवी तुलसी के पास पहुंचे। अपने पति शंखचूड़ को सामने पाकर देवी तुलसी फूली नहीं समाई। वह उनके गले से लग गई। उसकी आंखों से अश्रुधारा बही जा रही थी। उसने अपने स्वामी को सिंहासन पर बैठाकर उनके चरणों को धोया और युद्ध का समाचार पूछा।

शंखचूड़ का रूप धारण किए हुए भगवान विष्णु बोले—हे प्रिये! युद्ध के मध्य में ही ब्रह्माजी ने मेरे और भगवान शिव के बीच संधि करा दी। इसलिए मैं वापस आ गया हूं। भगवान शिव भी वापस कैलाश पर्वत पर चले गए हैं। यह कहकर उन्होंने देवी तुलसी की जिज्ञासा को शांत कर दिया। तत्पश्चात शंखचूड़ बने भगवान विष्णु तुलसी के साथ आनंदपूर्वक रमण करने लगे परंतु झूठ की हांडी रोज नहीं चढ़ती। एक दिन देवी तुलसी को ज्ञात हुआ कि उसके साथ रमण करने वाला पुरुष उसका पति शंखचूड़ नहीं बल्कि कोई और है।

यह पता चलते ही देवी तुलसी आत्मग्लानि से भर उठी। उन्हें स्वयं से घृणा होने लगी। वह क्रोध से वेश बदले श्रीविष्णु पर फट पड़ीं। उन्होंने श्रीविष्णु से पूछा—तू कौन है? मुझे सच-सच बता। क्यों तूने मुझ जैसी पतिव्रता स्त्री का पतिव्रत धर्म नष्ट कर दिया? मैं तुझे नहीं छोड़ूंगी। ये वचन सुनकर विष्णु भगवान ने भयभीत होकर अपने स्थान पर अपनी एक मूर्ति बना दी ताकि देवी तुलसी उनके विषय में कुछ न जान पाएं परंतु तुलसी ने उनके पद्चिन्हों से विष्णुजी को पहचान लिया। तब गुस्से से उन्होंने भगवान विष्णु को शाप देते हुए कहा—हे विष्णो! लोग तुम्हें भगवान मानकर तुम्हारी पूजा करते हैं पर वास्तव में तुम पूजा के योग्य नहीं हो। तुम तो सिर्फ पत्थर हो। तुम्हारे मन में दयाभाव नाम की कोई वस्तु नहीं है। तुमने मेरे सतीत्व को भंग किया है और मेरे पति शंखचूड़ को मार डाला है। इसलिए मैं तुम्हें शाप देती हूं कि तुम आज, अभी से पत्थर के हो जाओगे। यह कहकर देवी तुलसी अत्यंत दुखी मन से

रोने लगीं।

देवी तुलसी का दिया शाप सुनकर भगवान विष्णु भी दुखी हुए और भगवान शिव का स्मरण करने लगे। विष्णुजी की पुकार सुनकर भक्तवत्सल भगवान शिव वहां प्रकट हो गए। उन्हें देखकर देवी तुलसी और विष्णुजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तब वे देवी तुलसी को समझाने लगे। उन्होंने तुलसी को समझाया कि देवी तुलसी यह तो पूर्व निश्चित था। शंखचूड़ को मिले शाप के फलस्वरूप उसका जन्म दानव कुल में हुआ और इसी कारण उसे मेरे हाथों मृत्यु प्राप्त हुई है। देवी तुम्हारी मनोस्थिति मैं समझ सकता हूं परंतु यह संसार नश्वर है। अतः तुम अपने द्वारा की गई तपस्या का फल लो और इस शरीर को त्याग दो। मेरे आशीर्वाद के फलस्वरूप तुम्हें दिव्य देह की प्राप्ति होगी। तुम्हारी श्रीहरि में विशेष प्रीति होगी। इस शरीर को त्यागने के पश्चात जब तुम नया शरीर धारण करोगी तो तुम गण्डकी नाम की नदी होगी और सभी के द्वारा पूजित होने के कारण प्रधान रूपा तुलसी के नाम से विख्यात होगी। चाहे स्वर्ग हो या पाताल या फिर पृथ्वी तुम वनस्पतियों में श्रेष्ठ होगी तथा श्रीहरि की विशेष कृपा सदा तुम पर रहेगी। तुमने जो श्रीहरि को शाप दिया है, वह भी अवश्य पूरा होगा। गण्डकी के तट पर सदा भगवान विष्णु भी पाषाण के रूप में स्थित होंगे। तेज दांतों वाले अनेक कीड़े उस शिला को छेद-छेदकर उसमें चक्र बना देंगे। उस शिला को इस जगत में शालिग्राम के नाम से प्रसिद्धि मिलेगी। यह कहकर भगवान शिव अंतर्धान हो गए।

तत्पश्चात देवी तुलसी ने अपना शरीर त्याग दिया और गण्डकी नदी बन गईं। तब श्रीविष्णु ने भी उस नदी के तट पर पाषाण के रूप में निवास किया।

बयालीसवां अध्याय

हिरण्याक्ष-वध

नारद जी बोले—हे ब्रह्मान! आप मुझे भगवान शिव की उन उत्तम लीलाओं के विषय में बताइए, जिनकी ये लीलाएं बड़ी सुखदायिनी हैं। ब्रह्माजी बोले—जलंधर के संहार के बारे में जानकर देवी सत्यवती के पुत्र व्यास जी सनत्कुमार जी से यही बातें पूछने लगे। तब उनकी उत्सुकता देखकर सनत्कुमारजी बोले—हे व्यास जी! अब मैं तुम्हें अंधकासुर नामक दैत्य के शिवगण बन उनकी भक्ति में लीन रहने की कथा सुनाता हूं। एक समय की बात है, देवाधिदेव भगवान शिव अपनी प्राण वल्लभा देवी पार्वती और अपने प्रिय गणों के साथ कैलाश पर्वत से काशी जा रहे थे। उनका विचार कुछ समय काशी में व्यतीत करने का था। इसलिए उन्होंने अपने वीर गण भैरव को काशी का रक्षक बना दिया और स्वयं सबके साथ सुखपूर्वक निवास करने लगे। एक बार भगवान शिव, पार्वती देवी के साथ आनंदपूर्वक विहार करते हुए मंदराचल नामक पर्वत पर गए। एक दिन शिव-पार्वती बैठे आपस में वार्तालाप और मनोविनोद कर रहे थे। तभी देवी पार्वती ने अपने हाथों से भगवान शिव के नेत्र कुछ पल के लिए बंद कर दिए।

भगवान शिव के नेत्र बंद होते ही चारों ओर भयानक अंधकार छा गया। उसी समय भगवान शिव के माथे से पसीने की कुछ बूंदें निकलीं। जैसे ही वे बूंदें धरती पर गिरीं, तुरंत एक जटाधारी काला, विकृत, डरावना राक्षस वहां उत्पन्न हो गया और वह जोर-जोर से हंसने लगा। उसकी भयानक आवाज सुनकर देवी पार्वती एकदम चौंक गईं कि एकाएक उनके सामने यह भयानक जीव कहां से प्रकट हो गया है? तब देवी पार्वती ने भगवान शिव से पूछा—हे स्वामी! यह भयानक पुरुष कौन है? यह सुनकर भगवान शिव मुस्कुराते हुए बोले—हे देवी! यह आपका पुत्र है। जब आपने मेरी आंखें बंद कीं, उस समय मेरे माथे से कुछ पसीने की बूंदें गिरीं। उसी से यह प्रकट हुआ है। यह जानकर कि वह पुरुष उनका पुत्र है देवी बड़ी प्रसन्न हुईं। भगवान शिव ने उसका नाम अंधक रख दिया।

उसी समय हिरण्यनेत्र नाम का एक राक्षस पुत्र प्राप्ति की कामना मन में लेकर वन में घोर तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव उसे वरदान देने के लिए गए। उसने भगवान शिव से एक बलवान और वीर पुत्र की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। भगवान शिव ने कहा—हे हिरण्यनेत्र! मेरा पुत्र अंधक बड़ा ही वीर और बलवान है। तुम चाहो तो मैं उसे तुम्हें सौंप सकता हूं।

भगवान शिव के पुत्र को अपना पुत्र बनाने के लिए वह राक्षस व्यग्र हो उठा। उस पुत्र को प्राप्त कर हिरण्यनेत्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसे गले से लगा लिया। भगवान शिव पुत्र अंधक को हिरण्यनेत्र को सौंपकर अपने धाम को चले गए। हिरण्यनेत्र अपने प्रिय पुत्र अंधक को साथ लेकर अपने घर लौट आया और उसको बहुत लाड़-प्यार से पालने लगा। तत्पश्चात

हिरण्यनेत्र ने, जिसे हिरण्याक्ष भी कहा जाता था, पृथ्वीलोक और पाताल लोक के राज्यों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। दैत्यों के राजा उस हिरण्याक्ष के आतंक से तीनों लोक कांपने लगे। यहां तक कि देवता भी व्याकुल और भयभीत हो गए। उन्होंने भगवान विष्णु को वाराह रूप धारण करके पाताल लोक भेजा। क्रोधित श्रीहरि ने हिरण्याक्ष का वध सुदर्शन चक्र से कर दिया। तत्पश्चात अंधक का राज्याभिषेक करवाया। सभी देवता भयमुक्त होकर बड़े प्रसन्न हुए और भगवान विष्णु की जय-जयकार करने लगे। भगवान श्रीहरि विष्णु आशीर्वाद देकर अपने बैकुण्ठ धाम को चले गए। अपने भाई हिरण्याक्ष के वध का समाचार पाकर उसका भाई हिरण्यकशिपु क्रोधित हो उठा और उसने भगवान विष्णु से वैर बांध लिया।

तैंतालीसवां अध्याय

हिरण्यकशिपु की तपस्या और नृसिंह द्वारा उसका वध

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! वाराहरूपधारी श्रीहरि विष्णु द्वारा अपने भाई हिरण्याक्ष का संहार किए जाने से, हिरण्यकशिपु बहुत दुखी और क्रोधित तो था ही, अतः उसने अपनी असुर सेना को देवताओं का संहार करने की आज्ञा दी तथा अपनी विष्णुभक्त प्रजा को भी दंड देने के लिए कहा। तब आज्ञा पाकर स्वामीभक्त असुरों ने देवलोक का विनाश कर दिया। उनके आतंक से देवता स्वर्ग छोड़कर भाग खड़े हुए। हिरण्यकशिपु के राज्य में उसकी प्रजा को बहुत डराया जाता था। सबने भक्ति का मार्ग छोड़ दिया था। विष्णु भक्तों की खैर नहीं थी।

एक दिन हिरण्यकशिपु अपने मृत भाई हिरण्याक्ष को जलांजलि देकर उसकी स्त्री और बच्चों से मिला और उन्हें सांत्वना दी। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के मन में विचार आया कि यदि मैं अजर, अमर, अजेय हो जाऊं और मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी न रहे तो कोई भी मुझे हरा नहीं सकेगा और तब सभी मुझे झुककर प्रणाम करेंगे। यह सोचते ही हिरण्यकशिपु मंदराचल पर्वत पर जाकर घोर तपस्या करने लगा। तपस्या हेतु वह एक पैर के अंगूठे पर खड़ा था। सिर के ऊपर दोनों हाथ जोड़े आसमान की ओर देखते हुए वह घोर तपस्या कर रहा था।

इधर, जब हिरण्यकशिपु तपस्या में लीन था तो देवताओं ने असुरों से अपना राज्य छीन लिया। वे आनंदपूर्वक अपना राज्य करने लगे। हिरण्यकशिपु की तपस्या का तेज दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। उसके तप की अग्नि से देवता तप्त हो उठे और भयभीत होकर ब्रह्माजी के पास गए। तब सब देवताओं ने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी को प्रणाम किया। तत्पश्चात उन्होंने बताया कि हे प्रभु! दैत्यराज हिरण्यकशिपु की तपस्या के तेज से सब लोक भयभीत हो रहे हैं। आप कृपा करके हमें भयमुक्त कीजिए।

सब देवताओं की प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी हिरण्यकशिपु को वर देने के लिए उस स्थान पर गए, जहां वह तपस्या कर रहा था। वहां जाकर उन्होंने हिरण्यकशिपु से कहा—वत्स! मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। तुम जो चाहो मांग सकते हो। मैं तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी करूंगा।

ब्रह्माजी के ये शुभ वचन सुनकर हिरण्यकशिपु ने आंखें खोल दीं और हाथ जोड़कर सामने खड़े ब्रह्माजी को प्रणाम किया। तत्पश्चात वह बोला—हे प्रजापति! हे पितामह! मैं चाहता हूं कि मुझे कभी भी मृत्यु का भय न हो। मैं किसी अस्त्र-शस्त्र, पाश, वज्र, सूखे पेड़, पर्वत, जल, अग्नि से न मरूं। देवता, दैत्य, मुनि, सिद्धवर अथवा सृष्टि की कोई भी रचना मेरा वध न कर सके। दिन-रात, स्वर्ग-नरक, पृथ्वी-पाताल, अंदर-बाहर कहीं भी किसी भी समय मेरी मृत्यु न हो सके।

ब्रह्माजी ने प्रसन्न होते हुए 'तथास्तु' कह दिया। तुम्हें तुम्हारे अभीष्ट फलों की अवश्य

प्राप्ति होगी। जो वरदान तुमने मांगा है, वह अवश्य फलीभूत होगा। तुमने छियानवे हजार वर्षों तक तपस्या करके मुझे प्रसन्न किया है। अब तुम सुखपूर्वक राज्य करो।

अपना इच्छित वरदान प्राप्त करके दैत्यराज हिरण्यकशिपु बहुत प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर ब्रह्माजी की स्तुति करने लगा। तत्पश्चात ब्रह्माजी अंतर्धान हो गए। हिरण्यकशिपु अपने घर वापस चला गया। वहां पहुंचकर उसके मन में यह विचार आया कि अब मैं अमर हो गया हूं। अब कोई भी मुझे नहीं मार सकता। इसलिए अब मुझे अपने राज्य का विस्तार करना चाहिए। यह विचार मन में आते ही उसने तीनों लोकों पर अपना अधिकार स्थापित करने का निर्णय किया। उसने देवताओं से भयंकर संग्राम किया और उन्हें हराकर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया। देवता अपने प्राणों की रक्षा हेतु वहां से भाग खड़े हुए और भगवान श्रीहरि विष्णु के पास गए।

भगवान श्रीहरि के पास पहुंचकर देवताओं ने उन्हें अपनी व्यथा सुनाई और उनसे अपनी पीड़ा और कष्टों को दूर करने की प्रार्थना की। तब विष्णुजी ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे स्वयं हिरण्यकशिपु का वध करके उन्हें उसके अत्याचारों से मुक्ति दिलाएंगे। भगवान विष्णु के आश्वासन पर देवता उन्हें धन्यवाद देकर बैकुण्ठ लोक से वापस आ गए। वे अपनी रक्षा के लिए अलग-अलग जगहों पर निवास करने लगे।

उधर, श्रीहरि विष्णु ने देवताओं को उनके कष्टों से मुक्ति दिलाने हेतु दैत्यराज हिरण्यकशिपु का संहार करने का निश्चय किया। परंतु ब्रह्माजी द्वारा दिए गए वरदान को भी उन्हें पूरा करना था। तब विष्णुजी ने ऐसा रूप धारण किया जो आधा मनुष्य के जैसा था आधा शेर जैसा। ऐसा अत्यंत भयानक रूप धारण कर विष्णुजी अग्नि के समान प्रलयंकारी नजर आ रहे थे। नृसिंह के रूप में श्रीहरि ने दैत्यराज हिरण्यकशिपु की नगरी में प्रवेश किया। उस समय सूर्यास्त का समय हो रहा था।

उनका यह अनोखा भयानक रूप देखकर दैत्यसेना के वीर उन पर टूट पड़े और उनसे युद्ध करने लगे। तब पल भर में ही उन्होंने सब दैत्यों को मार गिराया और राजमहल की ओर चल दिए। तभी विष्णुजी के परम भक्त और दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद की दृष्टि नृसिंह भगवान पर पड़ी। प्रह्लाद बोला—हे पिताजी! ये अद्भुत रूप धारण किए नृसिंह अवतार मुझे तो भगवान जान पड़ते हैं। इनकी वीरता की प्रशंसा करना तो असंभव है। अतः आपको इनकी शरण में चले जाना चाहिए।

अपने पुत्र की इन बातों को सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु को बहुत क्रोध आ गया। वह बोला—पुत्र! तुम बिना कारण ही भयभीत हो रहे हो। तुम दैत्यों के अधिपति के पुत्र हो, तुम्हें इस प्रकार कायरता भरी बातें कदापि नहीं करनी चाहिए। यह कहकर हिरण्यकशिपु ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि शीघ्र जाकर विचित्र आकृति वाले उस जीव को बंदी बनाकर ले आओ। अपने स्वामी दैत्यराज हिरण्यकशिपु की आज्ञा पाकर उनके वीर दैत्यगण नृसिंह भगवान को पकड़ने के लिए दौड़े, परंतु उनके समीप जाते ही वे भस्म हो गए। अब दैत्यराज स्वयं युद्ध करने के लिए अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित आगे आए। तब भगवान नृसिंह और दैत्यराज हिरण्यकशिपु में बहुत भयानक युद्ध हुआ परंतु भगवान नृसिंह के आगे दैत्यराज

हिरण्यकशिपु की एक न चली। नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को खींचकर अपनी जंघा पर लिटा लिया और उसकी छाती को अपने नाखूनों से चीर दिया, उसके प्राण पखेरू उड़ गए। तभी हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद ने वहां आकर नृसिंह भगवान के चरणों में अपना सिर झुकाकर क्षमायाचना की। भगवान विष्णु ने प्रह्लाद को आशीर्वाद देकर हिरण्यकशिपु का राज्य सौंप दिया। जैसे ही देवताओं को हिरण्यकशिपु के मारे जाने की सूचना मिली, वे बहुत प्रसन्न होकर नृत्य और श्रीहरि विष्णु की स्तुति करने लगे। आकाश में मंगल ध्वनि गूंजने लगी और फूलों की वर्षा होने लगी।

इस प्रकार हिरण्यकशिपु का वध करने के पश्चात प्रह्लाद को राज्य सौंपकर भगवान नृसिंह वहां से अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात सभी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने लोकों को चले गए।

चवालीसवां अध्याय

अंधक की अंधता

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! एक बार हिरण्याक्ष के पुत्र अंधक से उसके भाइयों ने मजाक उड़ाते हुए कहा—अंधक! तुम तो अंधे और कुरूप हो! भला तुम राज्य का क्या करोगे? दैत्यराज हिरण्याक्ष तो मूर्ख थे, जो भगवान शिव की इतनी कठोर तपस्या कर उन्हें प्रसन्न करके भी तुम जैसा कुरूप, नेत्रहीन और बेडौल पुत्र वरदान में प्राप्त किया। कभी दूसरे से प्राप्त पुत्र का भी पिता की संपत्ति पर अधिकार होता है? इसलिए इस राज्य के स्वामी हम ही हैं, तुम तो हमारे सेवक हो।

अपने भाइयों के इस प्रकार के कटु वचनों को सुनकर अंधक निराश और उदास हो गया। रात के समय जब सब सो रहे थे तो वह अपने राजमहल को छोड़कर निर्जन सुनसान और भयानक डरावने वन में चला गया। वहां उस सुनसान वन में जाकर उसने तपस्या आरंभ कर दी। वह दस हजार वर्षों तक घोर तपस्या करता रहा परंतु जब कोई परिणाम नहीं निकला तो उसने अपने शरीर को अग्नि में जलाकर होम करना चाहा। ठीक उसी समय स्वयं ब्रह्माजी वहां प्रकट हो गए।

ब्रह्माजी बोले—पुत्र अंधक! मांगो क्या मांगना चाहते हो? मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। तुम अपना इच्छित वर मांग सकते हो। मैं तुम्हारी मनोकामना अवश्य ही पूरी करूंगा। यह सुनकर अंधक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी की स्तुति की और बोला—हे कृपानिधान ब्रह्माजी! यदि आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे कोई वर देना चाहते हैं तो आप कुछ ऐसा करें कि मेरे निष्ठुर भाइयों ने जो मुझसे मेरा राज्य छीन लिया है, वे सब मेरे अधीन हो जाएं। मेरे नेत्र ठीक हो जाएं अर्थात मुझे दिव्य-दृष्टि की प्राप्ति हो तथा मुझे कोई भी न मार सके—वह देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, नारायण अथवा स्वयं भगवान शिव ही क्यों न हों। अंधक के इन वचनों को सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे अंधक! तुम्हारे द्वारा कही हुई दोनों बातों को मैं स्वीकार करता हूं परंतु इस संसार में कोई भी अजर-अमर नहीं है। सभी को एक न एक दिन काल का ग्रास बनना पड़ता है। मैं सिर्फ तुम्हारी इतनी मदद कर सकता हूं कि जिस प्रकार की और जिसके हाथ से तुम चाहो अपनी मृत्यु प्राप्त कर सकते हो।

तब ब्रह्माजी के वचन सुनकर अंधक कुछ देर के लिए सोच में डूब गया। फिर बोला—हे प्रभु! तीनों कालों की उत्तम, मध्यम और नीच नारियों में से जो भी नारी सबकी जननी हो, सबमें रत्न हो, जो सब मनुष्यों के लिए दुर्लभ तथा शरीर व मन के लिए अगम्य है, उसको अपने सामने पाकर जब मेरे अंदर काम भावना उत्पन्न हो, उसी समय मेरा नाश हो। इस प्रकार का वरदान सुनकर ब्रह्माजी ने 'तथास्तु' कहा और उससे बोले—दैत्येंद्र! तेरे सभी वचन अवश्य ही पूरे होंगे। अब तू जाकर अपना राज्य संभाल।

ब्रह्माजी के वचन सुनकर अंधक बोला—हे भगवन्! अब मेरा शरीर इस लायक नहीं रहा कि मैं युद्ध कर सकूं। अब तो मेरे शरीर में सिर्फ नसें और हड्डियां ही बची हैं। अब मैं कैसे युद्ध कर पाऊंगा और अपनी शत्रु सेना को परास्त कर पाऊंगा। इस प्रकार के वचनों को सुनकर ब्रह्माजी मुस्कुराए और उन्होंने अंधक के शरीर का स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही अंधक का शरीर भरा-पूरा हो गया। अब वह परम शक्तिशाली योद्धा जान पड़ता था, जिसके सामने अच्छे से अच्छा वीर भी न टिक पाए।

इस प्रकार अंधक को मनोवांछित वर देकर ब्रह्माजी वहां से अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात अंधक भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर की ओर चल दिया। जब अंधक ने अपने राज्य में प्रवेश किया तो यह जानकर कि अंधक को ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त हुआ है, सारे दानव उसके वश में होकर उसके दास बनकर रहने लगे। तब अंधक ने विचार किया कि हमें दैत्य साम्राज्य का विस्तार करना चाहिए और अपने घोर शत्रु देवताओं को पराजित करके, उनके राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लेना चाहिए।

यह सोचकर दैत्यराज अंधक ने अपनी विशाल दैत्य सेना के साथ स्वर्गलोक पर आक्रमण कर दिया और स्वर्ग पर अपना आधिपत्य जमाकर देवराज इंद्र को अपना बंधक बना लिया। तत्पश्चात उसने नागों, सुपर्णों, श्रेष्ठ राक्षसों, गंधर्वों, यक्षों, मनुष्यों, ऊंचे-ऊंचे पर्वतों और भयानक वृक्षों और सिंहों को भी युद्ध में परास्त कर अपने अधीन कर लिया। अंधक मदांध होकर कुमार्गी हो गया। उसने स्वर्ग, भूतल और रसातल की सर्वश्रेष्ठ सुंदरियों को अपनाकर उनके साथ रमणीय विहार किया। दिन पर दिन वह बुराई के दलदल में धंसता जा रहा था। उसने वैदिक धर्म का पूर्णतया त्याग कर दिया था।

एक दिन उसके दुर्योधन, वैधस और हस्ती नामक तीनों मंत्री उसके पास आए और बोले —हे दैत्येंद्र! हमने मंदराचल पर्वत की एक गुफा में एक मुनि को देखा है जो कि योग ध्यान में मग्न आंखें बंद करके बैठा है। उस रूपवान मुनि के मस्तक पर अर्द्धचंद्र, कमर में गजेंद्र की खाल बंधी है। सिर पर जटाजूट, गले में खोपड़ियों की माला तथा उसके शरीर पर बड़े भयानक सांप लिपटे हुए हैं। उस मुनि के एक हाथ में त्रिशूल तो दूसरे में डमरू है। अपने गौर अंगों पर उसने भस्म लपेट रखी है। उस तपस्वी का वेष बड़ा ही अद्‌भुत है। साथ ही एक विकराल वानर अनेक आयुधों को धारण किए उस तपस्वी की रक्षा कर रहा है। वहीं उनके पास में एक सफेद रंग का बैल बंधा हुआ है।

उस तपस्वी के पास ही एक सुंदर रत्न स्वरूपा नारी बैठी है, जो संपूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त है। उसका रूप बड़ा मनोहारी है, जो सभी के मन को मोह लेता है। उसने सुंदर मूंगे, मोती, मणियों और सोने के रत्नजड़ित आभूषणों को धारण किया हुआ है। वह इतनी रूपवती है कि जो उसे एक बार देख लेता है उसकी आंखों का होना सफल हो जाता है। उस परम सुंदरी को एक बार देख लेने के बाद संसार की अन्य किसी स्त्री को देखने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। स्वामी! आप इस त्रिलोक के अधिपति हैं। आपके पास इस संसार की सभी बहुमूल्य और अमूल्य धरोहर हैं। ऐसी परम सुंदरी रूपवती नारी को भी आपके अनमोल राज्य की शोभा बढ़ानी चाहिए। अतः आप हमारे साथ चलें और उस सुंदरी को यहां

ले आएं।

अपने वीर मंत्रियों के इस प्रकार के वचन सुनकर दैत्येंद्र अंधक बहुत प्रसन्न हुआ और उसके मन में उस सुंदर नारी को देखने की इच्छा बलवती हो गई। उसने अपने मंत्रियों को आदेश दिया कि तुम शीघ्र वहां जाकर उस तपस्वी से उसकी सुंदर स्त्री को मांगकर मेरे पास ले आओ।

अपने स्वामी दैत्यराज अंधक की आज्ञा पाकर वे तीनों मंत्री पुनः उसी स्थान पर गए और भगवान शिव से बोले—हे महातपस्वी ब्राह्मण! हमारे स्वामी दैत्यराज अंधक आपकी भार्या की सुंदरता के विषय में जानकर उन पर मोहित हो गए हैं और उन्हें अपनी पटरानी बनाना चाहते हैं। आप सहर्ष उन्हें हमें सौंप दें। उनके ऐसे वचनों को सुनकर शिवजी को बहुत क्रोध आया परंतु वे फिर भी सिर्फ इतना ही बोले—दैत्यो! ये मेरी भार्या हैं। ये स्वयं शक्ति संपन्न और सिद्धिरूपा हैं। देवी स्वयं अपने भक्तों के कष्टों को दूर करती हैं। आप अपनी परेशानी इन्हें बताइए। ये अवश्य ही आपके दुखों को दूर करेंगी।

भगवान शिव के ये वचन सुनकर क्रोधित और मदांध दैत्य और कुछ न बोले और वहां से वापस आ गए। तब दैत्यराज अंधक को उन्होंने वहां घटित हुई सारी बातें बढ़ा-चढ़ाकर बताईं, जिन्हें सुनकर दैत्येंद्र का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ गया। तब वह मूढ़ बुद्धि दैत्य सुंदरी को देखने के लिए आतुर हो उठा। उसने स्वयं वहां जाकर उस रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न को अपने साथ लाने का निश्चय किया।

पैंतालीसवां अध्याय

युद्ध आरंभ

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! जब इस प्रकार अंधक के उन तीनों मंत्रियों ने वहां आकर अंधक को सब बताया तब क्रोधित होकर वह स्वयं वहां जाने को आतुर हो गया। तब मदिरापान करके वह अपनी विशाल सेना को साथ लेकर मंदराचल पर्वत की ओर चल दिया। वहां रास्ते में उसकी मुठभेड़ भगवान शिव के वीर गणों से हो गई। उनमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। शिवगणों ने दैत्य सेना को मार-मारकर वहां से भगा दिया। वीर बलशाली दैत्य विरोचन, बलि, बाणासुर, सहस्रबाहु आदि बड़ी दृढ़ता से लड़े परंतु शिवगणों ने उन्हें वहां से खदेड़कर ही दम लिया। उस समय वहां की धरती रक्त से लाल हो गई। जब असुरों की सेना ने देखा कि वे किसी भी प्रकार से शिवजी के गणों को नहीं हरा पाएंगे, तब वे स्वतः ही वहां से लौट गए।

उधर, जब वहां शांति हो गई, तब भगवान शिव अपनी प्रिया देवी पार्वती से बोले—हे प्रिये! मैं यहां पर अपने उत्तम पाशुपत-व्रत का पालन करने के लिए आया था, परंतु यहां पर मेरे व्रत में विघ्न पड़ गया है। अतः अब मैं इस व्रत को यहां पर पूरा नहीं कर सकता। इस व्रत को पूरा करने के लिए मुझे पुनः किसी अन्य निर्जन स्थान पर जाना पड़ेगा। देवी तुम यहीं पर रहो और मैं किसी अन्यत्र स्थान पर जाकर अपने पाशुपत-व्रत का अनुष्ठान पूरा करूंगा। यह कहकर भगवान शिव अपने व्रत को पूरा करने के लिए वहां से किसी दूसरे वन में चले गए और पार्वती देवी वहीं मंदराचल पर्वत पर एक गुफा में रहने लगीं। भगवान शिव निर्जन वन में जाकर अपने पाशुपत-व्रत को पूरा करने के लिए घोर साधना करने लगे। उधर, दूसरी ओर देवी पार्वती वहां अकेली रहकर अपने पति भगवान शिव के लौटने की प्रतीक्षा करने लगीं। उनकी रक्षा के लिए भगवान शिव का गण वीरक सदा उनकी गुफा के बाहर पहरा देता रहता था।

दूसरी ओर दैत्यराज अंधक को, जिसे एक बार शिवगणों ने परास्त करके वहां से खदेड़ दिया था, देवी को प्राप्त किए बिना चैन कहां आने वाला था। उसने पुनः मंदराचल पर्वत पर चढ़ाई कर दी। जैसे ही अंधक और उसकी दानव सेना पर्वत पर पहुंची, वीरक ने उनसे युद्ध करना आरंभ कर दिया। महाबली वीरक बड़ी वीरता से उन दैत्यों से युद्ध करता रहा और उन्हें हराता रहा। उनके बीच भयानक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता रहा। जब किसी भी तरह वीरक को युद्ध में पराजित करना संभव न हुआ, तो दैत्यों ने वीरक को चारों ओर से मिलकर घेर लिया।

जब गुफा के अंदर बैठीं देवी पार्वती को यह ज्ञात हुआ कि उनका प्रिय रक्षक चारों ओर से दानवों से घिर चुका है तो उन्होंने अलौकिक रीति से ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं का मन में स्मरण किया। यह ज्ञात होते ही कि जगत जननी जगदंबा मां पार्वती ने स्मरण किया है, पल

भर में सब देवता वहां मंदराचल पर्वत पर उपस्थित हो गए और दैत्यों से युद्ध करने लगे। जब वीरक ने देखा कि अब वह अकेला नहीं है, उसके साथ पूरी देव सेना खड़ी है तो वह हर्षित मन से पुनः युद्ध में लग गया और तब उसका जोश देखते ही बनता था।

देवताओं ने ब्राह्मी, नारायणी, ऐंद्री, वैश्वानरी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणी, वायवी, कौबेरी, यक्षेश्वरी और गारुड़ी देवी का रूप धारण किया हुआ था। अनेकों आयुधों से सुसज्जित होकर वे युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार इस भीषण युद्ध को चलते-चलते कई हजार वर्ष बीत गए। देव सेना जितने भी असुरों को मारती, दैत्य गुरु शुक्राचार्य अपनी मृत संजीवनी विद्या से पल भर में उन्हें पुनः जीवित कर देते। इस प्रकार दैत्य सेना न कम हो रही थी और न ही वह हार मान रही थी। युद्ध दिन-प्रतिदिन और भयानक होता जा रहा था। भगवान शिव भी अपना पाशुपत-व्रत पूरा करके वहां मंदराचल पर्वत पर वापस आ गए।

छियालीसवां अध्याय

युद्ध की समाप्ति

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि! जब भगवान शिव पाशुपत-व्रत को पूरा करने के पश्चात मंदराचल पर्वत पर लौटे तो उन्होंने देखा कि दैत्येंद्र अंधक ने अपनी विशाल सेना के साथ पुनः आक्रमण कर दिया है। उनके वीर गण और अनेकों रूप धारण किए देवियां अंधक और उसकी सेना से युद्ध कर रही हैं। यह देखकर भगवान शिव को बहुत क्रोध आया कि मेरी अनुपस्थिति में इस दुष्ट दैत्य ने मेरी पत्नी को परेशान किया है।

क्रोधित देवाधिदेव महादेव जी अंधक से युद्ध करने लगे परंतु दैत्येंद्र बहुत चालाक था। उसने गिल नामक दैत्य को आगे कर दिया। स्वयं उसने दैत्य सेना सहित गुफा के आस-पास के वृक्षों और लताओं को तोड़ दिया। तत्पश्चात उस दैत्य अंधक ने एक-एक करके सबको निगलना शुरू कर दिया। अंधक ने नंदीश्वर सहित ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, सूर्य और चंद्रमा व समस्त देवताओं को निगल लिया। यह देखकर भगवान शिव को बहुत क्रोध आया। उन्होंने अंधक पर अपने तीक्ष्ण बाणों का प्रहार करना शुरू कर दिया, जिसके फलस्वरूप दैत्यराज ने विष्णु सहित ब्रह्मा, सूर्य, चंद्रमा और अन्य देवताओं को वापस उगल दिया।

उधर, शिवगणों ने देखा कि दैत्यगुरु युद्ध में मारे गए राक्षसों को अपनी संजीवनी विद्या से पुनः जीवित कर रहे हैं। इसी कारण दैत्यों का मनोबल कम नहीं हो रहा है। तब शिवगणों ने चतुराई का परिचय देते हुए दैत्यगुरु शुक्राचार्य को बंधक बना लिया और उन्हें भगवान शिव के पास ले गए। जब शिवगणों ने यह बात भगवान शिव को बताई तो क्रोधित शिवजी ने शुक्राचार्य को निगल लिया। शुक्राचार्य के वहां से गायब हो जाने पर दैत्यों का मनोबल गिर गया और वे भयभीत हो गए। यह देखकर देवसेना ने उन दैत्यों को मार-मारकर व्याकुल कर दिया। इस प्रकार युद्ध और भीषण होता जा रहा था।

दैत्यराज अंधक ने अब युद्ध को जीतने के लिए माया का सहारा लिया। भगवान शिव और अंधक के बीच सीधा युद्ध शुरू हो गया। भगवान शिव अपने प्रिय त्रिशूल से लड़ रहे थे। युद्ध करते-करते दैत्यराज के शरीर पर शिवजी जैसे ही त्रिशूल का प्रहार करते, उसके शरीर से निकले हुए रक्त से बहुत से दैत्य उत्पन्न हो जाते और युद्ध करने लगते। यह देखकर देवताओं ने देवी चण्डिका की स्तुति की, तब चण्डिका तुरंत युद्धभूमि में प्रकट हो गईं और उन्होंने भगवान शिव को प्रणाम किया। शिवजी का आदेश पाकर देवी चण्डिका उस अंधक नामक असुर के शरीर से निकलने वाले रक्त को पीने लगीं। इस प्रकार अंधक का रक्त जमीन पर गिरना बंद हो गया और उससे उत्पन्न होने वाले राक्षस भी उत्पन्न होने बंद हो गए।

फिर भी अंधक अपनी पूरी शक्ति से युद्ध करता रहा। उसने भगवान शिव पर बाणों से प्रहार करना शुरू कर दिया। युद्ध करते-करते भगवान शिव ने अंधक का संहार करने के लिए त्रिशूल का जोरदार प्रहार उसके हृदय पर किया और उसे भेद दिया। उन्होंने उसे ऐसे ही ऊपर

उठा लिया। सूर्य की तेज किरणों ने उसके शरीर को जला दिया। इससे उसका शरीर जर्जर हो गया। मेघों से तेज जल बरसा और वह गीला हो गया। फिर हिमखण्डों ने उसे विदीर्ण कर दिया। इस पर भी दैत्यराज अंधक के प्राण नहीं निकले।

अपनी ऐसी अवस्था देखकर अंधक को बहुत दुख हुआ। वह हाथ जोड़कर देवाधिदेव भगवान शिव की स्तुति करने लगा। भगवान शिव तो भक्तवत्सल हैं और सदा ही अपने भक्तों के अधीन रहते हैं। तब भला वे अंधक पर कैसे प्रसन्न न होते? उन्होंने अंधक को क्षमा करके अपना गण बना लिया। युद्ध समाप्त हो गया। सब देवता हर्षित होकर भगवान शिव की स्तुति करने लगे। भगवान शिव देवी पार्वती को साथ लेकर अपने गणों सहित कैलाश पर्वत पर चले गए। सभी देवता अपने-अपने लोकों को वापस लौट गए।

सैंतालीसवां अध्याय

शिव द्वारा शुक्राचार्य को निगलना

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! शिवगणों द्वारा जब शिवजी को यह ज्ञात हुआ कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य दैत्यों को पुनः जीवित कर रहे हैं और शिवगण उन्हें बंदी बना लाए हैं, तब क्रोधित होकर शिवजी ने शुक्राचार्य को निगल लिया था। तब आगे क्या हुआ? भगवान शिव के उदर में शुक्राचार्य ने क्या किया? क्या भगवान शिव ने उन्हें भस्म कर दिया या फिर शुक्राचार्य अपने तेज के प्रभाव से शिवजी के उदर से बाहर निकल आए? कृपाकर मुझे ये बातें बताइए।

व्यास जी के इन प्रश्नों को सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! भगवान शिव तो इस त्रिलोक के नाथ हैं। वे साक्षात ईश्वर हैं। उनकी आज्ञा के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं होता। उनके कारण ही यह संसार चलता है। भगवान शिव के कारण ही देवताओं की हर युद्ध में जीत होती है। अंधक कोई साधारण दैत्य नहीं था। उसे यह बात ज्ञात थी कि वह त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को नहीं जीत सकता। इसलिए वह अपने दैत्यकुल की रक्षा करने के लिए सर्वप्रथम अपने आराध्य दैत्यगुरु शुक्राचार्य के चरणों में गया और अपने गुरु की वंदना करने लगा। तब उन्होंने प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया। दैत्यराज अंधक ने गुरु शुक्राचार्य से मृत-संजीवनी विद्या द्वारा मरे हुए असुरों को जीवित करने की प्रार्थना की।

शुक्राचार्य ने अपने शिष्य अंधक की प्रार्थना स्वीकार कर ली और युद्धभूमि में आ गए। शुक्राचार्य ने भगवान विद्येश (शिव) का स्मरण कर अपनी विद्या का प्रयोग आरंभ किया। उस विद्या का प्रयोग करते ही युद्ध में मृत पड़े दैत्य अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो इतनी देर से सोए पड़े हों। यह देखकर दैत्य सेना में अद्‌भुत उत्साह का संचार हो गया। राक्षसों में नई जान आ गई और वे भगवान शिव के गणों से भयानक युद्ध करने लगे।

शिवगणों ने जाकर यह समाचार नंदीश्वर को बताया कि शुक्राचार्य अपनी विद्या के बल से मरे हुए दैत्यों को जीवित कर रहे हैं। यह जानकर नंदी सिंह की भांति दैत्य सेना पर टूट पड़े और उस स्थान पर जा पहुंचे जहां शुक्राचार्य बैठे थे। अनेकों दैत्य अपने गुरु की रक्षा करने के लिए चारों ओर खड़े थे। नंदी ने शुक्राचार्य को इस प्रकार पकड़ लिया जैसे शेर हाथी के बच्चे को पकड़ लेता है। वे उन्हें उठाकर तेज गति से वहां से निकल पड़े। नंदीश्वर को इस प्रकार अपने गुरु को उठाकर ले जाते देखकर सभी दैत्य उन पर टूट पड़े, परंतु नंदी अपनी वीरता का परिचय देते हुए सबको पछाड़ते हुए आगे बढ़ते रहे। नंदी के मुख से भयानक अग्नि वर्षा हो रही थी, जिससे दैत्य उनकी ओर नहीं बढ़ पा रहे थे।

इस प्रकार कुछ ही देर में नंदी शुक्राचार्य का अपहरण करके उन्हें भगवान शिव के सम्मुख ले आए। नंदी ने सारी बातें भगवान शिव को कह सुनाईं। यह सब सुनकर देवाधिदेव महादेव जी का क्रोध बहुत बढ़ गया और उन्होंने दैत्यगुरु शुक्राचार्य को अपने मुंह में रखकर इस

प्रकार निगल लिया जिस प्रकार कोई बालक अपनी पसंदीदा खाने की वस्तु को पलभर में ही सटक जाता है।

अड़तालीसवां अध्याय

शुक्राचार्य की मुक्ति

व्यास जी ने पूछा—हे सनत्कुमार जी! शुक्राचार्य को जब भगवान शिव ने निगल लिया तब फिर क्या हुआ? यह प्रश्न सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महर्षे! भगवान शिव ने क्रोधित होकर जब दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य को निगल लिया तब वे शिवजी के उदर में पहुंचकर वहां से बाहर निकलने के लिए बहुत चिंतित हो गए और अनेक प्रकार के प्रयत्न करने लगे। जब वे किसी भी प्रकार से बाहर नहीं निकल पा रहे थे, तब उन्होंने भगवान शिव के शरीर में छिद्रों की खोज करनी शुरू कर दी परंतु सैकड़ों वर्षों तक भी उन्हें कोई ऐसा छिद्र नहीं मिल सका, जिससे वे बाहर आ जाते।

इस प्रकार शुक्राचार्य बाहर न निकल पाने के कारण बहुत दुखी हुए और उन्होंने शिवजी की आराधना करने का निश्चय किया। तब उन्होंने शिवमंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया। शिव मंत्र का जाप करते-करते शुक्राचार्य शिवजी के शुक्राणुओं द्वारा उनके लिंग मार्ग से बाहर आ गए और हाथ जोड़कर भगवान शिव की स्तुति करने लगे। तब भगवान शिव और देवी पार्वती ने शुक्राचार्य को अपने पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया और मुस्कुराने लगे।

शिवजी बोले—हे भृगुनंदन! आप मेरे लिंग मार्ग से शुक्र की तरह बाहर निकले हैं इसलिए आज से आप शुक्र नाम से विख्यात होंगे। आज से तुम मेरे और पार्वती के पुत्र हुए और सदा संसार में अजर-अमर रहोगे। तुम्हें आज से मेरा परम भक्त माना जाएगा।

तब शुक्राचार्य भगवान शिव की स्तुति करते हुए बोले—हे देवाधिदेव! भगवान शिव! आपके सिर, नेत्र, हाथ, पैर और भुजाएं अनंत हैं। आपकी मूर्तियों की गणना करना सर्वथा असंभव है। आपकी आठ मूर्तियां कही जाती हैं और आप अनंत मूर्ति भी हैं। आप देवताओं तथा दानवों सभी की मनोकामनाओं को अवश्य पूरा करते हैं। बुरे व्यक्ति का आप ही संहार करने वाले हैं। मैं आपके चरणों की स्तुति करता हूं। हे प्रभु! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

दैत्यगुरु शुक्राचार्य की ऐसी स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात भगवान शिव से आज्ञा लेकर शुक्राचार्य पुनः असुर सेना में चले गए और तब से वे शुक्राचार्य के रूप में विख्यात हुए।

उनचासवां अध्याय

अंधक को गणत्व की प्राप्ति

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि व्यास जी! भगवान शिव के उदर में शुक्राचार्य ने शिवमंत्र का जाप कर बाहर आने का मार्ग खोज लिया और बाहर आकर शिवजी की आज्ञा पाकर वहां से पुनः असुर राज्य में चले गए। तत्पश्चात तीन हजार वर्षों के बाद वह वेदों का पाठ करने वाले शुक्राचार्य के रूप में पृथ्वी पर पुनः शिवजी से उत्पन्न हुए। दूसरी ओर अंधक को भगवान शिव ने अपने त्रिशूल पर उसी प्रकार लटकाया हुआ था। दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने देखा कि दैत्यराज अंधक उसी त्रिशूल पर लटका हुआ है, जिस त्रिशूल से देवाधिदेव भगवान शिव ने उसे मारने के लिए आघात किया था। उसे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि अंधक के प्राण अभी तक नहीं निकले हैं और वह उसी प्रकार त्रिशूल पर लटका हुआ भगवान शिव के एक सौ आठ नामों से उनकी स्तुति कर रहा है।

अंधक की इस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने अंधक को त्रिशूल के अग्रभाग से नीचे उतार लिया और उस पर दिव्य अमृत की वर्षा की तथा उससे कहा—हे दैत्येंद्र! मैं तुम्हारी इस उत्तम भक्ति भावना से बहुत प्रसन्न हूं। तुमने नियमपूर्वक मेरी आराधना की है। तुम्हारे मन में जितनी भी बुराई और पाप थे वे सब तुम्हारी शुद्ध हृदय से की हुई स्तुति से धुल गए हैं और तुम्हें पुण्य की प्राप्ति हुई है। मैं प्रसन्न हूं। तुम जो चाहो, वर मांग सकते हो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य ही पूरी करूंगा।

भगवान शिव के ये अमृत वचन सुनकर दैत्यराज अंधक बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—भगवन्! मैं दोनों हाथ जोड़कर आपसे अपने द्वारा किए गए हर बुरे कार्य और अपराध के लिए क्षमा मांगता हूं। आप मेरे अपराधों को कृपापूर्वक क्षमा करें। पूर्व में मैंने आपके और माता पार्वती के विषय में जो भी बुरा बोला या सोचा हो उसके लिए मुझे बहुत खेद है। मैंने यह सब अज्ञानतावश ही किया है। अब मैं एक दीन भक्त बनकर आपकी शरण में आया हूं। मुझे मेरे द्वारा किए गए अपराधों के लिए क्षमा कर दें। हे देवाधिदेव! मैं आपसे वरदान में सिर्फ यही मांगना चाहता हूं कि आप में और माता पार्वती में मेरी अगाध श्रद्धा भावना व भक्ति बनी रहे। मेरे मन में कभी भी कोई बुरा विचार न आए। मैं शांत हृदय से सदैव आपके नाम का स्मरण व चिंतन करता रहूं। मुझमें कभी भी आसुरी-तत्व घर न कर पाएं। यही वरदान मुझे प्रदान कीजिए।

अंधक ये वचन कहकर पुनः भगवान शिव और माता पार्वती के ध्यान में मग्न हो गया। भगवान शिव की कृपादृष्टि उस पर पड़ते हो उसे अपने पहले जन्म का स्मरण हो गया। उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो गए। भक्तवत्सल भगवान शिव ने प्रसन्न होकर अंधक को अपना गण बना लिया और उसे उसका इच्छित वरदान प्रदान किया।

पचासवां अध्याय

शुक्राचार्य को मृत संजीवनी की प्राप्ति

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! अब मैं आपको यह बताता हूं कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य को भगवान शिव से मृत्युंजय नामक मृत्यु को जीत लेने वाली उत्तम विद्या कैसे प्राप्त हुई? एक बार की बात है, शुक्राचार्य वाराणसी नामक नगरी में जाकर भगवान विश्वनाथ का ध्यान करते हुए उनकी घोर तपस्या करने लगे। इससे पूर्व उन्होंने वहां भगवान शिव के शिवलिंग की स्थापना की तथा वहां एक रमणीक कुआं भी खुदवाया। तत्पश्चात उसमें शिवलिंग को बत्तीस सेर पंचामृत से एक लाख बार अभिषेक कराने के बाद सुंदर सुगंधित द्रव्यों से स्नान कराकर उस अमृतमय ज्योर्तिलिंग की स्थापना की। फिर शिवलिंग पर चंदन और यक्षकर्दम का लेप किया। राजचंपक, धतूर, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदंब, मौलसिरी, उत्पल, मल्लिका (चमेली), शतपत्री, ढाक, सिंधुवार, बंधूकपुष्प, पुनांग, नागकेसर, केसर, नवमल्लिक, रक्तदला, कुंद मोतिया, मंदार, बिल्व पत्र, गूमा, मरुआ, वृक, गंठिवन, दौना, आम के पत्ते, तुलसी, देवजवासा, बृहत्पत्री, नांदरुख, अगस्त्य, साल, देवदारू, कचनार, कुरबक और कुरंतक के फूलों और अनेक प्रकार के पल्लवों से भगवान शिव की विधिवत पूजा-अर्चना की। भगवान शिव के सहस्र नामों का जाप कर उनकी स्तुति की। इस प्रकार दैत्य गुरु शुक्राचार्य पांच हजार वर्षों तक अनेक प्रकार एवं विधि-विधान से शिवजी का पूजन करते रहे परंतु जब भगवान शिव फिर भी प्रसन्न न हुए तो शुक्राचार्य ने और घोर तपस्या करने का निश्चय किया। तब उन्होंने इंद्रियों की चंचलता को दूर करने के लिए उसे भावना रूपी जल से प्रक्षालित किया और पुनः शिवजी की घोर तपस्या करने लगे। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष बीत गए।

तब भृगुनंदन शुक्राचार्य की दृढ़तापूर्वक की गई उत्तम तपस्या को देखकर भगवान शिव बहुत प्रसन्न हो गए और उन्होंने अपने प्रकाशमय रूप के साक्षात दर्शन शुक्र को देने का निश्चय किया। पिनाकधारी भगवान शिव शुक्राचार्य द्वारा स्थापित किए गए शिवलिंग में से प्रकट हो गए और बोले—हे भृगुनंदन! महामुने! मैं आपकी इस घोर तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। आप अपना इच्छित वर मुझसे मांग सकते हो। आपकी प्रत्येक इच्छा मैं अवश्य पूरी करूंगा। मांगो क्या मांगना चाहते हो?

भगवान शिव के इस प्रकार के उत्तम वचनों को सुनकर शुक्राचार्य ने देवाधिदेव भगवान शिव को प्रणाम किया और सिर झुकाकर अंजलि बांधकर जय-जय का उच्चारण करते हुए भगवान शिव की बहुत स्तुति की और शिवजी के चरणों में ही लेट गए। तब भगवान शिव ने उन्हें अपने चरणों से ऊपर उठाया और अपने हृदय से लगा लिया। तब भगवान शिव बोले—हे शुक्र! आपने जो यह मेरा ज्योर्तिलिंग स्थापित किया है और इसकी नियमपूर्वक कठिन आराधना की है, इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। कहो क्या मांगना चाहते हो?

देवाधिदेव महादेव जी के वचन सुनकर शुक्र पुनः उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान शिव ने देखा कि शुक्राचार्य कुछ नहीं मांग रहे हैं। भगवान शिव, जो कि सबके हृदयों की बात जानते हैं, संसार की कोई वस्तु उनसे न तो कभी छिपी है और न कभी छिप सकती है, मुस्कुरा कर बोले—हे भृगुनंदन! हे महातपस्वी शुक्र! आप निश्चय ही मेरे परम भक्त हैं। आपने इस पवित्र काशी नगरी में मेरे ज्योर्तिलिंग की स्थापना करके उत्तम मन से भक्तिमय आराधना की है। जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता का आदर एवं पूजन करता है, तुमने उससे भी बढ़कर कार्य किया है। अतः मैं तुम्हें यह वरदान देता हूं कि तुम अपने इसी रूप में मेरे उदर में प्रवेश करोगे तथा मेरे इंद्रिय मार्ग से निकलकर मेरे पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करोगे। तुम्हें मैं अपनी मृत संजीवनी नामक विद्या भी प्रदान करता हूं जिसे मैंने अपने तपोबल द्वारा रचा है। तुम्हारे अंदर तप की अनमोल निधि है, जो कि तुम्हारी योग्यता है। इस विद्या का प्रयोग तुम जिस मृत जीव पर भी करोगे, वह निश्चय ही जी उठेगा। तुम आसमान में चमकते हुए तारे के रूप में स्थित होगे और सभी ग्रहों में प्रधान माने जाओगे। जब तुम्हारा उदय होगा वह समय अति शुभ माना जाएगा और उसमें विवाह एवं सभी धर्मकार्य किए जा सकेंगे। सभी नंदा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियां अत्यंत शुभ मानी जाएंगी।

तुम्हारे द्वारा स्थापित किया गया यह ज्योर्तिलिंग, इस संसार में तुम्हारे ही नाम अर्थात 'शुक्रेश' नाम से विख्यात होगा। जो मनुष्य श्रद्धा और उत्तम भक्ति भाव से इसकी पूजा-अर्चना करेंगे, उन्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी। जो मनुष्य पूरे वर्ष शुक्रवार के दिन शुक्रताल में स्नान कर 'शुक्रेश' लिंग की अर्चना करेंगे, वे सौभाग्यशाली होंगे और उन्हें पुत्र की प्राप्ति होगी। यह कहकर, देवाधिदेव महादेव उसी ज्योर्तिलिंग में समा गए। तत्पश्चात दैत्यगुरु प्रसन्न मन से अपने धाम को चले गए।

इक्यावनवां अध्याय

बाणासुर आख्यान

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी! अब आप मुझे बाणासुर को शिवजी द्वारा अपना गण बनाने की कथा सुनाइए। तब व्यास जी की इच्छा पूरी करने हेतु सनत्कुमार जी ने कहना आरंभ किया। वे बोले—हे महामुने! जैसा कि आप जानते ही हैं कि ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र मरीचि हैं और उनके पुत्र महामुनि कश्यप भी ब्रह्माजी के परम भक्त थे। उन कश्यप मुनि की तेरह सुंदर और सुशील कन्याएं हुईं, जिसमें सबसे बड़ी का नाम दिति था। दिति के ही बड़े पुत्र का नाम हिरण्यकशिपु और छोटे पुत्र का नाम हिरण्याक्ष था।

दिति के दोनों ही पुत्र महाबली, वीर और पराक्रमी थे। हिरण्यकशिपु को विवाह के उपरांत ब्याहाद, अनुब्हाद, सब्हाद और प्रह्लाद नामक चार पुत्र प्राप्त हुए। उनमें सबसे छोटा प्रह्लाद भगवान विष्णु का परम भक्त था, जिसको कोई भी दैत्य पराजित नहीं कर सका था। उसी का पुत्र विरोचना बहुत बड़ा दानी था। उसने देवराज इंद्र को दान में अपना सिर काटकर दे दिया था। उसका पुत्र बलि भी महान दानी और भगवान शिव का परम भक्त था। बलि ने वामनरूप धारण कर आए भगवान विष्णु को अपनी सारी भूमि दान में दे दी थी। बलि का पुत्र औरस भी भगवान शिव का परम भक्त था। वह उदार, बुद्धिमान, सत्यनिष्ठ और दानी था। उस असुर ने अनेकों राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। यही नहीं, उसने त्रिलोक के अधिपतियों पर भी बलपूर्वक अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने अपनी राजधारी शोणितपुर में बनाई थी।

वही औरस, जो कि महाराज बलि का पुत्र था, बाणासुर नाम से विख्यात हुआ था। उसके राज्य में सारी प्रजा खुश थी, परंतु देवताओं का वह घोर शत्रु था। एक बार बाणासुर अपनी हजारों भुजाओं से ताली बजाकर और ताण्डव नृत्य करके भगवान शिव को प्रसन्न करने की कोशिश करने लगा। भगवान शिव उसके नृत्य से प्रसन्न हो गए और उसके सामने प्रकट हो गए। उन्हें साक्षात अपने सामने पाकर बाणासुर प्रसन्नतापूर्वक महादेव को प्रणाम कर बोला —हे देवाधिदेव! हे करुणानिधान! भक्तवत्सल शिव! आप मेरे राज्य के रक्षक हो जाइए। आप सदा अपने परिवार एवं गणों सहित मेरे नगर के अध्यक्ष बनकर प्रसन्नतापूर्वक यहां निवास करें।

तब बाणासुर द्वारा मांगे गए वरदान को देते हुए परम ऐश्वर्य संपन्न भक्तवत्सल भगवान शिव ने अपने परिवार एवं गणों सहित बाणासुर के नगर में आना स्वीकार किया। तत्पश्चात भगवान शिव वहां निवास करने लगे। जब बाणासुर ने यह जाना तो वह ताण्डव नृत्य द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगा। तत्पश्चात उनकी स्तुति करने लगा और बोला—हे देवाधिदेव महादेव! आप सब देवताओं में शिरोमणि हैं। आपकी कृपादृष्टि पाकर ही मैं बली हुआ हूं। आपने ही मुझे हजार भुजाएं प्रदान की हैं। भगवन्! आप धन्य हैं। आप सदा ही अपने भक्तों पर

कृपादृष्टि रखते हैं और उनके दुखों को दूर करते हैं।

बावनवां अध्याय

बाणासुर को शाप व उषा चरित्र

सनत्कुमार जी बोले—महामुने! एक समय दैत्यराज बाणासुर ने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को ताण्डव नृत्य द्वारा प्रसन्न किया। उसकी भक्तिभावना से शिवजी बहुत संतुष्ट हुए थे। तब उसने हाथ जोड़कर शिवजी की स्तुति करनी आरंभ की। वह बोला—हे महेश्वर! आपके आशीर्वाद से ही मैं इतना बलवान हुआ हूं। आपने मुझे एक हजार भुजाएं दी हैं, परंतु भगवन् मैं इनका क्या करूं? इन हजार भुजाओं का प्रयोग तो सिर्फ मैं युद्ध में ही कर सकता हूं। बिना युद्ध के इनका मैं क्या करूं? युद्ध किए बिना मेरे हाथों में सिर्फ खुजली होती रहती है और जब मैं अपनी इस खुजली को मिटाने के लिए बड़े-बड़े योद्धाओं और दिग्गजों से युद्ध करने के लिए उनके पास जाता हूं तो वे मारे डर के भाग जाते हैं। जब मैंने पर्वतों को मसलकर अपनी खुजली को शांत करना चाहा तो उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। मैंने यम, कुबेर, देवराज इंद्र, वरुण, नैऋति आदि सभी देवताओं को जीत लिया है। अतः भगवन्, अब मुझे कोई ऐसा महावीर बली और पराक्रमी शत्रु बताइए, जिससे युद्ध करके मेरी इन हजारों भुजाओं की खुजली शांत हो जाए।

दैत्यराज बाणासुर के ऐसे अहंकार भरे वचनों को सुनकर भगवान शिव अत्यंत क्रोधित हुए और बोले—ओ अहंकारी दैत्य! तू बड़ा ही मूर्ख और अभिमानी है। तुझे धिक्कार है। मेरे परम भक्त और महादानी बलि का पुत्र होकर भी तुझमें इतना इंकार व्याप्त है। अहंकार और अभिमान मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और उसे सदा ही पतन की ओर ले जाता है। तुझे भी अब अहंकार और अभिमान ने घेर लिया है। इसलिए अब तेरा पतन भी निश्चित है। अब तुझे कोई भी नहीं बचा सकता। निश्चय ही तेरा सामना अतिशीघ्र ऐसे वीर और पराक्रमी से होगा, जो तेरी इन गर्वीली भुजाओं को मदार की लकड़ी के समान पलभर में काटकर फेंक देगा। तेरे शस्त्रागार में वायु का भयानक उत्पात होगा।

भगवान शिव के क्रोध भरे वचनों को सुनकर भी मदांध बाणासुर पर कोई असर नहीं पड़ा। कहते हैं न कि जब विनाश का समय आता है तो बुद्धि विपरीत सोचना शुरू कर देती है। इसलिए बाणासुर को युद्ध के निकट आने का समाचार सुनकर अति प्रसन्नता हुई। उसने सुंदर-सुगंधित पुष्पों से भगवान शिव की आराधना की और पुनः अपने महल में वापस आ गया। तत्पश्चात बाणासुर प्रसन्न मन से उस युद्ध की प्रतीक्षा करने लगा और मन में यही सोचने लगा कि भला मुझसे ज्यादा वीर पारंगत योद्धा और कौन हो सकता है, जो मेरे सामने टिक सके और मेरी बलशाली भुजाओं को लकड़ी के समान काटकर फेंक सके। बाणासुर अपनी इन्हीं बातों में उलझा रहता था।

दूसरी ओर, बाणासुर नामक दैत्य की एक अति सुंदर एवं गुणवान कन्या थी, जिसका नाम उषा था। उषा भगवान श्रीहरि विष्णु की परम भक्त थी। एक दिन उषा वैशाख मास में

शृंगार से सुसज्जित हो रात्रि को विष्णु भगवान की पूजा-अर्चना करने के पश्चात अपने कक्ष में विश्राम कर रही थी। तब उसे देवी पार्वती की शक्ति के फलस्वरूप सपने में भगवान श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के दर्शन हुए। तब दिव्य माया के वशीभूत उषा को अनिरुद्ध को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और मन में ही वह उन्हें हृदय दे बैठी। जब सुबह वह जागी तो उसे उसी सुदर्शन युवक का स्मरण हो आया और वह उसके ध्यान में ही खो गई।

जब उषा इस प्रकार से सपने में दिखाई दिए उस सुंदर युवक के ध्यान में खोई हुई थी, उसी समय उषा की प्रिय सखी चित्रलेखा उसके कक्ष में आई और अपनी सखी की ऐसी स्थिति देखकर उसने इस बारे में पूछा। तब उषा ने सारी बातें उसे बता दीं और कहा कि तुम्हें उस युवक को कहीं से भी ढूंढ़कर मेरे पास लाना है। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो मैं अपने शरीर का त्याग कर दूंगी।

अपनी प्रिय सखी उषा के ऐसे वचन सुनकर चित्रलेखा को बहुत दुख हुआ और वह बोली—सखी! ऐसी बातें मत कहो। भला तुम ही बताओ, मैं उस पुरुष को कहां से लेकर आ सकती हूं, जिसे मैंने कभी देखा नहीं है और जिसके बारे में मैं कुछ जानती भी नहीं हूं। पहले तुम मुझे बताओ कि वह है कौन और कैसा दिखता है। तभी मैं तुम्हारी मदद कर सकती हूं। सखी! मैं तुमसे वादा करती हूं कि वह पुरुष जहां भी होगा, मैं उसका अपहरण करके तुम्हारे पास ले आऊंगी और तुम्हें खुशी देने की कोशिश करूंगी।

अपनी सहेली चित्रलेखा की बातें सुनकर उषा को बहुत संतोष हुआ। तब चित्रलेखा ने वस्त्र के परदे पर अनेक देवताओं, दैत्यों, दानवों, गंधर्वों, सिद्धों, नागों और यक्षों के चित्र बना-बनाकर उषा को दिखाए परंतु उषा ने सबके लिए मना कर दिया। तब चित्रलेखा ने मनुष्यों के चित्र बनाने शुरू किए। उसने शूर, वसुदेव, राम, कृष्ण और अनेकों पुरुषों के चित्र बना दिए परंतु उषा ने हां नहीं कहा। तब चित्रलेखा ने नरश्रेष्ठ प्रद्युम्ननंदन अनिरुद्ध का चित्र उकेरा, जिसे देखकर उषा का सिर लज्जा से आवर्त हो गया और उसके चेहरे पर लाली छा गई, वह खुशी से झूम उठी।

उषा बोली—हे प्रिय चित्रलेखा! रात को जिसने मेरे स्वप्न में आकर मेरे मन को चुराया है वह यही है। मुझे इनसे मिलना है, तुम इन्हें अतिशीघ्र मेरे पास ले आओ वरना मुझे चैन नहीं आएगा। अपनी प्रिय सखी उषा के अनुरोध पर चित्रलेखा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी की रात को द्वारका नगरी गई और वहां राजमहल से अनिरुद्ध को ले आई। अनिरुद्ध को सामने पाकर उषा हर्ष से फूली न समाई और तुरंत उसके गले से लग गई।

जब इस प्रकार देवी उषा ने अपने प्रियतम अनिरुद्ध को साक्षात अपने सामने पाया तो वह खुशी से झूम उठी और उनके गले से लग गई। तब उनके कक्ष के बाहर तैनात द्वारपालों ने अंदर झांका और उषा-अनिरुद्ध को इस प्रकार देखकर उन्होंने इसकी शिकायत दैत्यराज बाणासुर से की। द्वारपाल बोले—महाराज! आपकी कन्या के अंतःपुर में एक पुरुष घुस आया है और वह आपकी कन्या से प्रेमालाप कर रहा है। महाराज! आप वहां चलिए और देखिए कि वह कौन है? आपकी आज्ञा होने पर ही हम सब मिलकर उसे उसकी धृष्टता का दण्ड देंगे।

इस प्रकार द्वारपालों से अपनी कन्या के विषय में सुनकर दैत्यराज बाणासुर को बहुत क्रोध आया और उसे आश्चर्य भी हुआ। वह तत्काल उनके साथ चलने को तैयार हो गया।

तिरेपनवां अध्याय

अनिरुद्ध को बाण द्वारा नागपाश में बांधना तथा दुर्गा की कृपा से उसका मुक्त होना

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! जब दैत्यराज बाणासुर के द्वारपालों ने उनके पास जाकर उनकी पुत्री उषा के कक्ष में किसी पुरुष के होने की सूचना दी तो वे आश्चर्यचकित हुए और स्वयं वहां गए। तब क्रोधित बाणासुर ने उषा के साथ अनिरुद्ध को देखा। अनिरुद्ध बहुत सुंदर और बलशाली नवयुवक था। क्रोधित बाणासुर ने अपने सैनिकों को अनिरुद्ध को मारने की आज्ञा दी।

जैसे ही बाणासुर के उन सैनिकों ने अनिरुद्ध पर हमला किया, उसने देखते ही देखते उन सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। जब बाणासुर ने अपने सैनिकों को इस प्रकार मरते हुए देखा, तब उसे समझ आ गया कि यह पुरुष बड़ा वीर और पराक्रमी है, जिसने अकेले ही इतने बलशाली सैनिकों को पल भर में ध्वस्त कर दिया है। तब बाणासुर ने स्वयं उससे युद्ध करने का निश्चय किया और अपनी विशाल सेना को भी बुला भेजा। फिर क्या था, अनिरुद्ध और बाणासुर के बीच बड़ा भयानक युद्ध होने लगा।

तब वीर अनिरुद्ध ने दैत्यराज बाणासुर को निशाना बनाकर एक दिव्य शक्ति छोड़ी, जिससे बाणासुर को भयानक चोट पहुंची। चोट खाकर उसे समझ आ गया कि इस महाबली और पराक्रमी मनुष्य को सीधे-सीधे युद्ध द्वारा हराना असंभव है। यह सोचकर बाणासुर ने अपनी राक्षसी माया का सहारा लिया और उसी क्षण वहां से अंतर्धान हो गया। एकदम अचानक से जब दैत्यराज सामने से गायब हो गया तो अनिरुद्ध को बहुत आश्चर्य हुआ। वह घूम-घूमकर इधर-उधर बाणासुर को तलाश कर ही रहा था कि बाणासुर ने छलपूर्वक अनिरुद्ध को नागपाश में बांध दिया और अपने सैनिकों को आदेश दिया कि इसे ले जाकर किसी अंधे कुएं में धकेल दो, ताकि यह जिंदा ही न बचे।

अपने स्वामी दैत्यराज बाणासुर का आदेश सुनकर कुंभाण्ड बोला—हे दैत्येंद्र! युद्ध और पराक्रम में तो यह भगवान विष्णु के समान है और साहस में शशिमौलि के समान है। इस प्रकार से नागपाश में बंधकर भी यह डर नहीं रहा है और पुरुषार्थ की बातें कर रहा है। फिर वह अनिरुद्ध से बोला—ऐ मूर्ख बालक! तू महाबली दैत्यराज बाणासुर से अपनी समानता क्यों करता है? तू उनके सामने झुककर उनसे मांफी मांग और अपनी हार मान ले। वे निश्चय ही तुझे क्षमा कर नागपाश से मुक्त कर देंगे।

दैत्यराज बाणासुर के उस सेवक के वचनों को सुनकर अनिरुद्ध क्रोधित होकर बोला—ओ दुराचारी निशाचर! शायद तुझे क्षत्रिय धर्म के बारे में कुछ पता नहीं है। शूरवीर के लिए युद्ध में पीठ दिखाना मरने से भी बढ़कर है। मैं इस अधर्मी से माफी मांगने से अच्छा युद्ध में लड़ते हुए प्राण त्यागना पसंद करूंगा परंतु इस अभिमानी के आगे बिलकुल नहीं झुकूंगा।

यह सुनकर दैत्येंद्र बाणासुर का क्रोध सातवें आसमान पर जा चढ़ा। इससे पूर्व कि वह कुछ करता आकाशवाणी हुई—बाणासुर तुम भगवान शिव के परम भक्त और महाराज बलि के पुत्र हो। तुम्हें इस प्रकार क्रोध करना शोभा नहीं देता। तुम जानते हो कि भगवान शिव सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में सृष्टि, भरण-पोषण और संहार करते हैं। वे अंतर्यामी और सबके ईश्वर हैं। भगवन् अनेक लीलाओं के रचयिता हैं और गर्व को चूर कर देते हैं। वे तुम्हारे गर्व को भी चकनाचूर कर देंगे।

आकाशवाणी सुनकर बाणासुर ने अनिरुद्ध का वध करने का विचार छोड़ दिया और अनिरुद्ध को जेल में छोड़कर चला गया। नागपाश में बंधे हुए अनिरुद्ध को बड़ा कष्ट हो रहा था। उसने दोनों हाथ जोड़कर कल्याण स्वरूपा मां जगदंबा देवी दुर्गा का स्मरण कर उनकी आराधना आरंभ कर दी। अनिरुद्ध बोला—हे माता! आप अपने शरणागतों की रक्षा करने वाली तथा उन्हें यश प्रदान करने वाली हैं। देवी! मैं नागपाश में बंधा हूं और नागों के जहर की ज्वाला मुझे जला रही है। हे माता! मेरी रक्षा कीजिए।

अनिरुद्ध की इस प्रकार अनुरोध भरी विनम्र प्रार्थना सुनकर देवी कालिका वहां प्रकट हो गईं और उन्होंने अपने जोरदार मुक्कों के प्रहार से पल भर में ही उसे नागपाश से मुक्त कर दिया तथा अंतर्धान हो गईं। नागपाश से मुक्त होते ही अनिरुद्ध को अपनी प्रिया उषा की याद सताने लगी और वह पुनः देवी उषा के पास चला गया। उषा अनिरुद्ध को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और उसके गले लग गई। तब वे दोनों सुखपूर्वक विहार करने लगे।

चौवनवां अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा राक्षस सेना का संहार

महर्षि व्यास बोले—हे मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार जी! जब कुष्माण्ड नामक दैत्य की पुत्री और उषा की सखी चित्रलेखा ने श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका जाकर वहां से सोते हुए उनके पोते अनिरुद्ध का अपहरण कर लिया तब श्रीकृष्ण ने क्या किया? इससे आगे की कथा से मुझे अवगत कराइए।

महर्षि व्यास के इस विनम्र आग्रह को सुनकर ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! जब चित्रलेखा रात्रि के समय सोते हुए कुमार अनिरुद्ध को उठाकर ले गई और वहां सुबह द्वारका में जब अनिरुद्ध अपने कक्ष में न दिखाई दिए तो उनकी तलाश आरंभ की गई परंतु वे जब द्वारका में थे ही नहीं तो मिलते कहां से? जब अनिरुद्ध की माता आदि अन्य स्त्रियों को यह पता चला कि कुमार अनिरुद्ध अपने महल से गायब हैं तो वहां रोना-पीटना मच गया। सब स्त्रियां रो-रोकर श्रीकृष्ण से अनिरुद्ध को ढूंढ़कर ले आने की प्रार्थना कर रही थीं। श्रीकृष्ण भी बड़े परेशान थे कि आखिर अनिरुद्ध महल से गायब कहां हो गया?

तभी वहां भगवान श्रीकृष्ण के राजमहल में देवर्षि नारद का आगमन हुआ। नारद ने भगवान श्रीकृष्ण को चिंतित देखा तो अपनी आदत के अनुसार सारी बातें उन्हें बता दीं। सबकुछ जानकर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अक्षौहिणी सेना के साथ दैत्यराज बाणासुर की राजधानी शोणितपुर पर चढ़ाई कर दी। प्रद्युम्न, युयुद्यान, सांब, सारण, नंद, उपनंद, बलभद्र और कृष्ण के सभी अनुवर्ती इस युद्ध में उनके साथ थे। जब इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान शिव ने अपने परम भक्त बाणासुर पर संकट को आते देखा तो वे स्वयं श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए आगे आ गए, क्योंकि शिवजी सदा ही अपने भक्तों के अधीन रहते हैं। तब भगवान शिव और श्रीकृष्ण की सेना में बड़ा भयानक युद्ध आरंभ हो गया। दोनों सेनाएं एक दूसरे पर विविध दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रही थीं। दोनों में से कोई भी सेना हार मानने को तैयार नहीं थी।

तब भगवान श्रीकृष्ण स्वयं देवाधिदेव भगवान शिव के पास गए और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण बोले—हे देवाधिदेव! हे भक्तवत्सल! हे करुणानिधान! भगवान शिव! आप सब प्रकार के गुणों से प्रकाशित हैं और अपने दुखों में डूबे हुए भक्तों को दुखों के सागर से उबारते हैं। भगवन्! आज आप क्यों इस संसार की माया में लिप्त हो रहे हैं। प्रभु! यह तो आपके आदेश के अनुसार ही हो रहा है। पूर्व में आपने ही गर्व से भरे दैत्यराज बाणासुर को शाप दिया था कि उसकी एक हजार भुजाओं का नाश शीघ्र ही होगा। इस समय मैं तो आपके उसी शाप को फलीभूत करने के लिए ही आया हूं। इसलिए आप अपनी आज्ञा प्रदान करें और शाप को पूरा होने दें।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार के वचन सुनकर देवाधिदेव भगवान शिव बोले—तात! आप सही

कह रहे हैं परंतु आप तो जानते ही हैं कि मैं सदा अपने ही भक्तों के वश में रहता हूं। इसलिए अपने भक्त बाणासुर की रक्षा करने के लिए ही मैं आपसे युद्ध करने को उद्यत हुआ हूं। आपको भी अपना कार्य पूर्ण करना है और शाप को भी पूरा करना है इसलिए दैत्यराज बाणासुर से युद्ध करने से पहले आप मुझे जृंभणास्त्र नामक शस्त्र द्वारा जीम्भ्रण कर दीजिए फिर अपने कार्य को पूरा कीजिएगा।

भगवान शिव की आज्ञा का पालन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने तुरंत जृम्भणास्त्र नामक अस्त्र छोड़ा, जिसके फलस्वरूप भगवान शिव ज्रीम्भत हो गए और मोहित होकर युद्ध को भूल गए। तब भगवान श्रीकृष्ण खड्ग, गदा और ऋष्टि आदि अस्त्रों से दैत्यराज बाणासुर की विशाल सेना का संहार करने लगे।

पचपनवां अध्याय

बाणासुर की भुजाओं का विध्वंस

व्यास जी ने सनत्कुमार जी से पूछा—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! जब भगवान शिव को श्रीकृष्ण ने जृम्भणास्त्र से मोहित कर दिया, तब वहां उस युद्ध में क्या हुआ? सनत्कुमार ने बताया—व्यास जी! जब युद्धभूमि में श्रीकृष्ण ने जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया तो देवाधिदेव भगवान शिव अपने शिवगणों सहित मोहित हो गए और संग्राम भूमि में ही सो गए। तब दैत्यराज बाणासुर अपने रथ पर बैठकर श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए आया। बाणासुर के रथ के घोड़ों की लगाम उसके सेनापति कुष्माण्ड के हाथों में थी। अनेकों प्रकार के आयुधों से सुसज्जित होकर बाणासुर भीषण युद्ध करने लगा। दोनों पक्षों में काफी समय तक युद्ध चलता रहा। श्रीकृष्ण जी ने भगवान शिव का स्मरण करके हाथो में शार्गं धनुष उठा लिया और बाणासुर पर बाणों की वर्षा करने लगे परंतु बाणासुर भी वीर और पराक्रमी था। वह उन बाणों को अपने पास आने से पहले ही काट डालता।

बाणासुर की वीरता से सारी कृष्ण सेना भयभीत होने लगी। उसके दैत्य भी बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। बाणासुर ने देखते ही देखते संपूर्ण यादव वंश को मूर्च्छित कर दिया। यह दृश्य देखकर श्रीकृष्ण अत्यंत क्रोधित हो उठे। श्रीकृष्ण ने गर्जन करते हुए अनेक प्रचण्ड बाणों को चलाकर उसके रथ और धनुष को तोड़ दिया। तब बाणासुर गदा लेकर कृष्ण की ओर दौड़ा। फिर दोनों में गदा युद्ध होने लगा। बाणासुर ने श्रीकृष्ण पर गदा का भीषण प्रहार किया, जिससे वे एक पल के लिए धरती पर गिर पड़े परंतु अगले ही क्षण उठकर पूरे वेग के साथ दैत्येंद्र से युद्ध करने लगे। उन दोनों के बीच इसी प्रकार भीषण युद्ध चलता रहा।

तब एक दिन भगवान श्रीकृष्ण बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने मन में भगवान शिव का स्मरण करके हाथों में परम दिव्य सुदर्शन चक्र उठा लिया और दैत्यराज बाणासुर की भुजाएं लकड़ी की तरह काट डालीं। अब बाणासुर की केवल चार भुजाएं ही शेष थीं। तब क्रोधित श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र द्वारा ही बाणासुर का सिर काटना चाहा।

उसी समय भगवान शिव मोहनिद्रा से जाग गए और बोले—हे देवकीनंदन! आप तो सदा ही मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। मैंने आपको बाणासुर की भुजाओं को काटने की ही आज्ञा दी थी। यह मैंने अपने इस भक्त के गर्व को तोड़ने के लिए किया था। अपने भक्तों की सदा रक्षा करना मेरा धर्म है। इसलिए आप बाणासुर के वध की इच्छा त्याग दीजिए और अपनी शत्रुता को भूल जाइए। बाणासुर की पुत्री उषा और आपके पौत्र अनिरुद्ध एक-दूसरे के होकर जीना चाहते हैं। इसलिए उन दोनों को विवाह के पवित्र बंधन में बांधकर आप अपने साथ द्वारका ले जाइए।

यह कहकर भगवान शिव ने बाणासुर और श्रीकृष्ण में मित्रता करा दी और स्वयं वहां से अंतर्धान होकर शिवलोक को चले गए। तब बाणासुर श्रीकृष्ण को आदर सहित अपने महल

में ले गया और वहां उनका बहुत आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात शुभ मुहूर्त में अपनी पुत्री उषा और श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह संपन्न कराके उन्हें अनेक बहुमूल्य रत्नों और हीरों-जवाहरातों के साथ विदा किया।

छप्पनवां अध्याय

बाणासुर को गण पद की प्राप्ति

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि व्यास जी! जब भगवान शिव बाणासुर और श्रीकृष्ण में मित्रता करवाकर वहां से अंतर्धान हो गए तब बाणासुर ने श्रीकृष्ण के साथ आदरपूर्वक अपनी पुत्री व दामाद को विदा कर दिया। इस प्रकार जब वे चले गए, तब अकेले में बैठकर बाणासुर ने अपने आचरण के विषय में बहुत सोचा और उसे अपनी करनी पर बहुत पश्चाताप हुआ। तब वह सीधा अपने पूजागृह में चला गया और वहां जाकर भगवान शिव के देवालय के सामने बैठकर रोने लगा। फिर उसने भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए उनकी विधि-विधान सहित स्तुति करनी आरंभ कर दी। दैत्यराज बाणासुर ने अनेकों मंत्रों एवं स्तोत्रों द्वारा अपने आराध्य भगवान शिव की स्तुति की। तत्पश्चात भगवान शिव को प्रणाम करके बाणासुर ने ताण्डव नृत्य करना आरंभ कर दिया। अनेक प्रकार से ठुमका लगाकर और मुंह से बाजा बजाकर वह नृत्य करने लगा। उसके चेहरे के हाव-भाव और हाथों की विभिन्न मुद्राएं उसके नृत्य को और प्रभावशाली बना रहे थे। उसने अनेकों प्रकार के नृत्य किए। साथ ही अपने शरीर की रक्त धाराओं से वहां की भूमि को भी भिगो दिया।

इस प्रकार दैत्यराज बाणासुर की भक्ति भावना और घोर आराधना देखकर भगवान शिव उस पर प्रसन्न हो गए और उसको दर्शन देने के लिए वहां प्रकट हुए। भगवान शिव को इस प्रकार अपने सामने पाकर दैत्येंद्र ने उन्हें प्रणाम किया और अनेकों प्रकार से उनकी स्तुति करने लगा। जिसे सुनकर भगवान शिव बोले—हे दैत्यराज बाणासुर! मैं तुम्हारी उत्तम भक्तिभावना से बहुत प्रसन्न हूं। जो मांगना चाहते हो मांग लो। मैं तुम्हें आज तुम्हारी मनोवांछित वस्तु प्रदान करूंगा।

भगवान शिव द्वारा वरदान मांगने के लिए कहे जाने पर बाणासुर बोला—हे देवाधिदेव! भगवान शिव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे अपना कृपापात्र बनाइए। भगवन्, मेरी पुत्री उषा और अनिरुद्ध का पुत्र ही मेरे शोणितपुर का राज्य संभाले। मेरा भगवान विष्णु से वैर-भाव मिट जाए। मेरे अंदर व्याप्त रजोगुण और तमोगुण का नाश हो जाए और पुनः दैत्यभाव उत्पन्न न हो। मुझे सभी शिव भक्तों से स्नेह हो। मुझे आपके गणनायकत्व की प्राप्ति हो।

इस प्रकार के वचन सुनकर भगवान शिव बोले—तथास्तु! बाणासुर तुम्हें निश्चय ही मेरे गणनायक पद की प्राप्ति होगी। तुम्हारी सभी इच्छाएं अवश्य ही पूरी होंगी। यह कहकर भगवान शिव वहां से अंतर्धान हो गए। शिवजी के प्रसाद से बाणासुर ने महाकाल तत्व प्राप्त किया जिसे पाकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

सत्तानवां अध्याय

गजासुर की तपस्या एवं वध

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! अब मैं आपको भगवान शशिमौलि द्वारा दानवराज गजासुर के संहार की कथा सुनाता हूं। गजासुर महिषासुर का पुत्र था। जब गजासुर को यह पता चला कि देवताओं के हितों की रक्षा करने के लिए उसके पिता महिषासुर का वध कर दिया गया है, तब उसे देवताओं पर बड़ा क्रोध आया। तब गजासुर ने देवताओं से इसका बदला लेने के लिए घोर तपस्या करनी आरंभ कर दी। काफी समय तक गजासुर ब्रह्माजी को प्रसन्न करने हेतु तप करता रहा परंतु ब्रह्माजी वहां प्रकट नहीं हुए। इधर, दूसरी ओर उसके तप की ज्वाला धधकती जा रही थी जिससे देवता चिंतित हो उठे।

गजासुर की तपस्या से दग्ध होकर सभी देवता ब्रह्माजी की शरण में गए और उन्हें गजासुर की तप की अग्नि से जलने की बात बताई। तब ब्रह्माजी गजासुर को वरदान देने के लिए गए। गजासुर ने ब्रह्माजी की स्तुति कर उनसे महाबली और अजेय होने का वरदान प्राप्त किया। तत्पश्चात ब्रह्माजी उसे वर देकर वहां से अंतर्धान हो गए।

ब्रह्माजी से अपना मनचाहा वरदान पाकर गजासुर प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को आ गया। वरदान पाकर वह गर्वित महसूस कर रहा था। उसने चारों दिशाओं में अपने राज्य का विस्तार करना आरंभ कर दिया था। उसने तीनों लोकों सहित देवता, असुरों, मनुष्यों और इंद्रादि तथा सब गंधर्वों को जीतकर उनके तेज का हरण कर लिया। उसने सभी को बहुत परेशान किया। पृथ्वी पर रहने वाले सभी ऋषि-मुनियों, तपस्वियों, साधु-संतों और ब्राह्मणों को गजासुर दुख देने लगा तथा उनके कार्यों में बाधा डालने लगा।

इस प्रकार गजासुर अपना राज्य फैलाता जा रहा था। एक बार वह भगवान शिव की प्रिय नगरी काशी में जाकर वहां सबको सताने लगा। तब सभी देवता मिलकर भगवान शिव के पास गए और उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे—हे भक्तवत्सल! हे कृपानिधान! उस गजासुर नामक दैत्य से हमारी रक्षा करें।

देवताओं की प्रार्थना मानकर भगवान शिव सबकी रक्षार्थ अपना त्रिशूल लेकर गजासुर का वध करने के लिए पहुंचे। तब भगवान शिव और दैत्यराज गजासुर में बड़ा भयानक युद्ध हुआ। वह तलवार लेकर शिवजी पर झपटा। शिवजी त्रिशूल द्वारा उस पर प्रहार करने लगे। अंत में देवाधिदेव भगवान शिव ने त्रिशूल का वार किया और उसे त्रिशूल के सहारे ऊपर उठा लिया।

इस प्रकार जब त्रिशूल ने उसके शरीर को भेद दिया तब अपना अंतिम समय निकट जानकर दैत्यराज गजासुर भगवान शिव की आराधना करने लगा और शिवजी को प्रसन्न करने हेतु उनकी स्तुति करने लगा। गजासुर बोला—हे महादेव! हे कल्याणकारी! हे भक्तवत्सल! आप तो सबके ईश्वर हैं। देवों के देव महादेव हैं। आप सदा अपने भक्तों की रक्षा

करते हैं और सदा भक्तों के अधीन रहते हैं। आप सबका कल्याण करने वाले तथा सबके कष्टों का निवारण करने वाले हैं। आप निर्गुण, निराकार हैं। सब शरणागतों की रक्षा कर आप उनकी इच्छाओं को पूरा करते हैं। ऐसे देवाधिदेव भगवान महादेव शिव को मैं प्रणाम करता हूं। प्रभो! मुझ पर प्रसन्न होइए और मेरे कष्टों का निवारण कीजिए।

दैत्यराज गजासुर की भक्तिभावना से की हुई उत्तम प्रार्थना को सुनकर भगवान शिव को बहुत प्रसन्नता हुई। वे बोले—दैत्येंद्र! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। जो चाहो मांग सकते हो। तुम्हारी मनोकामना मैं अवश्य पूरी करूंगा। भगवान शिव के वचनों को सुनकर गजासुर प्रसन्नतापूर्वक बोला—हे देवाधिदेव! भक्तवत्सल भगवान शिव! यदि आप सच में मेरी आराधना से प्रसन्न हुए हैं तो मेरी विनती स्वीकार करें। प्रभु! आपने अपने पवित्र त्रिशूल से मेरे शरीर को स्पर्श किया है इसलिए मैं यह चाहता हूं कि मेरे शरीर का चर्म आप धारण करें। भगवन् आप सदा मेरी खाल का ही ओढ़ना धारण करें और आज से आप 'कृत्तिवासा' नाम से विख्यात हों।

भगवान शिव ने प्रसन्नतापूर्वक दैत्यराज गजासुर को उसका इच्छित वरदान प्रदान किया और बोले—हे गजासुर! तुम्हारे शरीर को आज मेरी प्रिय काशी नगरी में मुक्ति मिलेगी। तुम्हारा शरीर यहां मेरे ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थापित होगा और कृतिवासेश्वर नाम से जगप्रसिद्ध होगा। इसके दर्शनों से मनुष्यों को मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह कहकर भगवान शिव ने गजासुर के शरीर की चर्म को ओढ़ लिया और कृतिवासेश्वर ज्योतिर्लिंग की स्थापना की। जिसके फलस्वरूप वहां काशी में बहुत बड़ा उत्सव हुआ। सब देवता बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात भगवान शिव वहां से अंतर्धान हो गए।

अट्ठावनवां अध्याय

दुंदुभिनिर्ह्राद का वध

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! अब मैं आपको भगवान शिव द्वारा दुंदुभिनिर्ह्राद नामक दैत्य के वध की कथा बताता हूं। जब भगवान श्रीहरि विष्णु ने महाबली हिरण्याक्ष का वध किया तब हिरण्याक्ष की माता दिति को बहुत दुख हुआ। तब देवताओं के घोर शत्रु दुंदुभिनिर्ह्राद ने दिति को अपने साथ मिला लिया और उनसे कहा कि देवताओं की ताकत को तभी कम किया जा सकता है, जब उनकी पूजा करने वाले ब्राह्मणों को नष्ट कर दिया जाए। जब ब्राह्मण नष्ट हो जाएंगे तब यज्ञ नहीं होंगे और जब यज्ञ नहीं होंगे तब देवताओं को भोजन नहीं मिलेगा तथा इस कारण वे निर्बल हो जाएंगे। यह विचार मन में करके वह दुष्ट फिर विचार करने लगा और तपस्या करने वाले ब्राह्मणों की खोज करने लगा। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि काशी नगरी ब्राह्मणों की भूमि है, इसलिए सर्वप्रथम हमें वहीं से अपना कार्य आरंभ करना चाहिए। वह दुंदुभिनिर्ह्राद नामक दैत्य कुशा और समिधा लेने जाने वाले ब्राह्मणों को मारने लगा। वह नदियों और तालाबों में जलजीव बनकर छिप जाता तथा वहां स्नान करने आए साधुओं और तपस्वियों को वहीं मार देता तथा वनों में वनचर बनकर ब्राह्मणों का वध कर देता। रात में बाघ का रूप धारण करके वह ब्राह्मणों को खाने लगा। दिन में वह मुनियों की तरह ध्यान लगाकर मुनियों के बीच बैठ जाता। इस प्रकार उस दुष्ट राक्षस ने बहुत सारे ब्राह्मणों का वध कर दिया।

एक शिवरात्रि के दिन भगवान शिव का एक भक्त देवालय में बैठकर भगवान शिव का पूजन करने के पश्चात ध्यान कर रहा था। निर्ह्राद ने जब इस प्रकार उसे अकेला देखा तो बाघ का रूप धारण कर उसे खाने के लिए आगे बढ़ा परंतु उसने पहले ही अपने चारों ओर शिव मंत्र रूपी कवच धारण किया हुआ था। इसलिए वह उस शिव भक्त को खा नहीं सका। इधर, भक्तवत्सल भगवान शिव ने अपने भक्त पर आए उस संकट को जान लिया व उसकी रक्षा के लिए शिवलिंग से प्रकट हो गए और जैसे ही दुंदुभिनिर्ह्राद दुबारा बाघ रूप में उस ब्राह्मण पर झपटा, भगवान शिव ने उसे धर दबोचा। फिर उसे अपने बगल में दबाकर उन्होंने उसके सिर पर मुक्के से प्रहार किया। उस दैत्य की भयानक चिंघाड़ से पूरा आकाश गूंज उठा जिसे सुनकर आस-पास जो भी ब्राह्मण और तपस्वी थे तुरंत उस स्थान की ओर दौड़े और वहां का अद्भुत दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए। भगवान शिव ने उस दुंदुभिनिर्ह्राद नामक असुर को अपनी बगल में दबा रखा था। यह देखकर सभी ब्राह्मण और भक्तजन हाथ जोड़कर भगवान शिव की आराधना करने लगे।

तब उनकी भक्तिभावना से की गई आराधना को सुनकर भगवान शिव बोले—हे मेरे प्रिय भक्तो! जो मनुष्य यहां आकर श्रद्धाभाव से मेरे स्वरूप का दर्शन करेगा, मैं उसके सभी कष्टों और दुखों का नाश कर दूंगा। मेरे इस लिंग का स्मरण करने के पश्चात आरंभ किए गए हर

कार्य में मनुष्यों को सफलता मिलेगी।

इस संसार में जो भी मनुष्य व्याघ्रेश्वर नामक उत्तम शिवलिंग के प्राकट्य के इस उत्तम चरित्र को, स्वच्छ, निर्मल मन एवं श्रद्धाभाव से सुनेगा, सुनाएगा, पढ़ेगा या पढ़ाएगा उसकी सभी मनोकामनाएं अवश्य पूरी होंगी तथा उसके समस्त दुखों और कष्टों का नाश होगा। अंत में उस मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होगी। भगवान शिव की उत्तम लीला से संबंधित यह कथा स्वर्ग, यश और आयु प्रदान करने वाली तथा वंश वृद्धि करने वाली है।

उनसठवां अध्याय

विदल और उत्पल नामक दैत्यों का वध

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि वेद व्यास जी! अब मैं आपको विदल और उत्पल नामक दो महादैत्यों के विनाश की कथा सुनाता हूं। विदल और उत्पल दैत्यों ने ब्रह्माजी की कठोर तपस्या करके उनसे किसी भी पुरुष के हाथों से न मरने का वरदान प्राप्त कर लिया था। यह वरदान पाकर वे दोनों दैत्य अपने को महावीर, बलवान और पराक्रमी समझने लगे थे। तब उन्हें अपने पर बड़ा अभिमान हो गया और उन्होंने अपने बल से सारे ब्रह्माण्ड को जीतकर अपने वश में कर लिया। तत्पश्चात उन्होंने सब देवताओं को भी युद्ध में परास्त कर दिया और उनके स्वर्गलोक पर अधिकार कर लिया।

सब देवताओं ने ब्रह्माजी को अपनी व्यथा सुनाई। तब ब्रह्माजी ने उन्हें आश्वासन दिया और समझाया कि आप देवी पार्वती सहित भगवान शिव की आराधना करें। वे ही आपके दुखों को दूर कर सकते हैं। आप सब उन्हीं की शरण में जाएं। भगवन् भक्तवत्सल हैं। वे निश्चय ही आपका कल्याण करेंगे। तब ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर देवता शिव-शिवा की जय-जयकार करते हुए अपने-अपने धाम को चले गए।

एक दिन की बात है, देवर्षि नारद भगवान शिव की इच्छा से प्रेरित होकर विदल और उत्पल नामक दैत्यों के पास गए और वहां उन्होंने उन महादैत्यों से देवी पार्वती के रूप-सौंदर्य की बहुत प्रशंसा की। उनके रूप की प्रशंसा सुनकर दैत्य काम से पीड़ित हो गए। उन्होंने अपने मन में देवी पार्वती का हरण करने के बारे में सोचा। इस बुरी भावना को मन में लिए वे दैत्य पार्वती जी को देखने के लिए चल दिए।

एक बार जब देवी पार्वती अपनी सहेलियों के साथ गेंद से खेल रही थीं तब आकाश मार्ग से जाते समय उन दुराचारी दैत्यों की दृष्टि देवी पार्वती पर पड़ी। वे महादैत्य शिवगणों का रूप धारण करके उनके निकट पहुंचे। उनकी आंखों की चंचलता को देखकर भगवान शिव ने उन्हें तुरंत पहचान लिया। उन्होंने अलौकिक रीति से देवी पार्वती को भी इस बात का ज्ञान करा दिया कि वे शिवगण नहीं, राक्षस हैं। अपने आराध्य पति सर्वज्ञ शिव की बातों को देवी पार्वती ने समझ लिया। महादैत्यों को उनकी करनी का फल चखाने के लिए देवी पार्वती ने सखियों के साथ खेलते-खेलते इस प्रकार से गेंद घुमाकर मारी कि उसकी चोट से चक्कर खाकर विदल और उत्पल नामक दैत्य धरती पर इस प्रकार गिर पड़े, जैसे तेज वायु के झोंके से पके हुए फल टपक कर धरती पर गिर जाते हैं, जिस प्रकार वज्र के प्रहार से बड़े-बड़े शिखर पल में ढह जाते हैं, गिरते ही उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

इस प्रकार उत्पल और विदल नामक महादैत्यों का वध करने के पश्चात वह गेंद ज्योर्तिलिंग के रूप में परिणत हो गई। दुष्टों का नाश करने वाला वह लिंग कंदुकेश्वर नाम से विख्यात हुआ। यह लिंग ज्येष्ठेश्वर के निकट स्थित है। काशी में स्थित कंदुकेश्वर ज्योतिर्लिंग

दुष्टों का नाश करने वाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है तथा मनुष्यों की सारी मनोकामनाओं को पूरा करता है। इस अनुपम कथा को सुनने अथवा पढ़ने से भय और दुख दूर हो जाते हैं तथा सुखों की प्राप्ति होती है और अंत में दिव्य गति की प्राप्ति होती है।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्वर! मैंने आपको समस्त मनोरथों को पूरा करने वाले रुद्रसंहिता के युद्धखण्ड को सुनाया। यह शिवजी को प्रिय है और भक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाला है।

।। श्रीरुद्र संहिता (युद्धखंड) संपूर्ण ।।

।। रुद्रसंहिता समाप्त ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीशतरुद्र संहिता

पहला अध्याय

शिव के पांच अवतार

शौनक जी बोले—हे सूत जी! जो परमानंद हैं, जिनकी लीलाएं अनंत हैं और जो सर्वेश्वर अर्थात सबके ईश्वर हैं, जो देवी गौरी के प्रियतम तथा कार्तिकेय व विघ्न विनाशक गणेश जी के जन्मदाता हैं, उन आदिदेव भगवान शिव की हमें वंदना करनी चाहिए। हे सूत जी! आप मुझे भगवान शिव के उन अवतारों के बारे में बताइए, जिनमें सज्जनों का कल्याण शिवजी द्वारा किया गया है।

सूत जी बोले—हे शौनक जी! यही बात पूर्व में सनत्कुमार जी ने परम शिवभक्त नंदीश्वर से पूछी थी। तब नंदीश्वर ने भगवान शिव के चरणों का स्मरण करते हुए कहा—मुने! भगवान शिव तो सर्वव्यापक हैं और उनके असंख्य अवतार हैं। श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्प में शिवजी का सद्योजात नामक अवतार हुआ है। यही शिवजी का प्रथम अवतार कहा जाता है। उस कल्प में परम ब्रह्म का ध्यान करते हुए ब्रह्माजी की शिखा से श्वेत लोहित कुमार उत्पन्न हुए। तब सद्योजात को शिव-अवतार जानकर ब्रह्माजी प्रसन्नतापूर्वक उनका बार-बार चिंतन करने लगे।

ब्रह्माजी के चिंतन से परमब्रह्म स्वरूपी चार यशस्वी ज्ञान संपन्न कुमार उत्पन्न हुए। उनके नाम सुनंद, नंदन, विश्वनंदन और उपनंदन थे। तब सद्योजात भगवान शिव ने ब्रह्माजी को परम ज्ञान प्रदान किया तथा इस सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति उन्हें प्रदान की।

तत्पश्चात रक्त नामक बीसवां कल्प आया। इसमें ब्रह्माजी का शरीर रक्तवर्ण का हो गया। इस प्रकार ध्यान करते हुए उनके मन में अचानक पुत्र प्राप्ति का विचार आया। उसी समय उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। उसने लाल रंग के कपड़े पहन रखे थे तथा उसके सभी आभूषण और आंखें भी लाल ही थीं। तब उस पुत्र को भगवान शिव का दिया हुआ प्रसाद जानकर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान शिव की स्तुति करनी आरंभ कर दी। उस लाल वस्त्रधारी के विरज, विवाह, विशाख और विश्वभान नाम के चार पुत्र हुए। तत्पश्चात वामदेव भगवान शिव ने ब्रह्माजी को सृष्टि की रचना करने की आज्ञा प्रदान की।

इसके बाद इक्कीसवां कल्प आया, जिसमें ब्रह्माजी ने पीले वस्त्र धारण किए। पुत्र कामना का ध्यान करते हुए ब्रह्माजी को एक महान तेजस्वी, दीर्घ भुजाओं वाला पुत्र प्राप्त हुआ। उस पुत्र को ब्रह्माजी ने अपनी बुद्धि से 'तत्पुरुष' शिव समझा। तब उन्होंने गायत्री का जाप आरंभ किया। देवी गायत्री एवं शिव कृपा से उस पीत वस्त्रधारी दिव्य कुमार के अनेकों पुत्र हुए।

इसके पश्चात शिव नामक कल्प हुआ। इससे ब्रह्मा जी को हजारों वर्षों बाद एक दिव्य कुमार की प्राप्ति हुई। वह बालक काले रंग का था। उसने काले कपड़े, काली पगड़ी और सभी वस्तुएं काले रंग की ही धारण कर रखी थीं। तब इस अघोर तथा घोर पराक्रमी कृष्ण

एवं अद्‌भुत देवेश को देखकर ब्रह्माजी ने प्रणाम किया। फिर ब्रह्माजी उनकी स्तुति करने लगे। उस कृष्णवर्णी कुमार के कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्ण कण्ठधारी नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। ये सभी तेजस्वी और शिवस्वरूप ही थे। इन्होंने ही ब्रह्माजी द्वारा रची जा रही सृष्टि का विस्तार करने के लिए 'घोर' नामक योग का प्रचार किया।

तत्पश्चात परम अद्‌भुत विश्वरूप नामक कल्प हुआ, जिसमें ब्रह्माजी पुत्र की कामना से ध्यानमग्न थे तभी उनके चिंतन से सिंहनाद करने वाली विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई। साथ ही परमेश्वर के पांचवें अवतार भगवान ईशान भी प्रकट हुए, जिनका रंग स्फटिक के समान उज्ज्वल था और उन्होंने अनेक प्रकार के सुंदर रत्न-आभूषण धारण किए हुए थे। तब उन ईशान के जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड नामक चार पुत्र हुए। इन बालकों ने भी योग का मार्ग अपना लिया।

इस प्रकार मैंने जगत की हितकामना से भगवान शिव के सद्योजात नामक अवतार एवं शिवजी के ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और ब्रह्म नामक पांच मूर्तियों के बारे में बताया। जो मनुष्य श्रद्धाभाव से भगवान शिव के इस अवतार को सुनता या पढ़ता है, वह इस संसार में सुख भोगकर परमगति को प्राप्त होता है।

दूसरा अध्याय

शिवजी की अष्टमूर्तियों का वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! अभी मैंने आपको भगवान शिव के श्रेष्ठ अवतारों के बारे में बताया, जो सुखदाता और परम कल्याणकारी हैं। अब मैं आपको देवाधिदेव महादेव जी की आठ मूर्तियों के विषय में बताता हूं। मुने! इस विश्व में भगवान शिव की प्रसिद्ध अष्टमूर्तियां निम्न हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। ये आठ मूर्तियां सूत्र में मणियों की तरह पिरोई गई हैं। भगवान शिव की ये अष्टमूर्तियां पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चंद्रमा में अधिष्ठित हैं। शास्त्रों के अनुसार, भगवान शिव का 'विश्वंभर' रूप इस चराचर जगत को धारण करने वाला है। उन्हीं का 'भव' रूप सलिलात्मक एवं समस्त जगत को जीवन प्रदान करने वाला है और संसार का पालन करता है एवं उसे चलाता है। यही तीसरी मूर्ति का 'उग्र' रूप है।

महादेव जी के आकाशात्मक रूप को 'भीम' कहते हैं, जिससे राजसमुदाय का भेदन होता है। भक्तवत्सल भगवान शिव का 'पशुपति' रूप आत्माओं का अधिष्ठान करने वाला, संपूर्ण क्षेत्र में निवास करने वाला है। यही पशु एवं जीवों के पाश को काटने वाला है। महादेव जी का इस संसार को प्रकाशित करने वाला सूर्य रूप 'ईशान' है और यही आकाश में फैला हुआ है। भगवान शिव का अमृतमयी रश्मियों वाला तथा संसार को तृप्त करने वाला रूप 'महादेव' के नाम से पुकारा जाता है। 'आत्मा' देवाधिदेव भगवान शिव का आठवां मूर्ति रूप है और अन्य मूर्तियों की व्यापिका है।

भगवान शिव के इस अष्टमूर्ति स्वरूप के कारण ही पूरा संसार शिवमय है। जिस प्रकार पौधे को पानी से सींचने से शाखाएं एवं फूल पुष्पित होते हैं, उसी प्रकार शिव स्वरूप से यह विश्व परिपुष्ट होता है। जिस प्रकार पिता पुत्र को देखकर हर्षित होता है उसी प्रकार इस जगत के पिता भगवान शिव भी अपने भक्तों को हर्षित और प्रसन्न देखकर संतुष्ट होते हैं और उन्हें आनंद की प्राप्ति होती है, इसलिए हमें सदैव भक्तिभाव से उनकी प्रसन्नता हेतु कार्य करना चाहिए।

तीसरा अध्याय

अर्द्धनारीश्वर शिव

नंदीश्वर बोले—जब ब्रह्माजी द्वारा रची हुई इस सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ तब वे बड़े चिंतित होकर विस्तार के उपायों के विषय में सोचने लगे। ब्रह्माजी ने विचार किया कि यदि कोई इस संबंध में मेरी मदद कर सकता है तो वे सिर्फ भगवान शिव हैं। तब अपने आराध्य देव भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु उन्होंने शिव-शिवा के संयुक्त रूप की आराधना करनी आरंभ कर दी। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शिव उनके सामने प्रकट हुए और बोले —हे ब्रह्मान्! कहो, क्या चाहते हो? अपने मनोरथ के विषय में बताओ, ताकि मैं उसे पूरा करने में तुम्हारी मदद कर सकूं।

भगवान शिव के इस प्रकार के वचन सुनकर ब्रह्माजी ने अपने दोनों हाथ जोड़कर भगवान शिव की स्तुति की और बोले—हे देवाधिदेव महादेव! शिवशंकर! आप तो अपने भक्तों के रक्षक हैं। आप उनके समस्त दुखों को दूर करके उनको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। भगवन्! आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने सृष्टि की रचना की है परंतु भगवन्, मेरे द्वारा रची गई सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है। यदि यह कार्य इसी तरह होता रहा तो कभी भी सृष्टि में वृद्धि नहीं हो पाएगी।

तब ब्रह्माजी के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव बोले—हे ब्रह्मान्! मैं जानता हूं कि तुमने अपनी सृष्टि में प्रजा की वृद्धि के लिए मेरी पूजा-आराधना की है। यह कहकर शिवजी ने अपने शरीर से देवी शिवा को अलग कर दिया। देवी शिवा को वहां देखकर ब्रह्माजी देवी शिवा की स्तुति करने लगे और कहने लगे, देवी! आपके पति भगवान शिव की ही कृपा से इस सृष्टि का सृजन हुआ है।

भगवान शिव बोले—हे ब्रह्माजी! मैंने आपके मनोरथ को पूर्ण करने के लिए ही देवी शिवा को प्रकट किया है। इस सृष्टि का विस्तार तभी संभव है, जब मैथुनी-सृष्टि की रचना हो। इसलिए तुम इस कार्य की पूर्ति करो। यह सुनकर ब्रह्माजी भगवान शिव और शिवा दोनों की प्रसन्नता हेतु कार्य करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—हे देवी! सृष्टि के आरंभ में आपके पति देवाधिदेव भगवान शिव ने ही मेरी रचना की थी और मुझे सृष्टि की रचना करने का आदेश दिया था। जिसके फलस्वरूप मैंने अनेक पुरुषों की रचना की परंतु इतना करने पर भी उनकी वृद्धि संभव नहीं हो सकी। इसलिए माते! मैं अपनी प्रजा की वृद्धि हेतु आपकी शरण में आया हूं। प्रजा वृद्धि तभी संभव है, जब सृष्टि का निर्माण कार्य अर्थात वृद्धि स्त्री-पुरुष के समागम से हो परंतु अभी तक मैं नारी को प्रकट नहीं कर पाया हूं। हे शिवे! आप मुझे नारी की सृष्टि करने की शक्ति प्रदान करें। हे सर्वेश्वरी! हे जगत जननी! मेरे कार्य की सिद्धि हेतु आप मेरे पुत्र दक्ष की पुत्री के रूप में जन्म लीजिए।

ब्रह्माजी की प्रार्थना को मानते हुए देवी जगदंबा ने दक्ष की पुत्री होना स्वीकार कर लिया। यह कहकर देवी शिवा ने भगवान शिव के शरीर में प्रवेश कर लिया। तत्पश्चात शिव-शिवा वहां से अंतर्धान हो गए। तभी से शिव-शिवा का अर्द्धनारीश्वर रूप विख्यात हुआ और इस संसार में स्त्री जाति की रचना संभव हुई। यह अर्द्धनारीश्वर स्वरूप वर्णन अत्यंत आनंददायक एवं मंगलकारी है।

चौथा अध्याय

ऋषभदेव अवतार का वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ सनत्कुमार जी! एक बार ब्रह्माजी से भगवान शिव बोले—ब्रह्मन्! सातवें मन्वंतर में वाराह कल्प होगा, इसमें कल्पेश्वर भगवान प्रकट होंगे, जो तीनों लोकों को अपने दिव्य प्रकाश से आलोकित करेंगे और तुम वैवस्वत मनु के प्रपौत्र बनोगे। उन मन्वंतर में चार युग होंगे। द्वापर युग के अंत में मैं ब्राह्मणों की रक्षा करने और उनका हित करने हेतु अवतार धारण करूंगा। द्वापर युग में व्यास जी प्रभु का रूप धारण करेंगे। कलयुग के अंत में मैं देवी शिवा सहित श्वेत नामक ब्राह्मण मुनि के रूप में प्रकट होऊंगा। हिमालय पर्वत पर मेरे श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक चार शिष्य होंगे। मेरे ये शिष्य अविनाशी तत्व को जानकर जन्म-मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

हिमालय के उच्च शिखर पर जब मैं अवतार लूंगा, उस समय ब्रह्माजी मेरे शिष्य बनकर मुझसे अव्यय-तत्व की शिक्षा लेंगे और मेरे परम भक्त बनकर मेरी आराधना करेंगे। द्वापर में प्रजापति सत्य तो कलियुग में 'सुतारि' नाम से मुझे प्रसिद्धि मिलेगी। उस युग में दुंदुभी, शतरूप, तृषीक और केतु आदि वेदों के ज्ञाता मेरे-प्रिय शिष्य होंगे। मेरे ये शिष्य ध्यान और योग के माध्यम से शिवलोक को प्राप्त करेंगे। द्वापर के तीसरे चरण में व्यास जी भार्गव के रूप में अवतरित होंगे और शिवलोक के पास दमन नाम से प्रसिद्ध होंगे। मेरे विशोकादि नामक चार पुत्र व्यास जी के शिष्य होंगे, जिन्हें मैं दृढ़ निवृत्ति का उपदेश दूंगा।

तत्पश्चात चौथे द्वापर में अंगिराज व्यास होंगे और मैं सुहोत्र नाम से प्रकट होऊंगा। मेरे चार पुत्र होंगे और वे चारों महात्मा बन जाएंगे। मेरे ये चारों पुत्र सुमुख, दुर्मुख, दुदर्भ और दुरतिक्रम नाम से विख्यात होंगे। पांचवें द्वापर में व्यास जी सविता नाम से प्रसिद्ध होंगे और मैं कंक नामक योगी व महान तपस्वी होऊंगा। तब मैं व्यास जी की सहायता करूंगा और उन्हें अर्थ मुक्ति के मार्ग का आश्रय दूंगा।

नौवां द्वापर आने पर व्यास जी सारस्वत होंगे। तब मैं स्वयं ऋषभ नामक अवतार धारण करूंगा। पाराशर, गर्ग, भार्गव तथा गिरीश मेरे शिष्य होंगे। ये चारों श्रेष्ठ योगी होंगे और सदा योग के मार्ग का ही अनुसरण करेंगे। अपने ऋषभ अवतार में, मैं भद्रायु नाम के एक राजकुमार को जीवन दान दूंगा, जो कि विष द्वारा मर जाएगा। जब वह राजकुमार भद्रायु सोलह वर्ष का होगा, उस समय मेरे अंश ऋषभ ऋषि उसके घर जाएंगे। जब वह राजकुमार श्रद्धा और भक्ति भावना से उनका पूजन करेगा, तब वे मुनि उसे राजधर्म का उपदेश देंगे। उसकी पूजा-अर्चना से प्रसन्न होकर वे मुनि भद्रायु को दिव्य कवच, शंख तथा शत्रुओं का विनाश करने वाला खड्ग प्रदान करेंगे। यही नहीं, वे उसके शरीर पर अद्भुत भस्म लगाकर उसे बारह हजार हाथियों का बल भी प्रदान करेंगे।

इस प्रकार भद्रायु को अनेकों वरदान और दिव्य वस्तुएं प्रदान करने के पश्चात वे वहां से

चले जाएंगे। तब भद्रायु रिपुगणों को युद्ध में हराकर कीर्तिमालिनी नामक परम सुंदरी कन्या से विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करेगा। यही ऋषभ नामक नवां अवतार है। ऋषभ-चरित्र परम पावन, महान तथा स्वर्ग, यश और आयु प्रदान करने वाला है।

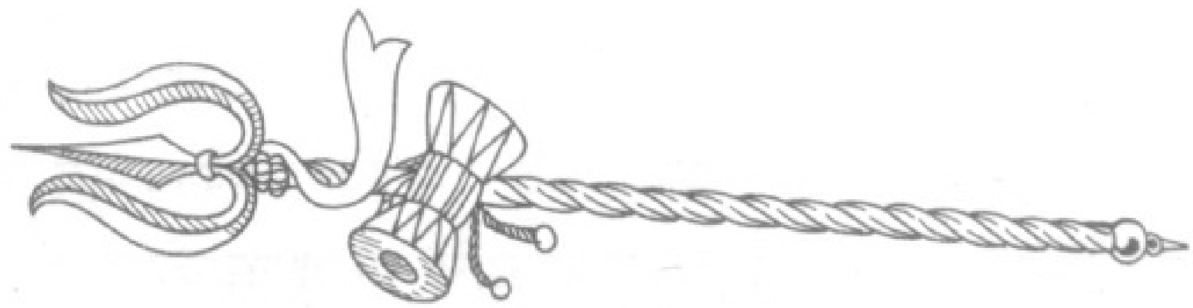

पांचवां अध्याय

शिवजी द्वारा योगेश्वरावतारों का वर्णन

शिवजी बोले—ब्रह्मन्! दसवें द्वापर में त्रिधामा नामक व्यास मुनि होंगे जो हिमालय के उच्च शिखर पर भृंगु नामक स्थान पर रहेंगे। उस अवतार में भी मेरे भृगु, बलवंधु, नरामित्र और केतुशृंग नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। ग्यारहवां द्वापर आने पर त्रिवृत नामक व्यास होंगे और मैं कलिंग में गंगा के द्वापर में तप नाम से प्रकट होऊंगा और लंबोदर, लंबादा, केशलंब और प्रलंबक नामक मेरे चार पुत्र होंगे। ये चारों दृढ़वर्ती होंगे। तत्पश्चात बारहवां द्वापर आएगा। इसमें शततेजा मुनि व्यास होंगे और मैं अत्रि नामक अवतार धारण करूंगा। उस समय सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व नाम के मेरे चार पुत्र होंगे। ये महायोगी होंगे और निवृत्ति के मार्ग का अनुसरण करेंगे।

तेरहवें द्वापर में व्यास धर्मस्वरूप नारायण होंगे और मैं गंधमादन पर्वत पर बालखिल्याश्रम में जन्म लेकर महामुनि बलि के नाम से जाना जाऊंगा। तब सुधामा, कश्यप, वशिष्ठ और विरजा मेरे पुत्र होंगे। वहीं चौदहवें द्वापर युग में व्यास जी दक्ष बनकर और मैं गौतम के रूप में अवतरित होऊंगा। तब अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविकष्ट मेरे पुत्र के रूप में जन्म लेंगे। पंद्रहवां द्वापर आने पर मैं हिमालय के वेदशीर्ष नामक पर्वत पर सरस्वती नदी के उत्तरी तट पर वेदशिरा का रूप धारण करूंगा। वेदशिरा के अवतार में कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक नाम के चार वीर पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होंगे। उस समय व्यास जी त्रय्यारुणि नामक अवतार में होंगे। सोलहवां द्वापर युग आने पर, व्यास जी देव नाम धारण करेंगे और मैं गोकर्ण नामक वन में गोकर्ण बनकर जन्म लूंगा तथा काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति मेरे चार पुत्र होंगे।

सत्रहवें द्वापर युग में, व्यास देवकृतंजय होंगे। मैं गुहावासी नाम से अवतार लूंगा और उतथ्य, वामदेव, महायोगा और महाबल मेरे पुत्र होंगे। अट्ठारवां द्वापर आने पर मैं शिखंडी पर्वत पर जहां शिखंडी वन है, वहां शिखंडी नाम से अवतरित होऊंगा और ऋतंजय व्यास होंगे। उस समय वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य और यतीश्वर मेरे पुत्र तपस्वी होंगे। उन्नीसवें द्वापर युग में महामुनि भारद्वाज व्यास होंगे और मैं माली नाम से हिमालय के शिखर पर जन्म लूंगा, तब मेरी लंबी-लंबी जटाएं होंगी। हिरण्यनामा, कौसल्य, लोकाक्षि और प्रधिमि, जो कि गंभीर स्वभावी हैं, मेरे पुत्रों के रूप में जन्म लेंगे। बीसवां द्वापर आने पर, व्यास जी गौतम और मैं अट्टहास नाम से अवतार धारण करेंगे। सुमंत, वर्वरि, विद्वान कबंध और कुणिबंधर मेरे योग संपन्न पुत्र होंगे।

इक्कीसवें द्वापर युग में मैं दारुक नाम से पैदा होऊंगा और मेरे नाम से उस स्थान का नाम दारुवन हो जाएगा। पल्क्ष, दार्भामणि, केतुमान तथा गौतम मेरे पुत्र होंगे और वाचःश्रवा व्यास होंगे। बाइसवां द्वापर युग आने पर व्यास जी शुष्मायण के रूप में अवतार लेंगे और मैं

वाराणसी में लांगली भीम के अवतार के रूप में प्रकट होऊंगा। उस समय मुझ हलायुधधारी शिव का दर्शन सभी देवता करेंगे तथा भल्लरी, मधु, पिंग और श्वेतकेतु मेरे पुत्र होंगे तथा वे धार्मिक रुचि रखने वाले होंगे। तेईसवें द्वापर में व्यास तृणाबिंदु मुनि होंगे। तब मैं कालिंजर नामक पर्वत पर श्वेत नाम से उत्पन्न हूंगा और उशिक, बृहद्रश्व, देवल और कवि नाम के चार तपस्वी पुत्र होंगे। चौबीसवें द्वापर में यक्ष व्यास होंगे। तब मैं शूली नामक महायोगी के रूप में जन्म लूंगा। शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु मेरे पुत्र होंगे।

जब पच्चीसवां द्वापर युग आएगा, उस समय शक्ति नाम से व्यास अवतार धारण करेंगे और मैं मुण्डीश्वर नाम से प्रकट होऊंगा। छब्बीसवें द्वापर में, पाराशर व्यास होंगे और मैं भद्रवट नगर में सहिष्णु के रूप में अवतरित हूंगा। सत्ताईसवां द्वापर आने पर मैं सोम शर्मा नाम से प्रभास नामक तीर्थ में अवतार धारण करूंगा। उस समय व्यास जी जातूकर्ण्य नाम से प्रसिद्ध होंगे। अट्ठाईसवें द्वापर युग में, भगवान श्रीहरि विष्णु पराशर के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे और उनका नाम द्वैपायन व्यास होगा। उस समय श्रीकृष्ण अपने छठे अंश से वसुदेव के पुत्र के रूप में जन्म लेकर वासुदेव नाम से जगत प्रसिद्ध होंगे। तब मैं लकुली के नाम से प्रकट होऊंगा।

इस प्रकार देवाधिदेव भगवान शिव ने मन्वंतर के चतुर्युगियों के योगेश्वतारों का वर्णन किया। इन अट्ठाईस योगेश्वतारों में उनके चार-चार परमप्रिय शिष्य होंगे, जो शरीर पर भस्म और मस्तक पर त्रिपुण्ड, गले में रुद्राक्ष की माला धारण किए होंगे। ये शिष्य विद्वान और भक्त होंगे।

छठवां अध्याय

नंदीकेश्वर अवतार

सनत्कुमार जी ने पूछा—हे प्रभो! आप महादेव जी के अंश से उत्पन्न होकर भगवान शिव को कैसे प्राप्त हुए। कृपा कर मुझे इस उत्तम कथा का वर्णन सुनाइए।

नंदीश्वर बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। एक बार जल पुत्र की कामना से शिलादि ऋषि इंद्र की तपस्या और उनका ध्यान करने लगे। तब देवराज इंद्र ने प्रकट होकर उनसे कहा कि मैं आपकी इच्छा को पूरा करने में असमर्थ हूं। अतः आप परमपिता परमेश्वर, भक्तवत्सल भगवान शिव की स्तुति करो। वे ही आपकी इच्छा पूरी करने में सक्षम हैं। यह सुनकर शिलाद प्रसन्न होकर पूर्ण भक्तिभावना और श्रद्धापूर्वक देवाधिदेव भगवान शिव की तपस्या करने लगा।

शिलाद की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उसे साक्षात दर्शन दिए और बोले—हे शिलाद! ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु सहित सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों ने मेरे अवतार धारण करने के लिए मेरी तपस्या की और मुझे सभी इस पूरे संसार का पिता मानते हैं। फिर भी मैं आपको अपना पिता बनने का वरदान देता हूं। मैं आपका अयोनिज पुत्र बनकर जन्म लूंगा और मेरा नाम नंदी होगा।

यह कहकर भगवान शिव वहां से अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात शिलाद भगवान शिव की जय-जयकार करते हुए अपने आश्रम में चले गए। वहां उन्होंने सभी को यह बात बताई। कुछ समय उपरांत मेरे पिता शिलाद यज्ञ भूमि को सही कर रहे थे कि उसी समय मैं भगवान शिव की आज्ञा से उनके शरीर से उत्पन्न हुआ। तब चारों ओर प्रसन्नता छा गई। जब मेरे पिता शिलाद ने मेरे बालरूप को देखा, जो सूर्य और अग्नि के समान तेज, प्रभावशाली और प्रकाशमान था, हाथ में त्रिशूल एवं सिर पर जटाजूट धारण किया था, तो मेरा रूप देखकर वे आनंद से झूम उठे।

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर! आपने मुझे बहुत आनंद दिया है। इसी कारण मैं आपका नाम नंदी रखता हूं। तब मेरे पिता अत्यंत प्रसन्न होकर भगवान शिव की स्तुति करने लगे। तत्पश्चात वे अपनी कुटिया में चले गए। उस कुटिया में जाकर मैंने अपने इस रूप का त्याग कर दिया और साधारण बालक की भांति रहने लगा। तब मेरे पिता शिलाद ने मेरे नामकरण आदि संस्कार पूरे किए। पांच वर्ष का होने पर मुझे संपूर्ण वेदों का अध्ययन कराया गया। जब मैं सात वर्ष का हुआ तो देवाधिदेव भगवान शिव की आज्ञा से मित्र और वरुण नामक मुनि मुझे देखने मेरे आश्रम आए।

मेरे पिता शिलाद ने उन दोनों को उत्तम आसन पर बैठाया और उनकी बहुत आवभगत की। तब वे दोनों मुझे बार-बार निहारने लगे और कुछ देर पश्चात वे मेरे पिता से बोले—हे तात! तुम्हारा यह पुत्र इतनी छोटी आयु में ही सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया है, लेकिन इसकी

आयु तो बहुत कम है। इसके जीवन का तो मात्र एक वर्ष शेष रह गया है।

तब उन दोनों की बातें सुनकर मेरे पिता शिलाद अत्यंत दुख से भर गए और रोने लगे। अपने पिता को इस प्रकार दुखी देखकर नंदीश्वर ने उनसे प्रश्न किया। वे पूछने लगे, पिताजी! आप किस कारण इतना दुखी हो रहे हैं? तब पिता शिलाद ने मुझे मेरी अल्पायु के विषय में बताया। तब मैं बोला—हे पिताजी! आप इस प्रकार दुखी न हों। मुझे देवता, दानव, यक्ष, गंधर्व, काल, यमराज या कोई भी मनुष्य नहीं मार सकता। मेरी अल्पायु में मृत्यु नहीं होगी।

मेरे इस प्रकार के वचनों को सुनकर मेरे पिता शिलाद ने पूछा कि पुत्र! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है या तुम्हें ऐसी कौन-सी शक्ति प्राप्त हो गई है, जो तुम ऐसा कह रहे हो? तब मैंने कहा—हे पिताजी! मैं भगवान शिव की आराधना और स्तुति से ही मृत्यु को दूर भगा दूंगा। आप चिंता न करें। यह कहकर नंदी ने पिता शिलाद को प्रणाम किया और स्वयं वन की ओर चल दिया।

सातवां अध्याय

नंदी को वर प्राप्ति और विवाह वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! मैंने वन में जाकर घोर तपस्या करनी शुरू कर दी। मैं स्वच्छ मन और श्रद्धाभाव से भगवान शिव के तीन नेत्र, दस भुजा तथा पांच मुख वाले रूप का ध्यान करते हुए मंत्र का जाप करने लगा। मेरी दुष्कर तपस्या से अभिभूत होकर भगवान शिव प्रसन्न हो गए। तब भगवान शिव ने देवी पार्वती सहित मुझे दर्शन दिए।

भगवान शिव बोले—हे शिलाद पुत्र नंदी! मैं तुम्हारी इस तपस्या से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। तुम जो चाहो मनोवांछित वर मांग सकते हो। तुम्हारी इच्छा मैं अवश्य पूरी करूंगा। देवाधिदेव भगवान शिव के ये उत्तम वचन सुनकर मैं उनके चरणों में गिर पड़ा और पुनः उनकी स्तुति करने लगा। तब भगवान शिव ने अपने हाथों से मुझे ऊपर उठाया और बोले—हे वत्स नंदी! मेरे होते हुए भला तुम्हें मृत्यु-भय कैसा? तुम अजर, अमर हो और सदा मेरे गणनायक बनकर रहोगे। मेरा प्रेम तुम पर सदा बना रहेगा और तुम मृत्यु को कभी प्राप्त नहीं होगे। तुम्हारे घर पधारे वे दोनों मुनि मैंने ही भेजे थे। अतः अब तुम अपने शोक और चिंताओं को त्याग दो।

यह कहकर भगवान शिव ने कमल के फूलों की माला अपने गले में से उतारकर मेरे गले में डाल दी। माला मेरे गले में पड़ते ही मेरे तीन नेत्र और दस भुजाएं हो गईं। तत्पश्चात भगवान शिव मुझसे बोले कि तुम और क्या चाहते हो? मैंने कहा—प्रभु! मैं आपकी सवारी बनना चाहता हूं। तब महादेव शिवजी ने अपनी जटाओं से हार के समान निर्मल जल मुझ पर छिड़ककर कहा कि 'नंदी' हो जाओ। तब उन परमेश्वर शिव की जटा से जटोरक, त्रिस्तोता, वृषभध्वनि, स्पणीदका और जंबु नदियां बह निकलीं। ये पांचों नदियां पंचद नाम से जप्तेश्वर नामक स्थान के पास बह रही हैं। जो मनुष्य इन पंचनद नामक नदियों पर जाकर प्रसन्न मन से भगवान शिव की उपासना करता है, उसे परम मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसकी सभी कामनाएं भगवान शिव अवश्य पूरी करते हैं।

भगवान शिव ने देवी पार्वती से कहा कि देवी! मैं नंदी को अपने गणों का अधिपति बनाना चाहता हूं। शिवजी के वचन सुनकर देवी पार्वती बोलीं—प्रभु! मैं नंदी को अपना पुत्र मानती हूं। तब भगवान शिव ने अपने सभी गणों को बुलाकर उनसे कहा कि मैंने नंदी को आप सब गणों का अधिपति बनाया है। भगवान शिव का यह कथन सुनकर सभी गणों ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपना स्वामी स्वीकार किया। फिर सब देवताओं और मुनियों ने नंदी का अभिषेक किया। तत्पश्चात नंदी का विवाह मरुतों की सुंदर दिव्य कन्या सुयशा से संपन्न हुआ। नंदी ने सपत्नीक परमेश्वर शिव को नमस्कार किया। महादेव जी ने नंदी को ऐश्वर्य संपन्न, महायोगी, महान धनुर्धारी, अजेय और महाबली होने का आशीर्वाद प्रदान किया।

देवी पार्वती ने प्रसन्नतापूर्वक नंदी से मनोवांछित फल मांगने के लिए कहा। नंदी बोला कि

हे माते! मेरी सदैव आपके चरणों में भक्ति बनी रहे। यह सुनकर देवी पार्वती ने उसकी इच्छा पूर्ण कर दी। तत्पश्चात सब देवताओं ने भी हर्षित मन से मुझे अनेक वरदान प्रदान किए। तब भगवान शिव से आज्ञा लेकर सब उनका गुणगान करते हुए अपने स्थान को चले गए। महामुने! नंदीश्वर के अवतार का वर्णन शिव भक्ति बढ़ाने वाला और आनंददायक है। इसे पढ़ने अथवा सुनने से सभी सुखों की प्राप्ति होती है।

आठवां अध्याय

भैरव अवतार

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! भगवान शिव के परम रूप भैरव जी हैं। एक समय की बात है। ब्रह्माजी सुमेरु पर्वत पर बैठकर ध्यान में मग्न थे। उसी समय देवता उनके पास आए और उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगे। तत्पश्चात उन्होंने पूछा—हे ब्रह्मन्! इस संसार में अविनाशी तत्व क्या है? कृपा कर इस विषय में हमें बताइए।

तब भगवान शिव की माया से मोहित होकर ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! आपकी प्रसन्नता के लिए मैं आपको उस अविनाशी तत्व के बारे में बताता हूं। इस संसार में मुझसे बढ़कर कोई भी नहीं है। मेरे द्वारा ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है। मैं ही स्वयं भू, अज, ईश्वर, अनादि, भोक्ता, ब्रह्मा और निरंजन आत्मा हूं। मेरे कारण ही संसार प्रवृत्त और निवृत्त होता है।

ब्रह्माजी के इन वचनों को सुनकर वहीं बैठे भगवान श्रीहरि विष्णु को बहुत बुरा लगा। तब श्रीहरि ब्रह्माजी को समझाते हुए बोले कि ब्रह्मन् तुम इस प्रकार अपनी स्वयं ही प्रशंसा न करो क्योंकि मेरी आज्ञा के फलस्वरूप ही तुम इस सृष्टि के रचयिता हो। इस प्रकार ब्रह्माजी व श्रीहरि आपस में लड़ाई करने लगे। दोनों ही अपने को बड़ा और दूसरे को निम्न समझ रहे थे। तब उन्होंने अपने को उच्च सिद्ध करने के लिए वेदों का स्मरण किया। फलस्वरूप चारों वेद वहां उपस्थित हो गए। जब ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु ने उन चारों वेदों से अपनी श्रेष्ठता के संबंध में पूछा, तब सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' भगवान शिव का स्मरण करते हुए बोले—हे ब्रह्मन्! हे श्रीहरि! जिसके भीतर समस्त भूत निहित हैं तथा जिसके द्वारा सबकुछ प्रवृत्त होता है, जिन्हें इस संसार में परम तत्व कहा जाता है, वह एक भगवान शिव ही हैं। तब 'यजुर्वेद' बोले कि उन परमेश्वर भगवान शिव की कृपा से ही वेदों की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है। उन्हीं भगवान शिवशंकर को संपूर्ण यज्ञों तथा योग में स्मरण किया जाता है। तत्पश्चात 'सामवेद' बोले कि जो समस्त संसार के लोगों को भरमाता है और जिसकी खोज में सदा ऋषि-मुनि लगे रहते हैं, जिनकी कांति से सारा विश्व प्रकाशमान होता है वह त्र्यंबक महादेव जी हैं। इस पर 'अथर्व' बोल उठे, भक्ति से साक्षात्कार कराने वाले तथा समस्त दुखों का नाश करने वाले एकमात्र देव भगवान शिव ही हैं।

वेदों द्वारा कहे गए इन वचनों को सुनकर ब्रह्मा और विष्णु बोले—हे वेदो! तुम्हारे वचनों से सिर्फ तुम्हारी अज्ञानता ही झलकती है। भगवान शिव तो सदा नंगे रहते हैं, अपने शरीर पर भस्म धारण करते हैं। उनके सिर पर जटाजूट व गले में रुद्राक्ष है। वे सर्पों को भी धारण करते हैं। भला शिव को परम तत्व कैसे कहा जा सकता है? उन्हें परमब्रह्म किस प्रकार माना जा सकता है?

ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु के इन वचनों को सुनकर हर जगह मूर्त और अमूर्त रूप में

विद्यमान रहने वाले ओंकार बोले कि भगवान शिव शक्तिधारी हैं। वही परमेश्वर हैं तथा सबका कल्याण करने वाले हैं। वे महान लीलाधारी हैं और इस संसार में सब कुछ उनकी आज्ञा से ही होता है। ओंकार की बातें सुनकर भी ब्रह्माजी और विष्णुजी की बुद्धि में ये बातें नहीं आईं और वे इसी प्रकार आपस में लड़ते रहे। उनका विवाद खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था तभी उन दोनों के बीच में एक विशाल ज्योति प्रकट हो गई। इस विशाल ज्योति का न तो आरंभ था ना ही कोई अंत। उस अग्नि की ज्वाला से ब्रह्माजी का पांचवां मुख जलने लगा।

उसी समय कल्याणकारी भगवान शिव वहां प्रकट हो गए। ब्रह्माजी शिवजी से बोले—हे पुत्र! तुम मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। तुम मेरे सिर से ही प्रकट हुए हो। तुमने प्रकट होकर रोना आरंभ कर दिया था, इसी कारण मैंने तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर सर्वेश्वर भगवान शिव को भी क्रोध आ गया। उनके क्रोध से तत्काल ही एक पुरुष उत्पन्न हो गया, उसका नाम भैरव था। भगवान शिव ने उस पुरुष को आदेश देते हुए कहा—हे कालराज! तुम साक्षात काल के समान हो। इसलिए आज से तुम जगत में काल भैरव के नाम से विख्यात होगे। तुम ब्रह्मा पर शासन करो और उनके गर्व को नष्ट करो तथा इस संसार का पालन करो। आज से मैं तुम्हें काशीपुरी का आधिपत्य प्रदान करता हूं। वहां के पापियों को दण्ड देना तुम्हारा ही कार्य होगा। वहां के मनुष्यों द्वारा किए गए अच्छे-बुरे कर्मों का लेखा चित्रगुप्त स्वयं लिखेंगे।

भगवान शिव के इस आदेश को काल भैरव ने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। तत्पश्चात उन्होंने अपनी बाईं उंगली के अग्रभाग से ब्रह्माजी का पांचवां सिर काट दिया। यह देखकर ब्रह्माजी भयभीत होकर शतरुद्रीय का पाठ करने लगे। भगवान शिव की कृपा से दोनों के बीच का विवाद तुरंत समाप्त हो गया। उन्हें शिवजी का अपमान करने पर अत्यंत पछतावा होने लगा। भगवान शिव भक्तवत्सल हैं और अपने भक्तों का सदैव कल्याण करते हैं। उन्होंने ब्रह्माजी और विष्णुजी को भी क्षमा करके उन्हें अभय प्रदान कर दिया। तत्पश्चात भगवान शिव ने काल भैरव को आज्ञा प्रदान की कि वे सदा ब्रह्मा और विष्णु का आदर करें और पापियों को दंड प्रदान करें।

नवां अध्याय

भैरव जी का अभिवादन

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! भगवान शिव का आशीर्वाद पाकर भैरव जी कालों के भी काल हुए। उन्होंने अपने प्रभु भगवान शिव की आज्ञा से कापालिक व्रत को धारण किया। कालभैरव हाथ में कपाल लेकर काशी नगरी की ओर चल दिए परंतु ब्रह्म-हत्या नामक कन्या उनके पीछे लग गई। एक दिन जब कालभैरव कापालिक वेश धारण करके भगवान नारायण के स्थान पर गए तब त्रिनेत्रधारी भगवान शिव के भैरव रूप को आता हुआ देखकर सब देवताओं व ऋषि-मुनियों ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। भगवान विष्णु ने अपनी प्रिया देवी लक्ष्मी से कहा—हे देवी! आज हम दोनों धन्य हो गए, जो हमने भगवान शिव के कालभैरव रूप का दर्शन किया। इन्हीं ने इस पृथ्वी को धारण कर रखा है। यह भगवान शिव ही शरणागतों को शांति प्रदान करने वाले तथा सभी तत्वों से युक्त हैं। यही सब प्राणियों के अंतर्यामी और अपने भक्तों को सबकुछ प्रदान करने वाले और उनकी कामनाओं को पूरा करने वाले हैं। इनके दर्शनों से ही मनुष्य सब बंधनों से मुक्त हो जाता है।

कालभैरव जी को इस प्रकार भिक्षा मांगते हुए देखकर भगवान श्रीहरि विष्णु ने उनसे प्रश्न किया कि हे भगवन्, आप तो तीनों लोकों का राज्य प्रदान करने वाले हैं, भला आपको भिक्षा मांगने की क्या आवश्यकता पड़ गई? तब विष्णुजी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर कालभैरव जी बोले—हे नारायण! मैंने ब्रह्माजी के पांचवें सिर को काट दिया था। इसलिए अपने द्वारा किए गए पाप का पश्चाताप करने हेतु मैं यह कर रहा हूं। तब कालभैरव के इन वचनों को सुनकर भगवान विष्णु बोले—हे भैरव! आप तो समस्त दुखों का नाश करने वाले विघ्नहर्ता हैं। आप सदा ही लीलाएं करते रहते हैं। तब देवी ने भिक्षा के रूप में 'मनोरथी' नाम की विद्या भैरव जी के भिक्षा पात्र में डाल दी। भिक्षा प्राप्त करके भैरव जी अन्य स्थान की ओर चल पड़े। तभी विष्णुजी ने भैरव जी के पीछे जाती हुई ब्रह्महत्या को देखा और उससे कहा कि वह शिवजी का पीछा छोड़ दे परंतु ब्रह्महत्या ने कहा कि इस बहाने ही मैं शिवजी की सेवा करती हूं। यह कहकर ब्रह्महत्या फिर भैरव जी का पीछा करते हुए काशी नगरी के समीप आ गई। वहां पहुंचते ही ब्रह्महत्या पाताल में समा गई और ब्रह्माजी का सिर भैरव जी के हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

जिस स्थान पर कालभैरव जी के हाथ से ब्रह्माजी का पांचवां सिर गिरा था, वह स्थान कपाल मोचन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया। जब तक भैरव जी पूरी पृथ्वी का भ्रमण करके काशी नहीं पहुंचे, उनके हाथ में ब्रह्माजी का सिर चिपका रहा और काशी पहुंचते ही वह छूट गया। इसलिए काशी नगरी को पापनाशिनी माना जाता है और यह सत्पुरुषों द्वारा सदा सेवनीय है। जो मनुष्य शुद्ध हृदय से कपाल मोचन भैरव जी का स्मरण करता है, उसके जन्म-जन्मांतरों के पाप नष्ट हो जाते हैं। कपाल मोचन तीर्थ में जाकर विधिपूर्वक पिंडदान

और देव-पितृ तर्पण करने से मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से भी छुटकारा पा लेता है। प्रतिदिन भैरव जी का दर्शन करने से मनुष्य के समस्त पापों का नाश हो जाता है। काशी में रहने वाला जो पुरुष कृष्णाष्टमी के दिन या मंगलवार को भैरव जी के दर्शन करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

दसवां अध्याय

नृसिंह लीला वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे प्रभो! शार्दूल नामक भगवान शिव के अवतार के बारे में मैं तुम्हें बताता हूं। कल्याणकारी भगवान शिव ने एक बार अग्नि के समान जलते हुए शरभ रूप को भी धारण किया था। वैसे तो भगवान शिव अपने भक्तों की रक्षा करने और उनका कल्याण करने हेतु अनेक अवतार धारण करते हैं, जिनकी गणना करना असंभव है। एक बार अपने द्वारपालों, जय-विजय को दिए गए शाप के कारण वे दोनों दिति पुत्र कश्यप जी के पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। पहला पुत्र हिरण्यकशिपु और दूसरा हिरण्याक्ष रूप में विख्यात हुआ। इन दोनों ने घोर तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर लिया और पूरे संसार में उपद्रव करना आरंभ कर दिया। वे किसी से डरते नहीं थे और ऋषि-मुनियों और देवताओं के शत्रु बनकर उन्हें सदैव नुकसान पहुंचाते थे। उन्होंने शोणित नगर को अपनी राजधानी बनाया था और तीनों लोकों पर विजय का लक्ष्य बनाकर निरंतर युद्ध में लगे हुए थे। वे बहुत पापी और दुराचारी हो गए थे।

इस प्रकार उनके पाप दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे थे। तब ब्रह्माजी व सब देवताओं ने भगवान श्रीहरि विष्णु से प्रार्थना की कि वे उन्हें हिरण्यकशिपु के अत्याचारों से मुक्त कराएं। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को भी मारने का प्रयत्न किया क्योंकि प्रह्लाद भगवान विष्णु का परम भक्त था और अपने पिता हिरण्यकशिपु को भी सदा विष्णुजी की शरण में जाने की सलाह देता था। जबकि हिरण्यकशिपु अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझता था। वह स्वयं को भगवान मानता था और अपनी प्रजा से अपनी पूजा करने के लिए कहता था।

एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मार डालने के लिए उसे एक विशाल खंभे पर बांध दिया। भक्तवत्सल भगवान अपने भक्तों को कष्ट में देखकर सदा उनकी रक्षा करने के लिए आते हैं। भगवान विष्णु ने नृसिंह रूप धारण किया, जो कि आधा मनुष्य का था और आधा सिंह का, और उसी खंभे को फाड़कर प्रकट हो गए। उन्होंने देखते ही देखते युद्ध करने आए सभी दैत्यों का संहार कर दिया। तत्पश्चात हिरण्यकशिपु को अपनी गोद में लिटाकर अपने नाखूनों से उसका शरीर फाड़ दिया। हिरण्यकशिपु के मरते ही सब देवता आनंदित हो उठे परंतु जब नृसिंह रूप धारण किए हुए भगवान विष्णु का क्रोध शांत नहीं हुआ तो सभी चिंतित हो गए। तब अपने आराध्य भगवान विष्णु का क्रोध शांत करने के लिए उनके भक्त प्रह्लाद ने उनकी स्तुति की।

प्रह्लाद की स्तुति से प्रसन्न होकर विष्णुजी ने उन्हें गले से लगा लिया परंतु फिर भी उनके क्रोध की ज्वाला शांत नहीं हुई। तब सब देवता भक्तवत्सल, कल्याणकारी भगवान शिव की शरण में गए और उनसे विष्णु के क्रोध को शांत करने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर सर्वेश्वर शिव ने उन्हें कहा—हे देवताओ! आप लोग चिंता का त्याग करके अपने-अपने धाम

को जाइए मैं भगवान श्रीहरि विष्णु को अवश्य शांत करूंगा। तब देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने धाम को चले गए।

ग्यारहवां अध्याय

शरभ-अवतार

नंदीश्वर बोले—जब देवताओं की प्रार्थना सुनकर कल्याणकारी भगवान शिव ने उन्हें नृसिंह रूप का क्रोध शांत करने का आश्वासन देकर विदा कर दिया तब उन्होंने प्रलयंकारी भैरव रूप महाबली वीरभद्र को बुलाया। वीरभद्र को आदेश देते हुए शिवजी बोले—हे भैरव! नृसिंह के क्रोध की अग्नि को शांत कर देवताओं के भय को दूर करो। यदि वे आपके समझाने से न मानें तो आप मेरे भाव भैरव का रूप दिखाकर उन्हें शांत करना।

भगवान शिव की आज्ञा का पालन करते हुए भैरव तुरंत ही नृसिंह जी का क्रोध शांत करने के लिए चल पड़े। नृसिंह जी के पास पहुंचकर भैरव जी ने उन्हें नमस्कार करने के उपरांत इस प्रकार कहा—हे माधव! आपने इस संसार को सुखी करने हेतु यह अवतार धारण किया है। आपने पहले मछली का रूप रखकर और अपनी पूंछ से नाव को बांधकर मनु जी को समुद्र में घुमाया था। पृथ्वी का उद्धार करने के लिए ही आपने वराह रूप धरा था। तत्पश्चात आपने वामन अवतार ग्रहण करके बलि को बांधा था। अब आपने अपने भक्तों के कष्टों को दूर करने के लिए नृसिंह रूप धारण किया है। प्रभो! आप ही सबके दुखों का नाश करने वाले हैं। आपने जिस कार्य की सिद्धि हेतु नृसिंह रूप धारण किया था, वह कार्य पूर्ण हो चुका है। इसलिए अब आप इस भयंकर रूप को त्याग दीजिए और पुनः अपना मनोहारी रूप धारण कर लीजिए।

वीरभद्र के इन वचनों को सुनकर नृसिंह जी के क्रोध की ज्वाला और भड़क उठी और वे बोले—तुम यहां से तुरंत चले जाओ वरना मैं इस पूरे संसार का संहार कर दूंगा। मेरे अंश से ही ब्रह्मा और इंद्र प्रकट हुए हैं। मैं ही सबका स्वामी हूं। इस प्रकार विष्णुजी के कहे वचनों को सुनकर वीरभद्र को बहुत क्रोध आया। तब वे बोले, क्या आप संसार के संहर्ता भगवान शिव को भी नहीं जानते हैं? मैं उन्हीं की प्रेरणा से यहां आया हूं। आप अहंकार का त्याग कीजिए, क्योंकि न तो आप इस सृष्टि के सृजनकर्ता हैं, न पोषणकर्ता और न ही संहारकर्ता। उन्हीं परमेश्वर शिव की कृपा से आप अनेक अवतार धारण करते हैं। आपके कर्मरूप धारी का सिर भगवान शिव की अस्थिमाला की शोभा बढ़ा रहा है। आपके पुत्र ब्रह्मा का पांचवां सिर भी मैंने काट लिया है। इस संसार में हर तरफ भगवान शिव की ही शक्तियां फैली हुई हैं। उन भक्तवत्सल भगवान शिव की ही शक्ति से आप मोहित हो रहे हैं। हे नृसिंह! आप तत्काल ही अपने इस क्रोध और अहंकार को छोड़कर पुनः अपने शांत रूप में आ जाएं अन्यथा भगवान शिव की आज्ञा से यहां पधारे मुझ भैरव रूपी क्रोधी का वज्र आप पर पड़ेगा, जिससे आप तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।

बारहवां अध्याय

शिव द्वारा नृसिंह के शरीर को कैलाश ले जाना

सनत्कुमार जी बोले—नंदीश्वर जी! भगवान शिव के अवतार कालभैरव ने जब क्रोधित होकर नृसिंह रूप धारण किए विष्णुजी को इस प्रकार क्रोध से फटकारा, तब आगे क्या हुआ? क्या उन्होंने भैरव जी की आज्ञा का पालन किया या फिर क्रोधित कालभैरव ने श्री विष्णुजी के नृसिंह रूप का संहार कर दिया? नंदी! आप जल्दी से मेरी इस जिज्ञासा को शांत करिए।

महामुने, सनत्कुमार जी के इन वचनों को सुनकर नंदीश्वर बोले—भैरव जी के वीरभद्र रूप के इन वचनों को सुनकर नृसिंह जी, जो कि पहले से क्रोध से भरे हुए थे और अधिक क्रोधित होकर वीरभद्र पर झपट पड़े। तब वीरभद्र ने उन्हें अपनी भुजाओं में कसकर पकड़ लिया। वीरभद्र के इस प्रकार पकड़ने से नृसिंह जी अत्यंत व्याकुल हो उठे। तत्पश्चात वीरभद्र ने उन्हें इसी प्रकार कसकर पकड़े रखा और उन्हें लेकर उड़ गए। वे उन्हें उड़ाकर परम पावन शिवधाम ले गए और ले जाकर शिवजी के वाहन वृषभ के नीचे पटक दिया। इस प्रकार जोर से नीचे फेंक दिए जाने पर नृसिंह रूपी भगवान श्रीहरि विष्णु व्याकुल हो उठे।

यह देखकर सभी देवता और ऋषि-मुनि देवाधिदेव भगवान शिव की स्तुति करने लगे। भगवान शिव की माया से ग्रसित होकर भगवान श्रीहरि विष्णु का शरीर भय से कांपने लगा। भयभीत होकर विष्णुजी नृसिंह अवतार में त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की स्तुति करने लगे। वे प्रभु के सामने नतमस्तक होकर खड़े हो गए। नृसिंह भगवान परमेश्वर शिव से परास्त हो गए। उनकी शक्तियां क्षीण हो गईं। वीरभद्र भैरव ने नृसिंह की सभी शक्तियों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। सभी देवता हाथ जोड़कर कल्याणकारी भगवान शिव के यश का गान करने लगे।

तब देवताओं द्वारा की गई स्तुति से प्रसन्न होकर महेश्वर शिव बोले—हे देवताओ! अब आपको घबराने अथवा भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। वीरभद्र भैरव द्वारा इस प्रकार विष्णुजी के नृसिंह रूप को पराजित करना एक लीलामात्र है। इससे भगवान श्रीहरि विष्णु की महत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मेरे सभी भक्त मेरे साथ-साथ विष्णुजी की भी आराधना किया करेंगे। यह कहकर भगवान शिव नृसिंह जी के शरीर को अपने साथ लेकर कैलाश पर्वत पर चले गए। तब भगवान शिव ने अपनी मुण्डमाला में नृसिंह का मुख भी शामिल कर लिया।

तेरहवां अध्याय

विश्वानर को वरदान

नंदीश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब आप शशिमौलि भगवान शिव के उस उत्तम चरित्र को सुनिए, जिसमें उन्होंने विश्वानर के घर अवतार लिया था। बहुत पहले नर्मदा नदी के किनारे नर्मपुर नामक नगर था। इस नगर में विश्वानर नाम के एक महामुनि रहते थे। वे भगवान शिव के परम भक्त थे और संपूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनका विवाह शुचिष्मती नामक ब्राह्मण कन्या से हुआ था। वह ब्राह्मण पत्नी अत्यंत पतिव्रता थी और अपने पति विश्वानर की बहुत सेवा करती थी। उसकी इस प्रकार सच्चे हृदय से की गई निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर महामुनि विश्वानर उसे वरदान देना चाहते थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि मैं तुम्हारी इस उत्तम सेवा से बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हें वर देना चाहता हूं। तुम्हारी जो कामना हो उसके बारे में मुझे बताओ।

अपने पति के इन वचनों को सुनकर ब्राह्मण पत्नी ने कहा—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा कर मुझे महादेव जी के समान पुत्र प्रदान करें। अपनी पत्नी के इस वर को सुनकर विश्वानर सोच में डूब गए कि मेरी पत्नी ने मुझसे बड़ा ही दुर्लभ वर मांगा है। यह वर तो त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की कृपा से ही पूर्ण हो सकता है। तब उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि देवी तुम्हारा यह वर तो भगवान शिव की कृपा से ही पूर्ण हो सकता है। इसलिए मैं भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु उनकी तपस्या करने के लिए जाता हूं। अपनी पत्नी को तपस्या के बारे में बताकर विश्वानर अपने घर से निकल गए। चलते-चलते वे काशी नगरी में मणिकर्णिका घाट पर पहुंचे और अपने आराध्य के दर्शन कर उन्होंने अपने जन्म-जन्मांतर के पाप नष्ट कर दिए। तत्पश्चात विश्वेश्वर लिंग के दर्शन कर उन्होंने सभी तीर्थ स्थानों में पिण्डदान किया और ब्राह्मणों व ऋषि-मुनियों को भोजन खिलाया, फिर काशी के कुओं, बावड़ियों और तालाबों में स्नान करने के पश्चात विश्वेश्वर लिंग की पूजा-अर्चना में मग्न हो गए। एक वर्ष तक बिना कुछ खाए-पीए विश्वानर ने अद्‌भुत तपस्या की।

एक वर्ष बीत जाने के पश्चात जब एक दिन विश्वानर पूजा हेतु गए तब उन्हें लिंग के मध्य भाग से एक सुंदर बालक की प्राप्ति हुई। वह बालक बहुत सुंदर था, उसकी पीली जटाएं थीं और उसने सिर में मुकुट लगा रखा था और वह हंस रहा था। ऐसे अद्‌भुत बालक को पाकर महामुनि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान शिव का बहुत-बहुत धन्यवाद किया और उनकी स्तुति करने लगे। वह बालक प्रसन्नतापूर्वक बोला—हे ब्राह्मण! मैं तुमसे प्रसन्न हूं। बोलो, क्या वर मांगना चाहते हो? तब विश्वानर बोले—प्रभो! आप तो सर्वेश्वर हैं। सबकुछ जानने वाले हैं। अपने भक्तों के मन की बात भला आपसे कैसे छिप सकती है।

तब भगवान शिव ने अपने बालरूप में ही कहा—विश्वानर! तुम्हारी तपस्या सिद्ध हुई। शीघ्र ही मैं तुम्हारी पत्नी शुचिष्मती के गर्भ से तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूंगा। तब मेरा नाम

गृहपति होगा। यह वरदान देकर भगवान शिव का वह बालरूप अंतर्धान हो गया और विश्वानर प्रसन्नतापूर्वक शिवलिंग को नमस्कार करके अपने घर चले गए।

चौदहवां अध्याय

गृहपति अवतार

नंदीश्वर बोले—जब विश्वानर भगवान शिव से वरदान प्राप्त करके अपने घर वापस आए तो उन्होंने अपनी पत्नी शुचिष्मती को सारी बातें बताईं। समय बीतता गया, कुछ समय पश्चात शुचिष्मती गर्भवती हुई। शुभ लग्नों का योग होने पर उनके गर्भ से चंद्रमा के समान मुख वाला सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान शिव के अवतार लेते ही देवताओं ने प्रसन्न होकर दुंदुभी बजाई।

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रुतु, अंगिरा, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, विभाण्ड, मुंदल, लोमश, लोमचरण, भारद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातकर्ण्य, हषाशर, आपस्तंब, याज्ञवल्क्य, यज्ञ, वाल्मीदिक, शतातप, लिखित शिलाद, शंख जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, ऋष्यश्रंग, दुर्वासा, शुचि, नारद, तुंबरू, उत्तक, वामदेव, देवल, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, मृकण्ड, दारुक, धौम्य, उपमन्यु, वत्य आदि मुनि और मुनि कन्याएं और मुनि पुत्र भगवान शिव के गृहपति अवतार के दर्शनों हेतु विश्वानर मुनि के आश्रम में आए।

देवगुरु बृहस्पति के साथ ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु, नंदी और भृंगीगणों के साथ भगवान शिव देवी पार्वती को साथ लेकर, देवराज इंद्र सभी देवताओं सहित तथा नागराज पाताल से सारी नदियां, पर्वत और समुद्र उस बालक के दर्शनों के लिए विश्वानर के आश्रम में गए।

सभी ऋषि-मुनियों, साधु-संतों सहित देवताओं ने उस बालक के दर्शन किए। स्वयं ब्रह्माजी ने उस बालक के जात कर्म संस्कार संपन्न किए और उस बालक का नाम गृहपति रखा। तत्पश्चात सब देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक उस बालक को अनेक आशीर्वाद प्रदान किए। तब सब देवता शुचिष्मती और विश्वानर मुनि के भाग्य की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने धाम को चले गए। मुनि विश्वानर और उनकी पत्नी उस बालक का लालन-पालन करने लगे तथा समय-समय पर होने वाले संस्कार संपन्न करने लगे। गृहपति जब पांच वर्ष का हो गया तब उन्होंने उसका यज्ञोपवीत कराया। बालक गृहपति जिज्ञासु प्रवृत्ति का था। उसने अतिशीघ्र ही अपने पिता से सब वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब बालक नौ वर्ष का हुआ तो देवर्षि नारद उनके घर पधारे। मुनि विश्वानर ने उनसे अपने पुत्र के भाग्य के विषय में जानना चाहा। तब नारद जी बोले—मुनि! आपका पुत्र बड़ा भाग्यवान और वैभवशाली है परंतु बारह वर्ष का होने पर इसे अग्नि और बिजली से खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसलिए आपको अपने पुत्र को अग्नि और बिजली के करीब नहीं जाने देना चाहिए। ऐसे वचन कहकर देवर्षि नारद उस बालक को अपना आशीर्वाद देकर वहां से चले गए।

पंद्रहवां अध्याय

गृहपति को शिवजी से वर प्राप्ति

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! जब इस प्रकार की बातें बताकर देवर्षि नारद वहां से चले गए, तब उनके वचनों से देवी शुचिष्मती और विश्वानर को बहुत दुख पहुंचा और वे दोनों बड़े जोर-जोर से रोने लगे। शोक में रोते हुए वे दोनों मूर्च्छित हो गए। फिर पहले तो मुनि विश्वानर ने अपने को संभाला फिर अपनी पत्नी को समझाते हुए बोले—देवी इस प्रकार रोकर कुछ भी नहीं होगा। इसलिए तुम इस प्रकार रोना बंद करो। फिर वे दोनों अपने पुत्र गृहपति को ढूंढ़ने लगे। उस समय उनका पुत्र घर से बाहर था। जब वह वापस आया तो अपने माता-पिता को इस प्रकार रोता हुआ देखकर उनसे पूछने लगा कि आप इस प्रकार क्यों रो रहे हैं?

अपने पुत्र के इस प्रश्न को सुनकर देवी शुचिष्मती ने गृहपति को अपने गले से लगा लिया और रोते हुए ही उसने नारद जी द्वारा कही गई बातें कह दीं। यह सुनकर गृहपति तनिक भी विचलित नहीं हुआ और अपने माता-पिता को समझाने लगा कि आप इस प्रकार दुखी न हों। मैं मृत्यु विजयी शिव मंत्र को जपकर मृत्यु से अपनी रक्षा कर लूंगा। अपने पुत्र की साहसपूर्ण बातें सुनकर माता-पिता दोनों बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि मृत्युंजय भगवान शिव की आराधना करने से अवश्य ही सारे विघ्न दूर हो जाते हैं। अतः तुम उनकी शरण में जाओ, वे तुम्हारा कल्याण करेंगे।

अपने माता-पिता से आशीर्वाद लेकर बालक गृहपति काशी चला गया। वहां उसने स्नान करने के पश्चात शिवलिंग के दर्शन किए। विश्वेश्वरलिंग का दर्शन करने के पश्चात उसे बहुत प्रसन्नता हुई और वह अपने को भाग्यशाली मानने लगा कि उसे प्रभु के दर्शन हो गए। तब उसने वहीं एक शिवलिंग स्थापित किया। वह प्रतिदिन उस लिंग को एक सौ आठ घड़ों में गंगाजल भरकर स्नान कराता था और फिर विधिपूर्वक उनकी आराधना करता था। उसका मन सदा ही शिव चरणों का स्मरण करता रहता था। धीरे-धीरे समय बीतता गया। गृहपति ने बारहवें वर्ष में प्रवेश किया। नारद जी की वाणी को सिद्ध करते हुए देवराज इंद्र गृहपति के सामने प्रकट हुए। इंद्र ने कहा कि बालक मांगो क्या मांगते हो? तब इंद्र की बात सुनकर गृहपति ने उन्हें नमस्कार किया और बोला—प्रभु! मैं आपसे नहीं, भगवान शिव से वरदान मांगना चाहता हूं। आप चले जाइए। मैं शिवजी के अलावा किसी अन्य से कुछ नहीं मांग सकता क्योंकि शिव ही मेरे आराध्य हैं और मैं उन्हीं का भक्त हूं।

गृहपति के इन वचनों को सुनकर इंद्रदेव क्रोध से तमतमा उठे। उन्होंने अपना वज्र निकाल लिया। उनके हाथ में वज्र देखकर बालक को अपने पिता द्वारा बताई गई बात याद आ गई और वह डर से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह देखकर भक्तवत्सल भगवान शिव देवी पार्वती सहित तुरंत वहां प्रकट हो गए। जैसे ही उन्होंने गृहपति को छुआ वह उठ खड़ा हुआ। अपने सामने साक्षात भगवान शिव और माता पार्वती को पाकर वह रोमांचित हो उठा। उनका रूप

करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था। इस अद्‌भुत रूप को देखकर गृहपति मंत्रमुग्ध हो गया और दोनों हाथ जोड़कर देवाधिदेव महादेव जी की स्तुति करने लगा।

तब भक्तवत्सल शिव ने हंसते हुए कहा—हे बालक! मैं तुम्हारी इस उत्तम तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। मैंने ही इंद्र को तुम्हारे पास भेजा था। तुम अपनी परीक्षा में सफल हुए हो। तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें कोई नहीं मार सकता। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया गया मेरा यह लिंग संसार में 'अग्निश्वर' नाम से विख्यात होगा और इसके तेज के आगे कोई ठहर नहीं पाएगा। यह अग्नि और बिजली से रक्षा करने वाला होगा। इस लिंग की पूजा करने वाले को अकाल मृत्यु का भय नहीं होगा।

ऐसा कहकर भगवान शिव ने गृहपति के माता-पिता को बुलाया और सबने मिलकर कल्याणकारी भगवान शिव का पूजन किया तत्पश्चात शिवजी उसी अग्निश्वर लिंग में समा गए।

सोलहवां अध्याय

यज्ञेश्वर अवतार

नंदीश्वर बोले—हे मुनिश्वर! अब मैं आपको भगवान शिव के यज्ञेश्वर अवतार के बारे में बताता हूं। एक बार देवताओं और असुरों ने मिलकर सागर के गर्भ में छिपे अमूल्य रत्नों और धरोहरों को निकालने के लिए क्षीर सागर का मंथन किया। मंथन करते समय सर्वप्रथम विष निकलने लगा और संसार उस विष की ज्वाला से भस्म होने लगा। यह देखकर देवता और दानव भयभीत हो गए और भगवान शिव की स्तुति करने लगे। भगवान शिव सदा ही अपने भक्तों की रक्षा और कल्याण करते हैं। उन्होंने अपने भक्तों का दुख दूर करने के लिए उस विष को पी लिया। विष पीने के कारण उनका गला नीले रंग का हो गया और वे नीलकण्ठ नाम से विख्यात हुए। तत्पश्चात देवता और दानव नए उत्साह और जोश के साथ दुबारा समुद्र मंथन करने लगे, जिससे अनेकों बहुमूल्य रत्न, हीरे-जवाहरात और अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। अमृत निकलने पर देवताओं और असुरों में युद्ध होने लगा। तब राहु नामक असुर अमृत कलश चुराकर भाग खड़ा हुआ। यह दृश्य चंद्रमा ने देख लिया और उसका पीछा किया। विष्णुजी ने अपने सुदर्शन चक्र से उसकी गरदन काट दी क्योंकि उसने अमृत पी लिया था, इसलिए सिर कटने के बाद भी वह मरा नहीं। तब से राहु चंद्रमा को डराने लगा। भगवान शिव ने चंद्रमा की रक्षा करने के लिए उसे अपने सिर पर धारण कर लिया। देवताओं ने असुरों से अमृत कलश छीन लिया और अमृत पान कर लिया। अब उन्हें अपने पर अभिमान होने लगा और वे अपने बल की प्रशंसा करने लगे।

जब इस बात का ज्ञान त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को हुआ कि देवता मदांध हो गए हैं, तब उन्होंने देवताओं को होश में लाने के लिए अपने मन में निश्चय किया। भगवान शिव यक्ष का रूप रखकर देवताओं के पास पहुंचे। देवता उनसे अपने बल की प्रशंसा करने लगे। देवताओं की गर्वपूर्ण बातों को सुनकर यक्ष रूप धारण किए भगवान शिव बोले—हे देवताओ! तुम्हारा यह अभिमान और गर्व झूठा है। सच्चाई यह है कि तुम्हारा निर्माण करने वाला स्वामी कोई और है। तुम गर्व में भरकर उसे भूल गए हो। तुममें अहंकार और अभिमान आ गया है। अभी मैं तुम्हारे बल की परीक्षा लेता हूं। यह कहकर उन्होंने एक तिनका धरती पर रखा और कहा कि हे बलशाली देवताओ! अपने पराक्रम और बल से अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करके इसे काट दो।

तब सब देवता अपने बल और पराक्रम को सिद्ध करने के लिए उस तिनके पर प्रहार करने लगे परंतु सबके अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो गए। वे उस तिनके का कुछ भी न बिगाड़ सके। वह तिनका अपने स्थान से जरा-सा भी नहीं हिला। यह देखकर सब देवताओं को बहुत आश्चर्य हुआ। देवता आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरे को देख ही रहे थे कि आकाशवाणी हुई। आकाशवाणी बोली—देवताओ! यक्ष के रूप में ये कोई और नहीं स्वयं भगवान शिव हैं, जो

सबके परमेश्वर, रचनाकर्ता, पालनकर्ता तथा विनाशकर्ता हैं।

आकाशवाणी सुनकर सब देवताओं को अपनी भूल का एहसास हो गया और वे यज्ञेश्वर भगवान शिव को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। शिवजी ने यज्ञेश्वर रूप रखकर देवताओं का घमंड दूर कर दिया फिर सबको आशीर्वाद देकर वहां से अंतर्धान हो गए।

सत्रहवां अध्याय

शिव दशावतार

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! अब मैं आपको त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के दशावतारों के बारे में बताता हूं। भगवान शिव के पहले अवतार को 'महाकाल' कहा जाता है और यह प्रभु के भक्तों को भक्ति और मुक्ति प्रदान करता है। देवी महाकाली अपने भक्तों को सदा उनकी मनोवांछित वस्तु प्रदान करती हैं। 'तारा' नामक दूसरा अवतार सेवकों को सुख तथा भक्ति-मुक्ति देता है। भील नामक तीसरा 'भुवनेश' अवतार भुवनेश नामक भील शक्ति का है। चौथा षोडश 'विद्येश' की षोडश शक्ति का है, जो महादेव जी के परम भक्तों को सुख प्रदान करने वाला है। पांचवां 'भैरव' की गिरजा नामक भैरवी शक्ति है, जो उपासना करने वालों की सभी कामनाएं पूरी करती है। छठी 'छिन्नमस्ता' नामक शक्ति भक्तों के मनोरथों को पूरा कर उन्हें शांति प्रदान करती है। भगवान शिवशंकर का सातवां अवतार 'धूम्रवान' है, जिससे धूम्रवती शक्ति फल देने वाली हुई। आठवें अवतार रूप का नाम 'बगला' है और बगलामुखी शक्ति महा आनंद देने वाली और भक्तों का कल्याण करने वाली है। शिवजी का नवां अवतार 'मातंग' नाम से हुआ एवं जिससे मातंग शक्ति उत्पन्न हुई। देवाधिदेव भगवान शिव के दसवें अवतार के रूप में 'कमल' का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे कमला नामक शक्ति उत्पन्न हुई। यह शक्ति अपने भक्तों का पालन करने वाली तथा अभीष्ट फल प्रदान करने वाली है।

त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव द्वारा लिए गए ये दसों अवतार सज्जन पुरुषों एवं उनके परम भक्तों को सदा सुख प्रदान करने वाले हैं। भक्तवत्सल भगवान शिव इन अवतारों द्वारा अपनी भक्ति में लीन रहने वालों को अपनी सच्ची भक्ति और मुक्ति प्रदान करते हैं।

देवाधिदेव महादेवजी द्वारा धारण किए गए ये दसों अवतार तंत्र शास्त्र से संबंधित हैं। ये दसों अवतार अद्‌भुत हैं एवं इनकी महिमा दिव्य है। भगवान शिव की ये दसों शक्तियां शत्रु को मारने के कार्य में प्रयुक्त होती हैं। ये दस दिव्य शक्तियां दुष्टों को दण्ड देती हैं और ब्रह्मतेज में वृद्धि करती हैं।

अठारहवां अध्याय

एकादश रुद्रों की उत्पत्ति

नंदीश्वर बोले—हे मुने! अभी मैंने आपको कल्याणकारी भगवान शिव के दशावतारों के बारे में बताया। अब मैं उन्हीं शिवजी के ग्यारह अवतारों के बारे में बताता हूं। इन्हें सुनने से असत्य के दोषों से उत्पन्न होने वाली बाधा दूर हो जाती है। पूर्व समय में एक बार देवराज इंद्र अपनी नगरी अमरावती को छोड़कर चले गए। यह देखकर उनके पिता कश्यप ऋषि को बहुत दुख पहुंचा। मुनि कश्यप भगवान शिव के परम भक्त थे। उन्होंने इंद्र को बहुत समझाया और स्वयं काशी नगरी आ गए। वहां उन्होंने पवन पावन गंगाजी में स्नान के पश्चात विश्वेश्वर लिंग के दर्शन किए और उसी के पास एक अन्य शिवलिंग की स्थापना की।

उस लिंग की स्थापना कश्यप मुनि ने देवताओं के हितों के लिए की थी। फिर वे उस शिवलिंग की नित्य विधिपूर्वक पूजा-अर्चना करने लगे और तपस्या में लीन रहने लगे। इस प्रकार दिन बीतते गए। एक दिन प्रसन्न होकर भगवान शिव प्रकट हुए और बोले—हे मुनि कश्यप! मैं आपकी आराधना से प्रसन्न हूं। मांगो, क्या मांगना चाहते हो? मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा। तब भगवान शिव के वचन सुनकर कश्यप मुनि बहुत प्रसन्न हुए और महादेव जी की स्तुति करने लगे। फिर बोले—हे भगवन्! मैं अपने पुत्र के दुख से बहुत दुखी हूं। आप मेरे पुत्र का दुख दूर कीजिए। आप मेरे घर में मेरे पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर मुझे सुख प्रदान कीजिए। कश्यप मुनि के वर को सुनकर शिवजी ने 'तथास्तु' कहा और वहां से अंतर्धान हो गए। तब कश्यप मुनि भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर वापिस आ गए। उन्होंने सब देवताओं को अपने वरदान के बारे में बताया जिसे जानकर सब देवता बहुत प्रसन्न हुए।

भगवान शिव अपने द्वारा दिए गए वरदान के फलस्वरूप कश्यप मुनि के यहां उनके पुत्र के रूप में जन्मे। कश्यप मुनि ने प्यार से उनका नाम सुरभि रखा। सुरभि के जन्म पर बड़ा उत्सव हुआ। सभी देवताओं ने प्रसन्न होकर फूल बरसाए, अप्सराएं नृत्य करने लगीं तथा चारों दिशाओं में मंगल ध्वनि गूंजने लगी। देवताओं ने कश्यप मुनि को बहुत-बहुत बधाई दी।

तत्पश्चात सुरभि के बड़े होने पर उनसे कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, आपिर्बुध्य, शंभु, चण्ड तथा भव नामक ग्यारह रुद्रों ने जन्म लिया। इन ग्यारह रुद्रों ने देवताओं की रक्षा करने तथा उनका हित करने हेतु अनेकों असुरों का वध किया। फिर उन्होंने दैत्यों द्वारा अधिकृत किया स्वर्ग का राज्य वापस ले लिया और उस पर फिर से देवराज इंद्र का राज्य हो गया। ये ग्यारह रुद्र आज भी देवताओं की रक्षा करने के लिए स्वर्ग में विराजमान रहते हैं।

उन्नीसवां अध्याय

दुर्वासा चरित्र

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! परम तेजस्वी तपस्वी महर्षि अत्रि, जो देवी अनुसूइया के पति थे, ब्रह्माजी की आज्ञा से ऋक्ष कुल नामक पर्वत पर, जो कि विंध्याचल के पास में स्थित था, पुत्र की कामना से घोर तपस्या की। उनकी तपस्या दिन-प्रतिदिन और भीषण होती जा रही थी, जिससे तेज अग्नि की ज्वाला प्रकट हुई और उससे सब लोक जलने लगे।

तब सब देवताओं ने मिलकर ब्रह्माजी से प्रार्थना की। ब्रह्माजी सब देवताओं को साथ लेकर भगवान श्रीहरि विष्णु की शरण में गए। वहां उन्होंने विष्णुजी को महर्षि अत्रि की तपस्या से उत्पन्न ज्वाला के विषय में बताया। तब श्रीहरि बोले कि परमेश्वर भगवान शिव ही इस समस्या को दूर कर सकते हैं, इसलिए हमें उनकी शरण में जाना चाहिए। तत्पश्चात श्रीहरि ब्रह्माजी व अन्य देवताओं को साथ लेकर भगवान शिव की शरण में गए।

कैलाश पर्वत पर पहुंचकर सबने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को नमस्कार किया और उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने महादेव जी को अत्रि मुनि की तपस्या के बारे में बताया। तत्पश्चात तीनों-ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी अत्रि मुनि को वरदान देने के लिए गए। उनके पदचिन्हों को पहचानकर अत्रि मुनि ने उन तीनों की अलग-अलग स्तुति करनी आरंभ कर दी। अत्रि बोले—हे ब्रह्मा! विष्णु! शिव! आप सभी इस संसार में सबके लिए आदरणीय और पूजनीय हैं। आप सबके ईश्वर हैं और इस सृष्टि का सृजन, रक्षा और विनाश करने वाले हैं। भगवन् मैंने तो पुत्र प्राप्ति हेतु भगवान शिव का पूजन-आराधन किया था परंतु आप तीनों के एक साथ दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया हूं। प्रभु! मुझे मेरा इच्छित वरदान दीजिए।

मुनि अत्रि की प्रार्थना सुनकर त्रिदेव बोले—हे महामुने! हम तुम्हारी उत्तम तपस्या से प्रसन्न हैं। हम तीनों देवता एक समान ही हैं और हममें एक ही अंश है। हमारे वरदान से तुम्हारे तीन पुत्र होंगे, जो हम तीनों के अंश होंगे। यह कहकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव वहां से अंतर्धान हो गए। अत्रि मुनि वरदान पाकर खुशी से झूम उठे और वापस अपने आश्रम में चले गए। वहां पहुंचकर उन्होंने अपनी पत्नी अनुसूइया को वरदान के विषय में बताया जिसे सुनकर वे भी हर्षित हो उठीं।

समय बीतता गया। निर्धारित समय पर देवी अनुसूइया ने तीन पुत्रों को जन्म दिया जो कि स्वयं भगवान शिव, ब्रह्मा और विष्णु का अंश थे। ब्रह्माजी के अंश से चंद्रमा, विष्णुजी के अंश से दत्त तथा भगवान शिव के अंश से दुर्वासा जी की उत्पत्ति हुई। दुर्वासा जी ने सूर्यवंश में उत्पन्न राजा अंबरीष, जो कि सप्तद्वीप के स्वामी थे, की परीक्षा ली। एक दिन राजा अंबरीष ने एकादशी का व्रत रखा। तब दुर्वासा जी अपने शिष्यों को साथ लेकर उनके राजमहल में गए। उधर, अंबरीष ने सब ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरांत जैसे ही जल पीया दुर्वासा ऋषि वहां पहुंचकर उन पर नाराज होने लगे। वे बोले—राजन, हमें निमंत्रण

देकर बुलाने पर भी आपने हमारा इंतजार नहीं किया और हमें भोजन कराने से पहले ही जल पी लिया। अब तुम्हें अपनी करनी का फल अवश्य भुगतना होगा। यह कहकर दुर्वासा जी ने राजा अंबरीष को शाप से भस्म करना चाहा, परंतु उसी समय उनकी रक्षा हेतु सुदर्शन चक्र आ गया और वह दुर्वासा मुनि को ही जलाने लगा। तभी आकाशवाणी हुई कि दुर्वासा जी, अंबरीष भगवान शिव का अंश हैं। यह सुनकर सुदर्शन चक्र शांत हो गया। तब राजा अंबरीष ने दुर्वासा जी के चरण पकड़ लिए और उन्हें उत्तम भोजन करा कर विदा किया।

एक बार दुर्वासा जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की परीक्षा ली। उन्होंने श्रीराम से कहा कि आपके और हमारे बीच होने वाली बात में कोई बीच में न आए। जब वे दोनों एकांत में बैठकर वार्तालाप कर रहे थे, लक्ष्मण वहां चले आए। तब रामचंद्र जी ने अपने प्रण के अनुसार अपने भाई लक्ष्मण का त्याग कर दिया। उनकी दृढ़ता से दुर्वासा मुनि प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद देकर वहां से अपने स्थान को चले गए।

इसी प्रकार एक बार उन्होंने श्रीकृष्ण जी की भी परीक्षा ली थी। जब भगवान विष्णु ने कंस का वध करने के लिए कृष्णावतार लिया, उस समय उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई। वे ब्राह्मणों को प्रेमभाव से जिमाते थे। उनकी ख्याति के कारण एक बार दुर्वासा जी कृष्ण की परीक्षा लेने के लिए पहुंच गए। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने कृष्ण को वज्र के समान शरीर होने का वरदान प्रदान किया। एक बार द्रौपदी ने दुर्वासा जी को स्नान करते देखकर उन्हें वस्त्र दान किया था तब उसके फलस्वरूप दुर्वासा जी ने उन्हें वरदान दिया था कि जब तुम पर विपत्ति आएगी तो यह वस्त्र बढ़कर तुम्हारी रक्षा करेगा और दुर्योधन द्वारा किए गए चीरहरण के समय उसी वरदान ने उनकी रक्षा की थी। इस प्रकार मुनि दुर्वासा ने अनेक वरदानों से प्राणियों की रक्षा की।

बीसवां अध्याय

हनुमान अवतार

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! एक समय की बात है भगवान शिव, जो कि महान लीलाधारी हैं, भगवान श्रीहरि विष्णु का मोहिनी रूप देखकर उन पर मोहित हो गए। कामदेव के बाणों से आहत होकर रामचंद्र जी के कार्यों को सिद्ध करने हेतु उन्होंने अपना वीर्यपात कर दिया। तब उस वीर्य को पत्ते पर रखकर सप्तऋषियों ने देवी अंजनी के कान में पहुंचा दिया। समय आने पर देवी अंजनी गर्भवती हुईं और उन्होंने महाबली और पराक्रमयुक्त वानर रूपी शरीर वाले हनुमान को जन्म दिया।

बाल्यकाल में हनुमान बड़े ही वीर व पराक्रमी थे। वे बहुत चंचल भी थे। बाललीला में उन्होंने सूर्य को फल समझकर निगल लिया था और देवताओं की विनती पर उसे मुक्त किया। यह जानने के बाद कि हनुमान भगवान शिव के अंश से जन्मे हैं, सबने उन्हें अनेक वरदान व आशीर्वाद प्रदान किए। सूर्यदेव की कृपा से उन्हें सारी विद्याएं प्राप्त हुईं। बालपन से ही हनुमान के हृदय में श्रीराम का निवास था। भक्ति भावना से उनकी आराधना और सेवा करना ही उनका ध्येय था। उन्होंने श्रीराम की सेवा हेतु अपना घर त्याग दिया।

उनकी वानरराज सुग्रीव से भेंट ऋष्यमूक पर्वत पर हुई जिनकी पत्नी का हरण उसके भाई बाली ने किया था और उसे अपने राज्य से निकाल दिया था। हनुमान भी सुग्रीव के साथी बनकर उनके साथ रहने लगे। जब रामचंद्र जी वनवास काट रहे थे और दुष्ट रावण ने उनकी पत्नी देवी जानकी का अपहरण कर लिया था, उस समय उनकी भेंट हनुमान से हुई थी। हनुमान ने अपने आराध्य श्रीराम को पहचान लिया और उनके चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया।

हनुमान और सुग्रीव से मित्रता हो जाने के पश्चात श्रीराम ने सुग्रीव के बड़े भाई बाली, जिसने उनका राज्य और पत्नी दोनों को छीन लिया था, का वध कर सुग्रीव का राज्याभिषेक कराया। फिर सुग्रीव अपनी पूरी वानर सेना सहित श्रीराम की पत्नी देवी सीता को ढूंढ़ने के लिए निकल पड़े परंतु कुछ पता न चल सका। तब स्वयं हनुमान ने माता सीता की खोज शुरू की तथा समुद्र पार लंका जाकर उन्हें खोज निकाला और उनके आराध्य प्रभु राम का संदेश उन तक पहुंचाया। अपने स्वामी का समाचार पाकर देवी सीता बहुत प्रसन्न हुईं। उनका सारा शोक पल भर में दूर हो गया।

माता सीता को रामजी का संदेश देकर हनुमान ने राक्षसों को सबक सिखाना शुरू किया। उन्होंने सारी अशोक वाटिका को नष्ट कर दिया। सारे वृक्षों को उखाड़कर फेंक दिया। जब रावण के सैनिकों ने उन्हें देख लिया तो रावण के सामने जाने हेतु उन्होंने अपने को कैद करा दिया। बंधन में बांधकर उन्हें रावण के सामने ले जाया गया। तब राक्षस राज ने वानररूपी हनुमान की पूंछ में आग लगाने का दंड दिया। जब उनकी पूंछ में आग लगा दी गई तो उन्होंने

पूरी लंका उससे जला दी। फिर समुद्र में कूदकर अपनी पूंछ की आग बुझाई। फिर रामचंद्र जी को उनकी प्रिया की निशानी दी।

अपनी पत्नी का समाचार पाकर श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वानरों की सेना को साथ लेकर लंका पर चढ़ाई कर दी। सर्वप्रथम उन्होंने शिवलिंग की स्थापना कर उसका पूजन किया फिर समुद्र पार लंका की ओर प्रस्थान किया। हनुमान ने इस युद्ध में बहुत वीरता का परिचय दिया। उन्होंने हजारों असुरों को मार डाला। युद्ध में जब लक्ष्मण घायल होकर मूर्च्छित हो गए तब उनकी प्राण रक्षा हेतु हनुमान संजीवनी बूटी लेकर आए और उन्हें जीवन प्रदान किया। हनुमान ने अहिरावण का वध करके भी राम-लक्ष्मण की रक्षा की थी। हनुमान में भगवान शिव का अंश था और उन्होंने पग-पग पर श्रीराम की रक्षा एवं सहयोग देकर उनके कार्यों को सिद्ध किया।

इक्कीसवां अध्याय

महेश अवतार वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! एक समय भगवान शिव और देवी पार्वती प्रसन्नतापूर्वक अपनी इच्छा से विहार कर रहे थे। उन्होंने भैरव को द्वार पर द्वारपाल बनाकर खड़ा किया था, जिसका कार्य किसी को भी द्वार पार नहीं करने देना था। उधर दूसरी ओर भगवान शिव अपनी प्राणवल्लभा देवी पार्वती के साथ लीलाएं कर रहे थे और उनसे विनोदपूर्ण बातें कर रहे थे। बात करते हुए काफी समय बीत गया। तभी देवी पार्वती की कुछ सखियां, जो राजमहल में ही थीं, वहां उनके कक्ष में आ गईं। तब वे भी महादेव जी के पास बैठकर उनसे लीलाओं के वर्णन को सुनने लगीं।

काफी देर तक उन सखियों से भगवान शिव की बातें करते देख देवी पार्वती को क्रोध आ गया। वे गुस्से से महल के बाहर जाने लगीं। द्वार पर खड़े द्वारपाल भैरव ने देवी पार्वती को देखा तो उसके मन में विकार आ गया, वह उन्हें साधारण स्त्री समझकर घूरने लगा। देवी पार्वती ने भैरव के मन की बात पहचानते हुए उसे शाप दे दिया—भैरव, तू पृथ्वी पर जाकर एक साधारण मनुष्य की भांति जीवन जिएगा और अपनी करनी का फल भोगेगा।

जब देवी पार्वती इस प्रकार भैरव को शाप दे रही थीं तो भगवान शिव भी वहां आ पहुंचे। शाप से दुखी होकर भैरव ने देवी के चरणों में गिरकर उनसे क्षमा याचना की। तब त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल देवाधिदेव भगवान शिव ने भैरव को आश्वासन दिया। इस पर भैरव बोले कि हे प्रभु! देवी के शाप के प्रकोप से मुझे बचाइए। तब शिवजी भैरव को सांत्वना देने लगे और बोले—देवी पार्वती का शाप मिथ्या तो नहीं हो सकता परंतु भैरव हम अपने परम भक्त को ऐसे भी नहीं छोड़ सकते। तुम चिंता मत करो।

भैरव को आश्वासन देकर शिवजी देवी पार्वती को साथ लेकर चले गए। शाप के अनुसार भैरव जी शीघ्र ही वेताल के रूप में पृथ्वी लोक पर विचरने लगे। तब अपने भक्त का उद्धार करने के लिए भगवान शिव ने पृथ्वी पर अवतार लिया और वे महेश के रूप में और देवी पार्वती शारदा के नाम से पृथ्वीलोक पर लीलाएं करने लगे।

बाईसवां अध्याय

वृषभावतार वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! एक बार देवताओं और दैत्यों ने मिलकर बहुमूल्य रत्नों और खजानों को हासिल करने के लिए समुद्र मंथन करने का निश्चय किया परंतु वह मंथन किस प्रकार किया जाए यही सब सोच रहे थे। तभी आकाशवाणी हुई, आकाशवाणी ने कहा—हे कल्याणकारी देवताओ! तुम्हारा कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा। तुम मंदराचल पर्वत को मथानी और नागराज वासुकी को रस्सी बनाकर क्षीरसागर का मंथन करो।

आकाशवाणी सुनकर देवता और दानव उत्साहित होकर मंदराचल पर्वत को उखाड़ने लगे। अपने इस कार्य में वे सफल भी हो गए परंतु जब वे मंदराचल को मथानी बनाने के लिए क्षीरसागर में डालने लगे तो अत्यंत भारी होने के कारण वह उनके ऊपर गिर पड़ा। अनेक देवता और दानव उसमें दब गए। भयभीत होकर सब भगवान शिव की आराधना करने लगे। भगवान शिव अपने भक्तों पर सदा अपनी कृपा रखते हैं। उन्होंने देवताओं-दानवों को बल प्रदान किया। सबने मिलकर मंदराचल पर्वत को क्षीरसागर के जल में डाल दिया। फिर नागराज वासुकी को रस्सी बनाकर समुद्र मंथन करना आरंभ किया।

समुद्र मंथन के फलस्वरूप धन्वंतरि वैद्य, चंद्रमा, पारिजात, कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, मदिरा, हरि का धनुष, शंख, कामधेनु, कौस्तुभमणि, अमृत तथा कालकूट विष आदि वस्तुएं निकलीं। साथ ही परम सुंदर मनोहर रूप एवं धन वैभव की स्वामिनी देवी लक्ष्मी भी निकलीं। भगवान श्रीहरि विष्णु ने देवी लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभ मणि तथा गदा को ग्रहण किया। सूर्यदेव ने उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को लिया। इंद्रदेव ने पारिजात, कल्पवृक्ष और ऐरावत हाथी से देवलोक की शोभा बढ़ाई। त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल भगवान शिव ने देवताओं और असुरों सहित पूरे संसार की रक्षा हेतु मंथन से निकला कालकूट विष पीया और नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने चंद्रमा की रक्षा हेतु उसे अपने सिर पर धारण किया।

असुरों ने रमण कराने वाली मदिरा को लिया तो मनुष्यों ने धन्वंतरि वैद्य को ग्रहण किया। मुनिजनों ने कामधेनु को ग्रहण किया। तत्पश्चात सबसे अंत में निकले अमृत कलश को देखकर सब उसे लेने के लिए झपटे। देवता और असुर दोनों ही अमृत पीना चाहते थे। असुरों ने देवताओं से अमृत छीन लिया। दुखी देवता भगवान शिव की शरण में गए। तब अपने भक्तों के दुख को जानकर शिव ने श्रीहरि विष्णु को मोहिनी रूप धारण कर अपनी माया से अमृत कलश असुरों से लाने के लिए कहा। विष्णुजी की माया से मोहित होकर दैत्यों ने उन्हें अमृत कलश दे दिया। तब विष्णुजी ने देवताओं को ही अमृत पान कराया। यह देखकर दैत्यों को सारी माया समझ आ गई। फिर वे बलपूर्वक अमृत पाने के लिए युद्ध करने लगे। घोर युद्ध

हुआ। भगवान शिव और विष्णुजी की कृपा से देवता विजयी हुए और असुरों को विष्णुजी ने पाताल लोक जाने का आदेश दिया। वे स्वयं असुरों को पाताल ले गए परंतु दैत्यों ने अपनी चालाकी और माया से उन्हें वहीं बंदी बना लिया और स्वयं उपद्रव करने लगे।

जब देवताओं को असुरों ने प्रताड़ित करना आरंभ कर दिया तब वे परेशान होकर ब्रह्माजी के पास पहुंचे और उन्हें अपनी व्यथा-कथा सुनाई। फिर ब्रह्माजी देवराज इंद्र सहित अन्य देवताओं को अपने साथ लेकर त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव भगवान शिव के पास गए। वहां पहुंचकर उन्होंने शिवजी को प्रणाम किया और स्तुति आरंभ कर दी। तत्पश्चात उन्होंने शिवजी से कहा—हे भगवन्! असुरों ने हमें परेशान कर रखा है। उन्होंने भगवान श्रीहरि विष्णु को भी बंदी बनाकर पाताल में कैद कर लिया है। अतः प्रभु आप उन्हें मुक्त कराएं और हमारी रक्षा करें।

देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान शिव ने उन्हें रक्षा का आश्वासन देकर विदा किया और स्वयं देवताओं के कल्याण हेतु वृषभावतार धारण किया।

तेईसवां अध्याय

वृषभावतार लीला वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! कल्याणकारी भगवान शिव ने अपने भक्तों की रक्षा के लिए वृषभ का रूप धारण किया और पाताल की ओर चल पड़े। भगवान शिव ने भयंकर गर्जना के साथ पाताल में प्रवेश किया। उस प्रचण्ड गर्जन से पातालवासी व्याकुल हो गए और उनके नगर में विध्वंस होने लगा। इस प्रकार की गर्जना को सुनकर असुरों को संदेह हुआ। जब उन्हें पता चला कि भगवान शिव वृषभ रूप धारण करके युद्ध करने आए हैं तो वे भी अपनी पूरी शक्ति से उनसे युद्ध करने लगे। असुर सेना ने शिवजी पर आक्रमण कर दिया। शिवजी हाथों में धनुष बाण उठाए उनका ही इंतजार कर रहे थे। उन्होंने अपने बाणों की वर्षा आरंभ कर दी और अनेक दैत्यों को मार डाला।

बैल का रूप धारण किए हुए कल्याणकारी शिवजी ने अपने सींगों व खुरों से भी अनेक दैत्यों को मृत्यु के घाट उतार दिया और बहुत से दैत्यों को घायल कर दिया। इस प्रकार काफी समय तक उनके मध्य भयानक युद्ध चलता रहा। उधर, दूसरी ओर असुरों ने विष्णुजी को भी अपनी माया से मोहित करके उन्हें अपने साथ मिला लिया था। वे असुर के साथ रहकर उनकी प्रवृत्ति को ग्रहण करने लगे थे। उन पर संकट देखकर उनकी रक्षा के लिए वे भी युद्ध करने आए, उन्होंने वृषभ रूप धारण किए अपने आराध्य शिवजी को नहीं पहचाना और उनसे युद्ध करने लगे।

भगवान श्रीहरि विष्णु ने वृषभरूपी शिवजी पर अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया परंतु शिवजी ने सबको काट डाला। फिर शिवजी ने माया के बंधन से विष्णुजी को आजाद किया तो वे तुरंत शिवजी को पहचान गए और उनसे क्षमा याचना करने लगे। वे बोले—हे देवाधिदेव! मैं मूर्ख हूं जो अपने आराध्य स्वामी को नहीं पहचान सका और उनसे युद्ध करने लगा। मुझे क्षमा कर दें और मुझ पर कृपा करें।

श्रीहरि की विनयपूर्ण प्रार्थना को सुनकर शिवजी बोले—हे विष्णो! आप तो बड़े बुद्धिमान और ज्ञानी हैं फिर आप कैसे राक्षसों के मायाजाल में फंस गए तथा उनके साथी बन गए? शिवजी की बातें सुनकर विष्णु जी शर्म के मारे नीचे देखने लगे। तब शिवजी बोले—हे विष्णु! अब तुम यहां से चले जाओ। यह कहकर शिवजी ने उनका सुदर्शन चक्र ले लिया और उसके स्थान पर तेजसूर्य नामक दूसरा सुदर्शन चक्र उन्हें दिया। तत्पश्चात विष्णुजी स्वर्ग को चले गए। उनका मोह दूर हो गया था। शिवजी भी दैत्यों को उनकी करनी का फल देकर वहां से अंतर्धान हो गए।

चौबीसवां अध्याय

पिप्पलाद चरित्र

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! एक बार देवताओं और असुरराज वृत्रासुर में बड़ा भयानक युद्ध हुआ। वृत्रासुर ने सभी देवताओं को युद्ध में हरा दिया। तब सब देवता अपने प्राणों की रक्षा हेतु ब्रह्माजी की शरण में गए। ब्रह्माजी के पास पहुंचकर देवताओं ने उन्हें अपनी सारी परेशानियां बताईं और उनसे अपनी प्राण रक्षा की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने कुछ देर तक विचार किया और फिर देवताओं से कहा—हे देवताओ! महर्षि दधीचि ने भगवान शिव की घोर तपस्या करके उनसे वर मांगा है कि उसकी हड्डियां वज्र सी कठोर हो जाएं। इसलिए तुम महर्षि दधीचि से उनकी अस्थियों को मांग लो। उनकी हड्डियों से वज्र का निर्माण करके ही वृत्रासुर का संहार किया जा सकता है।

ब्रह्माजी के वचन सुनकर देवराज इंद्र देवगुरु बृहस्पति और अन्य देवताओं को साथ लेकर महर्षि दधीचि के आश्रम में गए। वहां पहुंचकर उन्होंने महर्षि को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। देवताओं को अचानक इस प्रकार आया देखकर दधीचि ने उनके आने का कारण पूछा। तब देवराज इंद्र ने उनसे कहा—हे महर्षे! आप परम शिवभक्त हैं और शिवजी से मिले वरदान के कारण आपकी हड्डियां वज्र के समान हैं। मुने! हमें अपनी अस्थियां दान करके हमारी रक्षा करें, क्योंकि वृत्रासुर का वध तभी संभव हो सकेगा।

महर्षि दधीचि ने मन ही मन सोचा कि परोपकार से बढ़कर कोई दूसरा कार्य नहीं है। तब देवताओं का कार्य सिद्ध करने हेतु उन्होंने भगवान शिव का स्मरण करते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। देवता उन पर पुष्प वर्षा करने लगे। जब इंद्र को ज्ञात हुआ कि महर्षि ने अपने प्राणों को त्याग दिया है तो उन्होंने कामधेनु द्वारा महर्षि दधीचि की सब अस्थियां निकाल लीं और वे अस्थियां त्वष्टा को देकर उससे वज्र का निर्माण कराने के लिए कहा। देवराज इंद्र की आज्ञा से त्वष्टा देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा के पास गए और उनसे अस्थियों का सुदृढ़ वज्र बनाने के लिए कहा। विश्वकर्मा ने दधीचि की अस्थियों से वज्र का निर्माण किया।

इस प्रकार महर्षि दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र को पाकर देवराज इंद्र बहुत प्रसन्न हुए और असुरराज वृत्रासुर का वध करने के लिए चल दिए। उन्होंने युद्धभूमि में जाकर वृत्रासुर को ललकारा और अपने वज्र से उस पर कठोर प्रहार कर उसे किसी पर्वत की भांति खण्ड-खण्ड कर डाला। वृत्रासुर के मरते ही देवताओं की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। वे उत्सव करने लगे। चारों ओर मंगल गान होने लगे तथा देवता इंद्र की स्तुति करने लगे।

उधर, दूसरी ओर जब महर्षि दधीचि की पत्नी सुवर्चा घर के सारे काम पूरे करके बाहर आई तो अपने पति को न देखकर सशंकित हो उठी। देवता भी वहां नहीं थे। उसे निश्चय हो गया कि उसके पति के साथ देवताओं ने छल किया है। सुवर्चा ने देवताओं को कोसते हुए पशु बनने का शाप दे दिया। अपने मृत पति के पास जाने हेतु सुवर्चा ने जब चिता में प्रवेश

चाहा, तभी आकाशवाणी हुई—हे प्राज्ञे! तुम ऐसा मत करो क्योंकि तुम्हारे उदर में महर्षि का तेज विद्यमान है। शास्त्र कहते हैं कि गर्भवती स्त्री को सती नहीं होना चाहिए।

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चा आश्चर्यचकित हो गई। उसने वहीं पड़ा हुआ एक पत्थर उठा लिया जिससे अपना गर्भ विदीर्ण कर दिया। उसके गर्भ से एक महादिव्य शरीर वाला परम कांतिवान बालक उत्पन्न हुआ। वह भगवान शिव का ही रूप था। अपने पुत्र को पाकर देवी सुवर्चा बहुत प्रसन्न हुईं परंतु अगले ही पल उन्हें अपने पति का वियोग सताने लगा। सुवर्चा ने अपने पुत्र को चूमा और अगले ही पल उसे पिप्पल वृक्ष के मूल में लिटा दिया और बोली—हे पुत्र! तुम इसी वृक्ष के पास निवास करो और सभी मनुष्यों के साथ प्रेम का व्यवहार करो। यह कहकर सुवर्चा समाधि लेकर अपने पति के पास चली गई।

देवी सुवर्चा समाधि लेकर शिवलोक पहुंची और अपने पति के साथ आनंदपूर्वक निवास करने लगी। उधर दधीचि मुनि के पुत्र को भगवान शिव का अवतार जानकर ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु, इंद्र आदि सब देवता वहां आए और उस बालक को वहां पाकर बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्माजी ने उसके जात-संस्कार विधिपूर्वक संपन्न करके उस बालक का नाम पिप्पलाद रखा। उस समय देवताओं ने बहुत उत्सव किया फिर अपने लोक को चले गए। पिप्पलाद बहुत समय तक उसी वृक्ष के मूल में तपस्या करते रहे और मनुष्यों के हित के लिए कार्य करते रहे।

पच्चीसवां अध्याय

पिप्पलाद-महादेव लीला

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! एक दिन दधीचि पुत्र ऋषि पिप्पलाद पुष्पभद्र नामक नदी में स्नान कर रहे थे, तभी उनकी दृष्टि एक सुंदर मनोहर युवती पर पड़ी। वह युवती भगवान शिव का ही अंश थी। उसे देखकर मुनि पिप्पलाद मोहित हो गए और उसे प्राप्त करने की इच्छा करने लगे। उन्हें ज्ञात हुआ कि वह परम सुंदरी राजा अनरण्य की पुत्री है। यह जानकर मुनि पिप्पलाद राजा अनरण्य के घर पधारे और उनसे उनकी पुत्री का हाथ मांगा। ऋषि की बातें सुनकर राजा सोच में डूब गए कि मैं अपनी प्रिय पुत्री, जो कि सदैव राजसी ठाठ-बाट से रही है, को कैसे एक योगी के साथ ब्याह दूं। जिसके न कोई रहने का ठिकाना है, न खाने-पीने का।

इस प्रकार राजा अनरण्य को सोच में डूबा देखकर ऋषि पिप्पलाद को क्रोध आ गया और वे राजा से बोले—हे राजन! तुम मुझे अपनी कन्या खुशी से सौंप दो अन्यथा मैं तुम्हें तुम्हारे राज्य सहित भस्म कर दूंगा। मुनि की बातें सुनकर राजा अनरण्य भयभीत हो गए। उन्होंने अपने राज्य और प्रजा की रक्षा हेतु अपनी पुत्री पद्मा का विवाह सहर्ष मुनि पिप्पलाद से कर दिया। प्रसन्न होकर मुनि पिप्पलाद अपनी पत्नी को साथ लेकर आश्रम पहुंचे और आनंदपूर्वक वहां रहने लगे। ऋषि पत्नी पद्मा ने अपने पति की बहुत सेवा की। वह हमेशा मन, वचन और कर्म से अपने पति की सेवा-सुश्रूषा में लगी रहती थी। उससे ऋषि को दस महात्मा और तपस्वी पुत्रों की प्राप्ति हुई।

मुनि पिप्पलाद ने अनेक लीलाएं कीं। उन्होंने संसार में किसी से भी निवारण न होने वाली शनिश्चर की पीड़ा को हरने का प्रयत्न किया। ऋषि ने अपने अनुयायी शिष्यों को यह वरदान दिया कि जन्म से लेकर सोलह वर्ष तक की आयु वाले शिवभक्त मनुष्यों को शनि की पीड़ा नहीं हो सकती। यदि शनि मेरे इस वचन को झुठलाने के लिए ऐसा करेगा तो भस्म हो जाएगा। इसलिए शनि का प्रकोप कभी भी सोलह वर्ष की आयु से कम के मनुष्यों पर नहीं पड़ता है।

तात! मनुष्य रूप धारण करने वाले ऋषि पिप्पलाद का यह चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया है। यह उत्तम चरित्र निर्दोष, स्वर्गप्रद, कुग्रहजनित दोषों का नाश करने वाला, मनोरथ पूर्ण करने वाला तथा शिव भक्ति में वृद्धि करने वाला है।

छब्बीसवां अध्याय

वैश्यनाथ अवतार वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे मुनिश्वर! पूर्व समय में नंदी नामक गांव में महानंदा नाम की एक वेश्या रहती थी। समस्त ऐश्वर्यों से संपन्न होने पर भी वह भगवान शिव की परम भक्त थी। वह नित्य भगवान शिव-पार्वती का पूजन करती। महानंदा शिव भक्ति रस में इतना डूब जाती कि घंटों-घंटों तक भक्तिभाव में उनके भजनों को गाती रहती। इस भक्तिभाव में, जब वह भजन गाती तो उसका मुर्गा और बंदर भी नाच-नाचकर साथ देते।

एक दिन भगवान शिव ने महानंदा की परीक्षा लेने के लिए एक वैश्य का रूप धारण किया और उसके दरवाजे पर पहुंच गए। उनके हाथों में एक सुंदर रत्नजड़ित कंकण था। उस वैश्य का कंकण महानंदा को भा गया। वह उसे पाना चाहती थी। वैश्य रूपी भगवान शिव ने उसके मन की बात जान ली और बोले—हे देवी! यदि आपको यह कंकण पसंद है तो इसका मूल्य चुका कर इसे आप रख लें। उस वैश्य की बात सुनकर महानंदा ने विनम्रता से मुस्कुराते हुए कहा—मैं तो एक वेश्या हूं। व्यभिचार ही मेरे कुल का धर्म है। इसके अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है। यदि आप मुझे यह कंकण देंगे तो मैं तीन दिन तक आपकी पत्नी बनकर आपके साथ निवास करूंगी।

देवी महानंदा के प्रस्ताव को सुनकर वह वैश्य तैयार हो गया और कहने लगा कि सूर्य और चंद्रमा इस बात के प्रमाण हैं। अब तुम मेरे हृदय पर हाथ रखकर तीन बार यह कहो कि तुम तीन दिन तक मेरे साथ मेरी पत्नी बनकर रहोगी। महानंदा ने वैश्य के कहे अनुसार वचनों को दोहरा दिया। तत्पश्चात वैश्य ने वह सुंदर रत्नजड़ित कंकण महानंदा के हाथ में दिया और बोला—हे कांते! भगवान शिव का यह रत्नजड़ित शिवलिंग मुझे अपने प्राणों से भी प्यारा है। इसलिए तुम इसकी सदैव रक्षा करना। महानंदा ने वैश्य द्वारा दिया गया वह शिवलिंग अपने माथे पर लगाया और हर हाल में उसकी रक्षा करने का आश्वासन वैश्य को दिया तथा ले जाकर अपने नाटक मण्डप में रख दिया।

रात में जब सब सो गए तब उस नाटक मण्डप में आग लग गई। वह धू-धू कर जलने लगा। महानंदा ने अपने बंदर और मुर्गे को तो बचा लिया परंतु भगवान शिव के रत्नजड़ित सुंदर लिंग को, जो वैश्य ने उसे संभालकर रखने के लिए दिया था, न बचा सकी। वह आग में जलकर नष्ट हो गया था। यह देखकर वह वैश्य और महानंदा बहुत दुखी हुए।

उस वैश्य ने कहा—हे नंदे! यह शिवलिंग मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय था। जब शिवलिंग जल गया तो मैं अब क्या करूंगा? महानंदा के बहुत समझाने पर भी वैश्य नहीं माना और उसने अपने शरीर को अग्नि की भेंट कर दिया। यह देखकर महानंदा को बहुत दुख हुआ कि मेरी असावधानी के कारण उस वैश्य के प्राण चले गए। मेरे ही कारण एक परम शिवभक्त मर गया। यह सोच-सोचकर नंदा पागल हुई जा रही थी। उसे याद आया कि उसने

वैश्य से तीन दिन तक उसके साथ रहने का वचन दिया था।

तब महानंदा ने अपना सारा धन, रत्न, आभूषण आदि सभी बहुमूल्य वस्तुएं आदि प्रसन्नता से ब्राह्मणों को दान कर दिए और स्वयं उस वैश्य की चिताग्नि में कूदने लगी परंतु इससे पहले कि महानंदा उस अग्नि में प्रवेश करती वहां भगवान शिव प्रकट हो गए। भगवान शिव को साक्षात अपने सामने पाकर नंदा स्तब्ध रह गई और एकटक उन्हें देखने लगी। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। कुछ क्षण पश्चात जैसे ही उसे ध्यान आया, उसने भगवान शिव के चरण पकड़ लिए और उनकी स्तुति करने लगी।

तब प्रसन्न होकर महादेवजी बोले—नंदा! मैं तुम्हारी सत्यता, धर्म-धैर्य और निश्चल भक्ति भावना से बहुत प्रसन्न हूं। मैंने ही वैश्य रूप धारण करके तुम्हारी परीक्षा ली थी जिसमें तुम सफल हुईं। मांगो, क्या मांगना चाहती हो? तब महानंदा बोली—भगवन्! मैं और मेरे सभी साथी आपके दर्शनों से ही धन्य हो गए। इससे अधिक हमें कुछ नहीं चाहिए। हां, यदि फिर भी आप देना चाहते हैं तो अपने चरणों में थोड़ा-सा स्थान दे दीजिए। यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक महानंदा को शिवलोक भेज दिया।

सत्ताईसवां अध्याय

द्विजेश्वर-अवतार

नंदीश्वर बोले—हे तात! भद्रायु राजा, जिस पर भगवान शिव ने ऋषभ रूप में कृपा की थी, की परीक्षा लेने के लिए ही भगवान शिव ने द्विजेश्वर अवतार धारण किया था। ऋषभ के प्रभाव से अपने शत्रुओं पर विजय पाकर भद्रायु सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उन्होंने राजा चंद्रागंग की पुत्री सीमंतिनी से विवाह किया। एक समय राजा भद्रायु बसंत ऋतु में अपनी पत्नी सीमंतिनी के साथ वन विहार करने गए। तब भगवान शिव-पार्वती उस दंपति की धर्म निष्ठा की परीक्षा लेने हेतु उस वन में पहुंचे। महान लीलाधारी भगवान शिव और पार्वती जी ने ब्राह्मण-ब्राह्मणी का रूप धारण किया और अपनी माया से रचित सिंह से भयभीत होते हुए राजा भद्रायु की शरण में गए और उनसे अपनी प्राण रक्षा करने हेतु प्रार्थना करने लगे।

उस ब्राह्मण दंपति की रक्षा हेतु राजा भद्रायु ने तुरंत धनुष-बाण उठा लिया और बाणों से उसे घायल करना चाहा, परंतु उस सिंह पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने झपटकर ब्राह्मणी को पकड़ लिया। वह बहुत चीखी, चिल्लाई परंतु सिंह ब्राह्मणी को बलपूर्वक घसीटता हुआ भाग गया। अपनी पत्नी को सिंह द्वारा ले जाए जाने पर ब्राह्मण बहुत दुखी हुआ और रोने लगा और राजा भद्रायु से बोला—हे राजन! आपके बड़े-बड़े आयुध कहां हैं? तुम्हारे पराक्रम का क्या फल है? क्या आप जंगली जानवरों के आघातों से भी दुखियों की रक्षा नहीं कर सकते। दीन-दुखियों की रक्षा करना राजा का परम धर्म होता है। फिर आपने अपने क्षत्रिय धर्म का पालन क्यों नहीं किया? आपने अपने कुल का धर्म ही नष्ट कर दिया है। जो दुखी और शरणागतों की रक्षा नहीं कर सकता, उसे जीने का कोई अधिकार नहीं है। कृपण, अनाथ और दीन-दुखी की रक्षा करने में असमर्थ मनुष्य को जहर खा लेना चाहिए या अग्नि में जल जाना चाहिए।

उस ब्राह्मण द्वारा कही गई बातें सुनकर राजा भद्रायु को बहुत दुख हुआ। वह अपने दुर्भाग्य को याद करके शोक में डूब गया। उसने सोचा कि आज मेरा सारा पौरुष नष्ट हो गया। आज मैं एक असहाय ब्राह्मणी की रक्षा नहीं कर सका। इसलिए मुझे घोर पाप लगेगा। मेरे कारण ब्राह्मण भी शोकाकुल हो गया है। उसकी स्त्री को भी सिंह ले गया है, पता नहीं उसने उसका क्या किया होगा? मुझे अपने पापों को कम करने के लिए इस ब्राह्मण देवता को प्रसन्न करना होगा।

यह सोचकर राजा भद्रायु उस ब्राह्मण के चरणों में गिर पड़े और बोले—हे ब्रह्मन! मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं आपकी पत्नी की रक्षा नहीं कर सका। मैं अपना राज-पाट सब आपके चरणों में न्योछावर करता हूं। यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला—भला मैं ठहरा भिक्षा मांगने वाला एक ब्राह्मण, मैं तुम्हारे राज-पाट का क्या करूंगा? इसलिए यदि तुम वाकई मुझे कुछ देना चाहते हो तो अपनी पत्नी मुझे दान में दे दो।

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा भद्रायु ने कहा—ब्रह्मन! पराई स्त्री का उपभोग तो महापाप है। उसका प्रायश्चित भी नहीं हो सकता। तब ब्राह्मण ने कहा कि राजन मैं तो बड़े से बड़े पाप को अपनी तपस्या से पल भर में नष्ट कर सकता हूं। तब भद्रायु ने सोचा कि मुझे ब्राह्मण को अपनी स्त्री दान करके शीघ्र ही अग्नि में प्रवेश कर जाना चाहिए। तत्पश्चात राजा भद्रायु ने अपनी पत्नी उस ब्राह्मण को सौंप दी। उसके बाद उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की और स्नान कर देवताओं को प्रणाम करने के पश्चात उस अग्नि की तीन बार परिक्रमा की। फिर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का ध्यान करने लगे और उन्हीं का स्मरण करते हुए जैसे ही वे अग्नि में प्रवेश करने लगे, वैसे ही द्विजेश्वर रूपधारी भगवान शिव वहां प्रकट हो गए।

भगवान शिव के पांच मुख, तीन नेत्र, पिनाक और चंद्रकलाधारी सुंदर स्वरूप, जो कि करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित था, देखकर राजा भद्रायु आनंदमग्न हो उठे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे।

राजा भद्रायु की स्तुति सुनकर भगवान शिव-पार्वती बोले—हे भद्रायु! तुम्हारी शिवभक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुमने सदा मेरा भक्तिभाव से पूजन किया है। अतः तुम अपनी पत्नी सहित मुझसे वर मांगो। आज मैं तुम्हारी मनोवांछित अभीष्ट वस्तु प्रदान करूंगा। मैंने ही तुम्हारी परीक्षा लेने हेतु ब्राह्मण का रूप धारण किया था। ब्राह्मणी के रूप में स्वयं देवी पार्वती थीं और वह सिंह मायावी था। तुम अपनी परीक्षा में सफल हुए हो राजन। कहो, क्या चाहते हो?

भगवान शिव के ये उत्तम वचन सुनकर राजा भद्रायु बोले—हे देवाधिदेव भगवान शिव! आप सबके परमेश्वर हैं। आपके स्वरूप के साक्षात दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया हूं। मैं सकुटुंब आपके श्रीचरणों की भक्ति करना चाहता हूं। मैं, मेरी रानी, मेरे माता-पिता आपके सेवक बनकर आपके श्रीचरणों में रहें। रानी कीर्तिमालिनी ने भी अपने माता-पिता के लिए भगवान शिव का लोक मांगा। दोनों को वरदान देकर महादेव जी पार्वती जी सहित अंतर्धान हो गए। राजा-रानी अपने नगर लौट आए। फिर दस हजार वर्षों तक राज्य करने के पश्चात वे दोनों भगवान शिव के धाम को गए। इस परम पवित्र, पापनाशक कथा को जो कोई सुनता अथवा पढ़ता है उसे इस लोक में सब भोग-ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं तथा अंत में भगवान शिव के लोक को जाता है।

अट्ठाईसवां अध्याय

यतिनाथ हंसरूप अवतार

नंदीश्वर बोले—हे मुनिश्वर! अर्बुदाचल पर्वत के पास भीलवंशोत्पन्न आहुक नाम का एक भील रहता था। उसकी पत्नी का नाम आहुका था। वह बहुत पतिव्रता थी। वे दोनों पति-पत्नी भगवान शिव के परम भक्त थे। एक दिन वह शिवभक्त भील भोजन की तलाश में बहुत दूर निकल गया। संध्या के समय भगवान शिव संन्यासी का रूप धारण करके उसकी परीक्षा लेने आए। वह भील भी शिकार से घर लौट आया था। तब यतिरूप में शिवजी उनके घर पहुंचे। भील ने उनका विधिपूर्वक पूजन किया। इस पर यतिनाथ बोले—हे भील! मैं रास्ते से भटक गया हूं और आस-पास जाने का मार्ग भी नहीं पता चल रहा है क्योंकि शाम हो चुकी है। अतएव आप मुझे रात्रि के लिए आश्रय दीजिए। सुबह होते ही मैं यहां से चला जाऊंगा।

यतिनाथ के वचन सुनकर वह भील बोला—स्वामी! मेरे घर में तो बहुत थोड़ा-सा स्थान है। आप यहां कैसे रह पाएंगे? भील की बात सुनकर वह चलने लगे। तभी भीलनी ने भील से कहा—स्वामी! ये मुनि हमारे अतिथि हैं। अतिथि तो भगवान का रूप होता है। इसलिए आप इन्हें यहीं रहने दीजिए। आप दोनों घर में रहना और मैं बाहर रह जाऊंगी। अपनी पत्नी के वचन सुनकर भील बोला कि तुम घर के भीतर रहो और मैं बाहर रह जाऊंगा।

यह कहकर वह भील घर से बाहर आ गया और बैठ गया। प्रातःकाल जब वह संन्यासी और भीलनी घर से बाहर निकले तो उन्हें पता चला कि भील को जंगली पशुओं ने खा लिया है। यह देखकर वे दोनों बहुत दुखी हुए। तब वह संन्यासी बोला कि मेरी वजह से तुम्हारे पति की मृत्यु हो गई है। हे देवी! मुझे क्षमा कर दीजिए। तब वह भीलनी कहने लगी कि आप दुखी न हों। अतिथि की रक्षा करना हमारा धर्म है और मेरे पति ने तो अपना धर्म निभाया है।

यह कहकर उस भीलनी ने चिता तैयार की और उसमें अग्नि प्रज्वलित कर सती होने लगी। उसी क्षण भगवान शिव वहां प्रकट हो गए और बोले—तुम धन्य हो! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम अपनी इच्छानुसार वर मांगो, मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा। देवाधिदेव महादेव जी को इस प्रकार सामने पाकर भीलनी बहुत प्रसन्न हुई और शिवजी की स्तुति करने लगी। बहुत कहने पर जब भीलनी ने कुछ नहीं मांगा तब भगवान शिव बोले—

अगले जन्म में मैं हंस रूप में प्रकट होऊंगा। तुम विदर्भ नगर में भीमराज की पुत्री दमयंती के रूप में जन्म लोगी। उस समय यह भील निषाद देश का राजपुत्र होगा। उसके पिता वीरसेन होंगे और उस जन्म में उसका नाम नल होगा। तब हंसरूप में मैं तुम दोनों अर्थात नल-दमयंती का मिलन कराऊंगा। उस समय तुम समस्त राज भोग भोगने के पश्चात मोक्ष को प्राप्त होगे।

यह कहकर भगवान शिव वहीं लिंग रूप में स्थित हो गए। भील के धर्म के प्रति अचल रहने के कारण यह लिंग 'अचलेश' नाम से जगत प्रसिद्ध हुआ। अगले जन्म में भील नल,

भीलनी दमयंती बने और भगवान यतिनाथ शिव ने हंस रूप में जन्म लिया और उनके पूर्व जन्म के पुण्य से प्रसन्न होकर उन्हें सुख प्रदान किया।

उन्तीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण दर्शन अवतार

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! इक्ष्वाकु वंश में श्राद्धदेव की नौवीं पीढ़ी में राजा नभग का जन्म हुआ और उनके पुत्र नाभाग हुए। नाभाग के पुत्र रूप में अंबरीष का जन्म हुआ। वे परम विष्णु भक्त थे। अंबरीष के पितामह नभग को स्वयं भगवान शिव ने ज्ञान दिया था। एक समय की बात है कि जब नभग गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने गए हुए थे, उस समय उनके भाइयों ने राज्य का विभाजन कर लिया और नभग के भाग को भी हड़प कर अपने राज्य में मिला लिया। शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात जब वे गुरुकुल से लौटे तो उन्होंने अपना भाग मांगा परंतु उनके भाइयों ने कहा कि हमने तुम्हारा हिस्सा किया ही नहीं था। अब जो कुछ भी मांगना चाहते हो वह तुम पिताजी से मांगो।

अपने भाइयों के स्वार्थी वचनों को सुनकर नभग को बहुत दुख हुआ। वे अपने पिता के पास गए और उन्हें सबकुछ बताया। पिता उन्हें धैर्य बंधाते बोले कि तुम्हारे भाइयों ने तुम्हारे साथ छल किया है। बेटा! तुम बुद्धिमान हो और अपनी जीविका का स्वयं प्रबंध कर सकते हो। इन दिनों ब्राह्मण आंगिरस एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं परंतु छठे दिन उनके यज्ञ में अवश्य ही कोई भूल होगी और यज्ञ पूरा नहीं हो पाएगा। तुम महा विद्वान हो। वहां यज्ञ में जाकर तुम उन्हें उपदेश दो। विश्वेदेव संबंधी सूक्तों को पढ़कर उनका यज्ञ पूरा हो जाएगा और वे ब्राह्मण स्वर्ग को चले जाएंगे। स्वर्ग जाते समय वे ब्राह्मण अपना बचा हुआ सारा धन तुम्हें दान दे जाएंगे जिससे तुम्हें अपार धन की प्राप्ति होगी।

अपने पिता की बताई बातों को मानकर वे तुरंत उस स्थान की ओर चल दिए, जहां वह उत्तम यज्ञ हो रहा था। वहां पहुंचकर नभग ने उन सूक्तों का स्पष्ट उच्चारण किया जिससे आंगिरस ब्राह्मण का यज्ञ पूर्ण हो गया। वहां उपस्थित सभी ब्राह्मण अपना सारा धन नभग को सौंपकर स्वर्ग चले गए। जैसे ही नभग उस धन को लेने लगे वहां शिवजी कृष्णदर्शन रूप में प्रकट होकर बोले—हे नभग! तुम ये धन नहीं ले सकते, क्योंकि यह धन मेरा है। इस पर मेरा अधिकार है। उत्तर देते हुए नभग बोले कि यह सारा धन ऋषि मुझे देकर गए हैं। इसलिए यह मेरा है। इस प्रकार उन दोनों में वाद-विवाद आरंभ हो गया। तब कृष्णदर्शन ने कहा कि हम दोनों आपके पिता मनु श्राद्धदेव के पास चलते हैं। वे जो भी निर्णय देंगे वह मुझे मान्य होगा।

इस प्रकार नभग और श्रीकृष्णदर्शन मनु श्राद्धदेव के पास अपना विवाद सुलझाने के लिए पहुंचे। उनकी बातें सुनकर श्राद्धदेव ने अपने पुत्र नभग से कहा—हे पुत्र! इस यज्ञ की सभी वस्तुएं देवाधिदेव भगवान शिव की हैं। यदि वे अपनी कृपा करें तो वह तुम पा सकते हो। तुम उनकी स्तुति करो। वे तुम्हारे अपराध को अवश्य ही क्षमा कर देंगे। भगवान शिव ही अखिलेश्वर और यज्ञ के अधिष्ठाता हैं। ब्रह्मा, विष्णु सहित सभी देवता सिद्ध और ऋषिगण

उनकी आज्ञा से ही कार्य करते हैं। यह कहकर श्राद्धदेव ने अपने पुत्र को लौटा दिया।

नभग पुनः यज्ञ भूमि में पहुंचे और भगवान शिव की हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। उन्होंने क्षमा याचना की। उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा, विष्णु व अन्य देवता भी वहां प्रकट हो गए और वे शिवरूपी कृष्णदर्शन की स्तुति करने लगे। तब प्रसन्न होकर वे बोले—हे पुत्र नभग! तुम्हारे पिता के वचन बिलकुल सत्य हैं। मैं ही यज्ञ का अधिष्ठाता हूं और तुम्हारी उत्तम स्तुति से प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुम्हें सनातन ब्रह्मज्ञान देता हूं। तुम महाज्ञानी हो और सब अभीष्ट वस्तुओं को ग्रहण करो। यह कहकर भगवान शिव अंतर्धान हो गए। सब देवता भी उनके गुणों का गान करते हुए अपने-अपने धाम को चले गए।

श्राद्धदेव भी नभग के साथ अपने घर चले गए। इस लोक में अनेक सुखों को भोगकर मृत्यु के उपरांत वे शिवलोक वासी हुए।

इस प्रकार मैंने भगवान शिव के कृष्णदर्शन नामक अवतार का वर्णन किया। इसे सुनने अथवा पढ़ने से सभी प्रकार के लौकिक और पारलौकिक मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है।

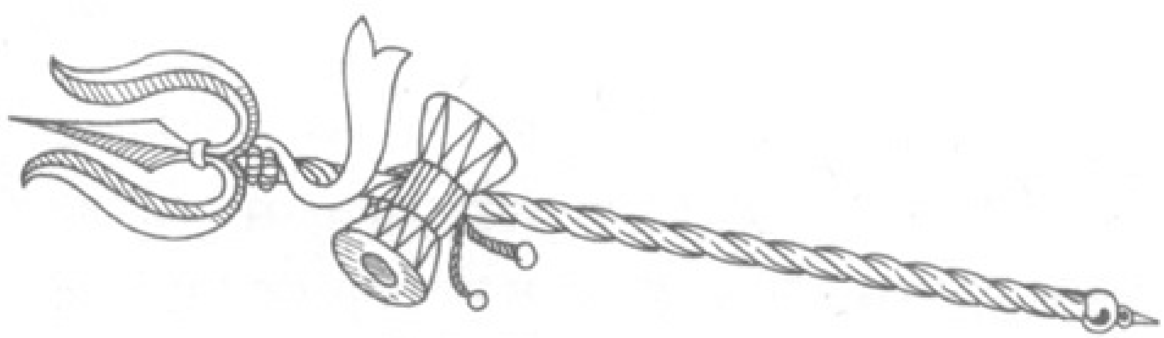

तीसवां अध्याय

भगवान शिव का अवधूतेश्वरावतार

नंदीश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! एक समय की बात है, देवगुरु बृहस्पति ने देवराज इंद्र और सब देवताओं को साथ लेकर त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव भगवान शिव के दर्शन करने के लिए उनके धाम कैलाश पर्वत की ओर प्रस्थान किया। देवराज इंद्र की परीक्षा लेने के लिए महान लीलाधारी भगवान शिव ने भयंकर अवधूत का रूप धारण किया। अग्नि के तेज से प्रज्वलित विशालकाय वे पुरुष बीच रास्ते में ही विराजमान हो गए। बृहस्पति जी के साथ इंद्र व अन्य देवता अद्‍भुत विशालकाय आकार वाले पुरुष को अपने मार्ग में बैठा देखकर आश्चर्यचकित हो गए। इंद्रदेव क्रोधित हो उठे। वे भी भगवान शिव को नहीं पहचान सके। वे पूछने लगे—तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहां से आ रहे हो? मुझे जल्दी से बताओ। भगवान शिव क्या अपने स्थान पर ही विराजमान हैं या फिर कहीं गए हुए हैं? मैं देवगुरु व अन्य देवताओं के साथ कल्याणकारी परमेश्वर के दर्शनों के लिए यहां आया हूं। उनकी ऐसी बातों और प्रश्नों को सुनकर भी अवधूत रूप धारण किए शिवजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। देवराज ने दुबारा पूछा। शिवजी फिर भी चुप रहे।

देवराज इंद्र के बार-बार पूछने पर भी महायोगी शिवजी कुछ नहीं बोले। तब देवराज अपने ऐश्वर्य के घमंड के कारण क्रोधित हो उठे और जोर से चिल्लाते हुए बोले—ओ मूर्ख! मेरे बार-बार पूछने पर भी तू कोई उत्तर क्यों नहीं देता है? अब मैं तुझे तेरी करनी का फल देता हूं और तुझ पर अपने वज्र का प्रहार करता हूं। देखता हूं तुझे मुझसे आज कौन बचाता है? यह कहकर देवराज इंद्र ने अपने हाथ में वज्र उठा लिया और शिवजी पर प्रहार करने लगे। लेकिन भगवान शिव ने इंद्र को वहीं जड़ कर दिया। उनका हाथ अपने स्थान से हिल न सका। अब तो इन्द्र क्रोध में अपना आपा खो बैठे।

यह दृश्य देखकर देवगुरु बृहस्पति भगवान शिव को तुरंत पहचान गए। उन्होंने जान लिया कि देवराज को इस प्रकार उनके स्थान पर जड़ करने वाले स्वयं देवाधिदेव महादेव जी हैं। वे हाथ जोड़कर भगवान शिव की स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने शिवजी से देवराज इंद्र के अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की। बृहस्पति जी बोले—भगवन्! अपने नेत्र से निकली हुई ज्वाला से इंद्र की रक्षा करो। उसे जीवनदान दो। तब भगवान शिव बोले—क्रोध में निकली इस ज्वाला को मैं वापस नहीं ले सकता।

शिवजी के इन वचनों को सुनकर बृहस्पति जी बोले कि आप इस ज्वाला को कहीं और स्थापित कर दीजिए। यह सुनकर शिवजी मुस्कुराए और बोले—हे देवगुरु! इंद्र की जीवन रक्षा करने के कारण आप जगत में 'जीव' नाम से भी प्रसिद्ध होंगे। यह कहकर उन्होंने अपने नेत्र से निकली ज्वाला को हाथ में लेकर समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में गिरते ही वह ज्वाला एक बालक के रूप में प्रकट हो गई। वह बालक सिंधुपुत्र जलंधर के नाम से विख्यात हुआ।

भगवान शिव ने ही देवताओं के आग्रह पर उसका वध किया था। अवधूत रूप में ऐसी लीला करके शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए और देवराज इंद्र, बृहस्पति जी व अन्य देवताओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक घर को लौट आए।

इकत्तीसवां अध्याय

भिक्षुवर्य शिव अवतार वर्णन

नंदीश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! विदर्भ नाम के एक नगर में सत्यरथ नामक राजा का राज्य था। वह भगवान शिव का परम भक्त था। एक बार उसके नगर पर उसके शत्रुओं ने आक्रमण किया। राजा सत्यरथ ने अपने शत्रुओं का सामना बहुत दृढ़ता से किया परंतु वह युद्ध में हार गया। उसके शत्रुओं ने उसे मार डाला। राजा के मारे जाने पर सारी सेना भयभीत होकर तितर-बितर हो गई। उस समय विदर्भ नरेश की पत्नी गर्भवती थी।

जब रानी को सारी बातें ज्ञात हुई तो अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसने रात में ही नगर छोड़ दिया। भगवान शिव का स्मरण करते हुए रानी पूर्व दिशा की ओर चली गई। बहुत दूर जाकर एक सरोवर के निकट एक सघन वट वृक्ष के नीचे अपनी कुटिया बनाकर वह रहने लगी। उसी स्थान पर रानी ने एक दिव्य बालक को जन्म दिया। एक दिन रानी अपने पुत्र को कुटिया में ही लिटाकर सरोवर से जल लेने गई तो वहां उसे एक घड़ियाल ने पकड़ लिया। उधर वह बालक अकेला पड़ा भूख-प्यास से व्याकुल होकर जोर-जोर से रोने लगा। उस बालक को रोता देखकर भक्तवत्सल दयालु भगवान शिव को उस पर दया आ गई। उन्होंने एक गरीब ब्राह्मणी को प्रेरित कर उस स्थान पर भेजा। वह विधवा ब्राह्मणी उस स्थान पर पहुंची, जहां वह बालक रो रहा था। उसको देखकर ब्राह्मणी का दिल द्रवित हो उठा। वह उस बालक के विषय में सोचने लगी कि अब इस बालक का क्या होगा?

तभी भगवान शिव स्वयं भिक्षुक का रूप धारण कर वहां पहुंच गए और ब्राह्मणी से बोले—हे ब्राह्मणी! अपने मन में आने वाली शंका दूर करो। इस छोटे से बालक को उठा लो और इसे अपना पुत्र मानकर इसका पालन करो। तब उनके वचन सुनकर वह ब्राह्मणी बोली—ब्रह्मन्! मैं तो स्वयं इस बालक को पालने के बारे में ही सोच रही थी परंतु मेरा मन शंकित था। अब आपने मेरी दुविधा दूर कर दी है। अब मैं अवश्य ही इस बालक की माता बनकर इसे पालूंगी। पर मैं आपसे इतना जानना चाहती हूं कि आप कौन हैं और कहां से आए हैं? यह बालक किसका है और इस सुनसान जंगल में कैसे आ गया है? भिक्षुवर! आपको देखकर मेरा मन बार-बार यह कह रहा है कि आप दया और करुणा के सागर भगवान शिव हैं, जो अपने भक्त की रक्षा के लिए यहां आए हैं। मैं भी आपकी माया से मार्ग में भटककर यहां आ गई हूं। मैं जानती हूं कि आपकी कृपा से इसका अवश्य ही कल्याण होगा।

उस गरीब ब्राह्मणी की बातें सुनकर भिक्षुरूप धारण किए भगवान शिव बोले—'हे ब्राह्मणी! यह बालक विदर्भनगर के नरेश सत्यरथ का पुत्र है, जिसे उसके शत्रुओं ने युद्ध में हराकर मौत के घाट उतार दिया है। सत्यरथ की गर्भवती पत्नी नगर से भागकर यहां आ गई थी। इस बालक को जन्म देने के पश्चात वह सरोवर में जल पीने गई, तो वहीं उसे घड़ियाल ने अपना आहार बना लिया। शिवजी के वचनों को सुनकर ब्राह्मणी फिर प्रश्न करती हुई बोली

—भगवन्! किस कारण से यह बालक अनाथ और बंधुहीन हो गया है? बालक के पिता सत्यरथ को शत्रुओं ने क्यों मार दिया और किसलिए शिशु की माता को घड़ियाल ने खा लिया? मेरा स्वयं का पुत्र भी गरीब और निर्धन है। भला इसको कैसे सुख प्राप्त होगा?

ब्राह्मणी के इन प्रश्नों को सुनकर भक्तवत्सल भगवान शिव अपने उसी भिक्षुक रूप में बोले—हे देवी! राजा सत्यरथ अपने पूर्व जन्म में पाण्डय देश के श्रेष्ठ राजा थे। वे सदैव शिव धर्म का पालन करते और भक्तिभाव से उनकी आराधना करते थे। एक दिन प्रदोषकाल में जब राजा भगवान शिव का पूजन कर रहे थे, उसी समय नगर में कोलाहल मचा। राज्य में विद्रोह फैलने की आशंका से राजा ने पूजा बीच में ही छोड़ दी। सैनिकों ने जिसे राजद्रोही के रूप में राजा के सामने ला खड़ा किया वह और कोई नहीं उसी राज्य का एक सामंत था। उसे देखकर पाण्डयराज क्रोध में अपना आपा खो बैठे और उस सामंत का सिर कटवा दिया। प्रदोष पूजन के नियम को समाप्त किए बिना राजा ने भोजन भी कर लिया। इसी तरह राजकुमार ने भी प्रदोष पूजन किए बिना भोजन कर लिया और सो गया।

वह पाण्डयराज इस जन्म में विदर्भराज हुआ। प्रदोष में शिव पूजन को बीच में छोड़ देने की वजह से उसका वध कर दिया गया और पूर्व जन्म का उसका पुत्र इस जन्म में भी उसका पुत्र बनकर जन्मा है। शिव पूजन बिना खा-पीकर सो जाने के कारण ही वह दरिद्रता में घिरा हुआ है। इसकी माता ने भी पूर्व जन्म में छल से अपनी सौतन को मार दिया था। इसलिए उसे भी घड़ियाल ने खा लिया है। तुम्हारा पुत्र पूर्व जन्म में ब्राह्मण था और महादानी था परंतु इसने कोई यज्ञकर्म नहीं किए, इसी कारण इसे भी दरिद्रता का दण्ड मिला है। इन दोनों पुत्रों के दोषों को दूर करने के लिए तुम भगवान शिव की शरण में जाओ। वे ही तुम सबका कल्याण करेंगे।

ब्राह्मणी को सबकुछ बताकर भगवान ने अपना सत्यरूप उन्हें दिखाया। साक्षात भगवान शिव के दर्शन कर ब्राह्मणी कृतार्थ हो गई और हाथ जोड़कर शिवजी की स्तुति करने लगी। तब आशीर्वाद देकर महादेव जी अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात वह ब्राह्मणी उस बालक को अपने साथ ले गई। फिर वह अपने पुत्रों के साथ एकचक्र नामक गांव में रहने लगी और अपने दोनों पुत्रों का लालन-पालन करने लगी। समय आने पर ब्राह्मणों ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया।

दोनों शांडिल्य मुनि के उपदेश सुनते और शिवजी की आराधना करते। समय बीतता गया। दोनों पुत्र बड़े हो गए। एक दिन ब्राह्मणी पुत्र को नदी में स्नान के लिए जाते समय सोने से भरा कलश मिला। उस सोने के कलश से उनकी गरीबी दूर हो गई। फिर भी वे नियम से शिवजी की आराधना करते। एक दिन वे वन में गए। वहां एक गंधर्व कन्या अपने पिता के साथ आई और वह राजकुमार पर मोहित हो गई। उसके पिता ने उसका विवाह राजकुमार से कर अपना राज्य उसे सौंप दिया। ब्राह्मणी वहां की राजमाता हुई और ब्राह्मण पुत्र उसका भाई। अब वे सब लोग प्रसन्नतापूर्वक राजसुख भोगने लगे। भगवान शिव का भिक्षुवर्य अवतार पुरुषार्थ का साधक और अभीष्ट फल देने वाला है।

बत्तीसवां अध्याय

सुरेश्वर अवतार

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! व्याघ्रपाद के पुत्र उपमन्यु पूर्व जन्म में प्राप्त सिद्धि के कारण मुनिकुमार के रूप में जन्मे थे। बचपन से ही वे अपनी माता के साथ अपने मामा के घर में रहा करते थे। वे बहुत गरीब थे। एक दिन उन्हें पीने के लिए बहुत कम दूध मिला। बालक दूध पीने का हठ करने लगा। मां के समझाने पर जब बालक न माना तो उसकी माता ने खेतों से बीनकर लाए गए दानों को पीसकर उससे कृत्रिम दूध तैयार किया और उसे अपने पुत्र को दिया। बालक ने जब उसे पिया तो वह जान गया था कि वह दूध नहीं बल्कि कुछ और है। अपने पुत्र को इस प्रकार रोता-बिलखता देखकर उसकी माता ने उसे गोद में बैठाया और उसके आंसुओं को पोंछते हुए बोली—बेटा! हम वनों में रहने वाले लोगों के पास भला दूध कहां से आएगा? भगवान शिव की कृपा से ही तुम्हें दूध मिल सकता है।

अपनी माता के ऐसे वचन सुनकर शोकाकुल व्याघ्रपाद का पुत्र बोला—मां! यदि सबकुछ प्रदान करने वाले भगवान शिव ही हैं तो मैं निश्चय ही उन्हें अपनी भक्ति से प्रसन्न करूंगा।

यह कहकर वह बालक अपनी माता को प्रणाम कर वहां से चला गया। वह हिमालय पर्वत पर पहुंचा। वहां उसने एक छोटा-सा मंदिर बनाया और भगवान शिव व माता पार्वती की मूर्ति स्थापित की। तत्पश्चात जंगल के अनेकों फल-फूलों व वनस्पतियों से वह नित्य शिव-पार्वती की आराधना करता तथा पंचाक्षर मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' का जाप करता। इस प्रकार उस बालक ने काफी समय तक भगवान शिव की कठोर तपस्या की।

उपमन्यु की घोर तपस्या के प्रभाव से तीनों लोक प्रदीप्त हो उठे। तब भगवान शिव इंद्र का और देवी पार्वती इंद्राणी का रूप धारण करके नंदी के स्थान पर ऐरावत हाथी पर बैठकर उपमन्यु के पास आए। वे उपमन्यु से बोले—ऐ बालक! हम तुम पर प्रसन्न हैं, मांगो क्या मांगना चाहते हो? हम तुम्हें सभी अभीष्ट फल प्रदान करेंगे। उनके वचन सुनकर उपमन्यु बोले कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न होकर कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे भगवान शिव की भक्ति प्रदान कीजिए। तब देवराज इंद्र ने उपमन्यु से कहा कि उपमन्यु मैं देवताओं का स्वामी इंद्र हूं। तुम मेरी आराधना करो। मैं तुम्हें सारी अभीष्ट वस्तुएं प्रदान करूंगा। भगवान शिव तो मेरे समक्ष कुछ भी नहीं हैं। तुम उनको भूल जाओ। इस प्रकार इंद्र ने भगवान शिव की बहुत निंदा की। अपने आराध्य भगवान शिव की निंदा सुनकर उपमन्यु को क्रोध आ गया। उसने भगवान शिव का स्मरण करते हुए अपने हाथ में भस्म उठा ली और उसे अघोरमंत्र से अभिमंत्रित करके उसमें अग्नि प्रवाहित कर उसे देवराज इंद्र पर चला दिया। लेकिन वहां तो सारा दृश्य ही बदल गया था। तब इंद्र रूप धारण किए भगवान शिव ने उपमन्यु को अपने परमेश्वर स्वरूप के साक्षात दर्शन कराए। शिव में ही समस्त सृष्टि समाई हुई है, ऐसा उपमन्यु ने देखा।

भगवान शिव बोले—हे उपमन्यु! मैं तुम्हारा पिता और देवी पार्वती तुम्हारी माता हैं। हम तुम्हारी आराधना से बहुत प्रसन्न हैं। मैं तुम्हें सनातन कुमारत्व प्रदान करता हूं। मैं दूध, दही और शहद व अन्य भोज्य पदार्थों का खजाना तुम्हें देता हूं। तुम अमरता को प्राप्त होगे और तुम्हें मेरे गणों का आधिपत्य मिलेगा। इस प्रकार शिवजी ने उपमन्यु को अनेक दिव्य वर प्रदान किए। तत्पश्चात भगवान शिव-पार्वती वहां से अंतर्धान हो गए। फिर उपमन्यु ने घर आकर अपनी माता को सारी बातें बताईं जिसे सुनकर उसकी माता बहुत प्रसन्न हुई। जिसे भगवान शिव के दर्शन हो गए हों, उसे और क्या कुछ चाहिए।

तात! इस प्रकार भगवान शिव के सुरेश्वरातार की उत्तम कथा मैंने तुम्हें सुनाई। यह कथा सुख देने वाली तथा पापों को दूर कर मनोवांछित फल देने वाली है। इसे सुनने अथवा पढ़ने से सुखों की प्राप्ति होती है और अंत में अर्थात मृत्यु के उपरांत शिवलोक में निवास होता है।

तेंतीसवां अध्याय

ब्रह्मचारी अवतार

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! प्रजापति दक्ष की पुत्री सती ने जब अपने पिता द्वारा होने वाले यज्ञ में अपने पति देवाधिदेव महादेव जी का अपमान होते हुए देखा तो वहीं, उसी यज्ञ में उन्होंने अपने प्राणों को त्याग दिया। तत्पश्चात वे गिरिराज हिमालय के यहां पार्वती के नाम से जन्मीं। अपनी सखियों के साथ वन में विहार करतीं। पार्वती के मन में देवर्षि नारद ने भगवान शिव को पाने की ललक जगाई। इस कार्य की सिद्धि के लिए देवी पार्वती ने भगवान शिव की आराधना और तपस्या करनी आरंभ कर दी। जब भगवान शिव को उनके इस उत्तम तप की सूचना मिली तो उन्होंने पार्वती जी के पास सप्तऋषियों को भेजा। सप्तऋषियों ने वहां जाकर देवी पार्वती की परीक्षा ली और भगवान शिव के पास लौट आए। शिवजी को प्रणाम कर उन्होंने वहां का सारा समाचार उन्हें सुनाया।

सप्तऋषियों से देवी पार्वती की तपस्या के विषय में जानकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने स्वयं उनकी परीक्षा लेने का निर्णय किया। शिवजी ने वृद्ध ब्रह्मचारी का वेश बनाया और पार्वती जी के आश्रम की ओर चल दिए। अपने द्वार पर एक वृद्ध ब्राह्मण ब्रह्मचारी को आया देखकर देवी पार्वती ने उनको आसन पर बैठाया और उनका पूजन-आराधन करने के पश्चात उनका आतिथ्य किया। तत्पश्चात वे उनसे पूछने लगीं—हे महात्मा! आप कौन हैं और कहां से आए हैं? तब उन मुनि ने उत्तर दिया—हे देवी! मैं तो स्वच्छंद विचरण करने वाला एक साधारण तपस्वी हूं। मैं सदा मानव सेवा में लगा रहता हूं और दूसरों को सुख देने का कार्य करता हूं। देवी, आप मुझे बताइए कि आप कौन हैं? और इतनी कम उम्र में सब सुखों आदि का त्याग कर इस निर्जन वन में क्यों तपस्या कर रही हैं?

तब देवी पार्वती उन ब्रह्मचारी रूप धारण किए भगवान शिव के प्रश्नों का उत्तर देते हुए बोलीं—हे मुने! मैं गिरिराज हिमालय और देवी मैना की पुत्री पार्वती हूं। मैंने भगवान शिव को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है और उन्हीं को अपने पति के रूप में पाने की इच्छा मन में लेकर मैं शिवजी की तपस्या कर रही हूं ताकि वे मुझ पर अपनी कृपादृष्टि कर मुझे कृतार्थ करें। देवी पार्वती के वचन सुनकर वे मुनि बोले—हे देवी! तुमने सारे देवताओं को, जो कि अत्यंत सुंदर, सजीले और ऐश्वर्य संपन्न हैं, छोड़कर उस वैरागी, विकृतात्मा और जटाधारी भगवान शिव को अपने वर के रूप में चुना है। वे सदा अकेले रहते हैं और इधर-उधर भटकते रहते हैं। इस प्रकार वह ब्रह्मचारी भगवान शिव की बहुत निंदा करने लगा।

उस ब्रह्मचारी के मुंह से अपने आराध्य भगवान शिव की निंदा सुनकर पार्वती को बहुत क्रोध आया। तब वह बोलीं—हे मुने! मैंने तो आपको एक योगी-तपस्वी जानकर आपकी पूजा और आराधना की थी, परंतु आप तो मूर्ख और धूर्त हैं, जो परमेश्वर शिव के विषय में ऐसे विचार रखते हैं। आपने मेरे सम्मुख भगवान शिव की निंदा करके मुझे भी अपने पाप का

भागी बना दिया है और मेरी तपस्या के सारे पुण्यों को नष्ट कर दिया है। फिर वे अपनी सखी से बोलीं कि यह ब्राह्मण है, इसलिए हम इसको इनकी करनी का फल अर्थात दण्ड नहीं दे सकते। इससे पूर्व कि यह फिर हमसे त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भक्तवत्सल देवाधिदेव शिव की निंदा करे, हमें यह स्थान छोड़कर चले जाना चाहिए।

यह कहकर देवी पार्वती अपनी सखियों के साथ उस स्थान से जाने लगीं तब परमेश्वर शिव ने उन्हें अपने साक्षात शिव स्वरूप के दर्शन दिए, जिस स्वरूप की आराधना पार्वती जी करती थीं। उन्हें देखकर पार्वती जी बहुत प्रसन्न हुईं और उनकी स्तुति करने लगीं। तब भगवान शिव मुस्कुराते हुए बोले—हे देवी! मैं तुम्हारी उत्तम तपस्या से प्रसन्न हूं। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही ब्रह्मचारी का रूप धारण करके आया था। मेरे प्रति तुम्हारी श्रद्धा और भक्ति ने मुझे यहां आने पर मजबूर कर दिया है। मांगो, क्या मांगना चाहती हो? मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए सब अभीष्ट तुम्हें प्रदान करूंगा।

भगवान शिव के ये उत्तम वचन सुनकर देवी पार्वती शर्माते हुए बोलीं—हे भक्तवत्सल! आप तो तीनों लोकों के ज्ञाता हैं। भला आपसे भी कोई बात छिपी रह सकती है। फिर भी यदि आप मेरे मन की इच्छा जानना चाहते हैं तो मुझे अपनी पत्नी होने का वरदान दीजिए। तब भगवान शिव ने देवी पार्वती को उनका इच्छित वर दिया और उनका पाणिग्रहण किया। इस प्रकार मैंने आपसे शिवजी के ब्रह्मचारी अवतार का वर्णन किया। यह कथा सुख देने वाली और दुखों को दूर करने वाली है।

चौंतीसवां अध्याय

सुनट नर्तक अवतार

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! देवी पार्वती की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर जब भगवान शिव ने उन्हें दर्शन दिए तब देवी पार्वती ने उनसे उनकी पत्नी बनने का वर मांगा। भगवान शिव ने प्रसन्नतापूर्वक उनका इच्छित वरदान उन्हें प्रदान किया। देवी पार्वती को वरदान देकर शिवजी अंतर्धान हो गए और पार्वती जी अपने घर वापस आ गईं। वहां आकर उन्होंने अपने माता-पिता को सारी बातें बताईं। तब उनके घर में प्रसन्नता छा गई और चारों ओर महोत्सव होने लगा। खुश होकर गिरिराज हिमालय ने ब्राह्मणों को बहुत दान-दक्षिणा दी। फिर गंगा स्नान करने चले गए।

एक दिन जब गिरिराज हिमालय गंगा स्नान हेतु गए थे, भगवान शिव ने सुंदर नट-नर्तक का रूप धारण किया और मैना के घर पहुंच गए। उनके बाएं हाथ में शिवलिंग और दाहिने हाथ में डमरू था। उन्होंने लाल रंग के वस्त्र पहन रखे थे। पीठ पर गुदड़ी टांग रखी थी। ऐसे रूप में वे मैना के घर के आंगन में आकर सुंदर नृत्य एवं गान करने लगे। अपने डमरू को बजाकर वे अनेक प्रकार की लीलाएं दिखाने लगे। नगर के सारे वृद्ध, नर-नारी और बच्चे प्रसन्नतापूर्वक उनका नृत्य देख रहे थे। महारानी मैना खुश होकर एक पात्र भरकर स्वर्ण मुद्राएं एवं रत्न नट को देने गईं परंतु नट के रूप में आए भगवान शिव ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया और कहा कि यदि आप वाकई प्रसन्न होकर मुझे कुछ देना ही चाहती हैं तो अपनी पुत्री पार्वती का हाथ मेरे हाथ में दे दीजिए।

उस नट-नर्तक की बात सुनकर देवी मैना को बहुत क्रोध आया और वे नट को बुरा-भला कहने लगीं। उसी समय गिरिराज हिमालय भी गंगा स्नान करके वापस लौट आए। जब उन्हें इस बात का पता चला तो उन्होंने अपने सेवकों को उस नट को वहां से बाहर निकालने की आज्ञा दी। सेवक नट की ओर बढ़े ही थे कि मायावर लीलाधारी भगवान शिव ने मैना और हिमालय को पार्वती सहित क्षणभर के लिए अपने दिव्यरूप के दर्शन कराए और अगले ही पल तेज कदमों से चलकर वहां से गायब हो गए।

नट-नर्तक के चले जाने के उपरांत देवी मैना और गिरिराज हिमालय बैठकर नट के विषय में बात करने लगे और उसी की लीलाओं की प्रशंसा करने लगे। तभी माया से मोहित उनको उस नट-नर्तक के देवाधिदेव महादेव भगवान शिव होने का ज्ञान प्राप्त हुआ। तब उन्हें बहुत दुख हुआ कि हमने अपने द्वार पर पधारे शिवजी का अपमान किया और उन्हें अपनी कन्या नहीं सौंपी। यह विचारकर दोनों बहुत दुखी हुए और अपने अपराध का प्रायश्चित करने हेतु भगवान शिव की आराधना करने लगे। उनकी भक्तिभाव से की गई पूजा से प्रसन्न होकर शिवजी ने देवी पार्वती का पाणिग्रहण किया। यह शिवजी के नट-नर्तक अवतार का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया। यह वर्णन सब अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाला है।

पैंतीसवां अध्याय

शिवजी का द्विजअवतार

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! जब देवी मैना और गिरिराज हिमालय ने अपने द्वार पर नट का रूप धारण करके आए शिवजी को अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया तब उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ और वे क्षमा याचना करने हेतु भगवान शिव की भक्तिभाव से आराधना करने लगे। उनकी शिवजी में परम भक्ति स्थापित हो गई। उनकी इस घनिष्ठ भक्ति से देवता चिंतित हो उठे। उन्हें लगा कि यदि गिरिराज ने अपनी भक्ति से प्रसन्न कर शिवजी को अपनी कन्या पार्वती दे दी तो उन्हें भगवान शिव द्वारा निर्वाण प्राप्त हो जाएगा और वे संसार के बंधनों से छूटकर परम शिवलोक को प्राप्त कर लेंगे। गिरिराज हिमालय तो रत्नों का आधार हैं और यदि ये मुक्त हो गए तो पृथ्वी रत्नगर्भा कैसे कहलाएगी? फिर तो वे अपना वर्तमान स्थिर रूप त्याग कर दिव्य रूप को धारण कर लेंगे और शिवलोक के वासी हो जाएंगे।

यह सब सोचकर देवताओं को चिंता सताने लगी और वे अपनी समस्या का समाधान करने हेतु देवगुरु बृहस्पति की शरण में गए। वहां जाकर उन्होंने बृहस्पति जी को प्रणाम किया और बोले—हे देवगुरु! आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे गिरिराज हिमालय भगवान शिव की भक्ति से विरक्त हो जाएं। आप हिमालय के पास जाकर उनसे शिवजी की निंदा करें। देवराज इंद्र के ऐसे वचन सुनकर देवगुरु बृहस्पति बोले कि मैं परम कल्याणकारी परमेश्वर की निंदा नहीं कर सकता। आप अपना यह कार्य किसी अन्य देवता से पूर्ण कराइए। देवगुरु के इनकार कर देने पर इंद्र सब देवताओं सहित ब्रह्माजी के पास गए और उनसे हिमालय के घर जाकर भगवान शिव की निंदा करने के लिए कहने लगे। तब ब्रह्माजी ने भी भक्तवत्सल कल्याणकारी भगवान शिव की निंदा करने से मना कर दिया। यह सुनकर देवराज इंद्र निराश हो गए। तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि इंद्र इस संसार में हर कार्य भगवान शिव की आज्ञा से ही पूर्ण होते हैं। तुम अपने कार्य की सिद्धि हेतु उन्हीं की शरण में जाओ। वे अवश्य ही तुम्हारे हित का कार्य करेंगे।

तब ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर देवराज भगवान शिव के पास गए और उनसे सारी बातें कहीं। उनकी बातें सुनकर कल्याणकारी भगवान शिव ने इंद्र को उनके कार्य की पूर्ति का आश्वासन देकर वहां से विदा किया। देवराज इंद्र के कार्य को पूरा करने के लिए शिवजी ने साधु का वेश धारण किया। उन्होंने हाथ में दण्ड और छत्र लिया, मस्तक पर तिलक, गले में शालिग्राम और हाथ में स्फटिक की माला ली तथा भगवान श्रीहरि विष्णु का नाम जपते हुए गिरिराज हिमालय के राजदरबार में पहुंच गए। अपने दरबार में आए उन तपस्वी को देखकर हिमालय ने सिंहासन को त्याग दिया और स्वयं उन्हें प्रणाम कर यथायोग्य आसन देकर उनका परिचय पूछा।

तब ब्राह्मण देवता बोले—हे गिरिराज मैं एक तपस्वी ब्राह्मण हूं और परोपकार व सेवा के लिए भ्रमण करता रहता हूं। अपनी दिव्य दृष्टि और योगबल से मुझे ज्ञात हुआ है कि आप अपनी लक्ष्मी स्वरूपा बेटी पार्वती का विवाह शिवजी से करना चाहते हैं परंतु शायद आप यह नहीं जानते कि शिवजी कुलहीन, बंधु-बांधवहीन, आश्रयहीन, एकाकी रहने वाले, कुरूप, निर्गुण, अव्यय, श्मशान वासी, गले में सर्प धारण करने वाले हैं। वे सदा अपने शरीर पर चिता की भस्म लपेटे रखते हैं। ऐसे व्यक्ति को अपनी परमगुणी सुंदर कन्या को सौंपना सर्वथा अनुचित है।

यह कहकर महान लीलाधारी भगवान शिव साधु रूप में ही वहां से चले गए। उनकी बातों का मैना-हिमालय पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे भगवान शिव की भक्ति से विमुख होकर इस सोच में डूब गए कि आगे क्या करें? इस प्रकार मैंने तुमसे शिवजी के साधु वेशधारी द्विजअवतार का वर्णन किया।

छत्तीसवां अध्याय

अश्वत्थामा का शिव अवतार

नंदीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ सनत्कुमार जी! देवगुरु बृहस्पति के पुत्र मुनि भारद्वाज हुए और उनके पुत्र के रूप में द्रोण का जन्म हुआ। द्रोण बचपन से महान धनुर्धारी, महातेजस्वी और सब अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता थे। यही नहीं, धनुर्वेद और सभी वेदों के महाज्ञाता थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण आप कौरवों और पाण्डवों के आचार्य बने और द्रोणाचार्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं द्रोणाचार्य ने अपने मन में पुत्र प्राप्ति की कामना लेकर भगवान शिव की आराधना की और अपनी घोर तपस्या से त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को प्रसन्न कर लिया।

शिव ने उन्हें साक्षात दर्शन दिए। शिवजी द्वारा वर मांगने के लिए कहने पर द्रोणाचार्य बोले—हे प्रभु! यदि आप मेरी आराधना से संतुष्ट होकर प्रसन्न हुए हैं तो भगवन्! मुझे अपने अंश से पैदा होने वाला पुत्र प्रदान कीजिए, जो वीर, पराक्रमी और अजेय हो। द्रोणाचार्य को उनका इच्छित वर प्रदान कर शिवजी अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात मुनि द्रोण प्रसन्नतापूर्वक अपने घर को चल दिए और वहां जाकर उन्होंने अपनी पत्नी को वरदान प्राप्ति के बारे में बताया। जिसे सुनकर उनकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुई।

निश्चित समय पर मुनि द्रोण की पत्नी ने एक वीर बालक को जन्म दिया, जिसका नाम अश्वत्थामा रखा गया। अश्वत्थामा वीर और पराक्रमी योद्धा हुए और उन्होंने कौरव सेना का मान बढ़ाया। जब कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ तो अश्वत्थामा के कारण कौरव सेना अजेय हो गई और वह पाण्डव सेना पर हावी होने लगी। शिवजी के अंश से उत्पन्न होने के कारण ही अश्वत्थामा ने पाण्डव पुत्रों को युद्ध में मार डाला था। यह देखकर अर्जुन बहुत क्रोधित हुए और अपने पुत्रों का नाश करने वाले पर आक्रमण करने लगे। अर्जुन के सारथी के रूप में स्वयं श्रीकृष्ण थे। अर्जुन को अपनी ओर आता देखकर अश्वत्थामा ने उन पर ब्रह्मशिर नामक अस्त्र छोड़ दिया, जिससे सारी दिशाएं प्रचण्ड तेज से प्रकाशित हो उठीं।

अश्वत्थामा के इस अस्त्र को देख अर्जुन एक पल के लिए विचलित हो गए। उन्होंने श्रीकृष्ण से इसका उपाय पूछा। तब श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन! यह बहुत घातक शक्ति है और इससे तुम्हारी रक्षा स्वयं भगवान शिव ही कर सकते हैं। तुम उन्हीं का स्मरण करके इस अस्त्र का नाश करो। तब अर्जुन ने हाथ जोड़कर भगवान शिव की मन से बहुत आराधना और स्तुति की। तत्पश्चात उन्होंने जल को छूकर शैवास्त्र छोड़ा। इसके प्रभाव से अश्वत्थामा द्वारा चलाया गया ब्रह्मशिर अस्त्र शांत हो गया। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन सहित सब पाण्डवों को अश्वत्थामा से आशीर्वाद लेने के लिए कहा।

श्रीकृष्ण की आज्ञा मानते हुए सभी पाण्डवों ने अश्वत्थामा को प्रणाम किया। तब प्रसन्न होकर अश्वत्थामा ने पाण्डवों को अनेकों वर प्रदान किए और फिर अपने कर्तव्य को निभाते हुए कौरव सेना से मिलकर पुनः पाण्डवों से युद्ध करने लगे। इस प्रकार भगवान शिव ने परम

भक्त द्रोण के घर पुत्र के रूप में जन्म लेकर अनेक लीलाएं रचीं।

सैंतसवां अध्याय

पाण्डवों को शिव-पूजन के लिए व्यास जी का उपदेश

नंदीश्वर बोले—हे श्रेष्ठ मुनि! जब पाण्डवों को दुर्योधन ने जुए में हरा दिया था और वे वनवास पाकर अपनी पत्नी द्रौपदी सहित द्वैत वन में निवास करने लगे थे, तब एक दिन दुर्योधन ने ऋषि दुर्वासा को उनके शिष्यों सहित पाण्डवों को कष्ट देने के लिए उनके पास भेजा। दुर्वासा ऋषि अपने एक हजार शिष्यों को अपने साथ लेकर पाण्डवों की कुटिया में पहुंच गए और युधिष्ठिर से बोले कि हम स्नान करने जा रहे हैं, इतने में आप हम सबके लिए भोजन का प्रबंध कीजिए और स्वयं चले गए।

दुर्वासा ऋषि द्वारा भोजन की व्यवस्था करने की बात सुनकर सब पाण्डव सोच में डूब गए क्योंकि उनके पास अन्न नहीं था। तब देवी द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण किया और वे तुरंत वहां आ गए। वहां उन्होंने पाण्डवों की रसोई में बचे अन्न के एक दाने को खाया और इससे वे स्वयं भी तृप्त हो गए। साथ ही स्नान के लिए दुर्वासा और उनके शिष्यों का भी पेट भर गया और वे वहीं से लौट गए। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने पाण्डवों पर आए इस संकट को दूर कर दिया। फिर पाण्डवों को भगवान शिव की आराधना करने के लिए कहकर वे स्वयं द्वारका चले गए।

एक दिन जटाजूट धारण किए, गले में रुद्राक्ष की माला और भस्म लगाए व्यास जी 'ॐ नमः शिवाय' पंचाक्षरी मंत्र का जाप करते हुए पाण्डवों की कुटिया में पधारे। व्यास मुनि शिवजी के प्रेम में मग्न तेजपुंज से आलोकित थे। उन्हें पधारा हुआ देखकर पाण्डवों ने उन्हें प्रणाम किया और आसन पर बिठाकर उनकी पूजा-अर्चना की। तब महामुनि प्रसन्न होकर बोले—हे पाण्डवो! तुम सत्य के मार्ग पर चलने वाले हो और सदा ही धर्म का पालन करते हो। महाराज धृतराष्ट्र ने तुम्हारे साथ पक्षपात किया और तुम्हारा राज्य दुर्योधन ने छल करके तुमसे छीन लिया। जैसा बीज बोया जाता है, अंकुर भी उसी का निकलता है। अधर्म और असत्य का मार्ग अपनाने वालों का कभी कल्याण नहीं होता। तुम सत्य और धर्म के मार्ग पर चल रहे हो, इसलिए निश्चय ही तुम्हारा कल्याण होगा।

महामुनि व्यास के वचनों को सुनकर युधिष्ठिर बोले—हे नाथ! हमारे कष्टों को दूर करने के लिए कोई मार्ग बताइए। श्रीकृष्ण जी ने हमें कल्याणकारी देवाधिदेव महादेव जी की आराधना करने के लिए कहा था। आप हमें शिवभक्ति का उपदेश दीजिए। युधिष्ठिर के वचन सुनकर महामुनि व्यास बोले—हे पाण्डवो! निश्चय ही श्रीकृष्ण ने सत्य कहा था। भगवान शिव अपने भक्तों के दुखों को दूर करने वाले तथा उनकी रक्षा करने वाले हैं। तत्पश्चात व्यास जी ने उन्हें शिवजी के पूजन का विधान बताया। फिर बोले, तुम सदा ही धर्म के मार्ग पर चलना। इससे तुम्हारे कार्यों की सिद्धि होगी।

यह कहकर महामुनि व्यास वहां से चले गए। तत्पश्चात व्यास जी के दिखाए मार्ग पर

चलते हुए पाण्डव शिवजी की आराधना करने लगे। अर्जुन इंद्रकील नामक पर्वत के पास गंगा नदी के तट पर जाकर भक्तवत्सल, कल्याणकारी भगवान शिव की आराधना करने लगे।

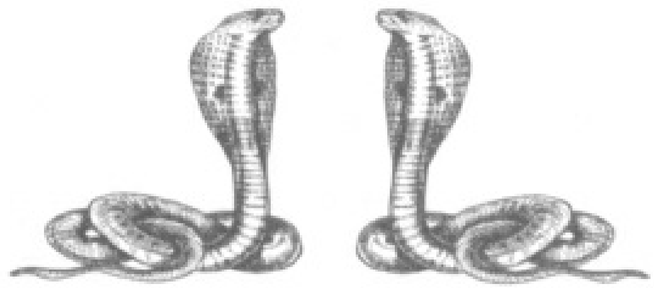

अड़तीसवां अध्याय

अर्जुन द्वारा शिवजी की तपस्या करना

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! अर्जुन भक्ति भावना से गंगाजी के तट पर बैठकर भगवान शिव की आराधना कर रहे थे। शिव मंत्र के जाप से उनका अतुल तेज प्रकाशित हो रहा था। पाण्डवों को अर्जुन का तेज देखकर विजय में कोई संदेह न रहा। जब अर्जुन तपस्या करने के लिए उनसे दूर गए, तब अर्जुन के वियोग से द्रौपदी और अन्य पाण्डव बहुत दुखी थे परंतु उनके मन में अटूट विश्वास था कि शिवजी की भक्ति से उनका निश्चय ही कल्याण होगा।

उनके दुख को जानकर एक बार व्यास जी फिर उन्हें समझाने के लिए उनके पास आए। उन्हें देखकर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और उनका आतिथ्य सत्कार करने लगे। तब महामुनि व्यास ने उन्हें उपदेश दिया और अनेक कथाएं सुनाईं परंतु पाण्डवों का दुख दूर न हुआ। एक दिन युधिष्ठिर ने महामुनि व्यास से प्रश्न किया—हे महाप्रज्ञ! जिस प्रकार के दुख और कष्टों को हम भोग रहे हैं, क्या पहले भी किसी को ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा है?

युधिष्ठिर के इस प्रश्न को सुनकर व्यास मुनि कहने लगे कि पाण्डवो! निश्चय ही तुम्हारे साथ कौरवों ने छल किया है परंतु अनेकों सिद्ध पुरुषों ने इससे भी अधिक दुखों को हंसते-हंसते झेला है। निषध देश के स्वामी नल, सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र, श्रीरामचंद्र जी ने भी इन कष्टों को हंसकर झेला है। यह तो सप्तुरुषों का स्वभाव होता है कि वे विपरीत परिस्थितियों और दुखों से विचलित नहीं होते और सदा सत्य के मार्ग पर ही आगे बढ़ते रहते हैं। मानव को तो दुख झेलने ही पड़ते हैं। बचपन, युवावस्था, वृद्धावस्था सभी में मनुष्य को दुख और कष्ट प्राप्त होता है। इसलिए अपने मन को मत भटकाओ और सत्य के मार्ग का अनुसरण करो क्योंकि शिवजी सत्य से प्रसन्न होते हैं। इसलिए सभी मनुष्यों को सत्य के पथ पर चलना चाहिए।

दूसरी ओर, अर्जुन ने इंद्रकील नामक पर्वत के निकट गंगाजी के तट पर महामुनि व्यास के उपदेश के अनुसार शिवलिंग बनाकर उसकी विधिपूर्वक उपासना आरंभ कर दी। अर्जुन प्रतिदिन स्नान करके भक्तिभावना से इंद्रियों को अपने वश में करके भगवान शिव का ध्यान करते। दिन-ब-दिन उनकी भक्तिभावना और अधिक प्रबल होती जा रही थी। उनकी तपस्या के तेज से जीवों को भय होने लगा था। अर्जुन की तपस्या से दग्ध होकर अनेक देवता देवराज इंद्र के पास गए और उनसे बोले कि देवराज! अर्जुन भगवान शिव की घोर तपस्या कर रहा है और उसके तेज से सभी प्राणी दग्ध हो रहे हैं।

अर्जुन की तपस्या के विषय में सुनकर देवराज इंद्र उनकी परीक्षा लेने के लिए उनके पास गए। इंद्र ने ब्राह्मण का रूप धारण किया और अर्जुन के पास जाकर पूछने लगे कि तुम इतनी छोटी उम्र में तपस्या क्यों कर रहे हो? तुम मुक्ति चाहते हो या विजय के लिए तपस्या कर रहे

हो। परंतु इंद्र तो मोक्ष के स्थान पर सुख प्रदान करते हैं। इंद्रदेव के वचनों को सुनकर अर्जुन को क्रोध आ गया और वे बोले—हे मुनि! आप यहां क्यों पधारे हैं और इस प्रकार के प्रश्नों से मेरी तपस्या में क्यों व्यवधान डाल रहे हैं? मैं शिवजी की आराधना कर रहा हूं। तब इंद्रदेव ने ब्राह्मण वेश त्यागकर अपने वास्तविक रूप के दर्शन अर्जुन को दिए। इंद्रदेव को अपने सामने पाकर अर्जुन को लज्जा का अनुभव हुआ कि मैंने इंद्र से अपशब्द कहे। उन्होंने देवराज इंद्र से क्षमा याचना की। देवराज इंद्र प्रसन्न होकर बोले—अर्जुन! तुम मांगो, क्या मांगना चाहते हो? मैं निश्चय ही तुम्हारा इच्छित वर तुम्हें प्रदान करूंगा।

देवराज इंद्र के वचन सुनकर अर्जुन बोले—हे देवेंद्र! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे शत्रुओं पर विजय का वरदान प्रदान कीजिए। अर्जुन के वर को सुनकर देवेंद्र बोले—अर्जुन! तुम्हारी विजय अवश्य होगी क्योंकि भगवान शिव के भक्तों पर कभी कोई कष्ट नहीं आता। उनको संसार में किसी का भय नहीं होता। इसलिए तुम इसी प्रकार शांत चित्त और भक्ति भाव से त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव महादेव जी की तपस्या करो। उनकी प्रसन्नता से श्रेष्ठ जीवन में और कुछ नहीं है।

यह कहकर देवराज वहां से अंतर्धान हो गए। तब अर्जुन पुनः शिवलिंग को प्रणाम कर उनकी आराधना करने लगे।

उन्तालीसवां अध्याय

शिवजी का किरात अवतार

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! अर्जुन महामुनि व्यास जी द्वारा बताई गई विधि से शिवजी की उपासना कर रहे थे। काफी समय तक तपस्या करने के पश्चात उनके तप का तेज बढ़ना आरंभ हो गया और उनका तप और रौद्र रूप धारण करता जा रहा था। अर्जुन ने एक पैर पर खड़े होकर सूर्य की ओर देखते हुए पंचाक्षर मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया। उनके तप के प्रभाव से सभी प्राणी, जीव-जंतु और देवता दग्ध होने लगे। अर्जुन की इस घोर तपस्या के विषय में दुर्योधन को ज्ञात हुआ। उसने मूक नाम के दैत्य को अर्जुन के पास शूकर का भेष धारण करके भेजा।

वह दुष्ट राक्षस अनेक प्रकार की ध्वनि निकालता और वृक्षों को उखाड़ता हुआ अर्जुन के तप के स्थान के निकट पहुंचने लगा। तब अर्जुन का मन एकाएक व्याकुल हो उठा और उन्होंने पलटकर उस कपटी राक्षस को देखा और मन में विचार किया कि जिसे देखकर मन व्याकुल हो, वह अवश्य ही हमारा शत्रु होता है। यह विचार मन में आते ही अर्जुन को दुर्योधन का छल-कपट याद आ गया। अर्जुन ने वहीं बैठे-बैठे उस पर बाण चला दिया। उसी समय स्वयं भक्तवत्सल भगवान शिव भी अपने भक्त अर्जुन पर आए संकट को देखकर उनकी रक्षा व परीक्षा हेतु तुरंत वहां आ गए और उन्होंने भी उस बहुरूपिए राक्षस पर अपना बाण चला दिया। उस समय देवाधिदेव महादेव जी ने भील का वेश धारण कर रखा था। उनके शरीर में श्वेत धारियां थीं और वह कच्छ बांधे हुए थे। उनके कमर पर तरकश और हाथ में धनुष बाण था और वे भी उसी शूकर का पीछा कर रहे थे।

भीलरूपी भगवान शिव और अर्जुन दोनों के बाणों ने एक साथ उस शूकर को अपना निशाना बनाया। शिवजी का बाण उस विशाल शूकर की पूंछ में और अर्जुन का बाण उसके मुख में लगा। उस भयंकर आघात को वह सह नहीं सका। पल भर में ही भयानक शब्द करता हुआ वह धरती पर गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गए। उस समय सब देवता भगवान शिव की जय-जयकार करने लगे। शूकर रूपी दैत्य के मारे जाने पर दोनों बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन सोचने लगे कि यह भयानक दैत्य अवश्य ही मुझे मारने के लिए आया था परंतु भगवान शिव ने आज मेरी रक्षा की और मुझे बचा लिया। उन्होंने ही मुझे सद्बुद्धि देकर उसे मारने की प्रेरणा मेरे मन में जगाई। ऐसा विचार मन में आते ही अर्जुन ने भगवान शिव के चरणों में प्रणाम किया और पुनः भक्तिभाव से शिव-स्तुति शुरू कर दी।

चालीसवां अध्याय

किरात-अर्जुन विवाद

नंदीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! जब वह भयानक शूकर शिवजी व अर्जुन दोनों के बाणों से मारा गया और पृथ्वी पर बेजान होकर गिर पड़ा, तो भील रूपधारी शिवजी ने अपने एक सेवक को भेजकर मृत शूकर से अपना बाण निकालकर लाने के लिए कहा। उधर अर्जुन भी उस शूकर से अपना बाण लेने के लिए आए। तब अर्जुन और उस शिवगण में बाण को लेकर विवाद शुरू हो गया। वह गण बोला कि ये दोनों बाण मेरे स्वामी के हैं, इसलिए इन्हें मुझे दे दो। परंतु अर्जुन ने बाण देने से मना कर दिया। तब वह बोला कि तुम झूठे तपस्वी हो। यदि तुम सच्चे हो तो इन बाणों को मुझे दिखाओ। मैं अपने बाण की पहचान कर लूंगा क्योंकि उन पर मेरा फल अंकित है।

यह सुनकर अर्जुन उस गण से बोले—तुमसे मैं युद्ध नहीं कर सकता। युद्ध सदैव समान योद्धा से किया जाता है। मेरे बल और पराक्रम को देखना चाहते हो तो जाओ और जाकर अपने स्वामी को भेजो। अर्जुन के वचन सुनकर वह गण किरात रूप धारण किए भगवान शिव के पास गया। अर्जुन ने जो कुछ कहा था, उसने अपने स्वामी को वह सब यथावत बता दिया। सारी बातें सुनकर किरातेश्वर को बहुत प्रसन्नता हुई और वे अपनी सेना को साथ लेकर अर्जुन से युद्ध करने के लिए वहां आ गए। युद्धभूमि में पहुंचकर किरातरूपी भगवान शिव ने अपने दूत को पुनः अर्जुन के पास भेजा।

शिवजी का वह दूत अर्जुन के पास गया और बोला—हे तपस्वी! जरा हमारी विशाल सेना को नजर उठाकर देखो, तुम क्यों एक बाण की खातिर अपने प्राणों की आहुति देना चाहते हो। अच्छा हो कि खुशी से वह बाण हमें दे दो और अपनी रक्षा करो। यह सुनकर अर्जुन को क्रोध आ गया। वे बोले कि तुम जाकर अपने स्वामी से कह दो कि मैं अपने कुल को कलंक नहीं लगा सकता। भले ही मेरे भाई दुखी हों, पर मैं युद्ध से डरकर पीछे नहीं हट सकता। क्या कभी शेर भी गीदड़ से डरा करते हैं। जाकर अपने स्वामी को बता दो कि क्षत्रिय युद्ध से डरते नहीं हैं, बल्कि अपने शत्रुओं को युद्ध में पछाड़कर आगे बढ़ते हैं।

अर्जुन के ऐसे वचन सुनकर वह दूत अपने स्वामी किरातेश्वर भगवान शिव के पास वापस चला गया और उन्हें अर्जुन की कही सारी बातें बता दीं। अपने गण की बातों को सुनकर लीलाधारी शिव मन ही मन अर्जुन की भक्ति, निडरता और अपनी बात की अडिगता देखकर प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपनी सेना सहित आगे बढ़ना शुरू कर दिया।

इकतालीसवां अध्याय

किरातेश्वर महादेव की कथा

नंदीश्वर बोले—हे महामुने! जब किरातेश्वर शिवजी को उनके दूत ने बताया कि अर्जुन किसी भी स्थिति में समर्पण नहीं करना चाहते। और वे आपसे युद्ध करना चाहते हैं, तब शीघ्र ही किरातेश्वर शिव अपनी सेना के साथ युद्ध भूमि में पधारे। अर्जुन ने अपने आराध्य भगवान शिव के चरणों का स्मरण किया और अपना धनुष बाण लेकर उस विशाल सेना से लड़ने लगे। अर्जुन व भील सेना में बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। अर्जुन, जो कि महान धनुर्धारी कहे जाते हैं, ने अपने बाणों से सारी गण सेना को पल भर ही में परेशान कर दिया। फिर क्या था, कुछ ही देर में सभी शिव गण अपने प्राणों की रक्षा हेतु युद्ध भूमि से इधर-उधर हो गए परंतु अर्जुन के बाण न रुके। जब भीलराज किरात की सारी सेना भाग खड़ी हुई तब अर्जुन ने किरात वेशधारी शिवजी से युद्ध करना आरंभ कर दिया।

अर्जुन ने अपने तीव्र बाणों से महादेव जी पर हमला कर दिया परंतु वे भक्तवत्सल शिवजी का कुछ न बिगाड़ सके। उनका एक भी बाण शिवजी तक नहीं पहुंचता था। यह सब देखकर देवाधिदेव भगवान शिव हंस रहे थे। जब अर्जुन ने देखा कि वह किसी भी प्रकार से उस किरात को अपने वश में नहीं कर पा रहे हैं तो उन्होंने भगवान शिव की स्तुति की। इसके प्रभाव से तुरंत ही त्रिलोकीनाथ, भक्तवत्सल, कल्याणकारी शिवजी ने अपने अद्‌भुत स्वरूप के साक्षात दर्शन अर्जुन को कराए।

भगवान शिव का परम मनोहारी सुंदर स्वरूप देखकर अर्जुन धन्य हो गए और प्रसन्न होकर पल भर उन्हें देखते ही रह गए। तब यह जानकर कि वह किरात कोई और नहीं अपितु स्वयं शिवजी ही थे, उन्हें अपने युद्ध करने और उनका अपमान करने के कारण बहुत लज्जा महसूस हुई। वे अपने आराध्य के चरणों में गिर पड़े। शिवजी ने उन्हें उठाया और बोले कि अर्जुन दुखी मत हो। तब अर्जुन हाथ जोड़कर भक्तवत्सल भगवान शिव की स्तुति करने लगे और बोले—हे महादेव जी! आपने इस प्रकार मुझसे रूप बदलकर युद्ध क्यों किया? मैंने आपका भक्त होते हुए भी आपका अपमान किया है। स्वामी! मुझे माफ कर दीजिए और मेरा कल्याण कीजिए।

अर्जुन के वचनों से महेश्वर प्रसन्न हो गए और बोले—अर्जुन! दुखी मत हो। मेरे द्वारा प्रेरित होने पर ही तुमने युद्ध किया था। इसलिए यह तुम्हारा अपराध नहीं धर्म था। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। कहो पुत्र! किस कारण से तुम इतनी घोर तपस्या और साधना कर रहे थे। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने का वचन देता हूं। शिवजी के ऐसे वचन सुनकर अर्जुन ने शिवजी की स्तुति आरंभ कर दी। अर्जुन बोले—हे देवाधिदेव! कैलाशपति! सदाशिव! मैं आपको नमस्कार करता हूं। हाथों में डमरू और त्रिशूल धारण करने वाले, गले में मुण्डमाला, शरीर पर बाघंबर

ओढ़े, गले में सांपों, मस्तक पर चंद्रमा और जटाओं में पतित पावनी श्रीगंगा को धारण करने वाले, कल्याणकारी शिव-शंकर को मैं नमस्कार करता हूं। भगवन् मैं आपका एक छोटा-सा भक्त हूं और आप इस संसार के ईश्वर हैं। भला मैं कैसे आपके गुणों का वर्णन कर सकता हूं। जिस प्रकार बारिश की बूदों और आकाश के तारों को नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार आपके गुणों की गणना कर पाना भी असंभव है। प्रभो! मैं आपका दास हूं। आपकी शरण में आया हूं। मुझ पर अपनी कृपादृष्टि सदा बनाए रखिए। आप तो अंतर्यामी हैं, अपने भक्तों के विषय में सबकुछ जानते हैं। प्रभु! हम पर आए इस घोर संकट को दूर कीजिए।

यह कहकर अर्जुन मस्तक झुकाकर चुपचाप खड़े हो गए। अपने भक्त की स्तुति से हर्षित हो शिवजी बोले—हे अर्जुन! अपनी सारी चिंताएं त्याग दो। तुम्हारे कुल का कल्याण अवश्य होगा। तुम्हें सबकुछ मिल जाएगा, थोड़ा धैर्य रखो। यह कह शिवजी ने अर्जुन को अमोघ पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। फिर अर्जुन को युद्ध में विजय पाने और शत्रुओं का नाश करने का वर प्रदान किया। साथ ही शिवजी ने उनकी सहायता हेतु श्रीकृष्ण जी को भी सहयोग करने के लिए कहा। तत्पश्चात अर्जुन को आशीर्वाद देकर शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए।

शिवजी के जाने के उपरांत अर्जुन भी प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रम को लौट गए और जाकर अपने भाइयों को अपनी तपस्या सिद्धि और वर प्राप्ति के बारे में बताया, जिसे जानकर वे बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन की तपस्या पूर्ण होने के विषय में जानकर श्रीकृष्ण उनसे मिलने आए और बोले कि इसीलिए ही मैंने कहा था कि शिव भक्ति सभी कष्टों को दूर करने वाली है। मुने! इस प्रकार मैंने आपको शिवजी के किरात अवतार का वर्णन सुनाया। यह सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

बयालीसवां अध्याय

द्वादश ज्योतिर्लिंग

नंदीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी! अब मैं आपको सर्वव्यापी भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों रूपी अवतारों के बारे में बताता हूं। सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल में मल्लिकार्जुन, उज्जयनी में महाकालेश्वर, ओंकार में अपरेश्वर, हिमालय पर केदार, डाकिनी में भीमशंकर, काशी में विश्वनाथ, गोमती तट पर अंबकेश्वर, चिता भूमि में वैद्यनाथ, दारुक वन में नागेश, सेतुबंध में रामेश्वर तथा शिवालय में घुश्मेश्वर नामक बारह अवतार हैं। जो मनुष्य शुद्ध हृदय और भक्ति भावना से इन ज्योतिर्लिंगों का पूजन और दर्शन करता है, उसे परम आनंद की प्राप्ति होती है। वह, जो शिवजी के प्रथम ज्योतिर्लिंग सोमनाथ का सच्चे हृदय से पूजन करता है, उसके सभी रोगों जैसे क्षय, कुष्ठ आदि का नाश होता है। उसके सारे पाप धुल जाते हैं और उसे भुक्ति व मुक्ति प्राप्त होती है। श्रीशैल में स्थित दूसरे ज्योतिर्लिंग मल्लिकार्जुन के दर्शनों से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है तथा सब दुखों का नाश होता है एवं सुख मिलता है। पुत्र प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिए इस लिंग की स्तुति की जाती है। उज्जयनी में स्थित तीसरा ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर नाम से जग विख्यात है। अपने एक ब्राह्मण भक्त वेद के आह्वान पर प्रकट होकर शिवजी ने दूषण नामक असुर का वध किया था, तत्पश्चात वहीं स्थित हो गए। इसलिए इस ज्योतिर्लिंग को महाकालेश्वर कहा गया। इसके दर्शनों से मनुष्य की सारी कामनाएं पूरी होती हैं। चौथा ओंकार नामक ज्योतिर्लिंग है। विंध्यगिरि ने भक्तिभाव से विधिपूर्वक पार्थिव लिंग स्थापित किया। विंध्य की भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी उसी लिंग से प्रकट हुए और दो रूपों में विभक्त हो गए। तभी से ओंकारेश्वर नामक लिंग ओंकार और परमेश्वर नामों से प्रसिद्ध हुआ। इसका दर्शन करने से भक्तों की अभिलाषा पूरी होती है।

भगवान शिव के पांचवें अवतार के रूप में केदार स्थित केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग है, वहां श्रीहरि के नर-नारायण अवतार की प्रार्थना पर वे वहां विराजे। उनका यह अवतार समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला है। शिवजी के छठे अवतार का नाम भीमनायक नाम के असुर को मारने के कारण भीमशंकर है। भीम को मारकर शिवजी ने कामरूप देश के राजा सुदक्षिण की रक्षा की थी और उन्हीं की प्रार्थना पर वे डाकिनी में स्थित हो गए। शिवजी का यह अवतार ब्रह्माण्ड को भोग और मोक्ष देने वाला है। शिवजी का सातवां विश्वेश्वर नामक अवतार काशी में हुआ। इस अवतार की आराधना, ब्रह्मा, विष्णु, भैरव सहित सभी देवता करते हैं। इसको पूजने अथवा इसका नाम जपने वाले मनुष्य कर्म बंधन से छूटकर मोक्ष के भागी होते हैं। चंद्रशेखर भगवान शिव का आठवां अवतार त्रयंबक नाम से सुविख्यात है और गोमती नदी के किनारे गौतम ऋषि की प्रार्थना और कामना से हुआ है। इस ज्योतिर्लिंग के दर्शन और स्पर्श से सब कामनाएं पूर्ण होती हैं और मृत्यु पश्चात मुक्ति मिलती है। पवित्र पावनी गंगा गौतम ऋषि के स्नेहवश गौतमी के नाम से प्रवाहित हुई। नवां वैद्यनाथ अवतार

शिवजी ने धारण किया।

अनेक लीलाएं करने वाले त्रिलोकीनाथ भगवान शिव रावण के लिए आविर्भूत हुए और चिता भूमि में ज्योतिर्लिंग रूप में स्थित होकर वैद्यनाथेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके दर्शनों से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। भगवान शिव का दसवां नागेश्वर अवतार अयोध्या में हुआ। इस अवतार में शिवजी ने दारुक नामक असुर को मारकर अपने एक वैश्य भक्त सुप्रिय की रक्षा की थी। शिवजी के इस लिंग का दर्शन और पूजन करने से महापातकों का समूह नष्ट हो जाता है। देवाधिदेव महादेव जी का ग्यारहवां अवतार सेतुबंध में रामेश्वरावतार कहलाता है। सीताजी को वापस लाने के लिए लंका जाते समय समुद्र तट पर श्रीरामचंद्र ने इस लिंग को स्थापित कर भगवान शिव की आराधना-अर्चना की थी। उनकी प्रार्थना पर शिवजी इस ज्योतिर्लिंग में स्थित हुए। रामेश्वर लिंग को गंगाजल से स्नान कराने वाले मनुष्य को जीवन के बंधनों से मुक्ति मिल जाती है। उसे परम दिव्य ज्ञान की प्राप्त होती है। यह ज्योतिर्लिंग भोग तथा मुक्ति प्रदान करने वाला है। इसका पूजन देव दुर्लभ कैवल्य मोक्ष प्रदान करता है। इसी प्रकार, शिवजी का घुश्मेश्वर नामक बारहवां अवतार हुआ जिसमें उन्होंने अपने प्रिय भक्त घुश्मा को आनंद दिया। दक्षिण दिशा में देवलोक के निकट शिवजी सरोवर में प्रकट हुए। घुश्मा ने अपने पुत्र को पुनर्जीवित करने हेतु शिवजी की तपस्या की। तब उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर महादेव जी ने उसके पुत्र को जीवित किया एवं उसकी प्रार्थना पर वहीं ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित होकर घुश्मेश्वर नाम से विख्यात हुए। इस शिवलिंग का भक्तिपूर्वक पूजन करने से मनुष्य इस लोक में सुखों को भोगकर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है।

हे महामुने! इस प्रकार मैंने त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव शिवजी के बारह दिव्य ज्योतिर्लिंगों का वर्णन आपसे किया। शिवजी की यह दिव्य बारह अवतारों वाली ज्योतिर्लिंग कथा को जो मनुष्य शांतचित्त और श्रद्धाभाव से पढ़ता या सुनता है, उसे सब पापों से छूटकर भोग व मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह सौ-अवतारों की शतरुद्र नामक संहिता सब कामनाओं को पूरा करने वाली है। इस कथा को मन लगाकर पढ़ने या सुनने से सभी लालसाएं और कामनाएं पूरी हो जाती हैं और सांसारिक बंधनों से मुक्ति मिल जाती है।

।। श्रीशतरुद्र संहिता संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीकोटिरुद्र संहिता

प्रथम अध्याय

द्वादश ज्योतिर्लिंग एवं उपलिंगों की महिमा

निर्विकार होते हुए भी जो अपनी माया से विराट विश्व का आकार धारण करते हैं, स्वर्ग और मोक्ष जिनकी कृपा से वैभव माने जाते हैं, जिन्हें मुनिजन सदा अपने हृदय में अद्वितीय आत्मज्ञानानंद रूप में देखते हैं, उन दिव्य तेज से संपन्न भगवान शिव शंकर, जिनका आधा शरीर शैलराज पुत्री देवी पार्वती से सुशोभित है। उन्हें सदैव मेरा नमस्कार है।

जिसकी कृपापूर्ण चितवन सुंदर है, जिनका मुख सदैव मंद मुस्कान की छटा से मनोहर है, चंद्रमा की कलाएं जिनके स्वरूप को निर्मल उज्ज्वल करती हैं, जो त्रितापों (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) को शांत करते हैं, जिनका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानंद रूप से प्रकाशित होता है, जो सदा गिरिजानंदिनी पार्वती के साथ विराजते हैं, वे शिव नामक तेज पुंज सबका मंगल करें।

मुनियों ने सूत जी से कहा—हे सूत जी! आपने लोकहित की कामना से भगवान शिव की परम पवित्र अनेक कथाएं सुनाई हैं। शिवजी के माहात्म्य की कथारूपी अमृत का पान करते-करते भला कौन पुरुष तृप्त हो सकता है? मुने! आप इस जगत के मंगल के लिए पृथ्वी के तीर्थ स्थानों में श्रेष्ठ व प्रसिद्ध शिवलिंगों की कथा का वर्णन कीजिए।

मुनियों के प्रश्नों को सुनकर महाज्ञानी सूत जी बोले—हे ऋषियो! आपने संसार के हित की कामना से बड़ा सुंदर प्रश्न किया है। आपकी भगवान शिव में अगाध भक्ति और उनकी कथा में महान रुचि है। आपकी इच्छा के अनुसार मैं आपको शिवजी की उत्तम कथा सुनाता हूं। भगवान शिव के लिंगों की गणना तो असंभव है। उनके असंख्य लिंग पूरे ब्रह्मांड में फैले हुए हैं। अब मैं आपको मुख्य लिंगों की कथा सुनाता हूं।

सौराष्ट्र में सोमनाथ जी, श्री शैल में मल्लिकार्जुन, उज्जैन में महाकालेश्वर, ओंकार जी में परमेश्वर, हिमालय पर्वत पर केदार, डाकिनी देश में भीमशंकर, काशी में विश्वनाथ जी, गोमती नदी के तट पर त्रयंबकेश्वर, सेतुबंध में रामेश्वर एवं शिवालय में घुश्मेश्वर नामक बारह ज्योतिर्लिंग विद्यमान हैं। जो मनुष्य प्रातः उठकर इन बारह ज्योतिर्लिंगों का स्मरण कर पूजन व उपासना करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सभी कामनाएं एवं मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इन ज्योतिर्लिंगों पर चढ़ा हुआ नैवेद्य का प्रसाद ग्रहण करने से मनुष्यों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं तथा समस्त भोगों को भोगकर वह मोक्ष को प्राप्त होता है। निम्न जाति का कोई व्यक्ति यदि किसी लिंग का दर्शन कर ले तो वह उच्च कुल में जन्म लेता है। इन बारह ज्योतिर्लिंगों की महिमा का वर्णन स्वयं ब्रह्माजी, श्रीहरि विष्णु तथा अन्य देवता भी नहीं कर सकते।

धरती और समुद्र के मिलने वाले स्थान पर सोमेश्वर जी का अन्नकेश नामक लिंग है।

मल्लिकार्जुन से प्रकट रुद्रेश्वर नामक उपलिंग जग प्रसिद्ध है और भृगु में स्थित है। नर्मदा नदी के तट पर स्थित महाकाल शिवलिंग का दुग्धेश नामक उपलिंग है, जो सुख देने वाला है। इसी प्रकार ओंकारेश्वर का उपलिंग कर्दमेश्वर नाम से बिंदु सरोवर के तट पर है। केदारेश्वर का उपलिंग भूतेश्वर नाम से यमुना नदी के तट पर है। यह पापों का नाश करता है। भीमेश्वर उपलिंग भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंग का है और सह्य पर्वत पर स्थित है। नागेश्वर का उपलिंग मल्लिका सरस्वती तट पर भूतेश्वर नाम से स्थित है और रामेश्वर में घुश्मेश्वर लिंग के उपलिंग के रूप में व्याघ्रेश्वर लिंग स्थित है।

इस प्रकार मैंने आपको बारह ज्योतिर्लिंगों और उपलिंगों के बारे में बताया। इनके दर्शनों से समस्त मनोरथ सिद्ध होते हैं।

दूसरा अध्याय

पूर्व दिशा स्थित शिवलिंग

सूत जी बोले—हे ऋषियो! पतित पावनी भागीरथी श्री गंगाजी के तट पर मुक्तिदात्री काशी नगरी स्थित है, जिसमें भगवान शिव निवास करते हैं। यहीं पर कृतिका बासेश्वर शिवलिंग स्थित है, जो सब भक्तों की कामनाओं को पूर्ण कर उन्हें मुक्ति प्रदान करता है। यहीं तिल भांडेश्वर, दशाश्वमेध, गंगासागर, संगमेश्वर आदि अनेक शिवलिंग स्थित हैं। कौशिकी नदी के पास भूतेश्वर और नारीश्वर लिंग स्थित हैं। उत्तर प्रदेश में स्थित नाथेश्वर एवं दूतेश्वर नामक लिंग सभी मनोरथों को पूरा करने वाले हैं। ऋषि दधीचि के युद्धस्थल पर शृंगेश्वर, वैद्यनाथ तथा जप्पेश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, रामेश्वर, नागेश, कामेश, वितलेश्वर, व्यासेश्वर, सुकेश, भांडेश्वर, हंकारेश, सुरोचन, भूतेश्वर, संगमेश नामक सभी लिंग सब प्राणियों के पापों का नाश करने वाले हैं। इसी प्रकार तृप्तका नदी के किनारे कुमारेश्वर, सिद्धेश्वर, सैनेश, रामेश्वर, कुंभेश, नंदीश्वर, पुंजेश आदि शिवलिंग स्थित हैं।

दशाश्वमेध नामक तीर्थ, जो प्रयाग में है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देने वाला है और यहां परब्रह्मेश्वर शिवलिंग स्थित है। यह लिंग स्वयं ब्रह्माजी द्वारा स्थापित है। सोमेश्वर, ब्रह्मतेजवर्द्धक, भारद्वाजेश्वर, शूलटंकेश्वर एवं माधवेश्वर लिंग यहीं स्थित हैं। रघूवंशियों की नगरी अयोध्या में नागेश शिवलिंग स्थित है, जो भक्तों को सुख देने वाला तथा अभीष्ट को पूर्ण करने वाला है। इसी नगरी में भुवनेश व लोकेश नामक महाशिवलिंग स्थित हैं। कामेश्वर, शुद्धिकर्ता गणेश, शुक्रेश्वर एवं शुक्रसिद्धि नामक शिवलिंग लोक कल्याण हेतु स्थापित किए गए हैं। सिंधु नदी के किनारे बटेश्वर, कृपालेश एवं वक्रेश आदि लिंग स्थित हैं। धूत पापेश्वर, भीमेश्वर, सूर्येश्वर आदि लिंगों को साक्षात परमेश्वर मानकर आराधना की जाती है। समुद्र के किनारे रामेश्वर, विमलेश्वर, कंटकेश्वर, नागेश्वर व धनुर्केश आदि लिंग महाप्रसिद्ध हैं। चंद्रेश्वर लिंग की कांति चंद्रमा के समान उज्ज्वल है। इसके अतिरिक्त विद्वेश्वर, विश्वेश्वर, कर्दमेश, कीटीश, नागेश्वर, अनंतेश्वर, योगेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, कोटिश्वर, सत्येश्वर, भद्रनामक, चंगीश्वर व संगमेश्वर नामक ये शिवलिंग पूर्व दिशा में स्थित हैं।

तीसरा अध्याय

अनुसूइया एवं अत्रि मुनि का तप

सूत जी बोले—हे ऋषियो! ब्रह्माजी की नगरी में चित्रकूट नामक पर्वत है। वहां ब्रह्माजी द्वारा मत्तगयंद शिवलिंग स्थित है, जो सभी प्रकार की संपत्ति देने वाला है। इसी प्रकार पूरे संसार में अनेक परम पावन शिवलिंग स्थापित हैं, जो मनोरथों को पूर्ण करने वाले तथा भोग-मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। पापों का नाश करने वाली गोदावरी नदी के पश्चिम में पशुपति नामक शिवलिंग स्थित है। वहां से दक्षिण की ओर जगत का हित करने वाला एवं अत्रि ऋषि की पत्नी देवी अनुसूइया को आनंद देने वाला अत्रिश्वर लिंग स्थित है।

सूत जी की वाणी से अत्रिश्वर लिंग व देवी अनुसूइया के बारे में सुनकर ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! इस अत्रिश्वर शिवलिंग की उत्पत्ति कैसे हुई और इससे देवी अनुसूइया का क्या संबंध है? इस विषय में हमें बताइए। तब ऋषियों द्वारा उठाए गए प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—ऋषियो! दक्षिण में चित्रकूट पर्वत के निकट कामद नाम का वन है। ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि अत्रि अपनी पत्नी अनुसूइया के साथ इसी स्थान पर निवास करते थे। एक समय की बात है, उस वन में सौ वर्षों तक वर्षा नहीं हुई, अकाल पड़ गया। मनुष्य पानी और भोजन के लिए तरसने लगे। चारों ओर दुख ही दुख था। लोग अन्न-जल के अभाव में मर रहे थे। यह स्थिति देखकर महर्षि अत्रि व देवी अनुसूइया बहुत व्याकुल हो गए। तब अनुसूइया ने अपने पति से कहा—स्वामी! मैं इन प्राणियों को इस दुख की स्थिति में नहीं देख सकती। कुछ प्रयत्न कीजिए ताकि इनके दुख दूर हो जाएं और प्रसन्नता छा जाए।

अपनी पत्नी देवी अनुसूइया का निवेदन सुनकर महर्षि अत्रि पद्मासन में बैठ गए और भगवान शिव के चरणों का ध्यान करने लगे। इस प्रकार जब वे समाधि में बैठ गए तब उनके सभी शिष्य उनको अकेला छोड़कर वहां से चले गए परंतु देवी अनुसूइया अपने पति की सेवा में लगी रहीं। उन्होंने भगवान शिव की मूर्ति स्थापित की और फिर उसकी विधिपर्वूक पूजा-अर्चना की। इस प्रकार वे भी शिवजी की आराधना में लीन हो गईं। जब देवताओं को इसका ज्ञान हुआ तो वे अत्रि और अनुसूइया के आश्रम में पधारे। उनके साथ गंगा नदी भी थीं। वे देवी अनुसूइया की प्रशंसा करते हुए बोले कि हमने देवी अनुसूइया जैसी भक्ति आज तक नहीं देखी, जो पति धर्म और भक्ति धर्म का एक साथ दृढ़ता से पालन कर रही हैं। निश्चय ही आप दोनों धन्य हैं। यह कहकर अन्य देवता अपने स्थान को चले गए परंतु भगवान शिव व गंगाजी ने वहीं निवास किया। गंगाजी बोलीं कि देवी अनुसूइया का हित किए बिना मैं यहां से कहीं नहीं जाऊंगी।

भगवान शिव अंश रूप में महर्षि अत्रि के आश्रम में रहे और कैलाश पर्वत पर चले गए। महर्षि अपनी तपस्या में पूर्व की भांति लगे रहे। इस प्रकार अकाल पड़ते-पड़ते चौवन वर्ष बीत गए। देवी अनुसूइया भी अपने वचन को निभाती रहीं कि पृथ्वी पर वर्षा से पूर्व मैं अन्न

जल ग्रहण नहीं करूंगी। अनुसूइया श्रद्धाभाव से शिवजी के चरणों में अपना ध्यान लगाती रहीं।

चौथा अध्याय

अत्रिश्वर की महिमा वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! तपस्या करते हुए महर्षि अत्रि को बहुत समय बीत गया था। एक दिन मुनि ने समाधि से जागकर अनुसूइया से कहा—देवी! मुझे बड़ी जोर की प्यास लगी है। आप कहीं से जल लाकर मेरी प्यास शांत करो। अपने पति की आज्ञा का पालन करते हुए अनुसूइया ने हाथ में कमण्डल लिया और पानी लाने के लिए चल दीं। साध्वी अनुसूइया पानी की तलाश में इधर-उधर घूम रही थीं। यह देखकर स्वयं गंगा जी देवी अनुसूइया के सामने आकर बोलीं—देवी! आप इस समय कहां जा रही हैं? तब उनका ऐसा प्रश्न सुनकर देवी अनुसूइया ने गंगा जी से पूछा—भगवती! आप कौन हैं और कहां से आ रही हैं?

अनुसूइया के प्रश्न का उत्तर देते हुए गंगाजी ने कहा—हे देवी! मैं गंगा हूं और आपके पतिव्रत धर्म और शिव पूजन से प्रसन्न होकर यहां आई हूं। मैं आपकी कर्तव्यनिष्ठा से बहुत प्रसन्न हूं। मांगो, क्या मांगना चाहती हो। मैं अवश्य ही तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हें प्रदान करूंगी। गंगाजी के ऐसे वचन सुनकर देवी अनुसूइया ने हाथ जोड़कर विनम्रता से गंगाजी से कहा—हे माता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा कर मेरे इस कमण्डल को जल से भर दें। मेरे पति प्यासे हैं। मैं उनकी प्यास बुझाना चाहती हूं। तब देवी गंगा बोलीं—पति परायणे! आप पृथ्वी में एक गड्ढा खोदिए। मैं यहां विराजमान हो जाऊंगी, तब तुम पानी से कमण्डल भर लेना।

गंगाजी के आदेशानुसार देवी अनुसूइया ने गड्ढा खोद दिया। फिर गंगाजी उस गड्ढे में समा गईं। वह गड्ढा जल से भर गया। यह दृश्य देखकर अनुसूइया बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने अपना कमण्डल जल से भर लिया और बोली—हे भगवती! पतित पावनी गंगे! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके इसी प्रकार इस गड्ढे में निवास कीजिए। जब तक मेरे पति यहां आकर आपके दर्शन न कर लें, आप यहीं पर स्थित रहिए। यह कहकर अनुसूइया जल से भरा कमण्डल लेकर आश्रम में लौट आईं। वहां आकर उन्होंने अपने पति अत्रि को जल पिलाया। उस मधुर शीतल जल को पीकर महर्षि तृप्त हो गए। जब उन्होंने अपने आस-पास देखा तो उन्हें सूखे फल-फूल हीन वृक्ष देखकर ज्ञात हो गया कि अभी तक वर्षा नहीं हुई है। तब उन्होंने आश्चर्यपूर्वक अपनी पत्नी से पूछा—देवी! जब अब तक वर्षा नहीं हुई है तो यह शीतल जल कहां से आया?

अपने पति के वचन सुनकर अनुसूइया ने अपने पति से कहा—हमारी शिव आराधना व आपकी तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं गंगाजी यहां पधारी हैं और हमारे आश्रम की शोभा बढ़ा रही हैं। यह बताकर अनुसूइया अपने पति को साथ लेकर गंगाजी के पास गईं। वहां महर्षि अत्रि ने सपत्नीक श्री गंगाजी की स्तुति करना आरंभ कर दिया। तत्पश्चात गंगा स्नान करके संध्या वंदन किया। तब गंगाजी ने दोनों पति-पत्नी से वहां से जाने की आज्ञा मांगी। तब

महर्षि अत्रि बोले—हे पतित पावनी गंगा! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो कृपा कर सदा के लिए इसी तपोवन में निवास करें। माते! यहां विराजकर हमें कृतार्थ करें।

अनुसूइया और महर्षि अत्रि की प्रार्थना सुनकर श्री गंगाजी ने कहा—अनुसूइये! यदि तुम एक वर्ष तक की शिव-पूजा और पति सेवा का फल मुझे दे दो तो मैं देवताओं और ऋषि-मुनियों के हित के लिए यहां निवास करूंगी। तब जगत के कल्याण के लिए देवी अनुसूइया ने एक वर्ष की तपस्या का पुण्य गंगाजी को अर्पित कर दिया। यह देखकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव तुरंत उस पार्थिवलिंग से प्रकट हो गए। शिवजी के साक्षात दर्शन पाकर पति-पत्नी बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर शिवजी की स्तुति करने लगे। यह देखकर शिवजी बोले—साध्वी अनुसूइये! मैं आपके लोकहित के इस कर्म से बहुत प्रसन्न हूं। मांगो, क्या मांगना चाहती हो। मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छित वस्तु अवश्य प्रदान करूंगा।

तब पति-पत्नी ने भगवान शिव के दर्शन किए एवं उनका विधि-विधान से पूजन किया। भगवान शिव के बार-बार पूछने पर अनुसूइया एवं महर्षि अत्रि बोले—हे कृपानिधान! देवाधिदेव भगवान शिव! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो आप देवी पार्वती सहित यहीं निवास करें ताकि यहां वर्षा हो, अन्न उत्पन्न हो और सभी प्राणियों का कल्याण हो। तब उनकी बात सुनकर भगवान शिव बोले—हे अनुसूइये व मुनि अत्रि! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा। यह कहकर भगवान शिव पार्थिव लिंग में समा गए और अत्रिश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। पतित पावनी श्री गंगाजी भी मंदाकिनी नाम से विख्यात होकर उस कुण्ड में सदा के लिए स्थापित हो गईं। फिर महर्षि अत्रि का वह आश्रम पुनः पहले की भांति हरा-भरा हो गया।

पांचवां अध्याय

नंदकेश की महिमा वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! कालंज्जर नामक पर्वत पर श्री नीलकंठेश्वर शिवलिंग स्थित है। यह भक्तों के लिए कल्याणकारी है। वहीं पर एक सुंदर कुण्ड है। जो मनुष्य उस कुण्ड में स्नान करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मुक्ति मिल जाती है। रेवा नदी के किनारे असंख्य लिंग हैं, जो अमोघ फल देने वाले हैं। इनकी महिमा अनंत है। मैं आपको भगवान शिव के लिंगों की महिमा के बारे में बताता हूं। आर्तेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग पापों का नाश करने वाला है। यहीं पर परमेश्वर व सिद्धेश्वर नामक लिंग भी है। रेवा नदी के किनारे रामेश्वर, कुमारेश्वर, पुण्डरीश्वर, मंडलेश्वर एवं तीक्ष्णेश्वर नामक शिवलिंग हैं। इनके दर्शनों से भक्तों के सभी पापों का नाश हो जाता है। नर्मदा नदी के किनारे स्थित धुंधुरेश्वर, शालेश्वर, कुंभेश्वर, सोमेश्वर, नीलकण्ठेश्वर, मंगलेश्वर व नंदिकेश्वर नामक शिवलिंग सभी कामनाओं को पूरा करने वाले तथा मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! अब आप हम पर कृपा करके हमें नंदकेश्वर लिंग की महिमा के बारे में बताइए। ऋषियों का अनुरोध मानकर सूत जी ने नंदकेश लिंग की महिमा के विषय में बताना शुरू किया। वे बोले—रेवा नदी के किनारे कर्णि नामक नगरी है। उस नगरी में एक ब्राह्मण अपनी पत्नी और दो पुत्रों के साथ रहते थे। जब वे वृद्ध हो गए तब ब्राह्मण अपने परिवार को वहीं छोड़कर स्वयं शिवनगरी काशी चले गए। कुछ समय पश्चात वहां पर उनकी मृत्यु हो गई। जब ब्राह्मणी और उसके पुत्रों को इसकी सूचना मिली तो उन्होंने काशी जाकर ब्राह्मण की अंत्येष्टि एवं अन्य संस्कार किए। तत्पश्चात वे वापस घर लौट गए। कुछ समय बाद ब्राह्मणी का भी अंत समय निकट आ गया। वह बीमार रहने लगी थी। तब उसने अपने पुत्रों को बुलाकर उन्हें अपनी अंतिम इच्छा बताई।

ब्राह्मणी बोली—पुत्रो! मेरी मृत्यु के पश्चात मेरी अस्थियों को गंगाजी में प्रवाहित करना तथा मेरा पिण्डदान एवं श्राद्ध काशी में ही करना। पुत्रों ने उनकी इच्छा पूरी करने का वचन दिया। जैसे ही बड़ा पुत्र सुवाद माता के लिए पानी लेने गया उसने प्राण त्याग दिए। अपनी माता की आखिरी इच्छा पूर्ण करने हेतु सुवाद ने उसकी अस्थियों को काशी ले जाने का निश्चय किया। उसे बीस योजन का मार्ग तय करना था। रास्ते में ही रात घिर गई। तब सुवाद ने एक ब्राह्मण के यहां रात गुजारने का फैसला किया। उस ब्राह्मण के घर रुककर सुवाद भगवान शिव का पूजन करने के पश्चात वहीं पर विश्राम करने लगा। तभी वहां उसे एक अद्‌भुत बात दिखाई दी।

छठवां अध्याय

ब्राह्मणी की सद्‌गति व मुक्ति

सूत जी बोले—हे ऋषियो! जिस ब्राह्मण के घर में सुवाद ठहरा था, वह सुबह शाम दोनों समय अपनी गायों का दूध निकाला करता था। आज भी उसने अपनी स्त्री से कहा कि बरतन दे दो, मैं दूध निकालता हूं। तब उसकी पत्नी ने दूध का पात्र दे दिया और बछड़े को खोलकर गाय के पास भेज दिया। परंतु बछड़े ने जैसे ही थोड़ा-सा दूध पिया उसे तुरंत गाय के पास से हटा दिया गया। मां के पास से हटा देने पर बछड़ा उछलने लगा, जिससे ब्राह्मण के पैर में ठोकर लग गई। क्रोधित होकर ब्राह्मण ने बछड़े को बहुत पीटा और गाय का दूध निकाल लिया। गाय दुखी होकर रोने लगी कि अपने बच्चे को दूध भी नहीं पिला सकती। मैं अपने बच्चे को पिटते हुए देखती रही परंतु उसकी कोई मदद नहीं कर सकी। तब बछड़ा अपनी माता को समझाने लगा कि माता तुम धैर्य रखो। जो जैसा करता है वह उसी का फल भी भोगता है।

अपने बछड़े की ज्ञान भरी बातें सुनकर गाय बोली—मैं जानती हूं कि तुम सही कह रहे हो परंतु अपने पुत्र की दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जाती। मुझे उस ब्राह्मण को दण्ड देना ही होगा क्योंकि यदि मैं कुछ नहीं करूंगी तो यही सब बार-बार होगा। तब बछड़ा अपनी माता से बोला—मां! यदि आप ब्राह्मण को मारोगी तो आपको ब्रह्महत्या का पाप लगेगा।

अपने पुत्र की ऐसी बातें सुनकर गाय ने कहा—पुत्र! तुम ठीक कह रहे हो, परंतु गाय को सताने का दण्ड ब्राह्मण को अवश्य मिलना चाहिए। बाकी रही ब्रह्महत्या, उसके पाप को मिटाने का उपाय मैं जानती हूं। यह कहकर गाय चुप हो गई। गाय और बछड़े की ये बातें सुवाद ने सुन ली थीं। यह सब सुनकर उसने सोचा कि मैं अपनी मां की अस्थियां लेकर काशी जा रहा हूं परंतु मैं यह भी देखना चाहता हूं कि गाय ब्रह्महत्या के पाप से कैसे मुक्त होती है और अपना बदला कैसे लेती है?

प्रातःकाल होने पर सुवाद वहां का दृश्य देखने लगा। उस दिन ब्राह्मण ने अपने पुत्र से दूध निकालने के लिए कहा। उसके पुत्र ने भी गाय के बछड़े को पीटना शुरू कर दिया, जिससे गाय को क्रोध आ गया और उसने अपने सींगों का प्रहार लड़के की बगल में कर दिया। यह देखकर ब्राह्मण-ब्राह्मणी दोनों दौड़ते हुए अपने पुत्र के पास आए परंतु कुछ ही देर में उनके पुत्र के प्राण पखेरू उड़ गए। तब हाहाकार मच गया। सब रोने लगे। ब्राह्मण ने पीट-पीटकर गाय और उसके बछड़े को घर से निकाल दिया। ब्रह्महत्या की दोषी उस गाय का रंग सफेद से काला पड़ गया।

जैसे ही गाय और बछड़ा घर से निकले, वह पथिक सुवाद भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। वह देखना चाहता था कि गाय क्या करती है और कहां जाती है? चलते-चलते वे नर्मदा नदी के किनारे पहुंचे, जहां पर पहले से ही नंदिकेश्वर महादेव विराजमान थे। गाय ने नर्मदा नदी में

तीन गोते लगाए तो उसका काला रंग पुनः सफेद हो गया। यह देखकर सुवाद को बड़ा आश्चर्य हुआ। गाय वहां से निकलकर कहीं अन्यत्र चली गई। तब नर्मदा को प्रणाम कर ब्राह्मणी पुत्र सुवाद ने भी नदी में स्नान किया। फिर नंदिकेश्वर का विधिपूर्वक पूजन करने के पश्चात वह काशी को चल पड़ा।

रास्ते में सुवाद को एक युवती दिखाई दी, जिसने सुंदर वस्त्र एवं अलंकार धारण किए हुए थे। उसने सुवाद से पूछा—ब्राह्मण देवता! आप इस प्रकार प्रसन्न होकर कहां से आ रहे हैं और कहां जा रहे हैं? तब सुवाद ने उस युवती को सारी बातें बता दीं और कहा कि मैं अपनी माता की आज्ञा को पूर्ण करने हेतु उनकी अस्थियां काशी ले जा रहा हूं। तब यह सुनकर वह युवती बोली—ब्राह्मण! तुम बहुत भोले-भाले हो। यह तीर्थ अत्यंत पवित्र है। प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन नर्मदा की पवित्र धारा में स्वयं गंगाजी आती हैं। आज वही शुभ दिन है, इसलिए तुम अपनी माता की अस्थियों को यहीं प्रवाहित कर दो। यह कहकर वह युवती अंतर्धान हो गई। सुवाद पुनः नर्मदा नदी की ओर लौट आया तथा उसकी पवित्र धारा में सुवाद ने अपनी माता की अस्थियां प्रवाहित कर दीं। तभी उसे एक दिव्य दृश्य दिखाई दिया। उसकी माता दिव्य देह धारण किए शिवलोक को जा रही थी और उसे आशीर्वचन देते हुए कह रही थी कि तुम धन्य हो, तुमने अपनी माता को सद्गति प्रदान कर दी है। पुत्र को आशीर्वाद देते हुए वह ब्राह्मणी शिवलोक को चली गई।

सातवां अध्याय

नंदिकेश्वर लिंग की स्थापना

यह कथा सुनकर ऋषियों ने सूत जी से पूछा—हे भगवान सूत जी! वैशाख शुक्ल पक्ष की सप्तमी को गंगाजी नर्मदा नदी में क्यों आती हैं? वहां भगवान शिव का ज्योतिर्लिंग नंदिकेश्वर कैसे स्थापित हुआ? कृपा कर हमारी इस जिज्ञासा को शांत कीजिए।

ऋषियों के प्रश्न को सुनकर सूत जी बोले—एक बार की बात है, नर्मदा नदी के किनारे ऋषिका नाम की एक विधवा ब्राह्मणी रहा करती थी। तरुणावस्था में ही उसका पति पूर्व जन्म के पापों के कारण चल बसा था। तभी से ऋषिका भगवान शिव के चरणों का ध्यान करने लगी तथा उसने अपना सारा जीवन शिवजी के पूजन, ध्यान और व्रत में लगा दिया। उसने एक पार्थिव लिंग स्थापित किया और महादेव जी की कठोर तपस्या करनी आरंभ कर दी।

एक दिन एक बलवान मायावी राक्षस घूमता हुआ उस स्थान पर आ गया और बाल विधवा तपस्विनी को देखकर उस पर मोहित हो गया परंतु वह ब्राह्मणी अपनी आराधना में ही लगी रही। तब वह उसे डरा-धमकाकर पाने की कोशिश करने लगा। तब ऋषिका डरकर शिवजी की मूर्ति से चिपककर रोने लगी और शिवजी से रक्षा करने हेतु प्रार्थना करने लगी। भक्तवत्सल भगवान शिव तुरंत अपने भक्त की रक्षा के लिए उस ज्योतिर्लिंग से प्रकट हुए और उस पापी राक्षस को भस्म कर दिया। फिर उस ब्राह्मणी से बोले—ब्राह्मणी! मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। वर मांगो।

अपने आराध्य त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को इस प्रकार अपने सामने पाकर वह दीन ब्राह्मणी शिवजी की स्तुति करने लगी और बोली—हे जगत का कल्याण करने वाले! भक्तों के दुखों का नाश करने वाले देवाधिदेव भगवान शिव! आपने आज मेरे पतिव्रत धर्म की रक्षा करके मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो मेरी एक अभिलाषा को पूरा कीजिए। आप सदा मेरे द्वारा स्थापित इस पार्थिव मूर्ति में निवास करें।

ऋषिका के वचनों को सुनकर शिवजी प्रसन्नतापूर्वक उस लिंग में समा गए। उस समय आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। सारे देवता शिवजी की प्रशंसा करते हुए वहां आ गए। उसी समय पतित पावनी श्रीगंगाजी भी वहां आईं और उस ब्राह्मणी से बोलीं—कल्याणी! जहां भगवान शिव का निवास होता है, वहां मेरा आगमन अवश्य होता है। इसलिए वैशाख में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को मेरा यहां आगमन होगा।

ऋषियो! उसी दिन से उस पार्थिव लिंग का नाम नंदिकेश्वर हुआ और उसमें भगवान शिव का वास हुआ और गंगाजी भी प्रत्येक वैशाख शुक्ल पक्ष सप्तमी को वहां आने लगीं। यह दिव्य तीर्थ पापों का निवारण करने वाला है। इस पवित्र कुंड में स्नान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य को शिवपद की प्राप्ति होती है।

आठवां अध्याय

महाबली शिव माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ऋषियो! पश्चिम दिशा में कपिला नामक नगरी में कालनेश्वर नामक शिवलिंग है, जिसके दर्शनों से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। पश्चिमी समुद्र पर सिद्धेश्वर शिवलिंग है, जो सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है। इसी स्थान पर बहुत से तीर्थस्थल हैं। समुद्र के किनारे गोकर्ण नामक सरोवर है। इसमें स्नान करने से ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। जो महाबली गोकर्ण सातों रसातल एवं गुफाओं का भ्रमण करते हैं और सदैव शिवजी का पूजन करते हैं वे शिव रूप को प्राप्त होते हैं। इसी गोकर्ण तीर्थ में जाकर सभी नक्षत्र शिव स्वरूप हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, विश्वदेव मरुद्गण, वसु, सूर्य, अश्विनी कुमार चंद्रमा एवं नक्षत्र इसके पूर्व की ओर भ्रमण करते हैं। चित्रगुप्त, अग्नि और पितृ इसके दक्षिण दिशा से दर्शन और भ्रमण करते हैं। वरुणदेव गंगा, सिंधु और नर्मदा आदि नदियों के साथ पश्चिम की ओर इसका दर्शन व भ्रमण करते हैं। चण्डिका, भद्रकाली, भवानी एवं भूत-प्रेत, पिशाच इसका दर्शन उत्तर दिशा की ओर से करते हैं।

सब देवता, पितृ, गंधर्व, चारण, सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष, गुह्य, खग, वैताल, बली, दिती के दैत्य पुत्र, मुनिगण एवं सर्प अपनी इच्छाओं की पूर्ति एवं कामनाओं की सिद्धि के लिए देवाधिदेव महादेव जी के दर्शन करते हैं। यहां स्थापित भगवान सदाशिव की मूर्ति साक्षात मोक्ष प्रदान करने वाली है। माघ माह के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी पर महाबल सदाशिव का पूजन-आराधन किया जाता है। इस परम पवित्र प्रतिमा के पूजन से एक चाण्डालिनी भी अपने पापों से मुक्त हो गई थी और उसे अंत में परम पवित्र शिवलोक की प्राप्ति हुई।

नवां अध्याय

चाण्डालिनी की मुक्ति

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं आपको उस चाण्डालिनी की कथा सुनाता हूं। वह चाण्डालिनी पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण कन्या थी। विवाह योग्य होने पर उसके पिता ने उसका विवाह एक ब्राह्मण युवक से कर दिया। विवाह होने के पश्चात वह भोग-विलास में डूब गई। विलास के कारण उसका पति बीमार होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया परंतु उसकी भोग की लालसा पूर्ववत ही रही। अब तो वह स्वतंत्र थी। अपनी इच्छाओं को पूरा करने हेतु वह वेश्या बन गई। तब उसके परिवार वालों ने उसे घर से निकाल दिया और उसे जंगल में छोड़ आए। वहां जंगल में भटकते हुए एक दिन वह एक शूद्र के घर जा पहुंची। इस प्रकार एक युवती को सामने पाकर वह शूद्र उसे पाने की इच्छा करने लगा। तब वह उसके साथ वहीं रहने लगी। उस शूद्र के साथ रहते हुए उसने मांस-मदिरा तथा अभक्ष्य वस्तुएं खानी शुरू कर दीं।

एक दिन वह शूद्र किसी कार्य से बाहर गया था तब उसे बड़ी जोर से भूख लगी। अपनी भूख शांत करने के लिए उसने अपनी तलवार से आंगन में बंधे बछड़े को काट डाला और उसका मांस खा लिया। इस प्रकार उसने अपने जीवन में सब प्रकार के पाप किए तथा मृत्युकाल आने पर मृत्यु को प्राप्त हुई। यमराज उसे नरक ले गए और वहां उसने नरक की यातनाएं भोगीं।

अगले जन्म में उसका जन्म एक शूद्र चाण्डाल के घर हुआ। वह अंधी जन्मी थी और अपने पूर्व जन्म के पापों के कारण कोढ़ी हो गई थी। उसके आस-पास कोई नहीं फटकता था। एक बार उसने कुछ लोगों को सदाशिव के गुणों का गान करते हुए सुना। वे कह रहे थे कि माघ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को भगवान शिव के दर्शन करने से जन्म-जन्मांतरों के पाप धुल जाते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है। तब कल्याणकारी भगवान शिव के दर्शनों की अभिलाषा मन में लिए वह चाण्डालिनी गोकर्ण क्षेत्र की ओर चल दी। माघ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से एक दिन पूर्व वह चाण्डालिनी गोकर्ण जा पहुंची और भूख-प्यास से व्याकुल होकर भीख मांगने लगी। जब वह एक बनिए के दरवाजे पर भीख मांग रही थी तो बनिए ने उसकी झोली में बैल के गले की मंजरी डाल दी। जब उस भिखारिन ने उसे छूकर देखा तब उस मंजरी को उठाकर फेंक दिया। सौभाग्यवश वह मंजरी शिवलिंग पर जाकर गिरी। उस चाण्डालिनी के सारे पाप उस मंजरी के शिवलिंग पर चढ़ते ही नष्ट हो गए। अगले दिन चतुर्दशी पर उसने कुछ न खाया और इस प्रकार उसका निराहार व्रत हो गया। भूख के मारे पूरी रात जागी, इसलिए जागरण का फल भी उसे मिल गया। भगवान शिव अपने भक्तों पर सदा अपनी कृपादृष्टि रखते हैं। उन्होंने उस गरीब चाण्डालिनी के पापों को नष्ट कर दिया और उसकी इच्छा से उसकी मृत्यु हो गई। उसे शिवलोक ले जाने के लिए विमान आ गया। उस दिव्य विमान से वह सदा के लिए सद्‌गति पाकर शिवलोक को चली गई।

हे ऋषियो! इस प्रकार अज्ञानता या भूलवश किया गया भगवान शिव का दर्शन व पूजन भी भगवान शिव को प्रसन्न करता है और भक्तों को मोक्ष प्रदान करता है।

दसवां अध्याय

लोकहितकारी शिव-माहात्म्य दर्शन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! इक्ष्वाकु वंश में एक बड़ा पुण्यात्मा राजा हुआ, जिसका नाम मित्रसह तथा उसकी पत्नी का नाम दमयंती था। वह अति पतिव्रता व धर्म परायण स्त्री थी। एक दिन राजा शिकार खेलने वन को गए। वहां उन्होंने कुमठ नामक दैत्य को एक महात्मा को परेशान करते देखा। उन महात्मा के कष्टों को दूर करने के लिए उन्होंने उस राक्षस को मार डाला। तत्पश्चात वापस आकर अपना राज-काज देखने लगे। उधर, उस दानव के छोटे भाई कपट ने राजा से बदला लेने के लिए रसोइए का वेश बनाया और राजमहल में नौकरी करने लगा।

एक बार गुरु जयंती के अवसर पर राजा मित्रसह ने अपने गुरु वशिष्ठ को भोजन के लिए आमंत्रित किया। गुरुदेव राजा के घर पधारे। उस कपटी राक्षस ने राजा से बदला लेने के लिए खाने में मांस मिला दिया और वह भोजन वशिष्ठ जी को परोस दिया परंतु गुरु वशिष्ठ ने भोजन करने से पूर्व ही जान लिया कि इस भोजन में मांस है। यह देखकर मुनि को राजा पर क्रोध आ गया और उन्होंने राजा को सदा के लिए राक्षस बन जाने का शाप दे दिया। शाप सुनकर राजा रोने-गिड़गिड़ाने लगा और बोला—मुनिश्रेष्ठ! मुझे क्षमा कर दें। यह अपराध मैंने नहीं किया है। राजा के वचनों को सुनकर वशिष्ठ मुनि सोच में डूब गए। तब उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया कि अपराध रसोइए का है, जो कि वास्तव में एक राक्षस है। तब वे राजा से बोले—राजन! तुम्हारा रसोइया एक कपटी राक्षस है। उसी ने जान-बूझकर भोजन में मांस परोसा है। मैं अपना शाप वापस तो नहीं ले सकता परंतु इसका असर कम कर सकता हूं। तू बारह वर्षों तक राक्षस रहेगा। यह कहकर मुनि वशिष्ठ वहां से चले गए।

उस शाप के कारण राजा राक्षस बन गया और वनों में भटकने लगा। वह जीवों को मारकर खाता था। एक दिन वह भूखा भटक रहा था। तभी उसने एक आश्रम में किशोर अवस्था के एक युवक को मुनि रूप में तपस्या करते देखा और उसे खाने के लिए दौड़ा। मुनि की पत्नी ने देख लिया कि वह राक्षस उसके पति को खाना चाहता है। उस ऋषि पत्नी ने राक्षस से प्रार्थना की कि मेरे पति को छोड़ दे, परंतु उसने मुनि को अपना आहार बना ही लिया। मुनि पत्नी शोक में डूब गई और उस राक्षस को शाप देते हुए बोली—अरे दुष्ट राक्षस! तूने मेरे पति को मार डाला। मैं तुझे शाप देती हूं कि जब तू किसी स्त्री पर मोहित होकर उसके साथ विहार करेगा, उसी समय तेरी मृत्यु हो जाएगी। इस प्रकार राक्षस को शाप देकर वह सती हो गई।

बारह वर्ष बीत जाने पर राजा को अपना शरीर वापस मिल गया। उसने जाकर अपनी रानी को शाप के बारे में बताया। यह जानकर रानी राजा को अपने पास नहीं आने देती थी परंतु उन दोनों की संतान न होने के कारण दोनों बहुत दुखी थे। एक दिन दुखी राजा वन में

चला गया परंतु ब्रह्महत्या के पाप ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। तब राजा व्याकुल होकर गौतम ऋषि की शरण में चला गया। राजा ने उन्हें सारा वृत्तांत सुना दिया। तब गौतम ऋषि बोले— हे राजन! पश्चिम दिशा में जाओ, वहां गोकर्ण नामक तीर्थ है, जहां महाबल नामक ज्योतिर्लिंग है। उस कुण्ड में स्नान करके देवाधिदेव महादेव जी का पूजन-अर्चन करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिए तुम वहां जाकर शिवजी की आराधना करो तभी तुम्हें ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिलेगी।

गौतम ऋषि के वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और उनसे आज्ञा लेकर गोकर्ण तीर्थ को चला गया। वहां उसने कुंड में स्नान करके भगवान शिव का पूजन और आराधना आरंभ कर दी, जिसके फलस्वरूप राजा को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिल गई।

ग्यारहवां अध्याय

पशुपतिनाथ शिवलिंग माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ऋषियो! देवाधिदेव कल्याणकारी भगवान शिव का गोकर्ण नामक एक और तीर्थ है, जो कि उत्तर दिशा में स्थित है। यह महान ज्योतिर्लिंग संपूर्ण पापों का नाश करने वाला है। यह गोकर्ण क्षेत्र महा पवित्र है। इसी के पास एक सुंदर रमणीय महावन भी स्थित है। उसी महावन में चंद्रमौलि भगवान शिव वैद्यनाथ के रूप में स्थापित हैं, जो कि संसार के समस्त चराचर जीवों को सुख देने वाले, उनका कल्याण करने वाले तथा उनकी कामनाओं को पूरा करने वाले हैं। उनकी महिमा अद्भुत और अद्वितीय है। यहीं पर मिश्रर्षि नामक एक सुंदर मनोरम तीर्थ स्थल है। इसी स्थान पर महर्षि दधीचि द्वारा स्थापित दधीचेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग है। इस पवित्र स्थान पर आने वाले श्रद्धालु जब तीर्थ में स्नान करने के पश्चात भगवान शिव का विधि-विधान से पूजन करते हैं तो उनकी सभी कामनाओं को कल्याणकारी भक्तवत्सल शिव अवश्य पूरा करते हैं। तीर्थ में स्नान करने के पश्चात शिवजी के ज्योतिर्लिंग का दर्शन करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं तथा सभी तरह के भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार नैमिष नामक परम पावन तीर्थ है। यहीं पर ऋषियों द्वारा स्थापित ऋषिश्वर ज्योतिर्लिंग स्थित है। इस पवित्र लिंग का श्रद्धापूर्वक दर्शन करने से भक्तों के सभी दुखों और क्लेशों का नाश हो जाता है। अंत समय आने पर वे सभी सुखों को भोगकर स्वर्ग को जाते हैं। हरण नामक क्षेत्र में 'अद्यापह' नामक शिवलिंग है। इसके दर्शनों से करोड़ों हत्याओं के पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। देव प्रयाग में 'ललितेश्वर' नामक ज्योतिर्लिंग स्थित है, जो कि अपने भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है। नेपाल में 'पशुपति' नामक ज्योतिर्लिंग स्थित है, जो कि अभीष्ट फल देने वाला है। इसके पास ही 'मुक्तिनाथ' नामक शिवलिंग स्थित है। यह मुक्तिनाथ शिवलिंग भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। इस प्रकार भगवान शिव के उत्तम ज्योतिर्लिंग पृथ्वी पर सभी जगह स्थित हैं और अपने भक्तों की रक्षा एवं कल्याण करते हैं।

बारहवां अध्याय

लिंगरूप का कारण

ऋषिगण सूत जी से पूछने लगे—हे सूत जी! आपने हम पर कृपा करके हमें त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव के दिव्य ज्योतिर्लिंग के संबंध में बताया। अब हमें जगत्माता शिवप्रिया देवी पार्वती जी को वाणरूप कहे जाने का कारण भी सविस्तार बताइए।

ऋषियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! प्राचीन काल से ही दारुक नामक एक वन है। वहीं पर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का शिवालय स्थित है। भगवान शिव के भक्त ऋषि-मुनि प्रतिदिन सुबह, दोपहर, शाम वहां आकर अपने आराध्य महादेव जी का पूजन, स्तोत्रपाठ एवं प्रार्थना करते हैं। एक दिन ऋषिगण दारुक वन में समिधा लेने के लिए गए थे तब भगवान शिव ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। वे विकराल रूप धारण किए, नग्न अवस्था में वहां आ पहुंचे, जहां ऋषि पत्नियां थीं। उसी समय ऋषिगण भी लौट आए। जब उन्होंने विकराल रूप धारण किए शिवजी को वहां देखा तो क्रोधित होकर बोले—तू कौन है? जो यहां हमारी स्त्रियों के सामने इस प्रकार नग्न रूप में उनका आचरण दूषित कर रहा है? यह तुमने अनुचित कार्य किया है। इसलिए तुम्हें इसकी सजा अवश्य मिलेगी। तुम्हारा लिंग पृथ्वी पर गिर पड़ेगा।

ऋषियों के कथनानुसार शिवजी का लिंग जैसे ही पृथ्वी पर गिरा चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो गई, जिससे सभी जीव-जंतु पीड़ित होने लगे। यह देखकर ऋषिगण घबरा गए। वे ब्रह्माजी के पास गए और उन्हें सारी बातें बताईं। ब्रह्माजी ने दिव्य दृष्टि से सबकुछ जान लिया। तब वे बोले—हे ऋषियो! तुमने अपने घर अतिथि के रूप में पधारे भगवान शिव का अपमान किया है और उनके प्रति बुरे वचन कहे हैं, इसलिए जब तक यह शिवलिंग एक स्थान पर स्थिर नहीं होगा, इस प्रकार का उपद्रव होता रहेगा। इस संसार का हित करने के लिए आप जगदंबा पार्वती की आराधना करें। वे योनि रूप धारण करें तथा शिवजी प्रसन्न होकर वहीं स्थिर हो जाएं। शास्त्रों के अनुसार अष्टदल की रचना करने के पश्चात उस पर घट स्थापना करो। फिर उसमें दूर्वा तथा पानी भरो। तत्पश्चात शतरुद्र मंत्रों का पाठ करते हुए उस घट के जल से भगवान शिव के लिंग को स्नान कराओ। फिर देवी पार्वती को बाणरूप में स्थापित करके उसी पर सदाशिव के ज्योतिर्लिंग की स्थापना करो। शिवलिंग की स्थापना करने के पश्चात धूप, दीप, चंदन, पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजन करो। फिर शिवलिंग को श्रद्धाभाव से प्रणाम कर उनके स्तोत्र का पाठ और स्तुति करो।

ब्रह्माजी के वचन सुनकर ऋषिगणों को सही मार्ग मिल गया। उन्होंने ब्रह्माजी से आज्ञा ली और पुनः अपने स्थान पर वापस आकर बताई गई विधि से देवी पार्वती और भगवान शिव की आराधना की। पूजन से प्रसन्न होकर देवी पार्वती जी योनिरूप में स्थित हुईं। तब ऋषियों ने वहां ज्योतिर्लिंग स्थापित किया। ज्योतिर्लिंग की स्थापना से सारे संसार में शांति हो गई।

यह ज्योतिर्लिंग संसार में ‘हाटकेश्वर’ नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस ज्योतिर्लिंग की आराधना से लोक व परलोक में सभी सुखों की प्राप्ति होती है।

तेहरवां अध्याय

बटुकनाथ की उत्पत्ति

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! आपने हम पर कृपा करके हमें अनेकों ज्योतिर्लिंगों के विषय में बताया है। अब हमें 'अंधकेश्वर' नामक ज्योतिर्लिंग के माहात्म्य के बारे में बताइए। यह सुनकर सूत जी बोले—हे ऋषियो! पूर्वकाल में अंधक नाम का एक महाबली वीर और पराक्रमी राक्षस था। उसने अपने बल से पूरे विश्व पर अपना अधिकार किया हुआ था और वह देवताओं सहित सभी जीवों को दुखी करता रहता था। तब सब देवता उस दैत्य से पीड़ित होकर भगवान शिव की शरण में गए। उन्हें प्रणाम करके देवताओं ने उन्हें अपना दुख कह सुनाया। अपने भक्तों के दुख को जानकर शिवजी ने उन्हें सहायता करने का वचन दिया और अंधक के निवास पर चलने के लिए कहा।

सब देवताओं के साथ भक्त वत्सल शिव अंधक के निवास पर गए। वहां अंधक और भगवान शिव के बीच महायुद्ध हुआ। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने अपने त्रिशूल से ज्यों ही अंधक को मारा वह छटपटाते हुए बोला—हे देवाधिदेव! कृपानिधान! मैंने सुना है कि मरते समय शिवजी के दर्शन करने से शिवपद की प्राप्ति होती है। मैंने अंतिम समय में आपके दर्शन कर लिए हैं। अंधक के ऐसे वचन सुनकर शिवजी प्रसन्न होकर बोले—हे दानवेंद्र! तुम्हारी बातों से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। मांगो, क्या वर मांगना चाहते हो।

शिवजी के ऐसे वचन सुनकर अंधक बोला—भगवन्! मुझे अपनी अविचल भक्ति प्रदान करें और यहीं पर स्थित होकर जगत का कल्याण करें। तब अंधक की बात मानते हुए शिवजी ज्योतिर्लिंग रूप में वहां स्थित हो गए। इस प्रकार सविधि पूजन करने वालों की सभी मनोकामनाएं पूरी होती हैं। यह ज्योतिर्लिंग अंधकेश्वर नाम से जगप्रसिद्ध है।

अंधकेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग की उत्तम कथा सुनकर ऋषिगण बोले—हें सूत जी! अब आप हमें बटुकनाथ की उत्पत्ति के बारे में बताइए। तब सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! प्राचीन काल में दधीचि नामक एक धर्मात्मा, शिवभक्त हुए हैं जो संपूर्ण वेदों के ज्ञाता थे। उनका सुदर्शन नाम का पुत्र था। वह भी अपने पिता के समान सर्वगुण संपन्न था। उसकी पत्नी दुकूला नीच कुल की थी। उसकी भक्ति में कोई रुचि नहीं थी। उसके चार पुत्र हुए। एक दिन दधीचि मुनि को किसी कार्य से कहीं जाना पड़ा। तब वह अपने पुत्र को शिव पूजन करने की आज्ञा देकर चले गए।

सुदर्शन विधि-विधान से भगवान शिव की आराधना और पूजन करने लगा। शिवरात्रि का दिन आ गया। सुदर्शन ने व्रत किया और सविधि पूजन भी किया। किसी कार्यवश उसे अपने घर जाना पड़ा। वहां उसकी पत्नी ने उसे कामवश कर लिया। तब सुदर्शन बिना शरीर शुद्धि किए शिवजी के मंदिर में पहुंचकर शिवजी का पूजन करने लगा। इससे भगवान शिव अप्रसन्न हो गए और उन्होंने सुदर्शन को जड़बुद्धि होने का शाप दे दिया। जब मुनि दधीचि

वापस लौटे तो उन्हें सारी बातें पता चलीं। उन्हें यह जानकर बड़ा दुख हुआ कि उनके पुत्र ने सारे कुल को कलंकित कर दिया है। वे शुद्ध हृदय से जगदंबा पार्वती जी की आराधना करने लगे। उन्होंने विधि-विधान से पूजन कर जगदंबा को प्रसन्न कर लिया।

देवी पार्वती ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए। तब दधीचि मुनि ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और अपने पुत्र सुदर्शन को उनके चरणों में डालकर बोले—हे मातेश्वरी! मेरे पुत्र को दीक्षा देकर इसका कल्याण करो। इसकी बुद्धि को सही कर दो। इसे भगवान शिव के क्रोध से बचाकर उनका अनन्य भक्त बना दो। तब पार्वती जी ने सुदर्शन को जनेऊ पहनाकर उसे गायत्री मंत्र की दीक्षा दी। फिर देवी अंतर्धान हो गईं। सुदर्शन ने षोडशोपचार से शिवजी का पूजन किया जिससे वे प्रसन्न हो गए और उन्होंने उसके सभी अपराधों को क्षमा कर दिया।

शिवजी ने उन्हें साक्षात दर्शन दिए और सुदर्शन व उसके पुत्रों का बटुक रूप में अभिषेक किया। आपका यह रूप सारे संसार में पूजनीय होगा, यह कहकर शिवजी अंतर्धान हो गए। उसी दिन से सुदर्शन बटुक नाम से संसार में विख्यात हुए और शुभ-अशुभ सभी कार्यों में उनकी पूजा करने का विधान है।

चौदहवां अध्याय

सोमनाथेश्वर की उत्पत्ति

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं आपको सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग की महिमा के बारे में बताता हूं। प्रजापति दक्ष ने अपनी अश्वनी रोहिणी नामक सत्ताईस पुत्रियों का विवाह चंद्रमा से कर दिया। जिन्हें पाकर चंद्रमा की शोभा बढ़ गई। अपनी सभी पत्नियों में चंद्रमा रोहिणी से अधिक प्रेम करते थे। इसलिए अन्य सभी दुखी रहती थीं। एक दिन उन्होंने अपने पिता को इस विषय में बताया। तब प्रजापति दक्ष चंद्रमा को समझाने लगे। दक्ष बोले—हे जामाता! मैंने अपनी सत्ताईस कन्याओं का विवाह तुमसे किया है परंतु आप उनसे असमानता का व्यवहार क्यों करते हैं। एक पत्नी से प्रेम और अन्यों से प्रेम न करना, सही नहीं है। इसलिए आपको सभी पत्नियों को समान रूप से प्यार करना चाहिए। ऐसा समझाकर दक्ष अपने घर लौट गए परंतु चंद्रदेव ने उनकी बातों को सरलता से लिया और उनके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तब एक दिन दक्ष पुत्रियों ने पुनः अपने पिता से चंद्रमा के व्यवहार के बारे में बात की। यह जानकर प्रजापति दक्ष को क्रोध आ गया और उन्होंने चंद्रमा को क्षीण व मलिन होने का शाप दे दिया। उनके शाप के फलीभूत होने से चंद्रमा की कांति क्षीण हो गई और वह मलिन हो गया।

चंद्रमा की ऐसी स्थिति देखकर देवराज इंद्र व अन्य सभी देवता मिलकर ब्रह्माजी के पास गए और उन्हें जाकर सब बातें बताईं तथा चंद्रमा का उद्धार करने के लिए कहा। तब ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! यह चंद्रमा बड़ा ही दुष्ट प्रवृत्ति का है। पूर्व में भी यह देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को ले भागा था। अब यह दक्ष पुत्रियों के साथ असमानता का व्यवहार कर सभी को दुखी कर रहा है परंतु फिर भी तुम्हारी प्रार्थना पर मैं एक उपाय बताता हूं। यदि चंद्रमा प्रभास नामक पवित्र तीर्थ में जाकर भगवान शिव की आराधना करके महामृत्युंजय मंत्र का जाप कर उन्हें प्रसन्न करे, तभी उसके दुखों का निवारण हो सकता है। ब्रह्माजी को प्रणाम करके सब देवता इंद्र सहित चंद्रमा के पास आए और उन्हें सारी बातें बताईं। तब उन्हें लेकर वे प्रभास क्षेत्र पहुंचे। वहां जाकर चंद्रमा ने विधि-विधान से त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का पूजन किया और आसन पर बैठकर महामृत्युंजय मंत्र का जाप करने लगे। इस प्रकार वे दृढ़तापूर्वक मंत्र का जाप करते रहे। दस करोड़ जाप पूरे होते ही भगवान शिव प्रसन्न होकर चंद्रमा के सम्मुख प्रकट हो गए। उन्होंने चंद्रमा से मनोवांछित वस्तु मांगने के लिए कहा। चंद्रमा ने हाथ जोड़कर आराध्य शिवजी को प्रणाम किया और बोले—हे भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा कर मेरे क्षय रोग को दूर कर दीजिए।

तब भगवान शिव बोले—हे चंद्रमा! मैं प्रजापति दक्ष के शाप को समाप्त नहीं कर सकता, पर उसका प्रभाव कम कर सकता हूं। माह के कृष्ण पक्ष में पंद्रह दिनों में तुम्हारी कलाएं क्षीण होंगी तथा शुक्ल पक्ष के पंद्रह दिनों में ये कलाएं बढ़ेंगी। चंद्रमा ने शिवजी से प्रार्थना

करते हुए निवेदन किया कि आप देवी पार्वती सहित यहीं पर निवास करें। तब उनकी प्रार्थना को स्वीकारते हुए चंद्रमा के नाम से ही शिवजी सोमेश्वर कहलाए व संसार में सोमनाथ नाम से विख्यात हुए। वहीं पर चंद्र कुण्ड नाम से एक कुण्ड देवताओं ने बनाया। इस कुण्ड में ब्रह्माजी व शिवजी का निवास माना जाता है। इस कुण्ड में स्नान करने से सभी पाप छूट जाते हैं। छः मास तक इस पवित्र कुण्ड के जल में स्नान करने से असाध्य रोगों से भी मुक्ति मिल जाती है तथा मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।

भगवान शिव के आशीर्वाद से चंद्रमा नीरोग हो गए और पहले की भांति अपना कार्य करने लगे। इस प्रकार मैंने सोमनाथ की उत्पत्ति के बारे में तथा 'सोमेश्वर' ज्योतिर्लिंग के बारे में बताया। इस कथा को सुनने, पढ़ने अथवा दूसरों को सुनाने से अभीष्ट फल की प्राप्त होती है और पाप से मुक्ति मिल जाती है।

पंद्रहवां अध्याय

मल्लिकार्जुन की उत्पत्ति

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! अब मैं आपको मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंग की उत्पत्ति के बारे में बताता हूं। एक बार की बात है कि शिव-पार्वती ने अपने दोनों पुत्रों को पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए कहा। जब कुमार कार्तिकेय पृथ्वी की परिक्रमा करके वापस आ रहे थे तभी रास्ते में नारद जी ने उन्हें बहका दिया और कहा कि तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे साथ पक्षपात किया है। तुम्हें परिक्रमा के लिए भेजकर पीछे से तुम्हारे छोटे भाई गणेश का विवाह कर दिया। यह सुनकर कार्तिकेय को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कैलाश पर्वत पर जाकर अपने माता-पिता से इस पक्षपात के बारे में कहा और रुष्ट होकर कार्तिकेय क्रौंच पर्वत पर चले गए।

इस प्रकार अपने पुत्र के चले जाने पर भगवान शिव-पार्वती बहुत दुखी हुए और अपने पुत्र से मिलने के लिए क्रौंच पर्वत पर पहुंचे। जब कुमार को ज्ञात हुआ कि उनके माता-पिता आ रहे हैं तो क्रोधवश कार्तिकेय वहां से अन्यत्र चले गए। जब देवाधिदेव महादेवजी अपनी प्राणवल्लभा देवी पार्वती के साथ वहां पधारे तो कार्तिकेय को न देखकर बहुत दुखी हुए। तब वे दोनों ज्योतिर्मय रूप धारण करके क्रौंच पर्वत पर सदा के लिए प्रतिष्ठित हो गए। उसी दिन से वह पवित्र लिंग मल्लिकार्जुन नाम से जगप्रसद्धि हुआ। मल्लिका देवी पार्वती का नाम है तथा अर्जुन शब्द शिव का समानार्थी है। उसी दिन से मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग में शिव-पार्वती का निवास माना जाता है।

पुत्र के स्नेह के कारण शिव-पार्वती हर पर्व पर कार्तिकेय को देखने वहां जाते हैं। हर अमावस्या को भगवान शिव व पूर्णमासी पर देवी पार्वती अपने प्रिय पुत्र कार्तिकेय के लिए मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग में पदार्पण करते हैं।

मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है और अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मैंने आपसे मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग के आविर्भाव की कथा सुनाई, जो सभी प्रकार के सुखों को देने वाली है।

सोलहंवा अध्याय

महाकालेश्वर का आविर्भाव

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं आपको महाकालेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग के आविर्भाव के संबंध में बताता हूं। अवंतिकापुरी में एक ब्राह्मण रहते थे। वे भगवान शिव के परम भक्त थे। वे प्रतिदिन विधि-विधान से शिवजी के पार्थिव लिंग का पूजन किया करते थे। देवाधिदेव भगवान शिव के आशीर्वाद से उन्हें धन-धान्य की कोई कमी नहीं थी। वे प्रतिदिन अग्निहोम करते और सदा ज्ञान की खोज में लगे रहते थे। इस प्रकार सभी प्रकार के सुखों को भोगकर अंत में उन्हें शिवलोक की प्राप्ति हुई। उन ब्राह्मण देवता के देवप्रिय, मेधाप्रिय, सुकृत एवं धर्मबाहु नाम के चार पुत्र थे। ये चारों भी अपने पिता के समान ही सद्‌गुणी थे। उनके कारण अवंतिका नगरी ब्रह्मतेज से परिपूर्ण थी। वहीं पास ही में रत्नमाला नामक एक पर्वत था। उसी पर्वत पर दूषण नामक एक राक्षस रहता था। उसने घोर तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया था। ब्रह्माजी से इच्छित वर पाकर वह दुष्ट धर्म का शत्रु बन गया था। वह धर्म का नाश कर देना चाहता था। अपने अथाह बल और पराक्रम से उसने सभी देवताओं, मनुष्यों और तीनों लोकों के जीवों को अपने अधीन कर लिया था। वह ब्राह्मणों एवं सदाचारियों पर आक्रमण करके उन्हें अनेक प्रकार से दण्डित करता था।

एक दिन दूषण नामक वह दैत्य अपनी सेना को साथ लेकर अवंतिकापुरी पहुंच गया। वहां उसने अपने दैत्य सैनिकों को आज्ञा दी कि जो भी ब्राह्मण मेरी आज्ञा को न माने उसे दण्ड दो। आज्ञा पाकर वे दैत्य नगरी में उपद्रव करने लगे। सारी जनता हाहाकार करने लगी। वे लोग उन ब्राह्मण कुमारों के पास आए और उन्हें सारी बातें बताईं। वे ब्राह्मण कहने लगे कि इस जगत का कल्याण करने वाले और अपने भक्तों की सदा रक्षा करने वाले भगवान शिव हैं, इसलिए हमें उन्हें ही प्रसन्न करना चाहिए। यह कहकर वे चारों ब्राह्मण पुत्र अन्य ब्राह्मणों के साथ मिलकर अपने आराध्य भगवान शिव का पूजन करने लगे।

उसी समय चारों महादैत्य वहां पहुंच गए और उन ब्राह्मणों को शिवजी की आराधना में देखकर अत्यंत क्रोधित होकर बोले—मार डालो इन सबको। परंतु जैसे ही वे दैत्य ब्राह्मणों को पीड़ित करने के लिए आगे बढ़े उसी समय भगवान शिव पार्थिव लिंग में से प्रकट हो गए। उन्होंने पल भर में ही सब दैत्यों को मार डाला और दूषण नामक महादैत्य को भी मौत के घाट उतार दिया। शिवजी को साक्षात सामने पाकर वे सभी ब्राह्मण भगवान शिव की स्तुति करने लगे। आकाश से देवता पुष्प वर्षा करने लगे। भगवान शिव ने प्रसन्नतापूर्वक उन ब्राह्मण कुमारों को वरदान मांगने के लिए कहा।

अपने आराध्य भगवान शिव के वचन सुनकर ब्राह्मण बोले—हे देवाधिदेव! कल्याणकारी! भगवन्! यदि आप हमारी आराधना से प्रसन्न हैं तो हम पर कृपा कर हमें अपने श्रीचरणों में स्थान दें ताकि हम जीवन-मरण के बंधन से छूट जाएं और आपके दर्शनों की हमारी

अभिलाषा पूरी होती रहे। तब अपने भक्तों की इच्छा को पूरा करते हुए सदाशिव उसी स्थान पर ज्योतिर्मय रूप में शिवलिंग में स्थित हो गए और वह लिंग ‘महाकालेश्वर’ नाम से जगप्रसिद्ध हुआ। इसकी उपासना करने से सभी मनोरथ पूरे हो जाते हैं।

सत्रहवां अध्याय

महाकाल माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो! अब मैं आपको महाकालेश्वर की उत्पत्ति की कथा सुनाता हूं। उज्जैन नगरी में राजा चंद्रसेन का राज्य था। भगवान शिव के मुख्य सेवक मणिभद्र के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता थी। मणिभद्र ने राजा चंद्रसेन को कौस्तुभ मणि भेंट की। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक मणि को अपने गले में धारण कर लिया। वह कौस्तुभ मणि सूर्य के समान चमकती थी। जिसे देखकर अन्य राजा चंद्रसेन से ईर्ष्या रखने लगे। सब राजाओं ने मिलकर चंद्रसेन पर आक्रमण कर दिया। जब राजा चंद्रसेन चारों ओर से अन्य राजाओं की चतुरंगिणी सेना से घिर गया तब वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग की शरण में गया और भक्ति भावना से देवाधिदेव महादेव जी का पूजन करने लगा।

राजा चंद्रसेन भगवान शिव के पूजन में मगन था। उसी समय एक विधवा गोपी अपने छोटे से बालक को गोद में लिए वहां आई। वह बालक राजा को शिव पूजन करते हुए देखता रहा। जब गोपी वापस घर आ गई तब वह बालक मन में शिव-पूजन का निश्चय करके कहीं से एक पत्थर ढूंढ़ लाया और उसे स्थापित करके धूप, दीप, गंध, पुष्प, नैवेद्य से उसी प्रकार पूजने लगा जिस प्रकार उसने राजा को करते देखा था। उसकी माता ने उसे भोजन करने के लिए बुलाया परंतु वह तो अपनी आराधना में लगा था। जब बार-बार बुलाने पर भी बालक नहीं आया तब उसकी माता को क्रोध आ गया और वह वहां से बालक को खींचकर ले गई और डांटने-फटकारने लगी। उसने शिवलिंग रूप में स्थापित उस पत्थर को उठाकर फेंक दिया।

यह देखकर बालक बहुत दुखी हुआ और शिवजी का नाम लेते हुए मूर्च्छित हो गया। बालक की ऐसी हालत देखकर माता रोने लगी और रोते-रोते वह भी बेहोश हो गई। कुछ समय बीतने पर बालक को जब होश आया तो उसने स्वयं को भगवान शिव के सुंदर मंदिर में, जहां रत्नमय ज्योतिर्लिंग स्थित था, पाया। यह देखकर वह बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। भगवान शिव को धन्यवाद करके उनका नाम जपता हुआ वह बालक अपने घर की ओर चल पड़ा। घर पहुंचकर उसने देखा कि उसके घर के स्थान पर एक सुंदर महल खड़ा था। अंदर उसकी मां सुंदर वस्त्र आभूषण पहने रत्नजड़ित पलंग पर सोई थी। उसने अपनी माता को जगाया। सबकुछ जानकर वह अत्यंत प्रसन्न हो गई।

दूसरी ओर, जब राजा चंद्रसेन का पूजन समाप्त हुआ तो उसे सबकुछ ज्ञात हुआ। राजा अपने मंत्रियों को साथ लेकर गोपी के पास पहुंचा। वहां उन्होंने उत्सव किया। शीघ्र ही यह समाचार पूरे नगर में फैल गया। जब चंद्रसेन के शत्रुओं को यह पता चला कि उसकी नगरी पर भगवान शिव की विशेष कृपा है। तब उनके शत्रुओं को यह समझ आ गया कि राजा चंद्रसेन महाकालेश्वर का परम भक्त है। इसलिए हम उसे कभी जीत नहीं सकते। वे सब राजा

चंद्रसेन से मित्रता करने हेतु उस गोपी के घर चले गए। वहां पहुंचकर उन्होंने शिवजी का पूजन किया और राजा से मित्रता कर ली। तभी वहां हनुमान जी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए। हनुमान जी को सामने पाकर सबने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया।

हनुमान जी ने उस बालक को गले लगाया और बोले—इस संसार का कल्याण करने वाले भगवान शिव हैं। वे भक्तवत्सल हैं और सदा ही अपने भक्तों पर कृपादृष्टि रखते हैं। इस बालक ने सच्चे मन से शिवजी की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने इसके सभी दुखों को दूर किया है। इस लोक में सभी सुखों को भोगकर इसे मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह आठवां महायज्ञ पुरुष होगा और नंद नाम से जाना जाएगा। भगवान विष्णु जब कृष्ण का अवतार लेंगे तो इसी के घर में निवास करेंगे। यह कहकर वे अंतर्धान हो गए। तत्पश्चात सब राजा विदा लेकर अपने-अपने नगर चले गए। राजा चंद्रसेन विधिपूर्वक महाकालेश्वर का पूजन करने लगे और इस लोक में सभी सुखों को भोगकर अंत में मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

अठारहवां अध्याय

ओंकारेश्वर माहात्म्य

सूत जी बोले—हे विप्रगण! प्राचीन काल में श्री नारद जी ने गोकर्ण क्षेत्र में भगवान शिव का पूजन किया। फिर वे विंध्याचल पर्वत पर गए। विंध्याचल ने उनका आदर-सत्कार किया और उन्हें उत्तम आसन पर बैठाया। स्वयं भी वह नारद जी के पास बैठ गया। तब नारद जी कहने लगे—विंध्याचल! तुम निश्चय ही महा बलशाली और विशाल हो। सभी पर्वत तुममें व्याप्त हैं परंतु सुमेरु पर्वत का अपना अलग अस्तित्व व पहचान है। यद्यपि तुममें सभी गुण विद्यमान हैं, परंतु फिर भी सुमेरु की बराबरी तुम नहीं कर सकते।

नारद जी के वचन सुनकर विंध्याचल पर्वत को बहुत दुख हुआ। वह सोचने लगा, मेरा जीवन तो व्यर्थ है। जब मैं किसी के कोई काम नहीं आता तो मुझे अपने जीवन को सुधारना चाहिए। यह विचारकर वह भगवान शिव की शरण में गया। विंध्याचल में ओंकारेश्वर जाकर वहीं समीप में भगवान शिव का पार्थिव लिंग स्थापित किया और विधि-विधान से भक्तिपूर्वक उसकी नियमित आराधना करने लगा। वह घंटों शिवजी के चरणारविंदों के ध्यान में मगन रहता। इस प्रकार उसे शिवजी का ध्यान और तप करते हुए बहुत समय बीत गया। एक दिन उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवाधिदेव भगवान शिव ने उसे साक्षात दर्शन दिए तथा उसकी कामना जाननी चाही।

शिवजी बोले—विंध्याचल, मैं तुम्हारी भक्ति भावना से प्रसन्न हूं। वर मांगो। भगवान शिव के निर्मल वचनों को सुनकर विंध्याचल की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उसने अपने आराध्य देव की स्तुति आरंभ कर दी। फिर बोला—हे कल्याणकारी भगवान शिव। यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपा कर मेरी बुद्धि को शुद्ध करें और मुझे श्रेष्ठ विचार प्रदान करें। भगवन्! आप यहीं पर निवास कर इस जगत का कल्याण करें।

तब विंध्याचल की मनोकामना को पूरा करते हुए भगवान शिव ने उनके इच्छित वर को प्रदान किया और स्वयं विंध्याचल द्वारा स्थापित लिंग में ज्योतिर्मय रूप में विराजमान हो गए। यह ज्योतिर्लिंग परमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। ओंकारेश्वर व परमेश्वर नामक शिव ज्योतिर्लिंग अलग-अलग होते हुए भी एक हैं। ये अपने भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले तथा उन्हें मोक्ष देने वाले हैं। इस प्रकार अपने भक्त विंध्याचल पर अपनी कृपादृष्टि कर शिवजी अंतर्धान हो गए। ऋषियो! इस प्रकार मैंने आपसे ओंकारेश्वर नामक शिवलिंग की महिमा का वर्णन किया।

उन्नीसवां अध्याय

केदारेश्वर माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! भगवान विष्णु के नर-नारायण नामक अवतार ने बद्रिकाश्रम में तपस्या करनी आरंभ कर दी। तब अपने उन दोनों श्रेष्ठ भक्तों की इच्छा पूर्ण करने हेतु भगवान शिव पार्थिव लिंग में उनके पूजन को ग्रहण करने के लिए आते थे। इस प्रकार नर-नारायण को भगवान शिव का पूजन करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया। इससे उनकी भक्ति भावना दिन-प्रतिदिन प्रबल होती गई और वे शिवजी को प्रसन्न करने हेतु उनका पूजन करते रहे।

उनकी उत्तम तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव उनके समक्ष प्रकट हो गए और बोले—हे नर-नारायण! मैं तुम्हारी आराधना से बहुत प्रसन्न हूं। तुम मुझसे वर मांगो। भगवान शिव के वचन सुनकर नर-नारायण बहुत प्रसन्न हुए और भक्तवत्सल कल्याणकारी शिव को प्रणाम करते हुए बोले—हे देवेश्वर! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमारी प्रार्थना से आप साक्षात रूप में यहां सदा विराजमान रहें।

उन दोनों के अनुरोध पर देवाधिदेव महादेव जी हिमालय के केदार नामक उस तीर्थ में ज्योतिर्लिंग रूप में स्थित हो गए और वह ज्योतिर्लिंग संसार में केदारेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह लिंग दुख और भय का नाश करने वाला है। इसके दर्शनों से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। कहते हैं कि जो भक्त शिवलिंग के निकट शिव के रूप में अंकित वलय पर कंकड़ या कड़ा चढ़ाता है, उसे उनके वलय रूप के दर्शन होते हैं तथा सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। केदार तीर्थ का दर्शन कर केदारेश्वर लिंग का पूजन करने एवं वहां का जल पीने के पश्चात मनुष्य जीवन-मरण के चक्र से छूट जाता है और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार मैंने आपसे केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग महिमा का वर्णन किया।

बीसवां अध्याय

भीम उपद्रव का वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! पूर्वकाल में भीम नाम का एक बलशाली राक्षस हुआ था, जो कि रावण के भाई कुंभकरण और कर्कटी राक्षसी का पुत्र था। वह कर्कटी अपने पुत्र भीम के साथ सह्य पर्वत पर रहती थी। एक बार भीम ने अपनी माता से पूछा—माताजी! मेरे पिताजी कौन हैं और कहां हैं? हम इस प्रकार यहां अकेले क्यों रह रहे हैं?

अपने पुत्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए कर्कटी बोली—पुत्र भीम! तुम्हारे पिता रावण के छोटे भाई कुंभकर्ण थे। पूर्व में मैं विराध राक्षस की पत्नी थी, जिसे श्रीराम ने मार डाला था। फिर मैं अपने माता-पिता के साथ रहने लगी। एक दिन जब मेरे माता-पिता अगस्त्य ऋषि के आश्रम में एक मुनि का भोजन खा रहे थे, तब मुनि ने शाप द्वारा उन्हें भस्म कर दिया था। मैं पुनः अकेली रह गई। तब मैं इस पर्वत पर आकर रहने लगी। यहीं पर मेरी कुंभकर्ण से भेंट हुई थी और हमने विवाह कर लिया। उसी समय श्रीराम ने लंका पर आक्रमण कर दिया और तुम्हारे पिता को वापस जाना पड़ा। तब श्रीराम ने युद्ध में उनका वध कर दिया।

अपनी माता के वचन सुनकर भीम को भगवान विष्णु से द्वेष उत्पन्न हो गया और उसने बदला लेने की ठान ली। वह ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या करने लगा। उसकी घोर तपस्या से अग्नि प्रज्वलित हो गई, जिससे सभी जीव दग्ध होने लगे। तब ब्रह्माजी उसे वर देने के लिए गए। ब्रह्माजी ने उसके सामने प्रकट होकर वरदान मांगने के लिए कहा। तब भीम बोला—हे पितामह! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे महाबली होने का वर प्रदान करें। तब तथास्तु कहकर ब्रह्माजी वहां से अंतर्धान हो गए।

वर प्राप्त करने के बाद प्रसन्न होकर भीम अपनी माता के पास आया और बोला—माता! मैं शीघ्र ही विष्णु से अपने पिता कुंभकर्ण के वध का बदला ले लूंगा। यह कहकर भीम वहां से चला गया। उसने देवताओं से भयानक युद्ध किया और उन्हें हराकर स्वर्ग पर अधिकार स्थापित कर लिया। फिर उसने कामरूप देश के राजा से युद्ध करना आरंभ कर दिया। उसे जीतकर कैद कर लिया और उसके खजाने पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। राजा दुखी था। उसने जेल में ही पार्थिव लिंग बनाकर शिवजी का पूजन करना शुरू कर दिया और विधिपूर्वक 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जाप करने लगा।

दूसरी ओर, राजा की पत्नी भी अपने पति को पुनः वापस पाने के लिए भगवान शिव की आराधना करने लगी। इधर, भीम नामक राक्षस से दुखी सभी देवता भगवान विष्णु की शरण में पहुंचे। तब विष्णुजी ने सब देवताओं को साथ लेकर महाकेशी नदी के तट पर शिवजी के पार्थिव लिंग की विधि-विधान से स्थापना कर उसकी स्तुति-आराधना की। भगवान शिव उनकी उत्तम आराधना से प्रसन्न होकर वहां प्रकट हुए। शिवजी बोले—हे देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हूं। मांगो, क्या मांगना चाहते हो?

शिवजी के वचन सुनकर देवता सहर्ष बोले कि—भगवन्! भीम नामक उस असुर ने सभी देवताओं को दुखी कर रखा है। आप उसका वध करके हमें उसकी दुष्टता से मुक्ति दिलाएं। देवताओं को इच्छित वर प्रदान कर शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए। देवता बहुत प्रसन्न हुए और जाकर राजा को भी सूचना दी कि भगवान जल्दी ही तुम्हारे शत्रु भीम का नाश कर तुम्हें मुक्त करेंगे।

इक्कीसवां अध्याय

भीमशंकर ज्योतिर्लिंग का माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! अब मैं आपको भीमशंकर ज्योतिर्लिंग के माहात्म्य के बारे में बताता हूं। इधर, जब दानव भीम को यह ज्ञात हुआ कि राजा कैदखाने में कोई अनुष्ठान कर रहा है तब वह क्रोधित होकर जेलखाने में पहुंचा। भीम राजा से बोला—हे दुष्ट! तू मुझे मारने के लिए कैसा अनुष्ठान कर रहा है। बता, अन्यथा मैं अपनी इस तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। इस प्रकार भीम और उसके अन्य राक्षस सैनिक राजा को धमकाने लगे।

राजा भयभीत होकर मन ही मन भगवान शिव से प्रार्थना करने लगा। वह बोला—हे देवाधिदेव! कल्याणकारी भक्तवत्सल भगवान शिव। मैं आपकी शरण में आया हूं। आप मेरी इस राक्षस से रक्षा करें। इधर, जब राजा ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया तो वह क्रोधित होकर तलवार हाथ में लिए उस पर झपटा। एकाएक वह तलवार शिवजी के पार्थिव लिंग पर पड़ी और उसमें से भगवान शिव प्रकट हो गए। उन्होंने अपने त्रिशूल से उस तलवार के दो टुकड़े कर दिए। फिर उनके गणों का दैत्य सेना के साथ महायुद्ध हुआ। उस भयानक युद्ध से धरती और आकाश डोलने लगा। ऋषि तथा देवतागण आश्चर्यचकित रह गए। तब भगवान ने अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भीम को भस्म कर दिया, जिससे वन में भी आग लग गई और अनेक औषधियां नष्ट हो गईं, जो अनेकों रोगों का नाश करने वाली थीं।

तब अपने भक्तों का कल्याण करने के लिए कल्याणकारी भगवान शिव सदा के लिए राजा द्वारा स्थापित उस पार्थिव लिंग में विराजमान हो गए और संसार में भीमशंकर नाम से प्रसिद्ध हुए। भगवान शिव का यह लिंग सदैव पूजनीय और सभी आपत्तियों का निवारण करने वाला है।

बाईसवां अध्याय

काशीपुरी का माहात्म्य

सूत जी बोले—हे मुनिवरो! इस पृथ्वी लोक में दिखाई देने वाली प्रत्येक वस्तु सच्चिदानंद स्वरूप, निर्विकार एवं सनातन ब्रह्मरूप है। वह अद्वितीय परमात्मा ही सगुण रूप में शिव कहलाए और दो रूपों में प्रकट हुए। वे शिव ही पुरुष रूप में शिव एवं स्त्री रूप में शक्ति नाम से प्रसिद्ध हुए। शिव-शक्ति ने मिलकर दो चेतन अर्थात प्रकृति एवं पुरुष (विष्णु) की रचना की है। तब प्रकृति एवं पुरुष अपने माता-पिता को सामने न पाकर सोच में पड़ गए। उसी समय आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणी बोली—तुम दोनों को जगत की उत्पत्ति हेतु तपस्या करनी चाहिए। तभी सृष्टि का विस्तार होगा। वे दोनों बोले—हे स्वामी! हम कहां जाकर तपस्या करें? यहां पर तो ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां तपस्या की जा सके। तब भगवान शिव ने पांच कोस लंबे-चौड़े शुभ व सुंदर नगर की तुरंत रचना कर दी। वे दोनों त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के चरणों का स्मरण करके वहां तपस्या करने लगे। उन्हें इस प्रकार तपस्या करते-करते बहुत समय बीत गया। उनकी कठिन तपस्या के कारण उनके शरीर से पसीने की बूंदें निकलीं। उन श्वेत जल की बूंदों को गिरता हुआ देखकर भगवान श्रीहरि विष्णु ने अपना सिर हिलाया तभी उनके कान से एक मणि गिरी और वह स्थान मणिकर्णिका नाम से प्रसिद्ध हो गया। जब उनके शरीर से निकली जलराशि से वह नगरी बहने लगी तब कल्याणकारी भगवान शिव ने अपने त्रिशूल की नोक पर उसे रोक लिया।

तपस्या में किए गए परिश्रम से थककर विष्णु तथा उनकी पत्नी प्रकृति वहीं उसी नगर में सो गए। तब शिवजी की प्रेरणा स्वरूप विष्णुजी की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ। उसी कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। भगवान शिव की आज्ञा पाकर ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना आरंभ कर दी। ब्रह्माजी ने पचास करोड़ योजन लंबा और पचास करोड़ योजन चौड़ा ब्रह्माण्ड रच दिया। इसमें चौदह अद्भुत लोकों का भी निर्माण ब्रह्माजी ने किया। इस प्रकार जब सर्वेश्वर शिव की आज्ञा से ब्रह्माजी द्वारा ब्रह्माण्ड का निर्माण हो गया तब भक्तवत्सल भगवान शिव के मन में विचार आया कि इस संसार के सभी प्राणी तो कर्मपाश में बंधे रहेंगे। सांसारिक मोह-माया में पड़कर भला वे मुझे किस प्रकार पा सकेंगे।

ऐसा सोचकर त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव ने अपने त्रिशूल से पांच कोस नगरी उतारकर ब्रह्माण्ड से अलग की। तत्पश्चात उसमें अपने अविमुक्ति ज्योतिर्लिंग की स्थापना कर दी। यही पंचकोसी, कल्याणदायिनी, ज्ञानदात्री एवं मोक्षदात्री नगरी काशी कहलाई। भगवान शिव ने इस नगरी में अपने ज्योतिर्लिंग की स्थापना करने के पश्चात इसे पुनः मृत्युलोक में त्रिशूल के माध्यम से जोड़ दिया। कहते हैं ब्रह्माजी का एक दिन पूरा होने पर प्रलय आती है परंतु इस काशी नगरी का नाश असंभव है, क्योंकि प्रलय के समय शिवजी

इस काशी नगरी को अपने त्रिशूल पर धारण कर लेते हैं तथा सब शांत हो जाने पर काशी को पृथ्वीलोक से जोड़ देते हैं। इसलिए मुक्ति की कामना करने वालों को काशी जाना चाहिए। यहां के दर्शनों से हर प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। काशी मोक्ष देने वाली नगरी के रूप में प्रसिद्ध है।

संसार के समस्त प्राणियों के मध्य में सत्व रूप में और बाहर तामस रूप में विराजमान परमात्मा भगवान शिव ही हैं। सत्व आदि गुणों से युक्त वही रुद्र हैं, जो सगुण होते हुए निर्गुण और निर्गुण होते हुए सगुण हैं। उन कल्याणकारी भगवान शिव को प्रणाम करके रुद्र बोले— हे विश्वनाथ! महेश्वर लोकहित की कामना से आपको यहां विराजमान रहना चाहिए। मैं आपके अंश से उत्पन्न हूं। आप मुझ पर कृपा करें और देवी पार्वती सहित यहीं पर निवास करें।

ब्राह्मणो! जब विश्वनाथ ने भगवान शिव से इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान शिव संसार के कल्याण के लिए काशी में देवी पार्वती सहित निवास करने लगे। उसी दिन से काशी सर्वश्रेष्ठ नगरी हो गई।

तेईसवां अध्याय

श्री विश्वेश्वर महिमा

सूत जी बोले—हे मुनियो! अब मैं आपको काशीपुरी में स्थित अविमुक्त ज्योतिर्लिंग का माहात्म्य सुनाता हूं। एक बार जगदंबा माता पार्वती ने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव से विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग की महिमा पूछी थी। तब अपनी प्राणवल्लभा देवी पार्वती का प्रश्न सुनकर भगवान शिव बोले—हे प्रिये! मनुष्य को भक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाला उत्तम धाम काशी है। मेरा प्रिय स्थान होने के कारण काशी में अनेक सिद्ध और योगी पुरुष आकर मेरे अनेकों रूपों का वर्णन करते हैं। काशी में मृत्यु को प्राप्त करने वाले मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। वह सीधे शिवलोक को प्राप्त करता है। स्त्री पवित्र हो या अपवित्र, कुंआरी हो या सुहागन या अन्य काशी में मरकर मोक्ष को प्राप्त करती हैं। काशी में निवास करने वाले भक्तजन बिना जाति, वर्ण, ज्ञान, कर्म, दान, संस्कार, स्मरण अथवा भजन के सीधे मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

हे उमे! जिस विशेष कृपा को पाने के लिए ब्रह्माजी एवं श्रीहरि विष्णु ने जन्म-जन्मांतरों तक तपस्या की, वह काशी नगरी में मरने से ही प्राप्त हो जाती है। मनुष्य योग्य, अयोग्य कर्म करे या धर्म अथवा अधर्म के मार्ग पर चले, इस काशीपुरी में मृत्यु पाकर जीवन-मरण के बंधनों से छूट जाता है। हे देवी! जो काशी नगरी में निवास करते हुए भक्तिपूर्वक मेरा ध्यान, स्मरण करता है अथवा मेरी आराधना अथवा तपस्या करता है, उसके पुण्यों की महिमा का वर्णन करना तो मेरे लिए भी असंभव है। वे सब मुझमें ही स्थित हैं। शुभ कर्मों से स्वर्ग प्राप्त होता है एवं अशुभ कर्मों से नरक की प्राप्ति होती है। हमारे द्वारा किए गए शुभ-अशुभ कर्मों से ही जन्म-मरण निश्चित होता है तथा सुख की प्राप्ति होती है।

पार्वती! तीन प्रकार के कर्म होते हैं—1. पहले जन्म में किए कर्म संचित होते हैं। 2. इस जन्म में किए हुए क्रियमाण हैं। 3. दोनों के द्वारा मिल रहा फल, जो शरीर में भोगे जा रहे हैं, प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। संचित तथा क्रियमाण कर्मों को दान-दक्षिणा देकर एवं पुण्य कर्मों द्वारा कम अथवा खत्म किया जा सकता है परंतु प्रारब्ध कर्मों को मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। काशीपुरी में किया गया गंगा स्नान संचित एवं क्रियमाण कर्मों को नष्ट कर देता है। प्रारब्ध कर्म काशी में मृत्यु से ही नष्ट होते हैं। काशी का रहने वाला यदि कोई पाप करता है तो काशी के पुण्य प्रताप से तुरंत ही पाप से मुक्त हो जाता है।

हे ऋषिगणो! इस प्रकार काशी नगरी एवं विश्वेश्वर लिंग का माहात्म्य मैंने आपको सुनाया है जो कि भक्तों एवं ज्ञानियों को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है।

चौबीसवां अध्याय

गौतम-प्रभाव

सूत जी बोले—हे महामुनियो! प्राचीन काल में गौतम नामक एक महामुनि थे, जिनकी पत्नी का नाम अहिल्या था। वे महामुनि गौतम दक्षिण में स्थित ब्रह्म पर्वत पर हजार वर्षों में सिद्ध होने वाली तपस्या कर रहे थे। उस समय लगभग सौ वर्षों से वर्षा नहीं हुई थी, जिससे सूखा पड़ा हुआ था। पीने के लिए जल भी उपलब्ध नहीं था। सारे वृक्ष-पौधे आदि सभी वनस्पतियां सूख चुकी थीं। उस समय आए इस संकट से मुक्ति दिलाने हेतु बहुत से ऋषि-मुनियों ने समाधि ले ली थी। तब गौतम ऋषि ने इस वर्षा के संकट को दूर करने हेतु वर्षा के देव वरुण को प्रसन्न करने हेतु उनकी तपस्या करनी आरंभ की। गौतम ऋषि ने छः महीने तक वरुण देव की घोर तपस्या की, जिससे वरुण देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने गौतम ऋषि को साक्षात दर्शन दिए।

वरुण देव बोले—हे गौतम ऋषि! मैं आपकी उत्तम भक्तिभावना से की गई तपस्या से बहुत संतुष्ट हुआ हूं। मांगो, क्या वर मांगना चाहते हो? तब वरुण देव का प्रश्न सुनकर महर्षि गौतम बोले—हे वरुण देव! आप तो सर्वज्ञाता हैं। भगवन्! आप जानते ही हैं कि वर्षा न होने के कारण संसार के सभी चराचर प्राणी व्याकुल हैं। इसलिए सबकी परेशानियों एवं दुखों को दूर करने के लिए मैं चाहता हूं कि वर्षा हो जाए।

महर्षि गौतम के वर को सुनकर वरुण देव बोले कि मैं तो इस जगत के ईश्वर कल्याणकारी भगवान शिव के अधीन हूं और उन्हीं की आज्ञा और प्रेरणा के फलस्वरूप कार्य करता हूं। इसलिए इस वरदान को तो सर्वेश्वर शिव ही दे सकते हैं। अतः आप मुझसे कुछ और मांग लें। तब महर्षि गौतम बोले—प्रभो! आप मुझे जलदान दीजिए। इससे बडा और कोई पुण्य नहीं है और इसे कोई नष्ट भी नहीं कर सकता। तब गौतम जी की विनती को स्वीकार करते हुए वरुण देव बोले कि आप एक गड्ढा खोदें। मैं उसे जल से भर दूंगा और उस गड्ढे का जल कभी भी खाली नहीं होगा और इसके लिए तुम्हारा नाम भी संसार में प्रसिद्ध हो जाएगा।

वरुण देव की आज्ञा मानते हुए महर्षि गौतम ने तुरंत एक हाथ लंबा और चौड़ा गड्ढा खोद दिया। तब वरुण देव ने उसे जल से भर दिया और महर्षि गौतम से बोले—हे महामुने! इस स्थान पर किए गए सभी कर्म, दान, हवन, देव पूजन, तपस्या, पितृ श्राद्ध आदि सब सफल होंगे। यह कहकर वरुण देव अंतर्धान हो गए। तब गौतम ऋषि बहुत प्रसन्न हो गए कि सबके संकटों को उन्होंने दूर कर दिया है। इसलिए कहते हैं कि संकट के समय बड़ों की शरण में जाने से दुखों से मुक्ति मिलती है।

इस प्रकार महर्षि गौतम इच्छित वर पाकर खुश हो एवं स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर, जौ आदि अन्न पैदा करने लगे। उस जल से सींचकर उन्होंने मुरझाए हुए वृक्षों एवं पौधों को पुनः लहलहा दिया। उस स्थान को छोड़कर चले गए सभी जीव पुनः लौट आए।

महर्षि गौतम की परम कृपा से यह स्थान ऋद्धि-सिद्धियों से युक्त एवं सभी मनुष्यों के लिए कल्याणकारी एवं सुखदायक हुआ।

पच्चीसवां अध्याय

महर्षि गौतम को गोहत्या का दोष

सूत जी बोले—हे मुनियो! एक बार की बात है महर्षि गौतम ने अपने शिष्यों को कमण्डल में जल लाने के लिए भेजा। जब शिष्य जल लेने उस गड्ढे पर गए तो उस समय वहां कुछ ऋषि-पत्नियां जल भरने आई हुई थीं। उन्होंने गौतम ऋषि के शिष्यों को डांटकर बिना जल दिए ही वहां से भगा दिया। आश्रम जाकर शिष्यों ने सारी बातें गुरु पत्नी देवी अहिल्या को बता दीं। तब देवी अहिल्या स्वयं जल भरने गईं और जल लाकर अपने पति को दिया। उस दिन से स्वयं अहिल्या ही जल लेने जाने लगीं। एक दिन अन्य ऋषि-पत्नियों ने जान-बूझकर अहिल्या से लड़ना आरंभ कर दिया और अपने घर आकर अपने पतियों से अहिल्या की झूठी शिकायत कर दी कि वह हमें जल भरने देने से मना करती है और कहती है कि यह जल तो मेरे पति को वरदानस्वरूप वरुणदेव से प्राप्त हुआ है।

अपनी पत्नियों की बातें सुनकर ऋषियों को बहुत क्रोध आया। गौतम ऋषि को सबक सिखाने के लिए अन्य ऋषियों ने गणपति की आराधना आरंभ कर दी। उनके पूजन से प्रसन्न होकर गणपति प्रकट हुए और वर देने के लिए कहने लगे। तब ऋषि बोले—हे विघ्न विनाशक गणपति! हम चाहते हैं कि गौतम ऋषि यहां से आश्रम छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर चले जाएं। उनके यह वचन सुनकर गणेश जी बोले गौतम ऋषि ने तो कोई अपराध नहीं किया है, फिर आप उनका बुरा क्यों चाहते हैं? आप कोई और वरदान मांग लीजिए परंतु जब ऋषि नहीं माने तो उनका इच्छित वरदान देकर गणेश जी वहां से अंतर्धान हो गए।

गणेश जी ने अपना दिया वरदान सिद्ध करने के लिए एक गाय का रूप धारण किया और गौतम जी द्वारा लगाए गए जौ खाने उनके खेत में चली गई। जब महर्षि गौतम ने देखा कि वह गाय उनका खेत नष्ट कर रही है तो स्वयं एक तिनका हाथ में लेकर उसे बाहर निकालने लगे। उस तिनके से पीड़ित होकर गाय धरती पर गिरी और मर गई। गाय को मरा जानकर गौतम ऋषि बहुत दुखी हुए। वे अपनी पत्नी से कहने लगे कि शायद मुझसे कोई भारी भूल हो गई जिस कारण मेरे आराध्य भगवान शिव मुझसे नाराज हो गए हैं और मुझ पर गौहत्या का पाप लग गया है।

उसी समय वहां अन्य ऋषि भी आ गए, जो गौतम ऋषि से बैर रखते थे। उन्होंने महर्षि गौतम, उनकी पत्नी और शिष्यों को भला-बुरा कहकर वहां से निकल जाने को मजबूर किया तो वे सब उस स्थान को छोड़कर वहां से चलने लगे। उन्होंने उन ऋषियों से पूछा कि मेरे द्वारा की गई इस गौहत्या का क्या प्रायश्चित होगा? तब वे ऋषि बोले—पतित पावनी गंगा में स्नान करने से मनुष्य के सारे पाप धुल जाते हैं। इसलिए अपने द्वारा की गई गौहत्या के प्रायश्चित से मुक्त होने के लिए आप गंगा जी को प्रकट कर उसमें स्नान करें और भगवान शिव के पार्थिव लिंग की स्थापना कर उसका भक्तिपूर्वक विधि-विधान से पूजन करें। तभी

आप इस महापाप से मुक्ति पा सकेंगे। अन्य ऋषियों से पश्चाताप का मार्ग पूछकर गौतम ऋषि अपनी पत्नी और शिष्यों को साथ लेकर वहां से दूर चले गए।

छब्बीसवां अध्याय

गौतमी गंगा का प्राकट्य

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! महर्षि गौतम देवी अहिल्या एवं अपने अन्य शिष्यों को साथ लेकर किसी अन्य जगह पर आश्रम बनाकर रहने लगे। सर्वप्रथम गौतम ऋषि ने ब्रह्मगिरि पर्वत की परिक्रमा की। फिर भगवान शिव के पार्थिव लिंग की स्थापना कर उसका पूजन करने लगे। पति-पत्नी की उत्तम आराधना एवं भक्तिभाव से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें दर्शन दिए। अपने आराध्य को अपने सामने पाकर गौतम ऋषि व अहिल्या बहुत प्रसन्न हुए और उनको प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे।

तब भगवान शिव बोले—हे महर्षे! हे देवी! मैं आपकी पूजा से प्रसन्न हूं। मांगिए, क्या वर मांगना चाहते हैं? भगवान शिव के वचन सुनकर ऋषि गौतम बोले—भगवन्! मुझ पर कृपा करके मुझे गौहत्या के पाप से बचा लीजिए। तब शिवजी बोले—आपसे कोई अपराध नहीं हुआ है। वह सब तो उन दुष्ट दुराचारियों द्वारा रची गई माया थी। आप तो निर्दोष हैं। यह सुनकर महर्षि के सारे दुख दूर हो गए, तब उन्होंने शिवजी से कहा कि भगवन् मुझ पर कृपा करके पतित पावनी गंगाजी को यहां प्रकट करें, जिससे सभी प्राणियों का कल्याण हो सके।

गौतम ऋषि की प्रार्थना सुनकर शिवजी ने उन्हें गंगाजल दिया। वही गंगाजल श्रीगंगाजी का स्त्री रूप बन गया। तब गौतम जी ने उन्हें प्रणाम कर उनकी स्तुति की। गौतम ऋषि बोले —हे मातेश्वरी! हे पतित पावनी गंगे। मैं आपको प्रणाम करता हूं। आप पापों का खंडन करने वाली एवं अपनी शरण में आए भक्तों को मुक्ति देने वाली हैं। मैं हाथ जोड़े आपकी शरण में आया हूं। आप मेरे पापों को नष्ट करके मुझे नरक में जाने से बचा दो। तब उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर गंगाजी ने उनके पापों को अपने निर्मल जल से धो दिया। फिर वे वहां से जाने के लिए सर्वेश्वर शिव से आज्ञा मांगने लगीं।

तब शिवजी बोले—हे गंगे! आप पापों का नाश करने वाली हैं। इसलिए लोक कल्याण के लिए यहीं पृथ्वी पर विराजें। हे कल्याणी! आपको कलियुग में अट्ठाईसवें मन्वंतर के समाप्त होने तक यहीं पृथ्वी लोक पर निवास करना होगा और सच्चे मन एवं भक्ति भावना से अपने जल में स्नान करने वाले श्रद्धालुओं के पापों को नष्ट करना होगा। कलियुग में पापों को नष्ट करने का यही एक साधन होगा। श्रद्धापूर्वक आपके दर्शन करने वालों के पापों का क्षय भी आप करेंगी।

यह सुनकर गंगाजी बोलीं—हे प्रभु! मैं तो सदा आपके अधीन हूं। आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है परंतु मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप माता पार्वती के साथ मेरे पास ही निवास करें ताकि मैं सदा की भांति आपके पास रहूं। संसार में मेरी कीर्ति हो। तब गंगाजी के वचन सुनकर कल्याणकारी भगवान शिव बोले—हे गंगे! तुम्हारी मनोकामना मैं अवश्य पूरी करूंगा। यह कहकर भगवान शिव वहां त्र्यंबकेश्वर नाम से ज्योतिर्मय रूप में स्थित हो गए।

गंगाजी वहां पर गौतम ऋषि के नाम से प्रसिद्ध होकर गौतमी गंगा कहलाईं।

सत्ताईसवां अध्याय

श्रीगंगाजी के दर्शन एवं गौतम ऋषि का शाप

ऋषि बोले—हे सूत जी! अब हमें यह बताइए कि गंगाजी की उत्पत्ति कहां से और किस प्रकार हुई? तथा यह भी कि जिन ऋषियों ने गौतम ऋषि को छल-कपट से उनको आश्रम से दूर भेज दिया था, उनका क्या हुआ? जब गौतम ऋषि को इस बात का पता चला तो उन्होंने क्या किया?

ऋषिगणों के प्रश्नों को सुनकर महामुनि सूत जी बोले—जब गौतम ऋषि ने भगवान शिव को प्रसन्न करके गंगाजी को धरती पर अवतरित कराया था, तब श्री गंगाजी ने अपने जल रूप में ब्रह्मगिरि पर स्थित गूलर के पेड़ की शाखा से निकलकर दर्शन दिए थे। उनके दर्शन एवं आराधन के पश्चात गौतम ऋषि ने अपने शिष्यों सहित पतित पावनी गंगा में स्नान किया। जब गौतम ऋषि के परम शत्रु उन कपटी ब्राह्मणों को यह बात पता चली कि ऋषि गौतम ने अपनी तपस्या से गंगाजी को प्रकट कर दिया है तो वे सब भी श्रीगंगा जी के दर्शनों की चाहत लेकर वहां आए। परंतु गंगा जी उनके आते ही वहां से लुप्त हो गईं।

यह देखकर गौतम जी को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्री गंगाजी से प्रार्थना की—हे मातेश्वरी! आप जगत का कल्याण करने हेतु यहां प्रकट हुई हैं। इसलिए आप सबको भी अपने दर्शनों से कृतार्थ करें। माते! मेरी तपस्या के प्रभाव से इन लोगों को भी दर्शन दें। गौतम ऋषि के चुप होते ही आकाशवाणी हुई—मुनि! ये लोग छल-कपट करने वाले हैं और सदा दुराचार करते हैं। इसलिए ये मेरे दर्शन के अधिकारी नहीं हैं। जब तक ये अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करते तब तक इन्हें मैं दर्शन नहीं दूंगी। मेरे दर्शन करने के लिए इन्हें ब्रह्मगिरि की एक सौ एक परिक्रमाएं करनी पड़ेंगी। यह कहकर आकाशवाणी चुप हो गई।

आकाशवाणी सुनकर वे सभी कपटी ऋषि पछताने लगे और क्षमा याचना करने लगे। तब उन्होंने आकाशवाणी के अनुसार ब्रह्मगिरि की एक सौ एक परिक्रमाएं कीं। तत्पश्चात श्री गंगाजी ने उन्हें दर्शन दिए। उस दिन से वह स्थान कुशावर्त नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऋषियों ने पुनः सूत जी से पूछा—हे सूत जी! हमने तो सुना था कि गौतम ऋषि ने उन कपटियों को शाप दे दिया था। क्या यह बात सही है? इस विषय में बताइए। तब सूत जी बोले—हे महामुनियो! आपने सही सुना था। गौतम ऋषि परम ज्ञानी और भगवान शिव के परम भक्त थे। जब उन्होंने शांत हृदय से ध्यान लगाया तो वे सब कुछ जान गए कि वह गाय, जिसकी हत्या का पाप उन्हें लगा था, बनावटी थी और उन सब ऋषियों ने मिलकर यह चाल चली थी। यह सब जानकर गौतम ऋषि क्रोधित हो उठे। तब उन्होंने उन कपटी ऋषियों को विद्यारहित, भक्तिहीन और अधर्मी हो जाने का शाप दे दिया। उन्हें शिवजी की भक्ति से विमुख होने का शाप दिया और फिर वे स्वयं अपने आश्रम में जाकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की आराधना करने लगे। दूसरी ओर वे ऋषिगण शिव-धर्म से विमुख होकर कांची

नामक नगरी में चले गए।

अट्ठाईसवां अध्याय

वैद्यनाथेश्वर शिव माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो! अब मैं वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंग का पापहारी माहात्म्य बताता हूं। एक बार लंकापति रावण ने भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए उनकी भक्ति भावना से आराधना की थी। रावण ने कैलाश पर्वत पर शिवजी की बहुत तपस्या की परंतु भगवान शिव प्रसन्न नहीं हुए। तब रावण पास में स्थित वन में चला गया और वहां एक बड़ा-सा गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि प्रज्वलित की। वहीं पास में उसने शिवजी की प्रतिमा स्थापित की। फिर उसने त्रिलोकीनाथ को प्रसन्न करने हेतु कठोर तपस्या आरंभ कर दी। गरमी में पांच ओर अग्नि से घिरकर, तो वर्षा में खुले आसमान के नीचे, सर्दियों में जल के भीतर खड़े रहकर कठिन तपस्या की। फिर भी शिवजी प्रसन्न नहीं हुए। तब राक्षसराज रावण ने अग्नि में अपने सिर को काटकर भेंट करना शुरू कर दिया। इस तरह एक-एक करके रावण ने अपने नौ सिर अग्नि को भेंट कर दिए परंतु जब दसवीं बार रावण अपना सिर चढ़ाने को उन्मुख हुआ तो शिवजी प्रकट हो गए। शिवजी के साक्षात दर्शन पाकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ और उनकी अनेकों प्रकार से स्तुति करने लगा। तब शिवजी बोले—हे राक्षसराज! मांगो क्या मांगना चाहते हो?

राक्षसराज रावण बोला—हे देवाधिदेव महादेव जी! मैं आपको नमस्कार करता हूं। भगवन्, यदि आप मेरी तपस्या से संतुष्ट हुए हैं तो मुझ पर कृपा कर मेरे साथ लंका चलकर रहें और मेरे आतिथ्य को स्वीकार करें। प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूं। कृपा कर मेरे मनोरथों को पूर्ण कीजिए। रावण के वचन सुनकर शिवजी आश्चर्य में पड़ गए। तब उन्होंने सर्वप्रथम रावण को पूर्व की भांति नीरोग किया और उसे अतुल बल प्रदान किया। तत्पश्चात उन्होंने रावण को अपना ज्योतिर्मय लिंग प्रदान किया और कहा कि मैं इस शिवलिंग में ज्योतिर्मय रूप में स्थित हूं। इसलिए तुम इसे अपने स्थान पर ले जाओ। पर एक बात का ध्यान रखना कि इसे रास्ते में कहीं भी भूमि पर न रखना, अन्यथा तुम इसे आगे नहीं ले जा सकोगे और यह वहीं पर स्थित हो जाएगा। तब भगवान शिव का आशीर्वाद एवं शिवलिंग लेकर राक्षसराज रावण वहां से अपने घर लंका की ओर चल दिया। रास्ते में शिवजी की माया से रावण को लघुशंका की इच्छा हुई और वह शिवलिंग एक ग्वाले को पकड़ाकर चला गया। ग्वाले ने थोड़ी देर तक तो वह शिवलिंग पकड़े रखा, परंतु अधिक भारी होने के कारण उसने लिंग को जमीन पर रख दिया। फिर तो वह शिवलिंग वहीं पर स्थित हो गया। यह संसार में वैद्यनाथेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके दर्शनों से सभी अभीष्ट कार्यों की सिद्धि होती है व पापों का नाश होता है। यह सत्पुरुषों को भोग और मोक्ष देने वाला है।

जब रावण को वापस आने पर यह ज्ञात हुआ कि शिवलिंग वहीं स्थित हो गया है, तो वह दर्शन के पश्चात लंका लौट गया। लंका पहुंचकर रावण ने शिवजी से वर प्राप्ति की सभी बातें

अपनी प्रिया मंदोदरी को बताईं। उधर, जब देवताओं को ज्ञात हुआ कि भगवान शिव के ज्योतिर्लिंग की स्थापना हो गई है तो सबने वहां आकर विधिवत शिवलिंग का दर्शन व पूजन किया परंतु रावण के वरदान प्राप्ति के विषय में सुनकर देवता घबरा उठे। तब उन्होंने देवर्षि नारद को लंकापति के पास भेजा।

नारद जी रावण के पास गए और बोले—हे राक्षसराज! आपको भगवान शिव ने बलशाली होने का वर प्रदान किया है परंतु आपने अपने बल की परीक्षा तो की ही नहीं। इसलिए आपको कैलाश पर्वत को ही हिलाकर अपने बल व पराक्रम की परीक्षा करनी चाहिए। तब रावण कैलाश पर्वत के निकट पहुंचकर उसे उखाड़ने की कोशिश करने लगा। जिससे कैलाश पर्वत डोलने लगा। यह देखकर शिवजी बोले कि यह पर्वत क्यों हिल रहा है? तब देवी पार्वती व्यंग्य करते हुए बोलीं—हे देव! आपके शिष्य अपने गुरु की सेवा कर रहे हैं। यह जानकर कि राक्षसराज रावण कैलाश पर्वत को हिला रहा है, महादेव जी को क्रोध आ गया। वे रावण को शाप देते हुए बोले—ए दुर्बुद्धि रावण! तू बल पाकर घमंडी हो गया है और मेरे ही निवास स्थान पर अपने बल का प्रयोग कर रहा है। मैं तुझे शाप देता हूं कि तेरा घमंड नष्ट हो जाएगा और तेरी इन भुजाओं को काटने वाला पुरुष शीघ्र ही प्रकट होगा। यह सुनकर रावण को कोई दुख नहीं हुआ और वह प्रसन्न मन से लंका लौट आया। उसने मन ही मन त्रिलोक को अपने वश में करने की प्रतिज्ञा कर ली।

मैंने आपको वैद्यनाथेश्वर नामक शिवलिंग का माहात्म्य सुनाया, जो कि मनुष्य के समस्त पापों का नाश करने वाला तथा शिवलोक की प्राप्ति कराने वाला है।

उन्नीसवां अध्याय

दारुका राक्षसी एवं राक्षसों का उपद्रव

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो! प्राचीन समय में एक राक्षस था। उसका नाम दारुक तथा उसकी पत्नी का नाम दारुका था। वे दोनों पश्चिम में स्थित सुंदर वन में रहा करते थे, जो कि समुद्र से बहुत नजदीक था। वह वन चौंसठ कोस लंबा और चौड़ा था। वहां के रहने वाले मनुष्य उन दोनों राक्षस-राक्षसी के अत्याचारों से बहुत दुखी रहते थे। एक दिन वे सभी ऋषि ओर्व के पास पहुंचे और उन्हें अपना दुख सुनाया तथा प्रार्थना की—हम आपकी शरण में आए हैं। हमारी रक्षा कीजिए। तब उनकी प्रार्थना सुनकर ऋषि ओर्व बोले—आप लोग इस प्रकार चिंतित न हों। अधर्मियों का नाश अवश्य ही होता है। उन्हें धैर्य देकर ऋषि ने वहां से भेज दिया। फिर स्वयं तपस्या करने लगे, ताकि संसार का कल्याण हो। उधर, दानवों से तंग आकर देवताओं ने उन पर आक्रमण कर दिया। देवताओं और दानवों के बीच बड़ा भयानक युद्ध होने लगा। हजारों राक्षसों को देवताओं ने अपने प्रहारों से मार गिराया। राक्षसों को इस प्रकार प्रताड़ित होता देखकर दारुका को अपना वर याद आ गया। उसने राक्षसों से कहा कि आप लोग इस प्रकार भयभीत न हों, मैं आपका भय अवश्य ही दूर करूंगी।

यह कहकर दारुका ने राक्षसों की उस नगरी को उठाकर समुद्र के मध्य में स्थित कर दिया। अब सारे राक्षसों को भय से मुक्ति मिल गई। एक दिन दारुका घूमती हुई पुनः धरती पर आ गई, तब उसने देखा कि एक डोंगी में बहुत से मनुष्य बैठकर समुद्र की ओर से पृथ्वी पर आ रहे हैं। दारुका ने जाकर राक्षसों को सूचना दी कि असंख्य मनुष्य समुद्र में हैं। राक्षसों ने उन मनुष्यों को पकड़कर अपने जेलखाने में कैद कर लिया। उन मनुष्यों में एक सुप्रिय नामक बनिया भी था, जो भगवान शिव का परम भक्त था। उसने कारावास में ही भगवान शिव का पार्थिव लिंग स्थापित किया और उसकी विधिपूर्वक आराधना करनी आरंभ कर दी। उसे शिवजी का पूजन करते देखकर अन्य मनुष्य भी उसके साथ शिवजी की आराधना करने लगे। उन्हें भगवान शिव की पूजा करते-करते काफी समय व्यतीत हो गया। राक्षस उन्हें हैरानी से देखते, पर उनकी समझ में नहीं आता था कि वे किसकी पूजा कर रहे हैं।

तीसवां अध्याय

नागेश्वर लिंग की उत्पत्ति व माहात्म्य

सूत जी बोले—हे ऋषियो! एक दिन सुप्रिय को भगवान शिव का पूजन करते हुए दारुक के किसी दूत ने देख लिया और जाकर दारुक को बता दिया। यह जानकर दुष्ट दारुक जेल में गया और सुप्रिय से बोला—बनिए! सच बता कि तू किस देवता की पूजा कर रहा है? अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूंगा। बहुत पूछने पर भी जब सुप्रिय ने कुछ नहीं बताया, तब क्रोधित होकर राक्षसराज दारुक ने उस बनिए को मारने की आज्ञा दे दी। वह परम शिव भक्त हाथ जोड़े, आंखें मूंदकर अपने आराध्य भगवान शिव का ध्यान कर उनसे मन में रक्षा करने की प्रार्थना करने लगा। भक्तवत्सल भगवान शिव अपने भक्त की पुकार सुनकर तुरंत वहां प्रकट हो गए। अपने भक्त की ओर बढ़ते उन राक्षसों को देखकर भगवान शिव ने पाशुपत अस्त्र उठा लिया और उन राक्षसों का एक पल में ही नाश कर दिया। राक्षसों का नाश करने के बाद भगवान शिव बोले—हे सुप्रिय! आज से यह वन राक्षसों से मुक्त हुआ। अब तुम सब सदा के लिए निर्भय हो जाओ। अब इस वन में धर्म के मार्ग पर चलने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि ही निवास करेंगे। इन्हीं के साथ मेरे परम भक्त भी इस वन की शोभा बढ़ाएंगे।

उधर, दूसरी ओर दारुका राक्षसी देवी पार्वती की स्तुति करने लगी। उसने देवी को प्रसन्न कर लिया और प्रार्थना की कि माते! आप मेरे वंश एवं कुल की रक्षा कीजिए। तब देवी पार्वती दारुका के वचनों को सुनकर भगवान शिव से बोलीं—हे नाथ! आपकी कही यह बात युग के अंत में सच हो उससे पूर्व तामसी सृष्टि भी रहे, यह मेरा विचार है। भगवन्! मेरी बात को पूरा करिए। दारुका मेरी ही शक्ति है। इसलिए उसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। यहां पर दारुका का ही राज्य होगा। देवी पार्वती के इन वचनों को सुनकर भगवान शिव बोले—हे प्रिये! आपकी इच्छा अवश्य ही पूरी होगी परंतु अपने भक्तों की रक्षा के लिए मैं यहीं पर स्थित रहूंगा, ताकि कोई भी उनकी जाति और धर्म के विरुद्ध कोई आचरण न कर सके। जो मनुष्य धर्म के मार्ग का अनुसरण करते हुए भक्ति भावना के साथ प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा हो जाएगा। कलियुग के अंत में और सतयुग के आरंभ में, महासेन का पुत्र वीरसेन राजाओं का भी राजा होगा और जब वह यहां आकर मेरे दर्शन करेगा तो वह चक्रवर्ती सम्राट बन जाएगा।

यह कहकर भगवान शिव और देवी पार्वती वहां ज्योतिर्मय रूप में पार्थिव लिंग में स्थित हो गए। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव नागेश्वर नाम से व देवी पार्वती नागेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुईं। भगवान शिव-पार्वती अनेक प्रकार की लीलाएं करते हुए वहां स्थित हो गए। यह नागेश्वर ज्योतिर्लिंग तीनों लोकों का कल्याण करने वाला एवं सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। नागेश्वर ज्योतिर्लिंग के प्रादुर्भाव की कथा सुनने या पढ़ने से महापातकों का नाश होता है। कथा संपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

इकतीसवां अध्याय

रामेश्वर महिमा वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं आपको रामेश्वर शिवलिंग की उत्पत्ति की कथा एवं माहात्म्य सुनाता हूं। भगवान श्रीहरि विष्णु ने अयोध्या के राजा दशरथ के घर उनके बेटे राम के रूप में अवतार लिया, ताकि वे दुष्ट राक्षसराज रावण का संहार करके पृथ्वी को दुष्टों से मुक्त करा सकें। श्रीराम का विवाह जनक नंदिनी देवी सीता से हुआ था। अपनी माता कैकेयी के मांगे वरदान के अनुसार वे चौदह वर्षों के लिए वनवास गए। एक दिन जब श्रीराम व लक्ष्मण कुटिया से बाहर गए। तब रावण ने सीता का हरण कर लिया और उन्हें लंका ले गया। श्रीराम अपनी पत्नी की खोज करते हुए अपने भाई लक्ष्मण के साथ किष्किंधा पहुंचे। वहीं पर उनकी मित्रता सुग्रीव से हुई, जिसे उसके भाई बाली ने राज्य से निकाल दिया था। तब श्रीराम ने उसकी सहायता की। श्रीराम ने बाली को मारकर सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बना दिया।

सुग्रीव ने श्रीराम की पत्नी देवी सीता की खोज के लिए अपनी वानर सेना को चारों ओर तलाश करने के लिए भेजा। वानरों में श्रेष्ठ हनुमान ने माता सीता को लंका में ढूंढ़ लिया और श्रीराम का संदेश उन तक पहुंचाया। जब श्रीराम को ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी का हरण लंकाधिपति रावण ने किया है तो उन्होंने वानर सेना के साथ लंका की ओर प्रस्थान किया। जब उनकी सेना दक्षिणी छोर पर समुद्र के किनारे पहुंची तो उन्हें चिंता हुई कि सेना इस अथाह सागर को कैसे पार करेगी? वे इसी सोच में डूब गए। श्रीराम को प्यास लगी और उन्होंने पानी मांगा। जब वानर उनके लिए पानी लेकर आए, तब उन्हें स्मरण हुआ कि आज उन्होंने अपने आराध्य का दर्शन व पूजन तो किया ही नहीं। तब श्रीराम ने जल नहीं पिया और भगवान शिव का पार्थिव लिंग स्थापित करके उसका विधिपूर्वक सोलह उपचारों से पूजन किया और भक्तिभाव से हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

श्रीराम बोले—हे देवाधिदेव! त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल भगवान शिव! मेरी सहायता कीजिए, आपके सहयोग के बिना मेरा कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है। मैं आपकी शरण में आया हूं। मुझ पर अपनी कृपादृष्टि कीजिए।

इस प्रकार प्रार्थना करके रामजी अपने आराध्य की स्तुति में निमग्न हो गए। तब भगवान शिव ने प्रसन्न होकर दर्शन दिए और बोले—हे राम! तुम्हारा कल्याण हो। वर मांगो। अपने सामने साक्षात त्रिलोकीनाथ शिव को पाकर श्रीराम अत्यंत हर्षित हुए और हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करते हुए स्तुति करने लगे। उन्होंने शिवजी से युद्ध में विजयी होने का वर मांगा तथा भगवान शिव से जगत के कल्याण हेतु वहीं निवास करने की प्रार्थना की।

श्रीराम के वचन सुनकर कल्याणकारी शिव बहुत प्रसन्न हुए और बोले—हे राम! तुम्हारा मंगल हो, युद्ध में तुम्हारी जीत अवश्य होगी क्योंकि तुम सत्य और धर्म के मार्ग का अनुसरण

कर रहे हो। यह कहकर शिवजी श्रीराम द्वारा स्थापित उस शिवलिंग में ज्योतिर्मय रूप में स्थित हो गए। उसी दिन से वह लिंग जगत में रामेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी शिवलिंग के पूजन के फल के रूप में श्रीराम की सेना को समुद्र पार करने का मार्ग मिल गया और वह युद्ध में विजयी हुए। श्रीराम ने रावण एवं अन्य राक्षसों का संहार किया और अपनी पत्नी सीता को मुक्त कराया। यह रामेश्वर ज्योतिर्लिंग भक्तों को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। इस शिवलिंग को गंगाजल से स्नान कराने से मोक्ष की प्राप्ति होती है और मनुष्य जीवन-मरण के बंधनों से मुक्त हो जाता है। रामेश्वर ज्योतिर्लिंग की महिमा सुनने वालों के सभी पापों का नाश हो जाता है।

बत्तीसवां अध्याय

सुदेहा सुधर्मा की कथा

सूत जी बोले—हे महर्षियो! दक्षिण दिशा में देव नामक एक विशाल अद्‌भुत पर्वत है। उसके पास ही सुधर्मा नामक ब्राह्मण अपनी पत्नी सुदेहा के साथ रहता था। वह भगवान शिव का परम भक्त था। वह सदा ही वेदों द्वारा बताए मार्ग पर चलता और प्रतिदिन अग्नि से हवन, कर्म, अतिथि का पूजन और शिवजी की आराधना करता था। इस प्रकार पूजन करते हुए वे दोनों पति-पत्नी अनेक सत्कर्मों में लिप्त रहते थे। उनकी पत्नी सुदेहा पतिव्रता स्त्री थी। उनकी पत्नी को एक बात का दुख था कि उनकी कोई संतान नहीं थी। इस कारण उनका मन परेशान रहता था। जब भी सुदेहा अपने पति से इस विषय में कहती तो वह उन्हें समझाते कि पुत्र प्राप्ति से क्या लाभ है? आजकल सभी रिश्ते-नाते स्वार्थी हो गए हैं परंतु फिर भी वे सदा दुखी रहती थीं।

एक दिन की बात है। सुदेहा अपनी सखियों के साथ पानी भरने गई थी। वहीं पर उनका परस्पर झगड़ा हो गया और तब उनकी सहेलियों ने उसे बांझ कहकर अपमानित करना शुरू कर दिया। वे बोलीं—तू बांझ होकर इतना घमंड क्यों करती है? तेरा सारा धन तो राजा के पास ही चला जाएगा, क्योंकि तेरा कोई पुत्र तो है नहीं। दुखी मन से सुदेहा घर लौट आई। उसने सारी बातें अपने पति को बताईं। उन्होंने अपनी पत्नी को बहुत समझाया परंतु वह कुछ भी मानने को तैयार नहीं थी। तब उन ब्राह्मण देवता ने मन में भगवान शिव का ध्यान करते हुए दो फूल अग्नि की तरफ उछाले और सुदेहा से एक फूल चुनने के लिए कहा। उनकी पत्नी ने गलत फूल चुन लिया। उन्होंने अपनी पत्नी को समझाया—तुम्हारे भाग्य में पुत्र नहीं है। इसलिए अब अपनी इच्छा त्याग दो और शिवजी के पूजन में लग जाओ।

अपने पति सुधर्मा की बातों का सुदेहा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह उनसे इस प्रकार बोली—हे प्राणनाथ! यदि आपको मेरे गर्भ से पुत्र प्राप्त नहीं हो सकता तो आप दूसरा विवाह कर लीजिए। परंतु सुधर्मा ने विवाह से इनकार कर दिया। तब सुदेहा अपनी छोटी बहन घुश्मा को अपने घर ले आई और अपने पति से प्रार्थना करने लगी कि वे उससे विवाह कर लें। सुधर्मा ने उसे समझाते हुए कहा—यदि मैंने इससे विवाह कर लिया और इससे पुत्र हो भी गया तो भी तुम दोनों बहनें सौतन बन जाने पर एक-दूसरे का विरोध करोगी और मेरे घर में झगड़ा होता रहेगा। तब सुदेहा बोली—हे प्राणनाथ! भला मैं अपनी बहन का विरोध क्यों करूंगी। आप चिंता त्याग दें और घुश्मा से विवाह कर लें। अपनी पत्नी की प्रार्थना मानकर सुधर्मा ने घुश्मा से विवाह कर लिया।

विवाह के पश्चात सुधर्मा ने सुदेहा और घुश्मा से मिल-जुलकर रहने एवं आपस में एक-दूसरे की बात मानने के लिए कहा। फिर घुश्मा अपने पति सुधर्मा के साथ प्रतिदिन एक सौ एक शिव पार्थिव लिंगों का षोडषोपचार से पूजन करके तालाब में उनका विसर्जन कर देती।

इस प्रकार जब उसने एक लाख पार्थिव लिंगों का पूजन पूर्ण कर लिया तो शिवजी की कृपा से उसे परम सुंदर गुणवान पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र पाकर घुश्मा और सुधर्मा बहुत प्रसन्न हुए परंतु सुदेहा को अपनी बहन से जलन होने लगी।

तेंतीसवां अध्याय

घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग की उत्पत्ति व माहात्म्य

सूत जी बोले—हे मुनिगणो! सुदेहा अपनी छोटी बहन घुश्मा से बहुत ईर्ष्या करती थी। उसके पुत्र के प्रति भी उसका व्यवहार बुरा था। धीरे-धीरे घुश्मा का पुत्र बड़ा हो गया। उसे विवाह योग्य जानकर ब्राह्मण सुधर्मा ने उसका विवाह एक योग्य कन्या से करा दिया। इससे सुदेहा की ईर्ष्या और अधिक बढ़ गई। उसने निश्चय किया कि जब तक घुश्मा के पुत्र की मृत्यु न होगी तब तक मेरा दुख कम नहीं होगा। अपनी खोई प्रतिष्ठा और घुश्मा को सबक सिखाने का निश्चय सुदेहा ने कर लिया।

एक रात सब प्राणियों के सो जाने के बाद सुदेहा ने घुश्मा के सोते हुए पुत्र की हत्या कर दी। फिर उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके उसी तालाब में बहा आई, जहां घुश्मा प्रतिदिन शिव पार्थिव लिंगों का पूजन के उपरांत विसर्जन करती थी। घर आकर सुदेहा आराम से सो गई। प्रातःकाल उठकर सुधर्मा भगवान शिव का पूजन करने चले गए, सुदेहा और घुश्मा भी अपने-अपने काम में लग गईं। जब घुश्मा की पुत्र-वधू ने अपने पति की चारपाई पर खून और शरीर के अंगों के टुकड़े देखे तो वह अत्यंत व्याकुल हो गई और उसने अपनी सास को सूचित किया। वहां का दृश्य देखकर वह फौरन समझ गई कि किसी ने उनके पुत्र की हत्या कर दी है। यह जानकर घुश्मा जोर-जोर से रोने लगी। सुदेहा भी उनकी देखा-देखी आंसू बहाने लगी परंतु मन में वह अपनी सौत के दुख से बहुत प्रसन्न थी। कुछ देर पश्चात सुधर्मा शिवजी के पूजन से वापस लौटे तो उन्हें सब बातें पता चलीं।

सुधर्मा घुश्मा से बोले—देवी! इस तरह से रोना छोड़ दो। अपने दुख को दूर करके अपना कार्य पूरा करो। भगवान शिव ने ही हमें कृपा करके पुत्र प्रदान किया था और वही उसकी रक्षा करेंगे। इसलिए तुम रोना छोड़ो और अपना नित्य कर्म करो। तब पति की आज्ञा मानकर देवी घुश्मा ने शिवजी के पार्थिव लिंगों का पूजन किया और उन्हें बहाने के लिए तालाब पर गई। जब लिंगों का विसर्जन करने के उपरांत वह मुड़ी तो उसे अपना पुत्र वहीं तालाब के किनारे खड़ा मिला। अपने पुत्र को जीवित पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई और मन ही मन अपने आराध्य देव भगवान शिव का स्मरण करके उनका धन्यवाद व्यक्त करने लगी। उसी समय भगवान शिव वहां प्रकट हो गए और बोले—देवी घुश्मा! तुम्हारी आराधना से मैं प्रसन्न हूं। मांगो, क्या वर मांगना चाहती हो? तुम्हारी बहन सुदेहा ने ही तुम्हारे पुत्र की हत्या की थी परंतु मैंने इसे पुनर्जीवित कर दिया है। मैं तुम्हारी सौत को उसकी करनी का दण्ड अवश्य दूंगा।

भगवान शिव के वचन सुनकर देवी घुश्मा बोली—हे नाथ! सुदेहा मेरी बड़ी बहन है। इसलिए आप उनका अहित न करें। तब शिवजी बोले—तुम्हारी सौत ने तुम्हारे पुत्र को मारा, फिर भी तुम उसको दंड नहीं देना चाहती हो। यह सुनकर घुश्मा ने कहा—हे देवाधिदेव! अपकार करने वालों पर भी उपकार करना चाहिए, यह मैंने भगवद्वाक्य पढ़ा है और मैं यही

मानती भी हूं। अतः आप सुदेहा को क्षमा कर दें।

तब घुश्मा की बात सुनकर शिवजी बोले—ठीक है! जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा। तुम और कोई वर मांगो। यह सुनकर घुश्मा बोली—हे प्रभो! आप इस जगत का हित व कल्याण करने हेतु यहीं निवास करें। तब शिवजी बोले—हे देवी! तुम्हारी इच्छा पूरी करने हेतु मैं तुम्हारे ही नाम से घुश्मेश्वर कहलाता हुआ यहां निवास करूंगा। यह कहकर शिवजी ज्योतिर्मय रूप में शिवलिंग में स्थित हो गए। वह सरोवर शिवालय नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सरोवर के दर्शनों के बाद घुश्मेश्वर लिंग का दर्शन करने से अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार शिवजी वहां सदा के लिए स्थित हो गए। उधर, सुधर्मा भी सुदेहा के साथ वहां आ पहुंचे और उन्हें सारी बातें ज्ञात हो गईं। सुदेहा अपनी करनी पर बहुत लज्जित हुई और उसने सबसे क्षमायाचना की। उसके मन का मैल धुल गया। तत्पश्चात उन सबने मिलकर शिवलिंग की एक सौ एक परिक्रमा कीं और उसके बाद सुखपूर्वक घर को चले गए। हे मुनियो! इस प्रकार मैंने आपको बारह शिव ज्योतिर्लिंगों की कथा एवं माहात्म्य सुनाया। जो प्राणी भक्ति भावना से इसे सुनता अथवा पढ़ता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

चौंतीसवां अध्याय

श्रीविष्णु को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति

व्यासजी बोले—सूत जी के वचन सुनकर सभी ऋषिगणों ने उनकी बहुत प्रशंसा की। तत्पश्चात वे बोले—सूत जी आप सबकुछ जानते हैं इसलिए हम अपनी जिज्ञासा की शांति के लिए आपसे प्रश्न पूछते हैं। अब आप हमें हरिश्वर नामक शिवलिंग का माहात्म्य बताइए। हमने सुना है कि इसी शिवलिंग के पूजन के फलस्वरूप भगवान श्रीहरि विष्णु को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति हुई थी।

ऋषिगणों द्वारा किए गए प्रश्नों को सुनकर सूत जी बोले—हे मुनिगणो! एक समय की बात है। पृथ्वीलोक पर दैत्यों का अत्याचार बढ़ने लगा। वे अत्यंत वीर और बलशाली हो गए तथा उन्होंने मनुष्यों को प्रताड़ित करना आरंभ कर दिया। यही नहीं, वे देवताओं के भी घोर शत्रु हो गए और उन्हें भी दण्डित करने लगे। संसार से धर्म का लोप होने लगा क्योंकि दैत्य अधर्मी थे और अन्य मनुष्यों को भी पूजन नहीं करने देते थे। इस प्रकार दुष्ट दैत्यों से दुखी होकर देवता भगवान श्रीहरि विष्णु की शरण में गए। उन्होंने विष्णुजी को अपने सारे दुख बताए तथा उनसे दुखों को दूर करने की प्रार्थना की। तब सब देवताओं को समझाकर उन्होंने वापस भेज दिया और स्वयं कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान शिव की आराधना करने लगे।

भगवान विष्णु ने कैलाश पर्वत पर जाकर सर्वेश्वर शिव का पार्थिव लिंग स्थापित किया और विधि-विधान से परमेश्वर शिव की आराधना आरंभ कर दी। श्रीहरि ने घोर तपस्या की फिर भी शिवजी प्रसन्न न हुए। तब उन्होंने देवाधिदेव महादेव जी को संतुष्ट करने के लिए शिवजी के सहस्रनामों का पाठ आरंभ कर दिया। श्रीहरि शिवजी का एक नाम लेते और एक कमल का पुष्प उन्हें अर्पित करते। इस प्रकार उन्हें शिव सहस्रनाम का पाठ करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। तब एक दिन शिवजी ने भगवान विष्णु की तपस्या की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

विष्णु भगवान प्रतिदिन एक हजार कमल के फूलों से उनका पूजन करते थे। शिवजी ने एक फूल छिपा दिया। जब पूजा करते हुए एक फूल कम पड़ा तो विष्णुजी को बहुत आश्चर्य हुआ और वे इधर-उधर फूल ढूंढ़ने लगे। जब फूल कहीं पर भी नहीं मिला तो उन्होंने पूजन को पूर्ण करने के लिए अपने कमल के समान नेत्र को निकालकर त्रिलोकीनाथ शिवजी को अर्पण कर दिया। श्रीहरि विष्णु की ऐसी उत्तम भक्ति भावना देखकर शिवजी ने उन्हें साक्षात दर्शन दिए। शिवजी को इस प्रकार अपने सामने पाकर विष्णुजी उनकी स्तुति करने लगे।

तब शिवजी बोले—हे विष्णो! तुम्हारी उत्तम भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूं। मांगो, क्या वर मांगना चाहते हो। शिवजी के वचनों को सुनकर विष्णुजी बोले—हे देवाधिदेव! भगवान शिव आप तो अंतर्यामी हैं। सबकुछ जानते हैं। आप अपने भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं। प्रभो! इस समय दैत्यों ने पूरे संसार में घोर उपद्रव किया हुआ है। सारे मनुष्य एवं देवता

भय से पीड़ित हैं। भगवन्! मेरे अस्त्र-शस्त्रों से दैत्यों पर काबू नहीं पाया जा सकता, इसीलिए मैं आपकी शरण में आया हूं। शिवजी ने जब विष्णुजी के ऐसे वचन सुने तब उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया जिससे विष्णुजी ने सभी राक्षसों का नाश कर दिया। इस प्रकार सब सुखी हो गए।

पैंतीसवां अध्याय

शिव सहस्रनाम-स्तोत्र

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! भगवान श्रीहरि विष्णु ने जिन सहस्रनाम स्तोत्रों द्वारा त्रिलोकीनाथ भगवान शिव को प्रसन्न किया था और जिसके प्रभाव स्वरूप उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया, उनका माहात्म्य हमें सुनाइए।

ऋषियों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भक्तवत्सल भगवान शिव को प्रसन्न करने वाले शिवजी के सहस्त्रनाम मैं आपको सुनाता हूं।

शिवः, हरः, मृडः, रुद्रः, पुष्करः, पुष्पलोचनः, अर्थिगम्यः, सदाचारः, शर्वः, शंभुः, महेश्वरः, चंद्रापीडः, चंद्रमौलि, विश्वम्, विश्वंभरेश्वरः, वेदांतसारसंदोहः, कपाली, नीललोहितः, ध्यानाधारः, अपरिच्छेद्यः, गौरीभर्ता, गणेश्वरः, अष्टमूर्तिः, विश्वमूर्तिः, त्रिवर्गस्वर्गसाधनः, ज्ञानगम्य, दृढ़प्रज्ञः, देवदेवः, त्रिलोचनः, वामदेवः, महादेवः, पटुः, परिवृढः, दृढ़ः, विश्वरूप, विरूपाक्षः, वागीशः, शुचिसत्तमः, सर्वप्रमाणसंवादी, वृषांकः, वृषवाहनः, ईशः, पिनाकी, खटवांगी, चित्रवेषः, चिरंतनः, तमोहरः, महायोगी, गोप्ता, ब्रह्मा, धूर्जटि, कालकालः, कृत्तिवासाः, सुभगः, प्रणवात्मकः, उन्नघ्रः, पुरुषः, जुष्यः, दुर्वासाः, पुरशासनः, दिव्यायुधः, स्कंदगुरुः, परमेष्टी, परात्परः, अनादिमध्यनिधनः, गिरीशः, गिरिजाधवः, कुबेरबंधुः, श्रीकंठः, लोकवर्णोत्तमः, मृदुः, समाधिवेद्यः, कोदंडी, नीलकंठ, परश्वधी, विशालाक्षः, मृगव्याधः, सुरेशः, सूर्यतापनः, धर्मधाम, क्षमाक्षेत्रम्, भगवान, भगनेत्रभित्, उग्रः, पशुपतिः, तार्क्ष्यः, प्रियभक्तः, परंतपः, दाता, दयाकरः, दक्षः, कपर्दी, कामशासनः, श्मशाननिलयः, सूक्ष्मः, श्मशानस्थ, महेश्वरः, लोककर्ता, मृगपतिः, महाकर्ता, महौषधिः।

उत्तरः, गोपतिः, गोप्ता, ज्ञानगम्यः, पुरातनः, नीतिः, सुनीतिः, शुद्धात्मा, सोमः, सोमरतः, सुखी, सोमपः, अमृतपः, सौम्यः, महातेजाः, महाद्युतिः, तेजोमयः, अमृतमयः, अन्नमयः, सुधापतिः, अजातशत्रुः, आलोकः, संभाव्यः, हव्यवाहनः, लोककरः, वेदकरः, सूत्रकारः, सनातनः, महर्षिकपिलाचार्यः, विश्वदीप्तिः, त्रिलोचनः, पिनाकपाणिः, भूदेवः, स्वस्तिदः, स्वस्तिकृत्, सुधीः, धातृधामा, धामकरः, सर्वगः, सर्वगोचरः, ब्रह्मसृक्, विश्वसृक, सर्गः, कर्णिकारप्रियः, कविः, शाखः, विशाखः, गोशाखः, शिवः, भिषगनुत्तमः, गंगाप्लवोदकः, भव्यः, पुष्कलः, स्थपतिः, स्थिरः, विजितात्मा, विधेयात्मा, भूतवाहनसारथिः, सगणः, गणकायः, सुकीर्तिः, छिन्नसंशयः, कामदेवः, कामपालः, भस्मोद्धूलितविग्रहः, भस्मप्रियः, भस्मशायी, कामी, कांतः, कृतागमः, समावर्तः, अनिवृत्तात्मा, धर्मपुंजः, सदाशिवः, अकल्मषः, चतुर्बाहु, दुरावासः, दुरासदः, दुर्लभः, दुर्गमः, दुर्गः, सर्वायुधविशारदः, अध्यात्मयोगनिलयः।

सुतंतु, तंतुवर्धनः, शुभांगः, लोकसारंगः, जगदीशः, जनार्दनः, भस्मशुद्धिकरः, मेरुः,

ओजस्वी, शुद्धविग्रह, असाध्यः, साधुसाध्यः, भृत्यमर्कटरूपधृक्, हिरण्यरेताः पौराणः, रिपुजीवहरः, बली, महाह्रदः, महागर्तः, सिद्धवृंदारवंदितः, व्याघ्रचर्माबरः, व्याली, महाभूतः, महानिधिः, अमृताशः, अमृतवपुः, पांचजन्य, प्रभंजन, पंचविंशतितत्वस्थः, पारिजातः, परावरः, सुलभः, सुव्रतः, शूरः, ब्रह्मवेदनिधिः, निधिः, वर्णाश्रमगुरुः, वर्णी, शत्रुजित्, शत्रुतापनः, आश्रमः, क्षपणः, क्षाम्ः, ज्ञानवान, अचलेश्वरः, प्रमाणभूतः, दुर्ज्ञेयः, सुपर्णः, वायुवाहनः, धनुर्धरः, धनुर्वेदः, गुणराशिः, गुणाकरः।

सत्यः, सत्यपरः, अदीनः, धर्मांगः, धर्मसाधनः, अनंतदृष्टिः, आनंदः, दण्डः, दमयिता, दमः, अभिवाद्यः, महामायः, विश्वकर्मविशारदः वीतरागः, विनीतात्मा, तपस्वी, भूतभावनः, उन्मत्तवेषः, प्रच्छन्नः, जितकामः, अजितप्रियः, कल्याणप्रकृतिः, कल्पः, सर्वलोक प्रजापतिः, तरस्वी, तारकः, धीमान, प्रधानः, प्रभुः, अव्ययः, लोकपालः, अंतर्हितात्मा, कल्पादिः, कमलेक्षणः, वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञः, अनियमः, नियताश्रयः, चंद्रः, सूर्यः, शनिः, केतुः, वरांगः, विद्रुमच्छविः, भक्तिवश्यः, परब्रह्म, मृगबाणार्पण, अनघः, अद्रिः, अद्रयालयः, कांतः, परमात्मा, जगद्गुरुः, सर्वकर्मालयः, तुष्टः, मंगल्यः, मंगलावृतः, महातपाः, दीर्घत्पाः, स्थविष्ठः, स्थविरो, ध्रुवः, अहः संवत्सरः, व्याप्तिः, प्रमाणम्, परमं तपः।

संवत्सरकरः, मंत्रप्रत्ययः, सर्वदर्शनः, अजः, सर्वेश्वरः, सिद्धः, महारेताः, महाबलः, योगी योग्यः, महातेजाः, सिद्धिः, सर्वादि, अग्रहः, वसुः, वसुमनाः, सत्यः, सर्वपापहरोहरः, सुकीर्तिशोभनः, श्रीमान्, वेदांग, वेदविन्मुनिः, भ्राजिष्णुः, भोजनम्ः, भोक्ता, लोकनाथ, दुराधरः, अमृतः शाश्वतः, शांतः, बाणहस्तः प्रतापवान्, कमण्डलुधरः, धन्वी, अवागमनसगोचरः, अतींद्रियो महामायः, सर्वावासः, चतुष्पथः, कालयोगी, महानादः, महोत्साहो महाबलः, महाबुद्धिः, महावीर्यः, भूतचारी, पुरंदरः, निशाचरः, प्रेतचारी, महाशक्तिर्महाद्युतिः, अनिर्देश्यवपुः, श्रीमान्, सवाचार्यमनोगतिः, बहुश्रुतः, अमहामायः, नियतात्मा, ध्रुवोध्रुवः, ओजस्तेजोद्युतिधरः, जनकः, सर्वशासनः, नृत्यप्रियः, नित्यनृत्यः, प्रकाशात्मा, प्रकाशकः, स्पष्टाक्षरः, बुधः, मंत्रः, समानः, सारसंप्लवः, युगादिकृद्युगावर्त, गंभीरः, वृषवाहनः, इष्टः, अविशिष्टः, शिष्टेष्टः, सुलभः, सारशोधनः, तीर्थरूपः, तीर्थनामा, तीर्थदृश्यः, तीर्थदः, अपांनिधिः, अधिष्ठानम्, दुर्जयः, जयकालवित्ः, प्रतिष्ठितः, प्रमाणज्ञः, हिरण्यकवचः, हरिः, विमोचनः, सुरगणः, विद्येशः, विंदुसंश्रयः, बालरूपः, अबलोन्मत्तः, अविकर्ता, गहनः, गुहः, करणम्, कारणम्, कर्ता, सर्वबंधविमोचनः, व्यवसायः, व्यवस्थानः, स्थानदः। जगदादिजः, गुरुदः, ललितः, अभेदः, भावात्मात्मनि संस्थितः, वीरेश्वर, वीरभद्रः, वीरासनविधिः, विराट, वीरचूड़ामणिः।

वेत्ता, चिदानंद, नदीधरः, आज्ञाधारः, त्रिशूली, शिपिविष्टः, शिवालयः, वालखिल्य, महाचापः, तिग्मांशुः, बधिरः, खगः, अभिरामः, सुशरणः, सुब्रह्मण्यः, सुधापतिः, मघवान् कौशिकः, गोमान्, विरामः, सर्वसाधनः, ललाटाक्षः, विश्वदेह, सारः, संसार चक्रभृत्, अमोघदण्डः, मध्यस्थः, हिरण्यः, ब्रह्मवर्चसी, परमार्थः, परो मायी, शंबरः, व्याघ्रलोचनः, रुचिः, विरचिः, स्वर्बंधु, वाचस्पति, अहर्पतिः, रविः, विरोचनः, स्कंदः, शास्ता वैवस्वतो यमः, युक्तिरुन्नतकीर्तिः, सानुरागः, परंजयः, कैलासाधिपतिः, कांतः, सविता, रविलोचनः, विद्वत्तमः,

वीतभयः, विश्वभर्ता, अनिवारितः, नित्यः, नियतकल्याणः, पुण्यश्रवणकीर्तनः, दूरश्रवाः, विश्वसहः, ध्येयः, दुःस्वप्नाशनः, उत्तारणः, दुष्कृतिहा, विज्ञेयः, दुस्सहः, अभवः, अनादिः, भूर्भुवोलक्ष्मीः, किरीटी, त्रिदशाधिपः, विश्वगोप्ता, विश्वकर्ता, सुवीरः, रुचिरागंद, जननः, जनजन्मादिः, प्रीतिमान्, नीतिमान्, घुवः, वसिष्ठः, कश्यपः, भानुः, भीमः, भीमपराक्रमः, प्रणवः, सत्पथाचारः, महाकोशः, महाधनः, जन्माधिपः, महादेवः, सकलागमपारगः, तत्वम्।

तत्ववित्, एकात्मा, विभुः, विश्वभूषणः, ऋषिः, ब्राह्मणः, ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः, पंचयज्ञसमुत्पत्तिः, विश्वेशः, विमलोदयः, आत्मयोनिः, अनाद्यंतः, वत्सलः, भक्तलोकधृक्, गायत्रीवल्लभः, प्रांशु, विश्वावासः, प्रभाकरः, शिशुः, गिरिरतः, सम्राट, सुषेणः सुरशत्रुहा, अमोघरिष्टनेमिः, कुमुदः, विगतज्वरः, स्वयं ज्योतिस्तनुज्योतिः, आत्मज्योतिः, अचंचल, पिंगलः, कपिलश्मश्रुः, भालनेत्र, त्रयीतनुः, ज्ञानस्कंदो महानीतिः, विश्वोत्पत्तिः, उप्लवः, भगो विवस्वानादित्यः, योगपारः, दिवस्पतिः, कल्याणगुणनामा, पापहा, पुण्यदर्शनः, उदारकीर्तिः, उद्योगी, सद्योगी सदसन्मयः, नक्षत्रमाली, नाकेशः, स्वाधिष्ठानपदाश्रयः, पवित्रपापहारी, मणिपूरः, नभोगतिः, हृत्पुण्डरीकमासीनः, शक्रः, शांतः, वृषाकपिः, उष्णः, गृहपतिः, कृष्णः, समर्थ, अनर्थनाशनः, अधर्मशत्रुः, अज्ञेयः, पुरुहूतः पुरुश्रुतः, ब्रह्मगर्भः, बृहद्गर्भः, धर्मधेनुः, धनागमः, जगद्धितैषी, सुगतः, कुमारः, कुशलागमः, हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्, नानाभूतरतः, ध्वनिः, अरागः, नयनाध्यक्षः, विश्वामित्रः, धनेश्वरः, ब्रह्मज्योतिः, वसुधामा, महाज्योतिरनुत्तमः, मातामहः, मातरिश्वा नभस्वान, नागहारधृक्, पुलस्त्यः, पुलहः, अगस्त्यः, जातूकर्ण्यः, पराशरः, निरावरणनिर्वारः, वैरंच्यः, विष्टश्रवाः, आत्मभूः, अनरुिद्धः, अत्रिः, ज्ञानमूर्तिः, महायशाः, लोकवीराग्रणीः, वीरः, चण्डः, सत्यपराक्रमः, व्यालाकल्पः, महाकल्पः।

कल्पवृक्षः, कलाधरः, अंलकरिष्णुः, अचलः, रोचिष्णुः, विक्रमोन्नतः, आयुः शब्दपतिः, वेगी प्लवनः, शिखिसारथिः, असंसृष्टः, अतिथिः, शक्रप्रमाथी, पादपासनः, वसुश्रवाः, हव्यवाहः, प्रतप्तः, विश्वभोजनः, जप्यः, जरादिशमनः, लोहितात्मा तनूनपात्, बृहदश्व, नभोयोनिः, सुप्रतीकः, तमिस्रहा, निदाघस्तपनः, मेघः, स्वक्षः, परपुरंजय, सुखानिलः, सुनिष्पन्न, सुरभिः शिशिरात्मकः, वसंतो माधवः, ग्रीष्मः, नभस्यः, बीजवाहनः, अंगिरा गुरुः, आत्रेयः, विमलः, विश्ववाहनः, पावनः, सुमतिर्विद्वान्ः, त्रैविद्यः, वरवाहनः, मनोबृद्धिरहंकारः, क्षेत्रज्ञः, क्षेत्रपालकः, जमदग्निः, बलनिधिः, विगालः, विश्वगालवः, अघोरः, अनुत्तरः, यज्ञःश्रेष्ठः, निःश्रेयसप्रदः, शैलः, गगनकुंदाभः, दानवारिः, अरिंदमः, रजनीजनकश्चारुः, निःशल्यः, लोकशल्यधृक्, चतुर्वेदः, चतुर्भावः, चतुरश्चतुरप्रियः, आम्नायः, समाम्नायः, तीर्थदेवशिवालयः, बहुरूपः, महारूपः, सर्वरूपश्चराचरः, न्यायनिर्मायको न्यायी, न्यायगम्यः, निरंजन, सहस्रमूर्द्धा, देवेंद्रः, सर्वशस्त्रप्रभंजन, मुण्डः, विरूपः, विक्रांतः, दण्डी, दांतः, गुणोत्तमः, पिंगलाक्षः, जनाध्यक्षः, नीलग्रीवः, निरामयः, सहस्रबाहु, सर्वेशः, शरण्यः, सर्वलोकधृक्, पद्मासनः, परंज्योतिः, पारम्पर्य्यफलप्रदः, पद्मगर्भः, महागर्भः, विश्वगर्भः, विचक्षणः।

परावरज्ञः, वरदः, वरेण्यः, महास्वनः, देवासुरगुरुर्देवः, देवासुरनमस्कृतः, देवासुरमहामित्रः, देवासुरमहेश्वरः, देवासुरेश्वरः, दिव्यः, देवासुरमहाश्रयः, देवदेवमयः, अचिंत्यः, देवदेवात्मसंभवः, सद्योनिः, असुरव्याघ्रः, देवसिंह, दिवाकरः, विबुधाग्रचरश्रेष्ठः,

सर्वदेवोत्तमोत्तमः, शिवज्ञानरतः, श्रीमान, शिखिश्रीपर्वतप्रियः, वज्रहस्तः, सिद्धखड्गः, नरसिंहनिपातनः, ब्रह्मचारी, लोकचारी, धर्मचारी, धनाधिपः, नंदी, नंदीश्वरः, अनंतः, नग्नव्रतधरः, शुचिः, लिंगाध्यक्षः, सुराध्यक्षः, योगाध्यक्षः, युगावहः, स्वधर्मा, स्वर्गतः, स्वर्गस्वरः, स्वरमयस्वनः, बाणाध्यक्षः, बीजकर्ता, धर्मवृद्धर्मसंभवः, दंभः, अलोभः, अर्थविच्छंभुः, सर्वभूतमहेश्वरः, श्मशाननिलयः, त्र्यक्षः, सेतुः, अप्रतिमाकृतिः, लोकोत्तरस्फुटालोकः, त्र्यंबकः, नागभूषणः, अंधकारिः, मुखद्वेषी, विष्णुकंधरपातनः, हीनदोषः, अक्षयगुणः, दक्षारिः, पूषदंतभित्, धूर्जटि, खण्डपरशुः, सकलो निष्कलः, अनघः, अकालः, सकलाधारः, पाण्डुराभः, मृडो नटः, पूर्णः, पूरयिता, पुण्यः, सुकुमारः, सुलोचनः, सामगेयप्रियः, अक्रूरः, पुण्यकीर्तिः, अनामयः, मनोजवः, तीर्थकरः, जटिलः, जीवितेश्वरः, जीवितांतकरः।

नित्यः, वसुरेता, वसुप्रदः, सद्गतिः, सस्कृतिः, सिद्धिः, सज्जातिः, खलकंटकः, कलाधरः, महाकालभूतः, सत्यपरायणः, लोकलावण्यकर्ता, लोकोत्तर सुखालयः, चंद्रसंजीवन शास्ता, लोकगूढः, महाधिपः, लोकबंधुर्लोकनाथः, कृतज्ञः, कीर्तिभूषणः, अनपायोऽक्षरः, कांतः, सर्वशस्त्रभृतां वरः, तेजोमयो द्युतिधरः, लोकानामग्रणीः, अणुः, शुचिस्मितः, प्रसन्नात्मा, दुर्जेयः, दुरतिक्रमः, ज्योतिर्मयः, जगन्नाथः, निराकारः, जलेश्वरः, तुंबवीणः, महाकोपः, विशोकः, शोकनाशनः, त्रिलोकपः, त्रिलोकेशः, सर्वशुद्धिः, अधोक्षजः, अव्यक्तलक्षणो देवः, व्यक्ताव्यक्तः, विशांपतिः, वरशीलः, वरगुणः, सारः, मानधनः, भयः, ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापालः, हंसः, हंसगतिः, वयः, वेधा विधाता धाता, स्रष्टा, हर्ता, चतुर्मुखः, कैलासशिखरावासी, सर्वावासी, सदागतिः, हिरण्यगर्भः, द्रुहिणः, भूतपालः, भूपतिः, सद्योगी, योगविद्योगी, वरदः, ब्राह्मणप्रियः, देवप्रियो देवनाथः, देवज्ञः, देवचिंतकः, विषमाक्षः, विशालाक्षः, वृषदो वृषवर्धनः, निर्ममः, निरहंकारः, निर्मोहः, निरुपद्रवः, दर्पहा दर्पदः, दृप्तः, सर्वर्तुपरिवर्तकः, सहस्रजित्, सहस्रार्चि, स्निग्ध प्रकृतिदक्षिणः, भूतभव्यभवन्नाथः, प्रभवः, भूतिनाशनः, अर्थः, अनर्थः, महाकोशः, परकार्यैक पण्डितः, निष्कण्टकः, कृतानंद, निर्व्याजो व्याजमर्दनः, सत्ववान्, सात्विक, सत्यकीर्तिः, स्नेहकृतागमः, अकंपितः, गुणग्राही, नैकात्मा, नैककर्मकृत्, सुप्रीतः, सुमुखः, सूक्ष्मः, सुकरः, दक्षिणानिलः, नंदिस्कंधधरः, धुर्यः, प्रकटः, प्रीतिवर्धनः, अपराजितः, सर्वसत्वः, गोविंदः।

सत्ववाहनः, अधृतः, स्वधृतः, सिद्धः, पूतमूर्तिः, यशोधनः, वाराहशृंगधृक्छृंगी, बलवान्, एकनायकः, श्रुतिप्रकाशः, श्रुतिमान, एकबंधु, अनेककृत, श्रीवत्सल शिवारंभः, शांतभद्रः, समः, यशः, भूशयः, भूषणः, भूतिः, भृतकृत, भूतभावनः, अकं पः, भक्तिकायः, कालहा, नीललोहितः, सत्यव्रतः, महात्यागी, नित्यशांतिपरायणः, परार्थवृत्तिर्वरदः, विरक्तः, विशारदः, शुभदः, शुभकर्ता, शुभनामः, शुभः, स्वयम्, अनर्थितः, अगुणः, साक्षी अकर्ता, कनकप्रभः, स्वभावभद्रः, मध्यस्थः, शत्रुघ्नः, विघ्ननाशनः, शिखण्डी कवची शूली, जटी मुण्डी च कुण्डली, अमृत्युः, सर्वदृक्सिंहः, तेजोराशिर्महामणिः, असंख्येयोऽप्रमेयात्मा, वीर्यवान् वीर्यकोविदः, वेद्य, वियोगात्मा, परावरमुनीश्वरः।

अनुत्तमो दुराधर्षः, मधुरप्रियदर्शनः, सुरेशः, शरणम्, सर्वः, शब्दब्रह्म सतांगतिः, कालपक्षः, कालकालः, कंकणीकृत वासुकिः, महेष्वासः, महीभर्ता, निष्कलंक, विशृंखलः,

द्युमणिस्तरणिः, धन्यः, सिद्धिदः, सिद्धिसाधनः, विश्वतः संवृतः, स्तुत्यः, व्यूढोरस्कः, महाभुजः, सर्वयोनिः, निरातंकः, नरनारायण प्रियः, निर्लेपो निष्प्रपंचात्मा, निर्व्यंग, व्यंगनाशनः, स्तव्यः, स्तवप्रियः, स्तोता, व्यासमूर्तिः, निरंकुशः, निरवद्यमयोपायः, विद्याराशिः, रसप्रियः, प्रशांतबुद्धि अक्षुण्णः, संग्रही, नित्यसुंदरः, वैयाघ्रधुर्यः, धात्रीशः, शाकल्यः, शर्वरीपतिः, परमार्थ, गुरुर्दत्तः, सूरिः, आश्रितवत्सलः, सोमः, रसज्ञ, रसदः, सर्वसत्वावलंबनः।

सूत जी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार श्रीहरि विष्णु ने प्रतिदिन सहस्रनामों का पाठ करके भगवान शिव की स्तुति एवं पूजन कर उनके लिंग पर प्रत्येक नाम पर कमल का पुष्प चढ़ाया।

छत्तीसवां अध्याय

शिव सहस्रनाम का फल

सूत जी बोले—हे मुनिगणो! श्रीहरि विष्णु ने भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु उनके सहस्रनामों का पाठ आरंभ किया। वे एक नाम का जाप करते और एक कमल पुष्प शिवजी को अर्पित करते। इस प्रकार वे प्रतिदिन सहस्त्र कमल पुष्प अपने आराध्य शिव को अर्पित करते थे। एक दिन शिवजी की लीलावश एक कमल का पुष्प कम पड़ गया तब अपने व्रत को पूरा करने हेतु श्रीहरि ने अपना एक नेत्र कमल के स्थान पर शिवजी को अर्पित किया। जिससे प्रसन्न होकर कल्याणकारी शिव ने उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया। भगवान शिव बोले—हे श्रीहरे! आपने मेरे स्वरूप का स्मरण करते हुए शिव सहस्रनाम का पाठ किया है इसलिए आपके सभी मनोरथों की सिद्धि होगी। मेरे द्वारा दिया गया यह सुदर्शन चक्र तुम्हें सदैव भयमुक्त करता रहेगा। जो भी मनुष्य प्रातःकाल शुद्ध हृदय एवं भक्तिभावना से प्रतिदिन मेरे सहस्त्र नामों का पाठ करेगा उसे सभी सिद्धियां प्राप्त हो जाएंगी। उसे किसी प्रकार का दुख या भय नहीं होगा। इस महास्तोत्र का सौ बार पाठ करने से अवश्य कल्याण होता है। सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं तथा अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार, इस सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्यों को सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है तथा उसकी सभी मनोकामनाएं अवश्य पूर्ण होती हैं। साथ ही वह जीवन-मरण के झंझटों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त करता है।*

भगवान शिव के इन उत्तम वचनों को सुनकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और बोले—हे देवाधिदेव महादेव जी! मैं आपका दास हूं और आपकी शरण में हूं। मैं सदा आपकी भक्ति में लगा रहूंगा। आप मुझ पर सदैव इसी प्रकार अपनी कृपादृष्टि बनाए रखें। तब शिवजी बोले—हे विष्णो! मैं तुम्हारी अनन्य भक्ति से संतुष्ट हूं। तुम सभी देवताओं में श्रेष्ठ एवं स्तुति के योग्य होगे। तुम इस जगत में विश्वंभर नाम से विख्यात होगे। यह कहकर शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए।

भगवान श्रीविष्णु भी वरदान से प्रसन्न होकर अपने आराध्य शिवजी का धन्यवाद करते हुए बैकुण्ठलोक को चले गए। फिर वे प्रतिदिन शिवजी के सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करने लगे और अपने भक्तों को भी इसका उपदेश दिया। हे मुनिगणो! इस प्रकार मैंने आपको शिव सहस्रनाम स्तोत्र का फल बताया। इसे पढ़ने अथवा सुनने से सभी पापों का नाश हो जाता है।

---

* भगवान शिव के प्रत्येक नाम से पहले ॐ लगाकर, नाम को चतुर्थी विभक्ति में करके यदि अंत में 'नमः' लगाकर संपूर्ण वाक्य का सस्वर उच्चारण करते हुए पूजन-अभिषेक आदि किया जाए, तो वह परम कल्याणकारी होता है।

सैंतीसवां अध्याय

शिव-भक्तों की कथा

सूत जी बोले—हे मुनियो! अब मैं आपको भगवान शिव की उपासना की एक कथा बताता हूं। यह कथा एक बार ब्रह्माजी ने देवर्षि नारद को सुनाई थी। ब्रह्माजी ने कहा—हे देवर्षि नारद! एक बार मैंने, विष्णुजी एवं देवी लक्ष्मी ने मिलकर भगवान शिव का पूजन किया, जिसके फलस्वरूप हमारी सभी कामनाएं पूरी हुईं। भगवान शिव का पूजन तो दुर्वासा, विश्वामित्र, दधीचि, शक्ति, गौतम, कर्णाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशंपायन, पाराशर, व्यास, उपमन्यु, याज्ञवल्क्य, जैमिनी, गर्ज आदि अनेक महामुनि सदा किया करते हैं। यही नहीं, शौनक, अतिथि एवं देवराज इंद्र, बसु, साध्य, गंधर्व, किन्नर आदि देवता ही नहीं हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, बाणासुर, वृषपर्वादनु आदि महादानव भी त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की भक्ति में मग्न रहते हैं। वासुकि, शेष, तक्षक, गरुड़ आदि पक्षीगण भी शिवजी के परम भक्त हैं और उनका पूजन करते हैं। सूर्य, चंद्र, स्वायंभुव राजा मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, ऋषभ, भरत आदि अनेक गणमान्य, कीर्तिप्राप्त महाराज और सम्राट भी शिवजी के परम भक्त हुए हैं।

राजा दिलीप रघु नीतिज्ञ गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से अयोध्या के सूर्यवंशी राजा दशरथ ने अपनी रानियों के साथ भगवान शिवजी का पूजन किया था। तब सर्वेश्वर शिव ने अपनी कृपादृष्टि उन पर कर अपना आशीर्वाद प्रदान किया था। शिवजी के पूजन के फलस्वरूप ही राजा दशरथ की बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से श्रीविष्णु के अवतार श्रीराम, सुमित्रा से शेषावतार लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयी के गर्भ से भरत ने जन्म लिया। श्रीराम भगवान शिव के परम भक्त थे और गले में रुद्राक्ष की माला धारण करते थे।

महर्षि वशिष्ठ ने अपनी तपस्या के बल से सुद्युम्न को पुत्र प्राप्त होने का वरदान प्रदान किया था। एक दिन सुद्युम्न घूमते-घूमते उस वन में पहुंच गए, जहां पहुंचकर प्रत्येक पुरुष स्त्री हो जाता था। ऐसा भगवान शिव के पार्वती जी को दिए गए वरदान के कारण होता था। उस वन में पहुंचकर सुद्युम्न भी स्त्री बन गए। स्त्री भाव को प्राप्त हो जाने के कारण वे बहुत दुखी थे, तब उन्होंने भक्तिभाव से भगवान शिव की आराधना की। उन्होंने शिवजी का पार्थिव लिंग स्थापित किया और उसका पूजन करके आराधना आरंभ कर दी। शिवजी ने प्रसन्न होकर उनके दुख को दूर किया। शिवजी की कृपा से सुद्युम्न एक माह पुरुष और एक माह स्त्री बन जाते थे। कुछ समय पश्चात उन्होंने वन में जाकर शिवजी की घोर तपस्या की तब भगवान शिव की कृपा से उन्हें शिव-भक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हुई।

इसी प्रकार, श्रीविष्णु जी के अवतार श्रीकृष्ण ने त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की बदरीगिरि नामक पर्वत पर सात महीने तक अखण्ड तपस्या कर उन्हें प्रसन्न किया था। देवाधिदेव महादेवजी ने उन पर अपनी कृपा की, जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण ने पूरे ब्रह्माण्ड को अपने

वश में कर लिया था। यही नहीं, उन्होंने अनेक राक्षसों एवं दैत्यों का संहार भी किया था। इस संसार में वे गुरु के रूप में पूजित हुए। श्रीकृष्ण के वंश में उत्पन्न प्रद्युम्न, सांब भी भगवान शिव के परम भक्त हुए। मुनियो! भक्तवत्सल कल्याणकारी भगवान शिव की आराधना में देवता, ऋषि, मुनि, मनुष्य और राक्षस भी सदा तत्पर रहते हैं। शिवजी के भक्तों की गणना असंभव है।

अड़तीसवां अध्याय

शिवरात्रि का व्रत-विधान

ऋषि बोले—हे महामुने सूत जी! जिस व्रत के करने से त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव प्रसन्न होते हैं, वह व्रत हमें सुनाइए। तब ऋषियों के प्रश्न को सुनकर सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! पूर्वकाल में एक बार माता पार्वती ने भगवान शिव से यह प्रश्न पूछा कि स्वामी! किस विधि एवं व्रत से संतुष्ट होकर आप अपने भक्तों को भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं? तब सर्वेश्वर शिव बोले—हे देवी! मुझे प्रसन्न करने एवं भोग-मोक्ष प्राप्त करने के लिए तो अनेकों व्रत हैं। वेदों को जानने वाले उत्तम महर्षि दस उपवासों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इन व्रतों का विधि-विधान मैं आपको बताता हूं। प्रत्येक महीने की अष्टमी को व्रत करें तथा रात के समय ही व्रत को खोलकर भोजन ग्रहण करें परंतु कालाष्टमी पर रात में भी भोजन न करें। दिन के समय व्रत रखकर मेरा पूजन करें और रात्रि के समय भोजन लें। शुक्ल पक्ष की एकादशी को रात में भी भोजन न करें। इसी प्रकार शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी में रात को भोजन करें परंतु कृष्णपक्ष की त्रयोदशी पर रात में भी भोजन न करें।

इन सभी व्रतों में शिवरात्रि का व्रत सर्वोत्तम माना गया है। शिवरात्रि का व्रत फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष में होता है। इस दिन प्रातःकाल जल्दी जागें। नित्य कर्म करने के पश्चात शिव मंदिर में जाकर विधिपूर्वक भगवान शिव का पूजन करने के पश्चात उनसे प्रार्थना करें कि हे नीलकण्ठ! मैं आज इस शिवरात्रि के उत्तम व्रत को धारण कर रहा हूं। आपसे मेरी कामना है कि आप मेरे व्रत को निर्विघ्न पूर्ण करें। काम, क्रोध, शत्रु आदि मेरा कुछ न बिगाड़ सकें। भगवन्! आप सदा मेरी रक्षा करें। इस प्रकार संकल्प लें। तत्पश्चात रात होने पर पूजन की सभी सामग्री को एकत्रित कर ऐसे शिव मंदिर में जाएं जहां शिवलिंग की प्रतिष्ठा शास्त्रों के अनुसार की गई हो। शरीर को स्नान से शुद्ध करके स्वच्छ वस्त्र पहनकर आसन पर बैठकर भगवान शिव का पूजन करें। एक सौ आठ बार शिवमंत्र का उच्चारण करते हुए जलधारा शिवजी को अर्पित करें। इसी जलधारा से अर्पित की गई वस्तुओं को नीचे उतारें। तत्पश्चात गुरु मंत्र का जाप करते हुए शिवजी को काले तिल चढ़ाएं। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र भीम, महान, भीम, ईशान नामक आठ शिव नामों का उच्चारण करते हुए कमल और कनेर के फूल शिवजी पर चढ़ाएं। फिर धूप, दीप और नैवेद्य अर्पित कर उन्हें नमस्कार करें। जप हो जाने पर धेनुमुद्रा दिखाकर जल से उसका तर्पण करें। तत्पश्चात विधिपूर्वक विसर्जन करें। इस प्रकार रात्रि के पहले पहर में पूजन करें।

रात्रि का दूसरा पहर होने पर पुनः शिवलिंग पर गंध, पुष्प आदि द्रव्यों द्वारा सर्वेश्वर शिव का पूजन करें। दो सौ सोलह शिव मंत्र का जाप करते हुए पार्थिव लिंग पर जल धारा चढ़ाएं। तिल, जौ, चावल, बेलपत्र, अर्घ्य, बिजौर आदि वस्तुओं से पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात खीर का नैवेद्य अर्पित करें तथा पुनः शिव मंत्र का जाप करें। ब्राह्मणों को भोजन कराएं और

संकल्प करें। फल और फूल अर्पित कर उसका विसर्जन करें। तीसरे पहर में ही विधि-विधान से पूजन करें परंतु इस पहर में जौ की जगह गेहूं और आक के फूलों से पूजन करें। पूजन के पश्चात कपूर से आरती करें। अर्घ्य के रूप में अनार अर्पित करें। फिर ब्राह्मण को भोजन कराएं और संकल्प लें। चौथा प्रहर आरंभ होने पर शिवजी का आवाह्न करके उड़द, कंगनी, मूंग व सात धातुओं, शंख फूल एवं बिल्व अदि को मंत्र-जाप करते हुए अर्पित करें। तत्पश्चात केले एवं अन्य फल मिष्ठान अर्पित करें और जप करें। फिर सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प करें। सूर्योदय तक उत्सव करें। फिर स्नान करके भगवान शिव का पूजन करें। तत्पश्चात संकल्प किए हुए ब्राह्मणों को बुलाकर भोजन कराएं, फिर शिवजी से प्रार्थना करें।

हे दयानिधान! कृपानिधान! देवाधिदेव भगवान शिव! मैंने जाने-अनजाने आपकी भक्ति में तत्पर हो आपका व्रत और पूजन किया है। आप मुझ पर कृपा कर इस पूजन को स्वीकार करें। हे प्रभु! मैं चाहे जहां भी रहूं मेरी भक्ति सदा आप में रहे, यह कहकर पुष्पांजलि अर्पित कर ब्राह्मण को तिलक लगाएं और उसके चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लें। इस प्रकार विधिपूर्वक किए गए शिवरात्रि के व्रत का बहुत अधिक माहात्म्य है। इस व्रत से शिवजी के सान्निध्य की प्राप्ति होती है और मोक्ष पाकर वह मनुष्य सांसारिक बंधनों से छूट जाता है। इस उत्तम व्रत का माहात्म्य श्रीपार्वती जी एवं श्रीहरि विष्णु ने भी सुना। फिर शिव महिमा का गुणगान करते हुए वे बैकुंठलोक को चले गए और वहां जाकर विष्णुजी ने लोक कल्याण हेतु इस महाव्रत को किया।

उनतालीसवां अध्याय

शिवरात्रि-व्रत उद्यापन की विधि

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! अब मैं आपको शिवरात्रि के महाव्रत की उद्यापन विधि बताता हूं। चौदह वर्षों तक शिवरात्रि के व्रत का नियमपूर्वक पालन करना चाहिए। त्रयोदशी के दिन सिर्फ एक बार भोजन करें। शिव चतुर्दशी को निराहार व्रत को पूरा करें। रात को शिवालय में गौरीतिलक मण्डप की रचना करें। उसके बीच में लिंग व भद्र मण्डल की रचना करें। उसी स्थान पर प्रजापत्य नामक कलशों की स्थापना करें। उस कलश के वाम भाग में पार्वती जी एवं दक्षिण में शिवजी की प्रतिमा स्थापित करें एवं उनका पूजन करें। व्रत करने वाले मनुष्यों को ऋत्विजों के साथ आचार्य का वरण करके उनकी आज्ञा से शिवजी का आवाहन करके विसर्जन तक पूरी रात्रि शिवजी का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। भगवत संबंधी कीर्तन, गीत व नृत्य करते हुए रात बितानी चाहिए। प्रातः स्नानादि से निवृत्त हो विधि के अनुसार होम करें फिर प्रजापत्य का पूजन कर ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराएं। भोजन कराने के पश्चात ऋत्विजों को वस्त्र, आभूषण दें तथा बछड़े सहित गौ का दान आचार्य को करें। तत्पश्चात शिवजी से प्रार्थना करें कि हे देवाधिदेव! आप हम पर प्रसन्न हों और हमारी पूजा स्वीकार करें। यह कहकर मण्डप की सब सामग्री भी आचार्य को दान कर दें। तत्पश्चात नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर प्रेम से महाप्रभु देवाधिदेव भक्तवत्सल भगवान शिव से प्रार्थना करें।

हे देवाधिदेव! महादेव! देवेश्वर! शरणागतवत्सल! शिवरात्रि के इस महाव्रत से संतुष्ट होकर आप मुझ पर कृपा करें। प्रभो! मैंने भक्तिपूर्वक विधिनुसार इस शुभ व्रत को पूर्ण किया है, फिर भी यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो या कुछ कमी रह गई हो तो उसे क्षमा करें और मुझ पर अपनी कृपादृष्टि करें। मैंने जाने-अनजाने में जो भी जप-पूजन किया है, उसे सफल कर स्वीकार करें।

इस तरह शिवजी से प्रार्थना कर उन्हें नमस्कार करें। जो मनुष्य इस विधि के अनुसार इस शुभ व्रत को पूर्ण करता है, उसका व्रत अवश्य ही सफल होता है। इस व्रत के प्रभाव से उस मनुष्य को मनोवांछित सिद्धि प्राप्त होती है।

चालीसवां अध्याय

निषाद चरित्र

सूत जी बोले—हे ऋषियो! प्राचीनकाल में गुरु द्रुह नामक भील अपने परिवार के साथ जंगल में रहता था। उसका कार्य पशुओं का वध करना था। इसी तरह से वह अपने परिवार का लालन-पालन करता था। एक दिन की बात है, उसके घर में खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं था, तब उसके माता-पिता एवं अन्य सदस्य भूख से व्याकुल होकर भील से बोले कि हम भूख से मर रहे हैं, कुछ खाने का प्रबंध करो। यह सुनकर उस भील ने अपना धनुष-बाण लिया और शिकार की तलाश में चल दिया। संयोगवश यह शिवरात्रि का ही पावन दिन था। शिकारी दर-दर भटकता रहा परंतु उसे कुछ न मिला। धीरे-धीरे रात घिर आई परंतु उसने खाली हाथ घर न लौटने का निश्चय कर लिया था। इसलिए वह तालाब के किनारे बैठ गया कि जो भी पशु जल पीने यहां आएगा, उसी का शिकार कर लूंगा। ऐसा विचार कर वह बेल के पेड़ पर बैठ गया।

रात घिर आई थी। तभी वहां एक हिरनी जल पीने के लिए आई। उसे देखकर भील ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। उसी समय ओस में भीगे कुछ बेल के पत्ते वहां स्थित शिवजी के ज्योतिर्लिंग पर गिरे, जिससे भील द्वारा प्रथम पहर की पूजा पूरी हो गई और भील के पापों का नाश हो गया। उधर, भील के धनुष की टंकार से हिरनी सबकुछ जान गई। वह उस भील से प्रार्थना करने लगी—हे भील! आप मेरा वध करना चाहते हैं। मुझे मारकर अपनी भूख मिटाना चाहते हैं। यदि ऐसा करने से आपका दुख दूर होता है तो मैं मरने के लिए तैयार हूं परंतु आप थोड़ी देर रुक जाएं। मेरे बच्चे अकेले हैं। मैं उन्हें अपनी बहन के पास छोड़ आती हूं। तब भील को विश्वास दिलाकर वह हिरनी वहां से चली गई और भील उसके इंतजार में जागता रहा। इसलिए उसे जागरण का फल भी मिल गया।

कुछ देर पश्चात उस हिरनी की बहन उसे ढूंढते हुए वहां पहुंची। उसे मारने के लिए जब भील ने अपने हाथ में धनुष लिया तो पुनः बेल पत्र व ओस शिवलिंग पर चढ़ गए। इस प्रकार दूसरे पहर का भी पूजन हो गया परंतु उस हिरनी ने भी भील से प्रार्थना की कि मैं पहले अपने बच्चों को देख आऊं, तब तुम मुझे मारना। भील के आज्ञा दे देने पर वह हिरनी भी पानी पीकर वहां से चली गई और भील हिरनी का इंतजार करने लगा। इस प्रकार जागरण करते हुए रात का दूसरा पहर भी बीत गया।

जैसे ही रात्रि का तीसरा पहर आरंभ हुआ एक मोटा हिरन पानी पीने हेतु उस तालाब पर आया। उसे देखकर भील ने जैसे ही अपने धनुष पर बाण चढ़ाया वह हिरन डर गया। उसी समय ओस रूपी जल एवं बेलपत्र पुनः शिवलिंग पर गिरे, जिससे तीसरे पहर का पूजन संपन्न हुआ। वह हिरन भी शीघ्र लौटने का वादा करके अपने बच्चों को समझाने के लिए चला गया और भील उसके इंतजार में जागता रहा। उधर दूसरी ओर वे तीनों (दो हिरनी व

हिरन) घर पर एकत्रित हुए और उन्होंने सारी बातें एक-दूसरे को बताईं। जब तीनों को यह ज्ञात हुआ कि तीनों ने ही भीलराज से वादा कर लिया है, तब वे अपने बच्चों को ठीक से रहने की आज्ञा देकर वहां से तालाब की ओर चल दिए। बच्चों ने भी सोचा कि हम अपने माता-पिता के बिना कैसे रहेंगे? इसलिए वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

इस प्रकार हिरन, दो हिरनियां एवं उनके बच्चे एक साथ भीलराज के पास पहुंचे। इतने सारे शिकारों को एक साथ देखकर भीलराज बहुत प्रसन्न हुआ। जैसे ही उसने उन्हें मारने के लिए धनुष निकाला, एक बार फिर ओस रूपी जल एवं बेलपत्र वहां स्थित शिव ज्योतिर्लिंग पर चढ़ गए। इस प्रकार अनजाने में ही उसके चौथे पहर की पूजा भी पूरी हुई, जिसके फलस्वरूप उसके सभी पाप कर्म नष्ट हो गए और उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई। उसने अपने मन में विचार किया कि मुझसे श्रेष्ठ तो ये पशु हैं जो परोपकार के लिए अपने प्राण न्योछावर करना चाहते हैं और मैं मनुष्य होकर भी हत्या आदि बुरे कार्यों में संलग्न हूं। ऐसा विचार कर भील बोला—हे मृग! मृगियो! तुम धन्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। तुम जाओ और प्रसन्नतापूर्वक निवास करो, मैं तुम्हें नहीं मारूंगा।

भील के इतना कहते ही भगवान शिव ज्योतिर्लिंग से प्रकट हो गए। एकाएक इस प्रकार अपने सामने साक्षात देवाधिदेव महादेव को पाकर उस भील की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी और उसने प्रभु के चरण पकड़ लिए। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—

हे व्याधर्षे! तुम्हारे पूजन से मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुम शृंगवेरपुर जाकर आनंदपूर्वक निवास करो। प्रभु रामचंद्र तुम्हारे घर पधारेंगे और उनसे तुम्हारी मित्रता हो जाएगी। अंत में सुखों को भोगकर तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह कहकर शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए।

हे ऋषियो! इस प्रकार एक पापी व्याध से अनजाने में हुए शिव-चतुर्दशी व्रत से उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति हुई।

इक्तालीसवां अध्याय

मुक्ति वर्णन

ऋषि बोले—हे सूत जी! आपके मुख से हमने कई बार मुक्ति शब्द को सुना है। मुक्ति मिलने से क्या होता है? कृपा कर मुक्ति के स्वरूप का वर्णन करें। तब ऋषियों के प्रश्न को सुनकर सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! भगवान शिव की भक्तिपूर्वक आराधना करने अथवा उनका उपवास व्रत करने से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मोक्ष अर्थात मुक्ति मिल जाती है। सारुमी, सालोक्य, सान्निध्या तथा सायुज्य नामक चार प्रकार की मुक्ति बताई गई हैं। इस संसार से मुक्ति शिवजी की कृपा से ही प्राप्त होती है। धर्म, अर्थ और काम ये सब तो ब्रह्मा, विष्णु एवं अन्य देवता भी प्रदान करते हैं परंतु मुक्ति तो त्रिलोकीनाथ शिव ही प्रदान करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र नामक त्रिदेव क्रमशः सत्व, रज और तम गुणों के स्वामी माने जाते हैं। भगवान शिव तो परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सर्वेश्वर हैं और प्रकृति से परे हैं। कल्याणकारी सर्वेश्वर भगवान शिव ही विज्ञानमय, अव्यय, सर्वद्रष्टा, ज्ञानलभ्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल को देने वाले हैं। कैवल्य नामक पांचवीं मुक्ति है, जिससे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है और वही उसका पालन भी करती है। भगवान शिव का स्वरूप निष्कल और सकल दो प्रकार का है। भगवान शिव का स्वरूप तो स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, कुमार कार्तिकेय, नारद, व्यास, शुकदेव आदि महामुनि एवं देवता भी सही से नहीं जान पाए हैं।

त्रिलोकीनाथ भगवान शिव सच्चिदानंद, सत्य ज्ञान, अंत रहित अव्यय अविनाशी हैं। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं। वे शुद्ध, निर्मल एवं उपाधिरहित हैं। वे परमब्रह्म परमात्मा भगवान शिव ही सर्वत्र व्याप्त हैं। सूक्ष्म बुद्धि द्वारा भगवान शिव का भजन करने से ही अज्ञानता दूर होती है और सत्पुरुषों को शिवपद की प्राप्ति होती है। यद्यपि ज्ञान प्राप्ति अत्यंत कठिन हैं परंतु भगवान शिव का शुद्ध मन से भजन करने से मुक्ति का मार्ग सरल हो जाता है। सदाशिव भजन के अधीन हो ज्ञान एवं मुक्ति से अपने भक्तों को अपनी शरण में ले लेते हैं। जिसकी परम कृपा से मुक्ति का मार्ग आसान हो जाता है वह प्रेम का अंकुर रूप प्रेम लक्षण भक्ति ही है, जिसका वर्णन करना असंभव है। भक्ति, गुण युक्त एवं गुण रहित, अनेकों प्रकार की है, जिसका वर्णन अत्यंत कठिन है। वैद्य एवं स्वाभाविकी नामक भक्ति में स्वाभाविकी भक्ति श्रेष्ठ मानी जाती है। नैष्ठिकी भक्ति छः और अनैष्ठिकी भक्ति एक प्रकार की है। उसके बाद फिर वह विहित एवं अविहित भेदों से कई प्रकार की है। इन दोनों के नौ अंग हैं। इनके द्वारा कठिन मुक्ति भी सुलभ हो जाती है। इस प्रकार भक्ति और ज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उनमें भेद नहीं किया जा सकता। इनके साधक को सदा सुख की प्राप्ति होती है। अतः भगवान शिव की सदा भक्ति करनी चाहिए। मुनियो! मैंने मुक्ति का वर्णन आपसे किया जिसे सुनकर सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है।

बयालीसवां अध्याय

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं शिव के स्वरूपों का वर्णन

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं शिव कौन हैं? इनमें से कौन सगुण है और कौन निर्गुण? कृपा कर हमारी इस शंका को दूर करें और हमें उनके स्वरूप के बारे में बताएं। सूत जी ने ऋषियों के प्रश्न को सुनकर कहा—हे ऋषिगणो! वेदों का श्रेष्ठ ज्ञान रखने वाले यह मानते हैं कि निर्गुण परमात्मा ने सर्वप्रथम जिस सगुण रूप को उत्पन्न किया, वह रूप ही शिव है। उन्हीं से प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनों प्रकृति पुरुष ने जल के नीचे जिस स्थान पर कठिन तपस्या की थी, उसे पंचकोसी कहा जाता है, जो कि काशी में स्थित है। यह पूरा विश्व जल में व्याप्त है, यह सोचकर श्रीहरि विष्णु जल में ही सो गए थे और इसी कारण वे नारायण नाम से प्रसिद्ध हुए एवं प्रकृति रूपी माया नारायणी कहलाई। नारायण के नाभि कमल से ही पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा के उत्पन्न होने पर उन्होंने अपने को पैदा करने वाले के विषय में जानने के लिए घोर तप किया। तत्पश्चात उन्हें विष्णुजी के दर्शन हुए। तब ब्रह्मा और विष्णु दोनों में किसी बात को लेकर विवाद हो गया। इस विवाद को शांत करने के लिए 'महादेव' प्रकट हुए। तब लोकहित के लिए भगवान शिव पुनः ब्रह्माजी के ललाट से प्रकट हुए और रुद्र के नाम से विख्यात हुए। इसलिए सगुण और निर्गुण शिव में कोई अंतर नहीं है। भगवान शिव अनेक प्रकार की लीलाएं करने वाले हैं और अपने भक्तों को श्रेष्ठ गति प्रदान करने वाले हैं। ये ही ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु की सहायता के लिए यहां प्रकट हुए हैं।

सभी देवता भगवान शिव की भक्ति और पूजा करते हैं। जो मनुष्य अन्य देवताओं की भक्ति करते हैं वे अन्य देवताओं में विलीन होते हैं और जब उन देवताओं का रुद्र में विलय होता है तब उन्हें शिव भक्ति प्राप्त होती है जबकि भगवान शिव में आस्था रखने वाले सभी भक्त शीघ्र ही रुद्र स्वरूप हो जाते हैं। अज्ञान के कई प्रकार हैं, जबकि ज्ञान का कोई अन्य प्रकार नहीं है। ब्रह्माजी से लेकर तृण तक सभी शिवजी के रूप हैं। इस सृष्टि का आदि, मध्य एवं अंत सब शिव हैं। इस सृष्टि का अंत हो जाने पर भी शिव स्थित रहेंगे। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ही वेदों के रचयिता हैं। वे सब विद्याओं के स्वामी हैं। वही सृष्टि की रचना करते हैं। संसार में निवास करने वाले प्राणियों का पालन एवं संहार करने वाले सर्वेश्वर शिव ही हैं। देवाधिदेव महादेव ही कालों के महाकाल हैं। वे सबकुछ अपनी इच्छा के अनुसार करते हैं। कल्याणकारी भगवान शिव अनेक रूप होते हुए भी एक रूप ही हैं। यह उत्तम शिवज्ञान तत्वतः बताया गया है और इसे ज्ञानी मनुष्य ही जान सकते हैं।

हे मुनियो! इस प्रकार मैंने आपको देवाधिदेव! त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का तत्वज्ञान सुना दिया है। इस तत्वज्ञान को सुनने अथवा पढ़ने से सभी पापों से छूटकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

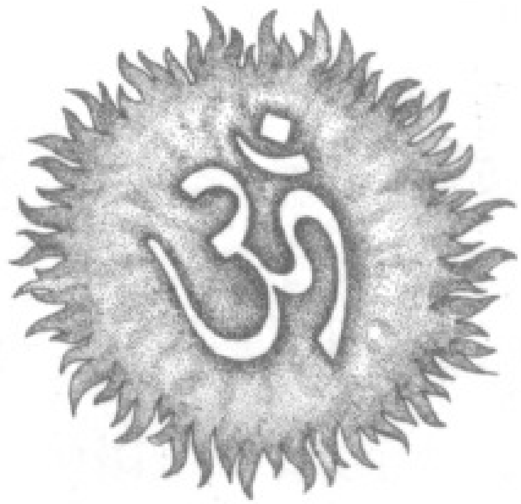

तैंतालीसवां अध्याय

ज्ञान निरूपण

ऋषि बोले—हे महामुनि सूत जी! जिस ज्ञान के द्वारा शिव स्वरूप की प्राप्ति होती है उस शिव ज्ञान के बारे में हमें बताकर कृतार्थ कीजिए। ऋषियों द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! एक बार की बात है कि नारद, शौनक, कुमार, व्यास, कपिल आदि मुनियों ने एक सभा का आयोजन किया जिसमें उन्होंने निश्चय किया कि सारा ब्रह्माण्ड शिव रूप है। उनकी इच्छा से ही इस जगत की रचना हुई है। वे ही हैं जिनके कारण यह संसार चलायमान है। वे चित्स्वरूप हैं और शुभ लक्षणों से युक्त वेदों को जानने वालों में श्रेष्ठ परम ब्रह्म परमात्मा हैं। शिवजी अज्ञान से परे ज्ञान के विशाल भंडार हैं। मनुष्यों के भ्रम के कारण ही शिव अनेक रूपों में दिखाई पड़ते हैं परंतु जब मनुष्य अज्ञान को मिटाकर ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है, तब वह सदाशिव के उस एक स्वरूप को जान और समझ सकता है।

जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड में सबको प्रकाशित करने वाला केवल एक सूर्य है, परंतु जल में उसके अनेक प्रतिबिंब दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार शिवजी भी एक होते हुए भ्रम के कारण अनेक रूप दिखाई देते हैं। इस संसार में हर प्राणी अपने अहंकार और घमंड का फल भोगता है। भगवान शिव तो भक्तवत्सल हैं, वे सदा ही अहंकार रहित हैं। उनका विधि-विधान एवं भक्ति भावना से किया गया पूजन पापों का नाश करने वाला तथा ज्ञान प्रदान करने वाला है। जब अज्ञान का नाश होता है तभी ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान के उदय से अहंकार का नाश हो जाता है। अहंकार के नष्ट होने से बुद्धि निर्मल होती है और मनुष्य भगवान शिव के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, वह जीवन-मरण के बंधनों से मुक्त हो जाता है। वह मनुष्य अपने शरीर को त्यागकर शिव में विलीन हो जाता है। इसी को मुक्ति कहा जाता है। संसार में ज्ञानी मनुष्य वही है, जिसे न कोई खुशी होती है और न ही कोई गम सताता है, जिसे अच्छे-बुरे का कोई अंतर नहीं पड़ता।

सुख और दुख दोनों ही समान रूप हैं। जब मनुष्य मन में मुक्ति की कामना लेकर आत्मयोग के द्वारा शरीर को शिव साधना में समर्पित कर देता है, तब वह सांसारिक व्याधियों से छूट जाता है। अतः मोक्ष की प्राप्ति के लिए भगवान सदाशिव से बढ़कर कोई देवता नहीं है। उनकी शरण में जाकर ही जीव संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

ब्राह्मणो! इस प्रकार वहां पधारे हुए ऋषियों ने आपस में यह निश्चय किया कि ज्ञान की बातों को अवश्य ही मन मस्तिष्क में मनुष्य को धारण करना चाहिए। इस प्रकार मैंने आपको आपके द्वारा पूछी गई सब बातें बता दी हैं। अब आप और क्या जानना चाहते हैं?

ऋषि बोले—हे व्यासशिष्य सूत जी! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप धन्य हैं और त्रिलोकीनाथ शिव के भक्तों में श्रेष्ठ हैं। आपकी अनुकंपा से हमारे मन की सभी शंकाए मिट गई हैं और पापों का नाश करने वाले और मोक्ष देने वाले शिवतत्व के ज्ञान की प्राप्ति हुई,

जिससे आज हमारा जीवन सफल हो गया है।

सूत जी बोले—हे द्विजो! जो मनुष्य श्रद्धाहीन, नास्तिक और भक्ति में रुचि नहीं रखता उसे शिव-तत्व ज्ञान का उपदेश नहीं देना चाहिए। इस शिव-तत्व ज्ञान का उत्तम उपदेश मुझे व्यास जी ने दिया है। यह ज्ञान उन्हें वेदों, पुराणों, शास्त्रों और इतिहास के अध्ययन से प्राप्त हुआ है। इसे एक बार सुनने से पापों का नाश हो जाता है। दुबारा सुनने से उत्तम भक्ति प्राप्त होती है और तीसरी बार सुनने से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए भोग और मोक्ष की कामना करने वालों को शिवतत्व ज्ञान को बार-बार सुनना चाहिए।

यह शिव विज्ञान शिवजी को अत्यंत प्रिय है। यह ज्ञान, भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। इससे शिवजी में भक्ति बढ़ती है। शिव पुराण की इस आनंददायिनी पुण्यमयी चौथी संहिता का नाम कोटिरुद्र संहिता है। इसका भक्तिपूर्वक अध्ययन अथवा श्रवण करने से परमगति की प्राप्ति होती है।

।। श्रीकोटिरुद्र संहिता संपूर्ण ।।

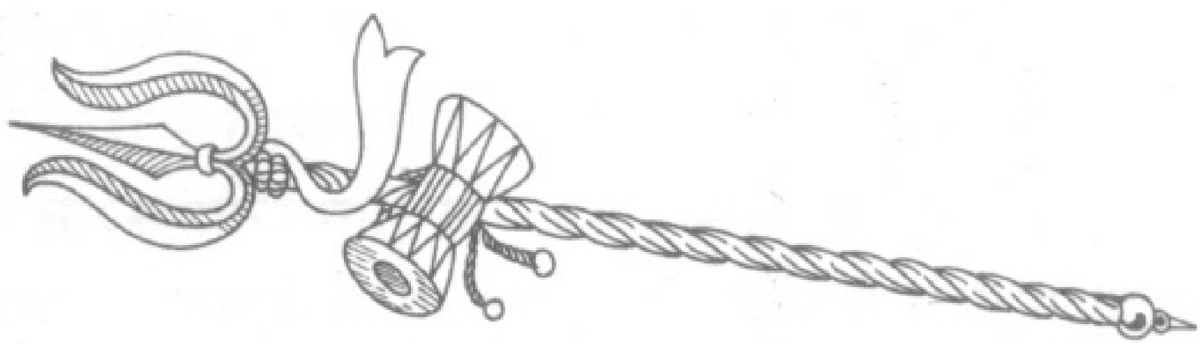

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीउमा संहिता

प्रथम अध्याय

श्रीकृष्ण-उपमन्यु संवाद

जो रजोगुण से संसार की सृष्टि करते हैं, सत्वगुण से सात भुवनों को धारण करके उनका भरण-पोषण करते हैं और तमोगुण से युक्त हो इस जगत का संहार करते हैं, जो इन तीनों गुणों की माया को त्यागकर पुनः शुद्ध रूप में स्थित हैं, उन सत्यानंद स्वरूप अनंत बोधमय, निर्मल, परमब्रह्म शिव का हम ध्यान करते हैं। वे सर्वेश्वर शिव ही सृष्टिकाल में ब्रह्मा, पालन के समय विष्णु और संहार के समय रुद्र नाम धारण करते हैं। सत्व गुण एवं सत्व भाव से ही उनकी प्राप्ति संभव है।

ऋषि बोले—हे महाज्ञानी व्यास शिष्य सूत जी! हम सब आपको नमस्कार करते हैं। आपने हम पर कृपा कर हमें कोटिरुद्र संहिता को सुनाया है। अब हमें उमा संहिता में वर्णित श्रीपार्वती जी और शिवजी की अद्भुत लीलाओं के बारे में बताइए। ऋषियों की इस प्रार्थना को सुनकर सूत जी बोले—हे मुनिगणो! आपकी प्रसन्नता के लिए मैं परम दिव्य भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले इस मंगलमय चरित्र को सुनाता हूं। पूर्वकाल में मुनि व्यास ने सनत्कुमार जी से इस कथा को सुना था।

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! श्रीकृष्ण पुत्र पाने की इच्छा लेकर कैलाश पर्वत पर तपस्या करने पहुंचे। वहां उन्होंने उपमन्यु को तपस्या करते देखा और उनसे सब बातें कहीं तथा शिव महिमा बताने के लिए भी कहा। तब उपमन्यु बोले—हे श्री कृष्ण! एक बार जप करते हुए मैंने शिवजी का दर्शन किया। उनके पास अव्यय, गुह्य एवं अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र भी थे। शिवजी का त्रिशूल अत्यंत शक्तिशाली है एवं सागर के जल को एक पल में सुखा सकता है। इसी त्रिशूल से शिवजी ने लवणासुर का वध किया था। वहां मैंने एक फरसा देखा, जो अत्यंत तीक्ष्ण धार वाला था। यही फरसा शिवजी ने परशुराम को दिया था। साथ ही वहां सुदर्शन-चक्र भी था, जो करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था। शिवजी का पिनाक नामक धनुष, तलवार, गदा आदि शस्त्र भी मैंने वहां देखे।

तत्पश्चात मैंने त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव को वहां पर देखा। उनके दाहिनी ओर ब्रह्माजी हंस से जुते विमान में बैठे थे और बाईं ओर श्रीहरि विष्णु गरुड़ पर बैठे हुए थे। मनु, भृगु आदि ऋषिगण देवराज इंद्र सहित सभी देवता वहां उनके सम्मुख खड़े थे। रुद्र जी के पास ही नंदी एवं अन्य भूतगण बैठे थे। सभी हाथ जोड़कर अपने आराध्य देव की स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखकर मैंने भी सर्वेश्वर शिव की स्तुति करनी आरंभ कर दी। तभी शिवजी ने मुझे साक्षात दर्शन दिए और बोले—हे ब्राह्मण! मैं आपकी भक्ति से प्रसन्न हूं। अपना मनचाहा वर मांगो।

शिवजी के उत्तम वचनों को सुनकर, मैंने हाथ जोड़कर कहा—हे देवाधिदेव महादेव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे अपनी अविरल भक्ति प्रदान कीजिए। प्रभो! मुझे मेरे परिवार

सहित दूधभात का भोजन सदा मिलता रहे। उपमन्यु के वचन सुनकर शिवजी बोले— तथास्तु! तुम सब मुनियों में परम ऐश्वर्यशाली होगे तथा तुम्हें सदैव अमृतमय क्षीर की प्राप्ति होगी। जब भी तुम भक्ति भाव से मेरा ध्यान करोगे, मैं तुम्हें दर्शन दूंगा। यह कहकर शिवजी वहां से अंतर्धान हो गए। हे कृष्ण! भगवान शिव ही सब तत्वों के ज्ञाता हैं, वे ही सर्वेश्वर हैं और इस संसार का हित और कल्याण करने वाले हैं। अतः पुत्र प्राप्ति हेतु तुम शिवजी की आराधना करो।

दूसरा अध्याय

शिव-भक्तों का आख्यान

श्रीकृष्ण जी ने उपमन्यु से पूछा—हे ब्राह्मण राज! भगवान शिव के पूजन से जिन शिवभक्तों का उद्धार हुआ है अर्थात शिवजी की विशेष कृपा जिन्हें प्राप्त हुई है, उनके विषय में बताइए। श्रीकृष्ण के प्रश्न को सुनकर उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! राक्षसराज हिरण्यकशिपु ने शिवजी को अपनी घोर तपस्या से प्रसन्न किया, तब उन्होंने उसे ऐश्वर्य संपन्न राज्य प्रदान किया। उसी का पुत्र नंदन भी शिवजी से वरदान पाकर युद्ध में विजयी हुआ और उसने देवराज इंद्र को दस हजार वर्षों तक अपना दास बनाए रखा। इसी प्रकार सतमुख राक्षस ने शिव पूजन कर हजार पुत्र प्राप्त किए। जब ऋषि याज्ञवल्क्य ने शिवजी की आराधना से उन्हें प्रसन्न किया, तो वे वेदों के महान ज्ञाता हुए। व्यास मुनि को भी शिव कृपा से वेद, पुराण, इतिहास एवं शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हुआ।

एक बार की बात है, शिवजी के क्रोध से पृथ्वी का सब जल सूख गया था, तब सब देवताओं ने शिवजी को उनकी आराधना करके प्रसन्न किया। उस समय शिवजी ने अपने कपाल से जल प्रकट किया था। राजा चित्रसेन की भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें निर्भय कर दिया। शिव भक्ति से एक साधारण से गोप श्रीकर को परम सिद्धि प्राप्त हुई। सीमंतिनी के सोमवार के व्रत के पुण्य एवं भक्ति फल से शिवजी ने उसके पति चित्रांगद की रक्षा की। चंचुला नामक व्यभिचारिणी स्त्री के गोकर्ण में कथा सुनने से भक्तवत्सल भगवान शिव ने उसके सभी पापों का नाश कर दिया और उसके पति विंदुग को भी सद्गति प्रदान की। महाकाय नामक व्याध ने शिव भक्ति से सद्गति पाई। महामुनि दुर्वासा को शिव भक्ति से मोक्ष की प्राप्ति हुई। यही नहीं, ब्रह्माजी ने शिव आराधना द्वारा इस पूरी सृष्टि की रचना की। मार्कण्डेय जी भगवान शिव की कृपा से ही दीर्घायु हुए। भगवान शिव के वर से ही शांडिल्य जगत प्रसिद्ध एवं पूजनीय हुए। इस प्रकार मैंने आपको शिवजी के अनेकों भक्तों के बारे में बताया, जिन्हें शिव कृपा से रिद्धि-सिद्धि की प्राप्ति हुई।

तीसरा अध्याय

शिव माहात्म्य वर्णन

श्रीकृष्ण जी ने उपमन्यु से पूछा—हे महामुने! क्या भगवान शिव मुझे भी दर्शन देंगे? उनकी बात सुनकर उपमन्यु बोले—अवश्य ही भगवान शिव आपको दर्शन देंगे। मैं आपको एक अद्भुत मंत्र बताता हूं, जिसके जाप से निश्चय ही शिवजी प्रसन्न होकर न केवल आपको दर्शन देंगे अपितु आपकी पुत्र प्राप्ति की इच्छा भी अवश्य पूरी करेंगे। तब उन्होंने श्रीकृष्ण को शिव महिमा का वर्णन करते हुए पंचाक्षरी मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' की दीक्षा दी। उपमन्यु से सारी विधि-विधान जानकर श्रीकृष्ण ने शिवजी को प्रसन्न करने हेतु जटाजूट धारण किया और फिर अपने पैर के अंगूठे पर खड़े रहकर कठिन तपस्या आरंभ कर दी।

श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक शिव उपासना करते-करते पंद्रह माह बीत गए। सोलहवां महीना लगते ही सर्वेश्वर शिव ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण को श्री पार्वती जी सहित दर्शन दिए और बोले—हे कृष्ण! आप मेरे परम भक्त हैं। आपकी इस भक्तिपूर्ण आराधना से मैं बहुत प्रसन्न हूं। मांगो, क्या मांगना चाहते हो? शिवजी के ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले—हे देवाधिदेव महादेव जी! आपने मुझे दर्शन देकर आज मेरा जीवन सफल कर दिया। भगवन्! मैं आपसे चाहता हूं कि मैं सदा धर्म के मार्ग पर चलूं और संसार में यश प्राप्त करूं। मेरा निवास आपके पास हो और आपमें मेरी सदा दृढ़ भक्ति बनी रहे। मैं सदा युद्ध में विजयी रहूं। मैं शत्रुओं का नाश कर योगीजनों का प्यारा बनूं और मुझे दस पराक्रमी पुत्रों की प्राप्ति हो।

श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें सभी वर प्रदान कर दिए। श्री पार्वती जी ने लोक कल्याण हेतु ब्राह्मणों की सेवा करने का वर प्रदान किया। तत्पश्चात शिव-पार्वती अंतर्धान हो गए। तब श्रीकृष्ण भी प्रसन्नतापूर्वक उपमन्यु के पास पहुंचे और उन्हें अपने वरदान के बारे में बताकर वे अपनी नगरी द्वारिका को चले गए।

श्रीरामचंद्र जी ने भी भगवान शिव की आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया और उनसे दिव्य अस्त्र प्राप्त किए। शिवजी के आशीर्वाद के फलस्वरूप उन्होंने लंका के विशाल समुद्र पर पुल बनाकर लंकेश्वर रावण को मारकर अपनी पत्नी सीता को मुक्त कराया। परशुराम ने शिवजी को प्रसन्न कर शिवजी से परशु नामक फरसा प्राप्त किया और उससे ही अपने पिता ऋषि जमदग्नि का वध करने वाले सहस्रार्जुन का वध किया। चाक्षुष नामक मनु पुत्र ने शाप भोगते हुए भी दण्डक वन में शिवजी की तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें सांसारिक बंधनों से मुक्त कर गणेश जी का गण बना दिया। गर्ग मुनि की आराधना से प्रसन्न होकर एक हजार पराक्रमी पुत्रों का आशीर्वाद प्रदान किया। शिवजी की कृपा से ही गालव नामक एक निर्धन ने अपनी तपस्या से शिवजी को प्रसन्न कर अपने पिता को पुनर्जीवित कर दिया। मुनियो! इस प्रकार मैंने आपसे शिव माहात्म्य का वर्णन किया।

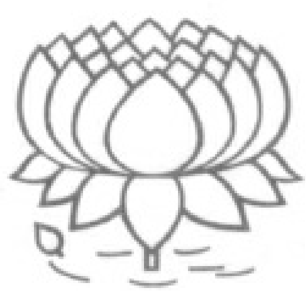

चौथा अध्याय

शिव माया वर्णन

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी! अब आप हमें त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के लीलामय चरित्र के विषय में बताइए। यह सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! भगवान शिव परम ब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही सबके ईश्वर हैं। शिवजी से ही आठ देव योनि, एक मानव योनि एवं पांच पक्षी योनि अर्थात चौदह योनियां उत्पन्न हुई हैं। ब्रह्मा, विष्णु, देवेंद्र, चंद्र, सूर्य आदि सभी देवताओं सहित दानव, नाग, किन्नर, गंधर्व आदि सभी की उत्पत्ति शिवजी की कृपा से हुई है। इस सारे जगत में शिवजी की माया फैली है। इस संसार में घटित होने वाली हर घटना शिव माया का ही रूप है। उनकी आज्ञा के बिना इस धरती पर एक पत्ता भी नहीं हिलता है।

सर्वेश्वर शिव की माया के कारण ही पूरा जगत कामदेव के अधीन हो जाता है। उनकी माया से मोहित होकर ही देवराज इंद्र महामुनि गौतम की पत्नी अहिल्या पर आसक्त हुए थे, जिसके फलस्वरूप उन्हें शाप मिला था। श्रीहरि विष्णु भी शिव माया के कारण ही स्त्रियों में विहार करने लगे थे। चंद्रमा भी मोहित होकर अपने गुरुदेव की पत्नी को भगाकर ले गए थे और पाप के भागी बने थे तथा शिव भक्ति से उन्हें शाप से मुक्ति मिली थी। एक बार मित्र व वरुण देव भी शिव माया से मोहित होकर स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी पर आसक्त हो गए थे, जिससे दोनों का शक्तिपात हो गया। मित्र ने अपनी शक्ति घड़े में डाल दी थी, जिससे मुनिवर वशिष्ठ उत्पन्न हुए। जबकि वरुण देव ने उसे जल में त्यागा, जिसके फलस्वरूप बड़वानल जैसे तपस्वी अगस्त्य पुत्र हुए। गौतम ऋषि का शारदूती पर मोहित होने के पीछे एक महान कार्य अस्त्र-शस्त्रों के महान ज्ञाता द्रोणाचार्य का जन्म था। यही नहीं, महामुनि विश्वामित्र का स्वर्ग की अप्सरा मेनका पर मोहित होना भी शिव माया का ही एक रूप था। लंकेश्वर रावण का सीताजी को उठाकर ले जाना भी रावण को श्रीराम द्वारा मारे जाने के निमित्त था। इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड में घटने वाली प्रत्येक घटना, शिवजी की इच्छा के अनुसार ही होती है। शिवजी की माया पूरे जगत में व्याप्त है, जिसका पूर्ण वर्णन करना मेरे लिए क्या किसी के लिए भी संभव नहीं है।

पांचवां अध्याय

नरक में गिराने वाले पापों का वर्णन

व्यास जी बोले—हे मुनीश्वर! इस संसार में पाप कर्म करने वाले पापी मनुष्य सदा नरक के भागी होते हैं। ऐसे नरक जाने वाले प्राणियों के विषय में मुझे बताइए। व्यास जी के वचन सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! इस संसार में अनेक प्रकार के पाप कर्म होते हैं, जिनके कारण मनुष्य को नरक जाना पड़ता है। परस्त्री की इच्छा, पराया धन पाने की इच्छा, दूसरों का बुरा सोचना, अधर्म करना, ये सब मन के पाप होते हैं। इसी प्रकार झूठ बोलना, कठोर बोलना, दूसरों की चुगली करना, ये वाणी द्वारा किए गए पाप कर्म होते हैं। अभक्ष भक्षण करना, हिंसा करना, असत्य कार्य करना एवं किसी का धन-वस्तु हड़प लेना, ये सभी शारीरिक पाप कहे जाते हैं और इनका फल बहुत भयानक होता है। अपने गुरु अथवा माता-पिता की निंदा करने वाले महापापी नरक में जाते हैं। यही नहीं, ब्राह्मणों को कष्ट देना, शिव ग्रंथों को नष्ट करना भी महापाप माना जाता है।

जो मनुष्य भगवान शिव की स्तुति एवं पूजन नहीं करते और न ही शिवलिंग को नमस्कार करते हैं, वे भी नरक के भागी होते हैं। बिना गुरु की पूजा के शास्त्रों को सुनने की कोशिश करने वाले, गुरु सेवा से जी चुराने वाले, गुरु त्यागी एवं गुरु का अपमान करने वाले, नरकगामी होते हैं। ब्रह्म हत्या करने, मद्यपान करने, गुरु के स्थान पर बैठने तथा गुरुमाता को कुदृष्टि से देखने वाले नरक में जाने योग्य ही होते हैं। वेदों की जानकारी रखने वाले एवं पूजन-आराधन को त्याग देने वाले, दूसरों की अमानत को हड़पने वाले तथा चोरी करने वाले, सभी मनुष्यों को अवश्य ही नरक में रहना पड़ता है। परस्त्री का भोग करने वाले अथवा व्यभिचार करने वाले मनुष्य अवश्य ही नरक में जाते हैं। यही नहीं, पुरुष, स्त्री, हाथी, घोड़ा, गाय, पृथ्वी, चांदी, वस्त्र, औषध, रस, चंदन, अगर, कपूर, पट्ठे, कस्तूरी आदि को अकारण ही बेच देने वाले मूर्ख मनुष्यों को नरक अवश्य भोगना पड़ता है। हे मुनियो, इस प्रकार मैंने आपसे ऐसे कृत्यों का वर्णन किया, जो कि महापाप माने जाते हैं और जिनके कारण मनुष्य को नरक की घोर कष्टदायक यातनाएं झेलनी पड़ती हैं।

छठवां अध्याय

पाप-पुण्य वर्णन

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! किसी भी बात पर घमंड या अभिमान करना, क्रोध, कपट व साधुओं से द्वेष रखना, किसी अन्य पर अकारण कलंक लगाना, शिवालय के वृक्ष और बगीचे में लगे पेड़ के फल, फूल, टहनियां तोड़ना एवं हरियाली को उजाड़ने वाले, किसी के धन को लूटने वाले अथवा किसी के धन-धान्य या पशुओं को चुराने वाले, जल को अपवित्र करने वाले, स्त्री या पुत्र को बेचने वाले, अपनी स्त्री की रक्षा न करने वाले, दान न करने वाले, असत्य बोलने वाले, शास्त्रों के अनुसार कार्य न करने वाले, दूसरों की निंदा करने वाले, पितृयज्ञ व देव यज्ञ न करने वाले, व्यभिचार करने वाले एवं भगवान में आस्था न रखने वाले सभी मनुष्य पापी कहे जाते हैं।

परस्त्री पर आसक्त होना, हिंसा करना, बांस, ईंट, लकड़ी, पटिया, सींग काल आदि से मार्ग रोककर दूसरों की सीमा हथिया लेना, पशुओं एवं नौकरों से बुरा व्यवहार करने वाले एवं उन्हें दण्ड देने वाले, भिखारियों को भिक्षा न देने वाले, भूखे को भोजन न देने वाले, शिव मूर्ति को खण्डित करने वाले, गाय को मारने वाले, बूढ़े बैल कसाइयों को देने वाले, दीन, वृद्ध, दुर्बल, रोगी को सताने वाले, शरणागतों पर दया न करने वाले मूर्ख मनुष्य पाप के भागी होते हैं। अन्याय करने वाले राजा, ब्राह्मणों से कर वसूलने वाले, गरीबों से छीनकर धन एकत्रित करने वाले मनुष्य नरकगामी होते हैं।

ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के पश्चात भी बढ़ई, वैद्य, सुनार, शिल्प करने वाले, ध्वजा बनाने का कार्य करने वाले मनुष्य भी पापी होते हैं। जो किसी अन्य स्त्री को चुराकर अपने घर में रखते हैं, महापापी होते हैं। नीति के विपरीत व्यवहार करने वाले, घृत, तेल, अन्न, पेय, शहद, मांस, मद्य, कमण्डल, तांबा, सीसा, रांगा, हथियार, शंख आदि की चोरी करने वाले वैद्य वैष्णव नरकगामी होते हैं। पशु, पक्षी, मनुष्य, दानव आदि सभी पापियों को निश्चय ही यमराज के अधीन जाना पड़ता है। एक-दूसरे से असमानता का व्यवहार करने वाले दुष्ट, पापियों को दण्ड देने वाले सभी के शासक यमराज हैं और मरने के पश्चात मनुष्य को यातनाएं भोगनी ही पड़ती हैं। इसलिए मनुष्य को अपने जीवनकाल में ही अपने पापों का प्रायश्चित अवश्य कर लेना चाहिए। बिना प्रायश्चित किए पापों का नाश असंभव होता है। जो भी मनुष्य मन, वाणी और शरीर द्वारा जाने-अनजाने में पाप करता है, वह अपने दुष्कर्मों का फल अवश्य ही भोगता है।

सातवां अध्याय

नरक-वर्णन

सनत्कुमार जी ने महामुनि वेद व्यास से कहा—हे महामुने! इस संसार में पाप करने वाले सभी मनुष्यों को यमलोक जाकर अपने पापों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। पुण्यात्मा जीव उत्तर दिशा के मार्ग से यमलोक जाते हैं, जबकि पापी मनुष्यों को दक्षिण दिशा की ओर से यमपुरी जाना पड़ता है। वैवस्वत नगर और यमपुरी के बीच की दूरी छियासी हजार योजन की है। धर्मात्मा मनुष्य, जो दयालु प्रवृत्ति के हैं, सुगम मार्ग से पहुंच जाते हैं जबकि पापियों को बड़े कठिन मार्ग से जाना पड़ता है। उनके रास्ते में नुकीले कांटे, गरम बालू व छुरियों जैसे नुकीले कंकण, कीचड़, सुइयां, अंगारे, लंबे अंधकारयुक्त वन, बर्फीले मार्ग, गंदा पानी, सिंह, भेड़िए, बाघ, मच्छर एवं अनेक तरह के जहरीले और भयंकर कीड़े, सांप, सूअर, भैंसे एवं अनेक भयानक जीव, भूत-प्रेत एवं डाकिनी-शाकिनी उस पापी मनुष्य को रास्ते में कष्ट देने के लिए खड़े रहते हैं।

वे पापी मनुष्य इतने भयानक रास्ते पर यमदूतों की मार सहते हुए आगे बढ़ते हैं। भूख-प्यास से व्याकुल नंगे शरीर वे यातनाएं सहते हुए रास्ते को तय करते हैं और पीड़ा की अधिकता के कारण रोते और चीखते-चिल्लाते हैं। उनके शरीर से खून बहता है और कीड़े उन्हें नोचते हैं परंतु यमदूत फिर भी उन्हें पाशों से बांधकर घसीटते रहते हैं। इस प्रकार अत्यंत कठिन मार्ग पर चलते हुए वे अपनी यमलोक तक की यात्रा को पूरा करते हैं। वहां पहुंचकर यमदुत उन पापी मनुष्यों को यमराज के सामने ले जाते हैं। यमलोक में यमराज उन मनुष्यों के पाप और पुण्यों का लेखा-जोखा देखते हैं।

पुण्यात्माओं को यमराज प्रसन्नतापूर्वक उत्तम विमान में बैठाकर सादर स्वर्ग लोक भेज देते हैं परंतु यदि उन्होंने कुछ भी पाप किए होते हैं तो उन्हें उनका दण्ड अवश्य भोगना पड़ता है तथा अपने पापों को भोगने के पश्चात उन्हें यमदूतों द्वारा स्वर्ग भेज दिया जाता है। परंतु ऐसे मनुष्य, जो सदा ही पाप कर्मों में संलिप्त रहते हैं, को यमराज का बड़ा भयानक रूप देखने को मिलता है। यमराज भयंकर डाढ़ों वाले, विकराल भौंहों वाले, अनेक भयानक अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए, अठारह हाथ वाले, काले भैंसे पर बैठे अग्नि के समान लाल आंखों वाले एवं प्रलय काल की अग्नि के समान तेजस्वी भयानक रूप धारण किए दिखाई देते हैं और पापियों को बड़े कठोर दण्ड देते हैं। तब भगवान चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनों से उन्हें समझाते हैं।

आठवां अध्याय

नरक की अट्ठाईस कोटियां

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि व्यास! जब यमदूत पापी मनुष्यों को लेकर यमलोक पहुंच जाते हैं तो वहां चित्रगुप्त पापियों को फटकारते हुए कहते हैं—पापियो! तुम अपने जीवनकाल में सदा पाप कर्म करते रहे हो, अब उन पापों के फल भोगने का समय आ गया है। इसी प्रकार, पापी दुष्ट राजाओं को डांटते हुए वे कहते हैं कि राज्य का सुख मिलने पर तुम अपने को सर्वस्व मानने लगे और इसी घमंड में मदमस्त होकर तुमने अपनी प्रजा के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया और उन्हें अनेकों तरह के कष्ट तथा यातनाएं दीं। उन बुरे कर्मों के पाप मैल के समान अब भी तुम्हारे शरीर से चिपके हुए हैं।

तब यमदूत चण्ड एवं महाचण्ड उन पापी राजाओं को उठाकर गरम-गरम भट्टियों में फेंक देते हैं, ताकि पाप रूपी मैल जल जाए और फिर वहीं से उन पर वज्र का प्रहार करते हैं। इस प्रकार की यातना से उनके कानों से खून बहने लगता है और वे बेहोश हो जाते हैं। तब वायु का स्पर्श कराकर उन्हें पुनः होश में लाया जाता है, तत्पश्चात उन्हें नरक रूपी समुद्र में डाल दिया जाता है। पृथ्वी के नीचे नरक की सात कोटियां है, जो कि घोर अंधकार में स्थित हैं। इन सबकी अट्ठाईस कोटियां हैं। घोरा कोटि, सुघोरा कोटि, अति घोरा, महाघोरा, चोर रूपा, तलातला, मयाअका, कालरात्रि, भयोत्तरा, चण्डा, महा चण्डा, चण्ड कोलाहला, प्रचण्ड, चण्ड नायका, पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा, भीषण नायका, कराला, विकराला, वज्रा, त्रिकोण, पंचकोश, सुदीर्घ, अखिलार्दित, सम भीम, सम लाभ, उग्र दीप्त प्रायः नामक ये अट्ठाईस नरक कोटि हैं, जो कि पापियों को यातना देने वाली हैं। इन नरक कोटियों का निर्माण पापियों को यातना देने के लिए ही किया गया है। इसके अतिरिक्त इन कोटियों के पांच नायक भी हैं। यही सौ रौरवप्राक एवं एक सौ चालीस महानरकों को महानरकमण्डल कहा जाता है।

नवां अध्याय

साधारण नरकगति

सनत्कुमार जी कहते हैं—जिस प्रकार सोने को अग्नि में तपाकर ही कुंदन बनाया जाता है। उसी प्रकार पापियों की जीवात्माओं को भी शुद्ध करने हेतु नरक की अग्नि में डाला जाता है। सर्वप्रथम पापियों के दोनों हाथों को रस्सियों से बांधकर उन्हें पेड़ पर उलटा लटका दिया जाता है। उनके पैरों में लोहा बांध दिया जाता है, ताकि दर्द से तड़पते हुए प्राणी अपने द्वारा किए गए पापों को याद करे। तत्पश्चात उन्हें तेल के उबलते हुए कड़ाहे में इस प्रकार भूना जाता है, जिस प्रकार हम बैंगन भूनते हैं। फिर उन्हें अंधकारयुक्त कुओं में धकेल दिया जाता है, जहां पर अनेकों प्रकार के कीड़े एवं भयानक जीव उन पर चिपट जाते हैं। उन्हें नोचते और खाते हैं। इस प्रकार पापी जीवों को अनेक प्रकार की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। फिर कुओं से निकालकर उन्हें पुनः नरक में फेंक दिया जाता है। वहां पर उनकी पीठ पर बड़े-बड़े हथौड़े से, जो कि तपाए हुए होते हैं, उनकी पीठ को छलनी कर दिया जाता है। कहीं उन पापी आत्माओं को आरी से चीरा जाता है। फिर उन पापात्माओं को मांस व रुधिर खाने के लिए बाध्य किया जाता है।

इस प्रकार वे पापात्मा मनुष्य अनेकों कष्टों को भोगते हैं। उनका शरीर अनेक प्रकार की यातनाएं भोगता है। तत्पश्चात वे यमदूत पापियों को निरुध्वास नामक नरक में डाल देते हैं। यहां रेत के भवन होते हैं, जो कि भट्टी के समान तप कर उन्हें पीड़ा पहुंचाते हैं। वहीं पर पापी प्राणियों के हाथ, पैर, सिर, माथे, छाती और शरीर के अन्य अंगों पर आग में तपते हुए हथौड़ों से एक के बाद एक अनगिनत प्रहार किए जाते हैं। तत्पश्चात उसे गरम रेत में फेंक दिया जाता है। फिर गंदे कीचड़ में फेंक दिया जाता है। कुंभीपाक नामक नरक में पापात्माओं को तेल के जलते हुए कड़ाहों में पकाया जाता है। फिर लाजाभक्ष सूची पत्र में डाल दिया जाता है। वहां इन्हें धधकती हुई अग्नि में फेंक दिया जाता है। फिर यमदूत अपने वज्र के समान कठोर प्रहारों से इन पापियों को छलनी करते हैं और उनके घावों पर नमक भर देते हैं। उनके मुहों में लोहे की कीलें डाल दी जाती हैं।

दसवां अध्याय

नरक गति भोग वर्णन

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! पाखण्ड में लिप्त रहने वाले, झूठ बोलने वाले या अन्य किसी भी प्रकार से दूसरों का अहित करने वाले नास्तिक मनुष्य, द्विज, हाख्य नरक में जाते हैं। इस नरक में उन पर आधे कोस लंबे पैने हल चलाए जाते हैं। ऐसे दुष्ट मनुष्य, जो अपने माता-पिता अथवा गुरुओं की आज्ञा को नहीं मानते, के मुंह में कीड़ों से युक्त विष्ठा भर दी जाती है। जो पापी मनुष्य शिवालय, बगीचे, बावड़ी, तालाब, कुएं या ब्राह्मणों के रहने के स्थान को नष्ट करते हैं, ऐसे प्राणियों को कोल्हू में पेला जाता है फिर उन्हें नरक की अग्नि में पकाया जाता है। भोग विलासी प्रवृत्ति के दुष्ट मानवों को यमदूत लोहे की गरम स्त्रीमूर्ति से चिपका देते हैं। महात्माओं की निंदा करने वाले पापियों के कानों में लोहा, तांबा व सीसा और पीतल को गलाकर भर दिया जाता है।

जो पापी कामी पुरुष बुरी नजर से नारी को देखते हैं उनकी आंखों में सूई और गरम राख भर दी जाती है। जो पापी महात्माओं के दिए गए धर्म संबंधित उपदेशों की अवमानना करते हैं और धर्मशास्त्रों की निंदा करते हैं, उनकी छाती, कण्ठ, जीभ, होंठ, नाक और सिर में तीन नोकों वाली कीलें ठोक दी जाती हैं और उन पर मुद्गरों से चोट की जाती है। दूसरों का धन चुराने वाले, पूजन सामग्री को पैर लगाने वाले दुष्ट मनुष्यों को अनेक प्रकार की यातनाएं भोगने के लिए दी जाती हैं। जो पापी धनी होते हुए भी दान नहीं करते और घर आए भिखारी को खाली लौटा देते हैं, ऐसे पुरुषों को घोर यातनाएं सहनी पड़ती हैं।

जो सत्पुरुष भगवान शिव का पूजन करके विधि-विधान से उनका हवन करने के पश्चात शिवमंत्र को जाप करके यममार्ग को रोकने वाले श्याम एवं शवल नामक श्वानों एवं पश्चिम, वायव्य, दक्षिण और नैर्ऋत्य दिशा में रहने वाले पुण्यकर्मों वाले कौओं को बलि देते हैं, उन मनुष्यों को कभी यमराज का दर्शन नहीं करना पड़ता है। चार हाथ लंबा मंडप बनाकर उसके ईशान में धन्वंतरि, पूर्व में इंद्र, पश्चिम में सुदक्षोम और दक्षिण में यम एवं पितरों के लिए बलि देनी चाहिए। तत्पश्चात कुत्तों एवं पक्षियों के लिए अन्न डालें। स्वाहाकार, स्वधाकर, वषट्कार एवं हंतकार धर्ममयी गाय के चार स्तन हैं, इसलिए गौ सेवा को आवश्यक माना जाता है और इसीलिए हम गोमाता की पूजा करते हैं। ऐसा न करने वाले पापी मनुष्यों की अवश्य ही दुर्गति होती है और वे नरक को भोगते हैं तथा अनेक दुखों का सामना करते हैं।

ग्यारहवां अध्याय

अन्नदान महिमा

व्यास जी बोले—प्रभो! पापी मनुष्यों को अनेक दुख भोगते हुए यमलोक का रास्ता तय करना पड़ता है। क्या ऐसा कोई उपाय है, जिससे यममार्ग की यात्रा सुखपूर्वक पूरी की जा सके? व्यास जी के प्रश्न को सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! ऐसे जीव बिना कष्टों के सीधे यमलोक पहुंच जाते हैं, जो दयालु होते हैं और सदा धर्म के मार्ग पर चलते हुए सदैव दूसरों की सहायता हेतु कार्य करते हैं। जो सत्पुरुष ब्राह्मणों को खड़ाऊं या जूते पहनाते हैं, वे घोड़े पर यमपुरी पहुंचते हैं। इसी प्रकार छाता और बिस्तर दान करने वाले आराम से आसन पर बैठकर, पेड़-पौधे लगाने वाले वृक्षों की छाया में यमपुर पहुंचते हैं। जो मनुष्य फूलों की वाटिका लगाते हैं, उन्हें ले जाने हेतु पुष्प विमान आता है। साधु-संतों के लिए मकान बनवाने वाले मनुष्यों को सुंदर भवन विश्राम करने के लिए मिलते हैं।

इसी प्रकार माता-पिता, ब्राह्मण और गुरुओं की सेवा करने वाले पुरुषों का आदर होता है। अन्न और जल का दान करने वाले मनुष्यों को यमपुरी के रास्ते में अन्न-जल की कोई कमी नहीं होती। ब्राह्मणों के चरण दबाने वाले मनुष्य आरामपूर्वक घोड़े पर सवार होकर यमलोक जाते हैं। संसार में अन्न का दान सबसे अच्छा माना जाता है क्योंकि अन्न खाकर ही जीव का शरीर पुष्ट होता है। उस शरीर से धर्म पुष्ट होता है और शरीर ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष देने वाला उत्तम साधन है। इसलिए मनुष्य को अन्न का दान अवश्य ही करना चाहिए। अपने घर पर पधारे अतिथियों का उचित आदर-सत्कार अवश्य करना चाहिए और द्वार पर आए गरीब भूखों एवं भिखारियों को खाली हाथ नहीं लौटाना चाहिए। अन्नदान करने वाले सज्जन पुरुष स्वर्ग में निवास करते हुए अनेकों सुखों को भोगते हैं व आनंद का अनुभव करते हैं।

बारहवां अध्याय

जलदान एवं तप की महिमा

सनत्कुमार जी कहते हैं—हे मुनि व्यास! इस संसार में सभी प्राणियों को जीवन देने वाला जल है। जो मनुष्य पीने के जल के लिए कुआं खोदते हैं, उनका आधा पाप नष्ट हो जाता है। तालाब बनवाने वाले पुरुष को कभी भी दुखों का सामना नहीं करना पड़ता। देव, दानव, गंधर्व, नाग और चर-अचर सभी जीव जल पर ही आश्रित होते हैं। जिस तालाब में बरसात का जल भर जाता है, उसे बनाने वाले को अग्निहोत्र का फल मिलता है। सर्दियों में जो तालाब जल से भरा रहता है, उसे बनाने वाले को एक हजार गौ-दान का पुण्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार हेमंत और शिशिर ऋतु में भरे तालाब के निर्माण करने वाले को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इसलिए तालाब खुदवाना पुण्यदायक और कल्याणदायक माना जाता है।

इसी प्रकार मार्ग में वृक्ष और बगीचे लगवाने वाले प्राणियों के पूरे वंश का उद्धार हो जाता है। फल-फूल वाले वृक्ष बहुत उत्तम होते हैं। फूलों से देवता, फलों से पितृगण एवं उनकी छाया से वहां से आने-जाने वाले राहगीरों को राहत मिलती है। ये वृक्ष सर्प, किन्नर, राक्षस, देव, मनुष्यों को सुख देने वाले होते हैं। इस संसार में सत्य को सबसे उत्तम कहा गया है। यही सत्य ब्रह्म, तप, यज्ञ, शास्त्र, चेतन, धैर्य, देवता, ऋषि, पितरों का पूजन, जल, विद्यादान, ब्रह्मचर्य, परमपद सभी सत्यरूप हैं। सत्यभाषी मनुष्य तपस्वी, सत्यधर्म का अनुसरण करने वाला सिद्ध पुरुष होता है। वह विमान में बैठकर स्वर्ग जाता है। सदैव सत्य बोलना ही फल देने वाला है। तपस्या द्वारा स्वर्ग, यश, मुक्ति, कामना, ज्ञान, विज्ञान, संपत्ति, सौभाग्य, रूप और इनसे अधिक पदार्थ होते हैं। साथ ही मन की सभी कामनाएं अवश्य पूरी होती हैं। तपस्या के बगैर किसी भी मनुष्य अथवा जीव को भगवान शिव के परम धाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध हृदय से त्रिलोकीनाथ भक्तवत्सल देवाधिदेव महादेव की तपस्या करने से ब्रह्महत्या जैसे महापाप से भी मुक्ति मिल सकती है। तपस्या ही सारे संसार को सुख और शांति प्रदान करने वाली है। इसलिए सुखों की इच्छा करने वाले एवं भोग और मोक्ष चाहने वाले मनुष्यों को तप अवश्य करना चाहिए।

तेरहवां अध्याय

पुराण माहात्म्य

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! जो ब्राह्मण वेद शास्त्रों को पढ़कर दूसरे मनुष्यों को सुनाते हैं, उन्हें इस पुण्य का फल अवश्य मिलता है। नरक की यातनाओं के विषय में बताकर जीवों को सचेत करने वाले पुराण के ज्ञाता और धर्मोपदेशकों को श्रेष्ठ गुरु माना जाता है। वे अपने असीम ज्ञान द्वारा जगत का कल्याण करते हैं। अपना परलोक सुधारने हेतु मनुष्यों को धन, अन्न, भूमि, स्वर्ण, गौ, रथ, वस्त्र एवं आभूषण आदि वस्तुओं का दान करना चाहिए। जुता हुआ खेत अर्थात लहलहाते फसल वाले खेत का दान करने से मनुष्य की दस पीढ़ियां सुधर जाती हैं। वह मनुष्य सभी सुखों को भोगकर अंत में विमान पर सवार होकर सीधे स्वर्गलोक जाता है। अपने घर में अथवा शिवालय या मंदिरों में भगवान शिव, विष्णु और सूर्य पुराण का पाठ करवाने वाले उत्तम पुरुष को राजसूय यज्ञ व अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। वे सूर्यलोक होते हुए ब्रह्मलोक में जाते हैं। देवताओं के मंदिरों में पुराणों की अमृतमय कथा कराने वाले सत्पुरुषों को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इस संसार में मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को श्रद्धापूर्वक भक्ति भावना से शिव पुराण की परम पवित्र कथा अवश्य पढ़नी अथवा सुननी चाहिए। प्रतिदिन कुछ समय के लिए शिव पुराण की कथा अवश्य सुननी या पढ़नी चाहिए। इस संसार में अपने कर्मों के बंधनों से मुक्त होने के लिए शिव पुराण का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए। निरंतर योग शास्त्रों का अध्ययन करने अथवा पुराणों का श्रवण करने से समस्त पापों का नाश होता है एवं धर्म की वृद्धि होती है।

चौदहवां अध्याय

विभिन्न दानों का वर्णन

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! मनुष्य यदि दान के लिए सुपात्रों को ही चुने, तभी उसका परम कल्याण होता है। गौ, पृथ्वी, विद्या और तुला का दान सर्वोत्तम माना जाता है। अपने घर के द्वार पर आए मांगने वाले अर्थात याचकों को दूध देने वाली गाय, वस्त्र, जूते, अन्न, छाता अथवा भक्तिभाव से श्रद्धापूर्वक जो भी यथासंभव दान दिया जाए वह परम कल्याणकारी होता है। यही नहीं, स्वर्ण, तिल, हाथी, कन्यादासी, घर, रथ, मणि, गौ, कपिला और अन्न इन दस दानों को महादान माना जाता है। इन दस महादानों को जो भी मनुष्य भक्तिभावना से करता है वह इस भवसागर से अवश्य ही पार हो जाता है। वह सत्पुरुष जीवन और मरण के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव महादेव जी की परम कृपा पाकर उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

सोने में सींग रूप में खुर मढ़ाकर वस्त्र, आभूषण एवं अन्य वस्तुओं सहित गाय और बछड़े का दान जो मनुष्य सुपात्र विद्वान ब्राह्मण को करता है, उसके सभी मनोरथों की सिद्धि हो जाती है। वह जीव इस लोक में सभी सुख भोगकर शिवलोक को जाता है। उसे लोक-परलोक में सभी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है। मन में मुक्ति की इच्छा लेकर किया गया दान अवश्य ही हितकर होता है। इस जगत में तुला के दान को भी उत्तम माना जाता है। तुला दान करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह मन ही मन शिवजी का स्मरण करके उनसे प्रार्थना करे कि वे उसका कल्याण करें। तराजू के एक पलड़े में बैठकर दूसरे पलड़े में अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य भरें और जब दोनों तरफ वजन बराबर हो जाए तो उस द्रव्य को किसी सुपात्र ब्राह्मण को दान करें। ऐसा दान करते समय शुद्ध हृदय से कल्याणकारी भगवान शिव से प्रार्थना करें कि हे प्रभु! मैंने बचपन से लेकर अब तक अपने जीवन में जाने-अनजाने जो भी पाप किए हों उन्हें आप अपनी कृपादृष्टि से भस्म कर दें। हे ऋषिगणो! इस प्रकार तुला दान से जीव सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा सीधे स्वर्गलोक को जाता है और वहीं निवास करता हुआ सभी उत्तम भोगों को भोगता है।

पंन्द्रहवां अध्याय

पाताल लोक का वर्णन

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! अब मैं आपको ब्रह्माण्ड के विषय में बताता हूं। यह ब्रह्माण्ड जल के बीच में स्थित है और त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के अंश शेषनाग ने इसे अपने फन पर धारण कर रखा है एवं श्रीहरि विष्णु इसका पालन करते हैं। सभी देवता और ऋषि-मुनि, साधु-संत सृष्टि के कल्याण हेतु शेषनाग का प्रतिदिन पूजन करते हैं। इन्हीं शेषनाग को अनंत नाम से भी जाना जाता है। आप अनेकों गुणों से संपन्न हैं और आपकी कीर्ति का गुणगान सभी देवताओं सहित सारे ग्रह और नक्षत्र भी निरंतर करते हैं। नाग कन्याएं सदैव आपकी पूजा और आराधना करती रहती हैं। इन्हीं के संकर्षण रूप रुद्रदेव हैं। शेषनाग के बल और स्वरूप को स्वयं देवता भी भली-भांति नहीं जानते तो फिर साधारण पुरुष भला कैसे जान सकते हैं?

पृथ्वी के निचले भाग में अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, पाताल आदि कुल सात लोक हैं जो कि दस-दस हजार योजन लंबे और चौड़े तथा बीस-बीस हजार योजन ऊंचे हैं। इन सबकी रत्न, स्वर्ण की पृथ्वी एवं आंगन है। इसी स्थान पर दैत्य महानाग रहते हैं। सूर्य द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली धूप तथा प्रकाश, चंद्रमा की शीतलता एवं चांदनी सिर्फ पृथ्वी लोक को आलोकित करती है। यहीं पर सर्दी, गरमी और वर्षा नामक अनेक ऋतुएं होती हैं। इस प्रकार पाताल लोक में सभी प्रकार के सुख विद्यमान हैं जो कि जीवों की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में पूर्णतः सक्षम हैं। धरा में जल के अनगिनत स्रोत हैं जो कि अपने स्वच्छ और निर्मल जल से जीवों की प्यास बुझाते हैं। भैंरे यहां पर सदा गुंजार करते हैं। यहां पर अनेक सुंदर अप्सराएं नृत्य करती हैं और गाना गाती हैं। पाताल लोक में अनेक प्रकार के वैभव और विलास उपलब्ध हैं और यहां पर अनेक सिद्ध मनुष्य, दानव और नाग अपने द्वारा की गई तपस्या के उत्तम फल को भोगते हैं।

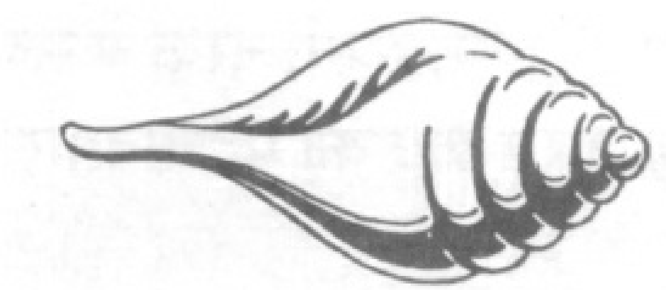

सोलहवां अध्याय

शिव स्मरण द्वारा नरकों से मुक्ति

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! इन्हीं लोकों में सबसे ऊंचे हिस्से में रौरव, शंकर, शूकर, महाज्वाला, तप्त कुंड, लवण, वैतरणी नदी, कृमि-कृमि, भोजन, कठिन, असिपत्र वन, बालाभक्ष्य, दारुण, संदेश कालसूत्र, महारौरव, शालमलि आदि नाम के बड़े ही दुखदायी और कष्टकारक नरक हैं। इन नरकों में आकर पापी मनुष्य की आत्मा अनेक यातनाएं भोगती है। जो ब्राह्मण असत्य के मार्ग पर चलता है, उसे रौरव नामक नरक को भोगना पड़ता है।

चोरी करने वाला, दूसरे को धोखा देने वाला, शराब पीने वाला, गुरु की हत्या करने वाले पापी कुंभी नरक में जाते हैं। बहन, कन्या, माता, गाय व स्त्री को बेचने वाला और ब्याज खाने वाले पापी तप्तेलोह नरक के वासी होते हैं। गाय की हत्या करने वाले देवता और पितरों से बैर रखने वाले मनुष्य कृमिभक्ष नरक को भोगते हैं। इस नरक में उन्हें कीड़े खाते हैं।

पितरों और ब्राह्मणों को भोजन न देने वालों को लाल भक्ष नरक को भोगना पड़ता है। नीच व पापियों का साथ करने वाले, अभक्ष्य वस्तु खाने वाले एवं बिना घी के हवन करने वाले रुधिरोध नरक में जाते हैं।

युवा अवस्था में मर्यादाओं को तोड़ने वाले, शराब व अन्य नशा करने वाले, स्त्रियों की कमाई खाने वाले कृत्य नरक में जाते हैं। वृक्षों को अकारण काटने वाले असिपत्र नरक में, मृगों का शिकार करने वाले ज्वाला नरक में जाते हैं। दूसरों के घर में आग लगाने वाले श्वपाक नरक में तथा अपनी संतान को पढ़ाई से वंचित रखने वाले श्वभोजन नरक में अपने पापों को भोगते हैं।

मनुष्य को अपने शरीर एवं वाणी द्वारा किए गए पापों का प्रायश्चित अवश्य करना पड़ता है। बड़े से बड़े पापों का प्रायश्चित त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का स्मरण करके किया जा सकता है। पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक ये सब कारण हैं। असल में सुख-दुख सब मन की कल्पनाएं हैं। परम ब्रह्म को पहचानकर उसका पूजन करना ही ज्ञान का सार है।

सत्रहवां अध्याय

जंबू द्वीप वर्ष का वर्णन

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! अब मैं आपको भूमंडल के सात द्वीपों के विषय में बताता हूं। जंबू, प्लक्षु, शालमलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर ये सात महाद्वीप हैं। इन द्वीपों के चारों ओर सात समुद्र हैं। ये सातों समुद्र जल, ईख, क्षीर, केसर, मद्य, घी, दूध और दही से भरे हैं। इन द्वीपों के बीच में सुमेरु पर्वत है। सुमेरु के दक्षिण में निषध, हिमाचल, हेमकूट पर्वत हैं। दक्षिण में हरि, उत्तर में रम्यक है। वही हिरण्मय है। इसके बीच में इलावृत्त है जिसके बीच में मेरु पर्वत स्थित है। मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में मंदिर, दक्षिण दिशा में गंधमादन, पश्चिम दिशा में विपुल एवं उत्तर दिशा में सुपार्श्व शिखर स्थित हैं। इनके ऊपर कदंब, जामुन, पीपल आदि वृक्ष हमेशा ही पाए जाते हैं।

जंबू द्वीप में जामुन के पेड़ों से बड़े-बड़े फल गिरते हैं। इसके फलों का रस धारा के रूप में बहता हुआ जंबू नदी के नाम से जाना जाता है। मेरु के पूर्व में भद्राश्व, पश्चिम में केतुमाल तथा इसके बीच में इलावृत्त है। पूर्व में चैत्र रथ, दक्षिण में गंधमादन, पश्चिम में विभ्राज्य, उत्तर में नंदन वन है। यहीं पर अरुणोद, महाभद्र, शीतोद और मानस नामक सरोवर हैं। मेरु पर्वत के पूर्व में कुरुंग, शीताज्जन, कुररहा, माल्यवान आदि पर्वत हैं। दक्षिण में शिखिर, चित्रकूट, पलंग, रुचक, निषध, कपिल नामक पर्वत हैं। पश्चिम दिशा में सिनी वास, कुशुंभ, कपिल, नारद, नाग आदि स्थित हैं। उत्तर दिशा में शंखचूर्ण, ऋषभ, हंस, काल, जरा और केशराचल आदि पर्वत स्थित हैं।

सुमेरु नामक पर्वत पर ब्रह्मा की शातकोणपुरी विद्यमान हैं। शातकोणपुरी के पास ही अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधवती, यशोवती नामक आठ पुरियां हैं। शतकोणपुरी के बीच में पतित पावनी गंगा नदी चंद्र मण्डल को भेदकर, सीता, अलकनंदा, चक्षु एवं भद्र धाराओं में बंट जाती है। सीता पूर्व दिशा से, अलकनंदा दक्षिण से, चक्षु पश्चिम से तथा भद्रा उत्तर दिशा में बहती हुई महासागर में गिरती हैं। सुनील, माल्यवान, निषद, गंधमादन आदि पर्वत सुमेरु पर्वत के चारों ओर खिली हुई कलियों के समान हैं। इसी प्रकार केतुमाल, भद्राश्व, कुश्व, मर्यादा, लोक पर्वत लोकपदम भारत के चारों ओर पत्तों की तरह खड़े हैं। देवकूट पर्वत पर केवल धर्मात्मा पुरुष ही रह सकते हैं। वहां पापी मनुष्य नहीं जा सकते। यहां पर रोग, शोक, कष्ट नहीं सताते और वे बारह हजार वर्ष की आयु पाते हैं।

अठारहवां अध्याय

सातों द्वीपों का वर्णन

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार जी! अब आप हमें सातों द्वीपों के विषय में बताइए। यह सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! मैं आपको सातों द्वीपों के बारे में बताता हूं।

जंबूद्वीप—हिमालय के दक्षिण समुद्र से उत्तर की ओर फैला नौ हजार योजन जंबूद्वीप है। यह कर्मभूमि भी कहलाता है। यहीं पर मनुष्यों को अपने द्वारा किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का फल भोगना होता है। इंद्रद्युम्न, कसेरु, ताम्रवर्ण, गमस्तिमान नाग, द्वीप, सौम्य, गंधर्व वारुण व भारत खंड है। इसके दक्षिण में ऋषि-मुनि निवास करते हैं। जंबूद्वीप के बीच में क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्रों का निवास है। यहीं पर मलय, महेंद्र, सह्य, सुदामा, ऋक्ष, विंध्याचल और पारियात्र सात विशाल पर्वत हैं। पारियात्र पर्वत पर वेद स्मृति एवं पुराण प्रकट हुए। ये सभी सद्ग्रंथ पापों का नाश करने वाले हैं।

ऋक्षद्वीप—ऋक्ष पर्वत का विशाल क्षेत्र ऋक्षद्वीप के नाम से जाना जाता है। इसी स्थान से समस्त पापों का नाश करने वाली गोदावरी, भीमरथी, ताप्ती व अन्य नदियां बहती हैं। कृष्णा वेणी नदियां सह्य पर्वत से, कृतमाला और ताम्रवर्णी मलयाचल पर्वत से बहती हैं। महेंद्र पर्वत से त्रिमाया, ऋषिकुल्या और कुमारी नदियां बहती हैं। इन पवित्र नदियों के मार्ग में अनेक शहर, गांव आदि पड़ते हैं। ये पवित्र नदियां वहां निवास करने वालों की प्यास को शांत करती हैं। यही नहीं, उनके पापों का नाश भी इनके जल स्पर्श से हो जाता है।

प्लक्षद्वीप—प्लक्षद्वीप क्षार समुद्र से घिरा हुआ है। इसी द्वीप पर गोमंत, चंद्र, नारद, दर्दुर, सोनक, सुमन, बैभ्राज्र नामक पर्वत हैं। अनुतप्त, शिखी, पापहनी, त्रिदिवा, कृपा, अमृता, सुकृभा नामक सात नदियां प्लक्षद्वीप की शोभा बढ़ाती हैं। यहां के मनोहर वातावरण में देवता और गंधर्वों सहित अनेक जातियां निवास करती हैं। इस द्वीप में निवास करने वाले प्राणियों की रक्षा के लिए देवाधिदेव महादेव का ब्रह्मा और विष्णु भी पूजन किया करते हैं।

शाल्मलिद्वीप—शाल्मलिद्वीप के बीचों-बीच सेमल का एक विशाल वृक्ष है। यहां पर श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, बैकल, मानस, सुप्रभु नामक वृक्ष हैं। इसी द्वीप पर शुक्ला, रक्ता, हिरण्या, चंद्रा, शुभ्रा, विमोचना, निवृता नाम की सुंदर नदियां बहती हैं। ये पवित्र एवं निर्मल नदियां भक्तगणों की प्यास बुझाती हैं। अपना कार्य पूर्ण करते हुए यहां के निवासी ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी का पूजन करते हैं।

क्रौंचद्वीप—क्रौंचद्वीप घृतोद समुद्र से बाहर दही से घिरा है। विशाल क्षेत्र में फैला द्वीप है। यहां पर क्रौंच, वामन, अंशकारक दिवावृत्ति, मन पुण्डरीक, दुंदुभि आदि पर्वत एवं गौरी, कुमुद्धती, संध्या, मनोजवा, शांति पुण्डरीक नामक अनेक बड़ी नदियां स्थित हैं।

शाकद्वीप—शाकद्वीप दही समुद्र के बाहर दूध के सागर से घिरा है। यहां पर शाक का

बहुत बड़ा वृक्ष स्थित है। उदयाचल, अस्ताचल, जलन्धार, विवेक, केसरी नामक पर्वत हैं। सुकुमारी, नलिनी, कुमारी, वेणुका, इक्षु, रेणुका और गर्भास्त नामक नदियां स्थित हैं। यहां के सुंदर मनोरम स्थलों पर सभी जाति के लोग रहते हैं।

पुष्पकर द्वीप—क्षीर समुद्र से बाहर का जो क्षेत्र मधुर जल से घिरा है वह पुष्पकर द्वीप कहलाता है। यहीं पर मानस पर्वत स्थित है। यहां निवास करने वाले मनुष्य सभी प्रकार के रोगों से दूर रहते हैं। वे लंबी आयु वाले होते हैं और आनंदपूर्वक निवास करते हैं। पुष्पकर द्वीप के महावीत खण्ड में ब्रह्माजी का निवास माना जाता है और यहां रहने वाले देवता और दानव उनको पूजते हैं।

इस प्रकार मनुष्यों के निवास करने हेतु पृथ्वी पर सात लोक स्थित हैं जिन्हें सात द्वीपों के नाम से जाना जाता है।

उन्नीसवां अध्याय

राशि, ग्रह-मण्डल व लोकों का वर्णन

सनत्कुमार जी कहते हैं—हे महामुनि व्यास जी! पृथ्वी लोक के जिस भाग पर सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश पड़ता है वह स्थान भूलोक कहलाता है। पृथ्वीलोक से हजारों योजन ऊपर सूर्यमंडल है और इससे ऊपर चंद्रमंडल है। चंद्रमंडल से दस हजार योजन ऊपर ग्रह और नक्षत्रों का साम्राज्य है। इससे ऊपर सप्तऋषि मंडल है और उसके ऊपर ध्रुवमंडल स्थित है। ध्रुवमंडल, जो कि पृथ्वी का सबसे ऊंचा मण्डल है, से एक करोड़ योजन नीचे भूः, भुवः, स्वः नामक तीन लोक स्थित हैं। इनके बीच में कल्प निवासी ऋषि रहते हैं।

ध्रुव मंडल से ऊपर महलोक स्थित है। महलोक में सनक, सनंदन, सनातन, कपिल, आसुरि, बोढ, पच्चशिख नामक ब्रह्माजी के सात पुत्र निवास करते हैं। इसी महलोक से दो लाख योजन ऊपर शुक्र ग्रह स्थित है। शुक्र ग्रह से दो लाख योजन दूर बुध है। बुध से दस लाख योजन दूरी पर मंगल ग्रह स्थित है। मंगल से दो लाख योजन की दूरी पर बृहस्पति स्थित है। बृहस्पति से दो लाख योजन की ही दूरी पर शनिश्चर मंडल स्थित है। ये सभी ग्रह अपनी राशियों पर आरूढ़ रहते हैं।

जनलोक से छब्बीस लाख योजन की दूरी पर तपलोक स्थित है। तपलोक से छः गुनी दूरी पर सत्यलोक स्थित है। भूलोक पर ज्ञानी, महात्मा, सत्य पथ का पालन करने वाले ब्रह्मचारी निवास करते हैं। भुवः लोक में मुनि, देवता, सिद्धि आदि निवास करते हैं। स्वर्ग लोक में आदित्य, पवन, वसु, अश्वनीकुमार एवं विश्वदेव रुद्र नागपक्षी आदि रहते हैं। ब्रह्माण्ड जल, अग्नि, पवन, आकाश और अंधकार से घिरा हुआ है। इसी के ऊपर महाभूत स्थित हैं। परम ब्रह्म परमात्मा गुण, संख्या, नाम और परिमाण से अलग हैं।

भगवान शिव और प्रकृति देवी शक्ति के मिलन से ही देवताओं का प्राकट्य हुआ है। इसी से सृष्टि का निर्माण हुआ है। प्रलय काल आने पर यह पूरी सृष्टि शिव-भक्ति में मिलकर समाप्त हो जाएगी। ब्रह्मलोक के ऊपर बैकुण्ठ लोक स्थित है। इसके पश्चात कौमार लोक है जिसमें स्कंद निवास करते हैं। तत्पश्चात उमालोक स्थित है। उमालोक में देवी जगदंबा का निवास है। आदि शक्ति जगदंबा से ही ब्रह्मा और विष्णु का प्राकट्य हुआ है। उमालोक के आगे इस जगत के पिता परम ब्रह्म परमेश्वर भगवान शिव का निवास स्थित है। भगवान शिव ही निर्गुण, निराकार, सर्वेश्वर हैं और सबका कल्याण करने वाले हैं।

बीसवां अध्याय

तपस्या से मुक्ति प्राप्ति

व्यास जी ने पूछा—हे सनत्कुमार जी! अब आप मुझे यह बताइए कि कल्याणकारी देवाधिदेव महादेव जी के परम भक्त किस लोक में जाते हैं? जहां जाकर भक्तों का इस लोक में आगमन नहीं होता है। यह सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! भगवान शिव की परम कृपा प्राप्त करने हेतु सिर्फ एक मार्ग है—वह है तपस्या। तपस्या के बिना शिव लोक की प्राप्ति संभव नहीं है। इस संसार में सभी मनुष्यों, स्वर्ग के देवताओं, ऋषि-मुनि और साधु-संतों आदि ने तपस्या द्वारा ही महत्वपूर्ण सिद्धियां प्राप्त की हैं।

तपस्या तीन प्रकार की होती हैं—सात्विक, राजस और तामस। जो तपस्या बिना किसी फल की इच्छा किए हुए की जाती है वह सात्विक है। किसी कामना की पूर्ति हेतु की गई तपस्या राजस और उसी कामना की सिद्धि हेतु अपने शरीर को कष्ट देकर की गई तपस्या को तामस तप कहा जाता है। मन एवं विचारों से पवित्र होकर, पूजन, जप, हवन, उपवास, आचार-विचार, मौन इंद्रिय करके किया गया तप सात्विक तप है। बावड़ी, तालाब, कुआं, मकान, धर्मशालाएं और विद्यालय बनवाने से शिवपद को पाने का मार्ग प्रशस्त होता है।

धन, वैभव और मद में चूर होकर मनुष्य सांसारिक बंधनों में बंधा रहता है। चौरासी हजार योनियों को भोगने के पश्चात मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है। यदि इसमें भी उद्धार का कोई उपाय नहीं किया जाता तो सिर्फ पश्चाताप ही शेष रह जाता है। यहीं पर कर्मभूमि और फलभूमि दोनों हैं। धरती पर किए गए शुभ कर्मों का फल स्वर्गलोक में मिलता है। इसलिए सदा सत्य के मार्ग का अनुसरण करें। दान-पुण्य के मार्ग पर चलें। अपने जीवन काल में जिन्होंने कुछ समय के लिए त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के नाम का स्मरण किया है उन्हें भयानक नरक को नहीं भोगना पड़ता। हर प्रकार के दुख-दर्द एवं पापों से मुक्ति दिलाने वाली शिव भक्ति ही है जिसके द्वारा मनुष्य जीवन के बंधनों से मुक्त होकर शिवपद को प्राप्त करता है।

इक्कीसवां अध्याय

युद्ध धर्म का वर्णन

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी! यह माना जाता है कि ब्राह्मण कुल में जन्म मिलना कठिन है। मैंने यह भी सुना है कि सर्वेश्वर शिव के सिर से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य एवं चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। महर्षे! कृपा कर बताइए कि नीच मनुष्यों की क्या स्थिति होती है?

व्यास जी के वचन सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि व्यास जी! मनुष्य अपने द्वारा किए गए पापों के कारण अपने स्थान से गिर जाता है। मनुष्य द्वारा किए गए शुभ व अच्छे कर्म मनुष्य के स्थान की रक्षा करते हैं। क्षत्रिय जाति में जन्म पाने वाले मनुष्यों को पूर्व जन्म में किए गए बुरे कर्मों के कारण ही क्षत्रिय वर्ण में जन्म मिला होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह विपत्ति एवं कठिनाइयों के समय भी दृढ़ता से अपने कर्तव्य का अनुसरण करे। उसे अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। उसे बुरे कार्यों में नहीं लगना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य अपने स्थान की रक्षा कर सकते हैं।

शूद्र वर्ण में जन्म लेने वाले मनुष्य यदि अपने से ऊंचे तीनों वर्णों की सेवा मन लगाकर उचित रीति से धर्मानुसार जीवन भर करते हैं तो उन्हें अगले जन्म में वैश्य वर्ण में जन्म मिलता है। इसी प्रकार जो वैश्य विधि-विधान के अनुसार पूजा-अर्चना करता है और हवन आदि करता है और सदा धर्म और सत्य के पथ पर चलता है तो उसे अपने दूसरे जन्म में क्षत्रिय होने का गौरव मिलता है। जो क्षत्रिय विधिपूर्वक यज्ञ और अनुष्ठान श्रेष्ठ ऋषिगणों के सान्निध्य में पूरे करता है व अपने क्षत्रिय धर्म का सही से पालन करता है, उसे ब्राह्मण कुल में दूसरा जन्म मिलता है। इसी प्रकार ब्राह्मण कुल का जो ब्राह्मण अपने धर्म का दृढ़ता एवं स्थिरता से पालन करता है वह देवता को प्रसन्न करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

व्यास जी ने फिर पूछा—हे सनत्कुमार जी! अब आप हम सबको युद्ध का माहात्म्य सुनाएं। सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! जिस अद्भुत फल की प्राप्ति विभिन्न प्रकार के यज्ञों जैसे अग्निष्टोमादि को विधि-विधान से करने से भी नहीं होती, उस महाफल की प्राप्ति युद्ध द्वारा आसानी से हो सकती है। धर्मपूर्वक अपने पथ पर अडिग रहने वाला क्षत्रिय, जो कि युद्ध में पराजित नहीं होता और न ही युद्ध में पीठ दिखाता है, ऐसा वीर योद्धा, जो लड़ते-लड़ते युद्ध क्षेत्र में पराजित न होकर वीरगति को प्राप्त होता है उसे सीधे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। वह जीवन-मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाता है। अपने शत्रुओं को मारकर स्वयं भी मर जाने वाले क्षत्रियों को निश्चय ही स्वर्ग में स्थान मिलता है।

युद्धभूमि में प्राप्त हुई मृत्यु सभी जाति एवं वर्णों के लिए सुखदायक है। युद्ध के मैदान में यदि ब्राह्मण भी शस्त्रों को साथ लेकर युद्ध के लिए आता है तो उसका वध करना ब्रह्महत्या नहीं होता और उसका पाप भी नहीं लगता। मरता हुआ मनुष्य यदि पानी मांगे तो उसकी

प्यास बुझाना धर्मसंगत है। कभी भी शरण में आए मनुष्यों को युद्ध में नहीं मारना चाहिए अन्यथा ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

बाईसवां अध्याय

गर्भ में स्थित जीव, उसका जन्म तथा वैराग्य

व्यास जी बोले—हे महर्षे! आपने हमारी बहुत-सी जिज्ञासाओं को शांत किया है। अब आप हमें जीव का जन्म, उसकी गर्भ में स्थिति एवं जीव के वैराग्य के बारे में बताइए। महामुनि व्यास के प्रश्न को सुनकर सनत्कुमार जी बोले—हे मुने! हमारे शरीर की पुष्टि रस एवं मैल से हुई है। मैल बारह रूपों में शरीर से बाहर होता है। कान, आंख, नाक, जीभ, दांत, लिंग, गुदा, मलाशय, स्वेद, कफ, विष्ठा, मूत्र आदि मल स्थान हैं। हमारा हृदय सभी नाड़ियों से जुड़ा हुआ है। इसी के द्वारा शरीर में रस पहुंचता है। यही रस आत्मा से परिपक्व होता हैं। जब यह रस पकता है तो सर्वप्रथम त्वचा का निर्माण होता है और त्वचा शरीर से लिपट जाती है। फिर खून बनता है। तत्पश्चात रोम, बाल, स्नायु, अस्थि, मज्जा पैदा होते हैं। ऋतुकाल में स्त्रियों के शरीर में प्रवेश वीर्य शरीर का निर्माण करता है। एक दिन में कलिल, पांच दिन में बबूला, सात रात्रि में मांस पिंड बन जाता है। धीरे-धीरे समय के साथ-साथ जीव के अंग बनते जाते हैं। इस प्रकार जीव अपनी माता के गर्भ में बढ़ता है और उसका विकास होता है। अपनी माता द्वारा खाए गए भोजन के रस से ही उसे भी भोजन मिलता है।

इस प्रकार अपनी माता के गर्भ में पलता हुआ जीव अपने बारे में विचार करता है। उसे सुख-दुख की प्राप्ति भी अपने पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार होती है। उसे गर्भ में ज्ञान होता है कि मैं इसी तरह जन्म-मरण पाता रहता हूं और प्रत्येक योनि में अनेकों दुखों को भोगता हूं। इसलिए मुझे अपनी आत्मा के उद्धार के लिए अवश्य ही कुछ करना चाहिए। गर्भ में जीव अनेकों कष्टों को भोगता है क्योंकि गर्भ भी एक प्रकार की कैद ही है। जीवात्मा गर्भ में इस प्रकार पड़ी रहती है, जैसे उस पर कोई पहाड़ रखा हो। इस प्रकार गर्भ में वह अनेक कष्टों को भोगता है।

गर्भ में अनेक दुख और यातनाएं झेलनी पड़ती हैं। तभी तो धर्मात्मा सातवें माह में ही जन्म ले लेते हैं और पापी नौ महीने तक गर्भ की परेशानियों और कष्टों को झेलते हैं।

तेईसवां अध्याय

शरीर की अपवित्रता तथा बालकपन के दुख

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! हमारा शरीर रज और वीर्य के मिलने से बनता है। विष्ठा के गर्त में स्थित गर्भ में बनता है। इसी कारण इसे अपवित्र माना जाता है। इस अपवित्र देह को पंचगव्यों, किंवा, कुशाजला आदि किसी भी वस्तु से पवित्र नहीं किया जा सकता। शरीर को मिट्टी से मांज कर गंगाजल से धोने से भी कुछ नहीं होता। उसकी शुद्धि किसी भी प्रकार से नहीं होती। जिस प्रकार मलिन आत्मा अनेकों वर्षों तक भटकती रहती है, उसे किसी भी प्रकार से मुक्ति नहीं मिलती। दूषित पुरुष अग्नि की परिक्रमा एवं हवन यज्ञ आदि से भी पवित्र नहीं होते। मंदिरों एवं अन्य तीर्थ स्थानों पर निवास करने वाले जीव भी अपने कर्मों का फल भोगते रहते हैं। उन्हें वहां भी पवित्रता एवं शुद्धि नहीं मिलती। शुद्ध भावना से ईश्वर की स्तुति में लीन रहकर जीवन बिताने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान से हमारा हृदय शुद्ध हो जाता है। ज्ञान रूपी जल एवं वैराग्य रूपी मृतिका से उसे शुद्धि प्राप्त हो जाती है। हमारा शरीर तो अपवित्र है। यह जानकर और समझकर मनुष्य यदि शांति से विचार करे तो उसे ज्ञान मिल जाता है। इस प्रकार वह जीवन से मुक्त हो जाता है।

सच्चाई यह है कि सभी दुखों की जड़ यह मोह-ममता है। यदि हम इसका त्याग कर दें तो फिर हमें सुख प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता। वह जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त हो जाता है परंतु ऐसा होता नहीं, क्योंकि जब गर्भ में ज्ञान प्राप्त करके जीव संसार में पैदा होता है तो फिर सबकुछ भूल जाता है। वह ईश्वर को पहचान नहीं पाता। आंख होने पर भी वह अंधा, कान होते हुए भी बहरा हो जाता है। उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और संसार में फंसकर वह दुख प्राप्त करता है।

बालकपन व किशोरावस्था में जीव अनेक दुखों को भोगता है। वह अपने कल्याण का रास्ता नहीं ढूंढ़ पाता। जवानी में उसमें काम, क्रोध आदि की भावनाएं प्रबल हो जाती हैं। वह स्त्रियों का साथ पाना चाहता है। इस प्रकार के क्षणिक सुख को ही वह महासुख समझ लेता है और ईश्वर की ओर ध्यान नहीं देता। वह सांसारिक बंधनों में बंधकर अनेक दुखों को भोगता रहता है।

चौबीसवां अध्याय

स्त्री स्वभाव

व्यास जी बोले—हे मुनिराज! अब आप हमें पंचचूड़ा अप्सरा द्वारा वर्णित स्त्रियों के कुत्सित अर्थ के बारे में बताइए। व्यास जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास जी! एक बार देवर्षि नारद भ्रमण कर रहे थे, तो पंचचूड़ा अप्सरा मिली, तब नारद जी ने उससे कहा—सुंदरी! आप मुझे स्त्री स्वभाव के बारे में बताइए। तब पंचचूड़ा ने कहा—हे देवर्षि! एक स्त्री होते हुए भला मैं स्त्रियों की बुराई कैसे कर सकती हूं? आप स्त्री स्वभाव को स्वयं जानते ही हैं। नारियों का स्वभाव बड़ा रहस्यमय होता है। कुलीन और पवित्र कही जाने वाली स्त्रियां भी मर्यादा की रेखा को नहीं मानतीं। वे पापी पुरुषों का सेवन भी कर लेती हैं। सब पापों की जड़ नारी को ही माना जाता है।

पुरुष द्वारा थोड़ा-सा प्यार जताने पर स्त्रियां उसकी हो जाती हैं। आभूषण और वस्त्रों की चाह रखने वाली स्त्रियां कुसंगति में पड़कर बिगड़ जाती हैं। चंचल स्त्रियां बड़े-बड़े विद्वानों और ऋषि-मुनियों को भी मोह-माया के झंझट में डालने वाली होती हैं। वे पुरुषों के साथ से कभी भी संतुष्ट नहीं होतीं। वे पुरुषों को देखते ही पाप की ओर उन्मुख हो जाती हैं। वे रति विलास को ही परम सुख मानती हैं। उन्हें धन-वैभव की भी सदैव लालसा रहती है। सब प्रकार के दुर्गुण मिलकर भी स्त्री स्वभाव की समानता नहीं कर सकते। यमराज, मृत्यु, पाताल, बड़वानल, क्षुरधारा, विषसर्प, अग्नि सब मिलकर भी स्त्रियों की बराबरी नहीं कर सकते। वे महादारुण होती हैं। ब्रह्माजी ने इस जगत को बनाते समय पंचमहाभूतों की रचना की। सारे लोकों को रच दिया। अपनी बनाई कृतियों में उन्होंने अनेक गुण भरे परंतु स्त्रियों को बनाते समय सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने उनमें सिर्फ दोष ही दोष भर दिए। इस प्रकार पंचचूड़ा अप्सरा से स्त्रियों के बारे में ऐसे वचन सुनकर नारद जी को स्त्रियों से वैराग्य हो गया।

पच्चीसवां अध्याय

काल का ज्ञान वर्णन

सनत्कुमार जी बोले—हे महामुने! एक बार शिवजी ने देवी पार्वती को काल चक्र के बारे में बताना आरंभ किया। शिवजी बोले—हे देवी! मृत्युकाल का ज्ञान इस प्रकार है—जिस मनुष्य का शरीर अचानक पीला पड़ जाए और ऊपरी भाग में लालिमा आ जाए, जिसकी जीभ, मुंह, कान व आखें स्तब्ध हो जाएं, जो शोर-शराबा न सुन सके, जो सूर्य, चंद्र, अग्नि को काला या धुंधला देखे ऐसा मनुष्य छः महीने के अंदर ही काल का शिकार बनकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

जिस मनुष्य का बायां हाथ सात दिन तक लगातार फड़कता रहे, शरीर कांपता रहे, तालु सूखा रहे, वह मनुष्य एक महीने का ही मेहमान होता है। जिसकी जीभ मोटी हो जाए, नाक बहती रहे, जिसे जल, तेल, घी व शीशे में अपना प्रतिबिंब न दिखाई दे, जिसे ध्रुव मण्डल न दिखाई दे, जिसे सूर्य और चंद्र की किरणें न दिखाई दें, जिसे रात को इंद्रधनुष व दिन में उल्कापात दिखे, जिसे गिद्ध व कौए घेरे हों, तो उसकी जिंदगी छह महीने की रह गई, ऐसा जानना चाहिए।

हे कल्याणी! आत्म-विज्ञान, क्षण, त्रुटि, लव, काष्ठ मुहूर्त, दिन-रात्रि, पल, मास, ऋतु, वर्ष, युग, कल्प, महाकल्प के अनुसार शंकर जीवों का संहार करते हैं। वाम, दक्षिण एवं मध्य तीन मार्ग हैं। नाड़ियां प्राणों को धारण करती हैं। हमारे शरीर में सोलह नाड़ियां हैं, जो चार स्थानों पर रहती हैं। इन्हीं सब के अनुसार ही आयु की प्राप्ति मनुष्य को होती है। नाड़ियों एवं वायु का प्रवाह मनुष्य को शेष आयु बताने का कार्य करता है। इस प्रकार काल ज्ञानियों ने काल-चक्र का वर्णन किया है।

छब्बीसवां अध्याय

काल-चक्र निवारण का उपाय

देवी पार्वती बोलीं—हे नाथ! आपने कालचक्र का वर्णन मुझे सुनाया। हे देवाधिदेव! अब कृपा करके इससे बचाव का उपाय भी मुझे बताइए। अपनी प्राण वल्लभा के इस प्रकार के प्रश्न को सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव बोले—देवी उमे! पृथ्वी, जल, तेज, पवन और आकाश आदि पांच तत्वों के संयोग से इस भौतिक शरीर की उत्पत्ति होती है। आकाश सर्वव्यापक है और सब वस्तुएं उसी में लीन हो जाती हैं। एक बार मैंने क्रोधवश काल को जला दिया था। जब-जब मैं स्तुतियों द्वारा प्रसन्न हुआ तब काल पुनः प्रकृति में स्थिर हो गया।

आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। जल के चार, तेज के तीन, वायु के दो और आकाश का एक गुण है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध आदि पांच भूत, जब शरीर को त्याग देते हैं, तभी प्राणी की मृत्यु होती है और जब ये पाचों भूत शरीर को ग्रहण करते हैं तो प्राणी की उत्पत्ति होती है। काल को जीतने वाले योगीगण इन गुणों का ध्यान करते हैं।

देवी पार्वती ने कहा—हे नाथ! काल पर विजय पाने के लिए योगीजन जिस यंत्र का ध्यान या अभ्यास करते हैं, उसके विषय में बताइए। पार्वती जी के इस प्रश्न को सुनकर देवाधिदेव शिवजी बोले—देवी! रात्रि के अंधकार में जब पूरा जगत गहरी नींद में सो रहा हो, उस समय बैठकर योग करें। आसन पर बैठकर अपनी तर्जनी अंगुलियों से दोनों कानों को बंद कर लें। इस प्रकार प्रतिदिन यही साधना करें। जब यह साधना इतनी कठोर हो जाए कि दो पहर इसी आसन में बीतें तथा उसके बाद अग्नि द्वारा प्रेरित शब्द या नाद सुनाई दे, उस समय मनुष्य को इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त हो जाती है। यह शब्द या नाद ब्रह्मरूप है, जो सुख तथा मुक्ति को देने वाला है। इस नाद ध्वनि या शब्द को सांसारिक मोह-माया में लिप्त लोग भला कैसे जान पाएंगे?

जिन उत्तम मनुष्यों को इसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं। उन्हें तत्वज्ञान व मुक्ति की प्राप्ति होती है। यह नाद अनाहत है, जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता। योगीजन अपने प्रयत्न एवं ध्यान द्वारा इसे प्राप्त करते हैं। वे पापों से दूर होकर मृत्यु पर विजय पा लेते हैं। उसी से मृत्यु पर विजय प्रदान करने वाला शब्द उत्पन्न होता है। घोष, कांस्य, श्रंग, घण्टा, वीणा, वंशज, दुंदुभि, शंखनाद व मेघ गर्जित नामक इन नौ शब्दों का ध्यान करने वाले ज्ञानियों एवं योगीजनों पर कभी कोई विपत्ति नहीं आती। इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर नियमपूर्वक तुकांग शब्द की स्तुति और ध्यान करने वाले मनुष्यों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। उसकी हर कामना की सिद्धि होती है और अभीष्ट फल मिलता है।

सत्ताईसवां अध्याय

अमरत्व प्राप्ति की साधनाएं

पार्वती जी बोलीं—हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह बताएं कि योगीजन वायु के पद को कैसे प्राप्त करते हैं? यह सुनकर महादेव जी बोले—हे कल्याणी! जिस प्रकार दरवाजे की देहरी पर रखा दीपक घर के अंदर और बाहर दोनों ओर प्रकाश करता है, उसी प्रकार हमारे हृदय के भीतर स्थित वायु भी अंदर और बाहर दोनों ओर प्रकाश करती है। ज्ञान, विज्ञान और उत्साह सभी का मूल वायु ही है। इसलिए जिसने वायु पर अपनी विजय प्राप्त कर ली है, उसे पूरे जगत पर विजय प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार लोहार मुख से फूंकनी में फूक (वायु) भरता हुआ अपने काम में लगा रहता है, उसी प्रकार संत और योगीजन भी अपने अभ्यास में लगे रहते हैं। अभ्यास करते-करते जब वे पारंगत हो जाते हैं तो वे आसन से दस अंगुल ऊपर उठ जाते हैं।

प्राणायाम में सिर एवं व्याहृतियों के साथ गायत्री मंत्र का जाप करते हुए प्राणवायु को रोका जाता है और अंदर स्थित वायु को नाक के रास्ते बाहर फेंका जाता है। इसे करने से बड़ा उत्तम फल मिलता है। योगीजनों को एकांत स्थान पर, जहां सूर्य-चंद्र का प्रकाश हो, सोना चाहिए। आंखों को अंगुलियों द्वारा बंद करके ध्यानमग्न होने पर योगीजनों को ईश्वर की ज्योति के दर्शन होते हैं। जब योगीजनों को इस प्रकार अंधकार में ईश्वर ज्योति के दर्शन हो जाते हैं तब वह योगी परम सिद्ध हो जाता है। उसे अनेक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। वह जीवन-मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाता है और उसे मोक्ष रूपी परम तत्व की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार ध्यान करने वाले योगियों को तुरीय गति प्राप्त हो जाती है।

अट्ठाईसवां अध्याय

छाया पुरुष का वर्णन

श्री पार्वती जी शिवजी से पूछने लगीं कि भगवन्! आपने मुझे काल और वचन का वर्णन किया, अब मुझे छाया पुरुष के श्रेष्ठ ज्ञान को बताइए। भगवान शिव बोले—श्वेत वस्त्र धारण करके धूप दीप प्रज्वलित करके 'ॐ नमः भगवते रुद्राय' नामक बारह अक्षरों के मंत्र का जाप करते समय जब मनुष्य को अपनी छाया दिखाई देने लगे तो उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। यदि ऐसी छाया बिना सिर के दिखाई दे तो छः महीने में मृत्यु हो जाती है। शुक्लवर्ण होने पर धर्म वृद्धि होती है, कृष्ण वर्ण पाप, रक्त वर्ण पर बंधन, पीत पर शत्रु का भय होता है। यदि नाक कटी दिखे तो विवाह बंधु मृत्यु, भूख का डर होता है। इस प्रकार जब मनुष्य को छाया पुरुष दिखाई दे, तो उसे नवाक्षर मंत्र का मन में जाप करना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक इसे जपने से सभी सिद्धियों की प्राप्ति होती है। अब मैं तुम्हें एक गुप्त विद्या के बारे में बताता हूं। यह विद्या ब्राह्मणों के सिर पर विद्यमान होती है। यह विद्या सभी विद्याओं की माता कहलाती है। वेद भी प्रतिदिन इसकी स्तुति करते हैं। इस विद्या को खेचरी नाम से जाना जाता है। यह विद्या अदृश्या, दृश्या, चला, नित्या, व्यक्ता, अव्यक्ता और सनातनी कहलाती है। यह वर्ण रहित, वर्ण सहित बिंदु मालिनी है। इस विद्या का दर्शन करने वाले योगी का जन्म सफल हो जाता है।

इसलिए योगीजनों को अपने ज्ञान और विद्याओं का नित्य अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास से सभी सिद्धियां सिद्ध होती हैं।

उनतीसवां अध्याय

आदि-सृष्टि का वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषिगण! सत् और असत् का परम स्वरूप प्रधान पुरुष परमात्मा ही ब्रह्माजी के रूप में सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। वे ही सृष्टि के रचयिता हैं। विष्णुजी इस सृष्टि का पालन और शंकरजी इसका संहार करते हैं। ब्रह्माजी ने जब सृष्टि की रचना के बारे में सोचा तो सबसे पहले जल की उत्पत्ति हुई। जल को नरक पुत्र कहा जाता है और जल में नारायण रहते हैं। ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञ किया और स्वयंभू कहलाए। जल में सर्वप्रथम एक अण्डा हुआ जिसके दो भाग हिरण्यगर्भ ने किए।

अण्डे के ये दो भाग आकाश और पृथ्वी हुए। ब्रह्माजी ने अधो भाग में चौदह भुवन, मध्य में आकाश की रचना की। उन्होंने ही जल के ऊपर पृथ्वी की रचना की। आकाश में दस दिशाओं की रचना हुई। ब्रह्माजी ने तत्पश्चात मन, वाणी, काम, क्रोध, रूप और रति की भी रचना की। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, वशिष्ठ महामुनि तेजस्वी ऋषियों के रूप में विश्व प्रसिद्ध हुए। ये सब ऋषि ही सप्तऋषि के नाम से जाने जाते हैं और इनका वर्णन सभी पुराणों में किया गया है।

पुराणों और सप्तऋषि रचना के पश्चात यज्ञ सिद्धि के लिए ऋग्, यजु, साम और अथर्व वेदों का निर्माण ब्रह्माजी ने किया। तत्पश्चात उन्होंने देव पूजन किया। वक्षस्थल से पितर, जंघाओं से मानव एवं जंघा के नीचे के भाग से दैत्य बनाए गए। इस प्रकार ब्रह्माजी ने सारी सृष्टि की रचना पूरी की परंतु उनकी बनाई गई इस सृष्टि में विकास न होता देखकर ब्रह्माजी ने प्रकृति और पुरुष को बनाया जिन्होंने सृष्टि का निर्माण किया। भगवान नर और नारायण द्वारा बनाई गई सृष्टि प्रजा अमैथुन-सृष्टि से उत्पन्न हुई।

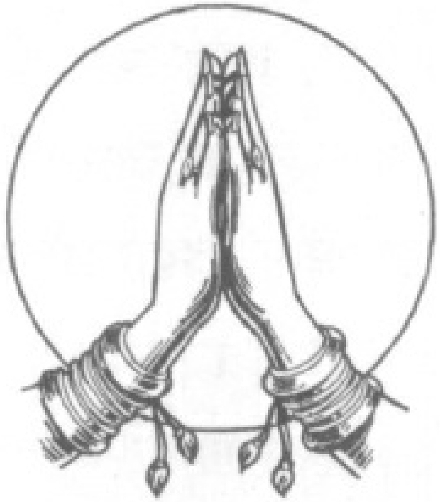

तीसवां अध्याय

सृष्टि रचना क्रम

सूत जी बोले—हे ऋषिगण! इस प्रकार ब्रह्माजी द्वारा निर्मित सृष्टि का निरंतर प्रसार होने लगा। प्रजापति ने अयोनिजा शतरूपा से विवाह किया। शतरूपा ने सौ वर्षों तक तपस्या करके उन्हें पति रूप में प्राप्त किया। इन्हीं के मनु नामक पुत्र हुए। मनु से इकहत्तर मनुओं की रचना मन्वंतर संज्ञा कहलाती है। फिर वीरका हुई। इनसे उत्तानपाद की उत्पत्ति हुई। राजा उत्तानपाद का विवाह सुनीति से हुआ। इन्हीं के परम तेजस्वी पुत्र के रूप में ध्रुव पैदा हुआ। ध्रुव ने ब्रह्माजी की तीन हजार वर्षों तक कठोर तपस्या करके सप्तऋषियों से भी ऊपर स्थान प्राप्त किया था।

पुष्टि और धान्य नामक ध्रुव के दो पुत्र हुए। पुष्टि की पत्नी सुनत्था थी। उनसे रिपु, रिपुजंय, विप्र, नृकल, वृष, तेजा नामक पांच पुत्र पुष्टि को प्राप्त हुए। रिपु से चाक्षुष, पूष्करिर्ण पत्नी से चाक्षुष को वरुण नामक पुत्र प्राप्त हुए। सुनीथा से अंग को बेन नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। बेन के शरीर से ऋषिगण ने मंथन किया। उनके दक्षिण हाथ से राजा पृथु पैदा हुए, जो भगवान विष्णु के अवतार थे। पृथु ने पृथ्वी का दोहन किया ताकि प्रजा का हित हो सके। इनके विजिताश्व और हर्यश्व नामक दो पुत्र हुए। शिखंडिनी ने वीर वर्णिनी से विवाह किया। इनसे प्रजापति की प्राप्ति हुई, जो कि सोम के अंश थे। तत्पश्चात दक्ष ने दो पैर वाले और चार पैर वाले जीवों को उत्पन्न किया। हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किए, जो महर्षि नारद के वचनों और उपदेशों को सुनकर वैरागी हो गए। फिर ब्रह्माजी ने शवलाश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किए जिन्हें नारद जी ने वैरागी बना दिया। यह सब जानकर दक्ष बहुत क्रोधित हुए। क्रोधित दक्ष ने देवर्षि नारद को शाप दिया—नारद! तुमने मेरे पुत्रों को गलत मार्ग पर डाल दिया है। उन्हें मुझसे दूर कर दिया है। इसलिए तुम भी कहीं चैन से नहीं बैठ सकोगे। तुम्हारा कोई निश्चित ठिकाना नहीं होगा। तुम जगह-जगह घूमते रहोगे।

पुत्रों के बाद दक्ष की तेरह कन्याएं हुईं। जिनका विवाह कश्यप, अंगिरा, कृष्णश्व एवं चंद्रमा से हुआ। इस प्रकार अनेकों जीवों का निर्माण करने के पश्चात भी ब्रह्माजी की सृष्टि का विकास नहीं हुआ। तब उन्होंने मैथुनी-सृष्टि का सृजन करने के बारे में सोचा।

ईकतीसवां अध्याय

मैथुनी सृष्टि वर्णन

शौनक जी बोले—हे सूत जी! कृपा करके मुझे देव, दानव, गंधर्व, राक्षस और सर्पों आदि के बारे में बताइए। यह सुनकर सूत जी बोले—जब ब्रह्माजी द्वारा निर्मित सृष्टि का प्रजापति द्वारा विकास नहीं हुआ तब वीरसा ने अपनी कन्या का विवाह धर्म से कर दिया और मैथुनी-सृष्टि का आरंभ हुआ। प्रजापति दक्ष के पांच हजार पुत्र नारद जी के उपदेश का अनुसरण करते हुए ज्ञान की तलाश में घर छोड़कर चले गए और फिर कभी नहीं लौटे। इसी कारण दुखी दक्ष ने देवर्षि नारद को शाप दिया था।

तत्पश्चात प्रजापति दक्ष ने अट्ठावन कन्याएं उत्पन्न कीं और उनका विवाह कश्यप, चंद्रमा, अरिष्टनेम, कृशाश्व, अंगिरा से कर दिया। जिनसे इन्हें विश्व से विश्व देवता, संध्या से साध्य, मरुवती से मरुत्वान, वसु से आठ वसु, भानु से बारह भानु, मुर्हूर्तज, लंबा से घोस, यामि से नाग, वीथी एवं अरुंधती से पृथ्वी उत्पन्न हुए। संकल्पा से संकल्प, वसु से अय, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूषा, प्रभाष ये आठ पुत्र पैदा हुए।

आठवें वसु प्रभा से विश्वकर्मा प्रजापति की उत्पत्ति हुई। वे शिल्प कला में निपुण थे। विश्वकर्मा देवताओं के लिए आभूषण, विमान, घर एवं अनेक वस्तुएं उनकी इच्छानुसार बनाया करते थे। इसी कारण विश्वकर्मा देवताओं के शिल्पी कहलाए। रैवत अज, भीम, भव, उग्र, बाम, वृष, कपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न, बहुरूप एवं महान ये ग्यारह रुद्र प्रधान हैं। वैसे तो सरूपा के अनेकों पुत्र हुए और उनसे पैदा हुए रुद्रों की संख्या करोड़ों में है परंतु इन्हीं ग्यारह रुद्रों को ही मुख्य माना जाता है। ग्यारह रुद्र संसार के स्वामी भी कहे जाते हैं।

बत्तीसवां अध्याय

कश्यप वंश का वर्णन

सूत जी बोले—अदिति, दिति, सुरसा, अरिष्ठा, इला, दनु, सुरभि, विनीता, ताब्रा, क्रोध, वशी, कद्रू आदि कश्यप ऋषि की पत्नियां थीं। मन्वंतर में तुषिता नामक बारह देवता अदिति से उत्पन्न हुए। इनकी उत्पत्ति लोकहित के लिए ही हुई थी। दक्ष कन्या से ही विष्णुजी व इंद्रदेव की भी उत्पत्ति हुई।

सोम की सत्ताईस पत्नियां थीं। उनके अरिष्टनेमि नामक सोलह पुत्र एवं एक कन्या हुई। कुशाश्व का देव प्रहरण नामक पुत्र हुआ। स्वधा तथा सती इनकी दो पत्नियां थीं। स्वधा से पितर व सती से अंगिरा पैदा हुए। कश्यप जी को दिति से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष पुत्र प्राप्त हुए। विप्रचित्ति द्वारा सिंहा कन्या हुई। हिरण्यकशिपु को अनुह्लाद, व्रह्लाद, सव्लाद एवं प्रह्लाद नामक चार पुत्र प्राप्त हुए। प्रह्लाद भगवान के परम भक्त थे। हिरण्याक्ष के कुकर, शकुनि, महानाद, विक्रांत एवं काल नामक पांच पुत्र हुए।

अयोमुख, शंबर, कपाल, वामन, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रवण, महाशिर, स्वर्भानु, वृषपर्वा, विप्रचित्ति की प्रभा कन्याएं हुईं। वैश्वानर की पुलोम और पुलोमक कन्याओं का विवाह मरीचि से हुआ जिनसे उन्हें दानवों की प्राप्ति हुई। राहू, शल्प, सुबलि, बल, महाबल, बातपि, नमुचि, इल्वल, स्वसृप, ओजन, नरक, कालनाम, शरमाण, शर कल्प आदि इनके वंशवर्द्धक हुए।

विनिता से गरुण एवं अरुण पैदा हुए। सुरसा से अत्यंत तेजस्वी एवं परम ज्ञानी सर्पों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार क्रोधवशा के बहुत से गण हुए। सुरभ से शशा एवं भैंसा, झला से बैल एवं वृक्ष, शशि से यक्ष, राक्षस, अप्सरा व मुनिगण तथा अरिष्ठा से मनुष्य एवं सर्प उत्पन्न हुए। इस प्रकार मैंने आपको कश्यप जी के वंश में उत्पन्न पुत्र एवं पौत्रों का वर्णन किया।

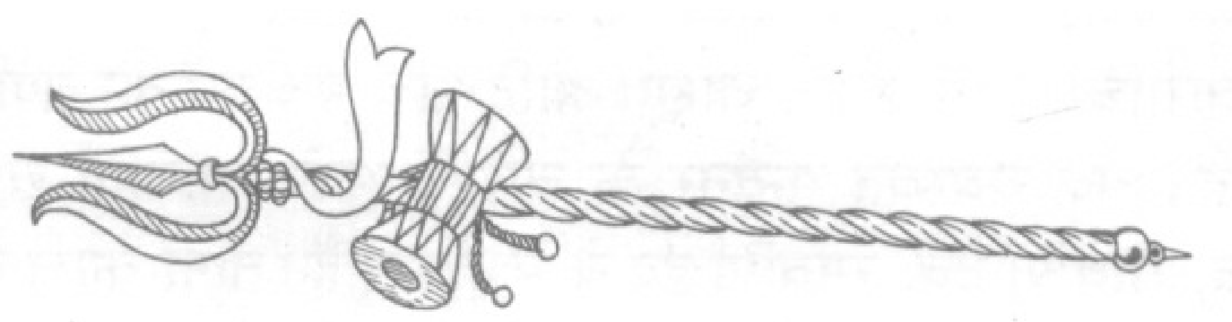

तेंतीसवां अध्याय

हवन सृष्टि वर्णन

सूत जी बोले—हे मुनियो! वैवस्वान मन्वंतर में हवन करने वाली सृष्टि का वर्णन है। इस सृष्टि में सात ऋषि हुए जिन्हें ब्रह्माजी ने अपना पुत्र माना। दिति ने कश्यप ऋषि की बहुत सेवा की जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने दिति को वरदान मांगने के लिए कहा। वरदान में दिति ने इंद्र को मारने वाला पराक्रमी पुत्र मांगा। उनकी इच्छा कश्यप मुनि ने पूरी की। वरदान देकर वे तप करने चले गए। इंद्रदेव को दिति के इस वरदान के बारे में पता चल गया। वे उस अवसर की प्रतीक्षा करने लगे जिसमें वे दिति के व्रत को भंग कर सके। एक दिन इंद्र को अवसर मिल ही गया। दिति बिना हाथ-मुंह धोए जूठे मुंह सो गई। इंद्र ने उसके गर्भ में प्रवेश कर उसके गर्भ के वज्र द्वारा सात टुकड़े कर दिए परंतु टुकड़े होने पर भी वे जीवित रहे और इंद्र से प्रार्थना करते हुए बोले—हम आपके भ्राता हैं। आप हमसे कैसी शत्रुता कर रहे हैं। यह सुनकर इंद्रदेव ने शत्रुता त्याग दी। इस प्रकार वे मरुद्गण के रूप में हुए। ब्रह्माजी ने पृथु को आधा राज्य दिया। सोम को ब्राह्मण, वृक्ष, नक्षत्र, ग्रह एवं भूतों का राजा बनाया। वरुण को जल, विष्णु को आदित्य, पावक वसुओं के, प्रजापतियों के इंद्र, मरुद्गणों के प्रह्लाद, दैत्यों के वैवस्वत, यत पितरों के राजा हुए। हिमालय पर्वतों के, समुद्र नदियों के, सिंह पशुओं के, वट वृक्ष वनस्पति व अन्य वृक्षों के राजा हुए। तब ब्रह्माजी ने सभी राजाओं का अभिषेक किया।

चौंतीसवां अध्याय

मन्वंतरों की उत्पत्ति

शौनक जी बोले—सूत जी! अब आप हमें मन्वंतरों एवं मनुओं के बारे में विस्तारपूर्वक बताइए। उनकी बात स्वीकारते हुए सूत जी बोले—हे मुनि जी! स्वायंभुव स्वारोचिष उत्तम रैवत, चाक्षुष आदि पांच मन्वंतरों का वर्णन मैंने आपको सुना दिया है। अब वैवस्वत मन्वंतर के बारे में सुनो। सावर्णि रोच्य, ब्रह्मा धर्म सावर्णि, रुद्र, सावर्णि देव, सावर्णि इंद्र ये सभी मनु हैं। तीनों काल के मन्वंतर कहे जाते हैं। जिसका हजार युगों तक कल्प बनता है। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, ऋतु, पूलस्त्य, वशिष्ठ ये सातों व्रभा पुत्र हैं। स्वायंभुव मन्वंतर में यामनायक देवता सात ऋषि उत्तर दिशा में रहते हैं। आग्नीध्र, अग्नि, बाहु, मेधातिथि, बस, ज्योतिष्मान, धृतमान, हव्य, पवन, शुभ ये दस स्वयंभुव मनु पुत्र हैं। इनमें यज्ञ नामक इंद्र कहे गए हैं।

दूसरे मन्वंतर में अर्जस्तमा, परस्तंभ, ऋषभ, वसुमान, ज्योतिष्मान, द्युतिमान एवं सातवें रोचिष्मान सात ऋषि हैं। स्वरोचिष मन्वंतर में रोचन, इंद्र तथा तुषिता नामक देवता कहे हैं। हरि, सुकृति, ज्योति, अयोमूर्ति, अयस्मय, प्रथित, मनुष्य, नभ, सूर्य महात्मा, स्वारोचिष के पुत्र हैं। तीसरे मन्वंतर में वशिष्ठ के सातों पुत्र एवं हिरण्यगर्भ के ऊर्जा तेजस्वी पुत्र ऋषि कहलाए। चौथे मन्वंतर में गार्ग्य, पृथु, गम्या, जन्य, धाता और कपिनक आदि सात ऋषि हैं। त्रिशिख इंद्र हैं। द्युतिपोत, सौत, पस्यतप, शूल, तापन, तपोरित अकल्याष, धन्वी, खंगी, तामस, मनु दस पुत्र हैं।

पांचवें मन्वंतर में देवबाहु, जय मुनि, वेदशिरा, हिरण्य रामा, पर्जन्य, उर्ध्व बाहु एवं सत्व नैजादिक सात ऋषि कहलाए। विभु नाम के इंद्र तथा रैवत मनु कहलाए। छठे मन्वंतर में रुचि प्रजापति के पुत्र रौच्य मनु, राम, व्यास, अत्रैय, बहश्रुति, भारद्वाज, अश्वत्थामा, शरद्वान, कृपाचार्य, कौहिक वंशी गाल्व, रुक, कश्यप आदि ऋषि और देवता कहलाए। इसी प्रकार आने वाले मन्वंतरों में विषांग, नीबासुमत, द्युतिमान, वसु, सूट, सुराविष्णु, राजा, सुमति, सावर्णि, मनु पुत्र होंगे।

नवें मन्वंतर में मेधा तिथि, पौलस्त्य वस्तु कश्यप ज्योतिष्मान, भार्गव, अंगिरा तथा सवन, वशिष्ठ आदि रोहित मन्वंतर में होंगे और मनु दक्षसावर्णि होगा। इस प्रकार जब दूसरा मन्वंतर आरंभ होगा तब हविष्मान, प्रकृति, अधोमुक्ति, अव्यय, प्रयाति, भाभार, अनेना ऋषि होंगे। द्विष्मंत नामक देवता होंगे। तृतीय मन्वंतर में ग्यारहवां मनु होगा। उसमें हविष्मान व पुष्पमान वशिष्ठ अनय चारु निखर तेजस अग्नि ब्रह्माजी के वधृत कहलाएंगे। द्युति, सुताया, अंगिरा, पौलस्त्य, पुलह, भार्गव सात ऋषि एवं ब्रह्मा के पांच मानस पुत्र देवता होंगे। इस मन्वंतर में दिवस्पति इंद्र होंगे।

चौदहवां सत्य मनु मन्वंतर होगा। इसमें आग्नीध्र, अति व्राह्य, मागध, शुक्ति, युक्ति,

अजित, पुलह नामक सात ऋषि, दाक्षुव देवता एवं शुचि इंद्र होगा। चौदहवें मन्वंतर में पांच देवता होगे। तरंग, भीरू, दुघ्न, अनुग्र, अतिमानी प्रवीण विष्णु संक्रंदन मनु के पुत्र होंगे। इस प्रकार मैंने आपसे भूत, भविष्य-काल के पहले कल्प के सभी मनुओं का वर्णन किया। मनु अपने धर्म और तप के प्रभाव से सहस्रों युगों तक प्रजा का पालन करके ब्रह्मलोक को जाते हैं। चौदह मन्वंतर अर्थात इकहत्तर युगों तक स्थिर रहकर सृष्टि का पुनः आरंभ होता है। सौ हजार वर्ष पूर्ण होने पर एक 'कल्प' पूरा माना जाता है।

पैंतीसवां अध्याय

वैवस्वत मन्वंतर वर्णन

सूत जी बोले—कश्यप मुनि को दक्ष कन्या से विवश्वान सूर्य की प्राप्ति हुई। सूर्य की संज्ञा, त्वष्ट्री, सुरेणुका नामक तीन पत्नियां हुईं। संज्ञा और सूर्य की तीन संतानें हुईं। श्राद्धदेव, मनु और प्रजापति यम। यम के साथ यमुना कन्या के रूप में पैदा हुई। उस समय संज्ञा सूर्य के तेज को सहन न कर सकीं। अपनी माया रूपी छाया प्रकट कर उसे अपनी संतानों का पालन-पोषण करने की आज्ञा देकर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई।

उसके पिता ने उसे इस प्रकार आया देखकर धिक्कारा, तो संज्ञा वहां से वापस आ गई। घोड़ी का वेश धारण करके वह कुरु देशों का भ्रमण करने लगी। इधर, सूर्य ने संज्ञा की छाया को ही अपनी पत्नी माना। उससे उन्हें सावर्णि मनु नामक पुत्र प्राप्त हुआ। छाया को अपने पुत्र से अधिक प्यार था। वह संज्ञा की संतानों का सही से ध्यान नहीं रखती थी। एक दिन यम को किसी बात पर क्रोध आ गया और उसने छाया को लात मार दी। यह देखकर क्रोधित छाया ने यम को शाप दिया कि तुम्हारा पांव, जिससे तुमने मुझे मारा, वह गिर पड़े।

शाप सुनकर यम बहुत चिंतित हुए और उन्होंने सारी बातें जाकर अपने पिता सूर्य को बताईं और शाप से बचाने की प्रार्थना की। सूर्यदेव बोले—बेटा, मैं तुम्हारी माता के शाप को असत्य नहीं कर सकता परंतु उसे कम करने की कोशिश अवश्य करूंगा। सूर्य ने क्रोधित होकर छाया से पूछा, बताओ, तुमने यम को शाप क्यों दिया? क्या कोई मां अपने पुत्रों से ऐसा व्यवहार कर सकती है। तुम्हारा सबसे छोटे पुत्र से विशेष स्नेह है, अन्य सभी को तुम सदा डांटती रहती हो। ऐसा क्यों? इस प्रकार क्रोधित सूर्य के वचन सुनकर घबराई हुई छाया ने सारी बातें सच-सच बता दीं।

फिर छाया ने सूर्य को शनि चक्र पर चढ़ाकर उनका तेज कम कर दिया। अब सूर्य का रूप सुंदर और शीतल हो गया था। उन्होंने योगदृष्टि से अपनी पत्नी संज्ञा के बारे में जानना चाहा। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि संज्ञा घोड़ी के रूप में है। तब सूर्य उसके पास पहुंचे, अपनी पत्नी को वापस पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। संज्ञा भी उन्हें पाकर बहुत खुश हुई। उनके मिलन से वैद्य अश्विनी कुमार की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात खुशी-खुशी संज्ञा और सूर्य अपने घर लौट आए।

यमराज धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे और धर्मराज कहलाए। सावर्णि मनु तपस्वी होने के कारण प्रजापति कहलाए और सावर्णि मन्वंतर में मनु हुए। यमुना, सूर्य की सबसे छोटी कन्या यमलोक को पवित्र करके बहती हुई नदी हुई।

छत्तीसवां अध्याय

मनु पुत्रों का कुल वर्णन

सूत जी बोले—ऋषिगण! वैवस्वत मनु के नौ पुत्र इक्ष्वाकु, शिविन, भाचु, धृष्ट, कार्याति, निष्तंत, कुत्रय, प्रियव्रत और नृग थे। ये सभी महा पराक्रमी, वीर और क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाले थे। जब मनु की कोई संतान नहीं थी तो उन्होंने पुत्र प्राप्ति हेतु यज्ञ किया। तब वरुण के अंश से इड़ा की उत्पत्ति हुई। वह वरुण के पास गई और उन्हें बताया कि मैं मनु के यज्ञ में आपके अंश से ही पैदा हुई हूं। बताइए, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

तब वरुण देव ने उसे मनुवंश को बढ़ाने की आज्ञा प्रदान की। जब इड़ा मनु के घर की ओर जा रही थी तो रास्ते में बुधि से उसका मिलन हुआ और उनसे उसे पुरुरवा नामक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिस पर उर्वशी नामक अप्सरा मोहित हो गई थी। तत्पश्चात भगवान शिव की कृपा से पुरुषत्व प्राप्त कर सुद्युम्न ने परम धर्मात्मा उत्कल, गय एवं विनताश्व नामक पुत्रों को पैदा किया। उत्कल ब्राह्मण होकर वल्कल देश में निवास करने लगे। विनताश्व पश्चिम देश में ब्राह्मण हुआ।

आनति पुत्र रैन्य रैभय नाम से जगप्रसिद्ध हुआ। उसका निवास कुशस्थली में हुआ था। उनके सौ पुत्र एवं कुकुदमी सबसे श्रेष्ठ कन्या हुई। इसकी कन्या के रूप में सुंदरी रेवती पैदा हुई। रेवती के बड़े होने पर कुकुदमी को उसके विवाह की चिंता हुई। उन्होंने ब्रह्माजी से रेवती के वर के बारे में जानना चाहा।

तब ब्रह्माजी बोले—हे कुकुदमी! अट्ठाईसवें द्वापर में, भगवान श्रीकृष्ण अपने कुटुंबियों सहित द्वारिकापुरी में निवास करेंगे। वहां उनके भाई और वसुदेव जी के पुत्र बलदेव से तुम रेवती का विवाह करना। वही रेवती के लिए सर्वथा योग्य वर है। ब्रह्माजी के कथनानुसार कुकुदमी ने रेवती का विवाह बलदेव जी से किया। स्वयं वे सुमेरु पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। बलदेव के सौ पुत्र हुए। श्रीकृष्ण जी को भी अनेकों पुत्रों की प्राप्ति हुई। वे सभी सारी दिशाओं में जाकर अनेक स्थानों पर बस गए।

सूत जी बोले—मनु के पुत्र वृषह्न वशिष्ठ जी के आश्रम में रहने लगे। उन्होंने उन्हें गौरक्षा के काम में लगा दिया। एक रात बाघ ने गौशाला पर आक्रमण कर दिया। गायों की रक्षा के लिए वृषह्न तलवार लेकर गौशाला में चले गए और अंधेरे के कारण उनके वार से गाय कट गई और बाघ भाग खड़ा हुआ। सुबह जब उसने गाय को मरा देखा तो सारी बातें गुरु जी को बताईं। यह सब जानकर वशिष्ठ जी ने उसे शूद्र होने का शाप दे दिया। तब दुख और शोक में डूबे वृषह्न ने अपने शरीर को जला दिया।

सैंतीसवां अध्याय

मनु वंश वर्णन

सूत जी बोले—ऋषिगण! मनु जी की नाक से इक्ष्वाकु पैदा हुआ था और उसकी सौ संतानें हुईं, जिनमें सबसे बड़ा विकुक्षि अयोध्या का राजा बना। उसने एक दिन वन में शश को खा लिया था। उसी दिन से यह शशाद नाम से प्रसिद्ध हुआ। अयोध के पुत्र का नाम ककुत्स्था था। अरिनाम उसका पुत्र हुआ। इसी प्रकार अरिनाम के पृथु, पूथु के विश्वराट, विश्वराट के प्रजापति इंद्र, उनके युवनाश्व, युवनाश्व के कुवलाश्व इंद्र के पुत्र युवनाश्व द्वारा प्रजापति श्राव हुए। इन्होंने श्रावस्ती पुरी बसाई।

कुवलाश्व के सौ पुत्र हुए थे। उन्होंने अपना राज्य पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं वन को चले गए। मार्ग में उन्हें उतंक मुनि मिले। मुनि बोले, राजन! मेरे आश्रम के पास ही धुंध नामक दानव रहता है। वह महावीर और पराक्रमी है। उसने उग्र तपस्या आरंभ कर दी है जिसके बल पर वह तीनों लोकों का विनाश करना चाहता है। आप उसका वध करके इस जगत का कल्याण करें। मुनि की बात सुनकर कुवलाश्व बोले, मुनिराज मैं तो शस्त्रों को त्याग चुका हूं। इसलिए आपका यह कार्य मेरा पुत्र करेगा। यह कहकर उन्होंने यह कार्य अपने पुत्र को सौंप दिया। तब उनका पुत्र धुंध को मारने पहुंचा। धुंध ने उनको अपनी ओर आता देखकर उन पर आक्रमण कर दिया। तब कुवलाश्व पुत्र ने बहादुरी से युद्ध कर धुंध का वध कर दिया। उतंक ऋषि ने उसे अपराजित रहने एवं अक्षय धन प्राप्ति का वर प्रदान किया।

उनके पुत्रों में दृढ़ाश्वका हश्व, हर्यस्वका, निकुंभ एवं ग्रहताश्व कृशाश्व एवं हेमवती कन्या उत्पन्न हुई। उसके प्रसेनजित नामक पुत्र हुआ। प्रसेनजित ने अपनी पत्नी को शाप दे दिया था जिसके अनुसार वह वहुदानाम की नदी बनी। पुरुकुत्स का पुत्र जय्यारुणि और सत्यव्रत उसका पुत्र हुआ। उसे अधर्मी समझकर उसके पिता ने उसे त्याग दिया। तब वह चांडालों के साथ रहने लगा। इसी अधर्मी के कारण इंद्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की। तत्पश्चात विश्वामित्र ने अपनी पत्नी का त्याग कर दिया और तपस्या करने लगे। उनकी पत्नी ने अपने पुत्र का गला बांधकर उसे सौ गायों के बदले बेच दिया। सत्यव्रत ने ही उसे बचाया। गला बांधने के कारण उसका नाम गालव हुआ।

अड़तीसवां अध्याय

सगर तक राजाओं का वर्णन

सूत जी बोले—ऋषिगण! सत्यव्रत ने विश्वामित्र की पत्नी और पुत्र का पालन पोषण किया। एक दिन की बात है राजकुमार ने मांस खाने की जिद की। तब सत्यव्रत ने महर्षि वशिष्ठ की एक गाय को मारा और तीनों ने उसे खा लिया। जब महर्षि वशिष्ठ को पता चला तो वे बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने सत्यव्रत को त्रिशंकु होने का शाप दे दिया। इधर, जब विश्वामित्र लौटे, तो उन्हें पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में सत्यव्रत ने ही उनके पुत्र और पत्नी का ध्यान रखा, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। महर्षि विश्वामित्र ने सत्यव्रत के पिता का राज्य उसे दिला दिया। यज्ञ द्वारा उसे सीधे स्वर्ग पहुंचा दिया।

सत्यव्रत की पत्नी सत्यरथा थी और उनके पुत्र हरिश्चंद्र राजा हुऐ। उनके पुत्र रोहित, रोहित के पुत्र वृक और वृक के पुत्र बाहू हुए। राजा बाहू ने ऋषि और्व के आश्रम में तालजंघाओं से रक्षा पाई थी। इसी जगह जहर सहित पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम सगर था। सगर ने भार्गव ऋषि से आग्नेय नामक अस्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। उसने हैहय, तालजंघाओं को मारकर पूरी पृथ्वी पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात शकवल्टूक, पारद, तगण, खश, नामो आदि देशों में धर्म स्थापन किया।

उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया और संस्कार द्वारा घोड़े को पवित्र कर छोड़ दिया। तब देवराज इंद्र ने घोड़े को पाताल में छिपा दिया। सगर पुत्रों ने घोड़े की तलाश में उस स्थान की खुदाई की। खुदाई करते-करते वे कपिल जी के आश्रम में पहुंच गए। उनके शोर से कपिल मुनि ने आंखें खोलीं। उनकी आंखों के तेज की अग्नि से साठ हजार सगर पुत्र भस्म हो गए। इनमें हर्ष, केतु, सुकेतु, धर्मरथ और शूरवीर पंचजन ही उस क्रोधाग्नि से बच पाए। इन्हीं के द्वारा सगर वंश आगे बढ़ा।

उन्तालीसवां अध्याय

वैवस्वत वंशीय राजाओं का वर्णन

शौनक जी पूछने लगे, हे सूत जी! आपने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों के बारे में बताया। अब कृपा करके यह बताइए कि उनके साठ हजार पुत्र किस प्रकार हुए। शौनक जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले, 'हे मुनिवर! सगर की दो पत्नियां थीं। उनकी पहली पत्नी ने ऋषि और्व से साठ हजार पुत्रों का वरदान मांगा था। वरदान को सिद्ध करते हुए उनके साठ हजार पुत्र हुए। रानी ने उन पुत्रों को मटकों में रख दिया। कुछ समय के पश्चात वे बलवान होकर बाहर निकल आए। ये साठ हजार पुत्र ही कपिल मुनि की क्रोधाग्नि से भस्म हो गए थे। दूसरी रानी ने वरदान में एक वंश वृद्धि करने वाला सुंदर पराक्रमी पुत्र ही मांगा था।

इन साठ हजार भस्म हुए राजपुत्रों का उद्धार करना अति आवश्यक था। इसी सगर वंश में राजा दिलीप भी हुए। उन्हीं के पुत्र भगीरथ ने अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए श्री गंगाजी को स्वर्ग से धरती पर बुलाया था। अपने पूर्वजों का उद्धार करके श्री गंगाजी को उन्होंने अपनी पुत्री बनाया। इसलिए वे भागीरथी नाम से जगप्रसिद्ध हुईं।

भागीरथी का पुत्र श्रुतिसेन, उनका पुत्र नाभाग, नाभाग का अंबरीष, उनका सिंधुदीप, उसका आयुताजि, आयुताजि का ऋतुपर्ण, उसका अण्पर्ण, उसका मित्रसह, उसका सर्वकर्मा, सर्वकर्मा का अनरण्य, अनरण्य का मुडिद्रुह, उसका निषध और निषध का खट्वांग, खट्वांग का दीर्घबाहु, दीर्घबाहु का दिलीप, दिलीप का रघु, रघु का अज, उसका दशरथ एवं दशरथ के पुत्र के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म हुआ। श्रीराम के पुत्रों के रूप में लव-कुश का जन्म हुआ। इस प्रकार वैवस्वत वंश आगे बढ़ता रहा। इक्ष्वाकु जो कि धर्मात्मा और पुण्यात्मा माने जाते थे, उनका वंश सुमित्र राजा तक चला।

चालीसवां अध्याय

श्राद्ध कल्प व पितरों का प्रभाव

शौनक जी बोले—हे सूत जी! सूर्य देवता को श्राद्ध देवता की संज्ञा कब और क्यों दी गई? साथ ही यह बताइए कि श्राद्ध का क्या माहात्म्य है? एवं उसका क्या फल होता है? शौनक जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—हे मुनिवर! जो पुरुष पिता, पितामह और प्रपितामह का नित्य श्राद्ध करते हैं उन्हें धर्म एवं शुभ सम्मान की प्राप्ति होती है। एक बार युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा—पितामह! पितरों को श्राद्ध कैसे प्राप्त होते हैं? अपने कर्मों द्वारा कुछ लोग स्वर्ग जाते हैं तो कुछ नरक। मैंने यह भी सुना है कि देवता भी अपने पितरों का श्राद्ध करते हैं। क्या यह सच है? युधिष्ठिर के वचन सुनकर भीष्म पितामह बोले—पुत्र! एक दिन मैंने अपने पिताजी को पिण्डदान किया तो वे सामने प्रकट हो गए और कहने लगे कि पिंड को मेरे हाथ पर रख दो परंतु मैंने उसे कुश पर रख दिया। यह देखकर वे बोले—पुत्र! तुम बहुत धर्मज्ञ हो। तुम पर प्रसन्न होकर मैं तुम्हें इच्छा मृत्यु का वरदान देता हूं। तुम्हें तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई मार नहीं सकेगा।

अपने पिता से वरदान पाकर मैं प्रसन्न हुआ और मैंने उनसे एक प्रश्न किया कि मुझे पितृ कल्प के विषय में बताइए। यह सुनकर वे बोले, पुत्र यही प्रश्न मैंने भी ऋषि मार्कण्डेय से पूछा था। तब उन्होंने कहा, एक दिन मैंने एक विमान में एक बालक को सोते हुए देखकर उससे पूछा कि आप कौन हैं? तब वह बालक बताने लगा कि मैं ब्रह्माजी का पुत्र सनत्कुमार हूं। सातों ऋषि मेरे भाई हैं। तुमने मेरे दर्शनों के लिए ही तपस्या की थी। इसलिए मैं यहां प्रकट हुआ हूं। कहो क्या चाहते हो? मार्कण्डेय जी बोले, स्वामी! पितरों का स्वर्ग क्या है? कृपा कर उसका वर्णन कीजिए।

सनत्कुमार जी बोले, मुनिवर! ब्रह्माजी ने देवताओं की रचना करके उन्हें भजन और तपस्या करने का आदेश दिया। देवता ब्रह्माजी को भूलकर आत्म-मंथन करने लगे। इस कारण रुष्ट होकर ब्रह्माजी ने उन्हें संज्ञाहीन और मूढ़ होने का शाप दे दिया। शाप सुनकर वे बहुत दुखी हुए और हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से क्षमा याचना करने लगे। ब्रह्माजी ने उन्हें उनके बड़ों से प्रार्थना करने के लिए कहा। वे उनके पास जाकर ज्ञान के बारे में पूछने लगे। वे बोले, हे पुत्रकगण! तुम चेतना पाकर अपनी भूल का प्रायश्चित करो।

उनकी बात सुनकर देवता पुनः ब्रह्माजी की शरण में गए और पूछने लगे कि आप हमें बताइए कि उन्होंने हमें पुत्रक क्यों कहा? तब ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! तुम्हें पुत्रक कहने वाले देव तुम्हारे पितर होंगे। तभी से वे देव पुत्र पितरों के नाम से जगप्रसिद्ध हुए।

इकतालीसवां अध्याय

सात व्याध पुत्र

सनत्कुमार जी बोले—हे मार्कण्डेय जी! स्वर्ग में पितरों के सात गण हैं जिनमें चार मूर्त और तीन अमूर्त हैं। आद्य देवता एवं ब्राह्मण उनका भजन करते हैं। वे अपने योग से सोम को तृप्त कराते हैं। इसलिए श्राद्धों में ब्राह्मणों को भोजन करा कर उन्हें दान-दक्षिणा दी जाती है। श्राद्धों में अग्नि, यम व सोम का आह्वान करें। जो मनुष्य श्राद्धों में पितृ तृप्ति करते हैं, उन्हें प्रसन्न होकर पितर पुष्टि, आरोग्य एवं वृद्धि प्रदान करते हैं।

एक बार की बात है भारद्वाज ऋषि के ब्राह्मण पुत्र वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, काव, स्वसृष, पितृवर्ती आदि दुराचारी हो गए। उनके पिता की मृत्यु हो गई। वे विश्वामित्र के पुत्र मुनि गर्ग के शिष्य बनकर उनके आश्रम में रहने लगे। एक दिन रास्ते में उन कुबुद्धि बालकों ने गाय को मार दिया और आश्रम आकर गुरु जी से झूठ बोल दिया कि गाय को शेर उठाकर ले गया है। इस कारण उन्हें गौ-हत्या का पाप लगा और उनका जन्म एक लुब्धक के घर में हुआ। वे वन-वन फिरते रहे। ज्ञान प्राप्त होने पर उन्होंने तपस्वियों के यहां भोजन करके प्राणों को त्याग दिया।

तत्पश्चात उन्होंने चक्रवाक्योनि में जन्म पाया। पक्षी योनि में नीपदेश के राजा और रानी के सुखी जीवन को देखकर उन्होंने विचार किया कि जरूर पुण्य कर्म किए होंगे जिसके कारण उन्हें सुख और सौभाग्य की प्राप्ति हुई। तभी वहां पर सुमना पक्षी आया और प्रसन्न होकर बोला—हे पक्षियो! अगली योनि में तुम कांपिल्य नगरी के राजा बनोगे। तब तुम्हारा शाप निवृत्त हो जाएगा। तुम्हें ये सब पितरों की कृपा से प्राप्त होगा क्योंकि तुमने गौ-प्रौक्षण करके उसे पितरों को भी अर्पित किया था।

बयालीसवां अध्याय

पितरों का प्रभाव

भीष्म पितामह बोले, हे मार्कण्डेय जी! आगे की कथा भी मुझ पर कृपा करके मुझे सुनाइए। तब उनकी जिज्ञासा शांत करने के लिए मार्कण्डेय जी बोले—तब उन सातों पक्षियों ने खाना-पीना सब छोड़ दिया। वे सिर्फ जल और वायु ही ग्रहण करते थे। उधर, राजा-रानी भी अपने राज्य में चले गए। वहां जाकर राजा ने अपना राज्य अपने पुत्र अनूप को सौंप दिया। स्वयं राजा रानी को साथ लेकर पुनः उसी वन में आकर साधारण मुनियों वाला जीवन जीने लगा।

धीरे-धीरे उन सात पक्षियों का शरीर क्षीण होने लगा। कुछ समय बाद वे मृत्यु को प्राप्त हुए। दूसरा जन्म उन्हें कांपिल्य नगरी में प्राप्त हुआ। उनमें से एक का नाम ब्रह्मदत्त हुआ। वह पाप रहित हो गया और उसे राजा ने अपना सारा राजपाट सौंप दिया एवं स्वयं परम गति प्राप्त की। दो अन्य पंचाल एवं पुण्डरीक मंदिर के पुजारी बने। बचे हुए चार पक्षियों का जन्म एक दरिद्र ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे चारों वेदों और शास्त्रों के ज्ञाता थे। भगवान शिव में उनकी असीम श्रद्धा-भक्ति थी। उनके चरणों की भक्ति में उन्होंने मुक्ति एवं ज्ञान प्राप्त कर शिवलोक प्राप्त किया।

तैंतालीसवा अध्याय

आचार्य पूजन का नियम

शौनक जी बोले—हे सूत जी! अब आप मुझ पर कृपा करके मुझे आचार्य के पूजन की उत्तम विधि बताइए। साथ ही ग्रंथ सुनने के बाद मनुष्यगण के कर्तव्य के बारे में भी विस्तार से बताइए। शौनक जी की प्रार्थना सुनकर सूत जी ने बताना प्रारंभ किया। सूत जी बोले—हे मुनिवर! किसी को भी शिव पुराण एवं महाग्रंथ सुनने के पश्चात आचार्य का पूजन करना अति आवश्यक माना गया है। आचार्य का श्रद्धाभाव से पूजन करने के पश्चात उसे सामर्थ्य के अनुसार दान अवश्य ही देना चाहिए।

शिव पुराण का श्रवण करने के पश्चात, त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का पूजन करके ब्राह्मण आचार्य को बछड़े वाली गाय का दान करें। जिस स्वर्ण के आसन पर पुराण को स्थापित करें उसे भी विनम्रतापूर्वक आचार्य को समर्पित करें। इस प्रकार वह बंधन मुक्त हो जाता है। पुराण वक्ता को महात्मा माना जाता है। उन्हें राज्य, घोड़ा, हाथी, गांव आदि उत्तम एवं उपयुक्त वस्तुएं तथा शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार दान देने से कल्याण होता है। इस पवित्र शिव पुराण नामक ग्रंथ को सुनने से समस्त अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है।

चवालीसवां अध्याय

व्यास जी का जन्म

शौनक जी बोले—हे सूत जी! आप मुझे मुनि वेद व्यास के जन्म की कथा सुनाइए। तब शौनक जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—हे शौनक जी! एक दिन की बात है, पराशर जी तीर्थ यात्रा करते हुए यमुना तट पर आए। उस समय मल्लाह भोजन कर रहा था। इसलिए उसने अपनी पुत्री मत्स्यगंधा को उन्हें नाव द्वारा यमुना पार कराने का आदेश दिया। मत्स्यगंधा पराशर जी को नाव से यमुना पार ले जा रही थी। उसकी सुंदरता देखकर पराशर जी उस पर मोहित हो गए। जैसे ही उन्होंने यमुना पार की पराशर मुनि ने उसका हाथ पकड़ लिया। तब मत्स्यगंधा ने मुनिवर से कहा कि आप रात का इंतजार करें। पराशर जी ने अपने योग से दिन को रात कर दिया। दोनों का मिलन हुआ परंतु मत्स्यगंधा चिंतित थी। तब पराशर जी ने उससे वर मांगने को कहा।

मत्स्यगंधा बोली—मुनिवर! मेरे इस कर्म को मेरे माता-पिता कोई भी न जान सकें। मेरा कन्या धर्म भी न जाए और मुझे आपके समान तपस्वी और शक्तिमान पुत्र की प्राप्ति भी हो। तब उसके वचन सुनकर पराशर मुनि बोले—देवी! जैसा आप चाहती हैं वैसा ही होगा और आज से आप 'सत्यवती' नाम से प्रसिद्ध होंगी। आपके गर्भ से भगवान श्रीहरि विष्णु का अंश उत्पन्न होगा। यह कहकर मुनिवर चले गए। नियत समय पर सत्यवती ने सूर्य के समान महातेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। पुत्र माता की आज्ञा लेकर तपस्या करने चला गया और जाते समय उसने माता से कहा कि कोई भी कष्ट पड़ने पर मुझे अवश्य याद करना।

सत्यवती अपने घर लौट आई। व्यास जी तपस्या में लीन हो गए। वेदों की शाखाओं का अध्ययन करने से वे वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए। फिर वे तीर्थ स्थानों के भ्रमण के लिए निकल पड़े। एक बार शिवलिंग का दर्शन करने के पश्चात उनके मन में विचार आया कि कोई ऐसा सिद्धिदायक लिंग हो जिसकी आराधना और भक्ति करने से सब विद्याएं प्राप्त हो जाएं और अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो। यही सोचकर वे ध्यानमग्न हो गए। तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाले अतिमुक्त महाक्षेत्र में मध्येश्वर लिंग स्थित है।

वेदव्यास जी ने गंगा में स्नान करके व्रत आरंभ कर दिया। उन्होंने भोजन त्याग दिया। वे पहले फलाहारी रहकर पूजन करने लगे। फिर उन्होंने सिर्फ जल ही ग्रहण किया। फिर उन्होंने सिर्फ हवा को ग्रहण करते हुए अपना पूजन आरंभ किया। तत्पश्चात उन्होंने निराहारी रहकर भगवान शिव की उत्तम तपस्या की। उनकी इस दुस्सह साधना से शिवजी प्रसन्न हुए और वेदव्यास जी को दर्शन दिया। देवाधिदेव महादेवजी को साक्षात अपने सामने पाकर वेदव्यास जी उनकी स्तुति करने लगे। वे बोले—हे देवाधिदेव! कल्याणकारी शिव! आप मन और वाणी से अगोचर हैं। वेद भी आपकी महिमा को पूर्ण रूप से नहीं जानते। आप ही सृष्टि के रचनाकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं। हे सर्वशक्तिमान ईश्वर! आप ही जन्म-मरण, देश,

कुल आदि से रहित हैं। आप ही त्रिलोक के स्वामी हैं। इस प्रकार व्यास जी ने शिवजी की स्तुति की। प्रसन्न होकर शिवजी बोले—हे व्यास जी! तुम मनचाहा वर मांगो।

तब व्यास जी बोले—स्वामी! आप तो सर्वज्ञ सर्वेश्वर हैं। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। तब त्रिलोकीनाथ भगवान शिव बोले—मुनिवर! मैं तुम्हारे कंठ में स्थित होकर तुम्हारी इच्छा के अनुसार इतिहास एवं महापुराणों की रचना करूंगा। तुम्हारे द्वारा प्रयोग में लाए गए स्तुति अष्टक का जो भी शिवलिंग के सामने बैठकर एक वर्ष तक तीनों काल में मेरी स्तुति करेगा उसकी सभी मनोकामनाएं अवश्य पूर्ण होंगी। यह कहकर महादेवजी अंतर्धान हो गए।

भगवान शिव की कृपा से वेदव्यास जी ने ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंगवाराह, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, बामन, ब्रह्माण्ड आदि अठारह महापुराणों की रचना की। ये सभी पुराण पुण्य और यश देने वाले हैं। इनको श्रद्धापूर्वक भक्तिभावना से पढ़ने अथवा सुनने से मुक्ति प्राप्त होती है तथा समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

पैंतालीसवां अध्याय

मधुकैटभ-वध एवं महाकाली वर्णन

सूत जी बोले—हे मुनिवर! अब मैं आपको जगत जननी माता उमा के विषय में बताता हूं। स्वारोचिष नामक मन्वंतर में विरथ नाम के एक राजा हुए हैं। उनका सुरथ नामक पुत्र बहुत वीर और पराक्रमी था। वह महादानी भी था। वह देवराज इंद्र के समान पराक्रमी था। उसके राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। एक बार उस पर नौ राजाओं ने एक साथ आक्रमण कर दिया। युद्ध में उसे हराकर उसके राज्य पर अपना कब्जा कर लिया। सुरथ घोड़े पर सवार होकर वन को चला गया।

वन में राजा सुरथ ने एक सुंदर आश्रम देखा, वहां पर सभी जीव-जंतु शांत वातावरण में विचरण कर रहे थे। आश्रम में स्वागत पाकर राजा वहीं रहने लगा। एक दिन की बात है, राजा सुरथ मन ही मन यह विचार करने लगा कि मैं अपने दुर्भाग्य के कारण अपना राज्य खो बैठा हूं। सुरथ यह सोच ही रहा था, तभी आश्रम में एक वैश्य आया। वह आकर राजा के पास ही बैठ गया। उसे दुखी देखकर राजा ने उससे उसके दुख का कारण जानना चाहा। तब वह वैश्य आंखों में आंसू लिए बोला—'राजन! मैं समाधि नामक वैश्य हूं। मैं एक अत्यंत धनाढ्य कुल में उत्पन्न हुआ हूं परंतु मेरे पुत्र-पौत्रादि ने धन के लालच में ही मुझे घर से बाहर निकाल दिया है।

राजा सुरथ और वैश्य समाधि आपस में बात कर ही रहे थे कि वहां ऋषि मेधा आ गए और बोले—राजन! इस संसार में सबको आकर्षित और मोहित करने वाली सनातनी माया देवी सत्य रूपा ही हैं। वे ही इस जगत की रचना, पालन और संहार करती हैं। प्रलय के समय भगवान श्रीहरि विष्णु शेषशय्या पर योगनिद्रा में सोए हुए थे। उसी समय उनके कान के मैल से दो राक्षस प्रकट हो गए। उनके नाम मधु और कैटभ थे। वे दोनों राक्षस विष्णुजी के नाभि कमल में स्थित ब्रह्माजी को मारने के लिए दौड़े।

उन महादैत्यों को इस प्रकार अपनी ओर आता देखकर ब्रह्माजी महामाया देवी परमेश्वरी का ध्यान करके उनकी स्तुति करने लगे। वे बोले—हे महामाया! हे शरणागतों की रक्षा करने वाली देवी। इन महादैत्यों से मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूं। आप मधु-कैटभ दोनों दैत्यों को मोहित करें और नारायण श्रीहरि विष्णु को जगाकर मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार ब्रह्माजी की स्तुति एवं प्रार्थना सुनकर महामाया देवी फाल्गुन माह की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को प्रकट होकर संसार में महाकाली नाम से जगप्रसिद्ध हुईं। तभी देवी ने ब्रह्माजी को प्राण रक्षा का आश्वासन दिया। योगमाया के रूप में वे विष्णुजी के नेत्रों से बाहर आईं तो विष्णुजी जाग गए। उन दैत्यों को देखकर क्रोधित श्रीहरि उन्हें मारने दौड़े, तब वे बोले—हमारा वध आप वहीं पर कर पाएंगे जहां पृथ्वी पर जल नहीं हो। तब भगवान विष्णु ने मधु और कैटभ नामक दोनों महादैत्यों को अपनी जंघाओं पर लिटाकर अपने सुदर्शन-चक्र

से उनका सिर काटकर ब्रह्माजी की रक्षा की।

छियालीसवां अध्याय

महालक्ष्मी अवतार

ऋषि बोले—दैत्यों के कुल में जन्मे महादैत्य रंभासुर का महिषासुर नामक पुत्र महावीर और पराक्रमी था। उसने समस्त देवताओं को युद्ध में परास्त करके स्वर्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। तब सभी देवता दुखी होकर ब्रह्माजी और विष्णुजी को अपने साथ लेकर भगवान शिव के पास पहुंचे। उन्होंने भगवान शिव को सारी बातें विस्तारपूर्वक सुनाईं।

सारी कथा सुनने के उपरांत क्रोधित भगवान शिव की आंखों और मुख से एक दिव्य तेज उत्पन्न हुआ। उस तेज में सब देवताओं ने अपना-अपना तेज मिलाया जिससे देवी महामाया जगदंबा का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हें देखकर देवताओं की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। सबने देवी को अनेक आयुध एवं आभूषण भेंट किए। ब्रह्माजी, विष्णु और शिवजी सहित समस्त देवताओं की अनेकों शक्तियां ग्रहण करने के पश्चात देवी ने जोर का अट्टहास और गर्जना की।

देवी की गर्जना से धरती, आकाश और पाताल गूंज गए। उस गर्जना को सुनकर देव शत्रु दैत्यों ने अपने-अपने हथियार उठा लिए। देखते ही देखते देवी जगदंबा दैत्यों से युद्ध करने पहुंच गईं। दैत्यों और देवी के बीच घोर संग्राम होने लगा। देवी जगदंबा ने शूल, शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों से लाखों दैत्यों का विनाश कर दिया। पराक्रमी देवी को देखकर दैत्य सेना भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी। तब महिषासुर ने आकर देवी जगदंबा को ललकारा। उसने तलवार लेकर देवी के वाहन सिंह पर आक्रमण कर दिया। अपने सिंह पर आई इस विपत्ति को देखकर देवी ने अपना पाश महिषासुर पर फेंका।

अपनी ओर आते पाश को देखकर महिषासुर ने महिष का रूप त्यागकर सिंह का रूप धारण कर लिया। देवी जगदंबा ने यह देखकर झपट कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया परंतु महिषासुर फिर भी न मरा और रूप बदल-बदलकर देवी से युद्ध करने लगा और उनके सिंह को परेशान करने लगा। इस प्रकार देवी और महिषासुर का युद्ध बहुत लंबे समय तक चलता रहा। उनके इस भयानक युद्ध से पूरा त्रिलोक कांप उठा। सारे जीव-जंतु दुखी हो गए। तब देवी उछलकर महिषासुर पर चढ़ गईं। उन्होंने अपने पैरों से महिषासुर को कुचल दिया और अपने त्रिशूल से उसकी जिह्वा काट दी।

इस प्रकार देवी जगदंबा ने महिषासुर का वध कर त्रिलोक को उसके आतंक से मुक्ति दिलाई। सभी देवता हर्षित होकर देवी की स्तुति करने लगे। सारी दिशाओं से पुष्प वर्षा होने लगी।

सैंतालीसवां अध्याय

धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज का वध

ऋषि बोले—शुंभ और निशुंभ नामक दोनों पराक्रमी दैत्यों ने अपने अत्याचारों से पूरे चराचर जगत को दुखी कर दिया। सभी जीव-जंतु, मनुष्यगण एवं देवता उसके अत्याचारों से परेशान हो चुके थे। तब देवता अत्यंत परेशान होकर हिमालय पर श्री पार्वतीजी की शरण में गए और देवी की स्तुति करने लगे। वे बोले—हे कल्याणकारी देवी! भवानी! हम सब आपकी शरण में आए हैं। मातेश्वरी! हमारी रक्षा कीजिए। शुंभ-निशुंभ के आतंक एवं अत्याचारों से त्रिलोक को मुक्त कराइए।

देवताओं की स्तुति सुनकर देवी ने अपने शरीर से एक तेज उत्पन्न किया और एक कुमारिका प्रकट हुई। सब देवताओं ने हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर देवी की स्तुति की। तब पार्वती जी बोलीं—देवगण! मेरे कोश से निकलने के कारण ये कौशिकी नाम से प्रसिद्ध होंगी और मातंगी नाम से जगप्रसिद्ध होंगी। यह कहकर देवी अंतर्धान हो गईं और देवता अपने स्थान को लौट गए।

देवी कौशिकी वहीं हिमालय की गुफा में रहने लगीं। एक दिन शुंभ-निशुंभ के सेवकों ने उन्हें देख लिया। तब उन्होंने जाकर शुंभ-निशुंभ से उनके रूप सौंदर्य की प्रशंसा की और कहा कि वह तो नारियों में रत्न हैं, उसे आपके महल की शोभा बढ़ानी चाहिए। तब देवी की प्रशंसा सुनकर शुंभ-निशुंभ ने अपना दूत वहां भेजा। तब दूत ने जाकर देवी से कहा—मेरे स्वामी शुंभ-निशुंभ आपके रूप की प्रशंसा सुनकर आपसे विवाह करना चाहते हैं। उन्होंने विवाह का प्रस्ताव लेकर ही मुझे यहां पर भेजा है।

दूत की बात सुनकर देवी बोलीं—दूत! जाकर तुम अपने स्वामियों से कहो कि मैंने यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि जो भी मुझे युद्ध में परास्त कर देगा मैं उसी से विवाह करूंगी। अपने स्वामियों से कहो आकर मुझसे युद्ध करें और मुझे हराकर मुझे अपने साथ ले जाएं।

दूत ने शुंभ-निशुंभ को सारी बातों से अवगत कराया। सारी बातें सुनकर शुंभ और निशुंभ क्रोधित हो गए। उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचन को आदेश दिया कि तुम उस नारी को यहां लेकर आओ। यदि वह प्यार से न आए तो जबरदस्ती उसे उठा लाना। अपने स्वामी की आज्ञा पाकर धूम्रलोचन हिमालय पर्वत पर देवी को लेने पहुंचा। जब देवी कौशिकी ने चलने से मना किया तो वह देवी पर शस्त्र लेकर झपटा। देवी ने उसे भस्म कर दिया और सिंह ने दैत्य सेना को तितर-बितर कर दिया।

जब शुंभ-निशुंभ को धूम्रलोचन के मारे जाने का समाचार मिला तो वे गुस्से से भर गए। उन्होंने चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज को देवी को लाने वहां भेजा और आदेश दिया कि यदि वह न आए तो उसका वध कर देना। वे दैत्य देवी के पास गए और बोले—सुंदरी! तुम प्रेमपूर्वक शुंभ-निशुंभ में से किसी को भी अपना पति बना लो और खुशी से राज्य करो। यह सुनकर

देवी बोली—हे दैत्यो! मैं तो सूक्ष्म प्रकृति हूं। ब्रह्मा, विष्णु सहित सभी देवता मेरी आराधना और स्तुति करते हैं। यदि तुममें शक्ति है तो मुझे युद्ध में हराकर जहां चाहो ले जा सकते हो।

देवी! यदि आप ऐसा ही चाहती हैं तो ठीक है। यह कहकर दैत्यों ने देवी पर बाणों की वर्षा करनी शुरू कर दी। तब क्रोधित देवी ने अपने खड्ग से चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज का वध कर दिया।

अड़तालीसवां अध्याय

सरस्वती का प्राकट्य

राजा ने कहा—चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज के मर जाने पर शुंभ-निशुंभ ने क्या किया? ऋषि बोले—जब शुंभ-निशुंभ को पता चला कि चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज को देवी ने मार दिया है तब वे स्वयं अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध भूमि की ओर चल दिए। जब देवी कौशिकी ने देखा कि शुंभ और निशुंभ अपनी सेना के साथ युद्ध करने आ रहे हैं तो उन्होंने घण्टा बजा दिया। इस ध्वनि को सुनकर देवी का सिंह गर्जना करने लगा। देवी ने भी धनुष हाथों में लेकर बाणों की वर्षा आरंभ कर दी। जब शुंभ और निशुंभ ने देवी कौशिकी के अदभुत रूप-सौंदर्य को देखा तब देवी को देखकर वे बोले—हे सुंदरी! आप इस कोमल शरीर के साथ युद्ध करेंगी? उनकी बात सुनकर देवी ने अत्यंत क्रोधित होकर बाण, त्रिशूल एवं परशु से एक साथ उन पर आक्रमण आरंभ कर दिया। देखते ही देखते युद्ध क्षेत्र में रक्त की नदियां बह निकलीं। दैत्य सेना देवी के प्रहारों के सम्मुख फीकी पड़ने लगी। दैत्य इधर-उधर भागने लगे।

अपनी विशाल सेना को इस प्रकार भयभीत होकर इधर-उधर भागते हुए देखकर निशुंभ देवी के सम्मुख जाकर बोला—देवी! यदि युद्ध करना ही है तो मुझसे करो। बेचारे सिपाहियों को क्यों मार रही हो? यह कहकर निशुंभ ने देवी पर बाण वर्षा शुरू कर दी। देवी ने भी उत्तर में बाण वर्षा आरंभ कर दी। उन्होंने अपने बाणों से निशुंभ के सभी अस्त-शस्त्र काट दिए। तब उन्होंने विष बुझे बाणों से निशुंभ को मार गिराया।

अपने भाई निशुंभ को इस प्रकार देवी के हाथों मरते देखकर शुंभ स्वयं देवी से युद्ध करने आगे आया। उसे सामने देखकर चण्डिका देवी ने भयानक अट्टहास किया जिसे सुनकर दैत्य सेना भयभीत हो गई। तब शुंभ ने प्रज्वलित शक्ति से देवी पर आक्रमण किया। देवी ने अपने बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और हाथ में त्रिशूल लेकर उसे शुंभ की छाती में घोंप दिया। तत्पश्चात घायल शुंभ देवी को मारने के लिए दौड़ा परंतु देवी ने चक्र से उसका सिर काट दिया। यह देखकर अन्य दैत्य पाताल लोक को चले गए।

उनचासवां अध्याय

उमा की उत्पत्ति

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! अब आप हमसे देवी उमा के अवतार एवं प्रादुर्भाव की कथा का वर्णन कीजिए। तब ऋषियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए सूत जी बोले—एक बार की बात है, देवताओं की युद्ध में विजय हुई। विजयी होकर देवताओं को बहुत घमंड हो गया और वे अपनी बहादुरी की बहुत प्रशंसा करने लगे। तभी एक कूप के रूप में तेज प्रकट हो गया। उस तेज को एकाएक देखकर देवता घबरा गए। देवराज इंद्र ने उस तेज की परीक्षा लेने के लिए सर्वप्रथम वायुदेव को वहां भेजा।

वायुदेव उस तेज की परीक्षा लेने के लिए वहां पहुंचे। उन्होंने तेज के पास जाकर पूछा—तू कौन है? तब तेज ने भी यही प्रश्न वायु से किया। वायुदेव ने अहंकार से कहा—मैं इस जगत का प्राण हूं। मेरे द्वारा ही यह जगत चल रहा है। यह सुनकर तेज ने कहा कि इस तिनके को जलाकर दिखाओ तो मैं तुम्हें शक्तिशाली समझ सकता हूं परंतु वायुदेव अपनी सारी ताकत लगाकर भी उस तिनके को हिला भी नहीं सके। तब लज्जित और हारे हुए वे देवराज इंद्र के पास पहुंचे।

देवराज इंद्र को जब यह सब बातें ज्ञात हुईं तो उन्होंने एक-एक करके सब देवताओं को उस तेज की परीक्षा लेने के लिए भेजा, लेकिन सभी देवता परास्त होकर वापस आ गए। तब स्वयं इंद्र उस दिव्य तेज की परीक्षा लेने के लिए गए। जैसे ही इंद्र उस स्थान पर पहुंचे वह तेज अंतर्धान हो गया। यह देखकर देवेंद्र आश्चर्यचकित रह गए। तब उस तेज को दिव्य और शक्तिशाली जानकर मन ही मन इंद्र उनकी स्तुति करने लगे। वे बोले—मैं आपकी शरण में आया हूं। कृपा कर मुझे दर्शन दो।

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी के मध्यान्ह का समय। देवी उमा ने प्रकट होकर देवराज इंद्र को दर्शन दिए। वे बोलीं—हे देवराज इंद्र! ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी मेरी स्तुति करते हैं। अन्य देवता भी मुझे पूजते हैं। मैं परमब्रह्म प्रणव स्वरूप देवी हूं। मेरी ही कृपा से तुम्हें विजयश्री प्राप्त हुई है। इसलिए अपने अभिमान और घमंड को त्यागकर मेरा स्मरण करो। यह कहकर देवी शांत हो गईं।

यह सुनकर देवताओं ने देवी उमा की स्तुति करनी आरंभ कर दी। देवता बोले—हे महामाया! हे जगदंबा! आप हमें क्षमा करें। हम दोनों हाथ जोड़कर आपकी शरण में आए हैं। हमसे जो गलती हो गई है उसे भूलकर हम पर अपनी कृपादृष्टि रखें। यह कहकर देवता देवी मां की स्तुति करने लगे।

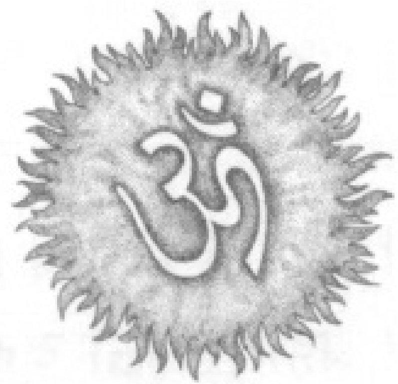

पचासवां अध्याय

शताक्षी अवतार वर्णन

सूत जी बोले—ऋषिगण! एक बार की बात है, एक महा पराक्रमी रुद्र के पुत्र दुर्गम ने ब्रह्माजी की कठोर तपस्या की। उसने ब्रह्माजी से वरदान में वेद प्राप्त कर लिए। वह अपने को महाशक्तिशाली समझने लगा और वह देवताओं को कष्ट देने लगा। उसने पृथ्वी पर उपद्रव करने प्रारंभ कर दिए। वेदों के न रहने पर सारी क्रियाएं चली गईं। ब्राह्मणों ने धर्म का त्याग कर दिया। प्रजा पर यह संकट आया हुआ देखकर सभी देवता देवी उमा की शरण में गए।

देवता स्तुति करते हुए बोले—हे महादुर्गे! हे जगदंबिके! जिस प्रकार आपने शुंभ-निशुंभ का वध करके हमारी रक्षा की, उसी प्रकार इस दुष्ट का भी वध करके अपने शरणागतों की रक्षा करो। इस प्रकार देवताओं की स्तुति सुनकर देवी की आंखों से आंसू बहे, तब उस जल की धाराओं से धरती पुनः हरी-भरी हो गई। वृक्ष और औषधियां फलने-फूलने लगीं। नदियां, तालाब और समुद्र जल से सराबोर हो गए।

यह देखकर देवता देवी उमा से बोले—हे मातेश्वरी! कृपा कर वेदों को भी वापस दिला दीजिए। तब देवी ने वेद लौटाने का आश्वासन देकर उन्हें विदा किया। देवता अपने-अपने धाम को चले गए। तभी देवी को देवताओं का हित करने वाली जानकर दुर्गम ने उन पर आक्रमण कर दिया। देवी ने भी पलटकर वार करना आरंभ कर दिया। देखते ही देखते देवी उमा और दुर्गम के बीच भयानक युद्ध होने लगा। चारों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। उस समय देवी उमा बहुत क्रोधित हुईं। तब उनके शरीर से काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, रौरवी, बगुला, थम्रा, त्रिपुरा, मातंगी नामक दस देवियां प्रकट हुईं। देखते ही देखते देवियों ने दैत्यों की सौ अक्षौहिणी सेना का नाश कर उसे तितर-बितर कर दिया। तत्पश्चात देवी ने अपने त्रिशूल से दैत्येंद्र दुर्गम का वध कर दिया। देवी ने उससे वेद छीनकर देवताओं को सौंप दिए।

प्रसन्न देवता महामाया देवी उमा की स्तुति करने लगे। देवता बोले—हे मातेश्वरी! आपने हमारी रक्षा के लिए अनंताक्षिभय रूप रखा, इसलिए आप शताक्षी नाम से जगप्रसिद्ध होंगी। शोक द्वारा लोकहित करने के कारण शाकुंभरी और दुर्गम नामक दैत्य का वध करने के कारण दुर्गा कहलाएंगी। हे महाबले! हे ज्ञानदायिनी! हे योगनिद्रे! हे विश्वजननी! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप सदा हमारा कल्याण करें और सबकी रक्षा करें। तब देवताओं को उनकी रक्षा का आश्वासन देकर देवी अंतर्धान हो गईं।

इक्यानवां अध्याय

क्रिया योग वर्णन

एक बार महामुनि व्यास के पूछने पर सनत्कुमार जी ने उन्हें महा दिव्य क्रिया योग और उसके फल के विषय में बताया। सनत्कुमार जी बोले—हे महामुनि! ज्ञानयोग, क्रियायोग और भक्तियोग भक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। ज्ञान, आत्मा और हृदय का मिलन ही क्रियायोग कहलाता है। इसी योग के साथ वाह्य अर्थ का संयोग क्रिया योग कहलाता है। कर्म से भक्ति, भक्ति से ज्ञान एवं ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। योग ही मुक्ति का एकमात्र मार्ग है।

पत्थर, लकड़ी एवं मृत्तिका से देवी का मंदिर बनवाने, प्रतिदिन यज्ञ करने से एक-सा पुण्य प्राप्त होता है। इस लोक में श्री पार्वती जी की मूर्ति का निर्माण कराने वाला निश्चय ही दुर्गालोक को जाता है। देवी का मंदिर बनवाने से पुण्य की प्राप्ति होती है। देवी की मूर्ति की स्थापना कर उसके चारों ओर पंचाहना देवी की स्थापना करने से असंख्य पुण्य की प्राप्ति होती है। सूर्य और चंद्र ग्रहण के समय विष्णु सहस्रनाम के पाठ से कई गुना अधिक फल देवाधिदेव शिवजी का नाम जपने से मिलता है। देवी का नाम जपने से उससे भी अधिक पुण्य मिलता है।

नित्यप्रति देवी उमा का नाम जपने से दुर्गा जी के गण पद की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य मां उमा का धूप, दीप, नैवेद्य से पूजन करते हैं, मंदिर को लीपते हैं या उसे साफ करते हैं, उन्हें उमालोक की प्राप्ति होती है। कृष्ण पक्ष की अष्टमी, नवमी तिथि को श्रीसूक्त, देवी सूक्त आदि का पाठ कर देवी पर पुष्प अर्पित किए जाते हैं। देवी को कमल का पुष्प या सोना, चांदी अर्पित करने से परम गति की प्राप्ति होती है।

चैत्र शक्ला-ततीया को मां उमा का व्रत करने से जीवन-मरण के चक्र के बंधनों से मुक्ति मिल जाती है। वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की तृतीय तिथि को अक्षय तृतीया नाम से जाना जाता है और इस दिन रथोत्सव मनाना चाहिए। देवी की मूर्ति स्थापित करके देवी का पूजन करने के पश्चात उनसे प्रार्थना करें—हे देवी! आप हमारा पालन करने वाली हैं। हम पर प्रसन्न हों और हमारे पूजन को स्वीकार करें। हमें इस लोक में सुख देकर अपना धाम प्रदान करें।

आश्विन माह के शुक्ल पक्ष में नवरात्र का व्रत किया जाता है। यह उत्तम व्रत सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा मनोरथ सिद्ध करने वाला है। इसी पुण्य कल्याणकारी व्रत को करने से विरथ के पुत्र सुरथ राजा बने, समाधि नामक वैश्य को मुक्ति प्राप्त हुई। इसी प्रकार विधि-विधान से नवरात्र व्रत को पूरा करने से सभी अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। इस व्रत को करने से देवी उमा स्त्रियों के सौभाग्य की रक्षा करती हैं तथा इस व्रत के प्रभाव से विद्या, धन, पुत्र आदि की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उमा संहिता का पवित्र भक्तिमय स्वरूप मैंने आपको सुनाया है। इसे पढ़ने एवं सुनने से कामनाएं पूरी होती हैं और सब सुख भोगकर मनुष्य परमधाम को प्राप्त करता है।

।। श्रीउमा संहिता संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीकैलाश संहिता प्रारंभ

जो प्रधान प्रकृति और पुरुष के सृष्टि, पालन और संहार के कारण हैं, उन पार्वती देवी एवं देवाधिदेव भगवान शिव को उनके गण एवं पुत्रों सहित बारंबार प्रणाम है।

प्रथम अध्याय

व्यासजी एवं शौनक जी की वार्ता

ऋषियों ने कहा—हे महामुने! आपने हम पर कृपा करके हमें 'उमा संहिता' सुनाई। अब आप हम पर कृपा कर हमें शिवतत्व को बढ़ाने वाली परम दिव्य एवं कल्याणकारी कैलाश संहिता सुनाइए। तब ऋषियों की प्रार्थना सुनकर व्यास जी बोले—ऋषिगण! एक बार हिमालय पर निवास करने वाले ऋषि-मुनियों ने काशीपुरी के दर्शन का विचार किया और विश्वेश्वर का दर्शन करने हेतु वहां पहुंच गए। उन्होंने काशी पहुंचकर मणिकर्णिका में, गंगाजी में स्नान किया। तत्पश्चात शतरुद्रिय मंत्र से भगवान शिव की स्तुति की।

उसी समय सूत जी भी पंचकोसी देखने की इच्छा से वहां पहुंचे। सूत जी को वहां देखकर ऋषि-मुनियों ने उन्हें प्रणाम किया और बोले—हे महाभाग सूत जी! आप परम शिवभक्त और ज्ञान के सागर हैं। आपके हृदय में पुराणों की कथा स्थित है। आप परम गुरु हैं। हम सब आपके मुख से निकली हुई अमृतमय कथा को सुनना चाहते हैं। हम पर कृपा करके हमें देवाधिदेव भगवान शिव का परम ज्ञान सुनाइए। ऋषियों की इस प्रकार की गई प्रार्थना को सुनकर सूत जी बोले—हे मुनिश्वरो! स्वारोचिष मनु ने नैमिषारण्य में तपस्वी ऋषियों के साथ सिद्धि प्रदान करने वाला यज्ञ किया। यह यज्ञ एक सहस्र वर्षों तक चलता रहा। तत्पश्चात उन्होंने भगवान शिव का स्मरण करके शिवभक्ति में भस्म और रुद्राक्ष धारण किया। तभी वहां मुनि वेदव्यास आ गए। मुनियों ने उन्हें आसन पर बैठाया। तब वे पूछने लगे कि बताइए इस यज्ञ को करने में आपका क्या प्रयोजन है?

व्यास जी का प्रश्न सुनकर नैमिषारण्य के तेजस्वी पराशर पुत्र बोले—हे कृपासागर! इस अद्भुत महायज्ञ का अनुष्ठान करने का कारण ओंकार के अर्थ को जानना है। हम परमब्रह्म परमेश्वर शिवजी के स्वरूप को जानना और समझना चाहते हैं। हम सब आपकी शरण में आए हैं। हम अल्प बुद्धियों के संदेह को दूर करें और हमें शिव ज्ञान प्रदान कर हमारी जीवन रूपी नाव को पार करा दें। हमारी एकमात्र इच्छा शिव-तत्व जानने की है।

मुनिगणों सहित पराशर पुत्र की इस प्रकार की गई प्रार्थना सुनकर महामुनि व्यास जी प्रसन्न होकर उन्हें ओंकार रूप भगवान शिव का पार्वती सहित मन में स्मरण करते हुए बोलने लगे।

दूसरा अध्याय

पार्वती जी का शिवजी से प्रणव प्रश्न करना

व्यास जी बोले—हे मुनिवर! भगवान शिव का वास्तविक ज्ञान ही प्रणव अर्थ को प्रकाशित करने वाला है। शिवजी का यह ज्ञान उसी को प्राप्त होता है जिस पर शिवजी की विशेष कृपा होती है। प्राचीन समय में दाक्षायणी सती ने अपने पति भगवान शिव की निंदा सुनकर अपना शरीर त्याग दिया था। उन्होंने हिमालय के घर जन्म लिया। देवर्षि नारद की प्रेरणा से शिवजी की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर पति रूप में प्राप्त किया।

एक दिन भगवान शिव देवी पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर बैठे हुए थे। देवी पार्वती ने शिवजी से कहा—हे देव! आप मुझे मंत्र दीक्षा देकर विशुद्ध तत्व प्रदान करें। श्री पार्वती जी के वचन सुनकर शिवजी बोले—देवी! मैं आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा। यह कहकर उन्होंने पार्वती जी को प्रणव मंत्र प्रदान किया परंतु देवी इससे संतुष्ट न हुईं और बोलीं—प्रभो! आपने मुझे ॐकार रहित उपदेश दिया है। मुझे प्रणव की प्राकट्य कथा भी बताइए। वेदों में इसे कैसे वर्णित किया गया है? इसकी व्यापकता एवं कला और पंचात्मकता के बारे में भी विस्तार से बताइए। इस प्रणव की उपासना कैसे और कहां की जाती है? इसके अनुष्ठान की विधि, स्थान और इससे मिलने वाले फल के बारे में भी मेरा ज्ञान बढ़ाने की कृपा करें। स्वामी! कृपा कर मुझे इस तत्व से अवगत कराकर मेरे श्रीज्ञान में अभिवृद्धि करें।

देवी पार्वती की इस विनयपूर्ण प्रार्थना को सुनकर शिवजी उन्हें प्रणव की पूर्ण कथा सुनाने के लिए तैयार हो गए।

तीसरा अध्याय

प्रणव पद्धति

भगवान शिव बोले—हे प्राणप्रिया! हे देवी! आपकी इच्छा पूरी करना मेरा धर्म है। आपकी प्रसन्नता के लिए मैं आपको प्रणव कथा सुनाता हूं। प्रणव को जानने वाला शिव तत्व का भी ज्ञाता हो जाता है। प्रणव मंत्र सब मंत्रों का बीज मंत्र है। यही प्रणव सर्वज्ञ और सबका कर्ता है। 'ॐ' नामक इस एक अक्षरीय मंत्र में शिव सदा ही विद्यमान रहते हैं। इस संसार की सभी वस्तुएं गुणमयी होते हुए भी स्थावर और जड़ात्मक दिखाई पड़ती हैं। यही प्रणव का अर्थ है। यह 'ॐ' मंत्र ही सब अर्थों का साधक है। इसी अकार प्रणव से शिव अर्थात मैं सर्वप्रथम इस जगत का निर्माणकर्ता हूं। वही शिव ही प्राणरूप और प्रणव शिवरूप है। मैं ही ब्रह्मऋषि ओर एकाक्षर रूप हूं। इस संसार में प्रणव ही सबका कर्ता है। मुमुक्षु ही इस निर्विकार परमेश्वर प्रणव को जान और समझ सकते हैं।

प्रणव मंत्र ही सभी मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ है और शिवमणि माना जाता है। यही ओंकार मैं काशी में प्राण त्याग देने वालों को प्रदान करता हूं। इसे जानने वाले को परम सिद्धि प्राप्त होती है। इस पवित्र प्रणव रूपी ओंकार मंत्र को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम कला का उद्धार करें। जो पहले अकार को प्राप्त कर चुके हों उन्हें निवृत्त कला की प्राप्ति का विधान करना चाहिए।

तत्पश्चात उकार में ईंधन, मकार में काल कला, नाद में दंड और बिंदु में ईश्वर कला का उद्धार करने का उपाय करें। ऐसे ही पंचवर्णीय प्रणव का उद्धार होता है। इन तीन मात्राओं और बिंदु नाद का जाप करने से प्राणियों को मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही मंत्र सबके हृदयों में प्राण बनकर जीवन प्रदान करता है। फिर यही 'ॐ' हो जाता है। इसी 'ॐ' का वर्णन वेदों में भी है और यही ओंकार मैं हूं। इसी के अकार के रजोगुण से ब्रह्मा, उकार से प्रकृति, सत्यगुण से जगत के पालनकर्ता श्रीहरि और मकार से पुरुष तथा तमोगुण से पापियों का संहार करने वाले शिव उत्पन्न होते हैं।

तत्पश्चात साक्षात महेश्वर, जो बिंदुरूप हैं और नाद रूप हैं, का प्राकट्य होता है। यही सब पर कृपा करने वाले हैं। इसलिए जब भी शांत चित्त से ध्यान लगाएं, उस समय नादरूपी शिव का ही स्मरण करें। वे ही साक्षात मंगल रूप हैं। यह शिव ही सर्वज्ञ, सत्य के कर्ता, सर्वेश, निर्मल, अविनाशी, अद्वैत और परमब्रह्म हैं। वही व्यापक हैं और हर जगह स्थित हैं। इसलिए हमेशा सद्य, वामदेव, घोर, पुरुष, एशान नामक ब्रह्मस्वरूप का ही स्मरण करें। यही मेरी मूर्ति है। यही प्रणव मंत्र की उत्पत्ति और पद्धति है।

चौथा अध्याय

संन्यास का आचार-व्यवहार

शिवजी बोले—हे देवी पार्वती! अब मैं तुम्हें संन्यास और आहणिक क्रम के विषय में बताता हूं। सर्वप्रथम सुबह ब्रह्म मुहूर्त में उठें और अपने आराध्य गुरु के चरणों का स्मरण कर उनके मनोहर रूप को नमस्कार करें। हाथ जोड़कर उनसे विनती करते हुए कहें कि भगवन्! सुबह से लेकर रात तक मैं जो कुछ भी कार्य करता हूं, उसमें आपकी ही प्रेरणा शामिल है। वही मुझे हर मुश्किल कार्य को करने की शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करने वाली है। किसी भी कार्य को करने का आप ही मुझे बल प्रदान करते हैं। हम आपकी पूजा करते हैं। कृपा कर हमारी पूजा स्वीकार करें।

यह कहकर गुरु से आज्ञा लेकर आसन पर बैठें। आसन पर बैठकर प्राणायाम करें। आसन में ध्यान लगाएं और छः चक्रों का स्मरण करते हुए उन चक्रों के बीच में मुझ सच्चिदानंद निर्गुण ब्रह्म और अनामय रुद्र शिव का चिंतन करें। तत्पश्चात ध्यान एवं पूजन से निवृत्त होने के बाद ही अपने अन्य कार्य करने आरंभ करें। सर्वप्रथम उठकर देवाधिदेव सर्वेश्वर का ध्यान करना भक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाला है। इसलिए ध्यान के बाद ही अन्य कार्य करने चाहिए। फिर अपने नित्य-प्रतिदिन के कार्यों को करें। स्नान करने के पश्चात पुनः गुरु द्वारा बताई विधि के अनुसार पंचाक्षरी मंत्र का जाप करें। ओंकार का मन में ध्यान करते हुए तीन बार अर्घ्य दें। तत्पश्चात 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का एक सौ आठ बार जाप करते हुए बारह बार तर्पण करें। फिर आचमन करके तीन बार प्राणायाम करें। पूजा के लिए, पूजा स्थान पर जाते समय मौन अवस्था में हाथ-पैर धोकर ही जाएं। प्रवेश करते समय दाहिने पैर को ही आगे रखें।

पांचवां अध्याय

संन्यास मंडल की विधि

ईश्वर बोले—पूजा के स्थान में प्रवेश करने के पश्चात उस स्थान की धरती को लीपें। चार वस्त्रों को लेकर चौकों के समान की कल्पना करें। ताल पत्र के समान लंबे-चौड़े बराबर तेरह भाग करें। चौथे मंडल में पश्चिम की ओर मुंह करके बैठें। पूरब की तरफ से सूत्र लेकर दक्षिण और उत्तर के क्रम में चौदह सूत्र बिछाएं। इस प्रकार एक सौ उनहत्तर कोण हो जाएंगे। इन्हीं कोणों के बीच कणिका के मध्य दलाष्टक होता है। तत्पश्चात दल संधि को श्वेत, पीली, काली, लाल करें।

कर्णिका में प्रणव अर्थ बताने वाले मंत्र लिखें। उसके ऊपर अमरेश, मध्य में महाकाल और उसके सिर के निकट दण्ड लिखें। उसके बाद ईश्वर का नाम लिखें। फिर श्याम अर्थात काले रंग में सिंहासन और पीले रंग में श्रीकण्ठ को रंग कर अमरेश को लाल और महाकाल को काला रंग करें। ईश्वर को सफेद रंग से लिखें। ऐसा लाल यंत्र 'संध्योजा' मंत्र से दान करें। फिर नाद से ईशान को भेदकर अग्नेक्रम से बाहरी पंक्ति को ग्रहण करें। चार कोणों को श्वेत और लाल धातु रंग से रंगकर चार दरवाजे बनाएं। इन दरवाजों के चारों ओर पीले रंग हों। दक्षिण दिशा के कोष्ठ में आठ दल का कमल रखें। इस प्रकार विधि-विधान से सभी दिशाओं के मण्डल को अंकित करके सूर्यदेव की पूजा करें।

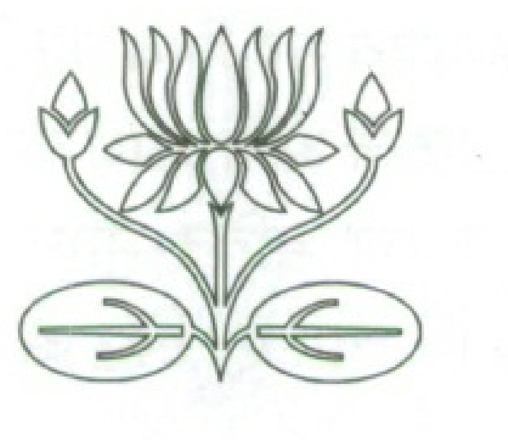

छठा अध्याय

न्यास वर्णन

भगवान शिव बोले—ऋषिगण! कमल की रचना कर शक्ति कमल की रचना करें और चतुर्थी विभक्ति सहित अंत में नमः लगाकर 'शक्ति कमलाय नमः' का उच्चारण करते हुए वस्तुओं को धारण करके गुरु को नमस्कार करें। बाहर की ओर त्रिकोण व्रत क्रम से शंख की पूजा करें और शुद्ध सुगंधित जल से सात बार गंध, पुष्प से 'ॐ' की पूजा-अर्चना कर धेनु मुद्रा दिखाएं। फिर शंख मुद्रा दिखाएं। यह कहकर अपनी आत्मा को शुद्ध करें।

प्राणायाम करके ऋषि का स्मरण करें। अंगन्यास करने के बाद अस्त्र मंत्र से अग्निकोण के कमल का प्रेक्षण करें। दक्षिण में स्थापित कमल का पूजन सफेद वस्तुओं से ही करें। तत्पश्चात इसकी चारों तरफ से पूजा करें। इसके बाद सौर योग पीठ को पूजें। सिंहासन पर मूल मंत्र से मूलाधार में आसन पर बैठकर पिंगला नाड़ी के प्रवाह से शक्ति उठाएं, जिस स्थान पर परमेश्वर शिव देवी पार्वती सहित शोभित हैं। उन्होंने रुद्राक्ष की माला, पाश खट्वांग, कपाल, अंकुश कमल और शंख को धारण किया हुआ है। चार मुख और बारह नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

तत्पश्चात सूर्य देवता का आवाहन करें और मुद्रा दिखाएं। फिर बीज मंत्रों से अंगन्यास करें। अग्नि, ईश्वर, राक्षस और वासु की चार मूर्तियां बनाकर उनका पूजन करें। पूरब से लेकर उत्तर में मूल कमल दल से आदित्य, भास्कर, भानु और रवि के नाम से क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ईशान का पूजन करें। फिर शिव भक्ति में रत हो उनका स्मरण कर भस्म धारण करें। तत्पश्चात गुरु की नम्रतापूर्वक पंचोपचार से पूजा कर उन्हें नमस्कार करें। पूजन को विधि के अनुसार आगे बढ़ाते हुए ईशान का न्यास कर पंचकला क्रम से सद्योजात की कल्पना करें। इस प्रकार प्रणव न्यास करके देवाधिदेव महादेव परमात्मा शिव को बांधकर हंस न्यास करें।

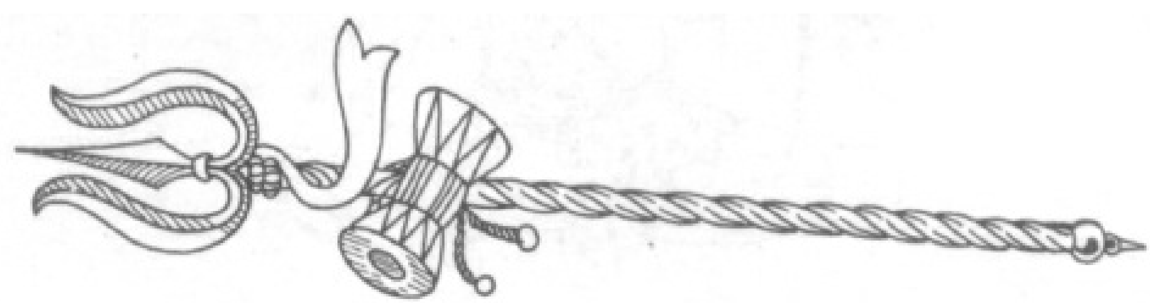

सातवां अध्याय

शिव ध्यान एवं पूजन

शिवजी बोले—मुनिश्वरो! अपनी बाईं ओर चौकोर मंडल बनाकर ॐ का पूजन-अर्चन करें। ॐ को अस्त्र मंत्र से शोभित करें। इसी प्रकार प्रणव का भी पूजन करें। फिर उसे चंदन, धूप, सुगंधित जल से पूर्ण करें। उसके आगे शंख, मुद्रा, अर्द्धचंद्र, चतुर्कोण, त्रिकोण मुद्रा एवं षट्कोण मुद्रा आदि स्थापित करें। फिर ओंकार को गंध एवं पुष्प आदि से पूजें और उसमें पवित्र गंगाजल भरें। गुरु द्वारा बताई गई विधि के अनुसार गुरु मूर्ति की स्थापना करें। 'गुरुभ्यो नमः' मंत्र का जाप करते हुए गुरु की प्रदक्षिणा लें। गुरु द्वारा दी गई दीक्षा का बैठकर ध्यान करें।

तत्पश्चात स्थापित मूर्ति में देवता का आवाहन करें। एकाग्रचित्त होकर मन में उसका ध्यान करें। गणेशजी का षोडशोपचार से पूजन कर उस पर फल और फूल माला चढ़ाएं। नमस्कार कर स्कंद को पूजें और गग्नेय मंडल में सूर्य, चंद्रमा का ध्यान करें। कमल के आसनों पर सुंदर सफेद पुष्प रखें और ॐकार सहित चतुर्थी विभक्ति के अंत में नमः लगाकर मंत्र बोलते हुए सविधि ईशान आदि पांच ब्रह्म की पूजा-अर्चना करें। इसके बाद देवी गौरी की पूजा करें। इस प्रकार सविधि पूजन और ध्यान करके जो भी मनुष्य एवं देवता मेरी और देवी पार्वती की उपासना करते हैं और शंख के जल से स्नान कर ॐकार से मोक्षण करते हैं, उन्हें परम सिद्धि प्राप्त होती है। उनकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं और अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। मोक्ष भी उनके लिए दुर्लभ नहीं है।

आठवां अध्याय

वर्ण-पूजा

सर्वेश्वर शिव बोले—हे देवी! बुद्धिमान और विद्वान मनुष्य एवं देवगण को पूजा करते समय सर्वप्रथम गणेश और कार्तिकेय का पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात वेदों के आदि स्वरूप अर्थात शिव का आवाहन कर पूर्व दिशा में कमल कणिका के ऊपर चारों ओर पूजा करें। 'आवो राजानम्' मंत्र का उच्चारण करते हुए ऋवा से रुद्र की पूजा करें। फिर कणिका दलों में आवाहन करें। शिव को पूर्व में, हर को दक्षिण में, शिव को उत्तर में और भव की पश्चिम दिशा में यथाक्रम के अनुसार पूजा करें। ओं राँ, ओं पाँ, ओं ज्ञा, ओं ला, अर्पण पूर्णव अं, ओं, वां, ओं, साँ और वेद के इन दस मंत्रों से लोकपालों का पूजन करें।

तत्पश्चात दक्षिण दिशा में ईशान देव की पूजा करें। ब्रह्मा और विष्णु का विधि-विधान के अनुसार षोडशोपचार से पूजन करें। फिर पांचवें आवरण में ओंकार रूपी शिव का स्मरण एवं ध्यान करते हुए सविधि पूजन करते हुए नैवेद्य चढ़ाएं और अर्घ्य दें। इसके बाद भोजन की सामग्री एवं तांबूल अर्पित करें। तब नीराजनादि क्रम से पूजा को विसर्जित कर देवी और देवता का शुद्ध हृदय से ध्यान करते हुए एक सौ आठ मंत्रों का जाप करें।

इसके पश्चात पुष्पांजलि अर्पित करते हुए 'यो देवानागिति' उपनिषद की छः ऋचाओं का, जो कि नारायणीय कही गई हैं, जाप करें। फिर प्रदक्षिणा कर साष्टांग प्रणाम करें। आसन पर बैठकर शिव नाम को आठ बार जपें। यह सब क्रिया पूर्ण करने के पश्चात त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव से प्रार्थना करें, हे भगवान! हे शिव शंभो! मैंने अपनी पूरी क्षमता एवं श्रद्धा से आपकी पूजा और आराधना की है। यह कहते हुए शंख के जल और पुष्पों को चढ़ाएं। फिर अर्घ्य देकर आठ बार नाम जपें।

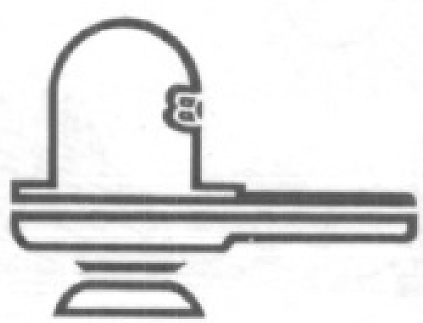

नवां अध्याय

शिव के अनेक नाम और ओंकार

शिवजी बोले—हे देवी! शिव, महेश्वर, रुद्र, पितामह, संसार, वैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा ये देवाधिदेव महादेव के मुख्य आठ नाम हैं। इन्हीं आठ नामों का प्रतिदिन जाप करना चाहिए। शिव, शंकर और महादेव ये सभी नाम शिव स्वरूप ही हैं। उपाधियुक्त होने के कारण शिव के अनेक नाम हैं। वे परिशुद्धात्मा हैं। शिव के विशाल और अनगिनत गुणों के कारण ही उन्हें ईश्वर की संज्ञा दी गई है। तेईस तत्वों से परे प्रकृति और प्रकृति से परे पच्चीसवां पुरुष है। इसी को वाच्य-वाचक के भाव से वेद में 'ओंकार' कहते हैं। वेद में जानने योग्य आत्म स्वरूप वेदांत में प्रतिष्ठित ही परमेश्वर हैं। पुरुष और प्रकृति इन्हीं के अधीन है। वही अविनाशिनी माया के स्वामी हैं और त्रिगुण तत्व के रक्षक हैं। वे शिव ही मोक्ष प्रदान करने वाले और सबके दुखों को दूर करने वाले हैं। इसी कारण उनका नाम रुद्र पड़ा।

इस प्रकार शिवजी के मुखारविंद से वेद से भरे अमृतमयी स्तोत्र को सुनकर देवी पार्वती मन में बहुत हर्षित हुईं और उन्होंने शिवजी को हाथ जोड़कर बार-बार प्रणाम किया। यह प्रणव अर्थ बहुत गुप्त है और समस्त दुखों का नाश करने वाला है। व्यास जी ने भक्तिभाव से पूरी कथा कही, जिसे सुनकर सभी ऋषिगणों ने उनकी पूजा और बहुत आदर-सत्कार किया। तब प्रसन्न हो ऋषियों ने अनेक अनुष्ठान किए। फिर व्यास जी कैलाश पर्वत को चले गए। ऋषिगण अपने आराध्य भगवान शिव का ध्यान करने लगे। यह कथा देवी पार्वती ने स्कंद को, स्कंद ने नंदी को, नंदी ने सनत्कुमार जी को और उन्होंने महर्षि वेदव्यास जी को सुनाई। यह कहकर पुराणवेत्ता गुरु सूत जी पुनः तीर्थ यात्रा पर चल पड़े।

दसवां अध्याय

सूतोपदेश वर्णन

व्यास जी बोले—ऋषिगण! सूत जी के वहां से चले जाने के पश्चात सभी मुनिगण आपस में बोले कि हमने वामदेव के बारे में तो कुछ भी नहीं पूछा। तब चिंतित मुनि बोले कि अब तो पता नहीं कब उनके दर्शन संभव हो सकेंगे। यही सब सोचते हुए मुनिगण अपनी योग-आराधना में लग गए।

संवत्सर के पश्चात सूत जी पुनः काशी आए। उन्हें वहां देखकर सभी मुनिगण बहुत प्रसन्न हुए। वे सब सूत जी की आराधना करने लगे। तब प्रसन्न होकर सूत जी बोले—ऋषिगण! आपको प्रणव का उपदेश देकर जब मैं तीर्थ यात्रा पर निकला तो मैंने दक्षिण सागर के तट पर देवी शिवा का पूजन किया। इसके पश्चात कालहस्त शैल पर सुवर्ण मुखरा में स्नान किया। फिर मैंने देवाधिदेव महादेव जी का स्मरण कर उनका पूजन किया। शिवजी के पांच सिर वाले अद्‌भुत रूप के दर्शन करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। शिवजी का पूजन करने के बाद मैंने दक्षिण भाग में स्थित देवी पार्वती का पूजन किया। उसके बाद मैंने एक सहस्र अर्थात एक सौ आठ बार पंचाक्षरी विद्या का जाप किया। फिर उसकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया।

इस प्रकार मैं कालहस्ति नामक क्षेत्र की प्रदक्षिणा प्रतिदिन करते हुए वहीं निवास करने लगा। मैं वहां पर चार महीने रहा। तब मुझ पर महाज्ञानमयी प्रसून कालिका की कृपादृष्टि हुई और उनका प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ। तत्पश्चात देवाधिदेव शिव-शिवा को प्रणाम कर, उनकी बारह बार प्रदक्षिणा करके मैं यहां आया हूं। हे ऋषिगण! आप मुझे बताइए कि मैं अब आपके लिए क्या करूं?

ग्यारहवां अध्याय

वामदेव द्वारा ब्रह्म निरूपण

ऋषि बोले—महाभाग सूत जी! हम सभी वामदेव के बारे में जानना चाहते हैं। कृपा कर हमें उनके बारे में बताइए। तब ऋषिगणों की जिज्ञासा शांत करने हेतु सूत जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! पहले मन्वंतर में वामदेव नामक एक महामुनि हुए हैं। वामदेव को गर्भ से उत्पन्न होने से पूर्व ही शिव ज्ञान प्राप्त था। वे सबके जन्म कर्म को जानने वाले थे। वामदेव मुनि सदा अपने शरीर पर भस्म लगाकर और सिर पर जटा धारण किए रहते थे। वे शांत और अहंकार रहित थे और सदा योग, ध्यान और ब्रह्म में लीन रहते थे।

एक बार वामदेव ने दक्षिण शिखर पर जाकर शिवजी के पुत्र स्कंद से भेंट की। उस समय स्कंद का रूप सूर्य के समान तेजोदीप्त होकर प्रकाशित हो रहा था। उनकी चार भुजाएं थीं और वे मोर पर बैठे हुए थे। उन्हें देखकर मुनि वामदेव ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और उनकी बहुत स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर शिवजी के पुत्र स्कंद बोले—हे महामुनि! मैं आपकी इस स्तुति से बहुत संतुष्ट हूं। आप जैसे मुनि सदा दूसरों के हित के लिए ही कार्य करते हैं। आपकी जो इच्छा हो कहिए, मैं उसे अवश्य ही पूरा करूंगा।

तब वामदेव जी स्कंद देव से बोले—भगवन्! आप सबकुछ जानने वाले और सबके कर्ता हैं। आपके दर्शनों से ही मेरी सभी कामनाएं पूरी हो गईं। मैं भला आपके गुणों का वर्णन कैसे कर सकता हूं? आप तो साक्षात परमेश्वर वाचक देव पशुपति वाच्य हैं। वे सभी के पाप मोचक हैं। प्रणव मंत्र द्वारा त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का ध्यान करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। ओंकार सर्वस्वरूप है और ॐ सबकी श्रुति और ब्रह्म स्वरूप है। प्रभु! मेरे दृष्टिकोण से इस संसार में शिवजी के समान दूसरा कोई नहीं है। वे ही समाविष्ट और व्यष्टि स्वरूप हैं।

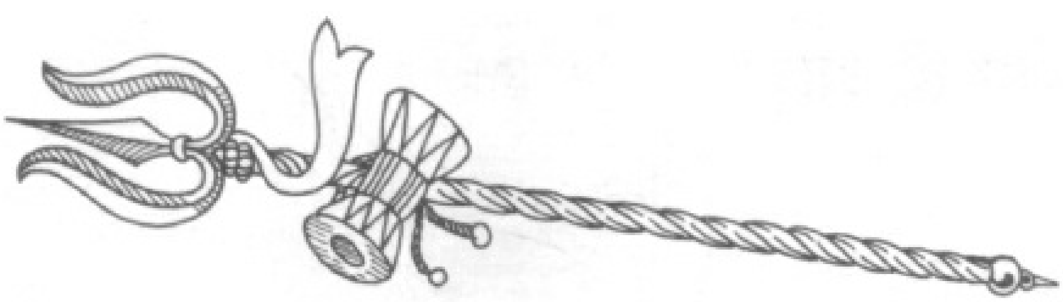

बारहवां अध्याय

साक्षात शिव स्वरूप ही प्रणव है

स्कंद जी बोले—हे वामदेव जी! आप धन्य हैं। आप परम शिव भक्त और शिव तत्व ज्ञान जानने वालों में श्रेष्ठ हैं। इस संसार में जीव माया से मोहित होकर परमेश्वर के स्वरूप को नहीं समझ पाते। प्रणव महेश्वर का ही रूप है, जिसे साधारण जीव नहीं समझ पाते। देवाधिदेव भगवान शिव ही सगुण, निर्गुण और ब्रह्म नामक त्रिगुणों के स्वामी हैं। साक्षात शिव स्वरूप ही प्रणव का अर्थ है। वे ही इस संसार की उत्पत्ति का कारण हैं। शिवजी ने ही ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, आकाश, पाताल, जीव सभी का निर्माण किया है।

सूर्य और चंद्रमा शिवजी के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। इस संसार में दिखाई देने वाला सारा ऐश्वर्य शिवजी का ही है। वे सर्वेश्वर ही निर्गुण सगुण निष्फल हैं। वे ही स्थूल और सूक्ष्म रूप होकर संसार के कार्यों को आगे बढ़ाते हैं। वे ही शिव देवाधिदेव, संतान, निष्फल और ज्ञान क्रिया के परमात्मा हैं। देव पंचक और पंचक कला भी उनकी बनाई हुई हैं। परमात्मा शिव का मन शीतल और स्फटिक मणि के समान निर्मल है।

भगवान शिव के पांच मुख, दस भुजा और पंद्रह नेत्र हैं। जो ईश्मन देव मुकुट धारण किए औघर, हृदयी, वामदेव, गुह्य और प्रदेशवान हैं। वे परमेश्वर शिव ही सद्यपाद, तन्मूर्ति, साक्षात, संपूर्ण, निष्फल और मूर्ति नामक छः प्रकार का स्वरूप धारण करने वाले हैं। वे ही उपन्यास मार्ग पर चलने वाले, समष्टि और व्यष्टि भाव वाले हैं। इस संसार में विख्यात तीन वर्णों को वेदाचारी कहा गया है। शूद्रों को वेद पढ़ने और जानने का अधिकार नहीं है। अन्य वर्णों को श्रुति, स्मृति और धर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिए। इससे ही इंद्र सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान शिव की ही आज्ञा के अनुसार वेद मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। श्रुति स्मृति में वर्णित धर्म और आचारों के अनुसार ही आचरण एवं पूजा करें।

तेरहवां अध्याय

प्रणव सब मंत्रों का बीज रूप है

स्कंद जी बोले—हे वामदेव जी! प्रातःकाल स्नान से निवृत्त होने के पश्चात गंध, पुष्प और अक्षत आदि पूजा की सामग्रियों से भगवान शिव और श्रीगणेश का विधिपूर्वक पूजन और ध्यान करें। पूर्णाहुति देकर हवन करें और गायत्री मंत्र का जाप करें। इसी प्रकार सायंकाल में संध्या करें। सद्योजात के पांच मंत्रों से हवन करें। मन में भगवान शिव का देवी पार्वती सहित ध्यान करते हुए गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए आहुति दें। 'भूर्भुवः सुवरोत्र' कहते हुए त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप का ध्यान करें। देवाधिदेव महादेव जी के पांच मुख, दस भुजाएं, पंद्रह नेत्र और उज्ज्वल मनोहारी स्वरूप हैं। उनकी पत्नी देवी पार्वती जगतमाता त्रिलोक को उत्पन्न करने वाली और निगुर्णमयी हैं। ऐसा मन में विचार करते हुए ज्ञानी पुरुष गायत्री मंत्र का जाप करें। पार्वती जी ही आदि देवी, त्रिपदा, ब्राह्मणत्व दात्री और अजा हैं। वे व्याहृतियों से उत्पन्न हैं और उसी में लीन हो जाती हैं।

वे जगतमाता देवी पार्वती वेदों की आदि प्रणव और शिवपात्री हैं। प्रणव मंत्र ही सब मंत्रों का बीज रूप है। प्रणव ही शिव है और शिव ही प्रणव हैं। मोक्ष की नगरी काशी में मरने वाले मनुष्य को शिवजी इसी मंत्र की शिक्षा देते हैं। तभी ज्ञानी पुरुष को मुक्ति मिलती है। इसलिए सभी को अपने हृदय में भगवान शिव को धारण कर सदा उनका पूजन करना चाहिए।

चौदहवां अध्याय

शिवरूप वर्णन

वामदेव बोले—हे भगवन्! वे छः प्रकार के अर्थ कौन से हैं और उनका क्या ज्ञान है? इनके प्रतिपादक कौन हैं? और इनका क्या फल है? इस संसार में वह कौन-सा ज्ञान है, जिसे जाने बिना जीव शास्त्रों से विमोहित हो जाता है। मैं भी शिव माया से विमोहित हूं। मैं कुछ भी नहीं जानता। आपकी शरण में आया हूं। मुझ पर कृपा कर मुझे ज्ञानरूपी अमृत पिलाइए ताकि मेरी अज्ञानता दूर हो जाए।

मुनि वामदेव के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए शिव पुत्र स्कंद बोले—हे मुनि शार्दूल! इस संसार में भगवान शिव ही समस्त प्रणवार्थ परिज्ञान के भण्डार हैं। वे ही समष्टि-व्यष्टि का भाव रखते हैं। अब मैं एक ही परिज्ञान के छः अर्थों का वर्णन करता हूं। जिनमें पहला मंत्र रूप, दूसरा भाव, तीसरा देवार्थ, चौथा प्रपंचार्थ, पांचवां गुरुरूप और छठा शिष्य के आत्मानुरूप कार्य है। पहला स्वर अकार, दूसरा उकार, तीसरा मकार है। इसी पर नाद रूपी बिंदु है। इन्हीं को वेद में ॐकार कहा गया है। यही समष्टि रूप है। नाद में ही सबकी समष्टि है। अकार, उकार और मकार ये सब बिंदु नाद के आदि हैं। व्यष्टि रूप में सिद्ध होकर ओंकार की उत्पत्ति होती है, जो शिवजी का याचक है। इसी प्रकार ॐकार रूपी पांच वर्णों की समष्टि कला भी शिवजी की वाचक है। जो त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के उपदेश मार्ग का अनुसरण करते हैं उन्हें अवश्य ही शिवपद की प्राप्ति होती है। प्रणव मंत्र शिव का ही रूप है।

पंद्रहवां अध्याय

उपासना मूर्ति

भगवान स्कंद बोले—त्रिलोकीनाथ! कल्याणकारी भगवान शिव ही इस संसार के सृष्टिकर्ता और आकाश के अधिपति हैं। वे ही समष्टि हैं और वे ही व्यष्टि भी हैं। उन्हीं देवाधिदेव सदाशिव से महेश्वर की उत्पत्ति हुई है। अनंत रूप पुरुष होने के कारण वे वायु के भी अधिपति हैं। वे ही सभी प्रकार की मायाओं और शक्तियों से युक्त हैं। ईश्वर, विश्वेश्वर, परमेश्वर और सर्वेश्वर यही चतुष्टय व्यष्टि रूप कहा गया है। यही श्रेष्ठ तिरोभाव चक्र कहा जाता है। तिरोभाव दो प्रकार का होता है- रुद्रादि गोचर एवं जीव समूह का शरीर रूप। पाप और पुण्य जब तक इस संसार में हैं, तब तक इसमें कर्म की साम्यता रहती है। इसी में अनुग्रह करने की सामर्थ्य होती है। इसी विभु में तिरोभाव और कर्म की साम्यता होती है। वही कल्याणकारी भगवान शिव ही साक्षात परब्रह्म, निर्विकल्प तथा निरामय स्वरूप हैं। तिरोभाव के शांतिकलामय तिरोभाव चक्र को महेश्वर के अधिष्ठित उत्तम पद कहा गया है।

महेश्वर के चरणों की सच्चे हृदय से भक्ति करने वाले को यही पद प्राप्त होता है। उन्हीं महेश्वर के हजारवें अंश से रुद्र उत्पन्न हुए हैं। वे अधीर शरीरधारी और तेज तत्व के स्वामी हैं। वे प्रभु ही वाम भाग में देवी गौरी शक्ति धारण करते हैं। रुद्र ही पापियों का संहार करने वाले हैं। व्यष्टि रूप शिव, हर, मुंड और भव अद्‌भुत चक्रविदित हैं। ये सप्रावरण से रक्षित होते हैं। इनके ऊपर की ओर दस गुना जल है। इस जल के मध्य में रहने वाले को श्रुति द्वारा जलमध्यसायी कहा जाता है। भगवान शिव अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थित और सृष्टि से युक्त होकर नई-नई लीलाएं करते रहते हैं। वे ही सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं।

सोलहवां अध्याय

शिव तत्व विवेचन

सूत जी बोले—मुनि वामदेव को भगवान स्कंद के मुख से ओंकाररूपी अमृत कथा का श्रवण करके आनंद की अनुभूति हुई। वे बोले—प्रभु! इस अमृतमयी कथा को सुनकर मेरा ज्ञान और बढ़ गया है परंतु फिर भी मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं। भगवन्! सदाशिव से लेकर कीर्ति पर्यंत तक इस जगत में स्त्री-पुरुष ही दिखाई देते हैं। इस रूपवान अद्‌भुत संसार की उत्पत्ति का कारण वे परमेश्वर ही हैं या कोई अन्य रूप है? विद्वान और शास्त्रों के अनुसार इसके अनेक प्रकारों का वर्णन करते हैं। कृपा कर मुझे जगतस्रष्टा भगवान शिव के भाव का वर्णन कीजिए।

मुनि वामदेव के इस प्रकार उपनिषद गर्भित रहस्य को समझकर स्कंद देव बोले—हे महामुनि! जिन परम शिव तत्व, शिव ज्ञान को आप सुनना चाहते हैं, वह मैं आपको सुनाता हूं। यही ज्ञान मेरे पिता देवाधिदेव भगवान शिव ने मेरी माता देवी पार्वती को सुनाया था। उस समय मैं छोटा सा बालक था और मां की गोद में बैठकर दूध पी रहा था। वे बातें आज भी मुझे याद हैं। कर्मसत्ता से लेकर सभी शास्त्रों में लिखा सभी कुछ ज्ञानदायक है। आप जैसे ज्ञानी पुरुष ही इतना कुछ जानते हुए भी भगवान के विषय में और अधिक जानने की जिज्ञासा रखते हैं परंतु मूर्ख और अज्ञानी पुरुष तो सबकुछ जानते और समझते हुए भी ईश्वर के स्वरूप से इनकार कर देते हैं।

परमेश्वर परमात्मा को जानना एवं उन्हें पहचानने में कोई संदेह एवं परेशानी नहीं है। वे स्त्री-पुरुष के रूप में विश्व के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। श्रुतियों ने ही कहा है कि सच्चिदानंद परब्रह्म सिर्फ सत्य है। जो भी असत्य एवं प्रपंचों से निवृत्त अथवा दूर होकर सदाचार के मार्ग का अनुसरण करते हैं वे सदात्मा कहलाते हैं। वही प्रकाश से चित्त होकर जगत के कारण बन जाते हैं, वे ही शिव-भक्ति भाव को प्राप्त हुए हैं। उन्हीं को भगवान शिव और शक्ति संयोग से परम आनंद की प्राप्ति होती है।

सत्रहवां अध्याय

शिव ही प्रकृति के कारण रूप हैं

वामदेव जी बोले—भगवन्! पूर्व में आपने ही प्रकृति के नीचे नियति और ऊपर पुरुष बताया था। फिर आज आप यह क्या कह रहे हैं? प्रभु मेरा संशय दूर कीजिए। तब मुनि वामदेव जी के वचन सुनकर स्कंद जी बोले—हे मुने! अद्वैत सेवावाद में द्वैत सेवावाद का कोई समावेश नहीं होता। यह नश्वर और अविनाशी है। भगवान शिव ही सच्चिदानंद स्वरूप वाले परमब्रह्म हैं। इन्हीं त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी शिव को ही सर्वज्ञ, सबका कर्ता एवं त्रिवेदों का उत्पादक कहा जाता है।

वे सर्वेश्वर शिव ही अपनी माया और इच्छा के अनुरूप संकुचित रूप धारण कर पांचों कला में निपुण पुरुष हो गए हैं। वे ही भोक्ता हैं, जो कि प्रकृति के सभी गुणों को भोगने वाले हैं। वे ही समष्टि और चित्त प्रकृति तत्व के स्वामी हैं। प्रकृति के गुण सत्व से उत्पन्न हुए हैं। गुणों से बुद्धि और बुद्धि से ही अहंकार की उत्पत्ति होती है। तब उससे तेज और उससे मन, बुद्धि और इंद्रियों की उत्पत्ति हुई है। मन के रूप को संकल्प विकल्पात्मक कहा गया है। बुद्धि, इंद्रिय, कान, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गंध, प्रवृत्ति को बुद्धि और इंद्रियों में श्रोत का क्रम कहा गया है। वैचारिक अहंकार से कर्मेंद्रियों की उत्पत्ति हुई है। जिन्हें मुनियों ने सूक्ष्म कहा है। फिर तन्मात्राएं और शब्द के रूप हुए जिनसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। ये ही पंचमहाभूत कहलाते हैं। शब्दादि रूप, रस, गंध उनकी तन्मात्राएं कहलाए। आकाश, वहन, पाचन वेग आदि पांच महा कहलाए।

इस प्रकार स्कंद जी का वेदांतयुक्त वचन सुनकर मुनि वामदेव बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर पृथ्वी पर लेटकर उन्हें दण्डवत प्रणाम करने लगे। उनके चरणारविंदों में उन्हें परम तत्व ज्ञान प्राप्त हो गया था।

अट्ठारहवां अध्याय

शिष्य धर्म

सूत जी बोले—मुनि वामदेव ने भगवान स्कंद से पूछा—हे भगवन्! आप सर्वतत्व को जानने वालों में श्रेष्ठ हैं। आप मुझ पर कृपा करके संप्रदाय के उस ज्ञान के बारे में बताइए, जिसके बिना जीवों को भोग और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। प्रभो! कृपा कर मेरे इस संशय को दूर कीजिए। तब वामदेव जी के इन वचनों को सुनकर स्कंद देव बोले—मुनिश्वर! अब मैं आपको एक परम गुप्त तत्व के बारे में बताता हूं। वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, अगहन, माघ महीनों के शुक्ल पक्ष में पंचमी अथवा पूर्णिमा के दिन स्नान करके शुद्ध होकर अपने गुरु के चरणों को धोकर उनके पास रखे आसन पर शंख में फूलों को अभिमंत्रित करके रखें। तत्पश्चात गंध और पुष्प से पूजन करें।

उसके समक्ष दीप प्रज्वलित करें। मुद्रा से रक्षा कर कवच को मंत्रों से आच्छादित करें। तत्पश्चात विधिपूर्वक अर्घ्य दें और सुगंधित पुष्पों से पूजन करें। आधार पर सुगंधित जल का घट रखकर उसे सूत से लपेटें। उस घट पर पीपल, पिलखन, जामुन, आम और बड़ नामक पांचों पेड़ों की छाल और पत्ते तथा हाथी, घोड़े, रथ, बांबी और नदी के संगम स्थान की मिट्टी में सुगंधि को मिलाकर उसे कलश पर लेपें। लेपने के बाद आम के पत्ते, कुश का अग्र, नारियल, फूल आदि वस्तुओं से कलश को सजाएं।

सजाने के बाद कलश में पंचरत्न डालें। यदि पंचरत्न न हों तो सुवर्ण डालें। नील, माणिक्य, सुवर्ण, मूंगा और गोमेद नामक पांच रत्नों को 'नृमलस्क' का उच्चारण करते हुए अंत में 'ग्लूमू' कहते हुए विधि-विधान से पूजन करें। खीर और तांबूल अर्पित कर आठ नामों का जाप करते हुए पूजा करें। गुरु द्वारा बताई हुई विधि से अनुष्ठान सहित भगवान शिव की पूजा-अर्चना करें। फिर गुरु को अपने शिष्य को 'हं सोऽहं' मंत्र का उपदेश देना चाहिए। उपदेश के बाद भस्म का ज्ञान प्रदान करना चाहिए। उस समय गुरु को अपने मन में यही विचार करना चाहिए कि मैं ही शिव हूं। इस प्रकार शिष्य को ज्ञान दें।

उन्नीसवां अध्याय

योगपट्ट वर्णन

भगवान स्कंद बोले—मुनि वामदेव! अपने शिष्य को पूजा विधि का वर्णन करने के पश्चात गुरु निम्न बातों का उच्चारण करें—मैं ब्रह्म हूं। वह तू है। आत्मा ही ब्रह्म है। सारा संसार ईश्वर से अधिष्ठित होता है। मैं ही प्राण हूं। आत्मा ही ज्ञान का सार है। प्रज्ञान आत्मा ही यहां विदित अवस्थित है। वही तुम्हारा, मेरा अर्थात सबका अंतर्यामी है। वही ज्ञान रूपी अमृत है। वह एक ही पुरुष में और आदित्य में है। वही परब्रह्म मैं हूं। सबसे परे और सबका ज्ञाता और वेद शास्त्रों का गुरु मैं ही हूं। इस संसार में सारे आनंद का क्षण मैं ही हूं।

सर्वभूतों के हृदय में व्याप्त रहने वाला मैं ही ईश्वर हूं। सारे तत्वों का और पृथ्वी का प्राण मैं ही हूं। मैं ही जल और तेज का प्राण हूं। आकाश और वायु का प्राण मैं हूं। मैं ही त्रिगुण का प्राण हूं। मैं ही अद्वितीय और सर्वात्मक हूं। यह सब ब्रह्मरूप है। मैं ही मुक्त स्वरूप हूं। इसलिए मेरा ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार भगवान स्कंद ने वामदेव जी से योगपट्ट का वर्णन किया।

बीसवां अध्याय

क्षौर एवं स्नान विधि

भगवान स्कंद बोले—हे मुनिश्वर! अब मैं आपको यतियों को शुद्धि प्रदान करने वाले क्षौर और स्नान की विधि बताता हूं।

जब शिष्य योग पद को प्राप्त हो जाए तब व्रत करने से पूर्व क्षौर करना चाहिए। गुरु को नमस्कार कर उनकी आज्ञा से क्षौर कराएं। फिर नाई के कपड़े को मिट्टी और जल से धुलाएं। फिर शिव नाम का उच्चारण करते हुए हाथ की अनामिका और अंगूठे को अभिमंत्रित करें। आंखें बंद कर मंत्र का उच्चारण करें और दाहिनी ओर से क्षौर कराएं। आगे से पीछे की ओर सिर मुड़वाएं और फिर मूंछें भी साफ कराएं और नाखून काट लें।

तत्पश्चात नदी में बारह डुबकी लगाकर स्नान करें। बेल, पीपल या तुलसी के नीचे की मिट्टी लेकर उसका प्रोक्षण कर अभिमंत्रित करें। उस मिट्टी के तीन भाग करें। एक भाग से बारह बार हाथ मलकर साफ करें। दूसरे भाग की मिट्टी को सिर से मुंह तक लेप करके बारह बार जल में डुबकी लगाएं। फिर सोलह बार कुल्ला कर दो बार आचमन करें। बची हुई मिट्टी का पूरे शरीर पर लेप करें।

मन में ॐकार का भक्तिपूर्वक जाप करते हुए सोलह बार प्राणायाम करें। फिर ज्ञान देने वाले गुरु का ध्यान करते हुए तीन बार साष्टांग प्रणाम करें। तत्पश्चात तीर्थस्थान के जल में डुबकी लगाते हुए त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव का स्मरण करें।

वे देवाधिदेव महादेव ही संसार को तारने वाले हैं। वे ही सबका कल्याण करते हैं। इस प्रकार मैंने आपको स्नान की पूर्ण विधि बताई।

इक्कीसवां अध्याय

योगियों को उत्तरायण प्राप्ति

मुनि वामदेव बोले—हे भगवान स्कंद जी! मैंने सुना है कि योगियों का दाह कर्म नहीं किया जाता। उन्हें तो शुद्ध भूमि में स्थापित कर दिया जाता है। क्या यह सच है? तब मुनिवर के प्रश्न का उत्तर देते हुए असुर-निकंदन स्कंद जी बोले—हे मुनिवर! यह प्रश्न एक बार महान शिव योगी भृगु ने स्वयं सर्वज्ञ त्रिलोकीनाथ भगवान शिव से किया था। उस समय जो शिवजी ने बताया था वही मैं तुम्हें बताता हूं।

यह परम ज्ञान सब साधारण मनुष्यों के लिए नहीं है। इस ज्ञान को शांतचित्त वाले परम शिवभक्त शिष्य को ही बताना चाहिए क्योंकि महा धैर्यवान योगीजन ही समाधि अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं और वे ही शिवरूप से परिपूर्ण होते हैं। परंतु जो योगी-मुनि अपने चित्त अर्थात मन को स्थिर करने में असमर्थ होते हैं और जल्द ही अधीर हो उठते हैं, जिन्हें समाधि की अवस्था का ज्ञान प्राप्त नहीं है, ऐसे योगियों को गुरु मुख से शिवजी का ज्ञान जानकर ध्यान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रणव मंत्र का जाप करें और भगवान शिव का स्मरण करें। तभी योगीजनों को उत्तरायण की प्राप्ति होती है।

बाईसवां अध्याय

एकादशी पद्धति

भगवान स्कंद बोले—मुनिवर! अब मैं आपको एकादशी विधि बताता हूं। एक वेदी को लीपकर पांच मंडल बनाएं और उसमें पांच देवताओं की पूजा करें। भगवान शिव सर्वेश्वर हैं। उनकी कृपा से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसलिए हमें उनकी कृपा को नहीं भूलना चाहिए। भगवान शिव का स्वरूप मानकर शिवात्म देवताओं का ध्यान करके उनके चरणों में शंख के जल को समर्पित करें। 'ॐ भूर्भुवः स्व:' मंत्र का जाप कर धूप दीप से प्रदक्षिणा कर नमस्कार करें। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करें कि भगवन्! आप प्रसन्न होकर यति को शिव चरणों में रक्षित करें।

प्रार्थना के पश्चात प्रसाद को कन्याओं को बांट दें। इसके पश्चात यति का पावन श्राद्ध करें क्योंकि यति का एकादिष्ट श्राद्ध नहीं होता। चार ब्राह्मणों को आमंत्रित करें। उनके चरण धोकर शिवजी की विधि-विधान के अनुसार पूजा कर उनके समक्ष ही ब्राह्मणों को भोजन कराएं। गोबर से लीपे स्थान पर रखे कुश के आसन पर बैठकर कहें कि मैं पिंडों को दान करता हूं। ऐसा संकल्प करके तीन मडलों का अपने परमात्मा, अंतरात्मा और आत्मा के लिए पूजा करें। मन में यह विचार करते हुए कि हमने आत्मा को पिंड दिया है, पिंड दान करें। कुश से जल छिड़ककर प्रदक्षिणा और नमस्कार करें। तत्पश्चात ब्राह्मणों को दक्षिणा दें।

ऐसा करने के बाद रक्षा के लिए श्रीहरि विष्णु की महापूजा करें और नारायण को बलि दें। अंत में वेदों और शास्त्रों को जानने वाले बारह ब्राह्मणों का गंध, अक्षत, और पुष्पों से पूजन करें और प्रार्थना करें। कुश आसन पर पायस बलि दें। मुनि वामदेव! यह मैंने आपको एकादश की विधि बताई है।

तेईसवां अध्याय

शिष्य वर्ग का वर्णन

स्कंद देव बोले—मुनि वामदेव! बारहवें दिन प्रातः उठकर स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर भगवान शिव की पूजा-अर्चना करें। मध्यान्ह में ब्राह्मणों को निमंत्रण देकर उन्हें भोजन कराएं। मन में गुरु पूजन का संकल्प करें। गुरु के चरण धोकर उन्हें आसन पर बैठाकर कुशाओं और धूप-दीप से आराधना करें। गुरु को नमस्कार कर मंत्र का जाप करते हुए अक्षत अर्पित करें। ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें आसन पर बैठाएं।

फिर तांबूल देकर दक्षिणा में छतरी, पादुका, पंखा, चौकी और वेणुदण्ड देकर उनकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार करें। उनके चरण छूकर आशीर्वाद पाकर उन्हें विदा करें। अन्य अतिथियों एवं दीन-अनाथों को भोजन कराएं। इसी प्रकार प्रतिवर्ष गुरु की पूजा करें। गुरु की उत्तम आराधना से निश्चय ही शिवलोक की प्राप्ति होती है।

मुनिवर! वैशंपायन, पैल, जैमिनि और सुमंतु नामक चारों महामुनि तेजस्वी व्यास के शिष्य हैं। वामदेव, अगस्त्य, पुलस्त्य और क्रतु योगिवर सनत्कुमार जी के शिष्य हैं। ये सभी मुनि अद्‌भुत और भगवान शिव के परम भक्त हैं। इन्होंने ही पंच महाभूतों से आवृत्त वेदांत सिद्धांत का परम निश्चय किया है। यह मोहनाशक, ज्ञानदायक और संतोषदायक है। यह जगत का कल्याण करने वाला और लक्ष्मी प्रदान करने वाला है।

त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव का ध्यान और स्मरण सदा करने से योगीजन शिव-स्वरूप हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भजन और ध्यान करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होता है तथा उनकी सभी कामनाएं पूरी हो जाती हैं। कल्याणकारी देवाधिदेव महादेव जी की आराधना सभी दुखों का नाश कर सुख प्रदान करने वाली तथा भोग-मोक्ष देने वाली है।

इस प्रकार वामदेव जी को उपदेश देकर और उनसे पूजित होकर स्कंद देव अपने माता-पिता का स्मरण करते हुए कैलाश पर्वत को चले गए। तब मुनिवर वामदेव भी भगवान स्कंद का अनुसरण करते हुए कैलाश पर गए। वहां पहुंचकर वामदेव मुनि ने भगवान शिव-पार्वती के चरणों में अपना शीश नवाया। फिर उनके समक्ष पृथ्वी पर लेटकर अपने आराध्य सर्वेश्वर शिव और देवी पार्वती की स्तुति की तथा उनको शीश नवाया।

तत्पश्चात भगवान शिव और माता पार्वती की कृपा पाकर वहीं रहने लगे। इस प्रकार आपको ओंकार महेश्वर का अर्थ जानकर इस परम ज्ञान को प्राप्त करके सदा प्रभु के चरणों का स्मरण करना चाहिए। वे कल्याणकारी शिव ही भक्ति और मुक्ति के दाता हैं। हे मुनिश्वरो! मैंने आपको सबकुछ बता दिया। यह कहकर वे बद्रिकाश्रम को चले गए।

।। श्रीकैलाश संहिता संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीवायवीय संहिता (पूर्वार्द्ध)

प्रथम अध्याय

पुराणों और विद्यावतार का वर्णन

व्यास जी कहते हैं—जो जगत की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले हैं, उन भगवान शंकर को मैं प्रणाम करता हूं। जिनकी शक्ति अद्वितीय है, जो संसार की हर वस्तु में विद्यमान हैं अर्थात सर्वव्यापक हैं, उन विश्वकर्ता, अविनाशी भगवान शिव की मैं शरण में हूं।

जब गंगा-यमुना और सरस्वती के संगम स्थल प्रयाग में नैमिषारण्य में ऋषिगणों ने यज्ञ का अनुष्ठान किया तब व्यास मुनि के पुत्र सूत जी उस स्थान पर गए थे। उन्हें वहां देखकर मुनि प्रसन्न हो गए। उन्हें यथायोग्य आसन पर बैठाकर उनका सत्कार और पूजन किया। ऋषिगण बोले—हे सर्वज्ञ सूत जी! आप महर्षि व्यास जी के शिष्य होने के कारण सब कथाओं और रहस्यों को जानते हैं। हम पर कृपा करके हमें भी दिव्य कथा सुनाइए।

ऋषिगण की प्रार्थना सुनकर सूत जी ने मन ही मन भगवान शिव एवं देवी पार्वती का स्मरण किया, फिर बोले—हे ऋषिगण! अब मैं आपको पुराणों के प्रकट होने का वृत्तांत सुनाता हूं। श्वेत कल्प में वायुदेव द्वारा कहे गए वचन ही न्यास से पूर्ण व शास्त्रों से शोभित होकर पुराण कहे जाते हैं। चार वेद, छः शास्त्र, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र एवं पुराण आदि चौदह विद्याएं हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और अर्थशास्त्र से मिलकर ये अट्ठारह हो जाती हैं। देवाधिदेव भगवान शिव ही इन अट्ठारह विद्याओं के उत्पादक हैं।

संसार की उत्पत्ति के समय सर्वप्रथम ब्रह्माजी उत्पन्न हुए जिन्हें ये अट्ठारह विद्याएं प्रदान कीं। उनकी रक्षा के लिए विष्णु को शक्ति प्रदान की। श्रीविष्णु जी ब्रह्मा की रक्षा करने वाले मध्य पुत्र हैं। ब्रह्मा के चार मुखों से चार वेद उत्पन्न हुए। तत्पश्चात उनके चार मुखों से शास्त्र उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के मुख से उत्पन्न हुए इन शास्त्रों को पढ़ना अत्यंत कठिन है। इसलिए मनुष्यगणों को वेदों और शास्त्रों का ज्ञान प्रदान करने हेतु भगवान शिव की कृपा से द्वापर युग में श्रीहरि विष्णु के रूप में व्यास जी अवतरित हुए। उन्होंने द्वैपायन नाम से द्वापर में जन्म लिया और वेद व्यास नाम से जगप्रसिद्ध हुए। उन्होंने सभी पुराणों की रचना की। संक्षेप में उन्होंने चार लाख श्लोकों की रचना की।

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, बामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्माण्ड, स्कंद आदि कुल अट्ठारह पुराण हैं। शिव पुराण के धर्म तथा विधि के अनुसार पूजन एवं आराधना से सब मनुष्य तथा देवताओं को शिवलोक की प्राप्ति होती है।

दूसरा अध्याय

ब्रह्माजी से मुनियों का प्रश्न पूछना

सूत जी बोले—हे ऋषियो! वराह कल्प में ऋषिगणों के मध्य विवाद छिड़ गया कि परब्रह्म कौन है? जब इस बात का निर्णय न हो सका तब सब ब्रह्माजी के पास गए। उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति आरंभ कर दी। तब ब्रह्माजी ने उनसे पूछा, हे ऋषिगण! आपके यहां आने का क्या प्रयोजन है?

ब्रह्माजी के प्रश्न को सुनकर ऋषिगण बोले—हे ब्रह्माजी! हम संदेह रूपी अज्ञान के अंधेरे में पड़ गए हैं। इसलिए हम सब बहुत व्याकुल हैं। हम पर कृपा करके हमारे संदेह को दूर करें। हम सब यह जानना चाहते हैं कि अविनाशी, नित्य, शुद्ध चित्त स्वरूप परब्रह्म परमात्मा कौन है? अपनी लीला से संसार को रचकर इस संसार का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता कौन है?

ऋषिगणों का यह प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी ने त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी देवाधिदेव महादेव जी का स्मरण करके उन्हें बताया।

तीसरा अध्याय

नैमिषारण्य कथा

ब्रह्माजी बोले—हे ऋषियो! जिसने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित पूरे संसार को रचा है, जिनकी कृपादृष्टि पाकर संसार के सभी प्राणी भयमुक्त हो जाते हैं, जो सब इंद्रियों के मूल हैं, जिनकी कृपा से मुझे प्रजापति पद प्राप्त हुआ है, जो सब पर शासन करने वाले हैं, जिनकी कृपा से सूर्य, चंद्र, अग्नि, बिजली सहित पूरा संसार प्रकाशित होता है, वे परम ब्रह्म और कोई नहीं, स्वयं शिव ही हैं। इनकी अनंत महिमा को कोई नहीं जान सकता।

त्रिलोकीनाथ, कल्याणकारी भगवान शिव ही निपुण, उदार, गंभीर, माधुर्य, मकरंद से सभी प्राणियों के स्वामी और अद्‌भुत लीला करने वाले हैं। उन्होंने ही इस संसार को उत्पन किया है। प्रलय काल में ही वे सारे ब्रह्माण्ड को अपने अधीन कर अपने में विलीन कर लेते हैं। भगवान शिव का सच्चे मन से पूजन और आराधन करने वाले को प्रभु का दर्शन प्राप्त होता है।

भगवान शिव के तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म से सूक्ष्म। स्थूल रूप को देवता, सूक्ष्म रूप को योगीजन और तीसरे अर्थात अत्यंत सूक्ष्म रूप को शिवजी के परम भक्त और शिव व्रत का उत्तम पालन करने वाले ही देख सकते हैं। धर्म का विशेष ज्ञान हो जाने पर अधर्म का नाश हो जाता है और फिर शिवजी की अचल भक्ति प्राप्त हो जाती है। भगवान शिव की कृपा से कर्म के बंधनों से मुक्ति मिल जाती है तथा मनुष्य शिव धर्म में प्रवृत्त हो जाता है। धर्म दो प्रकार का होता है—गुरु अपेक्षित तथा गुरु अनपेक्षित। गुर अपेक्षित धर्म द्वारा ही शिव धर्म में प्रवृत्त होकर शिव ज्ञान की प्राप्ति होती है और मनुष्य सांसारिक मोह-माया को त्यागकर भाव साधन में लग जाता है। तत्पश्चात ज्ञान और ध्यान से युक्त होकर मनुष्य योग में प्रवृत्त हो जाता है। योग से भक्ति, भक्ति से शिवजी की कृपा और उनकी कृपा से संसार से मुक्ति मिल जाती है। तब मनुष्य शिवधाम एवं शिवपद को प्राप्त कर लेता है।

इसलिए ऋषिगण आप सबको मन और वाणी को शुद्ध करके परमात्मा शिव के ध्यान में लग जाना चाहिए। यज्ञों और मंत्रों द्वारा आवाहन करने से वायुदेव आपके पास आएंगे, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। फिर आप सब पवित्र वाराणसी नगरी में चले जाना क्योंकि वहीं पर पिनाकधारी शिव देवी पार्वती जी के साथ विराजमान हैं।

इस समय मैं मनोमय चक्र को छोड़ रहा हूं। इस चक्र की नेमि जहां टूटे उसी स्थान पर आप महायज्ञ आरंभ करना। यह कहकर ब्रह्माजी ने शिवजी का स्मरण करते हुए सूर्य के समान चमकते दिव्य अलौकिक चक्र को फेंक दिया। सब ऋषियों ने ब्रह्माजी को प्रणाम कर चक्र के पीछे चलना आरंभ कर दिया। वह चक्र बहुत दूर चलकर एक बड़ी शिला से टकराया और उसकी नेमि टूट गई। तब वही स्थान नैमिषारण्य नाम से विख्यात हुआ। ऋषिगणों ने उसी स्थान पर महायज्ञ करने की दीक्षा ग्रहण की।

एक समय की बात है राजा पुरुरुवा रानी उर्वशी के साथ विहार करता हुआ उस स्थान पर पहुंचा। पुरुरुवा अट्टारह समुद्र द्वीपों का स्वामी होते हुए भी उस भूमि को पाने के लिए ललचा गया। मोहित होकर वह उस भूमि को उनसे छीनने लगा। तब मुनिगण ने क्रोध में राजा पर कुशा का प्रहार किया और राजा को मार गिराया। इसी भूमि खंड पर ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना की थी। इस भूमि खण्ड को पाकर ऋषिगण बहुत प्रसन्न और आनंदित हुए।

चौथा अध्याय

वायु आगमन

सूत जी बोले—ऋषिगण! उन भाग्यशाली ऋषियों ने नैमिषारण्य क्षेत्र में भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए दस हजार वर्ष तक यज्ञ किया। तब ब्रह्माजी से प्रेरित होकर वायुदेव ने उन्हें दर्शन दिए। उन्हें अपने सामने पाकर ऋषिगण बहुत प्रसन्न हुए। ऋषिगण ने वायुदेव को उत्तम आसन देकर उनका बहुत आदर सत्कार किया।

वायुदेव बोले—ऋषिगण! भगवान शिव की परम कृपा से आपका यज्ञ निर्बाध गति से चल रहा है। कोई राक्षस अथवा महादैत्य यज्ञ में विघ्न नहीं कर रहा है। फिर भी, क्या आपको इस यज्ञ में कोई कष्ट हुआ है? आपने शास्त्र-स्तोत्र से देवताओं और पितृ कर्मों से पितरों को पूजकर यज्ञ को विधि-विधान से पूर्ण कर लिया है?

तब वायुदेव के इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए ऋषिगण बोले—हे वायुदेव! हमने अपने अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने के लिए ब्रह्माजी की आराधना की थी। तब उन्होंने प्रसन्न होकर हमें इस महायज्ञ को करने के लिए कहा था। उन्होंने ही हमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं देवों के स्वामी परब्रह्म परमेश्वर, कल्याणकारी भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए शिव मंत्र जपने की आज्ञा दी थी। आपके शुभागमन के विषय में भी ब्रह्माजी ने बताया था। आपने यहां पधारकर हमारे महायज्ञ को पूर्ण कर दिया। आपके दर्शन पाकर हम सबका जीवन सफल हुआ और हम सब कृतार्थ हुए।

पांचवां अध्याय

शिवतत्व वर्णन

ऋषि बोले—हे वायुदेव! आप हम सबको यह बताएं कि आपको यह ईश्वरीय ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ है? जिनका जन्म अभी तक अप्रकट है, ऐसे ब्रह्माजी से आपने शिव भाव को कैसे प्राप्त किया? प्रभु! हमारी इस जिज्ञासा को शांत करें और हमें ज्ञान प्रदान करें।

ऋषिगण के वचन सुनकर वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! इक्कीसवें श्वेत रूप नामक कल्प में ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड की रचना करने के लिए भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु कठोर तपस्या की। तब उनकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर कल्याणकारी शिव ने उन्हें अपने स्वरूप के दर्शन दिए। तत्पश्चात उन्हें परम शिव तत्व ज्ञान का उपदेश दिया। अपनी तपस्या के प्रभाव से ही मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई है।

सर्वप्रथम मुझे पशु पाशपति संज्ञक ज्ञान प्राप्त हुआ। इस ज्ञान को वस्तु विनाशक माना जाता है। चेतन और प्रकृति दोनों का नायक ज्ञान ही है। पशु, पाश एवं पति को तत्वज्ञ कहते हैं। क्षर प्रकृति, अक्षर पुरुष और इन दोनों का प्रेरक परमेश्वर है। प्रकृति माया है। माया ही महेश्वर की परम शक्ति है। जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिए ही माया से आच्छादित रहता है।

ऋषि बोले—हे वायुदेव! कालादि क्या है? उसका कर्म व फल क्या है? भोग किसे कहते हैं और भोग के साधन क्या हैं? वायुदेव बोले—ऋषिगण! कला, विद्या, राग, काल और नियति का भोक्ता मनुष्य है। हमारा शरीर ही भोग का साधन है। जब शिवभक्ति की भावना प्रबल होती है, तब मनुष्य शिव स्वरूप हो जाता है। विद्या ज्ञान बढ़ाती है, राग को कला बढ़ाती है। सुख-दुख से मोहित होकर आत्मा सत्व, रज और तम गुणों को भोगती है। पंचभूत, पंचतन्मात्रा, पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय प्रधान बुद्धि, मन अहंकार विकारयुक्त है। श्रेष्ठ पुरुषों ने आत्मा को भिन्न माना है। मनुष्य अपने कर्मों का ही फल भोगता है।

ईश्वर सर्वज्ञ और अगोचर है। वह ही अंतर्यामी कहलाता है। शरीर तो दुखों की खान है। वह नश्वर है और नष्ट हो जाता है। संसार में आकर वह जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। आत्मा कभी नहीं मरती, वह अमर है। आत्मा एक के बाद दूसरा शरीर धारण कर लेती है। जीवात्मा ज्ञानहीन होने के कारण सुख-दुख भोगने के लिए स्वर्ग और नरक में जाती है।

छठवां अध्याय

शिव तत्व ज्ञान वर्णन

ऋषि बोले—हे वासुदेव! पशु और पाश के स्वामी कौन हैं? तब ऋषिगणों का प्रश्न सुनकर वायुदेव बोले—हे ऋषियो! पशु और पाश के निवारक परमेश्वर हैं। परमेश्वर सर्वव्यापक है। उसने ही संसार का निर्माण किया है। ईश्वर की प्रेरणा से ही जीव संसार में जन्म लेता है। परमात्मा ही सबका कर्ता है। जिस प्रकार अंधे मनुष्य को कुछ दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार मनुष्य भी परमेश्वर को नहीं देख पाता। पशु एवं पाश को जब ज्ञान प्राप्त होता है तो ब्रह्मज्ञानियों को मुक्ति मिल जाती है।

परमेश्वर महाज्ञानी और मायावी हैं। वह सारे संसार को अपने अधीन कर लेते हैं। वही संसार की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले हैं। त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव भगवान शिव ही परमेश्वर हैं। उन्होंने ही आकाश और पृथ्वी की रचना की है। उन्होंने ही सभी जीवों एवं देवताओं को रचा है। अतः वे ही पुराण पुरुष हैं। अपनी अपार अलौकिक शक्ति से उन्होंने पूरे त्रिलोक की रचना की और उसका पालन करते हैं तथा समय आने पर इसका विनाश भी स्वयं कर देते हैं।

संसार रूपी वृक्ष के दो पत्ते हैं—जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा अपने कर्म के फल को भोगती है और परमात्मा उसका लेखा-जोखा रखते हैं। परमात्मा का प्रकाश एवं तेज चारों ओर फैला हुआ है। गुह्योपनिषद के अनुसार परब्रह्म को जानने वाला मनुष्य जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त हो जाता है। इसलिए सदाशिव की भक्ति कर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करनी चाहिए। वे कल्याणकारी सदाशिव ही सब कामनाओं को पूरा करने वाले हैं। उनके अमृतरूपी ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं है। अतः सर्व व्यापक सर्वेश्वर शिव का ही ध्यान और स्मरण करना चाहिए।

सातवां अध्याय

काल-महिमा

ऋषि बोले—हे देव! इस विश्व की सृष्टि, पालन और संहार रूपी चक्र के निरंतर चलने से ही जीव की उत्पत्ति एवं विनाश होता है। हमें इस काल को अपने अधीन रखने वाले के विषय में बताइए।

तब ऋषिगणों के प्रश्न का उत्तर देते हुए वायुदेव बोले—हे मुनियो! जिस काल के विषय में आप जानना चाहते हैं, वह भगवान शिव का ही तेज और दिव्य रूप है। काल को कालात्मा नाम से भी जाना जाता है। इस चराचर जगत में कोई भी काल के सामने रुकावट नहीं डाल सकता। त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव की अंशांश शक्ति ही इस कालात्मा में कार्य कर रही है। इस काल शक्ति ने पूरे विश्व को अपने अधीन कर रखा है। यह काल सिर्फ भगवान शिव के ही अधीन है क्योंकि इसमें स्वयं शिव-शक्ति विद्यमान है।

इस काल को रोक पाना किसी के वश में नहीं है। कोई इसका उल्लंघन नहीं कर सकता। अपनी अथाह बल शक्ति के कारण ही यह त्रिलोक पर अपना अखंड राज्य कर रहा है। भगवान शिव की शक्ति से ही यह सब जीवों को उनके सुख-दुख का फल देता है।

काल के अनुसार ही वायु, धूप, ठंड और मेघ द्वारा जल प्रदान करता है। समय पर सूर्यदेव अपनी तेज किरणों से जगत को तृप्त करते हैं, खेतों में अन्न पैदा करते हैं तथा फल-फूल प्रदान करते हैं। जब मनुष्यगण इस काल तत्व को भली-भांति समझ लेते हैं, तब उन्हें परमेश्वर शिव के दर्शन प्राप्त होते हैं। काल के स्वरूप को जान लेने पर ही शिवकृपा से काल का अतिक्रमण किया जा सकता है। इसे ही तो अमरता कहते हैं, यही मुक्ति है।

आठवां अध्याय

त्रिदेवों की आयु

ऋषिगण बोले—हे वायुदेव! अब आप हम पर कृपा करके आयु का परिमाण और संख्या के बारे में बताइए। वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! प्रलय काल आने तक की अवधि ही पूर्ण काल की अवधि है। पंद्रह निमेष की काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओं का एक मुहूर्त अर्थात दिन-रात, पंद्रह दिन-रातों का एक पक्ष होता है। इस प्रकार महीने में दो पक्ष—शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष होते हैं। पितरों के दिन और रात क्रमशः शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष होते हैं। छः महीने का एक अयन होता है। दो अयन पूरे होने पर एक वर्ष पूरा हो जाता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन और रात के बराबर होता है। मनुष्यों की एक अयन के दक्षिण होने पर दक्षिणायन अर्थात देवताओं की रात और उत्तर होने पर उत्तरायण अर्थात देवताओं का दिन होता है।

इस प्रकार मनुष्यों के तीन सौ आठ वर्ष पूरे दोने पर देवताओं का एक वर्ष पूरा होता है। देवताओं के वर्षों से युगों की गणना होती है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग नामक चार युग कहे गए हैं। इसमें सतयुग देवताओं के चार सहस्र वर्षों का होता है। जिसमें चार सौ वर्ष संध्या तथा चार सौ वर्ष संध्यांश के होते हैं। त्रेता युग में तीस हजार वर्ष, द्वापर में दो हजार वर्ष और कलियुग में एक हजार वर्ष होते हैं। चारों युगों के एक हजार वर्ष बीतने पर एक कल्प पूरा होता है। इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वंतर होता है। ब्रह्माजी का एक दिन एक कल्प के बराबर होता है। आठ हजार वर्षों का एक वर्ष और आठ हजार वर्षों का एक युग होता है। हजारों वर्षों का एक सवन बनता है। ब्रह्माजी की आयु तीस हजार सवन का समय बीतने पर पूरी हो जाएगी। इस प्रकार, ब्रह्माजी की पूरी आयु श्रीहरि विष्णु के एक दिन के बराबर है। श्रीहरि विष्णु की आयु रुद्र के एक दिन के बराबर मानी गई है। रुद्र की आयु पूरी होने पर ही काल की गणना पूरी होती है। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की कृपा से ही पांच लाख चालीस हजार वर्षों की उनकी आयु में सृष्टि का आरंभ से अंत हो जाता है परंतु भगवान शिव अविनाशी हैं। काल उनको अपने वश में नहीं कर सकता। ईश्वर का एक दिन सृष्टि की उत्पत्ति तथा रात उसका संहार होती है।

नवां अध्याय

प्रलयकर्ता का वर्णन

वायुदेव बोले—ऋषिगण! सबसे पहले परब्रह्म से शक्ति उत्पन्न हुई। वह शक्ति माया कहलाई और उससे ही प्रकृति पैदा हुई। भगवान शिव की ही प्रेरणा से यह सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टि की उत्पत्ति अनुलोम और वृतिलोम से इसका नाश होता है। यह जगत पांच कलाओं से पूर्ण एवं अप्रकट कारण रूप है। इसके मध्य में आत्मा अनुष्ठित है।

त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव महादेव शिव ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर और अनंत हैं। वे सदाशिव ही सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं। सृष्टि के आरंभ से समाप्त होने तक ब्रह्माजी के सौ वर्ष पूरे होते हैं। ब्रह्माजी की आयु के दो भाग प्रथम परिद्ध और द्वितीय परिद्ध हैं। इनकी समाप्ति पर ब्रह्माजी की आयु पूरी हो जाती है। उस समय अव्यक्त आत्मा अपने मध्य कार्य को ग्रहण कर लेती है। अव्यक्त में समावेश होने पर उत्पन्न विकार का संहार करने के लिए प्रधान तथा पुरुष धर्म सहित रहते हैं।

सत्वगुण एवं तमोगुण से ओत-प्रोत दोनों प्रकृति पुरुष व्याप्त हैं। जब ये दोनों गुणों में समान हो जाते हैं तो अंधकार के कारण अलग नहीं हो पाते। तब शांत वायु द्वारा निश्चल होता है। अद्वितीय रूपधारी महेश्वर अपनी माहेश्वर रूप रात्रि का सेवन करते हैं। प्रातःकाल में महेश्वर अपनी योग शक्ति द्वारा प्रकृति पुरुष में प्रविष्ट हो जाते हैं। तब वे दोनों में क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं। तब उनकी आज्ञा से चराचर जगत में सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

दसवां अध्याय

सृष्टि रचना वर्णन

सर्वप्रथम ईश्वर की प्रेरणा से पुरुष रूप में अधिष्ठित अव्यक्त, बुद्धि व विकार उत्पन्न हुए। उसके पश्चात सर्वरूप रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा नामक तीन देवताओं की उत्पत्ति हुई। इनका मुख्य कार्य सृष्टि का सृजन, पालन और संहार है। ये ईश्वरत्व युक्त हैं। एक कल्प समाप्त होने पर जब दूसरा कल्प आरंभ हुआ तब सर्वेश्वर शिव ने सबको सृष्टि के कार्य सौंपे।

ये तीनों देवता एक-दूसरे से पैदा होकर एक-दूसरे को धारण करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र एक-दूसरे का अनुसरण एवं प्रशंसा करते हैं। प्रधान से प्रथम वृद्धि, ख्याति, बुद्धि एवं महत्व पैदा हुए। क्षोभ से तीन प्रकार के अहंकार उत्पन्न हुए। अहंकार से पांच महाभूत तन्मात्रा इंद्रियां पैदा हुईं। सत्वगुण से सात्विक तत्व की उत्पत्ति हुई। तमोगुण अहंकार पांच महाभूत पंचतन्मात्रा से उत्पन्न ग्यारहवां मन गुण से दो प्रकार का होता है। प्राणियों में दो प्रकार के गुण होते हैं। समस्त प्राणियों में आदि भूत होता है। उससे आकाश व आकाश से स्पर्श गुण की उत्पत्ति होती है। स्पर्श गुण से वायु, वायु से रूप गुण, रूप से तेज, तेज से रस गुण, रस से गंध गुण व गंध से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। फिर इन पंचमहाभूतों से सारा संसार निर्मित होता है।

महदादिक से एक विशेष अंड की उत्पत्ति होती है। तब ब्रह्म उस अंड में वृद्धि पाकर ब्रह्मा नाम से क्षेत्रज्ञ हो जाता है। यही सर्वप्रथम शरीरधारी पुरुष है। ये तीनों गुणों को अपने अधीन रखते हैं। इन्हीं तीन गुणों के कारण वे अपने शरीर के तीन विभाग कर देते हैं। सृष्टि कार्य में ब्रह्मा, पालन में विष्णु एवं संहार कार्य में रुद्र कार्य करते हैं। उस विराट नायक का गर्भ बंधन सुमेरु पर्वत से होता है। समुद्र का जल उसका गर्भाशय है एवं इस अंड में लोक निवास करते हैं। इन लोकों में सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, वायु का निवास है। जल इस अंडे को ढक कर रखता है। जल से दस गुना तेज, तेज से दस गुना वायु, वायु से दस गुना आकाश उस आदिभूत को ढककर रखता है। फिर महतत्वादि, महतत्वादि को प्रकृति चारों ओर से ढके रहती है। इन सात आवरणों में अंड रहता है।

इस प्रकार ये आठ प्रकृतियां हैं। अव्यक्त द्वारा ही संपूर्ण संसार निर्मित हुआ है और उसी में विलय भी हो जाता है। काल के अधीन गुण भी सम और विषम होते हैं। गुणों की कमी अथवा विशेषता होने पर सृष्टि की रचना होती है और इनका समानत्व होने पर प्रलय हो जाता है। ब्रह्मा की यही योनि है और यह अंड ही ब्रह्मा का निश्चयात्मक क्षेत्र है। प्रकृति सर्वगामिनी है जिसमें सहस्र अंड रहते हैं। उन अंडों में चतुर्मुख विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र को प्रकृति रचती है। ये तीनों शिवजी की समीपता पाकर स्थिर रहते हैं। व्यक्त से अव्यक्त, अव्यक्त से अंड और अंड से ब्रह्मा उत्पन्न होकर संपूर्ण लोक की रचना करते हैं। सृष्टि की रचना और प्रलय काल में उसका नाश तो परमेश्वर की लीला है।

ग्यारहवां अध्याय

सृष्टि आरंभ का वर्णन

ऋषिगण बोले—हे वायुदेव! अब आप हम पर कृपा करके हमें मन्वंतर, कल्प व प्रति सर्ग के बारे में बताइए। ऋषिगणों की प्रार्थना सुनकर वायुदेव बोले—सर्वप्रथम ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और उनके एक दिन में चौदह मन्वंतर पूरे हो जाते हैं। मन्वंतर असंख्य हैं। इस समय वराह कल्प है जिसमें चौदह मन्वंतर हैं। इनमें सात को स्वायंभुव और सात को सावर्णिक नाम से जाना जाता है।

प्रथम कल्प की समाप्ति पर बहुत प्रलयकारी भयंकर हवा चली जिसने वृक्षों को उनके स्थानों से उखाड़ फेंका। उस समय तीनों देवताओं के बीच में अग्नि देवता प्रकट हुए। उन्होंने अग्नि से सबकुछ जला दिया। तत्पश्चात जले हुए पृथ्वी के भाग को वर्षा के जल में डुबो दिया। जब ब्रह्माजी ने देखा कि संसार पानी में डूब गया है और संपूर्ण ब्रह्माण्ड नष्ट हो गया है। चारों ओर अथाह जल दिखाई पड़ रहा है। तब वे भी सुखपूर्वक जल में सो गए।

जब सृष्टि का आदिकाल होता है, उस समय श्रुतियां ईश्वर को जगाती हैं। तब योगनिद्रा में सोते हुए त्रिदिशाधिपति ब्रह्मा रूप परमेश्वर शिव की सब देवता हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए उनसे जागने की प्रार्थना करते हैं। उस समय सबकी प्रार्थना और स्तुति से जागकर परमेश्वर ने योगनिद्रा का त्याग किया और जल शय्या पर बैठकर चारों ओर देखने लगे। जब उन्हें पृथ्वी के जल में डूबने के बारे में ज्ञात हुआ तब उन्होंने वराह रूप का स्मरण किया।

फिर वराह रूप धारण करके उन्होंने समुद्र को झकझोरा और पृथ्वी को वापस लाने के लिए जल के बीच से अंदर चले गए। यह देखकर प्रसन्न देवता उन पर फूलों की वर्षा करने लगे।

बारहवां अध्याय

सृष्टि वर्णन

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! ब्रह्माजी को सृष्टि की चिंता हुई और तपोमय मोह पैदा होने से अंधेरा छा गया। उस समय आत्मा वाली सृष्टि पैदा हुई। पर ऐसी सृष्टि देखकर ब्रह्माजी व्याकुल हो गए और उन्होंने दूसरी सृष्टि की रचना की। यह सृष्टि पक्षियों की थी और पैदा होते ही कुमार्ग पर पड़ गई। तब ब्रह्माजी ने तीसरी बार सात्विक अर्थात देवताओं की सृष्टि की रचना की परंतु इस सृष्टि से भी ब्रह्माजी को संतोष नहीं हुआ तब उन्होंने मानव सृष्टि का निर्माण किया। यह सृष्टि सुंदर और रजोगुण वाली थी।

ब्रह्माजी द्वारा रचित प्रथम सृष्टि महत्, दूसरी भूत सृष्टि, तीसरी वैकारिक इंद्रिय प्राकृतिक सृष्टि कहलाई। चौथी सृष्टि मुख्य, पांचवीं वक्र स्रोत, छठी ऊर्ध्व स्रोत से देव सृष्टि, सातवीं मानव सृष्टि, आठवीं सृष्टि अनुग्रह वाली, नौवीं कुमार सृष्टि कहलाई। सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार तथा ऋभु मानस पुत्र पैदा किए। ये सभी योगमार्ग गामी हुए। इस प्रकार, जब सृष्टि की वृद्धि न हुई तब दुखी होकर ब्रह्माजी ने तपस्या करनी आरंभ कर दी परंतु जब बहुत समय बीत जाने पर भी कोई फल न मिला तब ब्रह्माजी क्रोधित हो गए। क्रोधाधिक्य के कारण उनकी आंखों में आंसू आ गए, जिससे भूत-प्रेत पैदा होने लगे।

यह सब देखकर दुखी ब्रह्माजी ने देह त्याग दी। तब ब्रह्माजी को प्रसन्न करने हेतु भगवान रुद्र उनके मुख से पैदा हुए। भगवान रुद्र ने अपने शरीर से ग्यारह स्वरूप पैदा कर दिए और उन्हें प्रजा रचने की आज्ञा दी। यह सुनकर सभी रुद्र रोते हुए वहां से भागने लगे। तत्पश्चात महेश्वर ने ब्रह्माजी को पुनर्जीवित कर दिया। ब्रह्माजी ने रुद्र से प्रश्न पूछा कि आप कौन हैं? तब रुद्र बोले—मैं ही परमब्रह्म परमेश्वर हूं और तुम्हारी इस सृष्टि में तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्मा हूं। अब आप अपनी इस सृष्टि की रचना को पूर्ण कीजिए।

यह सुनकर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए, वे शिव नामाष्टक का जाप करते हुए रुद्र की स्तुति करने लगे और प्रार्थना करने लगे कि सृष्टि निर्माण के कार्य में आप मेरे सहायक बनें। जब रुद्रदेव ने अपनी सहमति दे दी तब ब्रह्माजी ने अपने मन में मरीचि आदि बारह पुत्र पैदा किए। इनमें देवताओं और क्रियात्मक महर्षियों के बारह वंश मिले। तत्पश्चात ब्रह्मा के मुख से देवता, गले से पितर, जांघों से दैत्य, गर्भ से मानव, उपस्थेंद्रिय से राक्षस पैदा हुए। ये निशाचर राक्षस बलवान थे। फिर यज्ञ, भूत और गंधर्व की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी की दोनों कांखों से पक्षी, वक्ष से अन्य पक्षी, मुख से बकरी, पांव से घोड़े, हाथी, शलभ, मृग, ऊंट, खच्चर, नेवले आदि ने जन्म लिया।

ब्रह्माजी के पूर्व मुख से गायत्री, दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पश्चिम मुख से सामवेद, उत्तर मुख से अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई। फिर देह द्वारा इनके अनेक भेद हो गए और ये अपने काम में लग गए। सब अपने कर्मों के अनुसार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़कर फल भोगने लगे। सभी

प्राणियों के कर्मों के अनुसार उन्हें सुख, दुख, धन, आय-व्यय, संपत्ति आदि की प्राप्ति होती है। युग एवं समय के अनुसार ही प्राणियों के गुण, कर्म व स्वभाव होते हैं।

तेरहवां अध्याय

ब्रह्मा-विष्णु की सृष्टि का वर्णन

ऋषि बोले—हे वायुदेव! सृष्टि का आरंभ होने पर पहले महेश्वर ब्रह्मा और विष्णु को उत्पन्न करते हैं। फिर अपनी लीला के अनुसार संसार की रचना करते हैं फिर प्रलय आने पर सबका विनाश कर देते हैं। इस अनुसार तो महेश्वर ही सर्वशक्तिमान हैं फिर वे ब्रह्माजी के पुत्र किस प्रकार हो सकते हैं? कृपा कर हमारे इस संदेह को दूर कीजिए।

ऋषियों के वचन सुनकर वायुदेव बोले—हे मुनियो! महेश्वर ने इस सृष्टि के निर्माण, पालन और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को उत्पन्न किया। यह सब तो उनकी लीलाएं हैं, जो कि विभिन्न कल्पों में बदलती रहती हैं। किसी कल्प में ब्रह्मा विष्णु और रुद्र को उत्पन्न करते हैं तो किसी में विष्णु ब्रह्मा और रुद्र को प्रकट करते हैं। किसी कल्प में तीनों एक-दूसरे को प्रकट करते हैं।

मेघ वाहन कल्प में श्रीहरि विष्णु ने मेघ रूप में दस हजार वर्षों तक पृथ्वी को धारण किए रखा। तब प्रसन्न होकर महेश्वर ने विष्णुजी को अव्यय शक्ति प्रदान की। यह देखकर ब्रह्माजी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। उन्होंने विष्णुजी को वहां से भेज दिया और स्वयं भगवान महेश्वर की शरण में पहुंच गए। महेश्वर को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे और बोले—प्रभु! आपने ही अपने वाम अंग से विष्णु और दक्षिण अंग से मुझ ब्रह्मा को पैदा किया है। फिर हम दोनों शक्ति और सामर्थ्य में भिन्न क्यों हैं? क्या विष्णु मुझसे अधिक आपके भक्त हैं? भगवन्! कृपा कर इस अंतर को दूर करें।

ब्रह्माजी की प्रार्थना और स्तुति से प्रसन्न होकर महेश्वर ने उन्हें विष्णुजी के समान शक्ति प्रदान कर दी। प्रसन्न होकर ब्रह्माजी विष्णुजी के पास पहुंचे। उस समय विष्णु जी क्षीर सागर में योगनिद्रा में शयन कर रहे थे। ब्रह्माजी ने उन्हें योगनिद्रा से जगाने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु वे न जागे। तब क्रोधित होकर ब्रह्माजी विष्णु जी की शय्या में चढ़कर उन्हें अपनी छाती से लगाने लगे। उसी समय विष्णुजी वहां से अंतर्धान हो गए। जब लक्ष्मीजी को विष्णुजी कहीं न दिखाई दिए तो वे भी अंतर्धान हो गईं।

तब ब्रह्माजी की भृकुटियों के मध्य से विष्णुजी प्रकट हो गए और फिर उनमें द्वंद्व युद्ध होने लगा। यह सब भगवान शिव भी बिना प्रकट हुए देखने लगे परंतु जब ब्रह्मा-विष्णु का युद्ध किसी भी तरह समाप्त नहीं हुआ तब वे उन दोनों के मध्य प्रकट हो गए। शिवजी की कृपा से उन दोनों के क्रोध का निवारण हो गया।

चौदहवां अध्याय

रुद्र की उत्पत्ति

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! जब ब्रह्माजी ने विभिन्न कल्पों में यह देखा कि मेरे द्वारा रचित इस सृष्टि का विकास नहीं हो रहा है अर्थात वह बढ़ नहीं रही है, तब वे बहुत दुखी हुए। तब उनका दुख मिटाने के लिए महेश्वर की इच्छा से काल स्वरूप रुद्र भगवान ब्रह्मा के पुत्र के रूप में जन्मे। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर उन्होंने ब्रह्माजी द्वारा रचित इस सृष्टि का विस्तार करना चाहा। ऐसा सोचकर रुद्रदेव ने अपने जटाधारी स्वरूप जैसे अनेक रुद्र प्रकट कर दिए। वे संख्या में अधिक होने के कारण पूरे विश्व पर छा गए। वे सभी रूप में बहुत भयानक थे।

इन भयानक स्वरूप वाले रुद्रों का रूप देखकर ब्रह्माजी बहुत चिंतित हो गए और हाथ जोड़कर महेश्वर से बोले—हे देवाधिदेव! ये आप क्या कर रहे हैं? हमें भयानक सृष्टि की रचना नहीं करनी है। हमें तो साधारण प्रजा की रचना करनी है। जो पैदा होती रहे और मरती भी रहे।

ब्रह्माजी के इन वचनों को सुनकर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव हंसने लगे और बोले—ब्रह्माजी! मैं तो ऐसी ही सृष्टि की रचना कर सकता हूं। यदि तुम्हें यह नापसंद है तो तुम स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार प्रजा की रचना करो। यह कहकर कल्याणकारी भगवान शिव सृष्टि की रचना के कार्य से मुक्त होकर वहां से चले गए।

पंद्रहवां अध्याय

शिव-शिवा की स्तुति

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! शिवजी के वहां से चले जाने के पश्चात ब्रह्माजी ने स्वयं सृष्टि की रचना की परंतु उस सृष्टि में प्रजा की वृद्धि नहीं हो रही थी। सृष्टि में वृद्धि न होती हुई देखकर ब्रह्माजी भी बहुत दुखी हुए। तब वे अपने आराध्य भगवान शिव और देवी शिवा की तपस्या करने लगे।

ब्रह्माजी की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें दर्शन दिए। ब्रह्माजी ने उन्हें सृष्टि में प्रजा की वृद्धि न होने के विषय में बताया। भगवान शिव और देवी पार्वती ने मिलकर उनकी समस्या का निवारण किया। शिवजी ने उन्हें अपने अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के दर्शन कराए। भगवान शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के दर्शन कर ब्रह्माजी की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। वे हाथ जोड़कर भगवान शिव-शिवा की स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी बोले—हे देवाधिदेव भगवान शिव! हे जगदंबा मां पार्वती! आप अमोघ लीलाएं करने वाले हैं। आपका वैभव निराला है। मैं आपकी शरण में आया हूं। कृपा कर मुझ दीन पर अपनी कृपादृष्टि करें। इस प्रकार ब्रह्माजी भगवान शिव-शिवा की अनेकों स्तोत्रों से स्तुति करने लगे।

सोलहवां अध्याय

मैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! जब ब्रह्माजी ने विभिन्न स्तोत्रों से स्तुति की और भगवान शिव-शिवा को प्रसन्न कर लिया तब शिवजी बोले—ब्रह्मदेव! मैं आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण करूंगा। तब शिवजी ने अर्द्धनारीश्वर स्वरूप से देवी महेश्वरी को अलग कर दिया। साक्षात देवी जगदंबा को अपने सामने पाकर ब्रह्माजी ने उनसे प्रार्थना की।

ब्रह्माजी बोले—हे देवी भगवती! मैंने मन द्वारा देवताओं और ऋषियों की रचना की परंतु मेरे द्वारा रचित सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है। इसलिए मैं मैथुनी सृष्टि रचना चाहता हूं। यह तभी संभव हो सकता है, जब सृष्टि में नारी का भी अंश हो। मुझ पर कृपा कर आप मेरे पुत्र प्रजापति दक्ष की पुत्री के रूप में जन्म लें और सृष्टि को वृद्धि प्रदान करें।

ब्रह्माजी की प्रार्थना से संतुष्ट होकर देवी ने अपनी भृकुटियों के मध्य से एक शक्ति उत्पन्न की। देवी ने उस शक्ति को ब्रह्माजी की इच्छा पूरी करने का आदेश प्रदान किया और स्वयं महेश्वर जी में समा गईं। तब भगवान महेश्वर अंतर्धान हो गए। इस प्रकार ब्रह्माजी को ब्रह्मरूप शक्ति प्राप्त हुई। उस शक्ति ने ब्रह्माजी की इच्छा के अनुसार दक्ष के घर जन्म लिया। तभी से मैथुनी सृष्टि का आरंभ हुआ।

सत्रहवां अध्याय

मनु की सृष्टि का वर्णन

वायुदेव बोले—ऋषिगण! भगवान महेश्वर की कृपा से ब्रह्माजी ने आधे शरीर से शतरूप नामक नारी उत्पन्न की और आधे से भुव मनु को पैदा किया। उसी कन्या ने यशस्वी मनु को पति के रूप में पाया। इन्होंने मैथुन द्वारा प्रियव्रत, उत्तानपाद नामक पुत्र एवं आक्रूति, देवहूति, प्रसूति नामक कन्याएं पैदा कीं। आक्रूति और रुचि के दक्षिण और यज्ञपुरुष नामक दो पुत्र पैदा हुए और प्रसूति व दक्ष की चौबीस कन्याएं हुईं। जिनमें तेरह कन्याओं का विवाह धर्म के साथ हुआ तथा अन्य का विवाह दशा, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, कृतु, पुलस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ एवं अग्नि के साथ हुआ।

ऊर्जा तीन पितरों को समर्पित हुई। धर्म को तेरह पुत्रों की प्राप्ति हुई। दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में सती का जन्म हुआ और उसने देवाधिदेव भगवान शिव को पति रूप में पाया। अपने पिता के यज्ञ में पति का निरादर देखकर उसने योगाग्नि में अपने को भस्म कर लिया। फिर पुनः हिमालय की पुत्री के रूप में जन्म लेकर शिवजी को प्राप्त किया। भृगु ऋषि के दो पुत्र हुए व उन दोनों के हजारों पुत्र हुए। ये सभी भार्गव वंशी कहलाए। ऋषि मरीचि को पौर्णमास नामक पुत्र की प्राप्ति हुई और इनका बहुत बड़ा वंश हुआ। इसी वंश में कश्यप ऋषि पैदा हुए। अंगिरा ऋषि के दो पुत्र व चार पुत्रियां हुईं और उनकी बहुत सी संतानें हुईं। पुलस्त्य के अग्नि पुत्र पैदा हुए और इसी वंश की संतानें पौलस्त्य कहलाईं। इसी प्रकार कर्दम, वालखिल्य, अत्रि एवं मुनि वशिष्ठ के सैकड़ों अरब संख्या में संतानें हुईं।

ब्रह्माजी के मानस पुत्र रुद्र के पुत्र अग्नि को पावन, पवमान, शुचि पुत्र हुए और इनके उनचास पुत्र हुए। ये नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य होने के कारण रुद्र परायण हैं। इसलिए अग्नि में होम की गई वस्तु रुद्र देव को प्राप्त होती है। पितृ वंश के वसंत आदि छः ऋषि पितरों के स्थान हैं। अग्निस्वंत, अज्यवान और यज्वान बर्हिषद है। स्वधा से मैना नामक पुत्री हुई, जिसका विवाह गिरिराज हिमालय से हुआ। उनके मैनाक और क्रौंच नामक दो पुत्र एवं उमा एवं पतित पावनी गंगा नामक दो पुत्रियां हुईं। भगवान रुद्र के शाप से चाक्षुष मन्वंतर में दक्ष प्रजापति इनके पुत्र हुए।

इस प्रकार मैंने धर्म आदि के वंश का वर्णन आपसे संक्षेप में किया।

अट्ठारहवां अध्याय

दक्ष का शाप

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! एक बार की बात है सभी देवता और ऋषि-मुनि भगवान शिव के दर्शनों के लिए कैलाश पर्वत पर गए। उस समय देवाधिदेव महादेव जी देवी सती के साथ सिंहासन पर विराजमान थे। उसी समय दक्ष भी अपनी पुत्री से मिलने के लिए कैलाश पर्वत पर पहुंचे परंतु देवी सती को अपने पिता के आगमन का ध्यान नहीं रहा। इसी कारण दक्ष क्रोधित हो उठे और उन्होंने महायज्ञ में अपनी पुत्री सती और भगवान शिव को आमंत्रित नहीं किया।

देवर्षि नारद घूमते-घूमते कैलाश पर पहुंचे और देवी सती को उनके पिता के यज्ञ के विषय में बताया। उन्होंने देवी सती को यह भी कहा कि दक्ष ने इस यज्ञ में सभी ऋषि-मुनियों एवं देवताओं को आमंत्रित किया, परंतु आपको और भगवान शिव को नहीं बुलाया है।

यह सुनकर देवी सती को बहुत दुख हुआ। उन्होंने भगवान शिव से अपने पिता द्वारा किए जा रहे यज्ञ में जाने की आज्ञा मांगी। शिव ने सती को बहुत समझाया कि बिना बुलाए उनका अपने पिता के घर जाना भी व्यवहार की दृष्टि से उचित नहीं है। लेकिन सती ने तो वहां जाना ठान लिया था। वह शिव का अपमान करने के लिए अपने पिता को भी दंडित करना चाहती थी। तब वे अपने पति की आज्ञा लेकर नंदी पर सवार होकर अपने पिता के यज्ञ में पहुंचीं। यज्ञ में सती को देखकर उसके पिता को बहुत क्रोध आया। सती बोलीं—हे पिताजी! मैं आपकी कन्या हूं। आपने मुझे यज्ञ में क्यों नहीं बुलाया? मेरे पति शिव तो सबके स्वामी हैं, यह चराचर जगत उन्हीं की अनुकंपा से चलता है, उन्हें तो आपने पूछा भी नहीं। आपने उनका अपमान करके अच्छा नहीं किया।

देवी सती के वचन सुनकर दक्ष अत्यंत क्रोधित होकर बोले—मेरी अन्य सभी कन्याएं व उनके पति सुपात्र एवं पूजनीय हैं। सब देवता तथा ऋषि-मुनि भी पूजनीय हैं। इसलिए वे सब यज्ञ में आमंत्रित किए गए हैं परंतु तुम और तुम्हारा पति इस यज्ञ में आने योग्य नहीं हो।

अपने पिता के ऐसे वचन सुनकर सती को बहुत दुख हुआ और वे बोलीं—शिव निंदा सुनना शिवद्रोह करना है। मैं अपने पति की निंदा नहीं सुन सकती। यह कहकर उन्होंने योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया।

उधर, जब शिवजी को पता चला कि उनकी पत्नी का यज्ञ में अपमान हुआ है, तब उन्होंने दक्ष को शाप दे दिया। उसी शाप के फलस्वरूप चाक्षुष मन्वंतर में दक्ष प्रचेता के पुत्र के रूप में जन्मे और दक्ष के अन्य जामाता वैवस्वत मन्वंतर में भी वरुण देहधारी के रूप में पैदा हुए।

उन्नीसवां अध्याय

वीरगण का यज्ञ में जाना

ऋषिगण बोले—हे वायुदेव! प्रजापति दक्ष तो धर्म के कार्य में लगकर महायज्ञ कर रहे थे। फिर भगवान शिव ने उनका यज्ञ क्यों भंग किया? कृपा कर इस कथा को बताइए। तब ऋषिगणों की जिज्ञासा शांत करने के लिए वायुदेव बोले—हे ऋषियो! गिरिराज हिमालय की तपस्या के फलस्वरूप देवी जगदंबा ने उनके घर में जन्म लिया और श्री पार्वती का विवाह भगवान शिव से हो गया।

प्रजापति दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में वसु, मरुद्गण, अश्विनी कुमार, पितर, आदित्य, विष्णु आदि सभी देवता एवं ऋषि-मुनियों को आमंत्रित किया परंतु भगवान शिव को नहीं बुलाया। जब परम शिव भक्त दधीचि ने उस यज्ञ में शिवजी को उपस्थित नहीं देखा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि शिवजी को निमंत्रित नहीं किया गया है। वे क्रोधित होकर बोले—इस यज्ञ में जगत के स्वामी भगवान शिव को क्यों आमंत्रित नहीं किया गया? वह पूजनीयों के भी पूजनीय हैं। फिर तुम उनका पूजन क्यों नहीं कर रहे हो?

दधीचि ऋषि के इन वचनों को सुनकर दक्ष बोले—हे ब्रह्मर्षे! यहां ग्यारह रुद्र तो उपस्थित हैं और अन्य रुद्रों को हम नहीं जानते। इस यज्ञ के अधिष्ठाता श्रीहरि विष्णु हैं। तब क्रोधित दधीचि यज्ञ को छोड़कर चले गए। उधर भगवान शिव ने यह जानकर कि उनकी प्राणवल्लभा का यज्ञ में अपमान हो रहा है, वीरभद्र नामक गण को उत्पन्न किया। वीरभद्र हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करते हुए बोला—हे देवाधिदेव! मेरे लिए क्या आज्ञा है?

भगवान शिव ने उसे आदेश देते हुए कहा—हे वीरभद्र! तुम अपने योद्धाओं के साथ प्रजापति दक्ष के यज्ञ में जाओ और यज्ञ का विध्वंस कर दो। फिर दक्ष को भी नष्ट कर देना। देवाधिदेव की यह आज्ञा पाकर वीरभद्र ने अपने शरीर से हजारों-करोड़ों गण उत्पन्न किए। फिर आनंदपूर्वक यज्ञ का विध्वंस करने के लिए सेना सहित चल पड़ा।

बीसवां अध्याय

दक्ष-यज्ञ का वर्णन

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! वीरभद्र अपने गणों के साथ प्रजापति दक्ष के यज्ञ में पहुंच गए। उस समय वेद मंत्रों के घोष से पूरा यज्ञ मंडप गूंज रहा था। वहां पहुंचकर वीरभद्र ने सिंह गर्जना की। वीरभद्र की इस भीषण गर्जना से हाहाकार मच गया। देवता एवं ऋषि-मुनि अपनी प्राण रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे। सारी भीड़ तितर-बितर हो गई परंतु दक्ष पूर्ववत ही यज्ञ में बैठा रहा। वीरभद्र जब प्रजापति दक्ष के सामने पहुंचा तो वह क्रोध भरे स्वर में बोले—तुम कौन हो? और यहां पर क्यों आए हो? यहां से शीघ्र ही चले जाओ अन्यथा अच्छा नहीं होगा।

प्रजापति दक्ष के वचन सुनकर वीरभद्र बोला—ऐ मूर्ख दक्ष! तुम्हें अत्यधिक विद्वान मानते हैं। तुम वेद-शास्त्र के ज्ञाता हो। लेकिन मुझे तो ऐसा नहीं लगता। मुझे तो तुम अहंकार का मूर्तरूप दिखाई दे रहे हो। इस अहंकार ने तुम्हारी सोचने-विचारने की शक्ति को हर लिया है। मैं तुम्हारी उसी बुद्धि को सही करने आया हूं। जिस मंत्र द्वारा तुमने देवाधिदेव, सर्वेश्वर, कल्याणकर्ता भगवान शिव का पूजन नहीं किया, अब उसका उच्चारण बार-बार क्यों कर रहे हो? फिर वह फुफकारता हुआ विष्णुजी एवं अन्य देवताओं की ओर मुख करके बोला—क्या तुम देवताओं की भी मति मारी गई है या तुम्हें भी अपने बल का अभिमान हो गया है, जो त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का अनादर देखकर भी चुपचाप मूकदर्शक बने खड़े हो। दक्ष को समझाने की जगह तुम भी उसकी 'हां' में 'हां' मिला रहे हो। यहां मैं तुम्हारा घमंड नष्ट करने के लिए ही आया हूं।

यह कहकर वीरभद्र ने अपनी आंखों से अग्नि प्रकट की, जिससे यज्ञमंडप जलने लगा। उसने वहां उपस्थित सभी यज्ञकर्ताओं को रस्सी से बांध दिया। यज्ञ पात्र तोड़ डाले। वीरभद्र के अन्य गण देवताओं को मारने लगे और यज्ञ भूमि में उपद्रव करने लगे उन्होंने पूरा यज्ञ तहस-नहस कर दिया। सभी अपनी प्राण रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे।

इक्कीसवां अध्याय

श्रीहरि विष्णु एवं वीरभद्र का युद्ध

वायुदेव बोले—हे मुनियो! वीरभद्र एवं उनके गणों का उपद्रव देखकर सभी देवता भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे परंतु वीरभद्र का संकेत समझकर उनके गणों ने सभी को चारों ओर से घेर लिया। सब भागने में असमर्थ थे। वीरभद्र हाथों में त्रिशूल लेकर सब देवताओं पर प्रहार कर रहे थे। वीरभद्र ने सरस्वती की नासिका, अदिति का हाथ, अग्नि की बाहु, भगदेव की आंखें, पूषा के दांत तोड़कर घायल कर दिया।

इस प्रकार का दृश्य देखकर सभी भयभीत थे। दक्ष ने श्रीहरि विष्णु से यज्ञ की रक्षा करने की प्रार्थना की। तब भगवान विष्णु वीरभद्र के साथ युद्ध करने के लिए आगे आए। तभी वीरभद्र के सामने एक दिव्य रथ आ गया। उसी समय शंख बजने लगे। युद्ध का आरंभ होने पर सब देवता एवं ऋषिगण वहां वीरभद्र और श्रीहरि विष्णु का युद्ध देखने लगे। श्रीहरि ने शार्गं धनुष पर बाण चढ़ाकर वीरभद्र पर प्रहार किया तो वीरभद्र ने भी अपने धनुष पर टंकार की। दोनों ओर से भयानक बाण वर्षा होने लगी।

वीरभद्र द्वारा चलाए गए एक भयानक तीर ने श्रीहरि विष्णु को मूर्च्छित कर दिया। वे पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर पश्चात होश में आने पर वे पुनः युद्ध करने लगे। वीरभद्र ने विष्णुजी के सभी वारों को बेकार कर दिया। फिर विष्णुजी व उनके वाहन गरुड़ को भी घायल कर दिया। तब क्रोधित होकर विष्णुजी ने सुदर्शन चक्र उठा लिया और उसे वीरभद्र पर चलाया, परंतु शिवजी की कृपा से वह चल ही नहीं पाया।

बाईसवां अध्याय

देवताओं पर शिव-कृपा

तत्पश्चात वीरभद्र के अन्य गणों ने भी सभी देवताओं को बंदी बना लिया। तब ब्रह्माजी वीरभद्र से प्रार्थना करने लगे कि वे देवताओं को दण्ड न दें। तब वीरभद्र उन सब देवताओं को बांधकर शिवजी के पास ले गए। शिवजी के समक्ष पहुंचकर श्री विष्णु बोले—हे देवाधिदेव! आप सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के स्वामी हैं। सब विद्याओं के भंडार हैं और अभिमानियों के अभिमान का नाश करने वाले हैं। आप ही दुखियों के दुखों को दूर करने वाले हैं।

ब्रह्माजी बोले—हे कृपानिधान! आपके भक्त वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ पूरा तहस-नहस कर दिया है। उसने अनेक देवताओं को घायल कर दिया है। वीरभद्र ने प्रजापति दक्ष को भी मार दिया है। प्रभु! हम सब हाथ जोड़कर आपकी शरण में आए हैं, हम सब पर कृपा करें। हमारे दुखों को दूर करें। हमारे अपराध को कृपा करके क्षमा करिए। ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने उन पर कृपा की।

शिवजी ने दक्ष के सिर पर बकरे का सिर लगाकर उसे पुनर्जीवित कर दिया। जीवित होने पर दक्ष शिवजी से क्षमा याचना करने लगा और उनकी स्तुति करने लगा। तत्पश्चात त्रिलोकीनाथ शिव की कृपा से सभी देवताओं के सारे घाव सही हो गए और जो देवगण मर गए थे वे पुनर्जीवित हो गए। सब देवता सर्वेश्वर शिव की महिमा का गान करते हुए वापस लौट गए।

तेईसवां अध्याय

मंदराचल पर निवास

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! एक बार की बात है, मंदराचल पर्वत ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या की। प्रसन्न होकर भगवान शिव ने देवी पार्वती सहित वहां निवास किया। उस समय मंदराचल पर्वत अनेक मणियों से चमकता हुआ अनेक गुफाओं से शोभायमान हो रहा था। शिवजी पार्वती जी के साथ वहां अनेक लीलाएं रचने लगे। इस तरह बहुत समय बीत गया।

दूसरी ओर संसार में प्रजा का विकास तेजी से हो रहा था। उसी समय शुंभ और निशुंभ नाम के दो दानवों ने ब्रह्माजी की कठोर तपस्या करके उनसे अवध्य रहने का वर मांग लिया था। ब्रह्माजी ने वर देते हुए कहा कि यदि तुम जगदंबा के अंश से उत्पन्न कन्या को पाने की अभिलाषा करोगे तो निश्चय ही तुम्हारा विनाश हो जाएगा। तब उन्हें वर देकर ब्रह्माजी अंतर्धान हो गए। वरदान पाकर शुंभ-निशुंभ बलवान होने के साथ-साथ अभिमानी भी हो गए थे। उन्होंने देवताओं पर आक्रमण करके देवताओं को हरा दिया और इंद्र के स्वर्गासन पर अपना कब्जा कर लिया। दोनों ने धर्म का नाश करना शुरू कर दिया। पूरा संसार उनके अत्याचारों से दुखी हो रहा था।

सब देवता दुखी होकर भगवान शिव की शरण में गए। तब शिवजी ने उन्हें आश्वासन देकर भेज दिया। इस कार्य को करने के लिए देवी पार्वती को क्रुद्ध करना आवश्यक था। इसलिए शिवजी ने स्त्रियों की बुराई करनी शुरू कर दी। तब क्रोधित होकर देवी बोली—हे स्वामी! आपको मेरा सांवला रंग नहीं सुहाता है इसलिए आप ऐसी बातें कर रहे हैं। अब मैं जा रही हूं और ब्रह्माजी की तपस्या करूंगी। यह कहकर क्रोधित देवी पार्वती वहां से चली गईं।

चौबीसवां अध्याय

कालिका उत्पत्ति

वायुदेव बोले—इस प्रकार क्रोधित होकर देवी वहां से चली गईं। फिर वे अपने माता-पिता से मिलने के लिए हिमालय पहुंचीं और फिर उनका आशीर्वाद लेकर तपस्या करने के लिए चली गईं। परम दिव्य और मनोरम स्थान देखकर वे तपस्या में बैठ गईं। वे प्रतिदिन स्नान करके धूप, दीप आदि से पूजन करतीं और मन में ब्रह्माजी का स्मरण करते हुए उनकी आराधना करनी आरंभ कर दी।

एक दिन भगवती तपस्या में लीन थीं, उसी समय एक उग्र सिंह वहां आ गया परंतु देवी के तेज के प्रभाव से वह आगे न बढ़ सका। वह दिन-रात मूर्ति बनकर वहीं देवी के सामने खड़ा रहा। उसे देखकर देवी ने सोचा कि यज्ञ सिंह हिंसक जानवरों से मेरी रक्षा करने के लिए यहां खड़ा है। देवी की कृपादृष्टि से वह सिंह पापों से मुक्त हो गया और देवी की सेवा में लग गया।

दूसरी ओर सभी देवता दैत्यों द्वारा किए जा रहे उपद्रवों से बहुत दुखी थे। बहुत दुखी होकर वे सभी ब्रह्माजी की शरण में गए और उन्हें अपना दुखड़ा सुनाया। देवताओं को सहायता का आश्वासन देकर ब्रह्माजी देवी के समक्ष पहुंचे। देवी कठोर तपस्या में लीन थीं। ब्रह्माजी को इस प्रकार सामने पाकर देवी ने प्रणाम किया। तब ब्रह्माजी बोले—हे भगवती! आप तो सबका कल्याण करने वाली तथा सभी तपस्याओं का फल देने वाली हैं। फिर आप इस तरह कठोर तपस्या क्यों कर रही हैं?

ब्रह्माजी के पूछे प्रश्न का उत्तर देते हुए देवी बोलीं—हे ब्रह्माजी! सृष्टि के आरंभ में आप भगवान शिव से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए आप मेरे पुत्र हैं। प्रजा वृद्धि के लिए भगवान रुद्र आपके मस्तक से प्रकट हुए इसलिए आप मेरे ससुर हैं। अपना दुख आपको बताकर मैं उससे मुक्त होना चाहती हूं। मैं अपना काले रंग का शरीर त्यागकर गोरी बनना चाहती हूं। तब ब्रह्माजी ने कहा—हे देवी! जैसा आप चाहती हैं वैसा ही होगा। आप अपने काले वर्ण का त्याग कर गौरवर्ण धारण करें। देवी आपका वही काला वर्ण दैत्यराज शुंभ-निशुंभ का वध करके इस संसार को उनके पापों से मुक्त करेगा।

तभी देवी ने काले रंग का त्याग कर गोरा रंग धारण कर लिया। भगवती के काले वर्ण से मेघों के समान श्याम वर्णी कौशिकी नामक कन्या उत्पन्न हुई। वह योगिनी अष्टभुजा वाली तथा शंख, चक्र एवं त्रिशूल आदि आयुधों से सुशोभित थी। ब्रह्माजी ने देवी कौशिकी को शुंभ-निशुंभ का वध करने के लिए शक्ति प्रदान की। तब देवी कौशिकी ब्रह्माजी व देवी को प्रणाम कर विंध्याचल पहुंचीं। उन्होंने शुंभ-निशुंभ का वध कर देवताओं को सुखी कर दिया।

पच्चीसवां अध्याय

सिंह पर दया

वायुदेव बोले—हे मुनियो! देवी ने अपने काले वर्ण को अलग किया, जिससे देवी कौशिकी की उत्पत्ति हुई। फिर वह आशीर्वाद पाकर विंध्याचल पर चली गईं। तब देवी ने ब्रह्माजी से कहा—हे ब्रह्माजी! यह सिंह मेरा परम भक्त है। इसने मेरी अन्य हिंसक जीवों से रक्षा की है। इसलिए इसे मैं अपने साथ ले जाना चाहती हूं। कृपा कर मुझे आज्ञा प्रदान करें। देवी की बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—देवी! मुझे तो यह कोई कपटी दैत्य लगता है, जो सबको धोखा देने के लिए रूप बदलकर आया है। इसलिए आप इसे यहीं छोड़ दीजिए।

ब्रह्माजी के वचन सुनकर देवी गौरी बोलीं—हे ब्रह्माजी! यह सिंह मेरी शरण में आया है और मेरी सेवा में दिन-रात लगा रहता है। इसलिए मैं इसे ऐसे नहीं छोड़ सकती। ब्रह्माजी बोले—देवी! यदि यह आपका परम भक्त है तो यह अवश्य ही निष्पाप होगा। आप जैसा उचित समझें, करें। यह कहकर ब्रह्माजी अंतर्धान हो गए और देवी अपने सिंह पर सवार होकर भगवान शिव के पास वापस लौट आईं।

छब्बीसवां अध्याय

गौरी मिलाप

वायुदेव बोले—हे ऋषियो! देवी ने वहां पहुंचकर भगवान शिव के चरणों की वंदना की। उन्हें इस प्रकार सामने पाकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने देवी को हृदय से लगा लिया। तब शिवजी बोले—हे प्राणेश्वरी! आपका और मेरा प्रेम साधारण नहीं है। हमें एक-दूसरे से विद्वेष नहीं रखना चाहिए, क्योंकि हम ही जगत के कारण और आधार हैं। हमें कभी भी अलग नहीं होना चाहिए। देवी! मुझे आपका रूप बहुत प्रिय है। आपके काले या गौर वर्ण से कुछ नहीं होता, क्योंकि मैं आपसे आत्मिक प्रेम करता हूं।

अपने स्वामी भगवान शिव के ये वचन सुनकर देवी बोलीं—हे देवाधिदेव! आपकी कृपा से मैंने अपने श्याम वर्ण से देवी कौशिकी को उत्पन्न किया। जिसने अपने बल और पराक्रम से शुंभ और निशुंभ नामक महादैत्यों का संहार किया है। उसकी आराधना से मनुष्यों को तुरंत फल की प्राप्ति होगी तथा देवता भी उसकी पूजा किया करेंगे।

भगवन्! मेरी तपस्या में सिंह ने मेरी रक्षा की जिसे मैं साथ लाई हूं और उसे अपना द्वारपाल बनाना चाहती हूं।

देवी भगवती की प्रार्थना सुनकर भगवान शिव ने सिंह को द्वारपाल नियुक्त कर दिया। देवी ने सुंदर वस्त्र आभुषणों से शृंगार करके अपने स्वामी के समीप आसन ग्रहण किया। वे भगवान शिव के साथ ऐसी सुशोभित हो रही थीं, मानो आभा चंद्र के सौंदर्य को निखार रही हो और संध्या ने सूर्य का आलिंगन कर लिया हो।

सत्ताईसवां अध्याय

सोम अमृत अग्नि का ज्ञान

वायुदेव बोले—हे ऋषिगणो! भगवान शिव का रूप तेजयुक्त होने के कारण अग्नि समान है और देवी गौरी का रूप शांत, अमृत के समान चंद्ररूप है। शांतमय इस तेज में अमृत ही अमृत है। यह विद्या एवं फल रस सभी प्राणियों में विद्यमान है। सूर्य रूप और अग्नि रूप के कारण तेज दो प्रकार का होता है। जल रूप और सोमरूप के कारण रसवृत्ति दो प्रकार की होती है। विद्युत रूप वाला तेज है और मधुरता रस है। तेज और रस सभी चराचर जीवों में होता है। अमृत की उत्पत्ति अग्नि से होती है। इसलिए सुख की कामना के लिए अग्नि में अमृत की आहुति दी जाती है। हवि के लिए अन्न होता है और अन्न वृद्धि के लिए वर्षा होती है। तभी हवि वृत्ति देने वाली कही जाती है।

अग्नि तथा अमृत संसार को धारण किए हैं। अग्नि जल कर सोमरूपी अमृत तक पहुंचाती है। इसलिए कालाग्नि नीचे जलाई जाती है और ऊपर से शक्ति सोममय अमृत टपकाती है। संसार के नीचे शक्ति है और ऊपर सदाशिव विद्यमान हैं। ये दोनों ही संसार को चलाने वाले हैं। एक बार इसी अग्नि ने संसार को जलाकर भस्म कर दिया था, इसलिए यह भस्म अग्नि वीर्य कहलाई। इस भस्म में अग्नि मंत्र बोलकर स्नान करने वाला मनुष्य सांसारिक बंधनों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

अट्ठाईसवां अध्याय

छः मार्गों का वर्णन

वायुदेव बोले—हे ऋषिगण! भगवान शिव और देवी पार्वती का रूप प्राकृतिक एवं मूर्त दो प्रकार का है। स्थूल चिंता रहित और सूक्ष्म चिंता सहित है। सब कार्यों को पूर्ण करने की शक्ति प्रकृति के पास है। इसे परमादेवी कुण्डलिनी माया कहा जाता है। यह छः मार्गों वाली है। जिनमें तीन शब्द हैं और तीन उनके अर्थ हैं। ये परा प्रकृति के भेद हैं। सांख्य योग सब कलाओं में परिपूर्ण है। छः भागों में विभक्त यह पराशक्ति भाव सत्व और शिव तत्व से व्याप्त है।

शक्ति से आरंभ करके पृथ्वी तक सभी शिव तत्व से ही उत्पन्न हुए हैं। जिस प्रकार घड़ा मिट्टी से बना होता है, उसी प्रकार हर वस्तु का निर्माण शिव तत्व से हुआ है। पांच तत्वों से शुद्ध होने पर प्राण शिवतत्व के उत्तम स्थान को पा लेता है। विद्या कला से विश्वेश्वर की शुद्धि होती है। ऊर्ध्व मार्ग से शांतिकला शुद्ध होती है। संसार का आधार रूप होकर जो शक्ति, आज्ञा, परा, शैवी, चित्ररूपा परमेश्वरी देवी है उसे त्रिलोकीनाथ भगवान शिव ने संपूर्ण जगत में स्थिर कर रखा है।

भगवान शिव पुरुष हैं और शक्ति स्त्री हैं। ये दोनों परस्पर पति-पत्नी हैं परंतु कई विद्वान इन्हें एकरूप ही मानते हैं। पराशक्ति शिवजी की आज्ञा से तीन गुण वाली है और कार्य के भेद तीन प्रकार के होते हुए छः मार्ग में विभक्त हो जाते हैं। ये शब्द व अर्थ रूप हैं तथा पूरे संसार में व्याप्त हैं।

उनतीसवां अध्याय

महेश्वर के सगुण और निर्गुण भेद

ऋषि बोले—हे वायुदेव! भगवान शिव तो अत्यंत अद्‌भुत लीलाएं रचने वाले हैं। शिव-शक्ति की क्रीड़ा प्रकृति का खेल है। सभी देवता, दानव और मनुष्य देवाधिदेव महादेव की कृपा के वश हैं, जबकि वे स्वच्छंद और वैभव संपन्न हैं। भगवान शिव तो सर्वेश्वर हैं। ये कला रहित निर्गुण हैं तो कला सहित सगुण हैं। ब्रह्मा से लेकर मनुष्य और दानव आदि सभी अपने कर्मों के अधीन हैं। सब जन्म लेते हैं और सबकी मृत्यु निश्चित है।

भगवान शिव सब पर कृपा करने वाले तथा दुष्टों को उनके दुष्कर्मों का दंड देने वाले हैं। अपराध के कारण ही ब्रह्माजी का पांचवां सिर काटा गया था। श्रीहरि विष्णु को पैरों के नीचे दबाया गया था। शिवजी की आज्ञा पाकर शिव निंदा करने वाले प्रजापति दक्ष को वीरभद्र ने दंड दिया था। कामदेव भी शिव क्रोध के कारण भस्म हुए। भगवान शिव और देवी पार्वती ने मिलकर अनेक लीलाएं रचीं। भगवान शिव ने लोक कल्याण के लिए पतित पावनी श्रीगंगा जी को अपनी जटाओं में धारण किया।

देवाधिदेव महादेव और देवी को एक दिव्य रूप बालक की प्राप्ति हुई। उसे पाकर शिवजी और पार्वती बहुत प्रसन्न हुए परंतु देवेंद्र की प्रार्थना करने पर अपने पुत्र को महादैत्य तारकासुर के साथ युद्ध करने भेज दिया। शिव-पार्वती ने पुत्र को आशीर्वाद देते हुए क्रौंची मेमिनी नामक अमोघ शक्ति प्रदान की। अपने माता-पिता के आशीर्वाद से बालक ने तारकासुर का वध कर दिया। अपने परम भक्त ब्रह्मचारी मार्कण्डेयजी को अकाल मृत्यु से बचाकर चिरंजीव बना दिया। परमात्मा शिव सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूप वाले हैं।

तीसवां अध्याय

ज्ञानोपदेश

वायुदेव बोले—हे मुनियो! सज्जनों को सिर्फ भगवान शिव से ही प्रीति रखनी चाहिए, किसी अन्य से नहीं। भगवान शिव तो सर्वज्ञाता हैं। उनका अनादर करने वाले मनुष्य को संसार में कहीं भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। हम परमात्मा की साकार व निराकार मूर्ति दोनों की आराधना करते हैं परंतु निराकार मूर्ति का ध्यान नहीं किया जा सकता, इसलिए शिवमूर्ति उसका साकार शिवरूप है। साधना के द्वारा ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है। मूर्ति का चेतन रूप परमात्मा है, जो अगाध श्रद्धा भाव से प्रसन्न होकर दर्शन देने वाले हैं। आत्मा को सांसारिक मोह माया से शिवतत्व ही मुक्त कराता है।

सुख-दुख तो कर्मों का फल है। ज्ञान द्वारा ही इंद्रियों का निग्रह होता है तथा भक्ति द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है। आराधना साहस में वृद्धि करती है। ईश्वर की इच्छा को सर्वोच्च माना गया है और सभी को उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। श्रेष्ठ कार्य करना हमारा कर्तव्य है। हमें अपने आराध्य का सदा पूजन करना चाहिए। त्रिलोकीनाथ कल्याणकारी भगवान शिव के संयोग से आत्मा शुद्ध हो जाती है। अज्ञानी भगवान शिव की भक्ति करके अपनी आत्मा के अंधकार को दूर करते हैं।

भगवान शिव की प्रेमरूपी लौ मनुष्य को शिवरूप कर देती है। क्षमा, चतुरता मित्रता के संयोग से मानसिक वृत्ति गण और दोष का कारण होती है। संसार से मुक्ति की कामना करने वाले अनुग्रह को अपनाते हैं। भगवान शिव अपने भक्तों पर सदा कृपा करते हैं। वे अपने भक्तों की सभी कामनाओं को पूरा करते हैं। जीव इस संसार में परतंत्र होकर अनेक दुखों को भोगता है परंतु शिवजी की कृपा से ही वह स्वतंत्र हो जाता है। जीवात्मा तो अजर-अमर है। सुकर्म और कुकर्म दो प्रकार के कार्य हैं, जो जीवन को श्रेष्ठ या निकृष्ट बनाते हैं। माया-मोह में फंसकर प्राणी हिरन की तरह इधर-उधर भटकता रहता है। शरीर में सबसे ऊपर परमात्मा, मध्य में अंतरात्मा और अधोभाग में आत्मा का निवास होता है। इसी प्रकार भगवान शिव सबसे ऊपर, मध्य में ब्रह्मा और नीचे श्रीहरि विष्णु का निवास है। भगवान शिव को अंतरात्मा भी माना जाता है क्योंकि वे सर्वत्र विद्यमान हैं।

अच्छे कर्मों द्वारा उच्च योनि तथा बुरे कर्मों द्वारा निम्न योनि की प्राप्ति होती है। सत्व, रज तथा तम गुण त्रिगुणात्मक योनि प्रदान करने वाले हैं। देवाधिदेव महादेव जी समस्त गुणों के स्वामी, सगुण-निर्गुण मूर्ति व सच्चिदानंद रूप हैं। वे पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। मनुष्य तो सदा माया से घिरा रहता है। परमेश्वर शिव की कृपा ही उसे आवागमन के इस चक्र से मुक्ति दिलाती है। उनके नामोच्चारण से ही सब दुखों से मुक्ति मिल जाती है। सब दुखों का नाश हो जाता है। माया से दूर होकर वह शिव कृपा को पा लेता है। अज्ञानी मनुष्य शिवजी को ईश्वर नहीं मानता और अपना सारा जीवन खो देता है। इसलिए मनुष्य को सदा त्रिलोकीनाथ

शिवजी की भक्ति में डूबे रहना चाहिए।

इकतीसवां अध्याय

अनुष्ठान का विधान

वायुदेव बोले—हे मुनियो! प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति हेतु भगवान शिव का पूजन और उनका अनुष्ठान सर्वोत्तम साधन है। इसी के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति संभव है। क्रिया, जप, ध्यान और ज्ञान से आराधना का अनुष्ठान किया जाता है। वेदों में धर्म को वर्णित किया गया है। वेदों एवं उपनिषदों द्वारा वर्णित कर्म परम धर्म कहलाते हैं। निर्मल आत्मा वाले धर्म के अधिकारी होते हैं जबकि सांसारिक जन अधर्मी माने जाते हैं।

शिवशास्त्र श्रुति और स्मृति दो प्रकार के हैं। श्रुति में पाशुपत व्रत का परम ज्ञान वर्णित है। कहते हैं कि हर युग में भगवान शिव योगाचार्य के रूप में अवतार लेते हैं और शिव तत्व का प्रचार-प्रसार करते हैं। रुद्र, दधीचि, अगस्त्य और उपमन्यु नामक महर्षि पाशुपति व्रत की संहिता के प्रचारक हैं। इसके अनुष्ठान से शिवजी का साक्षात्कार होता है। शिव, महेश्वर, रुद्र, पितामह, विष्णु, संसार, वैद्य, सर्वज्ञ एवं परमात्मा ये आठ परम कल्याणकारी कारक हैं।

शिवतत्व का परम ज्ञान रखने वाले ज्ञानी और विद्वान पुरुष कहते हैं कि संपूर्ण मंगलमय गुणों के आधार व सबके स्वामी सदाशिव कहलाते हैं। प्रकृति व पुरुष इनके अधीन हैं। वे दुखों और दुखों के कारणों का नाश करने वाले हैं। भव रोग को दूर करने हेतु औषधि प्रदान करने वाले संसार के वैद्य भगवान शिव ही हैं। उन्हें संसार की हर अवस्था का ज्ञान है इसलिए सर्वज्ञ कहलाते हैं। भगवान शिव के आठ नाम हैं जिनकी निवृत्ति का कलात्मक ग्रंथि विभेदन करके गुणों के अनुसार आवृत्ति करें। हृदय, कंठ, तालु, भृकुटियों के बीच ब्रह्मरंध्र के साथ आठ रूपों की पुरी को छेदकर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा आत्मा का लय करके अपने वमन का संहार करें, उसे शक्ति रूपी अमृत से सींचकर भगवान शिव के चरणों का ध्यान करें। नाभि के मध्य में शिवजी के आठ नाम धारण करें व आठ आहुतियां दें, फिर पूर्णाहुति देकर प्रणाम कर आठ फूल चढ़ाएं। फिर अपनी आत्मा शिवजी को समर्पित करें। इस क्रिया द्वारा परम ज्ञान की प्राप्ति होती है।

बत्तीसवां अध्याय

पाशुपत व्रत का रहस्य

वायुदेव बोले—हे ऋषिगणो! पाशुपत व्रत को चैत्र मास की पूर्णिमा को करना चाहिए। त्रयोदशी को गुरु पूजन कर उनसे आज्ञा लेकर स्नान कर श्वेत वस्त्र, यज्ञोपवीत, चंदन माला धारण करें तथा कुश आसन पर उत्तर की ओर मुख करके बैठें। हाथ में कुशा लेकर तीन बार प्राणायाम करें और भगवान शिव और देवी पार्वती का ध्यान करें। इच्छानुसार व्रत करने की अवधि का संकल्प लें। विधिपूर्वक हवन हेतु अग्नि स्थापना कर उसमें समिधा और चरु की आहुतियां देने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

हवन के मंत्र बोलकर हवन करें। गोबर का गोला बनाकर हवन की अग्नि में डालें। चतुर्दशी को भी इसी तरह पूजन करें परंतु भोजन न खाएं। पूर्णिमा के दिन वैसे ही पूजन करें तथा रुद्राग्नि को बुझा दें और भस्म को धारण करें। फिर स्नान करते समय पैर धोकर आचमन करें। अग्निरीत्यादि छः मंत्र बोलें। 'ॐ शिव' का जाप करते हुए भस्म धारण करें। 'त्र्यायुष जमदग्नि' मंत्र का जाप करते हुए मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाएं। ऐसा करने से मनुष्य पशुत्व से मुक्त हो जाता है।

सोने का अष्टबल का आसन बनाएं। धन न होने पर कमलासन बनाकर उस पर पंचमुख शिवलिंग की स्थापना करें। आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन कराकर दूध, दही, शर्करा, जल, मधु आदि पंचामृत से स्नान कराएं। फिर रोली, चंदन, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य चढ़ाएं और कमल एवं बेलपत्र से शिव पूजन करें। तत्पश्चात गणपति गणेश, स्वामी कार्तिकेय, ब्रह्मा एवं शिवजी की आठ मूर्तियों का पूजन करें। फिर सभी अस्त्रों सहित अनुचरों, दिक्पाल, मरीचि एवं ब्रह्माजी के मानस पुत्रों व गुरुजनों का पूजन करें। दूध व फल ग्रहण करें-भोजन न करें। भूमि पर ही सोएं। आर्द्रा नक्षत्र, पूर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी एवं अष्टमी को उपवास करें। व्रत के समय अहिंसा व्रत रखें तथा दान करें। तीनों काल में स्नान कर भस्म धारण करें।

यदि संभव हो तो वैशाख में हीरे, जेठ में मरकत, आषाढ़ में आसोज गोमेद मणि व मोतियों का, श्रावण में नीलम का, भादो में पद्रसरांग मणि का, कार्तिक में मूंगे, मंगसिर में वैदूर्य मणि, पौष में पुखराज, माघ में सूर्यकांत मणि, फाल्गुन में चंद्रकांत मणि, चैत्र में रत्न और स्वर्ण का लिंग बनवाएं। धन न होने पर पत्थर या मिट्टी का शिवलिंग भी बनाकर विधि-विधान के अनुसार पूजन करने के पश्चात पंचाक्षर मंत्रों का जाप कर विजर्सन करें।

तेंतीसवां अध्याय

उपमन्यु की भक्ति

ऋषिगणों ने वायुदेव से पूछा—हे वायुदेव! आप हमें भगवान शिव के परम भक्त उपमन्यु की भक्ति के विषय में बताइए। वायुदेव बोले—हे मुनियो! उपमन्यु बचपन से ही परम तपस्वी हुए हैं। उपमन्यु परम तपस्वी व्याघ्रपाद मुनि के पुत्र थे। भगवान शिव की परम भक्ति के कारण ही इन्हें शिव पुत्र कार्तिक एवं गणेश के समान शास्त्रों एवं ज्ञान की प्राप्ति हुई।

उपमन्यु अभी छोटे बच्चे थे। उनकी मां उनके पीने के लिए दूध का प्रबंध भी नहीं कर पाती थी। एक दिन जब उपमन्यु दूध पीने के लिए हठ करने लगे तो मां ने भूने-पिसे अनाज का आटा घोलकर दिया। उपमन्यु ने उसे पीने से मना कर दिया। वह जान चुका था कि उसकी मां दूध के नाम पर जो दे रही है, वह दूध नहीं है। उपमन्यु ने कहा, यह दूध नहीं है मां। मुझे दूध चाहिए। मैं दूध ही पीऊंगा।

अपने पुत्र की बातें सुनकर माता की आंखों में आंसू आ गए और वह बोली—पुत्र शिव भक्ति के बिना किसी भी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। इस संसार में सबकुछ उन्हीं की इच्छा से होता है। भला हम वनों में रहने वालों को दूध कहां से मिलेगा? तुम रोना बंद करो, इससे मुझे दुख पहुंचता है। तब अपनी माता के इस प्रकार के वचनों को सुनकर वह बालक उपमन्यु बोला—माते! मैं शिवजी को प्रसन्न करके ही दूध प्राप्त करूंगा।

तब माता बोली—बेटा! भगवान शिव तो सर्वत्र विद्यमान हैं। वे 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र द्वारा प्रसन्न होते हैं। माता ने समझाकर उपमन्यु को शांत कर दिया परंतु बालक का जिज्ञासु मन शांत न हुआ। उसने अपने मन में शिवजी के दर्शन करने का निश्चय कर लिया था। उस रात जब वह अपनी माता के साथ सोया हुआ था, तभी उसकी आंख खुली और उसे लगा जैसे शिवजी उसे बुला रहे हैं। वह रात को ही घर से निकल गया। बालक 'ॐ नमः शिवाय' का जाप करता हुआ वनों में चला गया। उसे न तो वन में भटक जाने का भय था, ना ही किसी हिंसक पशु द्वारा खा लिए जाने की चिंता थी। उसके मन में तो उस समय सिर्फ और सिर्फ भगवान शिव के साक्षात्कार का ही संकल्प था। चलते-चलते ही रास्ते में उसे एक शिवालय दिखाई दिया।

बालक उपमन्यु ने शिवालय में प्रवेश किया और 'ॐ नमः शिवाय' का जाप करते हुए शिवजी की मूर्ति से लिपट गया। मूर्ति से लिपटकर वह रोता रहा। इस प्रकार तीन दिन बीत गए। बालक बेहोशी में भी मंत्र का जाप करता रहा। एक पिशाच ने उस बालक को बेहोश देखा तो वह अपनी भूख शांत करने के लिए उसे उठा ले गया परंतु शिव कृपा से एक सांप ने आकर पिशाच को डस लिया। जब वह होश में आया तो अपने को शिवमूर्ति के सामने न पाकर वह दुखी हुआ।

चौंतीसवां अध्याय

उपमन्यु की कथा

वायुदेव बोले—हे ऋषिगणो! बालक उपमन्यु रोते हुए भगवान शिव को ढूंढ़ने लगा। उस समय वह भूख और प्यास से व्याकुल था। भगवान शिव ने जब दिव्य दृष्टि से देखा कि उनका परम भक्त उपमन्यु उनके दर्शनों के लिए भटक रहा है तो वे तुरंत उठकर जाने लगे। तभी देवी पार्वती जी उन्हें रोककर पूछने लगीं—स्वामी! आप कहां जा रहे हैं? तब शिवजी बोले—देवी! मेरा भक्त उपमन्यु मुझे पुकार रहा है। उसकी मां भी रोती हुई उसे ही ढूंढ़ रही है। मैं वहीं जा रहा हूं।

शिवजी यह बता ही रहे थे कि सब देवता वहां आ पहुंचे। उन्होंने भगवान शिव-पार्वती को प्रणाम किया और उनसे संसार में अमंगल कारक दुर्भिक्ष का कारण पूछा। तब शिवजी ने उन्हें बताया कि उपमन्यु की तपस्या पूरी हो चुकी है और मैं उसे ही वर देने जा रहा हूं। तुम लोग अपने-अपने स्थान को जाओ। यह कहकर शिवजी देवराज इंद्र का रूप धारण करके ऐरावत हाथी पर सवार होकर बालक उपमन्यु के पास गए। उपमन्यु ने हाथ जोड़कर देवेंद्र को प्रणाम किया।

तब इंद्र के रूप में शिवजी बोले—बालक हम तुम्हारे तप से प्रसन्न हैं। मांगो! क्या मांगना चाहते हो? उपमन्यु बोला—हे देवेंद्र! आप मुझे भगवान शिव में भक्ति और श्रद्धा प्रदान कीजिए। यह सुनकर इंद्ररूपी शिव जानबूझकर अपनी निंदा करने लगे। यह सुनकर बालक उपमन्यु को क्रोध आ गया और उसने उन्हें उसी वक्त वहां से चले जाने के लिए कहा। उपमन्यु की शिव भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे साक्षात दर्शन दिए।

शिवजी को सामने पाकर उपमन्यु उनके चरणों में गिर पड़ा और उनकी स्तुति करने लगा। तब उसे गोद में लेकर शिवजी बोले—उपमन्यु! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूं। मेरी कृपा से तुम्हारे सभी कष्ट दूर हो जाएंगे। तुम्हारा परिवार धनी हो जाएगा तथा तुम्हें दूध, घी और शहद आदि वस्तुओं की कोई कमी नहीं रहेगी। फिर शिव-पार्वती ने उपमन्यु को अविनाशी ब्रह्म विद्या, ऋद्धि-सिद्धि प्रदान की और उन्हें पाशुपत व्रत का तत्व ज्ञान दिया और सदा यौवन संपन्न रहने का आशीर्वाद प्रदान किया।

भगवान शिव के आशीर्वादों को पाकर उपमन्यु कृतार्थ हो गया और बोला—हे देवाधिदेव महादेव! कल्याणकारी सर्वेश्वर! आप मुझे अपनी भक्ति का वर प्रदान करें। मेरी प्रीति आप में सदा बनी रहे। मैं संसार में आपकी भक्ति का ही प्रचार-प्रसार करूं। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—बालक जैसा तुम चाहोगे वैसा ही होगा। तुम्हारी सभी कामनाएं पूर्ण होंगी। यह कहकर शिवजी देवी पार्वती सहित अंतर्धान हो गए और उपमन्यु प्रसन्नतापूर्वक घर लौट आया।

।। श्रीवायवीय संहिता संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्रीवायवीय संहिता (उत्तरार्ध)

प्रथम अध्याय

श्रीकृष्ण की पुत्र प्राप्ति

संसार के सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता भगवान शिव को प्रणाम कर सूत जी बोले—हे ऋषिगणो! मैंने आपके द्वारा पूछी गई हर कथा आपको सविस्तार सुनाई है। ये सभी कथाएं अंतःकरण की कालिमा को नष्ट करने वाली हैं। शुद्ध अंतःकरण द्वारा ही देव लीलाओं के रहस्य खुलते हैं, तथा उनके प्रति निष्ठा जागती है। बिना देवोपासना के शिवतत्व को नहीं जाना जा सकता है। ऋषिगणो! आप कथारसिक हैं, यह मैं जान गया हूं। अब आगे आप किस कथा के विषय में सुनना चाहते हैं? सूत जी के प्रश्न को सुनकर ऋषि बोले—हे सूत जी! भगवान श्रीकृष्ण ने उपमन्यु को दर्शन देकर उन्हें पाशुपत व्रत करने की आज्ञा प्रदान की परंतु इस व्रत का ज्ञान उन्हें कैसे मिला?

यह बात सुनकर वायुदेव बोले—हे ऋषियो! श्रीकृष्ण ने अपनी इच्छानुसार अवतार लिया और फिर सांसारिक मनुष्यों की भांति पुत्र कामना की प्राप्ति हेतु तपस्या करने मुनियों के आश्रम में पहुंचे। वहां उन्होंने जटाजूट धारण कर भस्म रमाए त्रिपुण्ड का तिलक लगाए मुनि उपमन्यु को देखा। श्रीकृष्ण ने उनकी तीन परिक्रमा कीं तथा प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

उपमन्यु जी ने श्रीकृष्ण को 'त्रायुषं जमदग्ने' मंत्र देकर बारह महीने तक पाशुपत व्रत धारण कराया और पाशुपत व्रत का ज्ञान दिया। श्रीकृष्ण ने आश्रम में रहकर एक वर्ष तक कठोर तप किया। तब प्रसन्न होकर भगवान शिव ने देवी पार्वती सहित उन्हें दर्शन दिए। शिवजी ने श्रीकृष्ण की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया और अंतर्धान हो गए। वर के प्रभाव से श्रीकृष्ण को अपनी पत्नी जांबवती से सांब नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।

दूसरा अध्याय

शिवगुणों का वर्णन

वायुदेव बोले—हे मुनियो! एक दिन श्रीकृष्ण जी ने उपमन्यु मुनि से कहा—हे महर्षे! आप मुझे देवाधिदेव भगवान शिव के पाशुपत व्रत के ज्ञान को बताइए। पशु कौन है और वे किस रस्सी से बंधे हैं और उससे कैसे मुक्त होते हैं? शिवजी पशुपति कैसे कहलाए? कृपाकर मेरी इन जिज्ञासाओं को शांत करें।

श्रीकृष्ण जी के इन प्रश्नों को सुनकर उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! इस संसार में ब्रह्मा से लेकर सभी स्थावर जीव सर्वेश्वर शिव के ही पशु हैं। शिवजी ही उनके स्वामी हैं। इसलिए उनके अधिपति होने के कारण वे पशुपति कहलाते हैं। भगवान शिव द्वारा रचित सभी पशु मोह-माया की दृढ़ रस्सियों से बंधे हैं। इसी रूप में संसारी व्यक्ति जब मोह-ममता आदि के पाश से मुक्त होने का प्रयास करता है, तो वह और भी बुरी तरह उसमें बंधता और फंसता जाता है। कोई केवल सांसारिक साधनों द्वारा पाश से मुक्त नहीं हो पाता। इसके लिए भगवान शिव की कृपा आवश्यक है। अपने भक्तों की आस्था, श्रद्धा और भक्तिपूर्ण उपासना देखकर वे उन्हें माया रूपी रस्सियों से मुक्त कर देते हैं।

माया के चौबीस तत्वों से ही जीव बंधा रहता है। अपने जीवों को इन बंधनों में बांधने वाले स्वयं भगवान शिव ही हैं। वे उन्हें विषयों में बांधकर उनसे अपने कार्य कराते हैं। जो इन विषयों में आसक्त होकर भोगों की कामना से व्यवहार करता रहता है, वह पशुता से मुक्त नहीं हो पाता। जिसे संसार के भोगों में रस नहीं मिलता वह शिव कृपा से इन पाशों से मुक्त हो जाता है। महेश्वर संसार का अनुशासन चलाते हैं तो बाह्य जगत का बाहर से पालन करते हैं और हव्य-कव्य भी ग्रहण करते हैं।

जल जगत में जीवन भरता है और पृथ्वी जगत को धारण करती है। दैत्यों का संहार स्वयं भगवान शंकर करते हैं। देवेंद्र स्वर्ग का संचालन करते हैं। वरुण जल पर शासन करते हैं। ये सब कार्य त्रिलोकीनाथ भगवान शिव के बताए मार्ग पर चलकर संपन्न होते हैं। शिवजी का पूजन सद्गति प्रदान करता है। निष्काम भाव से की गई शिव-आराधना मनोकामनाओं की पूर्ति के साथ मुक्ति का साधन भी बनती है।

तीसरा अध्याय

अष्टमूर्ति वर्णन

मुनि उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! भगवान शिव के सगुण-साकार मूर्तरूप का विभिन्न ध्यानों में नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। ये शिव के व्यष्टि रूप हैं। भगवान शिव ने स्वयं की अंगभूता आदिशक्ति से जब इस सृष्टि की रचना की, उसके बाद वे संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त हो गए। शिव ने ही सृष्टि के रूप में अपना विस्तार किया, इस तरह भी कहा जा सकता है। भगवान शिव अपनी मूर्तियों से ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश, सदाशिव शिवजी की ही प्रतिमाएं हैं।

ईशान, पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात इनकी पांच मूर्तियां हैं। ईशान मूर्ति क्षेत्रज्ञ है। पुरुष स्थाणु मूर्ति है। अघोर मूर्ति बुद्धि तत्व को धारण किए है। देवाधिदेव महादेव की वामदेव मूर्ति अहंकार की अधिष्ठात्री है। सद्योजात मूर्ति शिवजी के हृदय में निवास करती है।

ईशान मूर्ति श्रोत्र वाणी और शब्द आकाश की अधिष्ठात्री है। ईश्वरीय मूर्ति हस्त, स्पर्श और वायु की अधिष्ठात्री है। अघोर मूर्ति नेत्र चरण रूप अग्नि की अधिष्ठात्री है। वाममूर्ति रस जल की अधिष्ठात्री है। भगवान शिव की आठ प्रतिमाएं हैं। जिस प्रकार माला में फूल गुंथे होते हैं, उसी प्रकार शिवजी की मूर्तियों में संसार ग्रथित है।

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव ये शिवजी की आठ मूर्तियां हैं। इन्होंने पृथ्वी, जल, तेज, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चंद्र को धारण किया हुआ है। शिवजी की शार्वी मूर्ति विश्वधारिका है। वायिका भावी मूर्ति है और जल को धारण किए है।

तेजोदीप्त रौद्रीमूर्ति जगत में अंदर और बाहर विचरती है। पवन मूर्ति जगत का संचालन करती है। आकाशात्मिका मूर्ति पूरे विश्व में व्याप्त है। पशुपति मूर्ति आत्मा की अधिष्ठात्री है। ईशानी मूर्ति जगत को प्रकाश देती है। महादेव जी की मूर्ति अपनी शीतल किरणों से जगत को तृप्त करती है। आठवीं मूर्ति के कारण सारा संसार शिवरूप है। इसलिए शिवजी का पूजन और आराधन ही भय का नाश कर मोक्ष प्रदान करने वाला एवं समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला है।

चौथा अध्याय

गौरी शंकर की विभूति

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! अब मैं आपसे स्त्री-पुरुष, जो महादेव की विभूति हैं, का वर्णन करता हूं। भगवान शिव परम शक्तिमान हैं। देवी पार्वती उनकी शक्ति हैं और विश्व उनकी विभूति है। शुद्ध-अशुद्ध, पर-अपर, चेतन-अचेतन सभी स्वाभाविक रूप हैं। शिवजी और देवी पार्वती के वश में यह संसार है। वे ही विश्वेश्वर हैं। भगवान शिव ही संसार के सभी जीवों को भक्ति और मुक्ति देते हैं।

माता शक्ति भी शिवजी के समान महाशक्ति है। वे चिद्रूपा शक्ति हैं, जो विश्व को विभक्त करती है। वे ही सभी क्रियात्मक शक्तियों को क्रियान्वित करती हैं। देवी पार्वती ही क्षोभ पाकर नाद को पैदा करती हैं। नाद से बिंदु, बिंदु से सदाशिव उससे महेश्वर और उससे युद्ध विद्या पैदा होती है। ईश्वर की वाणी शक्ति है। इस संसार को रचने वाली शक्ति है। इस संसार में स्त्री व पुरुषों की विभूति भगवान शिव और देवी पार्वती पर आश्रित है। शिव क्षेत्रज्ञ हैं और देवी क्षेत्ररूपा हैं। पार्वती जी पृथ्वी रूप हैं और शिवजी आकार रूप हैं। शिव समुद्र रूप हैं तो पार्वती जी तरंगरूपा हैं।

हे श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने आपको सर्वेश्वर शिव की विभूति सुना दी है। शिव भक्तों को सायुज्य की प्राप्ति होती है और भगवान शिव का भजन-कीर्तन करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है।

पांचवां अध्याय

पशुपति ज्ञान योग

उपमन्यु बोले—हे कृष्णजी! इस संसार में सभी जीव मोहमाया के पाश में बंधे हुए हैं, इसलिए भगवान शिव के स्वरूप को वे जान नहीं पाते। भगवान शिव के अविकल्प प्रभावों का वर्णन ऋषि-मुनिगण करते हैं। भगवान शिव को अपर ब्रह्मरूप में ब्रह्मात्मक, अनादि अनंतर रूप में महादेव तथा भूत, इंद्रिय, अंतकर, प्रधान विषयात्मक में अपरब्रह्म एवं चेतनात्मक परमब्रह्म कहलाते हैं। यह बहुत विशाल है और विश्व का विस्तार करने वाला है और ब्रह्म कहलाता है।

विद्या और अविद्या ब्रह्म के रूप हैं। चेतना और अचेतना विद्या-अविद्या के ही रूप हैं। विश्व भगवान शिव रूप है और संसार के सभी जीव भगवान शिव के अधीन हैं। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव तो सत-असत दोनों के स्वामी हैं। वे ही सत-असत को क्षर-अक्षर करते हैं। सभी प्राणी क्षर अव्यय एवं अक्षर हैं और परमात्मा के रूप हैं। सर्वेश्वर शिव ही समष्टि और व्यष्टि रूप कहलाते हैं। वे ही संसार के प्रवर्तक और निवर्तक हैं। वे ही आविर्भाव और तिरोभाव का कारण हैं। देवाधिदेव महादेव ही सबके स्वामी और धाता हैं। सर्वेश्वर शिव अंतर्यामी हैं। जो मनुष्य अपनी बुद्धि के कारण विरोधाभासों में फंसे रहते हैं, वे किसी भी बात का निश्चय नहीं कर पाते। जो मनुष्य भगवान शिव की शरण में जाते हैं उन्हें शिवतत्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

छठा अध्याय

शिव तत्व वर्णन

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! जिस प्रकार इंद्रजाल की माया जादूगर को भ्रमित नहीं करती, बल्कि उसकी लीलाओं को देखकर वह आनंदित होता है, उसी प्रकार सृष्टि रचना का आधार रूप भगवान शिव सभी प्रकार के बंधनों से सदैव मुक्त रहते हैं। त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव शिव तो सब बंधनों से दूर हैं। उन्हें कोई भी माया, प्रकृति, बुद्धि और अहंकार नहीं बांध सकता। शिव तो परमब्रह्म परमात्मा हैं। वे किसी वासना, मोह अथवा भोग के प्रभाव में नहीं आ सकते। बंधु-अबंधु, नियंता, प्रेरकपति, गुरु-त्राता, अधिक-समान, कांक्षित-अकांक्षित, जन्म-मरण, विधि-निषेध, मुक्ति-बंधन कोई भी सर्वेश्वर की राह में आगे नहीं आ सकता।

देवाधिदेव महादेव सारे संसार में व्याप्त हैं। सृष्टि से पूर्व शिव थे, सृष्टि रचना के बाद सृष्टि रूप भी शिव हैं और सृष्टि के खत्म होने के बाद भी शिव ही अवशिष्ट रहेंगे। यह ज्ञान ही समस्त दुखों को समाप्त करने वाला है। यही शिवोपासना और शिवाराधना का प्रतिफल है। सदाशिव के सच्चे स्वरूप को जिस प्राणी ने समझ लिया वह कभी मोह के वश में नहीं होता। हिरण्यबाहु भी शिव रूप से काल के अग्रभाग हैं। हृदय के मध्य में सर्वेश्वर शिव का ही वास है। जो भगवान शिव का परम भक्त है उसको संसार में हर मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।

सातवां अध्याय

शिव-शक्ति वर्णन

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! परमब्रह्म परमात्मा शक्तिशाली और विलक्षण वाले एक ही रूप हैं। सूर्य किरणों के समान ही उनकी कीर्ति देदीप्यमान है। इच्छा ज्ञान और क्रिया रूप में उनकी अनेक शक्तियां विद्यमान हैं। इसी शक्ति के फलस्वरूप शिव पुरुष हुए और ज्ञानदायिनी आनंदमयी देवी पार्वती सूक्ष्म शक्ति कहलाईं। प्रज्ञा श्रुति स्मृति रूपी शिव विद्या है। भगवान शिव ही वैद्य हैं। भगवान शिव की शक्ति विश्व को मोहने वाली और मुक्ति प्रदान करने वाली है। अपने हृदय में शिव-शक्ति के स्वरूप का ध्यान करने वालों को परम शांति प्राप्त होती है। शिव-शक्ति का तादात्म्य संबंध है। मुक्ति की कामना करने वालों के लिए ज्ञान एवं कर्मों की आवश्यकता नहीं है। मुक्ति तो भगवान शिव और देवी पार्वती के प्रसन्न होते ही प्राप्त हो जाती है। भगवान शिव के प्रसन्न होते ही मुक्ति सुलभ हो जाती है। भगवान शिव की भक्ति उन्हें प्रसन्न करती है। देवाधिदेव महादेव जी में भक्ति भावना रखने वाले जीवों को मुक्ति मिल जाती है। सांग और अनंग दोनों सेवाभक्ति कहलाती हैं। सर्वेश्वर शिव की ध्यान, साधना करने से समस्त कामनाएं पूरी होती हैं। तप, कर्म, जप, ज्ञान, ध्यान और चांद्रायण व्रत तप हैं। परमेश्वर शिव का नाम जपने व चिंतन करने से भगवान शिव की कृपा प्राप्त होती है। शिव शास्त्रों में भी इस ज्ञान का वर्णन है।

आठवां अध्याय

व्यासावतार

श्रीकृष्ण बोले—हे महर्षि! अब आप वेदों का सार सुनाइए। यह सुनकर उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! जब सर्वेश्वर शिव ने सृष्टि का निर्माण करने की इच्छा की, उस समय उन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्माजी को पैदा किया और उन्हें सृष्टि रचने का उपदेश दिया। ब्रह्माजी ने वर्ण और आश्रम की व्यवस्था की। फिर यज्ञार्थ सोम रचना की। सोम द्वारा स्वर्ग बना। तत्पश्चात सूर्य, पृथ्वी, अनल, यज्ञ, विष्णु और इंद्र आदि देवता हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

परमात्मा ने जब देवताओं के ज्ञान का हरण कर लिया था, तब सब देवता भगवान रुद्र से पूछने लगे कि आप कौन हैं? तब रुद्र देव बोले—हे देवगण! मैं पुराण पुरुष त्रिकाल बाधित, भूत, भविष्य, वर्तमान में रहने वाला हूं। मैं ही सबका नियंता हूं। यह कहकर रुद्रदेव अंतर्धान हो गए। देवता आश्चर्यचकित होकर देखने लगे। फिर सोम मंत्र से आराध्य भगवान शिव और देवी पार्वती की वे स्तुति करने लगे।

देवताओं की स्तुति सुनकर देवाधिदेव महादेव जी ने देवी पार्वती सहित उन्हें दर्शन दिए। तब अपने सामने पाकर देवता उन्हें प्रणाम करने लगे और बोले—हे स्वामी! हमें अपने पूजन का विधान सुनाइए। यह सुनकर भगवान शिव ने अपने चतुर्मुखी तेजरूप का दर्शन कराया। शिवजी का अद्‌भुत स्वरूप देखकर देवताओं ने शिवजी को सूर्य और देवी पार्वती को चंद्रमा मानकर अर्घ्य प्रदान किया। तब देवताओं को शिव तत्व का अमृतमय ज्ञान देकर शिव-पार्वती अंतर्धान हो गए।

नवां अध्याय

शिव शिष्यों का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—हे मुनिवर! मैंने सुना है कि देवाधिदेव परमेश्वर शिव हर युग में लोक कल्याण के लिए अवतार लेते हैं। इन अवतारों में उन्होंने किसे अपना शिष्य बनाया है? उनके विषय में बताइए। तब मुनि उपमन्यु बोले—श्रीकृष्ण जी! श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कङ्कलौगाक्षि, महामायावी जैगीषव्य, दधिवाह, ऋषभ मुनि, उग्र, अत्रि, सुपालक, गौतम, वेदशिरा मुनि, गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगुली, महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डीश, सहिष्णु, सोमशर्मा और नकुलीश्वर—ये वाराह कल्प के इस सातवें मन्वंतर में युग क्रम से अट्ठाईस योगाचार्य प्रकट हुए हैं। इनमें से प्रत्येक के शांतचित्त वाले चार-चार शिष्य हुए हैं, जो श्वेत से लेकर रुष्यपर्यंत बताए गए हैं। मैं उनका क्रमशः वर्णन करता हूं, सुनो—श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुंदुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान, विकोश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्गम, दुरतिक्रम, सनत्कुमार, सनक, सनंदन, सनातन, सुधामा, विरजा, शंख, अण्डज, सारस्वत, मेघ, मेघवाह, सुवाहक, कपिल, आसुरि, पंचशिख, वाष्कल, पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबंधु, निरामित्र, केतुशृंग, तपोधन, लंबोदर, लंब, लंबात्मा, लंबकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य, सिद्धि, सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अत्रि, उग्र, गुरुश्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणबाहु, कुशरीर, केनेत्रक, काश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानिल, वाचःश्रवा, सुवीर, श्यावक, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमंतु, जैमिनी, कुबंध, कुशकंधर, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, भल्लवी, मधुपिंग, श्वेतकेतु, उशिज, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेष, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुंभकर्ण, कुंभ, प्रबाहुक, उलूक, विद्युत, शंबूक, आश्वलायन, अक्षपाद, कणाद, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और रुष्य—ये योगाचार्यरूपी महेश्वर के शिष्य हैं। इनकी संख्या एक सौ बारह है। ये सब-के-सब सिद्ध पाशुपात हैं। इनका शरीर भस्म से विभूषित रहता है। ये संपूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ, वेद और वेदांगों के पारंगत विद्वान, शिवाश्रम में अनुरक्त, शिवज्ञानपरायण, सब प्रकार की आसक्तियों से मुक्त, एकमात्र भगवान् शिव में ही मन को लगाए रखने वाले संपूर्ण द्वंद्वों को सहने वाले, धीर, सर्वभूतहितकारी, सरल, कोमल, स्वस्थ, क्रोधशून्य और जितेंद्रिय होते हैं, रुद्राक्ष की माला ही इनका आभूषण है।

उनके मस्तक त्रिपुण्ड से अंकित होते हैं। उनमें से कोई तो शिखा के रूप में ही जटा धारण करते हैं। किन्हीं के सारे केश ही जटारूप होते हैं। कोई-कोई ऐसे हैं, जो जटा नहीं रखते हैं और कितने ही सदा माथा मुड़ाए रहते हैं। वे प्रायः फल-मूल का आहार करते हैं। प्राणायाम-साधन में तत्पर होते हैं। 'मैं शिव का हूं' इस अभिमान से युक्त होते हैं। सदा शिव के ही चिंतन में लगे रहते हैं। वे अपनी कठोर साधना से संसार रूपी विषवृक्ष के अंकुर को मथ देते

हैं। फलस्वरूप संसार बीज का ही नाश हो जाता है। इसे ही समस्त प्रकार के कर्मों का क्षय कहते हैं—ऐसे में स्थूल-सूक्ष्म शरीरों के कारण हमारा शरीर भी विगलित हो जाता है। इसी को मुक्ति और मोक्ष कहते हैं। जो योगाचार्य इस स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं, वे सदा परम धाम में जाने के लिए ही कटिबद्ध होते हैं। जो योगाचार्यों सहित इन शिष्यों को जान-मानकर सदा शिव की आराधना करता है, वह शिव का सायुज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए।

दसवां अध्याय

शिवोपासना निरूपण

श्रीकृष्ण जी बोले—हे महर्षे! भगवान शिव से देवी पार्वती ने क्या प्रश्न किया और शिवजी ने उसका क्या उत्तर दिया? तब उपमन्यु बोले—हे कृष्ण जी! एक दिन पार्वती जी ने भगवान शिव से पूछा—हे स्वामी! आप प्राणीजन पर किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? तब शिवजी बोले—हे प्रिये! मुझे प्रसन्न करने का एकमात्र साधन श्रद्धा भक्ति है। मैं कर्म, जप, यज्ञ और समाधि से इतना प्रसन्न नहीं होता, जितना भक्तिपूर्ण आराधना से। जिस भक्त के मन में श्रद्धा हो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ वार्तालाप भी कर लेता है। अतः जो मुझे अपने वश में करना चाहे, उसे पहले मेरे प्रति श्रद्धा करनी चाहिए। श्रद्धा ही स्वधर्म का हेतु है और वही इस लोक में सभी वर्णों की रक्षा करता है। जो अपने वर्णाश्रम के धर्मों का पालन करता है, उसी को मुझमें श्रद्धा होती है, दूसरे को नहीं। धर्म के मार्ग का अनुसरण करके विद्वज्जन की श्रद्धा भावना बढ़ती है। वे जीव, जो एकाग्रचित्त होकर मेरा ध्यान करते हैं, मेरी भक्ति को प्राप्त होते हैं। वर्ण आश्रम पर चलने वाले जीव मोहमाया और पापों से छूटकर शिवलोक को प्राप्त कर लेते हैं। उनकी आत्मा का उद्धार हो जाता है।

सनातन धर्म के ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग नामक चार पद हैं। भक्तिपूर्वक साधना ज्ञान कहलाती है। छः मार्गों से किए गए शुद्धि विधान को क्रिया कहते हैं। वर्णाश्रम युक्त विधि से पूजन-अर्चन को चर्या कहा जाता है। मेरी भक्ति में अपने हृदय को लगाकर अन्य वृत्तियों का निरोध करना योग कहलाता है। निर्मल हृदय से भक्तिपूर्वक ध्यान करने से सौ अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। अपनी इंद्रियों को वश में करने वाले विरक्त पुरुषों को ही ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।

तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान ये मेरे भजन के पांच प्रकार हैं। पूर्व वासनावश बाह्य अथवा आभ्यंतर जिस पूजन में मन का अनुराग हो, उसी में दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिए। बाहरी शुद्धि को शुद्धि नहीं समझना चाहिए। आंतरिक शुद्धि से ही आत्मशोधन होता है। भजन बाह्य हो या आंतरिक, दोनों में ही भाव होना चाहिए। प्रेम और समर्पण के बिना पूजन निरर्थक है।

ग्यारहवां अध्याय

ब्राह्मण कर्म निरूपण

त्रिलोकीनाथ परमेश्वर शिव बोले—हे देवी! तीन बार नहाना, अग्निकर्म करना, लिंग पूजा, दान, ईश्वर भाव, दया भाव, सत्य, संतोष, आस्तिकता, अहिंसा, लज्जा, श्रद्धा, पढ़ना, पढ़ाना, उपदेश, ब्रह्मचर्य, श्रवण, तप, क्षमा, शौच आदि वर्ण धर्म हैं। ब्राह्मणों के लिए क्षमा, शांति, संतोष, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य, तत्वज्ञान, वैराग्य, भस्म सेवन, सर्वसंग में निवृत्ति आदि परम आवश्यक है।

ब्रह्मचारियों को रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। क्षत्रियों को दान नहीं लेना चाहिए। सभी वर्णों की रक्षा करना, शत्रुओं पर विजय, दुष्टजन वध, ऋतुकाल में स्त्रीगमन, सेना रक्षण एवं मेरे भक्तों पर पूर्ण विश्वास करना आदि क्षत्रिय धर्म है। वैश्य धर्म गौरक्षा, व्यापार और खेती करना है। सभी वर्णों की सेवा करना शूद्र का धर्म है। गृहस्थियों को अपनी गृहस्थी का ध्यान रखना चाहिए। ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य, पत्नियों को पति आज्ञा का पालन करना चाहिए। विधवा स्त्रियों को भूमि शयन, धर्म व्रत, दान, तप, शांति का पालन करना चाहिए व चतुर्दशी, पूर्णमासी व एकादशी का व्रत करना चाहिए। मेरी आराधना करने वाले प्राणीजन को 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जाप करना चाहिए।

बारहवां अध्याय

पंचाक्षर मंत्र की महिमा

मुनि उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! वेदों एवं शास्त्रों में ॐकार और षडाक्षर मंत्र की महिमा का गुणगान किया गया है। यह मंत्र भक्तों की सभी मनोकामनाओं को पूरा करता है। वेदों का सार रूप होने के कारण इसके अर्थ में बहुत सी सिद्धियां विद्यमान हैं। यह मंत्र परम मुक्तिदाता है। 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जाप मनोरंजक तथा परे से भी परे है। इस मंत्र की बड़ी महिमा है। अत्यंत सूक्ष्म होने पर भी यह तीनों गुणों से परे है। पंचाक्षर मंत्र सभी विद्याओं का बीज है। यह मंत्र सर्वज्ञ एवं समर्थ है। 'ॐ' में ब्रह्म स्थित है। 'नमः शिवाय' में ईशान नामक सूक्ष्म ब्रह्माण्ड स्थित है।

भगवान शिव तो सदा इस मंत्र में निवास करते हैं। यह मंत्र संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला है। इस मंत्र पर अविश्वास करने वाला अधर्मी मनुष्य नरक का भागी होता है। इस पंचाक्षर मंत्र में सात करोड़ मंत्र हैं तथा अनगिनत उपमंत्र हैं। पंचाक्षर मंत्र एवं षडाक्षर मंत्र में संपूर्ण शिव ज्ञान तथा सभी विद्याओं के तत्व हैं। जिसके हृदय में 'ॐ नमः शिवाय' नामक महामंत्र है, उसे अन्य किसी शास्त्र के अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं होती।

तेरहवां अध्याय

कलिनाशक मंत्र

देवी पार्वती बोलीं—हे स्वामी! कलियुग में पाप रूपी अंधकार निरंतर बढ़ता जाता है, धर्म से विमुखता आ जाती है। धर्म के आचार-विचार सभी परंपराएं एवं मर्यादाएं नष्ट हो जाती हैं। तब उसमें आपके भक्तों की क्या गति होगी? और वे कैसे मुक्त हो पाएंगे?

पार्वती जी के वचन सुनकर शिवजी बोले—हे देवी! कलियुग में 'पंचाक्षर मंत्र' का भक्तिपूर्वक जाप करने वाले मनुष्यों को मुक्ति मिल जाती है। पापियों, निर्दयी एवं कुटिल जन भी श्रद्धाभावना से पंचाक्षर मंत्र का जाप करने से भवसागर से पार हो जाते हैं। पंचाक्षर मंत्र के जपने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। यह सर्वोत्तम मंत्र है। महर्षि इसी मंत्र के प्रभाव से स्वधर्माचरण करते हैं। प्रलय आने पर सभी स्थावर, जंगम जीव नष्ट हो जाते हैं। तब मैं ही एकमात्र जीवित रहता हूं। सारे वेद और शास्त्र मुझ में लीन हो जाते हैं। फिर नई सृष्टि का आरंभ होता है।

सृष्टि के पुनः आरंभ में जब श्रीहरि क्षीरसागर में सो रहे थे, उस समय उनकी नाभि से पंचमुखी ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उन्होंने सृष्टि की रचना करने हेतु मेरी तपस्या की। तब मैंने ब्रह्माजी को साक्षात दर्शने देकर उन्हें 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र की दीक्षा दी। इसी मंत्र के प्रभाव से उन्होंने देवताओं, दानवों, ऋषियों एवं प्राणीजन की रचना की। 'नमः शिवाय' यह पांच अक्षरीय मंत्र महा महिमावान है और सारे जगत का बीज रूप है। इसे वेदों से उत्तम माना गया है। मेरे द्वारा प्रकट प्रथम विद्या यही है। वामदेव इसके ऋषि हैं और पंक्ति छंद हैं। मैं इस मंत्र का देवता हूं। यह मेरा परम प्रिय मंत्र है। पंचाक्षर मंत्र कलियुग में इस भवसागर से तारने वाला मंत्र है।

चौदहवां अध्याय

व्रत ग्रहण करने का विधान

भगवान शिव बोले—हे प्रिये! ऐसा व्रत, जो क्रिया और श्रद्धा से हीन हो, निष्फल होता है। तभी सिद्ध व्यक्ति श्रद्धा भाव बढ़ाते हैं और तत्वज्ञाता गुरु की शरण में जाते हैं। प्राणीजन शरीर, मन और वाणी द्वारा उनका पूजन करते हैं और यथायोग्य वस्तुओं का दान करते हैं। इसलिए जब प्राणीजन गुरु की शरण में जाते हैं तो गुरु उन्हें मंत्र की दीक्षा देते हैं और जब शिष्य का अहंकार का भाव समाप्त हो जाता है तब उसे घृत से स्नान करा, आभूषण से भूषित कर ब्राह्मणों का पूजन करे। फिर गौशाला या मंदिर में जाकर विधिपूर्वक ज्ञान का उपदेश दे।

गुरु द्वारा दीक्षित मंत्र का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए। इससे परम गति प्राप्त होती है। वाचिक जप का फल एक गुना, उपांशु जप का सौ गुना, मानस का हजार गुना, सगर्भ का लक्ष गुना होता है। मंत्र के अंत में ओंकार होना चाहिए। ध्यान के साथ मंत्र का जाप करना चाहिए। सूर्य, अग्नि, गुरु, चंद्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौ के पास ही जप करना चाहिए। वशीकरण हेतु पूर्व, घात करने हेतु दक्षिण, धन प्राप्ति हेतु पश्चिम, शांति हेतु उत्तर की ओर मुख करके जाप करना चाहिए।

आचारहीन व्यक्तियों को लोकनिंदक माना जाता है। तप, उत्तम धन एवं श्रेष्ठ विद्या को आचार माना जाता है। निंदक मनुष्य को परलोक में भी सुख नहीं मिलता। इसलिए हमें सदाचार का पालन करना चाहिए। गुरु द्वारा दीक्षित मंत्र पतित, चाण्डालों को भी सुधारने वाला तथा परम गति प्रदान करने वाला होता है।

पंद्रहवां अध्याय

दीक्षा विधि

श्रीकृष्ण बोले—हे महर्षे! अब आप मुझे शिव संस्कारों के बारे में बताइए। यह सुनकर उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! मनुष्य द्वारा छः मार्गों को शुद्ध कर लेना संस्कार कहलाता है। ज्ञान प्रदान करने वाले तथा बंधनों का नाश करने वाले संस्कार दीक्षा कहलाते हैं। शांभवी, शाक्ती एवं मांत्री शांभवी दीक्षा तीन प्रकार की होती है। शांभवी तीव्र और तीव्रतरा दो प्रकार की होती है। पाप नष्ट करने वाली तीव्र तथा आनंद प्रदान करने वाली तीव्रतरा शांभवी दीक्षा कहलाती है।

योग मार्ग से शिष्य शरीर में प्रवेश कर गुरु द्वारा दी गई दीक्षा शाक्ती दीक्षा कहलाती है। कुंड-कुंडल सहित की गई क्रिया दीक्षा मांत्री दीक्षा कहलाती है। शिष्य को अपने गुरु के गौरव को बढ़ाने हेतु नित उनका पूजन करना चाहिए। गुरु और भगवान शिव में कोई अंतर नहीं मानना चाहिए। हमें गुरु आज्ञा का अनुसरण करना चाहिए। गुणवान गुरु, जो सर्वेश्वर शिव के परम भक्त हैं, परम मुक्तिदायक हैं।

गुरुदेव अपनी शरण में आए ब्राह्मण शिष्य की एक वर्ष, क्षत्रिय की दो वर्ष एवं वैश्यों की तीन वर्ष तक परीक्षा करें। जो शिष्य दुख एवं ताड़ना पाकर भी मौन रहे और दुख का अनुभव न करे उन्हें शिव तत्पात्र एवं शिव संस्कार योग्य मानना चाहिए। परीक्षा लेने के पश्चात गुरु को सप्रेम दीक्षा देनी चाहिए।

सोलहवां अध्याय

शिव भक्त वर्णन

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! समयाह्वय संस्कार को ग्रहण करते समय सर्वप्रथम शुभ दिन और शुभ समय देखें। भूमि पर शिल्प से मनोहर मंडल की रचना करें जिसके मध्य में वेदी हो। ईशान कोण से आठ दिशाओं में कुंडल बनाएं। फिर चंदोवा, ध्वजा-पताका, मालाओं से उसे शोभित करें। वेदी के मध्य में सुंदर मंडप होना चाहिए। फिर सोने-चांदी द्वारा ईश्वर का आवाहन करें। सोना-चांदी न होने पर चावल, सिंदूर, पुष्पों से आवाहन करें।

दो हाथ लंबा श्वेत या लाल कमल बनाएं जिसमें आठ कर्णिका हों। वेदी पर धान चावल, सरसों, तिल, पुष्प, कुशा बिछाकर कलश की स्थापना करें। कलश में जल भरकर सुगंधित पुष्प, अक्षत, कुशा, दूर्वा डालें तथा उस पर नया लाल वस्त्र लपेटें। स्वयं आसन ग्रहण करें। मंडल के मध्य में महेश्वर का पूजन करें। फिर भगवान शिव का आवाहन करते हुए कलश का पूजन करें। दक्षिण में शिवजी के अस्त्रों को पूजें तथा मंत्रोच्चारण करते हुए यज्ञ आरंभ करें।

शिव अग्नि में प्रधान आचार्य होम करें तथा भगवान शिव से सांसारिक दुखों से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना करें। फिर शिष्य शिवजी की तीन बार परिक्रमा करे और दंडवत प्रणाम करे। फिर शिव मंत्र का उच्चारण करते हुए शास्त्रानुसार गुरु शिष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर मूल मंत्र के तर्पण में दस आहुतियां दे। तत्पश्चात शिष्य पुनः स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण करे और पुनः कुश के आसन पर बैठे। गुरु शिव नाम जपते हुए शिष्य के शरीर पर भस्म लगाएं। फिर शिष्य के कान में शिव मंत्र का उपदेश दे।

मंत्र की शिक्षा लेकर शिष्य उस मंत्र का उच्चारण कर शिवजी को प्रणाम करे। तत्पश्चात गुरु शिष्य को अभिमंत्रित रुद्राक्ष व शिवमूर्ति भेंट करें और शिष्य उसे सम्मानपूर्वक ग्रहण करे।

सत्रहवां अध्याय

शिव-तत्व साधक

उपमन्यु बोले—हे कृष्णजी! कला, तत्व, भवन, वर्ण, पद, मंत्र आदि छः अध्याय हैं। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शांति और अतीत पांच अध्वा हैं, जो आवृत्त कहे जाते हैं। पृथ्वी को तत्वाध्वा कहा जाता है। त्रिलोकीनाथ भगवान शिव तो तत्व सायक हैं, उनके तत्वों की गणना करना असंभव है।

अभिमंत्रित रुद्राक्ष भेंट करने के बाद गुरु को शिष्य सहित मंडल में जाकर शिव-पूजन करना चाहिए। चार सेर चावलों की खीर बनाकर आधी खीर भगवान शिव को अर्पित कर देनी चाहिए। फिर नकार, मकार आदि पांच कलशों पर पांच वर्ण धारण कराएं। मध्य में ईशान, पूर्व में पुरुष, दक्षिण में अघोर, पश्चिम में सद्योजात, उत्तर में वामदेव को स्थापित करें। कलशों को प्रोक्षित कर हवन आरंभ करें। फिर आधी खीर को होम कर दें बाकी को प्रसाद समझकर ग्रहण करें।

तर्पण, कृत्यकर्म कर पूर्णाहुति दें। 'ॐ नमः शिवाय' से प्रदीपन कर तीन आहुतियां दें। कन्या द्वारा काते गए सूत को अभिमंत्रित कर शिष्य की शिखा में बांध दें और पूजन करें।

भगवान शिव का ध्यान और पंचाक्षर मंत्र का जप करते हुए शिष्य रात्रि को सोए और रात्रि में जो स्वप्न दिखे उसे विस्तारपूर्वक अपने गुरु को बताए।

अट्ठारहवां अध्याय

षडध्वशोधन विधि

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! तत्पश्चात आचार्य की आज्ञा से स्नान कर नित्य कर्म कर ध्यान लगाकर हाथ जोड़कर वहां से प्रस्थान करे। पुष्प अर्चन और शिव नाम का उच्चारण करते हुए मंडल में आकर ईशान देव का पूजन करे। अग्नि होम करे। फिर आहुतियां डालकर वागीश्वरी का पूजन कर वागीश को प्रणाम कर मंडल में देवता का पूजन करे। गुरुदेव शिष्य को मंत्रों द्वारा शुद्ध करें। फिर पूर्ण आहुति देकर ब्राह्मण का पूजन करे। तीन आहुतियां डालकर भगवान शिव का स्मरण करे।

तत्पश्चात नील रुद्र वागीश्वरी, तेजस्विनी शिव शक्ति का चिंतन करे। फिर गुरु कैंची का प्रोक्षण कर शिष्य की शिखा छेदन करे। फिर उसे गोबर में स्थापित कर अग्नि में होम कर दे। मंडल में विराजमान भगवान शिव और देवी पार्वती का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना करते हुए कहे—हे देवाधिदेव! कृपानिधान! आपकी परम कृपा से ही षडध्व का शोधन हुआ है और इसे अव्यय धाम की प्राप्ति हो। आप नाड़ी संधान के साथ पंचभूतों की शुद्धि करें। फिर तीन आहुतियां डालते हुए अणिमा का निरूपण करें। तत्पश्चात त्रिलोकीनाथ भगवान शिव और देवी जगदंबा का पूजन कर अपने पुण्य कार्य को सफल करने की प्रार्थना करें।

उन्नीसवां अध्याय

साधन भेद निरूपण

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! मंडप के मध्य में भगवान शिव का पूजन करके वहां कलश की स्थापना करें और फिर हवन करें। हवन करने हेतु शिष्य को सिर खोले हुए मंडप में बैठा दें। उसके पश्चात एक सौ आहुतियों का हवन करने के बाद सुगंधित पुष्प मिले जल से अभिषेक करें और शिष्य को देवाधिदेव भगवान शिव संबंधी विद्या प्रदान करें। तत्पश्चात शिष्य को साधन करने की रीति बताएं। साधन उपदेश को शिष्य ग्रहण करके गुरुदेव के सामने ही मंत्र का उच्चारण करे।

साधन मूल-मंत्र का पुरश्चरण होता है। इस प्रकार विधि-विधान से भक्तिपूर्वक आराधना पूर्ण करने के पश्चात खीर का प्रसाद अर्पण करें और दंडवत प्रणाम करें। तत्पश्चात आसन पर बैठकर भगवान शिव का स्मरण करते हुए, ध्यान लगाकर दीक्षित मंत्र का जाप करना आरंभ कर दें। इस मंत्र के एक करोड़ अथवा सामर्थ्यानुसार जप करें। इस प्रकार इस मंत्र का उपदेश देने वाले गुरु और उपदेश पाने वाले शिष्य के लिए इस लोक और परलोक में कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे प्राप्त न किया जा सके।

बीसवां अध्याय

अभिषेक

उपमन्यु बोले—हे कृष्णजी! जब शिष्य दीक्षित मंत्र को साध ले तब उसे पाशुपति व्रत धारण कराएं। फिर उसे अभिषेक करने के लिए आसन पर बैठा दें। पंचकलाओं से पूर्ण कलश स्थापित कर भगवान शिव का पूजन करें। मध्य के कलश के जल से शिष्य का अभिषेक करें। फिर देवाधिदेव भगवान शिव को सुंदर वस्त्र एवं आभूषणों से सुशोभित कर शिव मंडल में आराधना करनी आरंभ करें।

एक सौ आठ आहुतियां डालकर हवन संपन्न करें। फिर शिवजी की मूर्ति को वहां से उठा लें। शिव घट तथा अग्नि का पूजन और आराधना करें। फिर अश्वशोधन की क्रियाएं पूर्ण करें। भगवान शिव में असीम श्रद्धा और भक्ति भाव रखने वाले और शिव शास्त्रों को जानने वाले विद्वान और ज्ञानी ही शिवमंत्र को दुर्लभ समझते हैं। इसलिए शक्ति संस्कार कर निरूपण करते हैं।

इक्कीसवां अध्याय

कर्म निरूपण

श्रीकृष्ण जी बोले—हे महर्षि! अब आप मुझे कर्मकर्ता पुरुषों के नित्यकर्मों के बारे में बताइए। तब मुनिवर उपमन्यु बोले—श्रीकृष्ण! सत्पुरुषों को प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठना चाहिए। उठकर सर्वप्रथम भगवान शिव और देवी पार्वती का ध्यान करें। अरुणोदय होने पर घर से बाहर शौच से निवृत्त होकर स्नान करें। फिर आचमन कर स्वच्छ वस्त्र पहनें।

तीन मंडलों की रचना कर भगवान शिव के मंत्र का जाप करना आरंभ करें। घुटने के बल बैठकर शिवजी को प्रणाम करके अर्घ्य दें। अर्घ्य देने के लिए जल में कुशा डालें। फिर शरीर पर भस्म धारण करें। मस्तक, छाती और दोनों भुजाओं पर त्रिपुण्ड धारण करें। तत्पश्चात गले, कानों और हाथों में रुद्राक्ष धारण करें। ब्राह्मणों को सफेद, लाल, पीत, रंगीन नए वस्त्र धारण कराएं। वस्त्र धारण करने के बाद पूजा के स्थान पर उत्तर की ओर मुख करके बैठें और हाथ जोड़कर अपने आराध्य देव त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का ध्यान करें। ध्यान से उठने पर शिष्य नामाष्टक का पाठ कर गुरु को श्रद्धावनत होकर प्रणाम करे।

बाईसवां अध्याय

पूजन का न्यास निरूपण

उपमन्यु बोले—हे कृष्णजी! न्यास गृहस्थियों के क्रमानुसार तीन प्रकार का होता है। ब्रह्मचारियों के लिए उत्पत्ति न्यास, संन्यासियों के लिए लय न्यास और गृहस्थियों के लिए स्थित न्यास का विधान है। अंगूठे से लेकर कनिष्का उंगली तक स्थित न्यास होता है। लय न्यास वाम अंगुष्ठ से दक्षिण अंगुष्ठ तक है। बिंदु के साथ नकारादि वर्णों का न्यास करना चाहिए। तल और अनामिका में शिवजी का न्यास करें।

दसों दिशाओं में अस्त्र न्यास होना चाहिए। पांच भूतों के स्वामी एवं पांच कलाओं को अपने हृदय के मध्य ब्रह्मरंध्र में धारण करें। पंचाक्षर मंत्र का जाप करें। प्राणवायु को रोककर अस्त्र मुद्राओं से भूत ग्रंथि का छेदन कर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा जप करें। फिर वायु द्वारा शरीर शोषण करें। फिर कलाओं का संहार करें। दुग्ध कलाओं का स्पर्श कर अमृत द्वारा सिक्त कर शरीर को उचित स्थान पर स्थापित करें। तत्पश्चात भौतिक शरीर को भस्म द्वारा स्नान कराएं। हृदय में स्थित भगवान शिव का ध्यान करते हुए अमृत वर्षा से विधात्मक देह को सींचें।

अपने शरीर को शुद्ध करके शिव तत्व प्राप्त कर ईश्वर का पूजन करें। मातृ न्यास, ब्रह्म न्यास, प्रणव न्यास और हंस न्यास करें। हकार हृदय से सकार भृकुटि मध्य में पचास वर्ण रुद्र मार्ग के द्वारा न्यास करें। फिर क्रमशः अघोर, वामदेव, प्रणाम, हंस, न्यास, पंचाक्षरी मंत्र का न्यास करें। भगवान शिव का परम भक्त और शिव पूजन और ध्यान करने वाला मनुष्य संसार सागर से पार हो जाता है। इसी के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तेईसवां अध्याय

मानसिक पूजन

उपमन्यु बोले—कृष्णजी! अंगन्यास आदि कार्यों को पूरा करें। फिर अपने मन द्वारा पूजन सामग्री की कल्पना करें। सामग्री को जुटाकर उससे विधिपूर्वक विघ्न विनाशक श्री गणेश का पूजन करें। दक्षिण तथा उत्तर में क्रमशः नंदी एवं सुभद्रा का पूजन करें। कमल के सुंदर और कोमल आसन पर त्रिलोकीनाथ भगवान शिव व देवी पार्वती को उस पर स्थापित करें।

शिव-पार्वती की स्थापना कमलासन पर करने के बाद भक्तिपूर्वक विधि-विधान के अनुसार उनका पूजन करें। पुष्प अर्पित करें। ध्यान करें और भावनामय समिधा घृत से परमेश्वर की नाभि में होम करें। भृकुटि के मध्य में परम पवित्र दीप ज्योति के आकार वाले भगवान शिव का ध्यान करें। यही वानप्तिक भावनामय आराधना है। इसे पूर्ण करने के बाद अग्नि या स्थण्डिल लिंग में पूजन करें।

चौबीसवां अध्याय

पूजन निरूपण

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्णजी! पूजन स्थान को गंध, चंदन, फूलों और जल से पवित्र कर प्रोक्षण करें। अस्त्रों द्वारा विघ्नों का निवारण कर कवच से सारी दिशाओं का अस्त्र न्यास करें। कुशा बिछाकर उसे जल से मार्जित करें। प्रोक्षणी पात्र, अर्घ्य पात्र, पाद्य आचमन को शुद्ध कर उनमें जल, खम तथा चंदन डालें और आचमन के जल में कपूर, कंकोल, कीमता, तमाल व चंदन मिलाएं। चावल, कुशा, दूर्वा, जौ, अक्षर, तिल, घृत, सरसों, पुष्प और भस्म को मिलाकर मंत्र द्वारा रक्षित करें। विनायक देव का पूजन करें। फिर नंदीश्वर का पूजन करने के पश्चात षोडशोपचार से शिवलिंग का पूजन करें।

ऊर्ध्व भाग में कमलासन रखें। कमल दल आठ प्रकार की सिद्धि देने वाला है। वामादिक शक्तियां बीज हैं। भगवान शिव का पूजन करें। पंचगव्य द्वारा स्नान कराएं। फिर आंवले और हल्दी से इसका लेप करें। देव स्नान कराकर सुंदर वस्त्र एवं यज्ञोपवीत धारण कराएं। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, गंध, पुष्प, भूषण जल, मुखवास कर रत्नजड़ित मुकुट एवं आभूषण चढ़ाएं। फिर भगवान शिव-पार्वती की आरती उतारें। आरती की थाली को शिवलिंग के सामने तीन बार घुमाकर माथे पर सुगंधित भस्म धारण करें। फिर अपनी पूजा-अर्चना में रह गई त्रृटि के लिए भगवान से क्षमायाचना करें। इस प्रकार पूजन करने से परम फल की प्राप्ति होती है।

पच्चीसवां अध्याय

नित्य कृत्य विधि

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्णजी! दीप दान करने से पहले आरती एवं पूजन भी किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम, ईशान देव से लेकर सद्योजात तक भगवान शिव का जाप करें। पहले आवरण में हृदय से लेकर अस्त्र न्यास कर पूजन करें। पूर्व में इंद्र, दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण, उत्तर में कुबेर, अग्निकोण में अग्नि, नैऋति और निऋति में वायु की पूजा करनी चाहिए। कमल से बाहर वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए।

तत्पश्चात सभी स्थानों से आठ लोकपालों का पूजन कर मां जगदंबा का पूजन कर उनकी आराधना करें। योग, ध्यान, जप और होम कृत्यों में छः तरह का नैवेद्य होना चाहिए। उसके बाद कपूर, कंकोल, जावित्री, कस्तूरी, केसर, मृगमद, सुगंधि, पुष्प आदि अर्पण कर घी का दीपक जलाएं। फिर हाथी दांत से निर्मित आसन दिव्य छत्र, चंवर, भेरी और मृदंग चढ़ाएं। अपनी सामर्थ्य के अनुसार किया गया शिव पूजन उत्तम फल देने वाला होता है। शिवजी में अनन्य भक्ति रखने वाले प्राणी, को अवश्य ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

छब्बीसवां अध्याय

सांगोपांग पूजन

उपमन्यु बोले—हे कृष्णजी! शिव पूजन परम फलदायक है। बड़े-बड़े पापी, ब्रह्महत्यारे, चोर, व्यभिचारी पुरुष यदि शिव पूजन करें तो उनके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिए पतितों को शिव-पूजन अवश्य करना चाहिए। शिव पंचाक्षरी मंत्र का जाप करने से बंधन में पड़े मनुष्य बंधन से मुक्त हो जाते हैं। अनेकों योनियों में जीवन व्यतीत करने के पश्चात हमें मनुष्य योनि मिली है। जो मनुष्य इस अलभ्य मनुष्य देह को पाकर भी शिव-पूजन नहीं करता उसका जन्म सफल नहीं होता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को भक्तिपूर्वक त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का पूजन-आराधन अवश्य करना चाहिए।

भगवान शिव के पूजन के समान अन्य कोई भी धर्म नहीं है। यह मनुष्य को सभी सांसारिक बंधनों एवं मोह-माया से मुक्ति दिलाने वाला है। शिव-पूजन करने के पश्चात मनुष्य को परिवार एवं बंधु-बांधवों सहित प्रसाद बांटना चाहिए।

सत्ताईसवां अध्याय

अग्नि कृत्य विधान

उपमन्यु बोले—हे कृष्णजी! अग्नि कृत्य तो कुंड, स्थंडिल, वेदी, लोहे के पात्र अथवा मिट्टी के पात्र में कर्तव्य हैं, उसमें विधिपूर्वक अग्नि की स्थापना करनी चाहिए और फिर हवन करना आरंभ करें। सबसे पहले कुंड का निर्माण करें। कुंड के चारों ओर तीन मेखला होनी चाहिए। फिर कुंड में योनि की रचना करें। कुंड को गोबर से लीपकर उसे अग्नि में तपाएं और तत्पश्चात उस पर वेदोक्त सूत्र लिख दें। कुशा पुष्पों से कुंड को प्रोक्षित करें।

पूजन की सभी सामग्री एकत्रित करें। मणि द्वारा उत्पन्न या किसी ब्राह्मण के घर से लाई गई अग्नि को ही ग्रहण करें। कुंड की तीन बार परिक्रमा कर अग्निबीज मंत्र का उच्चारण करते हुए कुंड में अग्नि स्थापित करें। फिर दक्षिण दिशा में शिव पूजन कर मंत्र न्यासादि कर घी में धेनु मुद्रा दिखाकर स्रुवा को तपाकर प्रोक्षण करें। फिर संस्कारों की सिद्धि के लिए बीज मंत्रों से होम करें। ऐसा करने से शिवाग्नि संपन्न हो जाती है।

तत्पश्चात भगवान शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप का आह्वान कर उसका पूजन करें फिर दीपक तक सिंचन कर समिधाओं से होम करें। दूर्वा एवं घी की आहुतियां दें। धान, खील, जौ, सरसों, तिल को घी में मिलाकर उससे होम करें। फिर तीन प्रायश्चित आहुतियां दें। बचे घी को एक पुष्प पर रखकर वौषट् मंत्र द्वारा हवन करें। विसर्जन कर अग्नि की रक्षा करें। देवों का आह्वान कर उनका पूजन करें। भस्म को मंत्र द्वारा धारण करें।

अग्नि कृत्य समाप्त होने पर शिव शास्त्रानुसार बलि कर्म करें। विद्या के सामने गुरु मंडल की रचना करें और उस पर आसन बिछाकर फूल से गुरु पूजन करें। फिर निर्धनों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करें। फिर आचमन कर शिव मंत्र को जपते हुए ध्यान करें।

अट्ठाईसवां अध्याय

नैमित्तिक पूजन विधि

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण जी! प्रत्येक माह के दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उत्तरायण संक्रांति ग्रहण काल में विशेष पूजन करना चाहिए। माघ के महीने में पंचगव्य शोध कर शिवजी को स्नान कराएं और उस जल को पिएं। इस जल को पीने से ब्रह्म पाप भी नष्ट हो जाते हैं। पौष माह में पुण्य नक्षत्र में भगवान शिव की आरती करें। माघ में मघा नक्षत्र में कंबल और घी का दान करें।

फाल्गुन के उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के दिन बहुत बड़ा उत्सव करें। चित्रा नक्षत्र में चैत्र माह में शिवजी का ढोला उत्सव करें। वैशाख के विशाखा नक्षत्र में फूल मंडली उत्सव करें। जेठ महीने के मूल नक्षत्र में शीतल जल का कुंभ दान करें। आषाढ़ के उत्तराषाढ़ा में पवित्र व्रत धारण करें। श्रावण माह के श्रवण नक्षत्र में प्राकृत प्रकार के सभी मंडल बनाकर उनका पूजन करें। उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में प्रोक्षण करें।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जल क्रीड़ा करें। असौज में खीर खाएं। शतभिषा नक्षत्र में अग्नि कर्म करें। कार्तिक में कृतिका नक्षत्र पर सहस्र दीपक जलाकर उनका दान करें। मृगशिर महीने के आर्द्रा नक्षत्र में स्नान करें। अपने द्वारा किए गए किसी बुरे कार्य के लिए भगवान शिव से क्षमा याचना करें और बुरे कार्यों के लिए प्रायश्चित करें। इस प्रकार नित्य पूजन करने से इसी जन्म में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

उन्तीसवां अध्याय

काम्य कर्म निरूपण

श्रीकृष्ण बोले—हे महर्षे! अब आप मुझसे शिव धर्म के अधिकारी पुरुषों का कर्तव्य कर्म निरूपण करें। उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! कर्म ऐहिक और आयुष्मिक दो प्रकार के होते हैं जिनमें आयुष्मिक कर्म, क्रियामय, तपोमय, जनमय ध्यानमय, सर्वमय आदि कुल पांच प्रकार के होते हैं। इन कर्मों की पूर्णता हेतु हवन, दान और पूजन आदि सब कर्म किए जाते हैं। शक्तिमान पुरुष ही इन कर्मों को सफल करते हैं।

भगवान शिव ही अपने भक्तों को आज्ञा और शक्ति प्रदान करने वाले हैं। इसलिए उन्हीं पुरुषों को काम्य कर्म करना चाहिए। यह काम्यकर्म इस लोक और परलोक दोनों में परम फलदायक है। शिव महेश्वर हैं, वे सबके ईश्वर हैं। ज्ञानपूर्वक यज्ञ करने वाले शिवभक्त ही महेश्वर हैं। इसलिए ही आभ्यंतर कर्म शैव तथा वाहा कर्म महेश्वर हैं। गंध, रस, वर्ण द्वारा भूमि परीक्षा कर पृथ्वी के पृष्ठ पर पूर्व दिशा की उत्पत्ति करें और मंडल की रचना करें। फिर सर्वेश्वर महेश्वर का पूजन करें। तीन तत्वों से युक्त त्रिलोकीनाथ भगवान शिव की मूर्ति के समक्ष शक्ति का आह्वान करें। तत्पश्चात पांच आवरणों का पूजन शुरू करना चाहिए।

तीसवां अध्याय

आवरण पूजन विधान

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! सबसे पहले भगवान शिव के दक्षिण में बैठे गणनायक, बाईं ओर कार्तिकेय एवं चारों ओर ईशान से सद्योजात का पूजन करें। द्वितीय आवरण में पूर्व दिशा के बाईं ओर से शक्ति, सूक्ष्मतत्व, पश्चिम में शक्ति, उत्तर दिशा में ईशान कोण का रुद्र सहित पूजन करें। तृतीय आवरण में शिवजी की आठों मूर्तियों का पूजन करें। फिर वृषेंद्र का पूजन करें। तत्पश्चात दक्षिण में नदी, उत्तर में महाकाल, शास्त्रों, अग्निकोण एवं मातृकाओं का दक्षिण दिशा में पूजन करें। श्री गणेश को नैऋत्य कोण में पूजें। पश्चिम में कार्तिक, वायव्य में ज्येष्ठा, उत्तर में गौरी व ईशान कोण में चंड का पूजन करें।

चौथे आवरण में सर्वप्रथम ध्यान करें। फिर पूर्व में भानु, दक्षिण में ब्रह्मा, पश्चिम में रुद्र, उत्तर में श्रीहरि विष्णु का पूजन करें। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि का पूजन करने के बाद आठ ग्रहों का पूजन करें। पांचवें आवरण में देव योनि का पूजन करें और फिर देवेश का पूजन करते हुए पंचाक्षरी मंत्र का जाप करें। पूजन करने के पश्चात भगवान शिव-पार्वती को सभी भोग अर्पित करें। फिर स्तुति गायन करें और 'ॐ नमः शिवाय' का एक सौ आठ बार जाप करें। क्रमानुसार गुरुदेव का पूजन करें। सभी आवरणों के साथ देव विसर्जन करें। सब सामान गुरुदेव को अर्पित करें। यह योग योगेश्वर कहलाता है जो चिंतामणि तुल्य है।

इकतीसवां अध्याय

शिव-स्तोत्र निरूपण

उपमन्यु बोले—हे श्रीकृष्ण! अब मैं आपको पंचवरण नामक पवित्र स्तोत्र सुनाता हूं। हे जगतनाथ! प्रकृति से सुंदर नित्य चेतन स्वरूप की सदा जय-जयकार हो। हे सरल स्वभाव वाले पवित्र, चरित्रवान सर्वशक्ति संपन्न! पुरुषोत्तम तुम्हारी सदा ही जय हो। हे मंगलमूर्ति कृपानिधान! देवाधिदेव! मैं आपको प्रणाम करता हूं। भगवन्! पूरा संसार आपके वश में है। प्रभु आप सब पर कृपा करके अपने भक्तों की कामनाओं को पूरा करें।

हे जगदंबा! हे मातेश्वरी! आप हम सब भक्तों के मनोरथों को पूरा कीजिए। हे गणनायक! हे स्कंद देव! आप भगवान शिव की आज्ञा का पालन करने वाले और उनके ज्ञान रूपी अमृत को पीने वाले हैं। भगवन्! आप मेरी रक्षा करें। हे पांच कला के स्वामी आप मेरी अभिलाषा पूरी करें। हे आठ शक्तियों के स्वामी! आप सर्वेश्वर शिव की आज्ञा से हमारी कामनाएं पूरी करें। हे सात लोकों की माता! आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। हे विघ्न विनाशक! आप हमारे शुभ कार्यों में आने वाले सभी विघ्नों को दूर करें। इस प्रकार यह आवरण स्तोत्र अत्यंत शुभ है। प्रतिदिन इस कीर्तन को श्रवण करने वाला पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

बत्तीसवां अध्याय

सिद्धि कर्मों का निरूपण

उपमन्यु बोले—कृष्णजी! सर्वप्रथम प्राण वायु को जीतना चाहिए क्योंकि इस पर विजय प्राप्त होने से सब वायुओं पर विजय मिल जाती है। क्रमानुसार अभ्यस्त किया गया प्राणायाम सब दोषों को हटा देता है। यह शरीर की भी रक्षा करता है। जब प्राण वायु पर विजय प्राप्त हो जाती है तो विष्ठा, मूत्र, कफ सभी मंद पड़ जाते हैं। श्वास वायु लंबी तथा देर से आने लगती है। हल्कापन, द्रुतगमन, उत्साह, बोलने में चातुर्य सभी रोगों का विनाश सब प्राणायाम की सिद्धि से पूरे हो जाते हैं।

इंद्रियों को वश में करने का नाम प्रत्याहार है, क्योंकि इंद्रियां ही विषयों में संलग्न होती हैं। सभी इंद्रियों को वश में कर लेना ही परम सुखकारी होता है। यह ही विद्वानों को ज्ञान और वैराग्य प्रदान करता है। अपनी इंद्रियों को वश में कर लेने से आत्मा का उद्धार होता है। अपने हृदय को एकाग्र करना और शिव चरणों में समर्पित कर देना ही सांसारिक बंधनों से मुक्ति प्रदान करता है।

तेंतीसवां अध्याय

लिंग स्थापना से फलागम

मुनिवर उपमन्यु श्रीकृष्ण को पारलौकिक विधि के बारे में बताते हैं। यह विधि सर्वोत्तम है। इस त्रिलोक में निवास करने वाले सभी प्राणी इस विधि का आश्रय लेकर अपने पद को प्राप्त करते हैं। सबने अपने पदों के अनुसार सुख, शासन और राज्य को प्राप्त किया है। भगवान शिव को श्वेत चंदन के जल से स्नान कराएं, श्वेत कमल से ही उनका पूजन कर हाथ जोड़कर प्रणाम करें। उन्हें कमल के ही आसन पर विराजमान करें। धातु का शिवलिंग बनाकर उसका पूजन करें। बेल पत्रों द्वारा कमल के दाईं ओर बैठे हुए भगवान शिव और देवी पार्वती का पूजन-आराधन करें। फिर सुगंधित वस्तुओं से सुरभित करें। मूर्ति के दाईं ओर अगर (अंगरू), पश्चिम में मैनसिल, उत्तर में चंदन और पूर्व में हरिताल लगाएं।

तत्पश्चात भगवान शिव की मूर्ति के चारों ओर गूगल और अगर की धूप दें। फिर उन्हें नए वस्त्र पहनाएं। फिर उन्हें खीर का नैवेद्य अर्पित कर घी का दीपक जलाएं। मंत्रोच्चारण करते हुए शिवजी की परिक्रमा करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करें और अपने द्वारा किए गए अपराधों के लिए क्षमा याचना करें। इस प्रकार पूजन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

चौंतीसवां अध्याय

लिंग स्थापना से शिव प्राप्ति

मुनि उपमन्यु ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण! जितने भी प्रकार की सिद्धियां हैं, वे शिवलिंग की स्थापना करने से तत्काल सिद्ध हो जाती हैं। सारा संसार लिंग का ही रूप है इसलिए इसकी प्रतिष्ठा से सबकी प्रतिष्ठा हो जाती है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कोई भी अपने पद पर स्थिर नहीं रह सकते। अब मैं तुम्हें भगवान शिव के लिंग के बारे में बताता हूं।

लिंग तीन गुणों को उत्पन्न करने का कारण है। वह आदि और अंत दोनों से रहित है। इस संसार का मूल प्रकृति है और इसी से चर-अचर जगत की उत्पत्ति हुई है। यह शुद्ध, अशुद्ध और शुद्धाशुद्ध आदि से तीन प्रकार का है। सभी देवता और प्राणीजन इसी से उत्पन्न होकर अंत में इसी में लीन हो जाते हैं। इसलिए भगवान शिव को लिंग रूपी मानकर उनका देवी पार्वती सहित पूजन किया जाता है। भगवान शिव और देवी पार्वती की आज्ञा के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं हो सकता।

त्रिलोकी के प्रलयकाल आने पर जब भयानक प्रलय मची थी उस समय श्रीहरि भगवान विष्णु क्षीरसागर में अथाह जल के बीच शेष शय्या में सो गए। तब उनके नाभि कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। शिवजी की माया से मोहित ब्रह्माजी विष्णुजी के पास जाकर उनसे बोले—तुम कौन हो? यह कहकर उन्होंने निद्रामग्न श्रीहरि को झिंझोड़ दिया।

तब जागकर श्रीहरि ने आश्चर्य से अपने सम्मुख खड़े व्यक्ति को देखकर पूछा—पुत्र तुम कौन हो और यहां क्यों आए हो? यह सुनकर ब्रह्माजी को क्रोध आ गया। तब वे दोनों ही अपने को बड़ा और सृष्टि का रचयिता मानकर आपस में झगड़ने लगे। जल्दी ही बढ़ते-बढ़ते बात युद्ध तक पहुंच गई और ब्रह्मा-विष्णु में भयंकर युद्ध होने लगा। तब त्रिलोकीनाथ भगवान शिव उस युद्ध को रोकने के लिए दिव्य अग्नि के समान प्रज्वलित लिंग रूप में उनके बीच में प्रकट हो गए। उन्हें देखकर दोनों आश्चर्यचकित हो गए और उनका अभिमान जाता रहा। तब वे उस लिंग के आरंभ और अंत की खोज के लिए निकल पड़े। ब्रह्मा ने हंस का रूप धारण किया और तीव्र गति से ऊपर चले गए। श्रीहरि ने वराह रूप धारण किया और नीचे की ओर गए। एक हजार वर्षों तक दोनों लिंग के आदि अंत की तलाश में घूमते रहे परंतु उन्हें कुछ न मिला। उन्होंने यही समझा कि यह कोई प्रकाशमान आत्मा है। तब ब्रह्माजी और विष्णुजी दोनों ने हाथ जोड़कर श्रद्धाभाव से प्रकाश पुंज शिवलिंग को प्रणाम किया।

पैंतीसवां अध्याय

ब्रह्मा-विष्णु मोह

मुनि उपमन्यु बोले—हे वासुदेव! उस समय वहां पर ओंकार का नाद होने लगा परंतु ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही उस ब्रह्म ध्वनि को समझ न सके। 'ॐ' में स्थित अकार, उकार और मकार क्रमशः दक्षिण, उत्तर और मध्य भाग में तथा अर्द्ध मात्रा रूपी नाद लिंग के मस्तक पर जा पहुंचा। प्रणव अपना रूप बदलकर वेद के रूप में प्रकट हुए। अकार से ऋग्वेद, उकार से यजुर्वेद, मकार से सामवेद और नाद से अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई।

सर्वप्रथम ऋग्वेद की उत्पत्ति हुई। इसमें रजोगुण से संबंधित विधि मूर्ति थी। सृष्टि लोक, तत्वों में पृथ्वी, अव्यय, आत्मा, काल निवृत्ति, चौंसठ कलाएं और ऐश्वर्य आदि विभूतियां ऋग्वेद से प्राप्त हुईं। यजुर्वेद से सत्वगुण, अंतरिक्ष और विद्या आदि तत्वों की प्राप्ति हुई। सामवेद से तमोगुणी रुद्र मूर्ति एवं संहारक वस्तुएं उत्पन्न हुईं। अथर्ववेद में निर्गुण आत्मा का वैभव, माहेश्वरी, सदाशिव, निर्विकार आत्माओं की स्थिति का वर्णन है। नाद मेरी आत्मा है। समस्त विश्व ओंकार के अर्थ का सूचक है।

'ॐ' शब्द शिव का वाचक है। शिव और प्रणव में कोई अंतर नहीं है। संसार के रचनाकर्ता ब्रह्मा, रक्षक विष्णु और संहारक रुद्र हैं। रुद्र ही ब्रह्मा-विष्णु को अपने नियंत्रण में रखते हैं। वे शिव ही सब कारणों के कारण हैं। आप दोनों बिना बात ही एक-दूसरे के दुश्मन बने हैं। इसलिए मैं आपके बीच शिवलिंग रूप में उत्पन्न हुआ हूं। यह सुनकर ब्रह्मा और विष्णु दोनों का ही अभिमान टूट गया और वे भगवान शिव से बोले—हे ईश्वर! आपने हमें अपने चरण कमलों के दर्शन का सुअवसर प्रदान किया है। हम धन्य हो गए। हमारा अपराध क्षमा करें। तब भगवान शिव बोले—हे पुत्रो! तुम दोनों अभिमानी हो गए थे इसलिए मुझे यहां लिंग रूप में प्रकट होना पड़ा। अब अभिमान त्यागकर सृष्टि के कार्यों को पूरा करने में अपना योगदान दो।

छत्तीसवां अध्याय

शिवलिंग प्रतिष्ठा विधि

श्रीकृष्णजी बोले—हे मुनिवर! आपने मुझ पर कृपा कर इस अद्भुत कथा को मुझे बताया। अब आप लिंग और वेदी की प्रतिष्ठा की विधि भी बताइए। यह सुनकर उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! शुक्ल पक्ष में शिव-शास्त्र के अनुसार शिवलिंग का निर्माण कराएं। गणेश जी का पूजन कर लिंग को स्नान के लिए ले जाएं। पांच स्थान की मिट्टी, गोबर और पंचगव्य से शिवलिंग को स्नान कराएं। मंत्रोच्चारण करते हुए लिंग का जल में अधिवास करें। मूर्ति को सुंदर वस्त्र और आभूषणें से सुसज्जित कर उनका पूजन करें और उन्हें चौकी पर स्थापित करें। पूर्व की ओर मूर्ति का माथा और पश्चिम में पिंडी होनी चाहिए। तत्पश्चात पुनः स्नान कराकर पूजन करें। वेदी की भूमि के ईशान कोण में कमल लिखें। शिवजी का आह्वान कर पूजन करें। वेदी के पश्चिम में चंडिका कमल लिखकर पुष्प अर्पित करें। फिर शिवलिंग को नए वस्त्रों में लपेटें। विधेश कुंभ और वर्धिनी शैवी की स्थापना करें। फिर चार विप्र मंत्रोच्चारण करते हुए हवन करें। एक सौ आठ घी की आहुतियों से हवन करें। हवन के पश्चात पूर्णाहुति दें। फिर महापूजन आरंभ करें। दस कलशों के जल में शिवमंत्र पढ़कर अंगूठे और अनामिका द्वारा मृत्तिका मंत्र-जाप करें। फिर उस जल से शिवलिंग का अभिषेक करें। फिर विधेश के घट से अभिषेक करें।

तत्पश्चात दोनों हाथ जोड़कर भक्ति भावना से भगवान शिव का देवी पार्वती सहित स्तुति करते हुए आह्वान करें। फिर पंचोपचार से उनका पूजन करें। पूजन करने के पश्चात हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करें। फिर अन्य मूर्तियों को भी इसी विधि से स्थापित करें। सब कार्यों के पूर्ण हो जाने पर आचार्य को यथावत दक्षिणा देकर उसके चरण छूकर आशीर्वाद प्राप्त करें।

सैंतीसवां अध्याय

योग-निरूपण

मुनि उपमन्यु बोले—हे केशव! अब मैं आपको योग-विधि के बारे में बताता हूं। जिसके द्वारा सभी विषयों से निवृत्ति हो और अंतःकरण की सब वृत्तियां शिवजी में स्थित हो जाएं, वह परम योग है। योग पांच प्रकार का होता है। मंत्र योग, स्पर्श योग, भावयोग, अभाव योग और महायोग। मंत्रों का उनके अर्थ सहित ज्ञान होना महायोग कहलाता है। मंत्रों को प्राणायाम द्वारा सिद्ध करना स्पर्श योग कहलाता है। जब जिह्वा मंत्रों को स्पर्श न करते हुए भी उनका जाप करती है तो वह भावयोग कहलाता है। प्रलय के समय से संबद्ध पूरे संसार का विचार अभावयोग कहलाता है। जब साधना करने वाले की सभी मानसिक वृत्तियां भगवान शिव से जुड़ जाएं और वह नित्य शिव-चिंतन में मग्न रहे ऐसी दशा महायोग कहलाती है।

सांसारिक बंधनों से मुक्ति की कामना करने वाले मनुष्य ही इस चिंतन और वैराग्य को अपने जीवन में अपनाकर महायोग को प्राप्त करते हैं। हमारे शरीर में रहने वाली प्राणवायु को रोकना प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम रेचक, पूरक और कुंभक तीन प्रकार का होता है। साधक को इनका अभ्यास करना चाहिए क्योंकि इसी से शरीर की शुद्धि होती है। प्राणायाम सगर्भ और अगर्भ दो प्रकार का होता है। जप और ध्यान वाला प्राणायाम सगर्भ कहलाता है परंतु जिसमें जप और ध्यान नहीं करते, वह अगर्भ प्राणायाम कहलाता है। योगीजन सगर्भ प्राणायाम करते हैं। प्राणवायु पर विजय प्राप्त कर लेने पर सभी वायु उस योगी के अधिकार में आ जाती हैं। प्राणायाम शरीर को पुष्ट, स्वस्थ और निरोगी बनाता है। इसके नियमित अभ्यास से कफ, मूत्र, पुरीष आदि कम हो जाते हैं। समस्त इंद्रियों को अपने वश में कर लेना प्रत्याहार कहलाता है। इंद्रियों को अपने वश में रखने से स्वर्ग और न रखने से नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए अपने चित्त को एकाग्र रखना चाहिए।

भगवान शिव, जो कि सबके ईश्वर हैं, त्रिलोकीनाथ हैं, का ध्यान करने से योगी का कल्याण होता है। अपने पूरे शरीर के साथ-साथ इंद्रियों पर काबू पाने से आत्मा का उद्धार होता है।

अड़तीसवां अध्याय

योग गति में विघ्न

उपमन्यु बोले—हे केशव! आलस्य, व्याधि, प्रमदा, स्थान, संशय, चित्त का एकाग्र न होना, अश्रद्धा, दुख, वैमनस्य आदि योग में पड़ने वाले विघ्न हैं। इन विघ्नों को सदा शांत करते रहना चाहिए। इन सब विघ्नों के शांत होने पर छः उपसर्ग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रतिमा, श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वादन, वेदना आदि भोग के विषय हैं। यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी विप्र कृष्ट नहीं होता, यही प्रतिमा है।

यत्न के बिना जब सबकुछ हमें सुनाई देने लगता है उसे श्रवण कहते हैं। सभी प्राणियों की बात को जानना और समझ लेना वार्ता कहलाता है। बिना कोई कोशिश किए जब सबकुछ आसानी से दिखाई देने लगे तो उसे दर्शन कहते हैं। दिव्य पदार्थों के स्वाद का नाम 'आस्वादन' है। वेदना को सभी प्रकार के स्पर्शों का ज्ञान माना जाता है। योगी उपसर्ग पाकर सिद्ध हो जाता है।

उन्तालीसवां अध्याय

योग वर्णन

उपमन्यु बोले—हे केशव! त्रिलोकीनाथ भगवान शिव का सभी योगी-मुनि ध्यान करते हैं। इसी के द्वारा सिद्धियां प्राप्त होती हैं। सविनय और निर्विषय आदि ध्यान कहे गए हैं। निर्विषय ध्यान करने वाले अपनी बुद्धि के विस्तार से ध्यान करते हैं और ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। सविषय ध्यान सूर्य किरणों को आश्रय देने वाला होता है। शांति, प्रशांति, दीप्ति, प्रसाद ये दिव्य सिद्धियां देवी का ध्यान करते हुए प्राणायाम द्वारा सिद्ध होती हैं।

बाह्य और आभ्यंतर अंधकार का विनाश प्रशांति और सभी आपत्तियों का नाश शांति है। बाह्य आभ्यंतर प्रकाश का दीप कहा जाता है। जब हमारी बुद्धि शुद्ध हो जाए, यही प्रसाद है। बाहर-भीतर के सभी कार्य पूर्ण होने पर सब कारण प्रसिद्ध हो जाते हैं। भगवान शिव, जो साक्षात परमेश्वर हैं, का भक्तिपूर्वक ध्यान करने से सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि का प्रवाह ध्यान एवं स्मरण से होता है। समस्त ऐश्वर्य, अणिमा आदि सिद्धियां एवं मुक्ति भगवान शिव का स्मरण एवं ध्यान करने से मिलती हैं।

देवाधिदेव महादेव जी का ध्यान मोक्ष प्रदान करने वाला है। इसलिए ज्ञानी मनुष्यों को शिव ध्यान एवं स्मरण अवश्य करना चाहिए। ज्ञान योग यज्ञों से बढ़कर फल देता है। महायोगी योग सिद्ध कर लोकहित और लोक कल्याण हेतु लोक भ्रमण करते रहते हैं। वे विषय वासना को तुच्छ मानते हैं और सब इच्छाओं को त्यागकर वैराग्य ले लेते हैं। वे शिव-शास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार अपनी देह का त्याग कर देते हैं। इससे उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

भगवान शिव में अगाध भक्ति और श्रद्धा रखने वाले ज्ञानी मनुष्यों को इस सांसारिक मोह-माया से मुक्ति मिल जाती है और वे जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होकर परम शिवधाम को प्राप्त कर लेते हैं।

चालीसवां अध्याय

मुनियों का नैमिषारण्य गमन

सूत जी बोले—हे मुनियो! महर्षि उपमन्यु ने भगवान श्रीकृष्ण को ज्ञान योग का उपदेश दिया। वही उपदेश वायुदेव ने ऋषिगणों को सुनाया था जिसे सुनकर वे बहुत हर्षित हुए थे। प्रातःकाल होने पर नैमिष तीर्थ में निवास करने वाले मुनिजन यज्ञांत स्नान के लिए परम पवित्र नदी को ढूंढ़ने लगे। उस समय ब्रह्माजी की आज्ञा से परम पवित्रा सरस्वती नदी वहां बहने लगी। तब सब ऋषिगणों ने वहां यज्ञांत स्नान कर संध्या पितृ तर्पण किया और वहां से काशी के लिए निकल पड़े।

काशी पहुंचकर उन्होंने पतित पावनी भागीरथी गंगा में स्नान किया एवं बाबा विश्वनाथ के दर्शन कर विधिनुसार पूजन किया। काशी से वे चल पड़े। रास्ते में उन्हें एक अद्भुत दिव्य प्रकाश चारों और फैला दिखाई दिया जिसमें पाशुपत व्रत की सिद्धियां प्राप्त भस्मधारी मुनिजन विलीन हो रहे थे। फिर शीघ्र ही वह तेज भी विलीन हो गया। यह देखकर नैमिषारण्य के सभी मुनिजन ब्रह्माजी से मिलने ब्रह्मलोक चल दिए। वहां पहुंचकर उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम कर उनकी स्तुति की।

मुनिश्वर बोले—हे जगतपिता ब्रह्माजी! वायुदेव ज्ञानोपदेश देकर वहां से चले आए, तब हम सबने यज्ञ कर यज्ञांत स्नान से निवृत्त हो काशी नगरी की ओर प्रस्थान किया। वहां गंगा में स्नान कर बाबा विश्वनाथ के दर्शन किए। वहां हमें एक अद्भुत तेज के दर्शन हुए। उस तेज में अनेक तपस्वी विलीन हो रहे थे। कुछ समय पश्चात वह तेज स्वयं विलीन हो गया। उसे देखकर में बहुत आश्चर्य हुआ। भगवन् वह क्या था?

ऋषिगणों के प्रश्न को सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे ऋषिगणो! आपने बहुत समय यह करके देवाधिदेव भगवान शिव को प्रसन्न किया है। उस दिव्य तेज में प्रवेश करने वाले पाशुपत व्रतधारी मुनि थे। उसके दर्शन का यही अर्थ है कि आपको शीघ्र ही दिव्य लोक की प्राप्ति होने वाली है। इसलिए आप मोक्ष प्राप्त करने हेतु पाशुपत व्रत धारण करें। अब आप सब यहां से सुमेरु पर्वत पर चले जाएं। वहां सनत्कुमार जी आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे पूर्व में अपने अहंकार के कारण मिले शाप से मुक्ति पाने के लिए वहां तपस्या कर रहे हैं। वहां उन्हें ज्ञान प्राप्त होगा।

इकतालीसवां अध्याय

मुनियों को मोक्ष

सूत जी बोले—हे मुनिवर! ब्रह्माजी के वचन सुनकर ऋषिगण उन्हें प्रणाम कर सुमेरु पर्वत पर चले गए। वहां उन्होंने पर्वत शिखर पर एक सुंदर तालाब की उत्तर दिशा में तपस्या करते सनत्कुमार जी को देखा। मुनि उन्हें प्रणाम कर उनके पास बैठ गए। सनत्कुमार जी ने आंखें खोलकर अपने पास बैठे मुनियों को देखकर उनसे प्रश्न किया—हे ऋषिवर! आप कौन हैं और यहां क्या कर रहे हैं? यह सुनकर ऋषिगणों ने सारी बातें उन्हें बता दीं। उसी समय नंदीश्वर भी वहां आ गए। नंदीश्वर को अपने सामने पाकर सभी मुनियों और सनत्कुमार जी ने आसन से उठकर उन्हें दंडवत प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे।

सनत्कुमार जी बोले—हे नंदीश्वर! इन मुनियों ने, जो कि नैमिषारण्य में निवास करते हैं, दस हजार वर्षों तक यज्ञ किया है। उस महायज्ञ के समाप्त होने पर ब्रह्माजी ने इन्हें आपकी शरण में भेजा है। आप इनका कल्याण करें और इन्हें दिव्य अद्भुत ज्ञान प्रदान करें।

सनत्कुमार जी के वचन सुनकर नंदीश्वर ने अपनी कृपादृष्टि ऋषिगणों पर कर दी। नंदीश्वर ने परम दिव्य शिवतत्व का उपदेश उन्हें दिया। तब उपदेश देकर वे बोले—यह परम ज्ञान धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्रदान करने वाला है। अब आप मुझे जाने की आज्ञा प्रदान करें। यह कहकर नंदीश्वर वहां से चले गए। इसके पश्चात सभी ऋषिगण प्रयाग तीर्थ चले गए और वहां उन्होंने अपना महान योग पूरा किया। योग पूर्ण होने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि कलियुग आ रहा है। यह देखकर वे नैमिषारण्य मुनि काशी चले गए। वहां मुक्ति की कामना करते हुए उन्होंने पाशुपत व्रत धारण किया। उनकी सिद्धि सफल हुई और वे शिव पद को प्राप्त हुए।

श्री व्यासजी बोले—इस प्रकार यह शिव पुराण पूर्ण हुआ। इस शिव पुराण को आदरपूर्वक पढ़ने अथवा सुनने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसे प्रथम बार पढ़ने या सुनने से सारे पाप भस्म हो जाते हैं। दुबारा श्रवण से भक्तिहीन को भक्ति व भक्त को भक्ति की समृद्धि प्राप्त होती है। तीसरी बार श्रवण करने से मुक्ति मिल जाती है। अपनी मनोकामना पूर्ण करने हेतु इसका पांच बार पाठ करना चाहिए। प्राचीन काल में शिव पुराण का सात बार पाठ कर अनेक राजाओं, ब्राह्मणों और वैश्यों ने साक्षात शिव दर्शन किए। इस पवित्र ग्रंथ को भक्तिपूर्वक सुनने वाला मनुष्य संसार में सभी सुखों को भोगकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। शिव पुराण भगवान शिव को बहुत प्रिय है। यह वेदों के समान भोग और मोक्ष देने वाला है। शिव पुराण का पाठ करने वाले मनुष्य पर देवाधिदेव महादेव की सदा कृपादृष्टि रहती है। वे सदा सबका कल्याण करते हैं।

।। श्रीवायवीय संहिता संपूर्ण ।।

।। शिव पुराण संपूर्ण ।।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

शिव चालीसा

सूर्योदय से पूर्व स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण करें, तत्पश्चात मृगचर्म या कुश के आसन पर बैठकर, भगवान शंकर की मूर्ति या चित्र तथा इस पुस्तक में बने शिव यंत्र को ताम्र-पत्र पर खुदवाकर सामने रखें। फिर चंदन, चावल, आक के सफेद पुष्प, धूप, दीप, धतूरे का फल, बेल-पत्र तथा काली मिर्च आदि से पूजन करके शिवजी का ध्यान करते हुए निम्न श्लोक पढ़कर पुष्प समर्पित करें।

कर्पूर गौरं करुणावतारं, संसार सारं भुजगेंद्रहारम् ।
सदा वसंतं हृदयारविंदे, भवं भवानी सहितं नमामि ।।

इसके बाद पुष्प अर्पण करें फिर चालीसा का पाठ करें। पाठ के अंत में 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का १०८ बार तुलसी या सफेद चंदन की माला से जप करें। जप के साथ अर्थ की भावना करने से कार्यसिद्धि जल्दी होती है।

जय गणेश गिरिजा सुवन, मंगल मूल सुजान ।
कहत अयोध्यादास तुम, देउ अभय वरदान ।।

समस्त मंगलों के ज्ञाता गिरिजा सुत श्री गणेश की जय हो। मैं अयोध्यादास आपसे अभय होने का वर मांगता हूं।

जय गिरिजापति दीनदयाला । सदा करत संतन प्रतिपाला ।।
भाल चंद्रमा सोहत नीके । कानन कुण्डल नागफनी के ।।

दीनों पर दया करने वाले तथा संतों की रक्षा करने वाले, पार्वती के पति शंकर भगवान की जय हो। जिनके मस्तक पर चंद्रमा शोभायमान है और जिन्होंने कानों में नागफनी के कुण्डल धारण किए हुए हैं।

अंग गौर सिर गंग बहाए । मुण्डमाल तन क्षार लगाए ।।
वस्त्र खाल बाघंबर सोहै । छवि को देखि नाग मुनि मोहै ।।

जिनके अंग गौरवर्ण हैं, सिर से गंगा बह रही है, गले में मुण्डमाला है और शरीर पर भस्म लगी हुई है। जिन्होंने बाघंबर धारण किया हुआ है, ऐसे शिव की शोभा देखकर नाग और मुनि भी मोहित हो जाते हैं।

मैना मातु कि हवै दुलारी । वाम अंग सोहत छवि न्यारी ।।
कर त्रिशूल सोहत छवि भारी । करत सदा शत्रुन क्षयकारी ।।

महारानी मैना की दुलारी पुत्री पार्वती उनके वाम भाग में सुशोभित हो रही हैं। जिनके हाथ का त्रिशूल अत्यंत सुंदर प्रतीत हो रहा है, वही निरंतर शत्रुओं का विनाश करता रहता है।

नंदि गणेश सोहैं तहं कैसे । सागर मध्य कमल हैं जैसे ।।
कार्तिक श्याम और गणराऊ । या छवि को कहि जात न काऊ ।।

भगवान शंकर के समीप नंदी व गणेशजी ऐसे सुंदर लगते हैं, जैसे सागर के मध्य कमल। श्याम, कार्तिकेय और उनके करोड़ों गणों की छवि का बखान करना किसी के लिए भी संभव नहीं है।

देवन जबहीं जाय पुकारा । तबहीं दुःख प्रभु आप निवारा ।।
कियो उपद्रव तारक भारी । देवन सब मिलि तुमहिं जुहारी ।।

हे प्रभु! जब-जब भी देवताओं ने पुकार की, तब-तब आपने उनके दुखों का निवारण किया है। जब तारकासुर ने उत्पात किया, तब सब देवताओं ने मिलकर रक्षा करने के लिए आपकी गुहार की।

तुरत षडानन आप पठायउ । लव निमेष महं मारि गिरायउ ।।
आप जलंधर असुर संहारा । सुयश तुम्हार विदित संसारा ।।

तब आपने तुरंत स्वामी कार्तिकेय को भेजा जिन्होंने क्षणमात्र में ही तारकासुर राक्षस को मार गिराया। आपने स्वयं जलंधर का संहार किया, जिससे आपके यश तथा बल को सारा संसार जानता है।

त्रिपुरासुर सन युद्ध मचाई । सबहिं कृपा करि लीन बचाई ।।
किया तपहिं भागीरथ भारी । पुरव प्रतिज्ञा तासु पुरारी ।।

त्रिपुर नामक असुर से युद्ध कर आपने देवताओं पर कृपा की, उन सभी को आपने बचा लिया। आपने अपनी जटाओं से गंगा की धारा को छोड़कर भागीरथ के तप की प्रतिज्ञा को पूरा किया था।

दानिन महं तुम सम कोइ नाहीं । सेवक स्तुति करत सदाहीं ।।
वेद माहि महिमा तब गाई । अकथ अनादि भेद नहिं पाई ।।

संसार के सभी दानियों में आपके समान कोई दानी नहीं है। भक्त आपकी सदा ही वंदना करते रहते हैं। आपके अनादि होने का भेद कोई बता नहीं सका। वेदों में भी आपके नाम की महिमा गाई गई है।

प्रकटी उदधि मथन ते ज्वाला । जरत सुरासुर भए विहाला ।।
कीन्ह दया तहं करी सहाई । नीलकंठ तव नाम कहाई ।।

समुद्र-मंथन करने से जब विष उत्पन्न हुआ, तब देवता और राक्षस दोनों ही बेहाल हो गए। तब आपने दया करके उनकी सहायता की और ज्वाला पान किया। तभी से आपका नाम नीलकंठ पड़ा।

पूजन रामचंद्र जब कीन्हा । जीत के लंक विभीषण दीन्हा ।।
सहस कमल में हो रहे धारी । कीन्ह परीक्षा तबहिं पुरारी ।।

रामचंद्रजी ने लंका पर चढ़ाई करने से पहले आपका पूजन किया और विजयी हो लंका विभीषण को दे दी। भगवान रामचंद्र ने जब सहस्र कमल के द्वारा पूजन किया तो आपने फूलों में विराजमान हो परीक्षा ली।

एक कमल प्रभु राखेउ गोई । कमल नैन पूजन चहं सोई ।।
कठिन भक्ति देखी प्रभु शंकर । भये प्रसन्न दिये इच्छित वर ।।

आपने एक कमलपुष्प माया से लुप्त कर दिया तो श्रीराम ने अपने कमलनयन से पूजन करना चाहा। जब आपने राघवेंद्र की इस प्रकार की कठोर भक्ति देखी तो प्रसन्न होकर उन्हें मनवांछित वर प्रदान किया।

जय जय जय अनंत अविनासी । करत कृपा सबके घटवासी ।।
दुष्ट सकल नित मोहि सतावैं । भ्रमत रहौं मोहि चैन न आवै ।।

अनंत और अविनाशी शिव की जय हो, सबके हृदय में निवास करने वाले आप सब पर कृपा करते हैं। हे शंकरजी! अनेक दुष्ट मुझे प्रतिदिन सताते हैं। जिससे मैं भ्रमित हो जाता हूं और मुझे चैन नहीं मिलता।

त्राहि त्राहि मैं नाथ पुकारौं । यहि अवसर मोहि आन उबारौ ।।
ले त्रिशूल शत्रुन को मारो । संकट ते मोहि आन उबारो ।।

हे नाथ! इन सांसारिक बाधाओं से दुखी होकर मैं आपका स्मरण करता हूं। आप मेरा उद्धार कीजिए। आप अपने त्रिशूल से मेरे शत्रुओं को नष्ट कर, मुझे इस संकट से बचाकर, भवसागर से उबार लीजिए।

मात-पिता भ्राता सब होई । संकट में पूछत नहिं कोई ।।
स्वामी एक है आस तुम्हारी । आय हरहु मम संकट भारी ।।

माता-पिता और भाई आदि सुख में ही साथी होते हैं, संकट आने पर कोई पूछता भी नहीं। हे जगत के स्वामी! आप पर ही मेरी आशा टिकी है, आप मेरे इस घोर संकट को दूर कीजिए।

धन निर्धन को देत सदाहीं । जो कोइ जांचे सो फल पाहीं ।।
अस्तुति केहि विधि करौं तुम्हारी । क्षमहु नाथ अब चूक हमारी ।।

आप सदा ही निर्धनों की सहायता करते हैं। जिसने भी आपको जैसा जाना उसने वैसा ही फल प्राप्त किया। मैं प्रार्थना-स्तुति करने की विधि नहीं जानता। इसलिए कैसे करूं? मेरी सभी भूलों को क्षमा करें।

शंकर को संकट के नाशन । विघ्न विनाशन मंगल कारन ।।
योगी यति मुनि ध्यान लगावें । नारद सारद शीश नवावें ।।

आप ही संकट का नाश करने वाले, समस्त शुभ कार्यों को कराने वाले और विघ्नहर्ता हैं। योगीजन, यति व मुनिजन आपका ही ध्यान करते हैं। नारद और सरस्वतीजी आपको ही शीश नवाते हैं।

नमो नमो जय नमः शिवाय । सुर ब्रह्मादिक पार न पाय ।।
जो यह पाठ करे मन लाई । ता पर होत हैं शंभु सहाई ।।

'ॐ नमः शिवाय' पंचाक्षर मंत्र का निरंतर जप करके भी देवताओं ने आपका पार नहीं

पाया। जो इस शिव चालीसा का निष्ठा से पाठ करता है, भगवान शंकर उसकी सभी इच्छाएं पूरी करते हैं।

ऋनियां जो कोइ हो अधिकारी । पाठ करे सो पावनहारी ।।
पुत्र होन कर इच्छा कोई । निश्चय शिव प्रसाद तेहि होई ।।

यदि ऋणी (कर्जदार) इसका पाठ करे तो वह ऋणमुक्त हो जाता है। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से जो इसका पाठ करेगा, निश्चय ही शिव की कृपा से उसे पुत्र प्राप्त होगा।

पण्डित त्रयोदशी को लावै । ध्यान पूर्वक होम करावै ।।
त्रयोदशी व्रत करै हमेशा । तन नहिं ताके रहै कलेशा ।।

प्रत्येक मास की त्रयोदशी को घर पर पण्डित को बुलाकर श्रद्धापूर्वक पूजन व हवन करना चाहिए। त्रयोदशी का व्रत करने वाले व्यक्ति के शरीर और मन को कभी कोई क्लेश (दुख) नहीं रहता।

धूप दीप नैवेद्य चढ़ावै । शंकर सम्मुख पाठ सुनावै ।।
जन्म-जन्म के पाप नसावै । अंत धाम शिवपुर में पावै ।।

धूप, दीप और नैवेद्य से पूजन करके शंकरजी की मूर्ति या चित्र के सामने बैठकर यह पाठ करना चाहिए। इससे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अंत में शिव लोक में वास होता है अर्थात् मुक्ति हो जाती है।

कहत अयोध्या आस तुम्हारी । जानि सकल दुःख हरहु हमारी ।।

नित्य नेम कर प्रात ही, पाठ करो चालीस । तुम मेरी मनोकामना, पूर्ण करो जगदीस ।।

अयोध्यादास कहते हैं, हे शंकरजी! हमें आपकी ही आशा है, यह जानते हुए मेरे समस्त दुखों को दूर करिए। इस शिव चालीसा का चालीस बार प्रतिदिन पाठ करने से भगवान मनोकामना पूर्ण करेंगे।

मंगसर छठि हेमंत ऋतु, संवत् चौसठ जान ।
अस्तुति चालीसा शिवहिं, पूर्ण कीन कल्याण ।।

हेमंत ऋतु, मार्गशीर्ष मास की छठी तिथि संवत् 64 में यह चालीसा लोककल्याण के लिए पूर्ण हुई।

शिव स्तुति

दो०- श्री गिरिजापति वंदिकर, चरण मध्य शिरनाय ।
कहत अयोध्यादास तुम, मो पर होहु सहाय ।।

मैं अयोध्यादास माता पार्वती के पति भगवान शंकर की वंदना करता हूं व उनके चरणों में शीश नवाकर प्रार्थना करता हूं कि वे मेरी सहायता करें।

नंदी की सवारी, नाग अंगीकार धारी,
नित संत सुखकारी, नीलकंठ त्रिपुरारी हैं ।
गले मुण्डमाला धारी, सिर सोहे जटाधारी,
वाम अंग में बिहारी, गिरिजा सुतवारी हैं ।।

नंदी जिनका वाहन है, नागों को जिन्होंने अपने अंगों पर धारण किया हुआ है, जो नित्यप्रति संतजनों को सुख प्रदान करने वाले हैं; ऐसे नीलकंठ भगवान शंकर जी हैं। उन्हें हमारा प्रणाम स्वीकार हो। जिनके गले में मुंडों की माला है, जो सिर पर जटा धारण किए हुए हैं; वाम अंग में पार्वती जी विराजमान हैं, ऐसे पर्वतों के राजा भगवान शंकर जी हैं।

दानी देख भारी, शेष शारदा पुकारी,
काशीपति मदनारी, कर त्रिशूल चक्रधारी हैं ।
कला उजियारी, लख देव सो निहारी,
यश गावें वेद चारी, सो हमारी रखवारी हैं ।।

शारदा और शेष द्वारा महादानी के रूप में स्तुत्य, काम-शत्रु, काशीपति शिव हाथ में त्रिशूल और चक्र धारण किए हुए हैं। जिनकी उज्ज्वल कला को देवता भी निहारा करते हैं, चारों वेदों द्वारा स्तुत्य भगवान शंकर हमारी रक्षा करते हैं।

शंभु बैठे हैं विशाला, भंग पीवें सो निराला,
नित रहें मतवाला, अहि अंग पै चढ़ाए हैं ।
गले सोहे मुण्डमाला, कर डमरू विशाला,
अरु ओढ़े मृगछाला, भस्म अंग में लगाए हैं ।।

जो निराली भांग को पीकर नित्यप्रति मदहोश रहते हैं, वे शंभु समाधि में लीन हैं, उनके अंगों पर सर्प शोभायमान हैं। जिनके गले में मुंडों की माला शोभा दे रही है, जो हाथ में विशाल डमरू लिए हैं, मृगछाला को जिन्होंने अपने शरीर पर लपेट रखा है और शरीर पर भस्म लगाए हुए हैं।

संग सुरभी सुतशाला, करें भक्त प्रतिपाला,
मृत्यु हरें अकाला, शीश जटा को बढ़ाए हैं ।
कहैं रामलला करो मोहि तुम निहाला,
गिरिजापति कसाला, जैसे काम को जलाए हैं ।।

देवों की शरणरूप, भक्त पालक, अकाल मृत्युहर्ता शिव सिर पर जटाओं को बढ़ाए हुए

हैं। हे गिरिजापति! जैसे आपने काम को जलाया था, वैसे ही मेरी तृष्णा को जलाकर मुझे निहाल करें, यह रामलला का निवेदन है।

मारा है जलंधर और त्रिपुर को संहारा जिन,
जारा है काम जाके शीश गंगधारा है ।
धारा है अपार जासु, महिमा है तीनों लोक,
भाल सोहै इंदु जाके, सुषमा की सारा है ।।

जिन्होंने मगरमच्छ, त्रिपुर राक्षस का वध किया, जिन्होंने काम को जला डाला, जिनके शीश पर गंगा की धारा भी है। गंगधार-सी अपार महिमा वाले, जिनके मस्तक पर चंद्रमा सुशोभित है, वे समस्त सुखों के स्वामी शिव हमारे रक्षक हैं।

सारा अहिबात सब, खायो हलाहल जानि,
भक्तन के अधारा, जाहि वेदन उचारा है ।
चारों हैं भाग जाके, द्वार हैं गिरीश कन्या,
कहत अयोध्या सोई, मालिक हमारा है ।।

जिन्होंने बात ही बात में सारा जहर पी लिया, वे भक्तों के रखवाले भगवान शंकर हैं, जिनका वेदों ने गान किया है। अयोध्यादास कहते हैं कि जो यज्ञ के चारों भागों के स्वामी हैं, गिरिराज सुता जिनके साथ हैं, वही हमारे स्वामी हैं।

अष्ट गुरु ज्ञानी जाके, मुख वेदबानी शुभ,
सोहै भवन में भवानी, सुख संपत्ति लहा करें ।
मुण्डन की माला जाके, चंद्रमा ललाट सोहै,
दासन के दास जाके, दारिद दहा करें ।।

आठों गुरु जानते हैं, जिनका मुख ही चारों वेदों की वाणी का रूप है, जिनके भवन की स्वामिनी माता भवानी हैं, वह शिव सुख और संपत्ति के दाता हैं। मुंडमालाधारी, मस्तक पर चंद्रधारी शिव, सेवकों के सेवक की भी दरिद्रता का नाश (दाह) करने वाले हैं।

चारों द्वार बंदी, जाके द्वारपाल नंदी,
कहत कवि अनंदी, नर नाहक हा हा करें ।
जगत रिसाय, यमराज की कहा बसाय,
शंकर सहाय, तो भयंकर कहा करें ।।

जिन्होंने नरक के चारों द्वार बंद करवा दिए हैं, जिनके द्वारपाल के रूप में नंदी विराजमान हैं, कवि आनंद कहते हैं कि ऐसे आनंद को देने वाले देवता के होते हुए भी लोग व्यर्थ ही हाहाकार करते हैं, क्योंकि सांसारिक लोगों की थोड़ी-सी पूजा-अर्चना से जो प्रसन्न हो जाते हैं और शंकरजी उनकी सहायता करते हैं तो ऐसे में यमराज की क्या आवश्यकता है, अर्थात आप भयंकर यमराज की यातना से बचना चाहते हैं तो शंकरजी की शरण में जाओ।

।। सवैया ।।

गौर शरीर में गौर विराजत, मौर जटा सिर सोहत जाके ।
नागन को उपवीत लसै अरु, भाल विराजत है शशि ताके ।।

गौर वर्णवाली पार्वती जिनके वाम विराज रही हैं और जिनके शीश पर जटाओं का मुकुट सुशोभित है। जिन्होंने सर्पों का उपवीत (जनेऊ) पहन रखा है और चंद्रमा जिनके मस्तक पर विराजमान है।

दान करै पल में फल चारि, और टारत अंक लिखे विधना के ।
शंकर नाम निःशंक सदा ही, भरोसे रहैं निशिवासर ताके ।।

जो पल भर में चारों फल (धर्म, अर्थ, मोक्ष और काम) को देने वाले हैं और भाग्य में लिखे को बदल सकते हैं—उनका नाम भगवान शंकर है और बिना किसी शंका के निरंतर उनके भरोसे पर रहना चाहिए।

।। दोहा ।।

मंगसर मास हेमंत ऋतु, छठा दिन है शुभ बुद्ध ।
कहत अयोध्यादास तुम, शिव के विनय समुद्ध ।।

अयोध्यादास जी कहते हैं कि भगवान शिव की महान कृपा से मार्गशीर्ष मास की षष्ठी तिथि, बुधवार के शुभ दिन यह कार्य संपन्न हुआ।

श्री शिवाष्टक

आदि अनादि अनंत, अखण्ड अभेद सुवेद बतावैं ।
अलख अगोचर रूप महेश कौ, जोगी जती-मुनि ध्यान न पावैं ।।
आगम-निगम-पुरान सबैं, इतिहास सदा जिनके गुन गावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
सृजन, सुपालन लय लीलाहित, जो विधि-हरि-हररूप बनावैं ।
एकहि आप विचित्र अनेक, सुवेष बनाइकै लीला रचावैं ।।
सुंदर सृष्टि सुपालन करि, जग पुनि बन काल जु खाय पचावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
अगुन अनीह अनामय अज, अविकार सहज निज रूप धरावैं ।
परम सुरम्य बसन-आभूषण, सजि मुनि-मोहन रूप करावैं ।।
ललित ललाट बाल बिधु विलसै, रतन-हार उर पै लहरावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
अंग विभूति रमाय मसान की, विषमय भुजंगनि कौ लपटावैं ।
नर-कपाल कर, मुण्डमाल गल, भालु-चर्म सब अंग उढ़ावैं ।।
घोर दिगंबर, लोचन तीन, भयानक देखि कै सब थर्रावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
सुनतहि दीन की दीन पुकार, दयानिधि आप उबारन आवैं ।
पहुंच तहां अविलंब सुदारुन, मृत्यु को मर्म बिदारि भगावैं ।।
मुनि मृकंडु-सुत की गाथा सुचि, अजहूं विज्ञजन गाइ सुनावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
चाउर चारि जो फूल धतूरे के, बेल के पात और पानी चढ़ावैं ।
गाल बजाय कै बोल जो, 'हर हर महादेव' धुनि जोर लगावैं ।।
तिनहिं महाफल देंय सदाशिव, सहजहि भुक्ति-मुक्ति सो पावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
बिनसि दोष दुख दुरित दैन्य, दारिद्रयं नित्य सुख-शांति मिलावैं ।
आसुतोष हर पाप-ताप सब, निर्मल बुद्धि-चित्त बकसावैं ।।
असरन-सरन काटि भवबंधन, भव जिन भवन भव्य बुलवावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।
औढरदानी, उदार अपार जु, नैकु-सी सेवा तें ढुरि जावैं ।
दमन अशांति, समन संकट, बिरद विचार जनहिं अपनावैं ।।

ऐसे कृपालु कृपामय देव के, क्यों न सरन अबहीं चलि जावैं ।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांब-सदाशिव कौ नित ध्यावैं ।।

हिन्दी दोहों में

शिव सहस्रनाम भगवान शिव की एक हजार नामों से स्तुति है। यह संस्कृत में 'शिव पुराण' में वर्णित है। परन्तु संस्कृत भाषा प्रत्येक व्यक्ति की समझ के बाहर है, अतः इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर शिव सहस्रनाम हिंदी दोहों में शिवभक्तों के लिए यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

जय अज अव्यय अमित शक्ति जय । जय अनियम अध्रुव अनादि जय ।।1।।
जय अमृताश अमृतवपु जय जय । अमृतप अमृत रूप अक्षय जय ।।2।।
अप्राकृतिक दिव्य तनु जय जय । जय अनादि मध्यान्त जयति जय ।।3।।
अर्थिगम्य जय अष्टमूर्ति जय । अपरिच्छेद्य अध्यात्म निलय जय ।।4।।
जय अचलेश्वर अजितप्रिय जय । जय असाध्य अनिवृत्तात्मा जय ।।5।।
जय अभिवाद्य अकल्मष जय जय । जय अनन्तदृक् अन्न रूप जय ।।6।।
जयति अजातशत्रु अघरिपु जय । जय अन्तर्हित आत्मा जय जय ।।7।।
अऋणी अक्रिय अकथनीय जय । अभिजन अकुतोभय अकुण्ठ जय ।।8।।
अति प्राकृत अतिदैव अजर जय । अति मानुष अतिवेल अचर जय ।।9।।
जयति अखण्ड अग्य अक्षर जय । अति बल अतनु प्राणहर जय जय ।।10।।
जय अधिराज अधृष्य जयति जय । असंदिग्ध असुरारि जयति जय ।।11।।
जय अद्रयालय अद्रि अतिथि जय । जय अविशिष्ट अंपानिधि जय जय ।।12।।
जय अराग अभिराम अमृत जय । जय अगस्त्य अंगिरा अत्रि जय ।।13।।
जय अनन्त अरिदमन अचल जय । जय अभेद अज्ञेय अमल जय ।।14।।
जय अनर्थ नाशन अमोघ जय । जयति अनर्थ अर्थ अभिनव जय ।।15।।
जयति अचंचल असंसृष्ट जय । जय अधर्मरिपु अन्धकारि जय ।।16।।
जय अघोर अनिरुद्ध अभव जय । जय अरिन्दम अमरेश्वर जय ।।17।।
जय अलोभ अपराजित अणु जय । जय अक्रूर अकिञ्चन जय जय ।।18।।
जय अक्षुण्ण अनघ अग्रह जय । जयति अगुण अनन्त गुणनिधि जय ।।19।।
जय अक्षय गुण अधिष्ठान जय । जयति अपूर्व अनुत्तर जय जय ।।20।।
जय अप्रतिम अकम्प अधृत जय । जयति अकाल अकल अमृत्यु जय ।।21।।
जय असुरासुरपति अहपति जय । जयति अमाय अनामय जय जय ।।22।।
जयति अकर्ता अखिलकर्तृ जय । जयति अतीन्द्रिय अखिलेन्द्रिय जय ।।23।।
जय अनपायोक्षर अदम्य जय । जय आनन्द आत्मचेतन जय ।।24।।
आत्मयोनि आश्रित वत्सल जय । आशुतोष आलोक जयति जय ।।25।।
जयति इष्ट ईशान ईश जय । जय उन्नघ्र उग्र उत्तर जय ।।26।।
जयति उष्ण उन्मत्त वेश जय । जयति उपप्लव उत्तारण जय ।।27।।

जय उद्योगी उद्यमप्रिय जय । जय ऋषि ऋक्ष चर्मधर जय जय ।।28।।
एक रुद्र जय एक बन्धु जय । जय एकात्मा एक नेत्र जय ।।29।।
जय ऐश्वर्याचिन्त्य जयति जय । जयति ओज ओंकारेश्वर जय ।।30।।
अम्बुजाक्ष अन्तर्यामी जय । अन्तरहित अन्तरप्रिय निधि जय ।।31।।
जय कमलाक्ष कमण्डलुधर जय । जयति कल्प कर्त्ता कवि जय जय ।।32।।
कर्णिकार प्रिय कर-कपाल जय । जय कमनीय कलेवर क्रतु जय ।।33।।
जय कनकाभा कपिलश्मश्रु जय । जय कल्याण नाम गुणधर जय ।।34।।
जय कल्याण विधायक जय जय । जयति कलाधर कल्पवृक्ष जय ।।35।।
जयकल्पादि कपर्दि करण जय । जयति कपाली कारण जय जय ।।36।।
जयति कामशासन कामी जय । काम कामरिपु कामपाल जय ।।37।।
जयति काल जय कल्पवृक्ष जय । कालाधार कालभूषण जय ।।38।।
कालकाल जय काल रहित जय । जयकान्ता प्रिय कान्त जयति जय ।।39।।
जय किन्नर सेवित किरात जय । किंकर वश्य कितव अरि जय जय ।।40।।
कीर्ति विभूषण जय किरीटि जय । जय कृतज्ञ जय कृतानन्द जय ।।41।।
जयति कृष्ण जय कृष्ण वरद जय । जय कुमार कुशलागम जय जय ।।42।।
जय केवल केदारनाथ जय । जय कैवल्य प्रदाता जय जय ।।43।।
जय कैलाश शिखरवासी जय । जय कंकणिकृत वासुकि जय जय ।।44।।
जय खग खगवाहन प्रिय जय जय । जय खट्वांगी खण्डपरशु जय ।।45।।
जय खलकण्टक खल दलारि जय । जय गणेश गणकाय गहन जय ।।46।।
गगन कुन्द प्रभ गणनायक जय । जय गायत्री वल्लभ जय जय ।।47।।
जय गिरीश गिरिजापति जय जय । जय गिरिजामाता गिरिरत जय ।।48।।
जय गुह गुरु गुण सत्तम जय जय । जय गुणराशि गुणाकर जय जय ।।49।।
जय गुणग्राहक ग्रीष्म जयति जय । जय गोपति गोप्ता गोप्रिय जय ।।50।।
जय गोविन्द गोशाखा जय जय । गौरी भर्त्ता गंगाधर जय ।।51।।
जय घुश्मेश्वर घनानन्द जय । जयति चतुर जय चन्द्रचूड़ जय ।।52।।
चतुर्वेद जय चन्द्रमौलि जय । चतुर्भाव चतुरप्रिय जय जय ।।53।।
जयति चतुष्पद चतुर्बाहु जय । जयति चतुर्मुख चिदानन्द जय ।।54।।
जयति चिरन्तन चित्रवेश जय । चन्द्रापीड़ छिन्नसंशय जय ।।55।।
जय जगदीश जगद्गुरु जय जय । जय जन्मारि जनार्दन जय जय ।।56।।
जय जगदादिज जनक जनन जय । जयति जप्य जमदग्नि जयति जय ।।57।।
जटिल जलेश्वर जगद बन्धु जय । जनाध्यक्ष जनमन रंजन जय ।।58।।
जयति जरादिशमन जगपति जय । जगजीवन जय जातुकर्ण्य जय ।।59।।
जय जितकाम जितेन्द्रिय जय जय । जीवितान्तकर जीवनेश जय ।।60।।
जयति ज्योति ज्योतिर्मय जय जय । जयति तत्व तत्वज्ञ जयति जय ।।61।।
जय तापस तमिस्रहा जय जय । जय तम रूप तमोहर जय जय ।।62।।

जय तत्पुरुष ताक्ष्य तारक जय । जय तिग्मांशु तीर्थधामा जय ।।63।।
तीर्थ तीर्थमय तीर्थदृश्य जय । तुम्बवीण जय तुष्ट तेज जय ।।64।।
तेज द्युतिधर तेजराशि जय । जयति त्रिवर्ग स्वर्ग साधन जय ।।65।।
जय त्रैविध त्रयीतनु जय जय । जयति त्रिलोचन त्रिदशाधिप जय ।।66।।
जय त्रिलोकपति त्र्यम्बक जय जय । जय त्रिशूलधर त्र्यक्ष जयति जय ।।67।।
जय दुर्जय दुस्सह दम जय जय । जय दुर्धुर्ष दुरति क्रम जय जय ।।68।।
जय दक्षारि दक्षत्राता जय । जय दक्ष जामाता जय जय ।।69।।
जय दर्पद दर्पहा जयति जय । दनुज दमन दमयिता जयति जय ।।70।।
दान्त दयानिधि दाता जय जय । जयति दिवाकर दिव्यायुध जय ।।71।।
जयति दिवस्पति दीर्घतपा जय । जय दुर्जय दुःसह दुर्लभ जय ।।72।।
जय दुर्ज्ञेय दुर्ग दुर्गति जय । जय दुर्वासा दुराधर्ष जय ।।73।।
जय दुर्गति नाशन दुरंत जय । दुरावास दुष्कृतिहा जय जय ।।74।।
जय दुःस्वप्न विनाशक द्रुत जय । दूरश्रवा दुरासद जय जय ।।75।।
देव देव देवाधिप जय जय । देवासुर गुरुदेव जयति जय ।।76।।
देवासुर पूजित ईश्वर जय । देवासुर सर्वाश्रय जय जय ।।77।।
देवसिंह देवात्म रूप जय । देवनाथ जय देवप्रिय जय ।।78।।
जय दृढ़ दृढ़प्रतिज्ञ दृढ़मति जय । जय द्युतिधर जय धुमणि तरणि जय ।।79।।
जयति द्रुहिण द्रोहान्तक जय जय । जयति धर्म जय धर्म धाम जय ।।80।।
जय धर्माङ्ग धर्म साधन जय । धर्मधेनु जय धर्मचारि जय ।।81।।
जय धन्वी धव धनदस्वामि जय । जयति धनागम धनाधीश जय ।।82।।
जयति धनुर्धर धनुर्वेद जय । जय धात्रीश धातृधामा जय ।।83।।
जय धीमान धुर्य धूर्जटि जय । ध्यानाधार ध्येय ध्याता जय ।।84।।
धृतव्रत धृतियुत धृत जनकर जय । जयप्रिय नर नारायण जय जय ।।85।।
जय नरसिंह रूप धर जय जय । जय नरसिंह तपन नन्दी जय ।।86।।
नन्दीश्वर नग्नव्रत जय जय । नन्दि स्कन्धधर नभो योनि जय ।।87।।
जय नक्षत्र मालि नव रस जय । नयनाध्यक्ष नदीधर जय जय ।।88।।
नागेश्वर नागेश नाक जय । जय नागेन्द्रहार भूषण जय ।।89।।
जय निर्वार निशाकर जय जय । निरावरण निधि नियताश्रय जय ।।90।।
नित्य निरञ्जन नियतात्मा जय । निःश्रेयसकर निराकार जय ।।91।।
जय निष्कण्टक निष्कलङ्क जय । जय निरूपद्रव निरातङ्क जय ।।92।।
जय निर्व्याज नित्य सुखमय जय । जयति निरङ्कुश निष्प्रपञ्च जय ।।93।।
जय निर्व्यङ्ग नित्य सुन्दर जय । नित्य शान्तिमय नित्य नृत्य जय ।।94।।
नित्य नियत कल्याण नीति जय । नीतिमान जय नीलकण्ठ जय ।।95।।
जय नीलाभ नीललोहित जय । नैककर्म कृत नैकात्मा जय ।।96।।
न्यायगम्य जय न्यायी जय जय । न्याय नियामक न्याय प्रिय जय ।।97।।

जयति परात्पर परब्रह्म जय । जय परमात्मा परमेष्ठी जय ।।98।।
जयति परावर परं ज्योति जय । जय पशुपति जय पद्मगर्भ जय ।।99।।
जय परश्वधी पटु परिवृढ़ जय । जयति परंतप पंचानन जय ।।100।।
परावरज्ञ परार्थवृत्ति जय । परकार्यैक सुपण्डित जय जय ।।101।।
जयति प्रणव प्रणवात्मक जय जय । जय प्रधान प्रभु प्रमाणज्ञ जय ।।102।।
जयति प्रभाकर प्रमथ नाथ जय । जय प्रच्छन्न प्रशान्त बुद्धि जय ।।103।।
जयति प्रतप्त प्रकाशक जय जय । जय प्रतापमय प्रभव जयति जय ।।104।।
जय प्रलम्ब भुज प्रलयंकर जय । जयति प्रगल्भ प्रकीर्ण प्राण जय ।।105।।
जय पावन पारावर मुनि जय । पारिजात जय पाञ्चजन्य जय ।।106।।
पिंगल जटी पिनाकी जय जय । पिंगलाभ शुचि नयन जयति जय ।।107।।
पुण्य श्लोक पुरंदर जय जय । पुलह पुलस्त्य पुरंजय जय जय ।।108।।
पुष्कर पुष्प विलोचन जय जय । पुषदन्तभित् पूर्ण पूत जय ।।109।।
प्रमथाधिप प्रबुद्ध प्रणप्रिय जय । प्रभावान प्रभु विष्णु जयति जय ।।110।।
प्रेताधीश प्रेतचारी जय । जय पौराण पुरुष फणिधर जय ।।111।।
जय बहुश्रुत बहुरूप बली जय । बाणहस्त बाणाधिप जय जय ।।112।।
जयति ब्रह्म ब्रह्मा ब्राह्मण जय । जय ब्राह्मणप्रिय ब्रह्मगर्भ जय ।।113।।
ब्रह्मवर्चसी ब्रह्म ज्योति जय । ब्रह्म वेदनिधि ब्रह्मचारि जय ।।114।।
बीज विधाता बिन्दु रूप जय । बीजाधार बीजवाहन जय ।।115।।
बृहदगर्भ बृहदश्व जयति जय । बृहदीश्वर मंगलमय जय जय ।।116।।
जय भव भव्य भस्मप्रिय जय जय । जय भगवान भस्मशायी जय ।।117।।
भस्मोद्धलित विग्रह जय जय । भस्म शुद्धिकर भक्तिकाय जय ।।118।।
भक्तिवश्य जय भक्त भक्त जय । भालनेत्र जय भानुदेव जय ।।119।।
भावात्मात्मनि संस्थित जय जय । भीम पराक्रम भीम जयति जय ।।120।।
जय भुवनेश भुवन जीवन जय । भूति भूतिनाशन भूशय जय ।।121।।
जयति भूतवाहन भूपति जय । जयति भूतकृत भूत भव्य जय ।।122।।
जयति भूतवाहन भूषण जय । जयति भोग्य भोक्ता भोजन जय ।।123।।
जयति महेश्वर महादेव जय । जयति महाद्युति महातपा जय ।।124।।
जयति महानिधि महामाय जय । महागर्त जय महागर्भ जय ।।125।।
महानाद जय महातेज जय । महावीर्य जय महाशक्ति जय ।।126।।
महाबुद्धि जय महाकल्प जय । महाकाल जय महाकोष जय ।।127।।
महायशा जय महामना जय । महाभूत जय महापूत जय ।।128।।
जयति महौषधि मंगलमय जय । जय महदाश्रय महत् जयति जय ।।129।।
महामहिम मत्सर विहीन जय । जयति महाहृद महाबली जय ।।130।।
जयति मन्त्र मन्त्राधिप मय जय । जयति मन्त्र प्रत्यय मन्त्री जय ।।131।।
महोत्साह जय महीभर्त्ता जय । मधुरप्रिय दर्शन महर्षि जय ।।132।।

जयति महारेता मधुप्रिय जय । जयति महाकवि महाप्राण जय ।।133।।
जय मघवान महाधन जय जय । जय मानधन महापुरुष जय ।।134।।
जय मध्यस्थ महास्वन जय जय । महेष्वास जय मृदु मृड जय जय ।।135।।
जयति मल्लिकार्जुन मृगपति जय । मारुति रूप मोह विरहित जय ।।136।।
मृग बाणार्पण मेरु मेघ जय । जयति यज्ञ जय यज्ञ श्रेष्ठ जय ।।137।।
जयति यज्ञ भोक्ता जय यश जय । जयति यशोधन युगपति जय जय ।।138।।
जयति युगावह योगपार जय । जय योगेश्वर योगीश्वर जय ।।139।।
योगाध्यक्ष योगविद् जय जय । जय रवि रविलोचन रसप्रिय जय ।।140।।
जयति रसज्ञ रसद रसनिधि जय । रजनी जनक रमापति जय जय ।।141।।
रामचन्द्र राघव जय रुचि जय । रुचिरांगद जय जयति रुद्र जय ।।142।।
रिपुमर्दन रोचिष्णु जयति जय । जयति ललित जय ललाटाक्ष जय ।।143।।
लिङ्गाध्यक्ष लिङ्ग प्रतिमा जय । जयति लोककर लोकबन्धु जय ।।144।।
लोकनाथ जय लोकपाल जय । लोक गूढ़ जय लोकवीर जय ।।145।।
लोकोत्तर सुख आलय जय जय । लोकानामग्रणी जयति जय ।।146।।
जयति लोक सारंग जयति जय । लोकशल्य धृक् लोकोत्तम जय ।।147।।
जयति लोक वर्णोत्तम जय जय । लोक लवणताकर्त्ता जय जय ।।148।।
लोक रचयिता लोकचारि जय । लोहितात्मा लोकोत्तर जय ।।149।।
जय वरेण्य जय वरवाहन जय । वरद वशिष्ठ वसुप्रद जय जय ।।150।।
वसु वसुमना वरांग जयति जय । जय वसुधामा वसुश्रवा जय ।।151।।
जय वसंत माधव वत्सल जय । जय वर्णी वर्णाश्रम गुरु जय ।।152।।
जय वसुरेता वज्रहस्त जय । जय वरशील जयति वरगुण जय ।।153।।
जय वागीश वायु वाहन जय । वालखिल्य जय वाचस्पति जय ।।154।।
वामदेव वामाङ्क उमा जय । वासुदेव वासव सेवित जय ।।155।।
जय वाराह शृंगधृक् जय जय । जय वाणीपति वाणीवर जय ।।156।।
जय वृषांक वृषवाहन जय जय । जयति वृषाकपि वृषवर्धन जय ।।157।।
जयति विश्व विश्वम्भर जय जय । विश्वमूर्ति जय विश्वदीप्ति जय ।।158।।
जयति विश्वसृक् विश्व-वास जय । विश्वनाथ जय विश्वेश्वर जय ।।159।।
जयति विश्वकर्त्ता हर्त्ता जय । विश्वरूप जय विश्वधर्म जय ।।160।।
विश्वोत्पत्ति विश्वगालव जय । जयति विश्ववाहन विशोक जय ।।161।।
जयति विश्वगोप्ता विराट जय । जयति विरंचि विमोचन जय जय ।।162।।
विश्वदेह विद्येश जयति जय । जय विशाख विजितात्मा जय जय ।।163।।
जयति विश्वसह विद्वतम जय । जयति विनीतात्मा विराम जय ।।164।।
जयति विरोचन विरूपाक्ष जय । जय विगत ज्वर विमलोदय जय ।।165।।
जय विषमाक्ष विशाल अक्ष जय । जय विरूप विक्रान्त विमल जय ।।166।।
विद्याराशि वियोगात्मा जय । जयति विधेयात्मा विशाल जय ।।167।।

जयति विधाता विष्णु विरत जय । जयति विशारद विशृंखल जय ।।168।।
जय वीरेश्वर वीरभद्र जय । वीर्यवान वीरासन विधि जय ।।169।।
वीर शिरोमणि वीराग्रणि जय । वीतराग जय वीतभीति जय ।।170।।
वेद रूप जय वेदवेद्य जय । जय वेदाङ्ग वेद विद् मुनि जय ।।171।।
जयति वेदकर वेत्ता जय जय । वेदशास्त्र तत्वज्ञ जयति जय ।।172।।
जय वेदान्त सार निधि जय जय । वैद्यनाथ वैयाघ्यधुर्य जय ।।173।।
जयति वैद्य वैरिञ्च्य जयति जय । जयति शर्व जय शक्र जयति जय ।।174।।
जयति श्मशान निलय शरण्य जय । जय श्मशानप्रिय शमनशोक जय ।।175।।
जय शत्रुघ्न शत्रु तापन जय । शबल शक्त शम शरभ जयति जय ।।176।।
जय शनि शरण शत्रुजित जय जय । जयति शवासन शक्तिधाम जय ।।177।।
शब्द ब्रह्म जय जयति शम्भु जय । शबर बन्धु जय शमनदमन जय ।।178।।
शंकर शंवर शर्वरीश जय । शाश्वत शान्त शाख शास्ता जय ।।179।।
शान्तभद्र शाकल्य जयति जय । जय शिव जय शिपिविष्ट जयति जय ।।180।।
शिशु शिखि शिखि सारथी जयति जय । जय शिव ज्ञान निरत शिखण्डि जय ।।181।।
जय शिष्टेष्ट शिवालय जय जय । श्रीकण्ठ श्रीमान जयति जय ।।182।।
श्रीशैल श्रीवास जयति जय । शुचि शुचिसत्तम शुचिस्मित जय जय ।।183।।
जय शुभ शुभद शुभांग जयति जय । शुद्धमूर्ति शुद्धात्मा जय जय ।।184।।
शुभ्र शुभंकर शुभ स्वभाव जय । जय शुभकर्त्ता शुभनामा जय ।।185।।
शूली शूर शूलनाशन जय । शोभाधाम शोकनाशन जय ।।186।।
शंका विरहित शंखवर्ण जय । श्रीश रूप श्रीवृद्धिकरण जय ।।187।।
श्रुतिप्रकाश श्रुतिमान जयति जय । सम समान जय समान्नाय जय ।।188।।
सदाचार जय समावर्त जय । सगण स्थपित सनातन जय जय ।।189।।
सद्योजात सदाशिव जय जय । सत्य सत्यव्रत सत्यसंध जय ।।190।।
सत्य परायण सत्य कीर्ति जय । सत्य पराक्रम सत्य मूर्ति जय ।।191।।
सफल सकल निष्कल समाधि जय । सती देहधर सत्तम जय जय ।।192।।
सदय सदाशय समतामय जय । सकलाधार सकल आश्रय जय ।।193।।
सकलागम पारग स्वभाव जय । सच्चरित्र सच्चिदानन्द जय ।।194।।
सत्पुरुषाधिप सदानन्द जय । सर्व सर्वस्रष्टा पालक जय ।।195।।
सर्वेश्वर सर्वादि जयति जय । जयति सर्वसंहार मूर्ति जय ।।196।।
सर्वाचार्य मनोगति जय जय । सर्वावास सर्व शासन जय ।।197।।
सर्वरूप चर अचर जयति जय । सर्वलोक सर्वेश जयति जय ।।198।।
सर्वलोक ईश्वर महान जय । सर्वभूत ईश्वर महान जय ।।199।।
सर्वशास्त्र रक्षक महान जय । सर्वशास्त्र भंजन महान जय ।।200।।
सर्वधर्म रक्षक महान जय । सर्वधर्म भक्षक महान जय ।।201।।
सर्वसाध्य साधन महान जय । सर्वदेव सत्तम महान जय ।।202।।

सर्वशास्त्र सत्सार जयति जय । सर्वबन्ध मोचन स्वभाव जय ।।203।।
सर्वलोक धृक् सर्वशुद्धि जय । जयति सर्वदृक् सर्वयोनि जय ।।204।।
सर्वप्रजापति सर्वसत्य जय । जय सर्वज्ञ सर्वगोचर जय ।।205।।
जयति सर्वसाक्षी सर्वग जय । सर्वदिव्य आयुध ज्ञाता जय ।।206।।
सर्वपापहर त्राता जय जय । जय सर्वर्तु विधायक जय जय ।।207।।
जयति सर्वसुर नायक जय जय । सर्वशक्ति मत सर्ववीर्य जय ।।208।।
सर्वोत्तर सर्वेसर्वा जय । सर्वाणी स्वामी ससज्ज जय ।।209।।
सद्गति सत्कृति सद्योगी जय । जय सज्जाति सदागति जय जय ।।210।।
जय सम्राट स्वधर्मा जय जय । जयति स्कन्द जय स्कन्द जनक जय ।।211।।
जयति स्तव्य स्तवप्रिय स्तोता जय । स्वक्ष स्वधृत स्वर्बन्धु जयति जय ।।212।।
जय स्वच्छन्द स्ववश स्वराट् जय । जयति स्वभाव भद्र स्वर्गत जय ।।213।।
स्वतः प्रमाण स्वमहिमामय जय । स्ववश स्वयंभू स्वच्छ जयति जय ।।214।।
स्वर्ग स्वर्गस्वर स्वरमय स्वन जय । जयति स्थविष्ट स्थविर ध्रुव जय जय ।।215।।
सहस पाद जय सहस बाहु जय । सहस नेत्र जय सहस कर्ण जय ।।216।।
सहस शीश जय सहस कण्ठ जय । सहस गिरा जय सहस अर्चि जय ।।217।।
साधुसाध्य जय साधुसार जय । सार सुशोधन साधन जय जय ।।218।।
जयति साध्य सात्त्विक प्रिय जय जय । सामगान प्रिय सानुराग जय ।।219।।
साम्ब सदाशिव जयति जयति जय । सिद्ध सिद्धि जय सिद्धिद जय जय ।।220।।
सिद्धिकरण जय सिद्धखड्ग जय । सिद्धवृन्द वंदित पूजित जय ।।221।।
स्थिर स्थिरमति जय स्थिर समाधि जय । जय सुरेश सुरपति सेवित जय ।।222।।
जयति सुभग सुव्रत सुपर्ण जय । जयति सुतन्तु सुनीति सुलभ जय ।।223।।
जयति सुधी सुशरण सुकीर्ति जय । सुहृद सुधीर सुचरित जयति जय ।।224।।
जय सुकुमार सुलोचन जय जय । जयति सुखानिल सुप्रतीक जय ।।225।।
जयति सुप्रीत सुमुख सुन्दर जय । जय सुधांशु शेखर सुवीर जय ।।226।।
जय सुकीर्ति शोभन सुस्तुत्य जय । सुमति सुकर सुरनायक जय जय ।।227।।
सुनिष्पन्न जय सुषमामय जय । सुखी परम जय सूक्ष्म तत्व जय ।।228।।
सूर्य सूर्य-उष्मा-प्रकाश जय । सूत्र रूप जय सूत्रकार जय ।।229।।
सोम सोमरत सोमनाथ जय । सोमप सौम्य सौम्यप्रिय जय जय ।।230।।
संकर्षण संकल्प रहित जय । संगरहित संगीत निपुण जय ।।231।।
संग्रह रहित संग्रही जय जय । जय संवृत संभाव्य जयति जय ।।232।।
जय संसार चक्रभित जय जय । जय संसरण निवारण जय जय ।।233।।
जय षट्चक्र विकासन जय जय । जय षट्शत्रु विनाशन जय जय ।।234।।
जय षट्कर्म विधायक जय जय । जय षड्दर्शन नायक जय जय ।।235।।
जय षड्ऋतु षड्रसमय जय जय । जयति षडानन जनक जयति जय ।।236।।
जय हर हरि हिरण्यरेता जय । हंस हंसगति हव्यवाह जय ।।237।।

जयति हिरण्यवर्ण हिमप्रिय जय । जयति हिरण्यगर्भ हितकर जय ।।238।।
जयति हिरण्य कवच हिरण्य जय । हिंसा रहित हितैषी जय जय ।।239।।
हृषीकेश जय हृष्ट हृद्य जय । जय हृत्पद्म विराजित जय जय ।।240।।
क्षमाशील जय क्षाम क्षपण जय । जय क्षेत्रज्ञ क्षेत्रपालक जय ।।241।।
ज्ञानगम्य जय ज्ञानमूर्ति जय । ज्ञानवान जय ज्ञानरूप जय ।।242।।

पण्डित वर्ग हवन कराते समय प्रत्येक दोहे के बाद स्वाहा लगाकर आहुतियां दें। यह सहस्त्ररुद्री हवन की संक्षिप्त विधि है।

त्रिगुण शिवजी की आरती

जय शिव ओंकारा, हर जय शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्द्धांगी धारा॥ टेक॥
एकानन चतुरानन पंचानन राजे।
हंसासन गरुड़ासन बृषवाहन साजे॥ जय॥
दो भुज चार चतुर्भुज दस भुज ते सोहे।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहे॥ जय॥
अक्षमाला वनमाला मुण्डमाला धारी।
चंदन मृगमद सोहे भोले शुभकारी॥ जय॥
श्वेतांबर पीतांबर बाघंबर अंगे।
सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे॥ जय॥
कर के मध्य कमण्डल चक्र त्रिशूल धर्ता।
जगकर्ता जगभर्ता जगपालनकर्ता॥ जय॥
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका।
प्रणवाक्षर के मध्ये ये तीनों एका॥ जय॥
त्रिगुण शिवजी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानंद स्वामी मनवांछित फल पावे॥ जय॥